विज्ञान प्रगति

जनवरी 1990, पौष 1911

मूल्य : 2.50 रुपये

प्रकाशीय चाकू

शुक्र ग्रह पर निवास

मौन तपस्विनी

विज्ञान के लम्बे हाथ

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिष

वर्ष : 39, जनवरी 1990, पौष 191

प्रकाशन और सूचना निदेशालय

प्रमुख सम्पादक

डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक	श्रीमती दीक्षा बिष्ट
सम्पादन सहायक	ओम प्रकाश मित्तल
कला अधिकारी	दलवीर सिंह वर्मा
प्रोडक्शन अधिकारी	रत्नाम्बर दत्त जोशी
बिक्री और वितरण अधिकारी	आर.पी. गुलाटी टी. गोपालकृष्ण
सहायक	फूल चंद बी.एस. शर्मा बशिष्ट ओझा

टेलीफोन : 585359 और 586301

मुख चित्र परिचय

लेज़र एवं होलोग्राम

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये

वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

विषय-सूची

पृष्ठ 9

12

16

33

हिल

प्रकाशन और सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.)

नव वर्ष मंगलमय हो

ान परिषद् का हिन्दी-विज्ञान मासिक

ौष 1911, अंक : 1, पूर्णांक 428

अगले अंक के आकर्षण
विज्ञान और समाज

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का 77वां अधिवेशन 3 फरवरी 1990 को कोचीन में आरम्भ होने जा रहा है। विषय है "विज्ञान और समाज"। समाज के लिए विज्ञान की उपादेयता पर विचार प्रस्तुत कर रहे हैं :

डा. डी.एस. कोठारी और
प्रो. भाल चन्द्र उद्गांवकर।

क्या विज्ञान समाज के लिये लाभदायक है?

लेखक डा. वेंकटवर्धन

जैव प्रौद्योगिकी में पढ़िये

'अति मानव का नया जगत'

एक नया धारावाहिक

'पृथ्वी की कहानी'

गल्प कथा तथा अन्य सभी स्थायी स्तम्भ

33

36

29
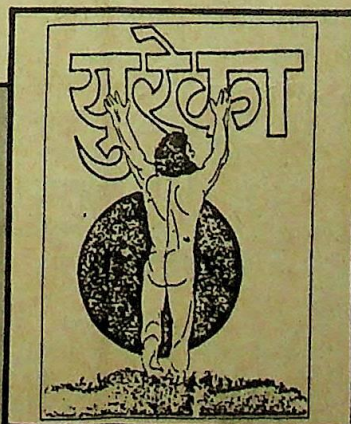
हिलसाइड रोड, निकट पूसा, नई दिल्ली-110 012.

सम्पादकीय आवश्यक क्यों?

मैं लोकप्रिय विज्ञान मासिक 'विज्ञान प्रगति' का विगत दस वर्षों से नियमित पाठक हूं और इसके प्रत्येक अंक का मनोयोग से अध्ययन करता हूं। पत्रिका में पिछले कुछ समय से सम्पादकीय जैसे महत्वपूर्ण स्तम्भ का अभाव खटक रहा था और इसे अक्तूबर-नवम्बर 1989, जो कि हिन्दी में विज्ञान लेखन का विशेषांक था, पाकर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ। 'विज्ञान प्रगति' आज जन-जन में लोकप्रिय है ऐसी महत्वपूर्ण विज्ञान पत्रिका में सम्पादकीय का प्रकाशित न होना एक आश्चर्य की बात है क्योंकि मेरा मानना है कि सम्पादकीय किसी भी पत्रिका का एक महत्वपूर्ण अंश होता है और उससे सम्पादक का व्यक्तित्व, कृतित्व, विद्वता, अनुभव व कार्यकुशलता परिलक्षित होती है और वह अपनी कुशल लेखनी से आम पाठक को निर्देशित व प्रभावित कर सकता है, जिससे पाठक अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इससे वह समाज व राष्ट्र की बेहतर सेवा कर सकेगा। चूंकि सम्पादक एक बेहद अनुभवी व योग्य व्यक्ति होता है और उसके पास विशेष ज्ञान होता है अतः उस पर प्रत्येक पाठक का विश्वास होता है।

[1. प्रदीप कुमार गुप्ता, झोटवाड़ा, जयपुर; 2. अवनीश कुमार, शासकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश]

गणितज्ञ वायरस्ट्रास की जीवनी

गत अंक में संसार के महान गणितज्ञ वायरस्ट्रास की प्रारंभिक जीवनी पढ़कर मन को बड़ा प्रोत्साहन मिला। वायरस्ट्रास ने यह साबित कर दिया कि कोई भी व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद भी गहनता को प्राप्त कर सकता है तथा अपनी बुद्धि, विद्या, कौशल आदि से अपनी प्रतिभा को आइने की भांति चमकीला बना सकता है। यही शिक्षा मिलती है वायरस्ट्रास की प्रतिकूल जीवन घटना से। इतना विद्वान तथा गणितविद् होने के बावजूद भी उन्होंने अपनी वसीयत में पुरोहित की प्रशंसा करने से मना किया। यह उनके सफल जीवन का अद्भुत रहस्य था।

[1. रत्नेश्वर कुमार मिश्र, नरकटिया गंज, बिहार; 2. असीम कुमार सिन्हा, गंजपुर, रहुई, नालन्दा, बिहार]

विज्ञान लेखन

विज्ञान प्रगति का अक्तूबर-नवम्बर, 1989 का हिन्दी में विज्ञान लेखन पर विशेष सामग्री से सम्बद्ध विशेषांक पढ़ा। वस्तुतः यह अंक न केवल पाठकों को हिन्दी भाषा के माध्यम से विज्ञान की दिनानुदिन बढ़ती प्रगति से परिचित कराता है वरन् हिन्दी भाषा के जरिये वैज्ञानिक तथ्यों और रहस्यों को समझने तथा समझाने का बोध भी कराता है। हिन्दी में विज्ञान लेखन से सम्बन्धित लेख– यथा "एक तुलनात्मक अध्ययन", "तकनीकी साहित्य", "शुरूआत कैसे हुई", "तिलिस्म से वैज्ञानिक धरातल तक", "इक्कीसवीं शताब्दी की ओर" तथा "प्रो. रामचरण मेहरोत्रा– कुछ संस्मरण" बड़े ही मार्मिक, ज्ञानवर्द्धक एवं उपयोगी लगे। इन लेखों के अध्ययन से हिन्दी में एक ओर तो विज्ञान लेखन की विकास यात्रा का परिचय प्राप्त होता है तो दूसरी ओर राष्ट्रभाषा में लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध कराने के लिए प्रयासों, संघर्षों की जानकारी उपलब्ध होती है। समर्पित जीवन जीने वाले ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक, शिक्षाविद, अनुसंधानवेत्ता एवं प्रखर चिंतक प्रो. रामचरण मेहरोत्रा की एक मौलिक अवधारणा अंग्रेजी माध्यम से विज्ञान पढ़ने-पढ़ाने वालों तथा उस मनोवृत्ति से होने वाले दुष्परिणामों को उजागर करती हुई एक ऐसे तथ्य को रेखांकित करती है जिससे यदि आज की शिक्षा प्रणाली कुछ सबक ले सके तो हमारे देश की वैज्ञानिक खोजों को नई गरिमा प्राप्त हो सकेगी–

अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी लीक पीटने में तो सक्षम हो जाते हैं, परन्तु उनमें उच्च कोटि के अनुसंधान कार्यों के लिए आवश्यक मौलिक ज्ञान का अभाव रहा आता है। उनका मस्तिष्क नवीन दिशाओं में चिन्तन करने एवं नूतन कार्यों के लिए सक्षम नहीं होता। हमारी वैज्ञानिक खोज में मौलिकता की कमी का यह एक विशेष कारण है।

[घनश्यामदास पालीवाल, प्रशासनिक सचिव-कुलपति, कुलपति सचिवालय

विशेषांक की उपादेयता

विज्ञान प्रगति के अक्तूबर-नवम्बर 1989 अंक में हिन्दी में विज्ञान लेखन पर विशेष सामग्री को संपादक महोदय ने समय की आवश्यकता समझकर विज्ञान पाठकों को उपलब्ध कराया है, जिसकी हम भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इसमें शिवगोपाल मिश्र, मनोज कुमार पटैरिया, देवेन्द्र मेवाड़ी, चन्द्र कुमार मिश्र और डा. सी.एल. गर्ग इत्यादि लेखकों के लेखों में जो सम्प्रेषणीय विचार प्रकाश में आया है उससे नवोदित विज्ञान लेखकों को एक आधार स्तंभ मिल गया है जिस पर वे विज्ञान प्रगति की ज्योति को आगे भी बनाए रख सकेंगे। इसी अंक में प्रो. रामचरण मेहरोत्रा ने एक स्थान पर कहा है कि कठिनाइयों से हार न मानकर अपने देश और समाज के उत्थान के लिए हमें इस ओर अधिक तेजी से अग्रसर होना ही चाहिए।

[1. महेन्द्र तिवारी नीरज, बेगुसरा, भोजपुर, बिहार; 2. सुरेश सिंह, नेवरा, रायपुर, मध्य प्रदेश]

अंतरिक्ष यान वायेजर

अक्तूबर-नवम्बर अंक में श्री देवेन्द्र मेवाड़ी का लेख "न जाने नक्षत्रों में है कौन" अत्यधिक पसंद आया। इस लेख को पढ़ कर ऐसा लगा जैसे सौरमंडल अभी भी रहस्यों से भरा पड़ा है और विज्ञान उनको भी अवश्य उजागर करेगा।

[1. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, 117/567 ए, [illegible] ब्लाक, कानपुर; 2. फ्रैंक राज पॉल हिटलर, मुरादाबाद; 3. रति शेखर सिंघल, अग्रवाल मार्केट, मुंजफ्फरनगर; 4. शेखर श्रीवास्तव, रायगंज, अयोध्या; 5. सोहन लाल शुक्ल, बलरामपुर, गोण्डा]

विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री

प्रो. एम.जी.के मेनन

प्रो. एम.जी.के. मेनन को विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय में राज्य मंत्री नियुक्त किया गया है। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर है जब किसी शीर्षस्थ वैज्ञानिक को यह मंत्रालय सौंपा गया है। इस मंत्रालय का भार आपको सौंपने से जितना सुखद अनुभव आम भारतीय और भारतीय वैज्ञानिक समुदाय को हुआ उतना ही सुखद आश्चर्य स्वयं मेनन ने भी उस समय अनुभव किया जब 18 दिसम्बर को प्रातः 10 बजे उन्हें इस मंत्रालय के लिये शपथ ग्रहण के लिये आमंत्रित किया गया।

बालक मोमबि कल्लथिल गोविंद कुमार मेनन का जन्म 28 अगस्त, 1928 को हुआ। आगरा और बम्बई विश्वविद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर आपने यूनीवर्सिटी आफ ब्रिस्टल से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। वहां आपको नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. सी.एफ. पावेल के सन्निध्य में कार्य करने का अवसर मिला।

प्रो. मेनन सुप्रसिद्ध भौतिक शास्त्री स्व. होमी भाभा के निकट सहयोगी रहे हैं। इससे पहले डा. मेनन इलेक्ट्रानिक्स, रक्षा अनुसंधान, विज्ञान और तकनीकी तथा योजना आयोग में वरिष्ठ पदों पर कार्य कर चुके हैं।
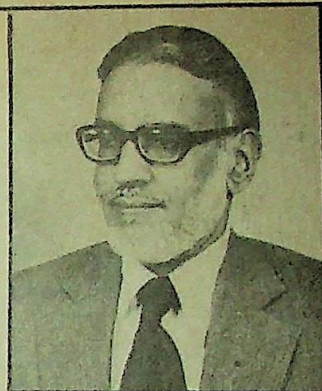
आपने टाटा इंस्टीट्यूट आफ फण्डामेंटल रिसर्च बंबई में 1955 में कार्य आरम्भ किया और 1966 में इस संस्थान के निदेशक नियुक्त हुये। 1975 में आप रक्षामंत्री के सलाहकार बने।

प्रो. मेनन को 1961 में पद्मश्री और 1968 में पद्म भूषण से विभूषित किया गया। रायल सोसायटी के सदस्य प्रो. मेनन भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष और संयुक्त राष्ट्र सलाहकार समिति के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विकास के अध्यक्ष रह चुके हैं। प्रो. मेनन को अपने वैज्ञानिक कार्यक्षेत्र में कास्मिक किरण और ऐलीमेन्ट्री पार्टीकल्स के लिये अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है।

असली दांत के विकल्प : वरिष्ठ दंत चिकित्सक डा. एफ.डी. झिरजा के अनुसार टिटेनियम के दांत प्राकृतिक दांतों की तुलना में अधिक टिकाऊ और कम हानिकर होंगे। इसके लिये जबड़े का आपरेशन करके टिटेनियम की प्लेट जबड़े में स्थापित करने के पश्चात उसमें ब्रिज विधि से दांत लगाये जायेंगे। इस विधि से दांत लगाने पर लगभग सात हजार रुपयों का खर्च आयेगा।

सीमेंट रसायन : जोधपुर सीमेंट फैक्टरी, जोधपुर के तकनीशियन, श्री डी.पी. सब्बू, ने एक ऐसे विलक्षण रसायन का आविष्कार किया है जिसको कोयले के साथ प्रयोग करने से गहरे हरे रंग का एक उत्तम कोटि का सीमेंट तैयार किया जा सकता है। श्री सब्बू द्वारा तैयार किये गये इस पेटेण्ट का नाम "बर्न साफ्ट" है। इस रसायन के प्रयोग से सीमेंट की शक्ति में 20 प्रतिशत तथा उत्पादन में 30 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसके साथ-साथ इस प्रकार निर्मित सीमेंट की लागत में 60 रुपये प्रति टन की कमी होती है। इसका कारण, इसमें प्रयुक्त होने वाला कोयला देश में पर्याप्त मात्रा में तथा अपेक्षाकृत कम दामों में आसानी से मिलना है।

तीस फुट लम्बा गन्ना : लक्ष्मीपुर (पूर्वी चम्पारण, बिहार) के एक किसान श्री त्रियुगी शर्मा ने गन्ने की एक विशेष किस्म कोलक 8001 के द्वारा 30 फुट लम्बे गन्नों को उपजा कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। श्री शर्मा को अभी कम से कम इनके 5 फुट और बढ़ने की आशा है।

तम्बाकू चबाने से कैंसर : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शल्य चिकित्सकों ने मत व्यक्त किया है कि भारत में कैंसर के मरीजों में लगभग 25 प्रतिशत की मृत्यु मुख कैंसर के कारण होती है जबकि अमेरिका में यह दर केवल 5 प्रतिशत है। मुख कैंसर का प्रमुख कारण है— निरन्तर तम्बाकू चबाना।

गर्भावस्था में सिगरेट से कैंसर : नार्वे के एक वैज्ञानिक प्रो. नायलेंडर विश्व के ऐसे पहले वैज्ञानिक हैं जिन्होंने साबित किया है कि गर्भावस्था के दौरान सिगरेट-बीड़ी पीने वाली महिलाओं के बच्चों को कैंसर होने का खतरा रहता है।

काली शहतूत से एड्स की चिकित्सा : भूतपूर्व स्वास्थ्य राज्य मंत्री सुश्री सरोज खोपर्डे ने बताया है कि शहतूत की जड़ से निकाले गये डी आक्सीजीरिमाइन तत्व के परीक्षण से पता चला है कि यह एड्स वायरस को फैलने से रोकने में सहायक हो सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि ब्रिटेन में इनविट्रो कोशिका संवर्धन में इस औषधि की उपयोगिता का पता लगाने के लिए अध्ययन किया जा रहा है। उन्होंने यह भी बताया कि इनविट्रो कोशिका संवर्धन संबंधी सुविधाएं भारत में भी उपलब्ध करायी जा रही हैं।

ग्रामों में विकलांगता अधिक : एक सर्वेक्षण से पता चला है कि इस समय देश में 1 करोड़ 20 लाख व्यक्ति शारीरिक रूप से विकलांग हैं। सबसे अधिक विकलांग व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति एक लाख जनसंख्या में 553 व्यक्ति बधिर, 304 गूंगे तथा 553 अन्धे हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में 370 बधिर, 279 गूंगे तथा 356 व्यक्ति अन्धे हैं।

टी.बी. का बढ़ता पंजा : विश्व स्वास्थ संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में प्रति वर्ष 1 करोड़ व्यक्ति क्षय रोग से पीड़ित होते हैं तथा इनमें से 3 लाख व्यक्ति प्रति वर्ष मर जाते हैं। एक अनुमान के आधार पर वर्तमान में 1.6 अरब व्यक्तियों में टी.बी. के विषाणु उपस्थित हैं। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में टी.बी. के संक्रमण का सौ गुना अधिक खतरा रहता है।

पौधों की प्यास बुझा सकेंगे आप : पौधे भी पानी मांगते हैं। हालांकि उनकी यह पराध्वनिक आवाज (20 किलोहर्त्स से ऊपर की ध्वनि) हमें सुनाई नहीं देती। उनकी इस आवाज को आप तक पहुंचाने के लिये ब्रिटेन के कृषि एवं खाद्य परिषद् के उद्यान शोध संस्थान में कार्यरत डा. हेम्लिन जान्स ने ऐसा संसूचक व संवेदी उपकरण बनाये जाने की पुष्टि की है जो आपको पौधे की प्यास का पता बतायेगा।

इस यंत्र के प्रयोग से पौधों का जल स्तर गिरते ही उनसे निकली पराध्वनिक तरंगें पौधों की पानी की आवश्यकता को इस उपकरण पर दर्शा देगी

आर्य भट्ट पुरस्कार : भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने योजना आयोग के सदस्य और अकादमी के फैलो प्रो. पी.एन. श्रीवास्तव को विकिरण जीव-विज्ञान के क्षेत्र में कैंसर रोग पर उल्लेखनीय योगदान के लिये "आर्य भट्ट" पदक से सम्मानित किया है। यह सम्मान हर तीन वर्ष बाद दिया जाता है।

डायरिया का भयावह रूप : विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक अन्य रिपोर्ट से पता चला है कि प्रति वर्ष 5 वर्ष से कम आयु के 25 करोड़ बच्चे डायरिया (दस्तों की बीमारी) के शिकार होते हैं जिनमें से 40 लाख की मृत्यु हो जाती है। इन बच्चों की मृत्यु का मुख्य कारण शरीर में पानी की कमी तथा कुपोषण होता है।

लकवे का कारण भी वायरस : बहुतायत में होने वाले रोग लकवा अथवा मल्टीपिल स्कलेरोसिस रोग के लिये उत्तरदायी वायरस की अमेरिका के दो चिकित्सकों ने खोज की है। यह वायरस बहुत कम कोशिकाओं अर्थात् 10,000 लिम्फोसाइट में से केवल एक को ही संक्रमित करता है। दो चिकित्सकों में से एक अमेरिका में बसे भारतीय मूल के डा. प्रेम कुमार रेड्डी हैं तथा दूसरे पोलैंड मूल के डा. हेलरी क्रोपोह्विस्की हैं। इन चिकित्सकों ने प्रयोगों में पालीमरेज चेन तकनीक का प्रयोग किया है। इस तकनीक से 1,00,000 कोशिकाओं में से एक वायरस को ढूंढा जा सकता है लेकिन इस क्रिया में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है क्योंकि रक्त के नमूनों में उपस्थित थोड़े से भी दूषण को 'पी सी आर' आवर्धित कर वायरस की सी उपस्थिति का आभास कराता है।

सौर ऊष्मा पम्प : भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि. हैदराबाद के वैज्ञानिकों ने एक सौर ऊष्मा पम्प विकसित किया है जो गहरे कुओं से सीधे पानी निकालने के लिये उपयोगी है। ग्रामीण क्षेत्रों में पेय जल प्राप्त करने के उद्देश्य से सामान्य धूप वाले दिन में यह 50 मी. तक गहरे कुओं से लगभग 50,000 ली. पानी निकाल सकता है। पानी निकालने की दर पानी की गहराई पर निर्भर करती है। यह बिजली विहीन पम्प ग्रामीण क्षेत्रों के उपयोगी सिद्ध होंगे।

शव का गुर्दा काम दे सकता है

गुर्दे का रोग विश्व के सभी देशों में विद्यमान है। इस रोग का स्थायी उपचार गुर्दा प्रत्यारोपण है। इस प्रक्रिया में किसी स्वस्थ व्यक्ति का एक गुर्दा निकाल कर रोगी के शरीर में लगा दिया जाता है। इस प्रकार दोनों व्यक्ति एक-एक गुर्दे के सहारे अपना जीवन चलाते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया मंहगी होने के साथ-साथ अमानुषिक भी है। गरीबी के कारण कितने ही व्यक्ति अपना एक गुर्दा बेचने के लिये तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार विश्व में एक गुर्दे के सहारे जीने वाले व्यक्तियों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही हैं। इसके अतिरिक्त गरीब रोगियों को तो गुर्दा न मिलने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है।

इस संबंध में गुर्दा रोग के प्रख्यात विशेषज्ञ डा. के.एस. मणिका ने बताया कि गुर्दे की बीमारी का सबसे उपयुक्त इलाज यह होगा कि रोगी में तुरंत मरे हुये शव का गुर्दा प्रत्यारोपित कर दिया जाये। उन्होंने यह भी बताया कि देश में शवों से निकाले गये अब तक 14 गुर्दों का प्रत्यारोपण किया गया है। शव से निकाले गये गुर्दे तुरन्त लगाने पड़ते हैं क्योंकि अभी उनके परिरक्षण की सुविधा नहीं है।

हिन्द महासागर का पहला भूगर्भीय मानचित्र

मास्को की नोवोस्ती प्रेस एजेन्सी की एक रिपोर्ट से पता चला है कि भारत, सोवियत संघ, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी जर्मनी, जापान और दक्षिण अफ्रीका के 100 से अधिक वैज्ञानिकों ने मिल कर हिन्द महासागर की अपनी तरह की पहली "भूगर्भीय भू-भौतिकीय" मानचित्रों की एक पुस्तक तैयार की है। 150 पृष्ठ की इस पुस्तक में हिन्द महासागर की तलहटी की संरचना के साथ ही उसके चुम्बकीय एवं गुरुत्वाकर्षणीय क्षेत्रों, पृथ्वी के भीतर से ताप की निकासी तथा भूकम्पीय एवं ज्वालामुखीय गुणों को दर्शाया गया है। यह पुस्तक सोवियत संघ के डा. उदीनन्सेव की अध्यक्षता में तैयार की गयी है। आशा है इस वर्ष के अंत तक यह पुस्तक बाजार में उपलब्ध होगी। इस पुस्तक से अन्य महासागरों के भी "भूगर्भीय भू-भौतिकीय" मानचित्र तैयार करने की प्रेरणा मिलेगी।

अब बुढ़ापा देर से आयेगा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राणि विज्ञान विभाग के वैज्ञानिक ऐसे अनुसंधान में लगे हुए हैं जिससे जीने की क्रियाशीलता अपेक्षित रूप से बनी रहे, ताकि लम्बे समय तक युवावस्था को बरकरार रखा जा सके। इस संबंध में, प्रमुख प्राणि वैज्ञानिक प्रो. एम.एस. कानूनगो ने 25 वर्ष के अनुसंधान के पश्चात बताया है कि कैंसरकारी "आन्कजीन" वृद्धावस्था में अधिक क्रियाशील हो जाती है। चूहों पर किये गये अनुसंधानों में उन्होंने पाया कि इस जीन के क्रियाशील हो जाने से शरीर की कोशिकाओं में वृद्धि होने लगती है। ये आगे चल कर कैंसर तथा ट्यूमर जैसी बीमारियों का कारण बनती हैं। प्रो. कानूनगो के अनुसार हार्मोनों द्वारा जीन की क्रियाशीलता नियंत्रित की जा सकती है।

इस संबंध में हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो. एस.एन. सिंह ने अनुसंधान किये और बताया कि वृद्धावस्था में चूहों के शरीर में लैक्टेड डिहाइड्रिटेज समूह का एन्जाइम का समरूप एम-4 एन्जाइम हृदय की आक्सीजन की आवश्यकता को नियंत्रित करता है। अतः इस एम-4 एन्जाइम की कमी हो जाने से हृदय कार्य करना बंद कर सकता है। प्रो. सिंह ने यह भी बताया है कि वृद्ध चूहों को स्टाडायोल नामक हार्मोन की सुई लगा कर उसमें एम-4 एन्जाइम की उपयुक्त मात्रा बरकरार रखी जा सकती है।

परमशून्य के और निकट

हेलसिंकी टैक्नोलॉजी विश्वविद्यालय के निम्न तापक्रम प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने परमशून्य से केवल डिग्री के दो अरबवें भाग से ऊपर का तापमान पा लेने का दावा किया है। अनुसंधान टीम के प्रमुख औल्ली लौनासम्मा के अनुसार निम्न तापक्रम का इससे पहले का कीर्तिमान परमशून्य तापमान से डिग्री के तीन अरबवें भाग से ऊपर का था। यह कीर्तिमान भी इसी प्रयोगशाला का था। इसे गिनीज बुक आफ रिकार्डस में दर्ज किया गया है।

परमशून्य ऐसा तापमान है जिसे व्यावहारिक तौर पर पाना असंभव है। भौतिक विज्ञान के अनुसार डिग्री केल्विन को परमशून्य तापमान कहा जाता है। यह शून्य से −273.15 डिग्री सेल्सियस (459.61 फेरनहाइट) का तापमान है। भौतिक विज्ञानियों के अनुसार परमशून्य तापमान पर पदार्थ के अणुओं की सारी गतियां समाप्त हो जाती हैं। अर्थात पदार्थ का आयतन शून्य हो जाता है या पदार्थ का सिद्धांतरूप से विनाश हो जाता है। निम्न तापमान की अवस्था शून्य से 150 डिग्री सेल्सियस से नीचे ताप पर पदार्थ के अणु अजीबोगरीब हरकतें करने लगते हैं। जैसे रबड़ इतना भुरभुरा हो जाता है कि वह शीशे की तरह चटखने लगता है।

भाषा संख्याओं की

भारत के कम्प्यूटर भाषाविद्, 58 वर्षीय श्री के.के.एस. गोपाल कृष्णन ने कम्प्यूटर के उपयोग से अंकों की एक ऐसी भाषा तैयार करने का दावा किया है जिसे विश्व के सभी लोग समझ सकेंगे। उन्होंने अपनी इस नई भाषा का नाम "अबासामा" रखा है।

एक किसान परिवार में जन्मे श्री गोपाल कृष्णन ने 1964 में इस भाषा पर काम करना प्रारम्भ किया था। उन्होंने 1980 में यूनिवर्सल डिजिटल कम्यूनिकेशन्स रिसर्च इंस्टीट्यूट का गठन किया जिसे अब सरकार से भी सहायता मिलती है।

इस भाषा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें प्रत्येक शब्द को जो नम्बर दिया गया है उसका अन्य सभी भाषाओं में भी वही नम्बर है। इन नम्बरों का किसी भी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है और कम्प्यूटर द्वारा इस

भाषा में लिखी गई किसी भी पुस्तक का विश्व की किसी भी भाषा की पुस्तक में अनुवाद किया जा सकता है।

भारतीय वैज्ञानिकों ने भी बनाया कुष्ठ रोग का टीका

नई दिल्ली के राष्ट्रीय रोग-प्रतिरक्षा संस्थान के निदेशक डा. जी.पी. तलवार के अनुसार भारतीय वैज्ञानिकों ने कुष्ठ रोग का टीका बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है। इस टीके की एक विशेषता यह भी है कि इससे तपेदिक रोग से भी सुरक्षा हो सकती है। इस टीके के परीक्षण दिल्ली के सफदरजंग तथा राम मनोहर लोहिया अस्पताल में चल रहे हैं।

चन्द्रमा से उड़ान सम्भव

रूसी वैज्ञानिकों ने संभावना व्यक्त की है कि 21वीं सदी के आरंभ होते-होते मनुष्य न केवल चन्द्रमा के प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग शुरू कर देगा बल्कि वह चंद्रमा का प्रयोग दूसरे ग्रहों के लिए 'उड़ानस्थल' के रूप में भी करेगा। वैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि कुछ स्थितियों में चन्द्रमा पर पाये जाने वाले पदार्थों का प्रयोग ऐसे स्टेशनों के निर्माण में भी लाभदायक सिद्ध होगा जो पृथ्वी से दूर गए मनुष्यों की रक्षा विकिरण से करेंगे। वैज्ञानिकों ने यह भी अनुमान लगाया है कि कास्मोनोटों के लिए "मीर" जैसे अंतरिक्ष स्टेशन को यदि तुल्यवाली कक्षा में रखा जाए तो उसमें 80, 90 टन बचाव करने वाले पिंड की आवश्यकता होगी ताकि उस पर काम करने वाले दल को विकिरण से बचाव के लिए ढाल बनाये जा सकें। समझा जाता है कि चन्द्रमा पर पाये जाने वाले पदार्थ इस तरह के स्टेशन बनाने के लिए अधिक लाभदायक होंगे क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी से 80 गुना हलका है और चन्द्रमा की सतह पर गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से 6 गुना कम है।

बारानी भूमि के लिये गेहूं की नई किस्म

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई सी ए आर) द्वारा जारी एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि गेहूं की एक नई किस्म एच डी आर 77 किस्म, असम, पश्चिम बंगाल, दक्षिणी बिहार और अरुणाचल प्रदेश के बारानी इलाकों में देर से बोने के लिये उपयुक्त पायी गयी है। इस नई किस्म से, लोकप्रिय किस्म "सोनालिका" की अपेक्षा 11 प्रतिशत अधिक पैदावार होती है। बारानी क्षेत्रों में अनुकूल परिस्थितियों में इस किस्म से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक पैदावार प्राप्त की जा चुकी है। इसमें दाने अंबर रंग के कठोर और मध्यम आकार के होते हैं।

मस्तिष्क प्रत्यारोपण सफल नहीं

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के डा. पी. एन टंडन के अनुसार चूहों के अतिरिक्त अन्य जानवरों पर मस्तिष्क प्रत्यारोपण के प्रयोग सफल नहीं हुये हैं। वैसे भी चूहों पर किए गए प्रयोगों से जो चमत्कारिक परिणाम निकले थे वे मनुष्य पर किए गए प्रयोगों से प्राप्त नहीं हो रहे हैं। प्रायोगिक आधार पर अब तक जितने भी मनुष्यों में, मस्तिष्क प्रत्यारोपण किया गया है, वे लगभग सभी असफल रहे हैं।

दर्द अभी भी अजेय

बोस्टन (अमेरिका) के डा. डब्ल्यू.एच. स्वीट, स्वीडन के डा. व्योर्ग. मेयरसन, शिकागो के डा. एस. म्यूलन और नई दिल्ली के डा. सुरेन्द्र सिंह सैनी तथा अन्य न्यूरो सर्जनों ने स्वीकार किया कि चिकित्सा के क्षेत्र में अकल्पनीय प्रगति और विकास के बावजूद भी शरीर के विभिन्न भागों में विभिन्न कारणों और रोगों से होने वाले दर्द को कम करने में आधुनिक चिकित्सा पद्धति ने सफलता तो अर्जित की है किन्तु इसका पूरी तरह उन्मूलन नहीं कर पायी है।

न्यूरो सर्जनों ने इस बात को भी माना है कि अब तक के ज्ञात दर्दों में ट्रायजेमिनल न्यूरॅल्जिया रोग में सबसे भयावह दर्द होता है। यह दर्द बिजली के झटके की तरह लगता है। लेकिन कुछ ही क्षणों तक रहता है। रोगी एक दिन में 5-6 बार इसके हमले को झेलता है। यह दर्द चेहरे को प्रभावित करता है। इस दर्द से बचने के लिये बोस्टन के डा. स्वीट ने "माइक्रो वैस्क्युलर डिकम्प्रेशन" नामक पद्धति विकसित की है। भारत के डा. सुरेन्द्र सिंह सैनी ने भी इस प्रकार के दर्द निवारण के लिये "एनहाइड्रस ग्लाइसरोल को इंजेक्ट करके उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त किये हैं। ग्लाइसरोल के एक इंजेक्शन के बाद 677 में से 68 मरीज दो वर्ष तक दर्द के हमले से बचे रहे जबकि 2.1 प्रतिशत मरीजों ने 10 वर्षों तक दर्द के हमलों की शिकायत नहीं की।

बढ़ रहा है कैंसर रोग

कैंसर विशेषज्ञ डा. सुधीर बहादुर के अनुसार कैंसर के कुल रोगियों में 40 प्रतिशत रोगी सिर और गर्दन के कैंसर से पीड़ित होते हैं। भारत में लगभग 15 लाख कैंसर-रोगी हैं, जिनमें प्रतिवर्ष 50 हजार की दर से वृद्धि हो रही है। कैंसर रोगियों की संख्या में इस वृद्धि का मुख्य कारण धूम्रपान और तम्बाकू का सेवन है। धूम्रपान से फेफड़ों में भी कैंसर होता है।

कैंसर रोग की पहचान के लिए विशेष लक्षण नहीं होते, फिर भी गला खराब होना, थूक निगलने में कठिनाई होना, वजन कम होना, गर्दन में कम्पन होना आदि लक्षणों से कैंसर की पहचान की जा सकती है। समय पर रोग की पहचान न होने के कारण लगभग 87 प्रतिशत रोगी अस्पताल में उस समय पहुंचते हैं, जब रोग काफी बढ़ चुका होता है।

धूम्रपान और मधुमेह घातक

अमेरिका में मेयो क्लीनिक के न्यूरो सर्जन प्रो. डेविड जी. विएपग्रास का कथन है कि मस्तिष्क के जख्मी होने की दशा में रक्त वाहिकाएं सिकुड़ जाती हैं जो लकवे, गूंगेपन या अंधेपन का कारण बन सकती हैं।

प्रो. डेविड का यह भी कथन है कि धूम्रपान मस्तिष्क के लिये हानिकारक है क्योंकि धूम्रपान का सीधा संबंध रक्त प्रदूषण से है। इसी कारण मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति में मस्तिष्क की बीमारियों के होने की अधिक संभावनायें रहती हैं।
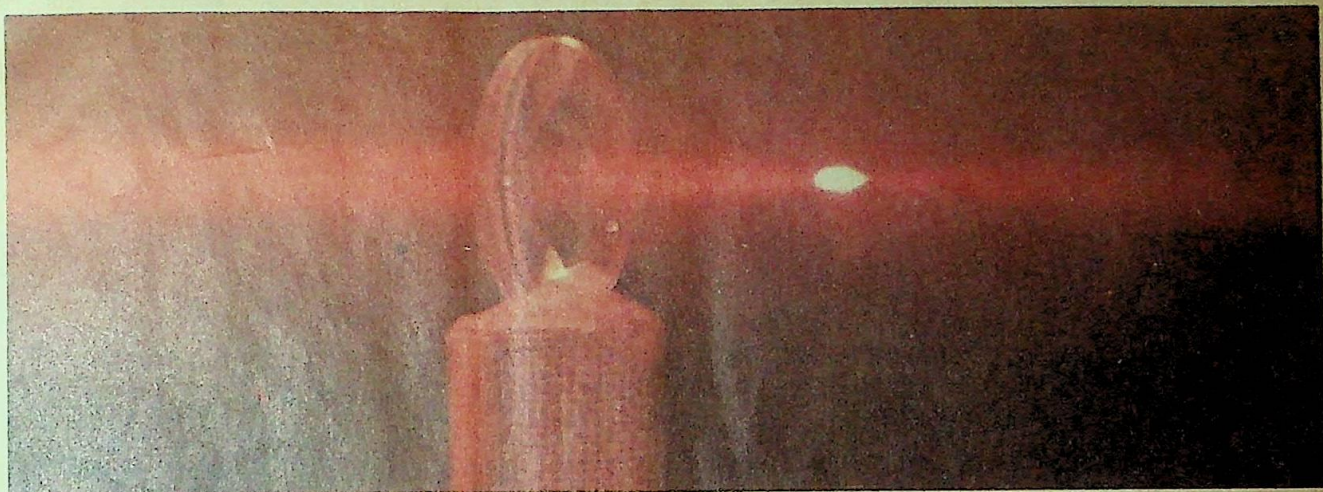
प्रकाशीय चाकू

विलियम अमोस

एक जमाना था जब प्रकाश सूक्ष्मदर्शी का बहुतायत में प्रयोग होता था और करीब 20 वर्ष पूर्व ऐसा कुछ हुआ कि इनके प्रयोग को एकदम नकार दिया गया। लेकिन इनमें थोड़े से परिवर्तन से अथवा इनके इलेक्ट्रानिकी के सम्पर्क में आते ही अब इन भूले-बिसरे सूक्ष्मदर्शियों के भी दिन फिर गये हैं। क्योंकि इनकी संवेदनशीलता इतनी अधिक हो गई है कि इनसे 25 नैनोमीटर चौड़ी (प्रकाश किरण की लम्बाई का 20 वां हिस्सा) वस्तुओं को भी सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में देखा जा सकेगा।

अभी तक सामान्य कोशिकाओं को इतने बड़े रूप में देखाने में बड़ी कठिनाई होती थी, क्योंकि उसके अन्य अवयवों के बीच में आ जाने से कोशिका ठीक से फोकस नहीं हो पाती थी और बिब धुंधला हो जाता था। इस स्थिति से निपटने के लिये जैव चिकित्सा अनुसंधान में ही नहीं वरन् रोग निदान विधियों में भी सही स्थिति के ज्ञान के लिये अब किसी ऊतक या कोशिका का अध्ययन करने से पहले ही उसमें एक चमकीला संकेतक, जिसे "खोजी अणु" कहते हैं, डाल दिया जाता है।

लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि जिस "प्रतिदीप्त" माइक्रोस्कोप से इस चमकदार अणु की स्थिति का पता लगाया जाता है उसमें भी बिम्ब धुंधला दिखाई देता है।

कैसे हटा धुंधलापन?

इस समस्या का समाधान 'कोनफोकल इमेजिंग' द्वारा किया गया है। इस विधि में सिर्फ उसी बिन्दु को फोकसित किया जाता है जिसका अध्ययन करना होता है। इसके लिये माइक्रोस्कोप में एक
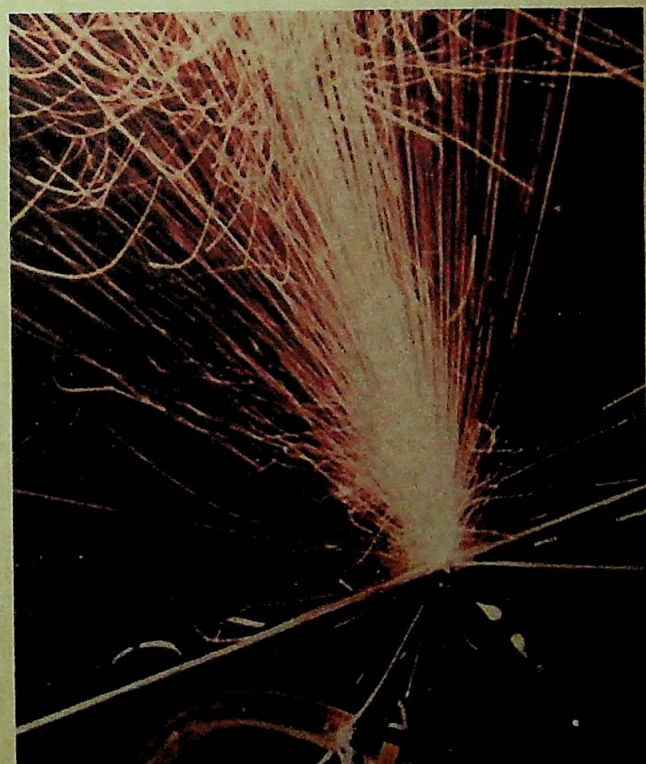
स्टेनलेस स्टील को काटते हुये उच्च वेग लेसर

''अपारदर्शी स्क्रीन'' लगायी जाती है जिसमें ''कोनफोकल अपरचर'' या छिद्र होता है, इसके प्रयोग से एकदम सही और स्पष्ट बिम्ब प्राप्त होता है। लेकिन यहां पर एक अड़चन बार-बार आती थी, वह यह कि एक बार में केवल एक ही बिंदु देखा जा सकता था, कोशिका या ऊतकों को पूरी तरह देखने के लिये उसके बिन्दु-बिन्दु पर लेंस फोकस करना पड़ता था। अतः इस प्रकार के माइक्रोस्कोप ज्यादा प्रचलित नहीं हुये। साथ ही इनमें शक्तिशाली आर्क लैम्प के उपयोग के बावजूद भी फोकसित बिन्दु पर इतनी चमकदार रोशनी नहीं पड़ती थी कि बिन्दु का बिम्ब स्पष्ट बन सके।

इसी बात को ध्यान में रखते हुये पिछले दशक में अनेक कोनफोकल माइक्रोस्कोप बनाये गये जिनमें रोशनी का स्रोत 'लेसर' था। लेसर के उपयोग से इतनी ऊर्जा वाली रोशनी मिलती है कि चमक या प्रतिदीप्ति वाले अध्ययन भी आसानी से किये जा सकते हैं। इन सर्वोत्तम डिजाइन वाले माइक्रोस्कोपों में वस्तु पर रोशनी पुंज दर्पणों द्वारा घुमाया जाता है ताकि रोशनी पुंज एक ही जगह रहे और उसे घुमाने की जरूरत ही न पड़े।

स्कैनर हैड

इस समस्या के समाधान के लिये मेडिकल रिसर्च कौंसिल (एम आर सी) की कैम्ब्रिज स्थित मॉलीक्यूलर बायोलाजी लेबोरेटरी में कार्यरत चार वैज्ञानिकों,जान व्हाइट, ब्राड ऐमोन, रिचर्ड डर्बिन और मिक फोर्डहाम ने एक ऐसे उपकरण की खोज की जिसका आज सम्पूर्ण विश्व में प्रयोग किया जा रहा है।

इस उपकरण का निर्माण ब्रिटेन की ''बायो रैड'' कम्पनी करती है। इस को माइक्रोस्कोप में अलग से जोड़ा जाता है। इस का नाम है—स्कैनर हैड।

स्कैनर हैड में आर्गन गैस के आयनों से बनी छोटी लेसर होती है। ये लेसर पुंज तेजी से कम्पन करते हुये छोटे-छोटे दर्पणों की सहायता से अध्ययन के लिये रखे गये नमूनों का पल भर में चप्पा-चप्पा छान मारती है।

उपकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह इन्वर्टेड प्रकार के माइक्रोस्कोप सहित किसी भी माडल के माइक्रोस्कोप के अभिनेत्र लैंस में फिट किया जा सकता है।

यदि अध्ययन के लिये रखी गई वस्तु चमकीली हो तो लेसर पुंज उससे टकराकर वापस स्कैनर में लौट जाती है। और कोनफोकल छिद्र से होती हुई डिटेक्टर, जो वास्तव में फोटोमल्टीप्लायर ट्यूब के रूप में होता है, में पहुंच जाती है। यहां पर इस पुंज को कई गुना बड़ा किया जाता है और उसके आधार पर प्राप्त अंकीय संकेतों को माइक्रो-कम्प्यूटर में विशेष रूप से डिजाइन किये गये फ्रेमस्टोर बोर्ड पर संकलित किया जाता है। यहां पर विविध कोणों से वस्तु के प्रकाशीय काट उभार कर प्राप्त चित्रों की लम्बाई चौड़ाई और गहराई दर्शाने वाली तस्वीरों में परिवर्तित करने के साथ ही कई प्रकार से निरखने-परखने की सुविधा होती है।
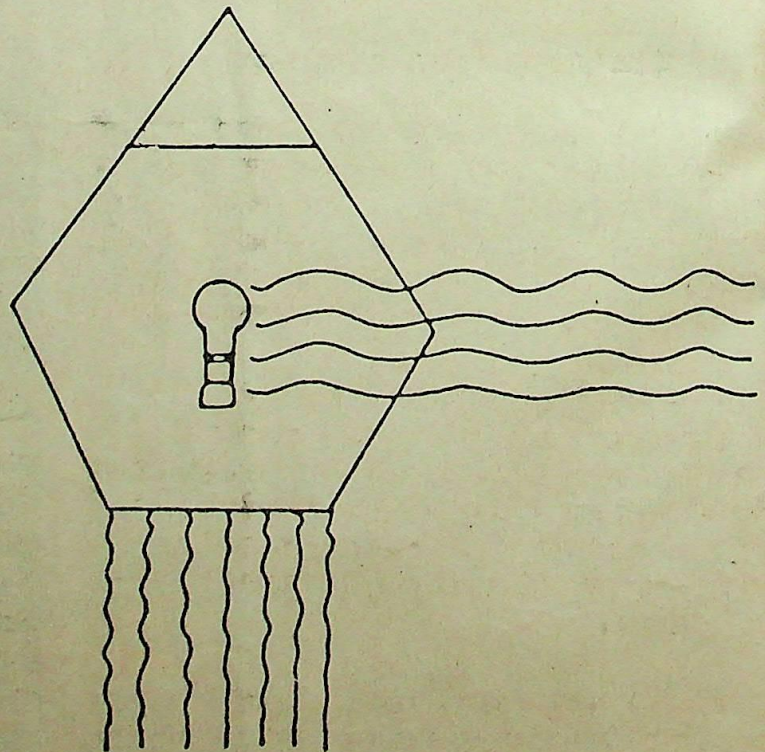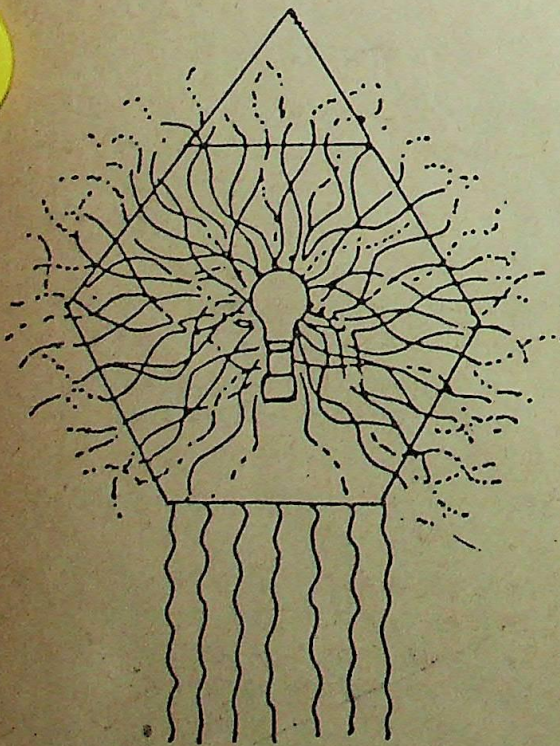
साधारण प्रकाश चारों ओर फैल जाता है जबकि लेसर किरण पुंज, सेना की तरह एक जुट हो कर चलती है
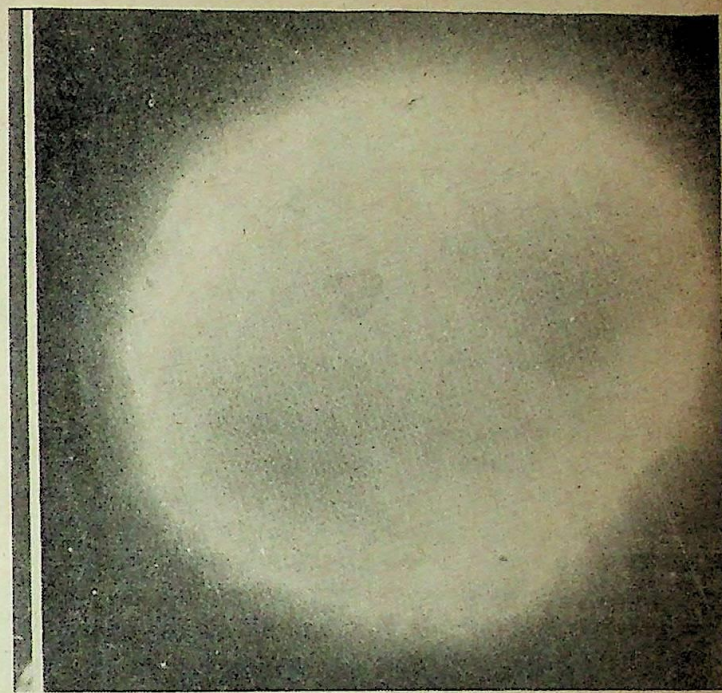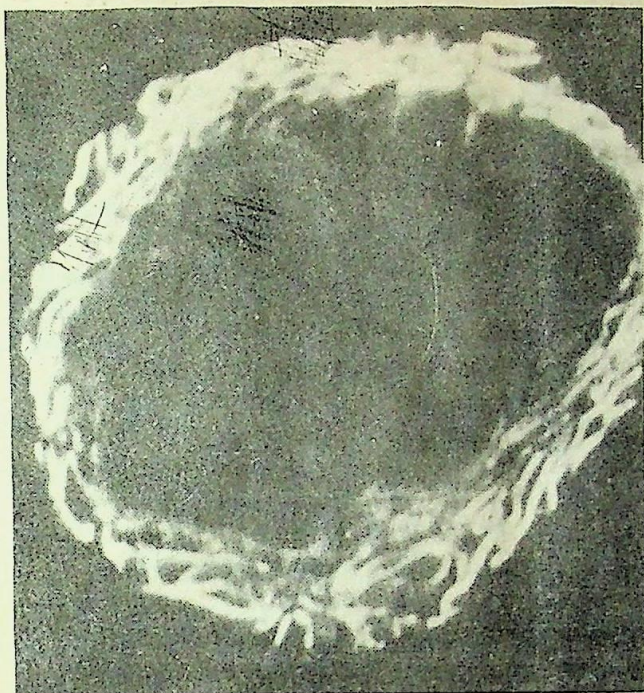
ल्यूकीमिया रोगी के रक्त से ली गई सफेद रक्त कोशिका : (बायें) फ्लोरीसेंट एन्टीबाडी से स्टेन करने के बाद कोनफोकल माइक्रोस्कोप से लिया गया चित्र तथा (दायें) परम्परागत फ्लोरीसेंट माइक्रोस्कोप से लिया गया चित्र

कोनफोकल बिम्ब के उपयोग

इससे लगभग हर प्रकार के जैविक नमूनों की जांच की जा सकती है। सबसे पहले इसका उपयोग कोशिका विभाजन देखने के लिये किया गया था। त्वचा जैसे बाह्य ऊतक तथा गुर्दे जैसे आन्तरिक अंगों की जांच में भी इस युक्ति का उपयोग किया जाता है। चंद मिमी. की गहराई में स्थित भ्रूणों की प्रत्येक कोशिका का इस विधि से, भ्रूण को बिना काटे या छेदे, ही परीक्षण किया जा सकता है।

चित्र में रक्त कैंसर (ल्यूकीमिया) रोगी के रक्त से अलग की गई सफेद सिस्टर्नी कोशिका, जिसे एम आर सी के डा. गोर्डन कोच ने एक एन्टीबाडी से उपचारित किया था, दर्शाई गई है। कोनफोकल बिम्ब में यही सिस्टर्नी कोशिका अनेक संकेन्द्रीय रेखाओं के रूप में दिखायी देती है। कोनफोकल बिम्बों में वस्तु का इतना विस्तार हो जाता है कि उसकी व्याख्या के लिये उनकी इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप से तुलना करनी पड़ती है।

इस विधि से सजीव कोशिकाओं को उनके ऊतकों से निकालने, सेक्शन काटने और स्लाइड बनाने आदि की झंझटों के बिना ही जांचा जा सकता है। यह विधि कोशिकाओं की बायोप्सी में सबसे अधिक उपयोगी होगी।

विशेषतायें

सभी प्रणालियों में कोनफोकल छिद्र बहुत छोटा अर्थात 10-20 मिमा. तक (—1 माइक्रोन एक इंच का हजारवां हिस्सा) होता है। लेकिन इस माइक्रोस्कोप, में बड़े अपरचर या छिद्र का प्रयोग भी किया जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी खूबी तो यह **है** कि इस छिद्र को इच्छानुसार छोटा-बड़ा किया जा सकता है।

स्कैन रहैड में स्कैनिंग के लिये लैंसों की जगह दर्पण का प्रयोग किया जाता है जिससे सभी तरंगदैर्ध्य के प्रतिबिम्ब देखे जा सकते हैं।

अब वो 'समय' आ गया है कि जब कोनफोकल माइक्रोस्कोप भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला से जीव विज्ञान की प्रयोगशाला तक तथा वहां से भी तेजी से अस्पतालों की ओर चल पड़ा है।

किसी एक बिन्दु को हर कोण से परखने की इस प्रणाली के अनेक दूरगामी उपयोग भी हो सकते हैं।

कोनफोकल माइक्रोस्कोपिक तकनीकी विकास का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है क्योंकि इसके विविध क्षेत्रों में उपयोग की भी अपार संभावनायें हैं। हर तरह से कोनफोकल माइक्रोस्कोप का उपयोग दिलचस्प तो है ही, फलदायक और आसान भी है।

[डा. विलियम अमोस, लेबोरेटरी आफ मॉलीक्यूलर बायोलाजी, मेडिकल रिसर्च कौंसिल, कैम्ब्रिज, इंग्लैंड]

शुक्र पर निवास!

वासुदेव प्रसाद यादव

शुक्र (वीनस) के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास दो महान नामों से आरम्भ होता है: गैलीलियो तथा लोमोनोसोव। गैलीलियो ने 1610 में सर्वप्रथम इस ग्रह की कलाओं की खोज की। लोमोनोसोव ने 1761 में इस ग्रह पर वायुमंडल की उपस्थिति सिद्ध की। लोमोनोसोव की खोज के पश्चात लगभग दो शताब्दियों तक वीनस (शुक्र ग्रह) संबंधी ज्ञान का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ।

शुक्र ग्रह के चारों ओर बहुत ही घना वायुमंडल है। उसमें इतने अधिक बादल हैं कि यह ग्रह सफेद रूई से पूरी तरह लिपटा प्रतीत होता है– कहीं कोई "छेद" नहीं। यदि वहां कोई जीव रहते भी होंगे तो उन्हें इस बात का अनुमान तक नहीं होगा कि उनके आसपास नीला आकाश है, सूर्य है, तारे हैं। सदियों से खगोलविज्ञानी दिमाग लड़ाते आये थे कि इस सफेद आवरण के नीचे क्या है? सभी इस बात पर सहमत थे कि शुक्र पर खासी गर्मी होनी चाहिए, क्योंकि वह सूर्य के अधिक समीप है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना था शुक्र ग्रह सारा का सारा एक महासागर है। वहां आकाश से अनवरत वर्षा होती रहती है। मतलब चारों ओर पानी ही पानी है। कुछ का कहना था कि वहां पानी कब का सूख चुका है, शुक्र ग्रह तपता शुष्क रेगिस्तान है। कुछ अन्य वैज्ञानिक बीच की बात करते थे। उनका कहना था कि वहां शायद वह सब है, जो पृथ्वी पर है। सागर और मरुभूमि, पर्वत और वन। गर्मी के कारण खूब घनी हरियाली है। बियाबान जंगलों में आश्चर्यजनक जानवर रहते हैं, काली घटाओं तले अद्‌भुत जीव उड़ते हैं। लेकिन इन अटकलों में क्या सही है क्या गलत– यह जान पाने का कोई उपाय नही था। क्योंकि टेलिस्कोप में सफेद रूई का गोला ही नजर आता था।

शुक्र ग्रह पर प्रेषित की गयी तथा उससे परावर्तित रेडियो तरंगों की सहायता से ग्रह के घूर्णन की दिशा निर्धारित हुई तथा उससे दिवस की अवधि भी ज्ञात हुई। शुक्र ग्रह का एक वर्ष दो दिन-रातों से बनता है, और प्रत्येक दिन-रात पृथ्वी के 118 दिन-रात के बराबर होते हैं। इस ग्रह पर कोई भी मौसम नहीं होता।

जिज्ञासा शांति तथा अटकलों से निपटने के लिये वैज्ञानिकों ने राकेटों की मदद से स्वचालित यंत्र शुक्र पर भेजे। इन स्वचालित यंत्रों को अंतरग्रहीय स्वचालित स्टेशन कहते हैं। इन स्टेशनों को शुक्र तक पहुंचने में तीन महीने लगे। पहले दो स्टेशन तो शुक्र के पास से गुजर
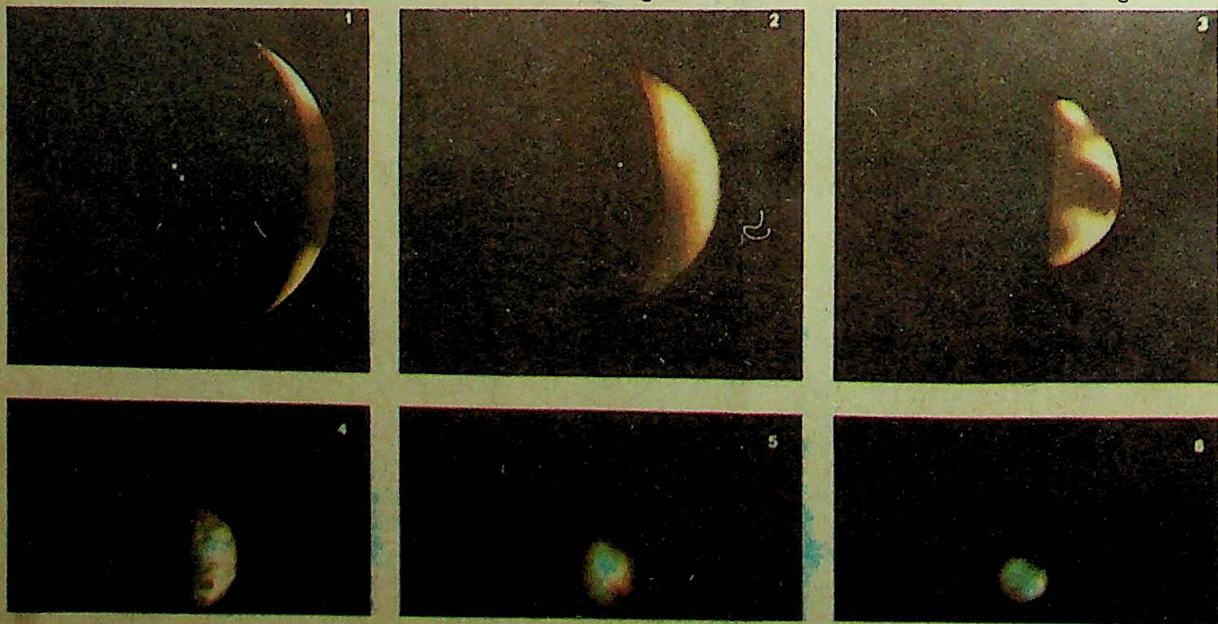
शुक्र ग्रह, जो सबसे पहले गैलीलियो ने दूरदर्शी द्वारा देखा था (1) तथा शुक्र पर दिखायी देने वाले धब्बे (2-6)

गये। यद्यपि तीसरा शुक्र पर पहुंचा, पर उसने कोई सूचना नहीं भेजी। लेकिन इसके बाद के स्टेशनों ने अपना काम बखूबी पूरा किया। शुक्र ग्रह के वायुमंडल में प्रवेश करने के बाद उनके पैराशूट खुले और वे धीरे-धीरे रहस्यमय बादलों में उतरने लगे। उतरते हुए वे रेडियो-संकेतों से यह सूचना भेजते रहे कि अपने उपकरणों से वे क्या "अनुभव कर" रहे हैं। रेडियो खगोल विज्ञानियों की खुशी का कोई ठिकाना न रहा जब उनकी बात सच निकली। स्टेशनों के उपकरणों ने यह दर्शाया कि शुक्र के तापमंडल की तली पर तापमान 470° सें. था यानि बिलकुल भट्ठी जैसी गर्मी। उपकरणों ने और भी बहुत सी रोचक जानकारी भेजी। शुक्र ग्रह पर सदा ऐसी ही गर्मी रहती है, दिन हो या रात, जाड़ा हो या गर्मी– शुक्र की वायु पृथ्वी की वायु से दसियों गुनी अधिक घनी है और वह बिल्कुल दूसरे तत्वों से बनी है। मनुष्य के लिए तो वह जहरीली है। दो स्टेशनों ने तो शुक्र की तपी सतह पर उतरने के बाद अपने चारों ओर के दृश्य के फोटो खींचे और दूरदर्शन की मदद से हमें शुक्र का धरातल और उसके पत्थर दिखाये।

इन अंतरिक्ष यानों द्वारा भेजी गई सूचनाओं से पता चला कि चारों ओर एक जैसा, रंगहीन पत्थरों भरा मैदान है। न कहीं पानी, न कहीं कोई झाड़ी, जीवन का कहीं कोई चिन्ह नहीं है। बस, निश्चल पत्थर ही पत्थर हैं। सिर के ऊपर गहरी सुरमई घटाओं की अमोघ चादर तनी हुई लगती है। प्रकाश धूमिल है, कहीं कोई छाया नहीं। हवा धुंधली है, जैसे कि उसमें हल्का धुंआ उड़ रहा हो। दूर के पत्थर इस धूसर धुंधलके में विलय हो जाते हैं। क्षितिज दिखायी नहीं देता।
यह चंद्रमा और बुध जैसा एकदम गतिहीन ग्रह नहीं है। वहां हवा धीरे-धीरे चलती है लेकिन पृथ्वी की तरह हवा के झोंके नहीं आते।

पायोनियर द्वारा लिया गया भूमण्डल पर वर्धित शुक्र का मानचित्र, जो उसके विशिष्ट गुण सही अनुपात में दर्शाता है (ऊपर और मध्य का चित्र उत्तर से तथा नीचे का चित्र दक्षिण से लिया गया है)

ऐसा कंपन सा प्रतीत होता है मानों विशाल नदी के तली पर खड़े हों और वह नदी शांत, मंथर गति से बह रही हो। छोटे-छोटे कंकड़ इस "बहाव" में अलसाये से लुढ़कते-पुढ़कते हैं। धुंधलके में कहीं-कहीं धीमे-धीमे चलती मटमैली धाराएं सी दिखाई पड़ती हैं। यह शायद धूल है। यदि दूर से देखें तो पत्थर डोलते प्रतीत होते हैं, जैसे पृथ्वी पर तब होता है जब अलाव से उठती गर्म हवा के पार दिखायी देता है अर्थात शुक्र ग्रह में वायु की असाधारण सघनता का स्पष्ट आभास होता है।

शुक्र के बादलों की ऊपरी सतह पर इतनी गर्मी नहीं है। वहां वायु पृथ्वी की सतह की वायु जितनी होती है। शुक्र का वायुमंडल कुछ हद तक हमारे महासागर जैसा ही है। हो सकता है उसमें भी सतह के पास तैरते हुए जीना संभव हो। पृथ्वी के महासागर में भी तो मछलियां तैरती हैं। उनमें बहुतों को यह पता तक नहीं कि तली भी है। वे कभी तली पर नहीं जाती। वे जीवन भर तैरती रहती हैं और जल की सतह के पास ही जाती हैं। संभव है शुक्र ग्रह पर बादलों के ऊपर ऐसे सूक्ष्म रोयेंदार जीव रहते भी हों। इन संभावनाओं की पुष्टि के लिये ही शुक्र

शुक्र की दूरदर्शी द्वारा देखी गई विभिन्न अवस्थायें : जब शुक्र पृथ्वी से न्यूनतम दूरी पर होता है तो उसका अंधेरा भाग पृथ्वी की ओर होता है।

ग्रह का अध्ययन आवश्यक हो गया था।

अमेरिकी स्वचालित स्टेशन ने शुक्र की परिक्रमा करते हुये रेडियो लोकेटर की सहायता से पहाड़ और मैदान की उपस्थिति से अवगत कराया। सोवियत स्टेशन, शुक्र ग्रह की उड़ानें भर रहे हैं। हर नया स्टेशन इस आश्चर्यजनक ग्रह के बारे में नयी जानकारी भेजता है।

व्यापक खोज

अंतरिक्ष युग को आरम्भ हुए जब चार वर्ष बीत चुके थे तब शुक्र की दीर्घकालीन यात्रा पर एक सोवियत स्वचालित स्टेशन रवाना हुआ। 1965 में इसी के पद चिन्हों पर दो अन्य यान गये। इनमें से एक– "वीनस-3"–ग्रह तक पहुंचा। अंतरिक्ष विज्ञान के इतिहास में, सर्वप्रथम अन्तरग्रहीय उड़ान सफल हुई।

प्राप्त अनुभव के आधार पर वैज्ञानिकों ने एक वर्ष के अंदर ही शुक्र के वायुमंडल से संबंधित प्रयोग किये। यह प्रयोग "वीनस-4" द्वारा पूर्ण किया गया। इसके अवतरण उपकरण ने शुक्र के वायुमंडल में प्रवेश करके, पैराशूट द्वारा अपना अवतरण जारी रखा। इस उड़ान के पश्चात यह स्पष्ट हो गया कि ग्रह का घना आवरण लगभग पूर्णतया कार्बन डाइऑक्साइड गैस से बना है। सर्वप्रथम प्रत्यक्ष रूप से वायुमंडल के ताप, दाब व घनत्व को मापा गया।

1969 में एक साथ ही दो स्वचालित स्टेशनों "वीनस-5 और 6" ने ग्रह के विभिन्न भागों में वायुमंडल का गहराई से अध्ययन किया। कार्बन डाईआक्साइड के अतिरिक्त नाइट्रोजन, जलीय वाष्प एवम् आक्सीजन की नगण्य मात्रा भी पायी गयी। स्टेशनों ने सतह से लगभग 20 किमी. की ऊंचाई पर परिमाप किये। इस प्रकार एकत्र आंकड़े "वीनस-4" और अमेरिकी यान "मैरीनर-5" द्वारा एकत्रित आंकड़ों से पूर्णतः मेल खाते थे। अमेरिकी यान ने ग्रह के समीप उड़ान भरकर, रेडियो-प्रकाश विधि से ग्रह का अध्ययन किया। यान जब ग्रह से दूर हो जाता था, तो उसके प्रेषित्र द्वारा पृथ्वी पर भेजी जाने वाली रेडियो तरंगों के गुणों में बहुत अन्तर उत्पन्न हो जाता था। इसका कारण यह था कि ग्रह एवं "मैरीनर" की इस पारस्परिक स्थिति में संकेत वायुमंडल की गैसों में से गुजरते थे।

लेकिन अभी भी ग्रह की सतह अज्ञात थी। यह स्थिति 15 दिसम्बर 1970 तक बनी रही। 15 दिसम्बर 1970 को अज्ञात सतह पर सोवियत स्टेशन "वीनस-7" का अवतरण उपकरण उतरा।

इसी कोटि के अन्य स्टेशनों की भांति अंतरिक्ष यान "वीनस-7" भी दो मुख्य भागों से बना हुआ था– कक्षीय भाग एवम् अवतरण उपकरण। कक्षीय भाग, एक विशाल धातु से बना सिलिंडर था, जिसके अंदर स्टेशन की उड़ान के नियंत्रण यंत्र, रेडियोग्राही, प्रेषित्र तथा अन्य उपकरण लगे थे। पृथ्वी के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए स्टेशन पर एक बड़ी सी छतरी खुल जाती थी। यह छतरी एक ऐन्टेना थी।

कक्षीय भाग में परिशुद्धि इंजन यंत्र लगा था। जिसकी सहायता से स्टेशन को उसके लक्ष्य की ओर मोड़ा जा सकता था। इसी कक्ष के साथ अवतरण उपकरण लगा हुआ था।

स्टेशन के उपकरण एवं यंत्र अपनी विद्युत ऊर्जा कक्षीय विभाग में लगी बैटरी से प्राप्त करते थे। ऊर्जा के संचय की पूर्ति सौर बैटरियां करती थीं।

लगभग सम्पूर्ण उड़ान के समय स्टेशन सूर्य की ओर उन्मुख था। प्रकाशीय प्रेषित्र अपने दृश्य क्षेत्र में हर समय, सूर्य एवम् पृथ्वी को अथवा सूर्य और एक अन्य विशेष रूप से निर्धारित तारे को, रखते थे। प्रेषित्रों के आदेश पर स्वचालित यंत्र, गैसीय-अभिक्रिया द्वारा सूक्ष्म इंजन को चालू व बंद करते थे।

कक्षीय भाग का मुख्य कार्य–अवतरण उपकरण को ग्रह तक पहुंचाना था। बाद की उड़ानों में यह कार्य अधिक सरलता से किया जाने लगा। इसीलिए, नये स्टेशनों के डिजाइनरों ने अधिक ध्यान अवतरण उपकरण के निर्माण पर दिया। इसकी आकृति विशाल अण्डे जैसी थी। इस कक्ष के ऊपर एक पैराशूट कक्ष था जिसमें ऐन्टेना रखा गया था।

वायुमंडल के साथ टकराव होने पर उपकरण का गुरुत्वीय बल बढ़ जाता था– प्रत्येक पेच, प्रत्येक यंत्र का भार पृथ्वी पर उसके भार की तुलना में 300-350 गुना अधिक हो जाता था। एक बार उपकरण के समक्ष एक चोट करने वाली तरंग आ गयी जिससे इसके तथा उपकरण के बीच का ताप एकदम लगभग 11,000° तक पहुंच गया। ऊष्मारक्षी पदार्थ की मोटी परत और ताप नियंत्रण विन्यास ने उपकरण की रक्षा की। लेकिन यंत्र में तापमान सामान्य रहा।

शुक्र के वायुमंडल में प्रवेश करने पर यान की गति की तीव्रता धीमी होने लगी। 20 किमी. की दूरी तय करने के बाद शीघ्र ही उपकरण का अवतरण आरम्भ हुआ। अब उसके आगे सब कुछ अज्ञात था। ताप लगातार बढ़ता ही जा रहा था. 400^0, 450^0 तथा अंत में 475^0। अचानक तापमान का बढ़ना बंद हो गया! इसी के साथ ग्रह की तुलना में, उपकरण की गति शून्य हो गयी। इसका केवल एक ही अर्थ था– उपकरण शुक्र की सतह पर उतर चुका था। ताप लगभग 500^0 तथा दाब लगभग 100 वायुमंडल के बराबर था। इस ताप पर भट्ठी में सामान्य इस्पात गल जाता है। ऊष्मारोधी मिश्र धातुओं से बनी उपकरण की बॉडी ने ग्रह के गर्म आगोश को सहन कर लिया।

अभी तक शुक्र के सभी अध्ययन उपकरणों ने ग्रह के रात्रि भाग में अवतरण किया था। नये सोवियत अन्तर्ग्रहीय स्टेशन "वीनस-8" के अवतरण उपकरण ने शुक्र ग्रह के प्रकाशमान भाग पर कदम रखा। लेकिन उपकरण का यह दिवसीय अवतरण रात्रि भाग में किये गये अवतरणों की अपेक्षा अधिक जटिल था।

पृथ्वी एवं अंतरिक्ष-यान के बीच रेडियो सम्पर्क उनके बीच की दूरी पर निर्भर करता था। इसीलिए स्टेशन के लिए आवश्यक था कि वह शुक्र पर उस समय पहुंचे, जब ग्रह की पृथ्वी से दूरी अधिक न हो। शुक्र की कक्षा, पृथ्वी की कक्षा की तुलना में, सूर्य से अधिक समीप है। इसीलिए, इन ग्रहों के बीच परस्पर दूरी सबसे कम उस समय होती है, जब ये सूर्य के एक ओर होते हैं। इस समय हमारी ओर शुक्र का भाग पृथ्वी पर स्थित मानव को दिखायी नहीं देता है। अधिकतम समीपता प्राप्त करने के पश्चात ये ग्रह जब दूर होने लगते हैं, तो पृथ्वी से शुक्र के एक भाग को थोड़ा-सा देखा जा सकता है, जो एक नन्हें से प्रदीप्ति क्रिसेन्ट के जैसा लगता है। इसी क्रिसेन्ट भाग में उपकरण का अवतरण होना था।

शुक्र के प्रदीप्ति भाग में अवतरण की कठिनाइयां यहीं समाप्त नहीं होती। उड़ान की समाप्ति शुक्र के वायुमंडल में एक तीखी गिरावट द्वारा हुई। उपकरण, सम्भव है इस प्रकार उत्पन्न होने वाले गुरुत्वीय बल को सहन न कर पाता और बहुत अधिक टेढ़े प्रक्षेप-पथ पर उड़ान भरते हुए ग्रह के समीप से गुजर जा सकता था। इसका अर्थ यह हुआ कि उपकरण को ग्रह के समीप इस प्रकार आना चाहिए कि वायुमंडल में उसके प्रवेश का कोण निर्धारित कोण से न तो अधिक और न ही कम रहे। यही कारण था कि अवतरण स्थल सभी अन्य दृष्टिकोणों से उत्तम– शुक्र के प्रदीप्त भाग पर एक छोटा "धब्बा" सा था, जो पृथ्वी से कम दिखायी देता था।

इस लक्ष्य पर उतरना बहुत ही कठिन कार्य था। प्रक्षेप-पथ को परिशुद्ध करने के लिए यह ज्ञात होना आवश्यक है कि अवतरण के समय लक्ष्य ग्रह की स्थिति क्या होगी। खगोलविदों ने शुक्र और स्टेशन के मिलन के समय होने वाली शुक्र की स्थिति निर्धारित की। फिर भी अचूक रूप से सही अवतरण के लिए परिकलन आवश्यक थे जो उड़ान के समय पृथ्वी से शुक्र की क्रमबद्ध रेडियोस्थिति द्वारा प्राप्त किये गये।

प्रक्षेप विशेषज्ञों ने इस कठिन कार्य को सफलतापूर्वक पूरा किया। स्टेशन "वीनस-8" का अवतरण उपकरण निर्धारित स्थल पर एकदम सही उतरा।

स्वचालित प्रयोगशाला का कार्य पैराशूट द्वारा अवतरण के समय ही आरम्भ हो गया था। शुक्र के प्रदीप्त भाग पर सर्वप्रथम ताप व दाब मापे गये। इस भाग पर भी ये परिमाप रात्रि भाग में तीव्रता से परिवर्तित होते हैं।

हमारी दृष्टि से शुक्र को हमेशा छिपाने वाले बादलों ने भी काफी समय से इस ग्रह को सौरमंडल का सर्वाधिक रहस्यपूर्ण ग्रह बना रखा है। लेकिन वैज्ञानिकों की रुचि शुक्र के बादलों में भी उतनी ही है, जितनी कि बादलों के नीचे छिपे ग्रह में।
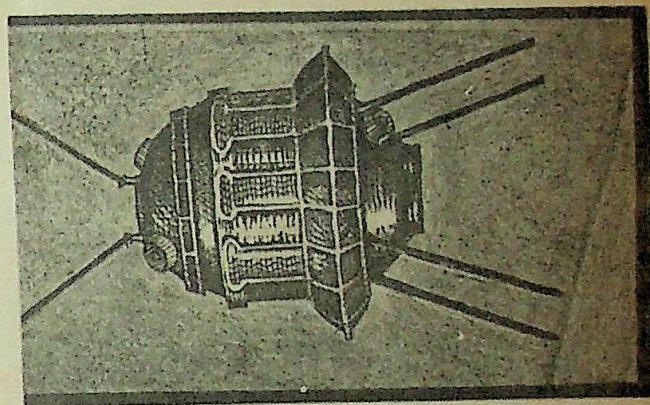
अमरीकी यान "पायनियर"

सूर्य के समीप स्थित शुक्र ग्रह इतना अधिक लाल-तप्त है कि उस पर जिंक एवम् लेड की विद्यमानता केवल द्रवित अवस्था में सम्भव है। इतने अधिक ताप एवम् दाब पर ग्रह की सतह पर जीवन असम्भव है, लेकिन, बहुत अधिक ऊंचाई पर स्थित बादलों पर स्थिति दूसरी है। यहां दाब तथा माप दोनों ही कम हैं, लगभग वैसे ही जैसे कि पृथ्वी पर। हो सकता है सम्भवतः बादलों की परत ही जीवन का पालना व पालक हो।

शुक्र ग्रह के बादलों के संरचनात्मक पदार्थों के रूप में विचित्र तत्वों को देखा गया। उदाहरण के लिए अमेरिकी खगोलविद स. रसल ने यह विचार प्रस्तुत किया कि बादलों में मर्करी के विषैले यौगिक हैं। खगोलविदों को एक बार फिर अचम्भा हुआ जब सोवियत वैज्ञानिकों ने तथाकथित त्रुटिपूर्ण जल की खोज की, जो सामान्य जल की तुलना में अधिक घनत्व वाला था।

केवल इसी प्रकार के जल से शुक्र ग्रह के बादल बने हैं– कुछ लोगों का यही कथन है। लेकिन कुछ शोधकर्ताओं ने कहा कि इन बादलों में अमोनिया भी है।

अब शुक्र के बादलों की संरचना का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण हो गया कि उसका पूर्णतया अध्ययन करने का निश्चय किया गया। "वीनस-8" अंतरिक्ष यान में, अमोनिया को ज्ञात करने वाला यंत्र लगाया गया। अवतरण उपकरण जब पैराशूट की सहायता से नीचे आ रहा था तो यंत्र ने बादलों में अमोनिया की विद्यमानता सिद्ध की।

ग्रह के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वीनस के बादल के आवरण के बारे में जानना आवश्यक था। लेकिन आप वही देख सकते हैं जो प्रकाशमान है। सम्भव है कि ग्रह पर सदैव रात्रि बनी रहती हो। अतः उपकरण के अवतरण के समय पैराशूट पर प्रकाश

(शेष पृष्ठ 32 पर)

मनुष्य ने सबसे पहले कौन सी धातु की खोज की थी?

[नीरज कुमार जैन, कुम्हारी, दुर्ग, म.प्र.]

सोना, तांबा, चांदी, सीसा, टिन, लोहा और पारा ऐसी धातुयें हैं जिनकी खोज सबसे पहले मनुष्य ने की थी। यह मान्यता है कि मनुष्य ने सोना सबसे पहले यानि पाषाण काल में खोजा

था। यह धातु अधिकतर नदियों के किनारे रेत में पायी जाती है। वैसे भी प्राचीन काल से ही नारी सोने के आभूषण पहनती आ रही है।

सोडियम के टुकड़े को पानी में डालने से उसमें आग क्यों लग जाती है?

[सन्तोष कुमार सिंह, सुलतानपुर]

सोडियम धातु की पानी से बहुत बंधुता है। अतः इसका पानी से संयोजन होते ही हाइड्रोजन गैस और उष्मा काफी मात्रा में निकलती है। इसे उष्माक्षेपी प्रतिक्रिया कहते हैं।

$$2Na + 2H_2O = H_2 + 2NaOH$$
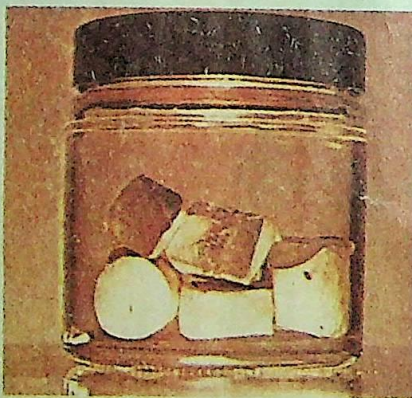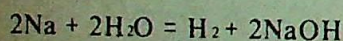
इस क्रिया में मुक्त ऊष्मा ज्वलनशील हाईड्रोजन गैस को जलाने के लिए पर्याप्त होती है। अतः इसी कारण से सोडियम के टुकड़े को पानी में डालने से आग लग जाती है। सोडियम धातु और पानी के मिलने की प्रतिक्रिया तीव्र होती है। इसलिये सोडियम धातु को हमेशा मिट्टी के तेल में या बेन्जीन में रखा जाता है जिनकी पानी में घुलनशीलता बहुत कम है।

एस.एस. सक्सेना

खतरे का निशान लाल क्यों होता है?

[आनन्द तिवारी, ताल दरवाजा, टीकमगढ़]

यह एक आम भ्रान्ति है कि खतरे का सिग्नल लाल इसलिये बनाया जाता है क्योंकि मनुष्य की आंखें लाल रंग के प्रति अत्यधिक संवदेनशील होती हैं, जबकि वास्तव में मनुष्य की आंखें स्पेक्ट्रम के पीले भाग के लिये सर्वाधिक संवेदी
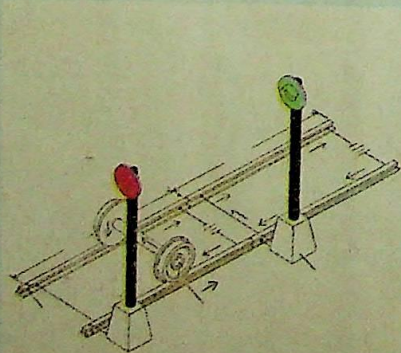
होती हैं। यद्यपि साधारण टंगस्टन का बल्ब भी पीला प्रकाश देता है लेकिन वो ज्यादा दूरी से स्पष्ट नहीं दिखायी देता जबकि ट्रैफिक सिग्नल में प्रयुक्त होने वाले लाल और हरे रंग दूर से स्पष्ट दिखायी देते हैं। इसके अतिरिक्त लाल प्रकाश की तरंग दैर्घ्य अधिक होने के कारण इसे धुंध और कोहरे में भी देखा जा सकता है। इसलिये इसे खतरे के निशान के रूप में प्रयोग किया जाता है।

छुई-मुई के पौधे छूने से क्यों मुरझा जाते हैं?

[आबिद अली खान, लखनऊ]

पत्तियां विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं से बनी होती हैं और प्रत्येक कोशिका द्रव से भरी होती है। इस द्रव का दाब कोशिका की भित्तियों को दृढ़ रखता है तथा पर्णवृन्त को खड़ा रखने में सहायक होता है। जब इस कोशिका द्रव का दाब कम हो जाता है तो पर्णवृन्त तथा पत्तियों की कोशिका दृढ़ नहीं रह पाती।
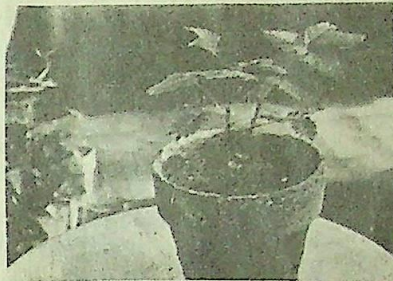
इसी प्रकार छुई-मुई या **मिमोसा पुडिका** की पत्तियों को छूने से उसके पर्णकों तथा पत्तियों के आधारों में द्रव का दाब कम हो जाता है। जैसे ही इसकी पत्तियों को कोई छूता है तो एक संवेदी संदेश इसके पर्णकों तथा पत्तियों के आधार तक पहुंच जाता है जिसके परिणामस्वरूप पत्तियों की निचले भाग की कोशिकाओं में द्रव का दाब गिर जाता है जबकि ऊपरी भाग की कोशिकाओं के दाब में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस कारण तथा पत्तियों के कुछ भार के कारण भी इसकी पत्तियां मुरझा जाती हैं।

[एम.के. सिंघल]

पेसमेकर क्या है?

[संदीप कुमार यादव, इलाहाबाद]

स्वस्थ व्यक्ति की हृदय की धड़कन को विशिष्ट प्रकार की मांसपेशियों का विशेष समूह नियंत्रित करता है। इसे प्राकृतिक पेसमेकर कहते हैं। हृदय के नियमित धड़कन की गति के तंत्रिका संकेत पेसमेकर ही भेजता है। कभी-कभी कुछ हृदय रोगों के कारण इस क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और इस अनियमितता के कारण आदमी की मृत्यु तक हो जाती है। ऐसी अवरोध की स्थिति में कृत्रिम पेसमेकर हृदय की धड़कन को नियमित बनाये रखता है। यह कृत्रिम पेसमेकर बैटरी से चलने वाली इलेक्ट्रानिक युक्ति है जो प्रति मिनट हृदय की मांसपेशियों को बिजली का झटका देकर हृदय को नियमित रूप से धड़कने को प्रेरित करती है। सामान्यतः पेसमेकर त्वचा के नीचे रोपित कर दिया जाता है और विद्युत झटके हृदय में फंसाये हुये दो तारों की सहायता से लगते हैं
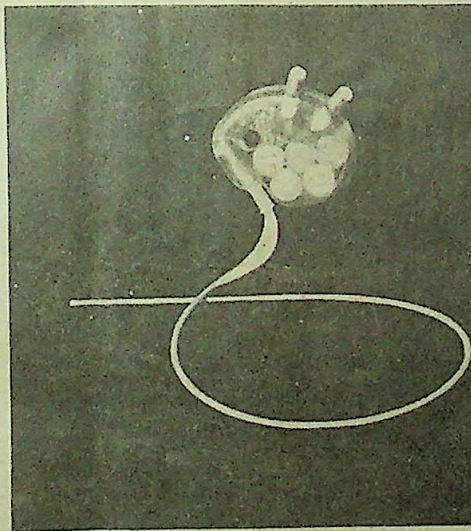
उत्तरी ध्रुव से आकाश आधा क्यों दिखायी देता है?

[श्रवण कुमार वैश्य, सुखा गंज, बाराबंकी, उ.प्र.]

पृथ्वी के किसी भी बिन्दु से एक आदमी एक बार में केवल आधा आकाश ही देख सकता है क्योंकि आकाश का दूसरा आधा भाग क्षितिज से नीचे होता है। रात्रि में भी जैसे पृथ्वी घूमती है और तारे उदय-अस्त होते हैं, आकाश, पृथ्वी की वक्रीय सतह के कारण विभिन्न स्थानों से अलग-अलग दिखायी देता है। भूमध्य रेखा से सभी तारों को उदय और अस्त होते देखा जा सकता है। ध्रुवतारा, यद्यपि उत्तरी क्षितिज में कभी-कभी ही दिखायी देता है, लेकिन जैसे-जैसे हम एक ध्रुव की ओर बढ़ते जाते हैं तो विपरीत ध्रुव के तारे अदृश्य होते जाते हैं क्योंकि वे क्षितिज से ऊपर कभी नहीं आते। अतः यदि कोई भी व्यक्ति किसी भी ध्रुव से रात्रि आकाश देखे तो उसे आकाश में आधे तारे ही दिखायी देंगे। लेकिन क्षितिज के समान्तर आकाश की गोलाई में चक्कर लगाय तो न तारे उदय होंगे न ही अस्त। और विपरीत ध्रुव के तारे क्षितिज के ऊपर सदैव अदृश्य रहेंगे। **बिमान बसु**

हेनरी प्वांकारे

गुणाकर मुले

किस्सा करीब सौ साल पुराना है। फ्रांस के गणितज्ञ हेनरी प्वांकारे के शोध-निबंधों की गणित-जगत में धूम मची हुई थी। इंग्लैंड के प्रसिद्ध गणितज्ञ जेम्स जोसेफ सिल्वेस्टर 1885 में पेरिस की यात्रा पर गए, तो उन्होंने सोचा कि प्वांकारे से भी मिल लिया जाए। उस समय सिल्वेस्टर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे और आयु 71 साल थी।

तीन मंजिलों की संकरी सीढ़ियां चढ़ने के बाद सिल्वेस्टर एक खुले हवादार बरामदे में पहुंचे और उन्होंने पहली बार हेनरी प्वांकारे को देखा, तो चकित रह गए। अपने गंजे, चिकने सिर पर हाथ फेरते हुए सन्मुख खड़े व्यक्ति को दो-तीन मिनट तक मंत्रमुग्ध-से देखते रह गए, मौन। सोचने लगे – जिसके शोध-निबंधों की बाढ़-सी आ गई है वह इतना सुकुमार, इतना तरुण!

प्वांकारे तब केवल तीस साल के थे, मगर अपने समय के सर्वश्रेष्ठ फ्रांसीसी गणितज्ञ के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित कर ली थी। वैज्ञानिक जगत में प्वांकारे को कितना अधिक सम्मान प्राप्त था, यह एक और दिलचस्प किस्से से स्पष्ट हो जाता है।

बात प्रथम महायुद्ध के समय की है। किसी ने बर्ट्रांड रसेल से पूछा :

"आपकी दृष्टि में आधुनिक फ्रांस का सब से महान व्यक्ति कौन है?"

"प्वांकारे", रसेल ने तत्काल उत्तर दिया।

"क्या! वह आदमी?" प्रश्नकर्ता ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा। उसने समझा कि रसेल का आशय फ्रांसीसी गणतंत्र के तत्कालीन राष्ट्रपति रेमां प्वांकारे से है। अतः रसेल को स्पष्ट करना पड़ा :

"मेरा आशय रेमां के चचेरे भाई हेनरी प्वांकारे से है।"

रसेल स्वयं अपने समय के एक महान चिंतक और तार्किक गणितज्ञ थे। उन्होंने हेनरी प्वांकारे को ठीक ही आधुनिक फ्रांस की महाविभूति कहा था। प्वांकारे अपने समय के संसार के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ थे। उन्होंने गणित की सभी प्रमुख शाखाओं में महत्वपूर्ण मौलिक खोजकार्य किया, इसलिए उन्हें गणित के क्षेत्र का "अंतिम सर्वज्ञ" समझा जाता है।

आधुनिक गणित अब कई प्रमुख शाखाओं में बंट गया है। एक शाखा में खोजकार्य करने वाले के लिए यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि दूसरी शाखा में क्या हो रहा है। हेनरी प्वांकारे ऐसे गणितज्ञ थे जिन्होंने गणित की चारों प्रमुख शाखाओं– अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और विश्लेषण– के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने खगोल-विज्ञान और गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण खोजकार्य किया। प्वांकारे एक उच्च कोटि के दार्शनिक गणितज्ञ भी थे। पिछली सदी के अंतिम चरण तक महान गौस को गणित के क्षेत्र का 'अंतिम सर्वज्ञ' समझा जाता था। वर्तमान सदी के आरंभ में 'अंतिम सर्वज्ञ' की हैसियत प्वांकारे को मिली। अब गणित का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि शायद ही कभी कोई दूसरा प्वांकारे पैदा हो।

प्वांकारे ने कुल 34 साल (1874 से 1912) तक गवेषणा-कार्य किया। इस अवधि का उनका समग्र कृतित्व इतना विस्तृत और मौलिक है कि सहसा यकीन नहीं होता कि यह एक ही व्यक्ति का योगदान है। प्वांकारे ने करीब 500 शोध-प्रबंध प्रकाशित किए। इसके अलावा, गणितीय भौतिकी, सैद्धांतिक भौतिकी, खगोल-भौतिकी आदि विषयों से संबंधित उनके करीब 30 ग्रंथ प्रकाशित हुए। प्वांकारे ने विज्ञान के दार्शनिक पहलू पर भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। लोकप्रिय विज्ञान पर लिखे उनके लेख संसार की कई भाषाओं में

अनूदित हुए और बड़े चाव से पढ़े गए। प्वांकारे के "विज्ञान और परिकल्पना" ग्रंथ को और "गणितीय सृजन" नामक निबंध को खूब प्रसिद्धि मिली है।

इस प्रकार, प्वांकारे के कृतित्व को आधुनिक गणित की एक अमूल्य निधि समझा जाता है। इस महान गणितज्ञ का जीवन-चरित्र भी कम दिलचस्प नहीं है।

हेनरी प्वांकारे का जन्म फ्रांस के नान्सी नगर में 19 अप्रैल, 1854 को हुआ था। पिता लिआं प्वांकारे स्थानीय विश्वविद्यालय में चिकित्सा के प्राध्यापक थे और वे एक कुशल चिकित्सक माने जाते थे। हेनरी के चाचा एन्तोई प्वांकारे एक उच्च पदासीन सरकारी इंजीनियर थे। उनके एक बेटे रेमां ने कानून का अध्ययन किया और बाद में वह फ्रांसीसी गणतंत्र के राष्ट्रपति बने।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेनरी प्वांकारे का जन्म एक सम्पन्न और सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। हेनरी की आरंभिक शिक्षा उनकी मां की देखरेख में हुई। हेनरी की एक बहन भी थी। सुशिक्षित व दक्ष मां की देखरेख में बालक हेनरी का बड़ी तेजी से विकास हुआ। मगर हेनरी के शारीरिक विकास में कुछ न्यूनताएं भी प्रकट हुईं। उसकी बोली साफ नहीं थी। वह दोनों हाथों से लिख सकता था, परंतु उसकी लिखावट अच्छी नहीं थी। हेनरी जब पांच साल का था, तो वह डिप्थीरिया का शिकार हुआ। परिणामतः वह जीवनभर के लिए दुर्बल व संकोची बन गया।

हेनरी प्वांकारे की स्मरण-शक्ति बड़ी विलक्षण थी। किसी पुस्तक को एक बार पढ़ लेने पर ही उन्हें स्मरण रह जाता था कि कौन-सी बात किस पृष्ठ पर और किस पंक्ति में है ! देखने में आता है कि अधिकांश गणितज्ञ प्रमेयों और सूत्रों को अपनी दृष्टि के जरिए आत्मसात करते हैं, स्मरण रखते हैं। मगर प्वांकारे की बात निराली थी। उनकी आंखें कमजोर थीं। जब वे उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी बने, तो उन्हें श्यामपट्ट पर लिखा हुआ साफ-साफ नजर नहीं आता था। इसलिए वे कक्षा में पीछे बैठते थे और केवल कानों से लेक्चर सुनते थे, लिखते कुछ भी नहीं थे।

गणितज्ञों के भुलक्कड़ स्वभाव के बारे में जो ढेर सारे किस्से प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश मनगढंत हैं। मगर पता चलता है कि प्वांकारे न केवल भुलक्कड़ थे, बल्कि कुछ हद तक असामाजिक भी थे। बताया जाता है कि जब वे किसी होटल में ठहरते, तो वहां की चादरें-तौलिए भी अपने बक्से में रख लिया करते थे।

प्वांकारे के भुलक्कड़ स्वभाव का एक और पहलू एक किस्से से स्पष्ट हो जाता है। फिनलैंड का एक गणितज्ञ प्वांकारे से कुछ महत्व के वैज्ञानिक विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिए पेरिस आया। सेविका ने उनके आने की सूचना प्वांकारे को दी, तब भी वे उनका स्वागत करने बाहर नहीं आए, बल्कि अपने अध्ययन-कक्ष में चहल-कदमी करते हुए सोचते रहे। आगंतुक बैठक में प्वांकारे के पधारने का इंतजार करते रहे। अंततः तीन घंटे बाद प्वांकारे ने परदों को हटाकर बैठक में झांका और बोले : "आप मेरे काम में विघ्न डाल रहे हैं।" सुदूर फिनलैंड से आए वे गणितज्ञ उठकर चले गए।

मगर प्वांकारे काफी कोमल स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्हें पशु-पक्षियों से बेहद प्यार था। बचपन में एक बार, निशाना न साधने पर भी, उनकी बंदूक की गोली से एक पक्षी मर गया था। उस दिन से उन्हें बंदूक से विरक्ति हो गई।

प्वांकारे की गणित के प्रति गहरी दिलचस्पी तब बढ़ी जब वे पंद्रह साल के हुए। उनके गणितीय अध्ययन की जीवनभर एक प्रमुख विशेषता यह रही कि वे टहलते हुए दिमाग में ही समस्या के बारे में सोचते रहते थे। दिमाग में समस्या का पूर्ण हल प्राप्त हो जाने के बाद ही वे उसे कागज पर उतारते थे। वे प्रायः एक ही बैठक में अपने शोध-निबंध को पूरा लिख डालते थे। उन्होंने शास्त्रीय भाषाओं और शैली पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। फ्रांस और प्रशिया के बीच 1870 में हुए युद्ध के दौरान सोलह साल के प्वांकारे ने अपने देश की दुर्दशा देखी और साथ ही हमलावरों की जर्मन भाषा भी सीखी। मगर प्वांकारे के मन में जर्मन गणितज्ञों के प्रति सदैव सम्मान बना रहा।

सत्रह साल की आयु में, 1871 में प्वांकारे ने स्नातक की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में गणित विषय में वह बड़ी मुश्किल से ही पास हुए। वजह यह थी कि वह परीक्षा देने देरी से पहुंचे थे और गणित के एक सरल प्रश्न को भी हल करने में गलती कर बैठे थे। मगर प्रमुख परीक्षक प्वांकारे की प्रतिभा से परिचित थे। प्वांकारे उत्तीर्ण हुए।

उसके बाद प्वांकारे वनविद्या संस्थान की प्रवेश-परीक्षा में बैठे और गणित में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। तब से प्वांकारे की गणितीय प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी। उनके सहपाठी यदि उनसे गणित के किसी सवाल का हल पूछते, तो फौरन उत्तर मिल जाता था।

पाठकों को फ्रांसीसी गणितज्ञ इवारिस्त गाल्वा (1811-32) की जीवन-कथा याद होगी। परीक्षक गाल्वा की गणितीय प्रतिभा को पहचानने में असफल रहे। परिणामतः गाल्वा के लिए उन्नति के रास्ते बंद रहे और बीस साल की अल्पायु में उनकी मृत्यु हुई। आरंभ में रामानुजन को भी गाल्वा-जैसी परिस्थितियों का ही सामना करना पड़ा था। भारत में शिक्षण की दशा आज भी लगभग वैसी ही है, जैसी कि रामानुजन के समय में थी।

लेकिन फ्रांसीसियों ने गाल्वा के उदाहरण से अच्छा सबक सीख लिया था। प्वांकारे जब पालीटेक्नीक में पहुंचे, तो उन्होंने अपनी गणितीय प्रतिभा का भरपूर परिचय दिया। मगर शारीरिक कसरतों और चित्रांकन तथा रेखांकन में वे एकदम कोरे थे। उनके रेखांकनों का प्रायः मजाक उड़ाया जाता था। प्वांकारे को रेखांकन के पेपर में शून्य मिला। परीक्षा के नियम के अनुसार, किसी विद्यार्थी को यदि किसी विषय में शून्य मिल जाता था, तो उसे अगली कक्षा में प्रवेश नहीं मिलता था। प्वांकारे की प्रतिभा से परीक्षक भलीभांति परिचित थे। वह नहीं चाहते थे प्वांकारे फेल हो जाए। इसलिए, कहा जाता है कि, परीक्षक ने शून्य के पहले दशमलव बिंदु और शून्य के आगे 1 का अंक रख दिया। अर्थात, प्वांकारे को रेखांकन में .01 अंक मिले और वे परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

पोलीटेक्नीक में पढ़ाई पूरी करने के बाद इक्कीस साल के प्वांकारे ने इंजीनियर बनने के इरादे से 1875 में खनिज विद्यालय में दाखिला लिया। तकनीकी अध्ययन के अलावा उन्हें जो समय मिलता वह वे गणित के अध्ययन में लगाते थे। उन्हीं दिनों उन्होंने अवकल समीकरणों (डिफरेंशियल इक्वेशंस) से संबंधित एक व्यापक समस्या का अध्ययन किया। तीन साल बाद प्वांकारे ने उसी समस्या के बारे में 'डाक्टर' की उपाधि के लिए पेरिस विश्वविद्यालय में एक शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया। परीक्षक ने प्रबंध को उपाधि के योग्य पाया और टिप्पणी जोड़ी कि प्रबंध में इतनी उपयोगी सामग्री है कि उससे कई प्रबंध तैयार हो सकते हैं।

प्वांकारे अंतःप्रज्ञा के धनी थे, इसलिए वे सीधे ही हल प्राप्त कर लेते थे। बीच के चरणों में न उलझकर वे सीधे ही परिणाम पर पहुंच जाते थे। इसलिए उनके गणितीय विचारों को सहजता से समझने में कइयों को काफी कठिनाई होती थी। प्वांकारे के दिमाग में विचारों की बाढ़-सी आती थी और उसमें वे बहते जाते थे। महान गौस के दिमाग में भी गणितीय विचार ऐसे ही कोलाहल मचाते रहते थे, मगर वे सोच-समझकर बहुत थोड़ा ही लिखते थे। प्वांकारे की स्थिति भिन्न थी। वे बेरोकटोक लिखते ही जाते थे और पीछे मुड़कर देखने या जांचने की जरूरत नहीं समझते थे। यही वजह है कि प्वांकारे इतना अधिक लिख पाए।

प्वांकारे को खनन इंजीनियर का पेशा रास नहीं आया। उनकी दिलचस्पी गणित में थी। 'डाक्टर' की उपाधि के लिए प्रस्तुत किए गए प्रबंध से उनके लिए गणितज्ञ के पेशे का रास्ता खुल गया था। दिसंबर 1879 में काएन (पश्चिमोत्तर फ्रांस) के विद्यापीठ में प्वांकारे को गणितीय विश्लेषण के प्राध्यापक का पद मिला। दो साल बाद, 27 साल की आयु में, पेरिस विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति हुई। तब से प्वांकारे का शेष जीवन प्रायः पेरिस में ही गुजरा।

प्वांकारे का गणितीय अन्वेषक का जीवन 1879 में काएन में प्राध्यापक बनने के साथ शुरू हुआ। उनकी मृत्यु 1912 में हुई। बीच के इन 34 सालों में प्वांकारे ने कितना सारा काम किया, इसका जिक्र हम पहले कर ही चुके हैं। यहां प्वांकारे के समस्त गवेषणा-कार्य का विवेचन करना तो दूर रहा, नामोल्लेख कर पाना भी संभव नहीं है। इसलिए हम उनकी चंद प्रमुख उपलब्धियों की ही यहां थोड़ी चर्चा करेंगे।

अवकल समीकरणों पर विचार करते हुए प्वांकारे ने 1880 में, जब वे छब्बीस साल के थे, दीर्घवृत्तीय फलनों के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण आविष्कार किए। हम जानते हैं कि कुछ फलन **आवर्त** (पिरिऑडिक) होते हैं। ऐसे फलनों में चर का मान एक निश्चित मात्रा में बढ़ाया जाए, तो वह फलन पुनः अपने आरंभिक मान पर लौटता है। त्रिकोणमितीय फलन आवर्त होते हैं। जैसे :

$$\sin(Z + 2\ ) = \sin(Z + 4\pi) = \sin(Z + 6\pi) \ldots = \sin Z$$

दीर्घवृत्तीय फलन के दो आवर्तनांक होते हैं। मान लीजिए कि ये p और p_1 हैं। तब–

$$E(z + p_1) = E(z),\ E(z + p_2) = E(z)$$

ऐसे फलन को **द्वि-आवर्त** कहते हैं। प्वांकारे ने सिद्ध किया कि आवर्तता एक अन्य सार्विक गुण की महज एक विशिष्ट दशा है। वह सार्विक गुण यह है कि, कुछ फलन ऐसे होते हैं कि चर के बहुत-से मानों में से कोई भी एक रख देने से फलन का मान ज्यों-का-त्यों बना रहता है। प्वांकारे ने सिद्ध किया कि ऐसे मानों की संख्या अनंत किंतु गणनीय है।

पिछली सदी के नौवें दशक के दौरान प्वांकारे ने ऐसे कई फलनों का सृजन करके उनके गुणधर्म निर्धारित किए। इस विषय से संबंधित उनके कई महत्वपूर्ण शोध-निबंध प्रकाशित हुए। प्वांकारे ने इन फलनों को जर्मन गणितज्ञ लाजारुस फुक्स (1833-1902) के नाम पर **फुक्सीय फलन** नाम दिया था। आज इन फलनों को हम **स्व-आकारी** (**आटोमॉर्फिक**) फलनों के नाम से जानते हैं। आधुनिक गणित में इन **स्वाकारी** फलनों का बड़ा महत्व है। स्वाकारी फलनों के अंतर्गत दीर्घवृत्तीय फलनों का समावेश होता है और दीर्घवृत्तीय फलनों के अंतर्गत त्रिकोणमितीय फलनों का।

फुक्सीय या स्वाकारी फलनों की सृजन-प्रक्रिया के बारे में प्वांकारे ने अपने प्रसिद्ध निबंध "गणितीय सृजन" में बड़ी दिलचस्प मनोवैज्ञानिक जानकारी दी है। प्वांकारे इन फलनों के बारे में करीब पंद्रह दिन तक गहन चिंतन करते रहे। मगर उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। तब एक दिन, आदत न होने पर भी, उन्होंने ब्लैक काफी पी। वह सो नहीं पाए। सोचते रहे। उनके दिमाग में विचार मंडराते रहे। सुबह होने तक उन्हें एक विशिष्ट प्रकार के फुक्सीय फलनों का अस्तित्व सुस्पष्ट हो गया। तब परिणामों को कागज पर उतारने में उन्हें ज्यादा समय नहीं लगा।

उसके बाद प्वांकारे फुक्सीय फलनों के अधिक व्यापक गुणधर्मों की खोजबीन में जुट गए और उस प्रयास में उन्होंने एक ऐसी श्रेणी की खोज की जिसे उन्होंने **थिटा-फुक्सीय** का नाम दिया।

उस समय प्वांकारे काएन में रहते थे। थिटा-फुक्सीय श्रेणी का सृजन करने के बाद प्वांकारे एक भूवैज्ञानिक यात्रा-दल में शामिल हुए। यात्रा के दौरान वे अपने गणितीय गवेषणा-कार्य को एकदम भूल गए थे। तब एक दिन वे एक गाड़ी में चढ़ने ही जा रहे थे कि एकाएक उनके दिमाग में फुक्सीय फलनों के बारे में एक महत्वपूर्ण विचार कौंधा। उनको एकाएक स्पष्ट हुआ कि फुक्सीय फलनों को परिभाषित करने के लिए उन्होंने जिन रूपांतरणों का उपयोग किया है वे अ-यूक्लिदीय ज्यामिति के रूपांतरणों के समतुल्य हैं। यात्रा से काएन लौटने के बाद प्वांकारे ने एकाएक प्रकट हुए उस विचार की जांच की और उसे सही पाया।

गणितज्ञ किस प्रकार सृजन करते हैं, यह मनोविश्लेषण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। प्वांकारे ने अपनी सृजन-प्रक्रिया के बारे में स्वयं कुछ घटनाएं उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत की हैं। कुछ अन्य गणितज्ञों के बारे में भी ऐसी ही घटनाएं सुनने को मिलती हैं। इसमें चमत्कार-जैसी कोई बात नहीं है। रामानुजन और रीमान को भी कई गणितीय परिणाम एकाएक ही प्राप्त हुए थे। ऐसी स्थितियों में अंतःप्रज्ञा निश्चय ही महत्व की भूमिका अदा करती है।

प्वांकारे ने विश्लेषण पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन्होंने सैद्धांतिक खगोल-विज्ञान को एक नए धरातल पर उठाने में विश्लेषण का भरपूर इस्तेमाल किया। न्यूटन, आयलर, लाग्रांज और लापलास से सैद्धांतिक खगोल-विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। मगर उन्नीसवीं सदी में खगोल-विज्ञान के अन्वेषण के लिए कई सारे नए गणितीय तकनीक उपलब्ध हुए थे। उनका उपयोग करने वाले प्वांकारे पहले गणितज्ञ थे।

एक उदाहरण लीजिए। हम जानते हैं कि हर पिंड हर अन्य पिंड को आकर्षित करता है। दो पिंडों के बीच के आकर्षण के लिए न्यूटन ने एक नियम भी दिया है। मगर विश्व में हम सर्वत्र देखते हैं कि समस्या केवल दो पिंडों के बीच आकर्षण तक सीमित नहीं रहती। अनेक पिंड एक साथ एक-दूसरे को आकर्षित करते रहते हैं। पृथ्वी को केवल सूर्य ही नहीं, चंद्रमा तथा थोड़ी-बहुत मात्रा में मंगल, शुक्र आदि ग्रह भी आकर्षित करते रहते हैं। अतः बुनियादी समस्या दो पिंडों के बीच ही नहीं, बल्कि अनेकानेक पिंडों के बीच के आकर्षण की है।

दो पिंडों के बीच के आकर्षण की समस्या न्यूटन ने पूर्णतः सुलझा दी थी। तीन पिंडों के बीच के आकर्षण की समस्या को भी काफी हद तक सुलझा लिया गया है। मगर असली समस्या है अनेकानेक पिंडों के बीच के आकर्षण की। इसे हल करने के लिए स्वीडेन के राजा ने 1887 में एक पुरस्कार भी घोषित किया था। प्वांकारे इस समस्या को पूर्णतः हल नहीं कर पाए, फिर भी पुरस्कार उन्हीं को मिला। पुरस्कार के लिए निर्णायक मंडल के सदस्य थे– वायरस्ट्रास, हर्मिट और मिताग-लेफलेर। वायरस्ट्रास ने अपना निर्णय देते हुए स्वीडेन के गणितज्ञ मिताग-लेफलेर को लिखा– प्वांकारे का "यह कृतित्व प्रस्तावित समस्या का पूर्ण हल प्रस्तुत नहीं करता, फिर भी इसका महत्व इतना अधिक है कि इसके प्रकाशित होने पर खगोल-यांत्रिकी के इतिहास में एक नए अध्याय का आरंभ होगा।" प्वांकारे को पुरस्कार मिल गया। फ्रांस ने भी अपने इस वैज्ञानिक को अपना सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया।

प्वांकारे ने पिछली सदी के अंतिम दशक में खगोल-यांत्रिकी पर तीन खंडों में एक ग्रंथ प्रकाशित किया। फिर वर्तमान सदी के प्रथम दशक में सैद्धांतिक खगोल विज्ञान के बारे में तीन खंडों में उन्होंने एक और ग्रंथ प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में प्वांकारे ने प्रमाणित किया है कि यदि द्रव से बना हुआ कोई पिंड घूर्णन करता है तो वह कौन-सा आकार ग्रहण करेगा। उन्होंने सिद्ध किया कि अधिकाधिक रफ्तार से घूर्णन करने वाला ऐसा गोलाकार पिंड क्रमशः अंडाकार और नाशपाती का आकार ग्रहण करके अंत में एक पेट निकले हुए पिंड में बदलकर अपनी द्रव्यराशि को दो असमान भागों में विभक्त कर देगा।

प्वांकारे ने गणित और भौतिकी के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने प्रायिकता सिद्धांत के क्षेत्र में भी काम किया है। **संयोग** (चांस) के बारे में लिखे अपने विस्तृत निबंध में उन्होंने संयोग के विभिन्न अर्थों का बढ़िया विवेचन किया है।

गाल्वा या आबेल की तरह प्वांकारे की उपेक्षा नहीं हुई। उन्हें अपने समय के सर्वोच्च सम्मान व पुरस्कार प्राप्त हुए। वे 1887 में, बत्तीस साल की आयु में ही फ्रांस की विज्ञान अकादमी के सदस्य चुने गए थे। बावन साल की आयु में, 1906 में, वे विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष चुने गए। एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक को मिलने वाला यह सर्वोच्च सम्मान था। प्वांकारे को फ्रांस की साहित्य अकादमी का भी सदस्य चुना गया था। एक वैज्ञानिक को उसके निबंधों की साहित्यिक शैली के लिए यह सम्मान मिलना सचमुच ही बहुत बड़ी बात थी।

प्वांकारे का जीवन सुखमय रहा। 1904 में वे अमरीका की यात्रा पर गए थे। अन्यथा उनका अधिकांश जीवन पेरिस में ही गुजरा। उनके एक पुत्र और तीन पुत्रियां हुईं।

प्वांकारे 1908 में रोम में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय गणितीय कांग्रेस में शामिल हुए। उन्होंने "गणितीय भौतिकी का भविष्य" विषय पर एक निबंध तैयार किया था, किंतु बीमार पड़ने के कारण वे अपना निबंध नहीं पढ़ पाए। इटली में ही उनकी प्रास्टेट ग्रंथि की सृजन का आपरेशन हुआ। लगा कि उन्हें पुनः स्वास्थ्य लाभ हो गया है। पेरिस लौटकर वे पुनः जोर-शोर से खोजकार्य में जुट गए।

मगर 1912 में पुनः बीमार पड़ गए। 9 जुलाई को पुनः आपरेशन हुआ। परंतु वे बच नहीं पाए। 17 जुलाई 1912 को, उनसठवें साल में, हेनरी प्वांकारे का देहांत हुआ।

प्वांकारे ने अपना गवेषणा-कार्य उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के संधिकाल में किया था। इस तरह उन्हें बीसवीं सदी के अन्वेषकों का पथप्रदर्शक माना जा सकता है। उन्होंने गणित के दार्शनिक पहलू पर भी गहन चिंतन किया था। प्वांकारे के निबंध उनके अपने गवेषणा-कार्य पर तो भरपूर प्रकाश डालते ही हैं, दूसरे गणितज्ञों की सृजन-प्रक्रिया को भी समझने में सहायता देते हैं।

[श्री गुणाकर मुले, "अमरावती", सी-210, पांडव नगर दिल्ली-110 092]

बजर

योगेश कुमार शिवहरे

आप लोगों ने 'काल-बैल' एवं गाड़ियों के हार्न के रूप में लगे उपकरणों से तरह-तरह की आवाजें सुनी होंगी। ऐसा उपकरण आप बहुत ी कम खर्च में एवं सुगमता पूर्वक घर पर ही तैयार र सकते हैं। मजे की बात तो यह है कि आप घर में ने इस ''बजर'' को ''काल बैल'' के रूप में घर पर गा कर इसके संगीत का आनंद भी उठा सकते हैं।

आवश्यक सामग्री

चौड़े मुंह वाला एक बेलनाकार खाली डिब्बा,
लगभग चार इंच लंबा एवं 3 सेंमी. परिधि का एक बोल्ट,
विद्युतरोधी तांबे के तार
एक बल्ब, होल्डर, डोरी, पुश-बटन,
लगभग 1.5" x 1.5" का एक सेन्टीमीटर मोटा गुटका एवं तार कीलें।

विधि

सर्वप्रथम बोल्ट को लाल तप्त गर्म कर धीरे-धीरे ठंडा होने दें। इस प्रक्रिया को कई बार करें जिससे वह नरम लोहे में परिणित हो जाये। इसके पश्चात डिब्बे की पेंदी के केन्द्र में बोल्ट से अधिक व्यास का एक गोल छेद करें, साथ ही लकड़ी के गुटके के मध्य में भी एक छिद्र कर दें। लेकिन इसका व्यास बोल्ट के व्यास से कुछ कम होना चाहिये। अर्थात बोल्ट लकड़ी के गुटके के छिद्र में से सुगमतापूर्वक न जाकर इस तरह से जाये कि लकड़ी के गुटके में चूड़िगं बन जायें। अब लकड़ी के गुटके को डिब्बे की पेंदी में कील की सहायता से बाहर की ओर इस तरह जमा दें कि डिब्बे की पेंदी का छिद्र एवं गुटके का छिद्र एक सीध में रहे।

अब बोल्ट के ऊपरी सिरे पर (लगभग 1·5 " से 2" तक) तांबे के विद्युतरोधी तार को इस प्रकार लपेट दें कि उसके दोनों स्वतंत्र सिरे बाहर रहें। अब बोल्ट को गुटके में इस प्रकार कस दें कि वह डिब्बे के भीतर रहे एवं डिब्बे का ढक्कन भी लगाया जा सके। इन दोनों सिरों को माचिस की तीली की सहायता से गर्म कर इसकी पालिश उतार कर होल्डर; में लगी डोरी, विद्युत रोधी तांबे के तार के दोनों सिरे, पुश-बटन एवं विद्युत पाइन्ट को चित्रानुसार श्रेणीक्रम में जोड़ दें।

लीजिए, आपका ''बजर'' तैयार है। पुश-बटन दबाते ही ध्वनि होगी तथा बल्ब भी जलेगा। पुश-बटन को मुख्य द्वार पर लगाकर ''बजर'' को ''काल-बैल'' के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

[**श्री योगेश कुमार शिवहरे, विज्ञान शिक्षक, शा.स.मा. शाला कटंगी, जिला बालाघाट (म.प्र.)**]

चित्र कथा

चित्र कथा

नहीं, नहीं, चौंकिये मत। आपने कोई गलत पत्रिका नहीं उठायी। इस चित्र को देखकर आपका भ्रम में पड़ना स्वाभाविक ही है कि 'विज्ञान प्रगति' के बजाय कोई आधुनिक चटपटी पत्रिका तो आपके हाथ में नहीं पहुंच गई। किन्तु यह भ्रम बनाये रखने की कोई जरूरत नहीं। यह चित्र भले ही कोई माडर्न आर्ट जैसा लग रहा हो किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि न तो यह माडर्न आर्ट है न ही आपके हाथ विज्ञान प्रगति के अलावा कोई अन्य पत्रिका।

अब क्या हुआ ? अभी भी आपके मन में उथल-पुथल मची हुई। अच्छा, चित्र के बारे में जानना चाहते हैं कि यह चित्र क्या है और क्या दर्शा रहा है ? कहीं यह कम्प्यूटर ग्राफिक्स का कोई उदाहरण तो नहीं ? या फिर कहीं विज्ञान प्रगति का अमूर्त स्वरूप में पाठकों को नये वर्ष की बधाई देने का विचित्र तरीका तो नहीं ?

नहीं। ऐसा कुछ नहीं है, यह चित्र एक वैज्ञानिक प्रयोग का निष्कर्ष दर्शाता है लेकिन प्रयोग की जानकारी प्राप्त करने से पहले आइये आप और हम मिलकर थोड़ा सा सोच लें, थोड़ा सा चिंतन कर लें।

क्या कहा ? चिंतन ? किस बारे में करें चिंतन ? अरे ! चिंतन ही के बारे में, अच्छा हम तैयार हैं।

"जब हम सोच-विचार करते हैं या किसी बात पर चिंतन मनन करते हैं तब निश्चित रूप से हमारे मस्तिष्क में कुछ क्रियायें होती हैं ? यह बात तो अब स्पष्ट और सर्वविदित है कि विचार हमारे मस्तिष्क में चलने वाली विद्युत रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

हमारी शारीरिक गतिविधियों की संचालक संस्था, अर्थात मस्तिष्क या ब्रेन जिसे सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम या केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र भी कहते हैं, शरीर का प्रमुख अंग है। मस्तिष्क का सबसे छोटा घटक होता है "न्यूरान" यानि तंत्रिकोशिका। इस कोशिका के मध्य भाग में इसका केन्द्रक होता है और इस कोशिका से निकले लम्बे धागे जैसे वृक्षाभ या डेन्ड्राइड, पेड़ की शाखाओं जैसे दूर तक फैले होते हैं। इनकी विपरीत दिशा में निकले एकमात्र लंबे धागे को तंत्रिकाक्ष या एक्सॉन कहते हैं।

हमारी ज्ञानेन्द्रियां : आंख, कान, नाक, और त्वचा हमें संवेदनास्वरूप ज्ञान का बोध कराती हैं। यह ज्ञान विद्युतरासायनिक सन्देश द्वारा इन आंखों से जुड़े न्यूरॉन के डेन्ड्राइड द्वारा ग्रहण किया जाता है। तंत्रिकोशिका के मध्य भाग में इन संदेशों का विश्लेषण होता है और तंत्रिकाक्ष द्वारा यह संदेश अगले न्यूरान तक पहुंचता है। जब हम किसी विषय में सोचते हैं या चिंतन करते हैं तब मस्तिष्क के न्यूरॉन इसी तरह विद्युत रासायनिक संदेश के संप्रेषण में कार्यमग्न रहते हैं।

जब यह प्रक्रिया विचार रूप लेने लगती है तब इन न्यूरॉनों में कोई परिवर्तन होता है या नहीं या समझने की चेष्टा कुछ वैज्ञानिक काफी समय से करते आ रहे हैं। इधर बंदरों पर प्रयोग किये जा रहे हैं। इन प्रयोगों के फलस्वरूप ज्ञात हुआ कि मनन या चिंतन के समय ढेर सारे न्यूरॉन एकत्र होकर सामने दिखाई दे रहे किसी त्रिविमीय लक्ष्य को समझने की कोशिश करते हैं तब उनकी जो प्रतिक्रिया होती है उनके फलस्वरूप पापुलेशन फैक्टर नब्बे अंश में मुड़ता है। यही प्रतिक्रिया चित्र का ऊपरी भाग दर्शाता है। उसी की छाया निचले हिस्से में दिखाई दे रही है। जिस समय यह प्रक्रिया होती है वह दिखाई दे रहे चित्र का एक अंश है।

न्यूरॉन के विषय में पढ़ते हुये इस चित्र को समझने की कोशिश जब आपके मस्तिष्क के न्यूरॉन करेंगे तब वे भी इस चित्र जैसा रेखांकन करने में सक्षम हो पायेंगे।

शुभ यात्रा

सुरेश नाडकर्णी

"कहिये मदन जी! कैसे आना हुआ"

"डाक्टर साहब, मैं कुछ दिन के लिये छुट्टियों में बाहर जा रहा हूं..."

"बड़ी अच्छी बात है! लेकिन मेरे पास आने की क्या जरूरत आ पड़ी भाई!"

"डाक्टर साहब यह मेरी बहन है तनु, इसको बस में चक्कर आते हैं और ये बहुत उल्टियां करती है।"

"अच्छा! तो इन्हें यात्रा-अस्वस्थता (मोशन सिकेनस) की शिकायत है।"

"डाक्टर साहब यह क्या झमेला है?, कृपा कर विस्तार से समझाने का कष्ट करें।"

देखिये! कुछ लोगों को किसी वाहन में बैठने से चक्कर और उल्टियां आती हैं इसीको यात्रा-अस्वस्थता या मोशन सिकनेस कहते हैं।"

"आखिर ऐसा होता क्यों है, डाक्टर साहब!"

"इसका कारण जानना चाहते हो, तो सुनो हमारे आन्तरिक कान में एक भाग होता है जो शरीर का संतुलन बनाये रखता है। जब हम पानी के जहाज, कार-मोटर, हवाई जहाज जैसे वाहनों में यात्रा करते हैं या झूला झूलते हैं तो शरीर में उत्पन्न गति से इस संतुलन अंग में अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं। यह अवरोध मस्तिष्क के सर्वाधिक संवेदनशील भाग मेडुला आबलांगेटा में विद्यमान वमन केन्द्र को सक्रिय कर देते हैं और उल्टियां होनी आरंभ हो जाती हैं। इसको हम इस तरह भी कह सकते हैं कि वाहनों की गति हमारे आंखों से देखने की गति (दृष्ट्य) और कानों के अन्दर के संतुलन अंग की लय में अन्तर पैदा कर देती है। आंखें तो तीव्र गति से बदलते हुये दृश्य को स्वीकार लेती हैं परन्तु कान के अंदर के संतुलन अंग इतनी तीव्र गति से कार्य नहीं करते। फलस्वरूप आंखों द्वारा प्रेषित और कानों द्वारा ग्रहण किये गये "संकेतों" में एकरूपता नहीं रहती।"

"मेरे एक दोस्त को श्रीनगर यात्रा में कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ।"

"हां! यह भी उसी तरह की अस्वस्थता है। इसे एल्टीट्यूड-अस्वस्थता या ऊंचाई-अस्वस्थता कहते हैं। मध्य कान के अंदर दाब और चारों ओर के वातावरण में अन्तर के कारण ऐसा होता है।"

"हां डाक्टर साहब! एक बार गले में सिरिंज डालकर कर्ण विशेषज्ञ ने मेरे कान की सफाई की थी, उस समय मुझे भी मितली सी महसूस हुई।"

बच्चों को व्यस्त रखें

छोटे बच्चे कार में आगे बैठने की जिद करते है ताकि वे स्टीयरिंग आदि से छेड़छाड़ कर सकें, लेकिन आगे बैठना छोटे बच्चों के लिये सुरक्षित नहीं है अतः हम आपको एक ऐसा उपाय बताते हैं जिससे बच्चा आगे भी बैठ सकेगा और उसको गिरने का खतरा भी नहीं रहेगा। आगे की सीट पर एक सुरक्षित सीट लगवा लें और उसमें बच्चे को बिठा कर उस पर बैल्ट कस दें यह सीट कार की सीट से थोड़ी ऊंची होती है। बच्चा इसमें आराम से बैठकर आगे की ओर ही देखता रहेगा और उसको उल्टियां नहीं होंगी।

इसके अतिरिक्त बच्चों को स्थिर चित तथा व्यस्त रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा लाभदायक होता है। व्यस्त रखने का एक कारगर तरीका यह है कि बच्चों को सड़क पर कार के आगे जा रही बस, लारी या ट्रकों का नम्बर पढ़ने को कहिये। इससे बच्चे व्यस्त तो रहेंगे ही साथ ही वे निरन्तर सामने सड़क की ओर ही देखते रहेंगे।

"बिल्कुल ठीक मदन जी! सिरिंज द्वारा पानी की बौछार ने संतुलन अंग को कृत्रिम रूप से उद्दीपित करके उसी तरह की क्रिया की।"

"लेकिन डाकटर साहब, मेरी बहन तनु को तो मोटर के नाम पर ही चक्कर और उल्टियां आने लगती हैं।"

"यदि किसी व्यक्ति के दिमाग में यह बात घर कर जाये कि मोटर में उसको उल्टियां होती हैं तो उसे वाहन द्वारा यात्रा करने के नाम पर ही उल्टियां शुरू हो जाती हैं। इसको मस्तिष्क की अतिसंवेदनशीलता कहते हैं।"

"तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि मोशन सिकनेस मात्र दिमाग की उपज है।"

"नहीं! मैं एकदम ऐसा तो नहीं कह सकता, सही माने में यह सत्य भी नहीं है। यदि यह मात्र दिमाग की उपज होती तो शिशुओं और जानवरों को क्यों उल्टियां आती। लेकिन मानसिक स्थिति अथवा भावनात्मक कारणों से भी कभी-कभी यात्रा में उल्टियां आ सकती हैं। ऐसे व्यक्ति को किसी अन्य बात पर व्यस्त रखकर भी उल्टियां रोकी जा सकती हैं। नाव का चप्पू स्वयं चलाने अथवा नाव के बीच खड़े होकर चलने से भी उल्टियों पर काबू किया जा सकता है। लेकिन

.... यदि उल्टियां शुरू हो गई हैं तो ऐसी ध्यान बदलने की तरकीबें कारगर नहीं होतीं।

"डाक्टर साहब! मोशन सिकनेस के अन्य लक्षण क्या हैं?"

"जैसा आपने अभी बताया, "चक्कर आना और उल्टियां, भूख में कमी हो सकती है, अत्यधिक पसीना आ सकता है और मितली भी आती है।"

"कृपया इसके पूर्वाभास के संकेत बताइयें।"

"चेहरा पीला, पसीने से लतपथ, पेट में गड़बड़ और पतली टट्टियां भी आने लगती हैं।"

"लेकिन डाक्टर साहब, आश्चर्य की बात तो यह है कि यात्रा शुरू होने के कुछ देर बाद तनु स्वस्थ महसूस करने लगती है।"

"तनु भाग्यशाली है मदन जी! आमतौर पर यात्रा के बाद व्यक्तियों पर इस रोग के दुष्प्रभाव नहीं रहते, वह ठीक हो जाते हैं क्योंकि अधिकतर लोग अपने को वाहनों की गति के अनुरूप परिस्थितियों में ढाल देते हैं। यहां तक कि अंतरिक्ष यात्री भी अंतरिक्ष यानों की अत्यधिक तीव्र गति के कारण कानों के अंदर होने वाली क्रियाओं से प्रभावित होते हैं।"

"डाक्टर साहब, क्षमा करेंगे! कृपया मुझे इस बारे में कुछ अधिक जानकारी देंगे?"

"हां हां क्यों नहीं! सुनिये, कान के आन्तरिक भाग में तीन विभिन्न सतहों पर तीन अर्धचन्द्राकार नलियां 90^0 के कोण पर स्थित रहती हैं। आदमी सतह पर चलने का तो आदि होता है। परन्तु वह लिफ्ट, यान आदि की उर्ध्वाधर गति का अभ्यस्त नहीं होता। यही उर्ध्वाधर गति अर्ध चन्द्राकार नलिकाओं को असाधारण रूप से उत्तेजित करती है जिसके कारण चक्कर तथा गति अस्वस्थता के लक्षण महसूस होते हैं। चिंता, दुख या उत्तेजना से भी उल्टियां आ सकती हैं। आपकी बहन को भी वाहन यात्रा ने उत्तेजित कर दिया था।"

"हवाई यात्रा में भी डाक्टर साहब इस तरह की उल्टियां आ सकती हैं?"

"हां! इसको हवाई-अस्वस्थता (एयर सिकनेस) कहते हैं। खराब मौसम और तेज हवा में उड़ान करते समय हवाई जहाज के ऊपर नीचे होने से यात्री को उल्टियां हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त बन्द कैबिन, भूख, अपच, अधिक भोजन अथवा शराब पीने तथा दुर्गंध, सिगरेट के धुयें के कारण भी किसी यात्री को उल्टियां हो सकती हैं।"

"समुद्री यात्रा में उल्टियां आने पर उस व्यक्ति को सिर नीचा कर खुले कमरे में आराम से लेट जाना चाहिये। हवाई जहाज में आंखें बन्द करके सीट पर लम्बे लुढ़के रहने से आराम मिलता है। कार से उतर कर कुछ दूर टहलने से कार की यात्रा में होने वाली उल्टियो को रोका जा सकता है। मोटर तथा कार की खिड़कियां खुली रखें और पत्र-पत्रिका आदि न पढ़ें।"

"क्या मोशन सिकनेस से बचने के लिये कुछ आवश्यक उपाय हैं?"

"यात्रा आरभ करने से आधा घंटा पहले एंकोलाक्सिन, एवोमिन आदि की गोली अवश्य ले लें। यदि आप स्वयं गाड़ी चला रहे हों तो नींद की गोली का सेवन न करें, नहीं तो नींद के झटके आ सकते हैं। अपने साथ खिलौने और मनोरंजन के ऐसे सामान तथा टेप आदि रखें जिससे ऐसे यात्रियों, विशेषकर शिशुओं का ध्यान बंटा रहे। संभावित रोगी के सामने उल्टियों की बात न करें, यात्रा आरंभ करने से पहले अधिक भोजन अथवा नशा न करें, यदि आपके साथ कोई उल्टियां करने वाला व्यक्ति बैठा है तो किसी को भी सिगरेट आदि का सेवन न करने दें।"

"उल्टियां शुरू होने के बाद उस व्यक्ति का क्या उपचार करना चाहिये?"

"उल्टियों आदि के उपचार में कुछ प्रतिहिस्टामिनी गोलियां प्रभावी सिद्ध हुई हैं, हल्की नींद भी लाभकर रहती है। शरीर में पानी की कमी से बचने के लिये थोड़ा-थोड़ा पानी पीते रहना चाहिये और चाहे उल्टियां होती रहें फिर भी थोड़ा बहुत खाना खाते रहना चाहिये।"

"यदि वमन के साथ पेट में तेज दर्द हो तो डाक्टर के पास जान चाहियेवह सही निदान कर यदि आवश्यक हो तो उल्टियां रोकने के लिये सुई लगायेगा।"

"लेकिन इस रोग से छुटकारा किस तरह मिल सकता है?"

"अपने मन में मत सोचो कि उल्टियां होंगी। ऐसे रोगियों के साथ कार यात्रा में प्रत्येक घंटे के बाद कार रोक कर थोड़ा आराम करें। सर्दियों में खूब गरम कपड़े पहने रखें और गर्मियों में कम से कम कपड़े पहनें, कार की खिड़की खुली रखें, यात्रा के दौरान कुछ पढ़े नहीं। यात्रा से पहले आराम और निर्विकार रहने से भी उल्टियां आदि नहीं होती। यात्रा से पहले एक कप कॉफी पीने से भी लाभ होता है। यात्रा में थोड़ी मात्रा में शराब कुछ लोगों में निरुत्साहित होने की प्रवृत्ति को रोक कर उल्टियां रोकने में सहायक होती है। परन्तु अधिक पीने से हानि हो सकती है। कार या मोटर से यात्रा करते समय आंखों को दायें या बायें तरफ न घुमायें बल्कि सामने देखते रहें।"

"क्या कोई व्यक्ति जीवन भर इस रोग का शिकार हो सकता है?"

"हां! शिशु तो बड़े होते-होते अक्सर इससे छुटकारा पा जाते हैं, परन्तु कुछ वयस्क तो जीवन भर इसकी परेशानियां झेलते रहते हैं और प्रक्षुब्ध सागर में तो अच्छे-अच्छे व्यक्ति भी उल्टियां करने लगते हैं।"

[डा. सुरेश नाडकर्णी, पांचवीं मंज़िल, म्युनिसिपिल बिल्डिंग, जोबान पुत्रा कम्पाउंड, बम्बई- 7]

डा. विक्रम अंबालाल साराभाई

विट्ठलकुमार फरक्या

बहुमुखी प्रतिभाओं के धनी महान वैज्ञानिक डा. विक्रम अंबालाल साराभाई भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के पितृ पुरुष माने जाते हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक उनके द्वारा स्थापित शिक्षण और शोध संस्थाएं तथा प्रयोगशालाएं आज उनकी देशभक्ति और समर्पण की साकार अभिव्यक्ति हैं। उन्हीं के अथक परिश्रम, लगन और ज्ञान संवर्धन के परिणामस्वरूप हमारा देश अंतरिक्ष कार्यक्रमों में बहुत आगे है।

बालक विक्रम का जन्म प्रसिद्ध व्यवसायी उद्योगपति श्री अंबालाल साराभाई के घर 12 अगस्त 1919 ई. को गरुड़ पचमी के दिन हुआ था। माता का नाम सरला देवी था। बालक विक्रम की प्रारंभिक शिक्षा माता सरलादेवी की देखरेख में अपने घर में ही एक स्कूल खोल कर शुरू की गई। इस स्कूल में भाषा, विज्ञान, कला, बागवानी, तकनीकी शिक्षा आदि के अलग-अलग शिक्षक थे। स्कूल में प्रयोगशालायें भी थी। एक समय इस स्कूल में तेरह शिक्षक थे जिनमें तीन पी.एच.डी. और यूरोप में प्रशिक्षित थे। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ही इस स्कूल के लिये एक आर्टिस्ट का चयन किया था जो नृत्यकला की शिक्षा देते थे। यह स्कूल जीवन को पूर्णतः विकसित करने का स्थल था।

बालक विक्रम पर स्कूल के वातावरण के साथ ही घर पर आने वाली विशिष्ट विभूतियों का प्रभाव भी पड़ा। अहमदाबाद में उनके घर आने वाले प्रमुख व्यक्तियों में गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर, मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी, सरोजिनी नायडू, सी.वी. रमन, जवाहर लाल नेहरू आदि थे। इन विशिष्ट व्यक्तियों के सान्निध्य का भी बालक विक्रम पर गहरा प्रभाव पड़ा।

विक्रम को बचपन से ही साहसिक कार्य पसन्द थे। आठ साल की उम्र में ही विक्रम ने साईकिल सीख लिया था। साईकिल से अनेक करतब दिखाकर विक्रम आश्चर्यचकित कर देता था। विक्रम को नाव की सवारी भी खूब पसन्द थी। अपने घर के ताल में ही वह बखूबी नाव चलाता था।

बालक विक्रम ने अध्ययन में खूब रुचि दिखलाई। गणित और विज्ञान उनके पसन्द के विषय थे। विक्रम छुट्टियों में भी अनवरत अध्ययन किया करता था जिससे स्कूल खुलने पर वह अन्य छात्रों से अध्ययन में आगे रहता था। सेकण्डरी स्कूल परीक्षा पास करने पर बालक विक्रम ने उच्च अध्ययन के लिये गुजरात कालेज, अहमदाबाद में प्रवेश लिया। इसके बाद सेंट

जान्स कालेज, कैम्ब्रिज से 1939 ई. में केवल बीस वर्ष की आयु में प्राकृतिक विज्ञान में ट्राइपोज परीक्षा उत्तीर्ण की। भारत लौटने पर विक्रम ने इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस, बंगलौर में भौतिकी के 1930 के नोबेल पुरस्कार विजेता महान वैज्ञानिक सर चंद्रशेखर वेंकट रमन के निर्देशन में शोध कार्य प्रारम्भ किया। यहां उनकी मुलाकात डा. होमी जहांगीर भाभा से हुई जो उस समय मेसोन और कास्मिक किरणों पर शोध कार्य कर रहे थे। विक्रम साराभाई ने कास्मिक किरणों की तीव्रता पर शोध कार्य किया उनका पहला शोध पत्र कास्मिक किरणों की तीव्रता में परिवर्तन से संबंधित था। यह शोध पत्र 1942 में बंगलौर में एक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इससे उन्हें सूर्य, पृथ्वी, भू-चुम्बकत्व तथा अन्य शोध अध्ययन में बहुत लाभ मिला। 1943 ई. में विक्रम साराभाई पहाड़ी स्थानों पर कास्मिक किरणों का अध्ययन करने कश्मीर गये। इतनी ऊंचाई पर एक शोध संस्थान खोलने का उनका विचार हुआ। 1945 ई. में विक्रम साराभाई पुनः कैम्ब्रिज गये और 1947 ई. में वहां से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। कैम्ब्रिज से लौटकर डा. विक्रम साराभाई ने अहमदाबाद में भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला की स्थापना की जो आज देश के प्रमुख शोध संस्थानों में से एक है।

उद्योग में योग

डा. विक्रम साराभाई ने बड़ोदरा, गुजरात में अनेक उद्योग स्थापित किये। जिनमें साराभाई केमिकल्स, साराभाई ग्लास, सुहिद गैगी लिमिटेड, सिबायोटिक्स लिमिटेड, साराभाई मार्क लिमिटेड और साराभाई इंजीनियरिंग ग्रुप प्रमुख हैं। अहमदाबाद में डा. साराभाई ने आपरेशन्स रिसर्च ग्रुप और साराभाई रिसर्च सेंटर की स्थापना बड़ोदरा में की। बम्बई में वे स्वास्तिक आइल मिल्स के व्यवस्थापक बने। कलकत्ता में डा. साराभाई ने स्टैंडर्ड फार्मास्युटिकल्स की व्यवस्था संभाली और पैनीसिलीन आदि औषधियों का निर्माण प्रारंभ करवाया।

डा. साराभाई ने अहमदाबाद में अहमदाबाद टेक्सटाइल इंडस्ट्री रिसर्च एसोसियेशन (अतीरा) की स्थापना की जिसके वे 1956 तक मानसेवी निदेशक रहे। 1947 से 1965 तक के वर्षों में अपने परिश्रम और लगन से भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद को वैज्ञानिक कार्यों में तीव्र गति देने और विकसित करने में सफल रहे।

अंतरिक्ष कार्यक्रम

1962 ई. में डा. विक्रम साराभाई को भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान और विकास की जिम्मेदारी सौंपी गई। वे अंतरिक्ष अनुसंधान हेतु गठित भारतीय कमेटी के अध्यक्ष बने जहां थुम्बा (केरल राज्य) में भूमध्य रेखीय राकेट प्रमोचन केन्द्र स्थापित करना था। यहीं फ्रैंच सेंटूर राकेट बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ की गई। ''रोहिणी'' और ''मेनका'' नामक भारतीय राकेट श्रृंखला के जनक डा. विक्रम साराभाई ही थे।

डा. विक्रम साराभाइ 1962 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। 1966 ई. में वे परमाणु ऊर्जा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त हुए। डा. साराभाई इलेक्ट्रानिक्स कमीशन के अध्यक्ष, केन्द्रीय डिफेन्स सप्लाइज विभाग के अध्यक्ष, इलेक्ट्रोनिक्स कार्पोरेशन के अध्यक्ष भी रहे।

डा. विक्रम साराभाई को इंडियन एकेडमी आफ साइंसेज, नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंसेज आफ इंडिया, फिजीकल सोसायटी लंदन और कैम्ब्रिज फिलोसाफिकल सोसायटी के ''फैलो'' बनाकर सम्मानित किया। उनके कार्यों की सर्वत्र अनूठी छाप रही है। उन्होंने सेटेलाइट की सहायता से दूरस्थ ग्रामवासियों को प्रशिक्षित करने की योजना भी बनायी। उनको 1962 ई. में भौतिकी में शान्तिस्वरूप

भटनागर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1966 ई. में भारत सरकार ने उन्हें "पद्मभूषण" से सम्मानित किया। 1968 ई. में यूनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेंस आन पीसफुल यूसेज आफ आउटर स्पेस के अध्यक्ष रहे। 1970 में डा. साराभाई ने वियेना में चौदहवीं अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी की जनरल कान्फ्रेंस की अध्यक्षता की और 1971 में परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण उपयोग की चौथी कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष भी रहे।

संस्कृति अनुराग

डा. विक्रम का प्राचीन भारतीय संस्कृति और पुरातत्व से बड़ा लगाव था। उन्हें संगीत, चित्रकला, फोटोग्राफी में भी बहुत रुचि थी। एक कलाकार मुक्त वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर सके, नये प्रयोग कर सके इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने "दर्पण" संस्था बनाई। आज इस संस्थान की मानसेवी निदेशक डा. साराभाई की धर्मपत्नी श्रीमती मृणालिनी साराभाई हैं जो स्वयं भारतीय नृत्य की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकार हैं।

डा. विक्रम साराभाई का मत था कि वैज्ञानिकों को शोध कार्य में लगे रहना ठीक है परन्तु उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व से पीछे नहीं हटना चाहिये। समाज, ग्राम और देशोन्नति में उन्हें बहुत कुछ करना चाहिये। ग्रामीण क्षेत्रों में टेलीविजन द्वारा प्रसारण कर शिक्षा, कृषि, ग्रामीण विकास और अन्य परियोजनायें उन्हीं का स्वप्न था जो आज साकार हो रहा है। यह भारत का परिश्रमी, लग्नशील, दूरदृष्टा, महान वैज्ञानिक सपूत, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त देशरत्न 30 दिसंबर, 1971 को जब थुम्बा राकेट प्रमोचन केन्द्र की यात्रा पर था, पंचतत्व में विलीन हो गया। भारत सरकार ने डा. विक्रम साराभाई को "पद्म विभूषण" से सम्मानित किया। युग-युग तक आपके जीवन और कार्यों से वैज्ञानिक प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे।

[डा. विट्ठल कुमार फरक्या, रीडर, भौतिक शास्त्र, 1170, मोदीवाड़ा कैन्ट, जबलपुर-482 001, म.प्र.]

(पृष्ठ 15 का शेष) (शुक्र पर निवास)

परिमापी-फोटोमीटर लगाया गया था। उपकरण जितना अधिक नीचे जाता था, उतना ही अधिक अन्धकार उसके चारों ओर फैला जाता था, लेकिन फिर भी पर्याप्त प्रकाश था। पता लगा कि शुक्र पर दिन के 12 बजे उतना प्रकाश होता है, जितना पृथ्वी पर बादलों के छाये होने के दिन होता है।

शुक्र की सतह पर उपकरण ने लगभग एक घन्टा कार्य किया। "पृथ्वी के दूत" पर जब लाल-तप्त गैसों ने हमला किया, तो इन पदार्थों ने प्रथम वार सहन करके ऊष्मा का अधिकांश भाग ले लिया। इस प्रकार कार्यकारी यंत्रों तक उस प्रहार को नहीं पहुंचने दिया। इन यंत्रों में से एक यंत्र– गामा-स्पेक्ट्रोमीटर ने सर्वप्रथम वीनस की भूमि की रासायनिक संरचना का अध्ययन किया। इस उपकरण ने ऊष्मारोधी आवरण से बाहर आये बिना ही इस भूमि की छानबीन की।

अन्तर्ग्रहीय यात्रा की अवधि चार महीने से अधिक की थी। ग्रह और यान की दूरी जब दो दिवस के बराबर रह गयी, तो यान से अवतरण उपकरण ने पृथक होकर नये प्रक्षेप-पथ में प्रवेश किया। ग्रह की सतह से यान की दूरी 1500 किमी. तक थी। पूर्वनिर्धारित समय पर स्टेशन के इंजन बंद हो गये तथा ये शुक्र के उपग्रह बन गये।

अकादमीशियन म.व. केल्दिश ने ध्यान से चित्रों को देखा और कहा, "विवरण में ये चित्र, चन्द्रमा के प्रथम चित्रों के समान ही हैं।" अगले दिन अमेरिकी नासा केन्द्र के एक निदेशक स. रसूल ने भी यही कथन दोहराया: "प्राप्त चित्रों से सिद्ध होता है कि सतह पर कार्बन डाइऑक्साइड गैस निस्संदेह पारदर्शी है तथा प्रकाश सतह तक पहुंचने के लिए बादलों की परतों को पार करता है।"

दृष्टिगोचर चट्टानें प्रकाशमान हैं पर इनकी छाया स्पष्ट नहीं है। ये विशाल भी हैं और छोटे आकार के भी। नयी चट्टानें नुकीली हैं। पुरानी चट्टानें गोल हैं तथा उनके किनारे समतल हैं। इन चट्टानों की आकृति में कम रहस्य नहीं छिपा है। शुक्र की चट्टानों के किनारों को किन प्रक्रियाओं ने समतल बनाया? पृथ्वी पर यह सब वायु की नमी एवम् तापमान में एकदम परिवर्तनों के कारण होता है शुक्र पर ऐसा किन कारणों से होता है?

तीन दिन बाद ही "वीनस-10" ने एक नयी तस्वीर दिखायी। उपकरण एक समतलीय प्रकाशमान चट्टान पर खड़ा था। इस चट्टान के कटे हुए किनारों पर गहरी दरारें थीं।

शुक्र की यात्रा पर जाने की सर्वोतम अवधि हमेशा प्राप्त नहीं होती। अत: सोवियत कॉस्मोड्रोम से "वीनस-11" तथा "वीनस-12" रवाना हुए और अमेरिका के कैनेवरल द्वीप से "पायनियर-वीनस-1" तथा "पायनियर-वीनस-2"।

नये सोवियत यान पहले यानों की भांति ही थे। लेकिन दोनों "पायनियरों" के कार्य भिन्न-भिन्न थे। प्रथम उपकरण का कार्य शुक्र का कृत्रिम उपग्रह बनना था, दूसरे का कार्य शुक्र के वायुमण्डल में चार "जोन्द"– (अन्वेषी शालाकाएं) ले जाना।

अवतरण उकरण, अपने स्टेशनों से उड़ान की समाप्ति से कुछ समय पूर्व पृथक हुए। उपकरणों ने वीनस की ओर अपनी उड़ान जारी रखी तथा स्टेशनों ने प्रक्षेप-पथ में प्रवेश किया, जिनकी दूरी शुक्र की सतह से लगभग 30,000 किमी. थी। इस पथ में उनका कार्य उड़ान भरते हुए उपकरण के संदेशों को ग्रहण करके पृथ्वी तक पहुंचाना था।

जब दोनों उपकरणों ने शुक्र के वायुमण्डल में प्रवेश किया, तो नियंत्रण केन्द्र अन्धकार में डूबा हुआ था। लेकिन जहां "पृथ्वी के दूत" रंगीन पैराशूटों द्वारा लटके हुए थे, सूर्य का प्रकाश था। इसे यन्त्रों द्वारा लिये गये परिमापों ने भी सिद्ध किया, उपकरण के ऊपर छाये हुए नभ के प्रकाश को मापा। ताप व दाब का मान निरन्तर बढ़ता जा रहा था।

अमेरिकी यान "पायनियर-वीनस-2" से छोड़े गये चार यंत्र (जोंद) वीनस पर जब उतरे तो पृथक्करण से पूर्व उपकरण की दिशा निर्धारित की गई जिससे अपकेन्द्रीय (सेन्ट्रीफ्यूगल) बल ने इन्हें विभिन्न दिशाओं में भेज दिया। इनमें से प्रथम ने वायुमंडल में ग्रह के उत्तरी गोलार्द्ध की ओर से अन्धकार वाले भाग में प्रवेश किया। सबसे बड़ा चतुर्थ जोन्द ने अन्य जोन्दों के विपरीत पैराशूट द्वारा उतर कर मध्य रेखा के क्षेत्र का अध्ययन किया। स्वयं "पायनियर-वीनस-2" जैसा कि कार्यक्रम में सम्मिलित था, वायुमंडल में जलकर भस्म हो गया।

सोवियत अवतरण उपकरणों पर तूफानमापी लगाये गये थे। इनकी सहायता से वैज्ञानिकों ने शुक्र के वायुमण्डल पर प्रभाव डालने वाली प्रक्रियाओं की खोज की कि शुक्र पर भी तूफानों की सम्भावना है। ग्रह के अतितप्त होने का मुख्य कारण "वाष्पीय प्रभाव" माना गया है। कार्बन डाईऑक्साइड गैस, जो ग्रह के वायुमंडल का 95% भाग है, सौर किरणों को सतह पर आने देता है तथा परावर्तित ऊष्मीय विकिरण को रोक लेता है। पृथ्वी के वायुमंडल की तुलना में शुक्र के वायुमंडल में आर्गन की मात्रा 100 गुना अधिक है।

शुक्र का सम्पूर्ण जल उसके वायुमंडल में विलीन है। लाल-तप्त सतह पर 100 वायुमंडल दाब पर द्रवित जल सम्भव नहीं है। पृथ्वी की अपेक्षा शुक्र के वायुमंडल में जलीयवाष्प बहुत कम है। इसका कारण यह है कि यदि शुक्र पर जल की मात्रा अधिक होती है तो उस पर कार्बन डाइऑक्साइड गैस की मात्रा इतनी अधिक नहीं होती। पृथ्वी की भांति वह जल के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करके ठोस कार्बोनेट चट्टान बनाती। फलत: सतह पर तापमान इतना उच्च नहीं होता इत्यादि।

यात्रा की योजना

कुछ वैज्ञानिकों ने मत प्रकट किया है कि शुक्र को "ठीक-ठाक" कर के जीने योग्य बनाया जा सकता है। उन्होंने यह सुझाव रखा है कि शुक्र के वायुमंडल में खास तरह के जीवाणु छोड़े जायें ये हवा में तैरते हुए जल्दी ही बढ़ कर सारे ग्रह पर फैल जायेंगें और कुछ वर्षों में शुक्र की वायु की संरचना बदल देगें, वायुमंडल को पारदर्शी बना देगें। तब ग्रह की सतह धीरे-धीरे ठंडी पड़ जायेगी। बादलों से वर्षा होगी। नदियां, झीलें, समुद्र बन जायेगें। नम मिट्टी पर बीज बोने से जंगल उग आयेगें वे हवा में आक्सीजन भर देगें। उसे पशु-पक्षियों और मनुष्य के सांस लेने योग्य बना देगें। इस कायाकल्प से शुक्र ग्रह में भी आबादी हो सकेगी।

(डा. वासुदेव प्रसाद यादव, 98 अशोक नगर, आगरा-282002)

मौन तपस्विनी

सीताराम सिंह पंकज और के.आर. सिंह

कई सदियों से मानव मधुमक्खियों से परिचित है। वैदिक-कालीन ग्रंथों से भी यह जानकारी मिलती है कि आर्य लोग मधु और मधुमक्खियों से पूर्ण परिचित थे। प्राचीन काल में इनका इतना अधिक महत्व था कि आर्य लोग मौन को मधु देने वाली गाय कहते थे और गाय की भांति ही इनका सम्मान भी करते थे। उल्लेखनीय बात तो यह है कि भारत में ही सबसे पहले मधु-मक्खियां पायी गई थीं। अर्थात मौन भारत की सुपुत्री है जो आज भारत से पश्चिमी देशों तक पहुंच गई है।

मधु बनाने वाली मासूम मधुमक्खियां एक फूल से दूसरे फूल पर उड़कर दिन भर में हजारों किलोमीटर की दूरी तय कर लेती हैं। लेकिन इनका उड़ना व्यर्थ नहीं होता। ये फूलों से पराग और मधुरस इकट्ठा कर उसे शहद में परिवर्तित कर देती हैं, जो मधु-मक्खियों से प्राप्त होने वाला निस्संदेह प्रकृति का अनूठा उपहार है। मौन तपस्वियों की भांति मधुमक्खी निरंतर मधु संग्रह में व्यस्त रहती हैं। शायद यही कारण है, इसका नाम 'मौन' भी है। वैसे मौन, मधुमक्खी की घरेलू जाति का नाम है।

प्रजातियां

मधुमक्खियों की अनेक प्रजातियां हैं, जिनमें प्रमुख हैं :–

भंवरा (एपिस डौरसाटा) : यह भारत की सबसे बड़ी जाति की भीमकाय मधुमक्खी है। इसे 'दानव मौन' भी कहते हैं क्योंकि इसका आकार अन्य सभी मौनों से बड़ा होता है। इसकी शहद इकट्ठा करने की क्षमता भी अन्य सभी मौनों से ज्यादा होती है। इसके बड़े छत्ते से एक बार में एक मन तक मधु निकल आना साधारण सी बात है।

यह सदा एक स्थान पर नहीं रहती और मौसम के अनुसार अपना निवासस्थान बदलती है। इसका छत्ता 6-7 फीट लम्बा तथा 3-4 फीट चौड़ा होता है। इसका डंक काफी विषैला होता है। कहते हैं कि भंवरा पानी के भीतर घुस कर भी अपने शत्रु का पीछा करता है। एक कहावत है कि ''एपिस डौरसाटा'' के पांच डंक कोब्रा के एक डंक के बराबर घातक और जहरीले होते हैं।

मौन (एपिस इंडिका) : इसकी यह जाति घरेलू है। वैसे यह पेड़ के
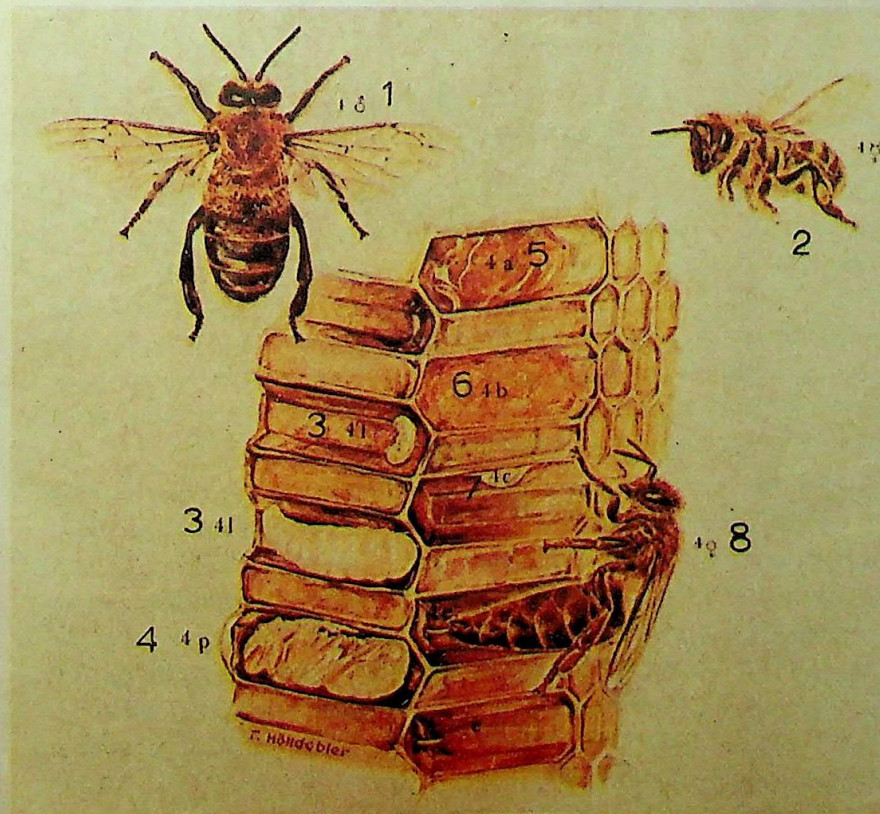
मधु मक्खी 1. एपिस मैलिफेरा (नर), 2. श्रमिक (ड्रोन), 3. विभिन्न अवस्थाओं के लार्वा, 4. प्यूपा, 5. छत्ते की एक कोशिका में शहद, 6. परागण, 7. कोशिका की ऊपरी भित्ति में पानी की एक बूंद, जो मधु मक्खी छत्ते में नमी बनाये रखने के लिये रखती है। 8. अण्डे देते हुये रानी

खोखलों, चट्टान की दरारों में अपना छत्ता बनाना पसंद करती हैं। इसे प्रकाश पसंद नहीं होता। वैज्ञानिक विधि से इनके पालन के लिए लकड़ी के संदूक बनाए जाते हैं। इन मधुमक्खियों के जीवन, आहार-व्यवहार पर काफी शोधकार्य भी हुआ है।

इसका मधु खाने में स्वादिष्ट तथा दवा के लिए उपयुक्त होता है। भारत में इसे मौन, मधुमक्खी, सतलहरी आदि नामों से जाना जाता है।

पोतिंगा (एपिस फ्लेरिया) : इस जाति की मधुमक्खी भारत के मैदानी भागों में बहुत अधिक संख्या में पायी जाती है। इसकी आदतें भवरें से बहुत मिलती हैं। ये अपना छत्ता खुली जगहों पर बनाना पसंद करती हैं। एक जगह से दूसरी जगह जाना यानि स्थानांतरण करना इनका स्वभाव भी है। इसे अभी तक पालतू नहीं बनाया गया है। इस जाति की मधुमक्खी से प्राप्त शहद औषधीय प्रयोग के लिए उत्तम होता है।

शारीरिक संरचना : अन्य कीटों की तरह मधुमक्खी का शरीर भी तीन भागों—सिर, वक्ष और उदर में बंटा होता है। इसका सिर तिकोना होता है, जिसमें तीन साधारण आंखें होती हैं। ये आंखें सिर के ऊपरी भाग में बीचों-बीच स्थित होती हैं। इसके अतिरिक्त दो मिश्रित आंखें सिर के अगल-बगल में स्थित होती हैं। सिर के सामने दो स्पर्शेन्द्रियां लगी होती हैं, जो सूंघने और सुनने में मदद करती हैं। सिर में लगे मुखांग मधु इकट्ठा करने का काम करते हैं।

सिर से जुड़े वक्ष (थोरेक्स) में दो जोड़ी पारदर्शी पंख लगे होते हैं। वक्ष के अधर तल से तीन जोड़े रोमयुक्त पैर लगे होते हैं, जो चलने और पराग इकट्ठा करने में सहायक होते हैं। इसके पश्चपाद में परागकंघी (पौलेन कौम्ब) लगी होती हैं जो पराग इकट्ठा करती हैं।

मधुमक्खी के उदर में छह खंड होते हैं। इसके साथ-साथ मोम ग्रंथि (वेक्स ग्लैण्ड) तथा डंक (स्टिंग) भी होता है। मोम-ग्रंथियां उदर के अंतिम चार खंडों के अधरतल पर होती हैं, जिनमें मोम का स्राव होता है। यह मोम छत्ता बनाने के काम में आता है।

श्रम विभाजन : मधुमक्खी के जीवन में श्रम विभाजन बहुत अच्छी तरह देखने को मिलता है। इनके एक समुदाय में तीन प्रकार के कीट पाए जाते हैं—रानी, श्रमिक तथा नर (ड्रोन)। मधु मक्खियों के एक समुदाय में लगभग 4,000 से 5,000 तक मधुमक्खी होती हैं। किंतु कभी-कभी संख्या 5,000 से 80,000 तक भी होती है।

एक समुदाय में एक मादा यानि रानी, लगभग 200 नर या ड्रोन्स तथा शेष श्रमिक कीट पाए जाते हैं। रानी, समुदाय के सभी कीटों से आकार में बड़ी तथा विशिष्ट होती है। रानी मौन, कोई काम नहीं करती है। इसका एकमात्र कार्य अंडे देना है। यह जननक्षम मादा होती है तथा प्रतिदिन 200 तक अंडे देती है। केवल रानी ही अंडा देने में सक्षम होती है। छत्ते में रानी के रहने की विशेष व्यवस्था रहती है।

नर, श्रमिकों से बड़े किंतु रानी से छोटे होते हैं। इनमें मोम ग्रंथियां डंक तथा पराग इकट्ठा करने वाले उपकरण का अभाव होता है। इनका एकमात्र काम रानी का गर्भाधान कराना होता है। ये और कोई काम नहीं करते। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये श्रमिकों पर निर्भर रहते हैं। ये आराम तलब होते हैं।

श्रमिकों की संख्या सबसे अधिक होती है। ये बंध्य मादा होती हैं, जो रानी द्वारा दिए गए अंडों से विकसित होती हैं। श्रमिक भी श्रम-विभाजन का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। श्रमिकों का जीवन काफी संघर्षपूर्ण और कठोर होता है। छत्ते के समस्त कार्यों की जिम्मेदारी श्रमिकों पर होती है। श्रमिक अपने कार्यानुसार निर्माता (बिल्डर्स), मरम्मत करने वाली (रिपेयरर्स), पंखा करने वाली (फैनर्स), रक्षक (गार्ड), भंडारी (स्टोर कीपर्स) तथा मधु किण्वक (हनी ब्रीवर्स) हो सकती हैं।

श्रमिक कीट काफी कर्मठ होते हैं। एक ओर जहां कुछ श्रमिक छत्ते की रखवाली और निर्माण करते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ श्रमिक दूर-दूर फूलों तक जाकर मधुरस और जल इकट्ठा करते हैं। यद्यपि इनका जीवन कुछ सप्ताहों का होता है, एक हफ्ते बाद ही ये अपनी
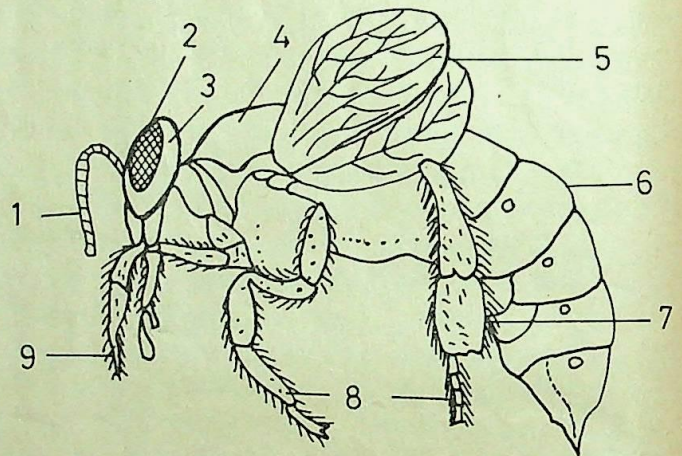
श्रमिक मधुमक्खी : 1. स्पर्शक, 2. संयुक्त नेत्र, 3. सिर, 4. वक्ष, 5. पंख, 6. उदर, 7. पराग कंघी, 8. पाद, 9. अग्रपाद

जिम्मेदारियों को समझने लायक हो जाते हैं। श्रमिक समुदाय के सबसे छोटे, किंतु सर्वाधिक कर्मठ और फुर्तीले कीट होते हैं।

जीवन चक्र : मधुमक्खी का जीवन चक्र बहुत ही रोचक है। वसंत ऋतु में दल बनाने की क्रिया (स्वार्मिंग) आरंभ होती है। इस समय प्रकृति में भोजन की प्रचुरता होती है। अतः इस समय इनकी संख्या में काफी वृद्धि होती है। और इसी समय पुरानी रानी नया छत्ता बनाने के लिए बहुत से श्रमिकों और नर के साथ छत्ता छोड़कर उड़ जाती है। उपलब्ध स्थान पर नए छत्ते का निर्माण कार्य शुरू होता है। पुराने छत्ते में तरुण रानी रह जाती है।

कुंवारी रानी सयानी होकर जब पहली बार उड़ान भरती है, तो उसके पीछे ढेर सारे नर उड़ते रहते हैं। यह उड़ान, "मैथुन उड़ान" या "वैवाहिक उड़ान" कहलाती है। उड़ते समय हवा में ही मैथुन क्रिया (कॉपुलेशन) सम्पन्न होती है। ज्यों-ज्यों रानी ऊंचाई पर पहुंचती है, नरों की संख्या कम होती जाती है। अंत में रानी एक नर के साथ मैथुन करती है, जिसके परिणामस्वरूप नर का शुक्राणु-धर (स्परमेटोफोर) रानी के शरीर में चला जाता है। आजीवन रानी इन्हीं शुक्राणुओं द्वारा अंडों को निषेचित करती है। मैथुन के पश्चात नर मर जाता है और रानी, शेष कीटों के साथ छत्ते में लौट आती है।

मैथुन के 3-4 दिन बाद तरुण रानी अंडे देना प्रारंभ करती है। ये अंडे रानी या श्रमिक प्रकोष्ठ में दिए जाते हैं। अनिषेचित अंडे नर

प्रकोष्ठ में दिए जाते हैं। तीन-चार दिनों में अंडों से लार्वा विकसित होते हैं। अनिषेचित अंडों से नर का निर्माण होता है। रानी और श्रमिक प्रकोष्ठों से जो लार्वा निकलते हैं, उन्हें राजकीय जेली (रॉयल जेली) खिलायी जाती है। जिस लार्वा को यह राजकीय जेली निरंतर मिलती रहती है, वह रानी तथा जिसे शहद या पराग का मिश्रण मिलता है वह श्रमिक बन जाता है।

आधुनिक शोध कार्यों से यह ज्ञात हुआ है कि रॉयल जेली एक विशेष पौष्टिक भोजन होता है, जिसमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल पाए जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि एक समय में एक ही रानी का निर्माण होता है। दरअसल रानी और श्रमिक दोनों ही द्विगुणित निषेचित अंडों से विकसित होते हैं, किंतु भोजन की भिन्नता के कारण ही ये क्रमशः रानी और श्रमिक बनते हैं।
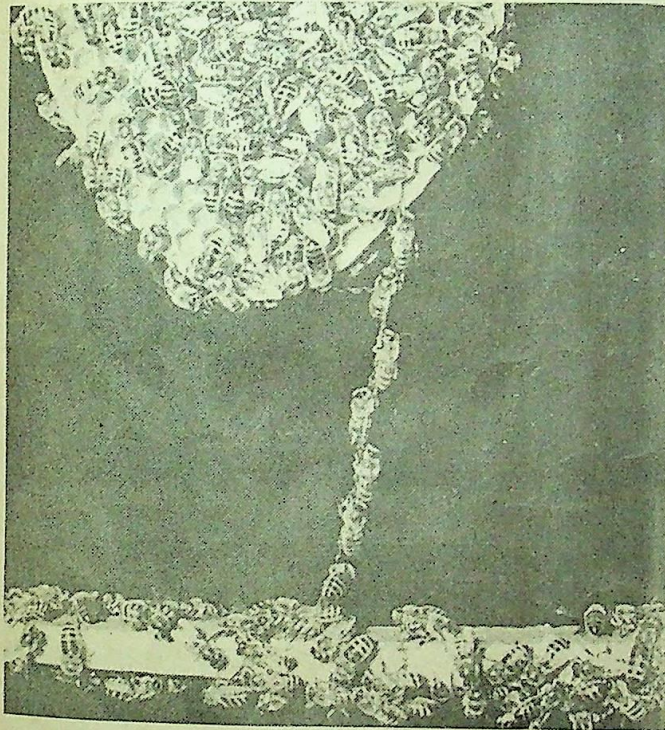
छत्ता बनाती हुई श्रमिक मधु मक्खियां

अंडे से लार्वा और लार्वा से प्यूपा का निर्माण होता है। प्यूपा, कायान्तरण (मेटामॉरफोसिस) के बाद वयस्क कीट में बदल जाता है। कायान्तरण में नर को 21 दिन, श्रमिक को 18 दिन और रानी को 13 दिन लगते हैं। शरद ऋतु में रानी और श्रमिक छत्ते में एकत्रित मधु पीकर जीवन बसर करते हैं। वसंत ऋतु आने पर पुनः इनका जीवन-चक्र पूर्ववत आरंभ हो जाता है।

शहद, प्रकृति का अनूठा उपहार : मधुमक्खियों से मानव को मधु और मोम जैसे महत्वपूर्ण पदार्थों की प्राप्ति होती है। मधु प्रकृति का सबसे मीठा, पोषक और अमृत सदृश्य तरल पदार्थ है। निसंदेह मधु की मिठास और पौष्टिकता का सानी नहीं है। यही कारण है, जन्म से मृत्यु तक के सभी धार्मिक संस्कारों में शहद का प्रयोग होता है।

मानव आदिम अवस्था से ही मधु का प्रयोग करने लग गया था। संसार की सभी जातियों ने मधु को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। चीनी, मिस्री, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, हेब्रू आदि सभी जातियों ने मधु को पवित्र माना है। आयुर्वेदिक ग्रंथों में मधु की विशद चर्चा हुई है। दवा के रूप में तथा पौष्टिक पेय के रूप में मधु का प्रयोग सदियों से किया जा रहा है। ग्रीक लोग खिलाड़ियों को खेल की समाप्ति के पश्चात शहद का शर्बत पिलाना आवश्यक समझते हैं।

आयुर्वेदिक मतानुसार शहद शीतल, शक्तिवर्द्धक, ग्राही, स्वरशोधक, रुक्ष, पित्त, कफ, थकान नाशक माना गया है। यह कोढ़, क्षय, अतिसार, दाह आदि में भी लाभ पहुंचाने वाला है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण : वैज्ञानिक दृष्टि से मधु एक महत्वपूर्ण सुपाच्य, प्राकृतिक, पोषक तरल पदार्थ है। यह बच्चे, बूढ़े, वयस्क, रोगी, महिलाओं सबके लिए समान रूप से शक्तिशाली और स्वास्थ्य वर्द्धक है। कहते हैं 7 औंस मधु में आठ संतरे और 10 अंडे के बराबर पौष्टिक तत्व होते हैं। दूध के साथ मिलाकर पीने से इसकी पौष्टिकता और बढ़ जाती है।

मधु में रोगाणुओं को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता होती है। अमेरिकी वैज्ञानिक स्टुअर्टवैंट ने शहद के गुणों और रोग निवारक क्षमताओं का विस्तृत अध्ययन किया है। पौष्टिकता की दृष्टि से शहद बेजोड़ है। इसमें ए, बी, सी विटामिनों के साथ-साथ आवश्यक खनिज लवण तथा कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। मधु का नियमित सेवन स्वास्थ्यवर्धक है।

मधुमक्खी से प्राप्त मोम भी बहुत उपयोगी पदार्थ है। यह मोमबत्ती, साबुन, फेसक्रीम, दवाई आदि बनाने के काम में आता है।

मधुमक्खी और परागण : परागण की दृष्टि से मधुमक्खी एक विश्वसनीय एवं प्रवीण कीट मानी जाती है। मधुरस एवं पराग संग्रह के सिलसिले में यह एक फूल से दूसरे फूल पर बैठती हैं, जिससे परागण की क्रिया सम्पन्न हो जाती है। भारत सहित अनेक विकासशील देशों में फसल एवं फल वाले पौधों के पर-परागण के लिए मधुमक्खियों का उपयोग किया जाता है। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि मधुमक्खियों द्वारा पर-परागित होने पर फसल की पैदावार में काफी वृद्धि होती है।

आजकल मधुमक्खी पालन एक कुटीर उद्योग के रूप में विकसित हो रहा है। खादी और ग्रामोद्योग कमीशन ने मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के लिए बहुत कुछ किया है। निरंतर शोध कार्य जारी है। मधुमक्खी पालन (एपीकल्चर) जहां एक ओर फसलों की पैदावार बढ़ाता है, वहीं शहद के समान पौष्टिक प्राकृतिक टॉनिक प्रदान करता है। केंद्रीय मधुमक्खी अनुसंधान संस्थान (पूना) ने फसलों के लिए कीट-परागण और इसमें मधुमक्खियों की भूमिका से संबंधित पहलुओं पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है।

मधुमक्खी पालन की वैज्ञानिक विधियों का विकास किया गया है। मधुमक्खियां किसानों की भी मित्र हैं। शायद इसलिए सर जॉन मूर ने कहा था, ''मौन, मानव की सर्वश्रेष्ठ नन्हीं सी मित्र हैं।'' मौन या मधुमक्खी पालन हर दृष्टि से लाभकारी और उपयोगी है। □

[डा. सीताराम सिंह पंकज, अध्यक्ष, जंतु विज्ञान विभाग, के.एस.आर. कालेज, सरायरंजन, समस्तीपुर-848 127 और डा. के.आर. सिंह, रीडर, एल.एस. कालेज, जंतु विज्ञान विभाग, मुजफ्फरपुर, बिहार]

मिकोस ने साफ छुरी से ब्रेड का बड़ा सा हिस्सा काटा, उस पर काफी मक्खन लगा कर 'फ्राई' करने के पश्चात एक तश्तरी में मेज पर रखा और नाश्ता तैयार हो जाने की सूचना अपने स्वामी को दे दी। स्वामी की आकर्षक वेशभूषा से मिकोस काफी प्रभावित हुआ। स्वामी अत्यधिक सफाई पसन्द था। उसने चारों ओर नज़र डाल कर देखा कि कहीं कोई गन्दगी आदि नहीं है।

मिकोस का स्वामी एक विचित्र व्यक्तित्व का प्राणी था। वह एक महान चिन्तक तथा विद्वान वैज्ञानिक के रूप में प्रख्यात था। स्वामी क्या काम करता है, इसका ज्ञान मिकोस को नहीं था। परन्तु वह इसकी बड़े-बड़े ग्रंथों का अध्ययन करने तथा घन्टों तक मनन करने की आदत से भली भांति परिचित था। स्वामी की यह आदत मिकोस के लिये लाभदायक थी क्योंकि एक बार स्वामी के मर्जी के अनुसार काम करने के बाद उसे सारे दिन घूमने फिरने की स्वतंत्रता मिल जाती थी। वह स्वामी था महान चिन्तक, आर्किमिडीज।

लेकिन स्वामी की मर्जी के अनुसार सारे काम करना भी मिकोस के लिये आसान नहीं था। वह इतना सफाई पसंद था कि हाथ पोंछने के तौलिये पर यदि एक भी दाग दिखाई दे जाये तो स्वामी के क्रोध का ठिकाना नहीं रहता। यही बात उसके नहाने के पानी के बारे में भी थी। उसने नहाने के टब में एक लाल रेखा खींच रखी थी। उसका आदेश था कि पानी की सतह बराबर इस लाल रेखा तक ही होनी चाहिये। न कम न ज्यादा। इस सावधानी के कारण नहाते समय पानी की एक बूंद भी बाहर नहीं गिरती थी और वह निश्चिन्त पानी में डूबा रह कर घंटों शांति से विचारों में खोया रह सकता था।

एक दिन की बात है। उसने 'शेव' के लिये गर्म पानी मंगवाया। हजामत के लिये भी उसे एक विशेष ताप का पानी चाहिये था। निश्चित ताप तक पानी गर्म करने के लिये उसने एक यंत्र लगाया था। उस यंत्र में एक सुई (पाइंटर) लगी थी। पानी गर्म करते समय सुई का एक चक्कर पूरा होते ही यंत्र बन्द करने की सूचना मिकोस को मिल जाती थी। पिछली रात देर तक मनोरंजन कार्यक्रम देखते रहने के कारण मिकोस देर तक जगा था और नींद पूरी न होने के कारण यंत्र की ओर उसका ध्यान नहीं रहा। फलस्वरूप सुई एक के बजाय दो

मिकोस बहुत सोचता रहा परन्तु उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। राजा द्वारा अपमानित होकर वापिस आना तो संभव था ही नहीं क्योंकि राजा आर्किमिडीज का बहुत आदर करते थे। लेकिन मूड का क्या भरोसा। राजा जो ठहरा। वैसे ही आर्किमिडीज के मूड का भी क्या भरोसा? उसने सोचा रास्ते में ही स्वामी के मन में कुछ विचार आया होगा और उस पर सोचते-सोचते समारोह के लिये जाने की बात ही वह भूल गये होंगे।

यह विचार मन में आते ही मिकोस उठा और उसने डरते डरते पुकारा– स्वामी!

लेकिन आर्किमिडीज अपनी ही धुन में थे। उत्तर नहीं मिला। बार-बार अनुरोध करने के बाद मिकोस ने समारोह की याद दिलाई। परन्तु आर्किमिडीज की कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। मिकोस ने खाना परोसा, बर्तन उठाने के लिये जब मिकोस गया तो देखा कि स्वामी ने खाना छुआ तक नहीं। मिकोस के अत्यधिक आग्रह पर आर्किमिडीज ने थोड़ा सा खाया। उसके बाद अपना काम निपटा कर मिकोस अपने दोस्त मिलान से मिलने चला गया।

बाल फोंडके

चक्कर घूम गई। इस लापरवाही की सजा उसे तुरन्त मिल गई। स्वामी की काफी झिड़कियां खानी पड़ीं।

एक बार राजा ने जुपिटर देवता को अर्पण करने के लिये एक मुकुट बनवाया था। अर्पण का समारोह आज सम्पन्न होने वाला था। इस समारोह के लिये मिकोस के स्वामी आर्किमिडीज भी निमंत्रित थे। इसलिये सवेरे से ये दोनों व्यस्त थे। आर्किमिडीज के नाश्ता करके बाहर जाने के पश्चात मिकोस भी अपने दोस्त मिलान को मिलने के लिये आजाद था। मिलान राजमहल में नौकरी करता था। इसलिये आज का समारोह देखने का अपूर्व अवसर मिकोस को मिलने वाला था।

थोड़ी ही देर बाद आर्किमिडीज अच्छी पोशाक पहन कर बाहर निकले। मिकोस ने जल्दी-जल्दी सारे काम निबटा लिये और अपनी सबसे अच्छी पोशाक पहन कर वह बाहर निकलने ही वाला था कि उसने स्वामी को ही वापिस आते हुये देखा। स्वामी का मूड बिल्कुल खराब था। वह अपनी ही धुन में था। मिकोस ने तुरन्त दरवाजा खोला। स्वामी सीधे ही कुर्सी में बैठ गये। मिकोस को लगा कि कहीं न कहीं कोई गड़बड़ी है। वह भी चुपचाप अंदर जाकर बैठ गया। दोनों ही पूरी तरह शांत थे।

बाजार से गुजरते समय मिकोस ने लोगों की भीड़ देखी। लोग आपस में किसी बात पर बहस कर रहे थे। वह एक जगह रुका। उसने सुना "इन चोरों को फांसी पर लटकाना चाहिये", एक आदमी गुस्से से कह रहा था दूसरे ने पूछा "लेकिन ऐसा क्या हुआ?" पहले ने जवाब दिया "क्या हुआ, पूछ रहे हो! जुपिटर देवता को चढ़ाने के सोने के मुकुट में मिलावट की गई है"। दूसरे ने फिर पूछा "लेकिन क्या यह बात सच है? या राजा के दिमाग की उपज है?" इस प्रकार की चर्चा जोरों पर थी। मिकोस वहां से चल दिया। वह केवल यह जान पाया कि मुकुट के बारे में कोई समस्या है। परन्तु मिलान के पास जाते ही सारी बात साफ हो गई। क्योंकि मिकोस के कुछ पूछने से पहले ही मिलान ने पूछा, "तुम्हारे मालिक क्या कर रहे हैं?"

मिकोस ने जवाब दिया "यही तो समझ में नहीं आ रहा है। समारोह के लिये जाता हूं, कह कर गये और थोड़ी देर में वापिस आ गये। तब से एक कुर्सी पर बैठे हुये हैं। कुछ बोलते भी नहीं। खाना खाने की भी सुध नहीं है। तुम्हारे यहां से कुछ पता लगेगा यह सोचकर घर से निकला तो रास्ते में मारामारी।"

"मारामारी!"
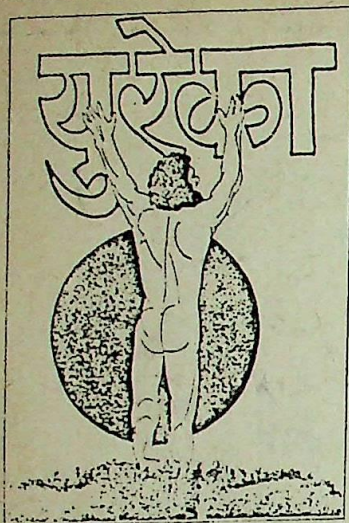
"और नहीं तो क्या? मुकुट पर से कुछ विवाद निकला और दो व्यक्तियों के बीच बात बढ़ गई।" इस प्रकार मिकोस ने अपनी सारी कहानी बखान की।

"सही है" रहस्योद्घाटन करते हुये मिलान बोला "जुपिटर देवता को अर्पण करने के लिये मुकुट कल स्वर्णकार के यहां से बनके आया। उस की नक्काशी, आकार, रूप आदि राजा को बहुत पसंद आये। लेकिन राजा को ऐसी शंका है कि मुकुट शुद्ध सोने का नहीं है।"

'क्यों?"

"क्यों और कैसे? आशंका आ गई। वह स्वर्णकार भी जरा तिकड़मबाज है"।

"तो उसे पकड़ के दरबार में लाते और कोड़े से पिटवाते, अपने आप कबूल करता" मिकोस ने सीधा-साधा उपाय बताया।

"लेकिन यदि सोना शुद्ध निकला तो? आ गई न मुसीबत? इसलिये राजा जानना चाहते हैं कि उसमें किसी तरह की मिलावट है या नहीं?"

—"तो इसमें क्या मुश्किल है? उस मुकुट को गला दो"

"वही तो महाराज नहीं चाहते"

"क्यों"?

"इस मुकुट का आकार, रूप आदि महाराज को इतना भाया है कि वे कहते हैं कि यदि मुकुट को गला देते हैं और वह शुद्ध सोने का निकला तो उसी तरह का दूसरा मुकुट बनना असंभव है।"

"इसीलिये महाराज ने तुम्हारे स्वामी पर सोने की शुद्धता जानने की जिम्मेदारी सौंपी है और यदि कल सूर्यास्त तक उपाय नहीं निकला तो......"—

"तो क्या?" मिकोस ने अधीर होकर पूछा।

कुछ न बोलते हुये मिलान ने अपने गले पर हाथ घुमाकर दिखाया।

वह डर गया। स्वामी पर क्या बीतने वाली है, सोच कर रोम-रोम कांपने लगा और महाराज के बारे में कुछ घृणा पैदा हो गई।

दिन बीत गया, रात भी बीती और सूर्योदय भी हो गया लेकिन आर्किमिडीज के मन में अंधेरा ज्यों का त्यों रहा।

सवेरे का नाश्ता भी अनछुआ रहा। मिकोस का मन भी विचलित था। इसलिये उसने गलती से नहाने का टब पानी से पूरा भर दिया और स्वामी को पानी रखने की सूचना दे दी। चंद ही मिनटों बाद स्नानगृह से उसके स्वामी की जोर-जोर की आवाज सुनाई दी, मिकोस की तंद्रा टूटी। एहसास हुआ शायद हर दिन की तरह टब में डूबा रह कर स्नान करते हुये स्वामी के मन में समस्या का हल सूझ गया है। उसे लगा कि स्वामी का यह शायद आखिरी स्नान है। टब में पूरा पानी भरने की गलती की क्षमा किन शब्दों में मांगे, मिकोस यह भी सोचता रहा। वह हाथ जोड़े हुये स्नानगृह में गया। लेकिन स्वामी थे कहां?

स्नानगृह का दरवाजा पूरा खुला था, नंगे शरीर से पानी की बूंदें टपक रही हैं इसकी सुध मालिक को नहीं थी। वह "युरेका" "युरेका" कहते हुये आम रास्ते से नंगे बेतहाशा भागे जा रहे थे।

एक क्षण के लिये तो मिकोस असमंजस में पड़ गया। लेकिन तुरन्त उसने स्वामी के कपड़े लिये और उनके पीछे दौड़ पड़ा।

उधर राजा के दरबार में इस प्रकार का दृश्य इसके पहले कभी नहीं दिखाई दिया था। अपने कपड़ों की सुध न रखने वाला आर्किमिडीज गीले शरीर से दरबार में खड़ा था। संतरियों के रोकने की परवाह न करते हुये मिकोस भी कपड़ों के साथ वहा पहुंच गया। दरबार के सारे लोग इस दृश्य को देखकर विस्मित हो गये। महाराज ने हाथ उठाकर सबको शांत होने का इशारा किया। दरबार में शान्ति स्थापित हो गई। अवसर का लाभ उठाते हुये मिकोस ने अपने हाथों में संभाले हुये कपड़े स्वामी के शरीर पर डाल दिये।

राजा विस्मित होकर आर्किमिडीज की ओर देख रहे थे। राजा ने आर्किमिडीज को इतना अधिक उत्तेजित पहले कभी नहीं देखा था। उनको संदेह हुआ कि समस्या का हल न मिलने की स्थिति में शिरच्छेद हो जाने के आदेश से भयातुर आर्किमिडीज भ्रमित तो नहीं हो गया है, कहीं पागल तो नहीं हो गया। लेकिन राजा स्वयं में निश्चिन्त थे कि धमकी अमल में तो नहीं लाई जानी थी, कुछ उपाय निकालने के लिये भरसक प्रयत्न किया जाये, इसीलिये वह धमकी थी। मुकुट अर्पण करने का एक मुहूर्त्त टल गया था और दूसरा मुहूर्त तुरन्त निकाल लिया जाये इसी के लिये वह धमकी थी। महाराज ऐसा सोच ही रहे थे कि आर्किमिडीज अधीरता से चिल्लाये "महाराज", "महाराज"। इस अधीरता से चिल्लाने के कारण राजा आर्किमिडीज की ओर घूरने लगे। उन्होंने कहा "आर्किमिडीज शांत हो जाओ। यह क्या हो रहा है, हमें बताया जाये।"

"महाराज आपने जो काम मुझ पर सौंपा था, वह समस्या....." उत्तेजना के कारण आर्किमिडीज अपनी बात पूरी नहीं कर पा रहे थे। "उसका क्या?" महाराज ने पूछा।

"उसका समाधान मिल गया महाराज"। आर्किमिडीज की इस बात से सारा दरबार उत्तेजित हो उठा। सारे लोग आपस में बतियाने लगे।

महाराज ने एक बार फिर हाथ उठा कर शांत होने का निर्देश दिया और आर्किमिडीज से कहा,

"तो बताओ, सोना शुद्ध है या नहीं?"

"यह बात ठीक ढंग से बताने के लिये एक प्रयोग करने की आवश्यकता है महाराज" आर्किमिडीज बोले।

"ठीक है हम अनुमति देते हैं"।

"महाराज अपने सेवकों को एक बड़ी थाली, तीन-चार छोटे प्याले और पानी लाने के लिये कहिये"।

"दरबार के समय का यह अपव्यय है महाराज," प्रधानमंत्री गुस्से से बोल पड़े। लेकिन महाराज का आर्किमिडीज पर पूरा विश्वास था तथा उसकी विद्वता के प्रति उन्हें अभिमान था। इसलिये प्रधानमंत्री की बात को अनदेखी करते हुये आर्किमिडीज की मांगी हुई वस्तुयें लाने का आदेश महाराज ने दिया। अविलंब सारी वस्तुयें दरबार में पेश की गई।

अब तक बंद की हुई अपनी मुट्ठी को खोल कर आर्किमिडीज ने एक पत्थर और लकड़ी का एक टुकड़ा सामने रखा। इन वस्तुओं को ऊपर उठा कर महाराज को दिखाते हुये उसने कहा,

"महाराज यह पत्थर और लकड़ी का टुकड़ा दोनों का आयतन समान है। किन्तु इनका भार अलग-अलग है। लकड़ी का टुकड़ा यदि पानी में डालें तो वह तैरेगा क्योंकि वह हल्का है, लेकिन पत्थर डूब जायेगा क्योंकि वह भारी है।"

सभी ने सहमति दर्शाते हुये गर्दन हिलाई। सभी को यह बात मालूम थी।

"बस इतनी सी बात बताने के लिये दरबार का इतना समय नष्ट किया" प्रधानमंत्री तिरस्कार पूर्ण स्वर में बोले।

"नहीं महानुभाव, मेरी बात अभी पूरी नहीं हुई।" आर्किमिडीज शांत भाव से बोले।

"अब देखो, पानी से पूरे भरे हुये इस प्याले में यह लकड़ी का टुकड़ा छोड़ता हूं। यह तैर रहा है फिर भी पानी की सतह बढ़ने के कारण कुछ पानी थाली में गिर गया है। आर्किमिडीज ने थाली में गिरा हुआ पानी एक खाली प्याले में इकट्ठा किया। इसको अलग रखते हुये वह प्याला फिर पानी से पूरा भर दिया और उसमें वह पत्थर का टुकड़ा डाल दिया। उसने कहा "पत्थर का टुकड़ा डूबकर नीचे तल पर पहुंच गया है लेकिन इस पत्थर के कारण थाली में गिरे हुये पानी का आयतन या भार अगर हम निकालें तो पहले लकड़ी से गिरे हुये पानी के बराबर होगा"।

ऐसा बोलते-बोलते वह पानी उसने एक दूसरे प्याले में भर दिया। और दोनों प्याले महाराज के सामने रख दिये और कहा,

"यही वह उत्तर है, महाराज"

आर्किमिडीज की बात बिल्कुल समझ में न आने के कारण प्रधानमंत्री बोल पड़े "क्या बच्चों का खेल है महाराज, हमें मुकुट का सोना शुद्ध है या नहीं इसकी परीक्षा करनी है न कि पत्थर और लकड़ी का खेल।"

महाराज बोल पड़े "ऐसी पहेली न बुझाओ आर्किमिडीज"।

"पहेली नहीं यह उत्तर है और बड़ा सरल है महाराज। यद्यपि यह लकड़ी का टुकड़ा और पत्थर इन दोनों का आयतन एक जैसा है तथापि इनके भार भिन्न हैं क्योंकि इनके गुणधर्म भिन्न हैं। इसीलिये
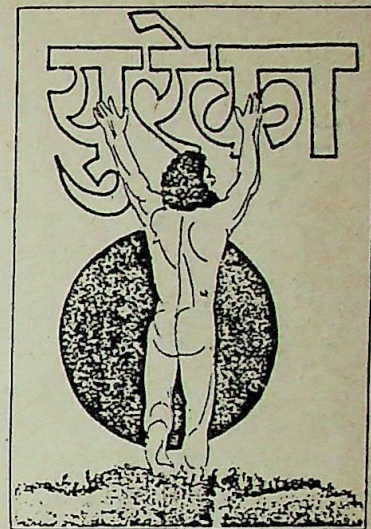
यदि एक समान भार के लकड़ी का टुकड़ा और पत्थर लिया जाये तो उनके आयतन भिन्न होंगे। अर्थात पानी से पूरे भरे हुये प्यालों में वे यदि डाले जायें तो इनके कारण थाली में गिरने वाले पानी का आयतन भिन्न होगा, मुकुट के लिये हमें यह ही प्रयोग करना है। मुकुट को बिना मोड़े-तोड़े हम यह प्रयोग कर सकते हैं। मुकुट के बराबर के भार की शुद्ध सोने की एक ईंट लेकर हम इसके कारण गिरने वाले पानी का आयतन निकालेंगे और यदि यह आयतन मुकुट से गिरने वाले पानी के आयतन के बराबर निकला तो मुकुट शुद्ध सोने का है यह सिद्ध हो जायेगा यदि नहीं तो...."

"उस स्वर्णकार के दिन पूरे हो गये समझिये," मिकोस चिल्लाया, वह अपने आपको रोक नहीं सका।

"बिल्कुल ठीक" मिकोस! "देखो, प्रधानमंत्री, मेरा क्या तात्पर्य है यह मिकोस के भी समझ में आ गया" आर्किमिडीज ने शांति से कहा।

यह तर्क महाराज भी समझ गये थे और पूर्णतः सहमत भी हो गये थे। उन्होंने विलंब किये बिना भंडारगृह से शुद्ध सोने की ईंट लाने का आदेश दिया और तत्काल मुकुट की परीक्षा की। इस तरह संदेह दूर होते ही वे सोने की शुद्धता के बारे में आश्वस्त हो गये। महाराज अत्यधिक प्रसन्न हुये और मुकुटार्पण का दूसरा मुहूर्त्त निश्चित कर मुकुट अर्पण करने का सम्मान आर्किमिडीज को दिया गया।

सारे दरबार में आर्किमिडीज की जय-जयकार हुई।

लेकिन आर्किमिडीज का ध्यान था कहां? समस्या का समाधान बताने के बाद उसे इस विषय में रुचि नहीं रही। वह फिर चिन्तन में डूब गये किसी और समस्या के समाधान में। इसी धुन में मिकोस के पहनाये हुये वस्त्र आर्किमिडीज के शरीर से फिर गिर पड़े। उसे अपनी निर्वस्त्रता का भी ध्यान नहीं था।

[डा. बाल फोंडके, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-12]

विज्ञान के लम्बे हाथ

स्टुअर्ट एस. काइंड

अपराधी को पकड़ने के लिये विवेक का सहारा तो मानव ने उसी समय से लेना आरंभ कर दिया था जब से अपराध जन्मा परन्तु विज्ञान के मूर्त रूप का उपयोग अपराधी की गर्दन तक पहुंचने के लिये कब, कहां और कैसे आरंभ हुआ यह बता पाना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। लेकिन एक बात जो निश्चित है वह यह है कि जैसे-जैसे विज्ञान का विकास होता गया वैसे-वैसे उसके विभिन्न पहलुओं का प्रयोग अपराधी को पहचानने में बढ़ता गया।

चोरी, डकैती, बलात्कार, धोखा-धड़ी, जालसाजी, तस्करी, नशीली दवाओं की बिक्री, नकली दवाओं का उत्पादन, जाली

रक्त का नमूना

रक्त कोशिकाओं से निष्कर्षित डी एन ए
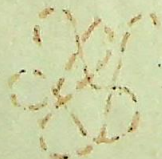
एन्जाइम द्वारा डी एन ए का विभाजन
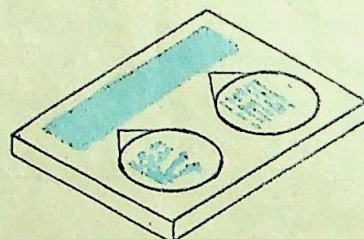
इलैक्ट्रोफोरेसिस के दौरान एगेरोज जैल में डी एन ए खण्डों का बैण्डों में पृथक्करण

साउदर्न ब्लौटिंग तकनीक द्वारा जैल में डी एन ए बैण्डों का नायलान झिल्ली में स्थानान्तरण

रेडियोधर्मी डी एन ए प्रोब तैयार करना

झिल्ली पर डी एन ए प्रोब का विशिष्ट डी एन ए क्रम में आना

शेष डी एन ए प्रोब को हटाना

झिल्ली पर रेडियोधर्मी प्रोब का डी एन ए पैटर्न में आना

रेडियोधर्मी पैटर्न प्राप्त करने के लिये झिल्ली की एक्स-किरण फिल्म लेना

"डी एन ए फिंगर-प्रिन्ट" अथवा डी एन ए बैण्डों की विकसित एक्स-किरण फिल्म

डिग्रियों का प्रयोग आदि अनेक ऐसे अपराध हैं जिनको सुलझाने के लिये विज्ञान का सहारा लिया जाता है। यही नहीं विज्ञान ने कई रक्षात्मक तरीके भी सुझाये हैं जिनके प्रयोग से अपराधी सहज ही चंगुल में आ फंसता है।

वास्तविक अपराधी तक पहुंचने के लिये आज कई वैज्ञानिक तरीके प्रयोग किये जाते हैं। अनेक ऐसे विकल्प हैं जो अपराधगुत्थी को सुलझाने के काम में लाये जाते हैं। इनमें खून के धब्बों की पहचान, घटनास्थल पर पाये चिन्हों की पहचान, अंगुलियों के निशान की पहचान, घटनास्थल पर पाये द्रव-पानी, शराब, चाय आदि का रासायनिक संश्लेषण, गोली चलाये जाने का गणितीय निदर्शन करना आदि सम्मिलित हैं। इस लेख में खून के धब्बों की पहचान, घटनास्थल पर प्राप्त चिन्हों की जांच तथा अंगुलियों के निशान के अध्ययन के बारे में वर्णन है।

खून के धब्बों की जांच या ब्लड स्टेनिंग

अपराधी की पहचान में खून के धब्बों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। अपराध साक्ष्य के रूप में खून के धब्बों को मान्यता उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में मिली थी। खून के धब्बों की जांच के मामले में तीन मुख्य वैज्ञानिक पहलू सुलझाने होते हैं। घटनास्थल पर मिले धब्बे खून के हैं या किसी और चीज के, खून के धब्बे मनुष्य के खून के हैं या और किसी अन्य जन्तु के और यदि मनुष्य के खून के हैं तो किस व्यक्ति के?

खून के धब्बों की जांच से संबंधित कुछ रोचक घटनायें इस प्रकार हैं। सन् 1811 में इंग्लैंड में हुई एक हत्या के मामले में विशेषज्ञों से यह पता लगाने के लिये कहा गया था कि घटनास्थल पर मिले धब्बे रक्त के हैं अथवा किसी पेन्ट के। सन् 1828 में दो फ्रांसीसी दार्शनिकों-फ्रौंकॉइस रास्पेल तथा मैथ्यू ओरफिला—में इस बात पर काफी जोरदार बहस हुई थी कि रक्त के धब्बे एक पहचान का रूप ले सकते हैं। रास्पेल का विश्वास था कि किसी भी रासायनिक अथवा सूक्ष्मदर्शी से यह पता नहीं लगाया जा सकता कि अमुक धब्बे खून के हैं अथवा किसी अन्य पदार्थ के जबकि ओरफिला के मतानुसार यह संभव था। बाद में हुये अनुसंधानों ने ओरफिला को सही सिद्ध कर दिया और रास्पेल को 15 फ्रैंक का जुर्माना अदा करना पड़ा।

खून के धब्बों की जांच में उन्नीसवीं शताब्दी ने कई अध्याय जोड़े। सन् 1868 में छपी एक अंग्रेजी पुस्तक 'गाइस प्रिन्सिपल्स आफ फोरेन्सिक मेडिसिन' में खून के धब्बे की जांच पर विस्तृत जानकारी दी गई है। यह विवरण इतना सटीक है कि आज भी किसी धब्बे को खून का धब्बा सिद्ध करने के लिये इसमें दी गई विधि ही प्रयुक्त की जाती है।

खून के धब्बे किस जाति-वर्ग के हैं यह पता लगाना टेढ़ी खीर के समान था। समय-समय पर विभिन्न न्यायालयों में सूक्ष्मदर्शी परीक्षणों पर आधारित दलीलें भी पेश की गई पर वकीलों, न्यायधीशों एवं स्वयं वैज्ञानिकों ने उन्हें पूर्ण रूप से मानने में हिचकिचाहट दिखाई। अन्ततः उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक जर्मन वैज्ञानिकों ने घटनास्थल के खून के जाति वर्ग का पता लगाने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली। इसके लिए प्रयुक्त विधि को उन्होंने "रक्त का प्रेसिपिटिन टेस्ट" नाम दे दिया, तब से आज तक संसार की अपराध विज्ञान प्रयोगशालाओं में इस विधि से परीक्षण किया जाता रहा है क्योंकि यही एक पहचान अपराधी को पकड़ने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होती है। इस विषय पर इसके बाद भी शोध होते रहे और 1901 में आस्ट्रिया के रोग विज्ञानी लैण्डस्टीनर ने बताया कि
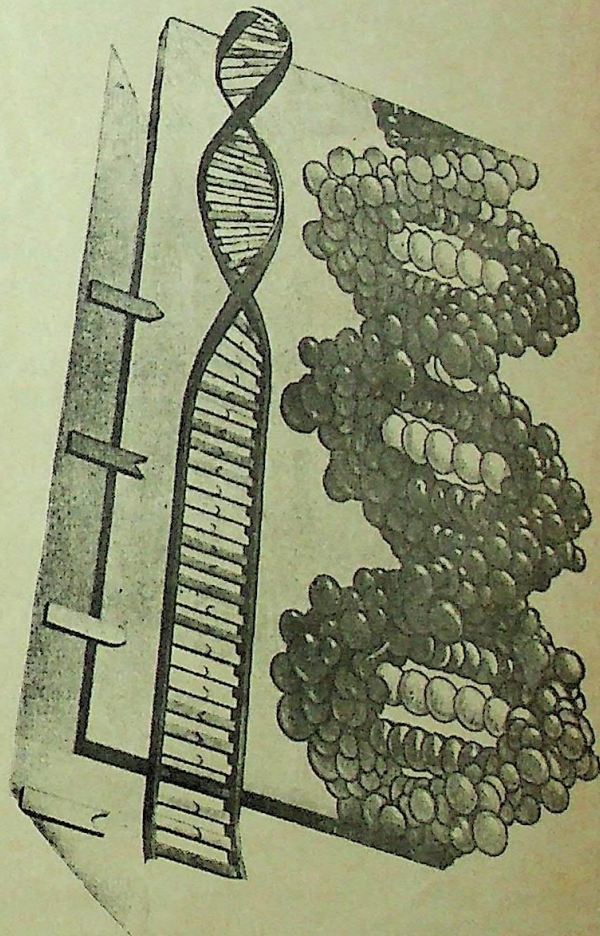
डी एन ए

मानव रक्त अलग-अलग रक्त-समूहों का होता है। इससे यह समस्या कुछ हद तक सुलझी पर पूरी समस्या सुलझाई "डी एन ए प्रोफाईलिंग तकनीक" ने जिससे पूरी तरह यह पता लग जाता है कि घटनास्थल पर मिले खून के धब्बे किस व्यक्ति विशेष के हैं।

चिन्हों की जांच

घटना-स्थल पर मिले चिन्ह ही किसी अपराध को सुलझाने में काफी सहायक होते हैं। इन चिन्हों का मिलान अपराधी से संबंधित किसी वस्तु से करके उसे एक सक्षम प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस बात का उपयोग मानव संभवतः आदि काल से ही

करता आया है। एक यूनानी कथा के अनुसार सिसीफस नामक व्यक्ति निशान देही के महत्व को जानता था। उसने अपने पशुओं के खुरों में विशेष प्रकार के निशान बना रखे थे। इन्हीं के आधार पर सिसीफस ने उस समय के प्रसिद्ध पशु-चोर आटोलिकस को चोर सिद्ध किया था।

गोली के आकार और उस पर अंकित चिन्हों का अध्ययन कर यह पता लगाना कि वह किस बन्दूक,तमन्चे आदि से निकली है, अब साधारण बात हो गई है। यही नहीं गोली की स्थिति, कोण, शरीर में गहराई आदि का अध्ययन कर यह भी अनुमान लगाना संभव हो गया है कि गोली कितनी दूरी से, किस हाथ से, कितना कोण बनाती हुई चलाई गई थी। कपड़ों व हाथ के मैल आदि के रासायनिक विश्लेषण से यह भी पता लगाया जा सकता है कि गोली चलाने वाला व्यक्ति कौन था।

अंगुलिछाप या फिन्गरप्रिन्ट

विशिष्ट पहचान में अंगुलियों के निशानों का अपना एक विशेष महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति की अंगुलियों पर ये चिन्ह विशेष आकार लिये रहते हैं। अंगुलियों के चिन्ह का प्रयोग पहचान के रूप में कम और साक्ष्य के रूप में अधिक भारत सहित कई पूर्वी देशों में प्राचीन काल से होता आया है। लेन-देन के कार्य में अंगूठे के निशान का उपयोग भारत में सर्वविदित है। सन् 1860 में अंग्रेज शासक विलियम हर्शेल निशान की इस प्रणाली से इतना प्रभावित हुआ कि उसने इसका उपयोग मिलिटरी पैंशन की अदायगी का प्रमाण रखने के लिये किया था। अंगुलियों के रेखाचित्र से वह इतना मुग्ध हुआ कि बाद में उसने इन चिन्हों का विस्तृत अध्ययन भी किया। लेकिन घटनास्थल पर पाये गये अंगुलियों के निशानों का साक्ष्य के रूप में उपयोग कर अपराधी तक पहुंचने का मौलिक सुझाव जापान में कार्यरत स्काटलैंड के काय-चिकित्सक हेनरी फॉल्ड ने दिया था। उनका मत था कि घटनास्थल पर प्राप्त अंगुलियों के निशानों को उजागर कर उनका मिलान संभावित अपराधियों की अंगुलियों के निशान से किया जा सकता है और इस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से अपराधी की पहचान की जा सकती है। सन् 1880 में उन्होंने अपने इस मत की सूचना एक पत्र द्वारा "नेचर" पत्रिका को दी थी। इसमें उन्होंने अंगुलियों की रेखाओं के बारे में उत्कंठा जागृत की थी।

एक अंग्रेज जीव-वैज्ञानिक तथा पालीमैथ, फ्रांसिस गैल्टन ने अंगुलि छापों का विस्तृत अध्ययन कर उनका वर्गीकरण भी किया ताकि आवश्यकता पड़ने पर संभावित व्यक्ति के अंगुलियों के निशान के मिलान का कार्य सरलता तथा तीव्र गति से हो सके। इस विषय पर उनकी एक पुस्तक "फिंगर प्रिन्टस" 1892 में प्रकाशित हुई। इस प्रकाशन ने अपराध जगत को काफी प्रभावित किया और उसी वर्ष अर्जेन्टीना में हत्या के एक मामले में हत्यारा अंगुलियों के निशान के आधार पर पकड़ा गया जो संभवतः इस प्रकार सुलझाया जाने वाला पहला मामला था। इंग्लैंड में इस विज्ञान को एडवर्ड हेनरी ने बढ़ावा दिया, हेनरी द्वारा समझाया गया वर्गीकरण का नया तरीका आज भी सारे संसार में प्रयुक्त किया जाता है और इसे उनके नाम पर ही "हेनरीफार्म" कहा जाता है।

अपराध विश्लेषण में मिले अंगुलिछापों का अध्ययन दो भागों में किया जाता है। पहले भाग में निशानों को प्राप्त करना तथा दूसरे में प्राप्त निशानों का संभावित अपराधियों की अंगुलियों के निशानों से मिलान करना।

घटनास्थल से निशान प्राप्त करने के लिये प्रायः एक विशेष प्रकार का पाऊडर डाला जाता है जो उस जगह की सतह पर अलग-अलग मात्रा में चिपकता है। इसका कैमरे द्वारा फोटो उतार लिया जाता है और फिर उसका मिलान रिकार्ड में रखे अपराधियों के निशानों से किया जाता है।

आधुनिक विधियां

कभी-कभी पाऊडर छिड़कने की विधि से निशान पूर्णतः उजागर नहीं हो पाते। ऐसी सतहों पर से निशान प्राप्त करने के लिये 'वैक्यूम मेटल डिपोजिशन' विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का
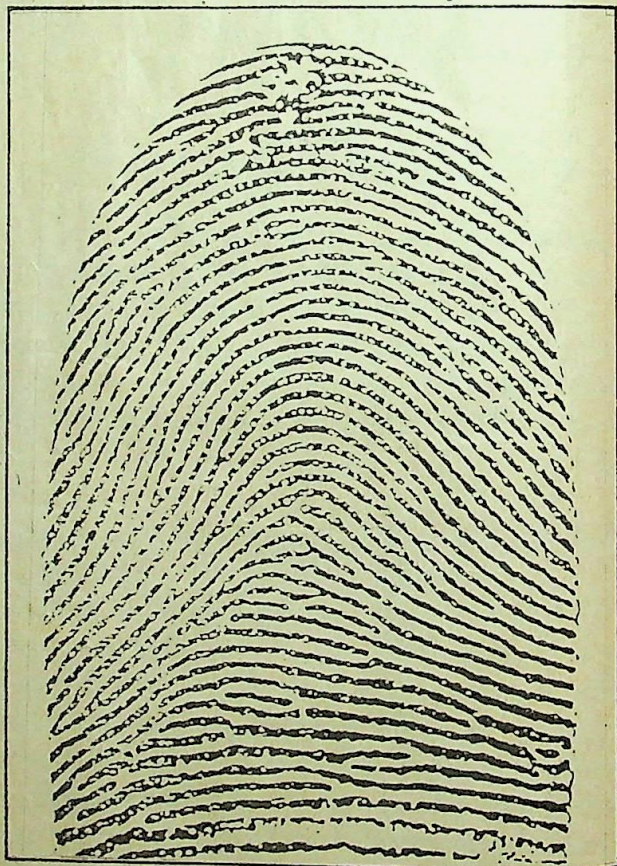
विकास अपराध और न्याय से संबंधित पेरिस की एक प्रयोगशाला में हुआ था और बाद में इसका विस्तार लंदन के वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विकास विभाग ने किया।

इस विधि में परीक्षण करने वाली वस्तु को उच्च निर्वात पर रख कर पहले स्वर्ण की फिर जस्त की वाष्प प्रवाहित की जाती है। इससे वाष्पित धातुओं के कण उस वस्तु की छुई तथा अनछुई सतहों पर विभिन्न मात्रा में जमते जाते हैं। इसी अन्तर के कारण अंगुलियों के निशान का चित्र उतार लिया जाता है। इस विधि द्वारा उभरे निशान धीरे-धीरे धुंधले पड़ने लगते हैं इसलिये निशानों का चित्र शीघ्र ही उतारना आवश्यक होता है। यह विधि महंगी जरूर है परन्तु इसके द्वारा ऐसी वस्तुओं पर से भी निशान प्राप्त किये जा सकते हैं जिसमें दूसरी विधियां असफल रहती हैं।

गीली सतहों पर से निशान प्राप्त करने के लिये भी अब "स्माल पार्टिकिल रिजेण्ट" नामक विधि विकसित की गई है। इसमें मालिब्डेनम डाइसल्फाइड का डिटरजेन्ट या अपमार्जक में घोल प्रयुक्त किया जाता है।

अंगुलिछापों के चित्र लेने के पश्चात उनका अपराधियों के निशानों से मिलान किया जाता है चूंकि निशानों का मिलान निशानों के चित्रों से करना होता है। इसलिये यह एक अत्यधिक कठिन कार्य होता है यद्यपि निशानों को "हेनरी विधि" द्वारा वर्गीकृत कर लिया जाता है। इस मिलान कार्य को शीघ्रता से तथा सरलता से करने के लिये अब कंप्यूटर की सहायता ली जाने लगी है जो कि कई हजार चित्र प्रति मिनट की गति से स्कैन करता है।

अंगुलियों पर बनी रेखाओं के मूलतः दो नमूने होते हैं। एक में पर्वतीय गोलाकार लाईनें होती हैं तथा दूसरे में पर्वतीय आकार लेने के पश्चात लाईनें बंट जाती हैं। लाईनों के पर्वतीय रूप लेने के आकार, प्रकार, स्थान, बंटने के कोण, स्थान, आदि कई ऐसे सूक्ष्म चिन्ह होते हैं जिनका मिलान किया जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले अन्य चिन्हों का भी अध्ययन एवं मिलान अपराधी की पहचान में सहायक होता है।

अपराधियों का भी डाटा बेस

जिस प्रकार कई अन्य प्रकार की सूचनाओं के आंकड़ों आदि के लिये डाटा बेस तैयार किये जाते हैं उसी प्रकार अपराधियों की दिन प्रतिदिन बढ़ती संख्या को देखते हुये, अपराधियों के भी डाटा बेस तैयार किये जाने लगे हैं। इसमें अपराधी से संबंधित हर प्रकार की सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी एक निश्चित क्रम में कम्प्यूटर में भर दी जाती है और समय पड़ने पर उसे प्रयुक्त किया जाता है। यही नहीं समय-समय पर इन जानकारियों का अद्यतन भी किया जाता है जैसे कोई विशेष अपराधी अपनी सिगरेट का ब्रांड बदल लेता है या कार्य-क्षेत्र बदलता है आदि आदि तो उसे भी डाटाबेस में तुरन्त भर दिया जाता है।

डी एन ए अंगुलि छाप

यह एक अत्यन्त आधुनिक विधि है जिसका विकास पिछले 4-5 वर्षों में ही हुआ है। अपराधी को पहचानने में यह विधि इतनी सटीक है कि यदि इसे "जादू की छड़" की उपमा दी जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इस विधि का प्रयोग मानव शरीर से प्राप्त किसी भी ऊतक जिसमें नाभिक तत्व उपस्थित हो, को लेकर किया जा सकता है। अपराध विज्ञान में जो दो द्रव महत्वपूर्ण माने जाते हैं वे हैं रक्त और वीर्य। वीर्य में डी एन ए की प्रचुर मात्रा होती है। अपराधी की पहचान के लिये इस विधि में इन दो द्रवों का ही उपयोग किया जाता है

सबसे पहले डी एन ए को वीर्य के दूसरे तत्वों से पृथक किया जाता है और फिर उसकी क्रिया एण्डोन्यूक्लिऐज से कराई जाती है। इस क्रिया में एण्डोन्यूक्लिएज डी एन ए के एक विशेष स्थान पर क्रिया करके उसे इस प्रकार तोड़ देता है कि डी एन ए छोटे-छोटे टुकड़ों में तो बंट जाता है परन्तु आधारीय क्रम ज्यों का त्यों बना रहता है। विभिन्न लम्बाई वाले डी एन ए के टुकड़ों के एक मिश्रण को वैद्युतकण संचलन विधि द्वारा ऐगारोज जेल में पृथक किया जाता है और फिर उसे नाइट्रोसेल्यूलोस झिल्ली पर शोषित करके वांछित क्रम का रेडियो सक्रिय डी एन ए प्रतिरूप संश्लेषित किया जाता है और इसकी प्रतिक्रिया झिल्ली पर उपस्थित डी एन ए से कराई जाती है। इसके पश्चात झिल्ली का आटोरेडियोग्राफ विधि द्वारा अध्ययन किया जाता है। एक्स-किरण फिल्म को विकसित करने पर जो धारीदार नमूने या बैण्ड पैटर्न मिलता है उसे ही डी एन ए फिंगरप्रिन्ट कहते हैं। अपराधी की पहचान के लिये विभिन्न संभावित अपराधियों के ऊतकों से तैयार डी एन ए फिंगरप्रिन्ट, का मिलान घटनास्थल पर पाये द्रव से तैयार किये डी एन ए फिंगरप्रिन्ट से किया जाता है। डी एन ए फिंगर प्रिन्ट में जो बैण्ड नमूने आते हैं वे प्रत्येक व्यक्ति के लिय, लेकिन जुड़वां व्यक्तियों को छोड़कर, अलग अलग होते हैं और एक व्यक्ति विशेष के आनुवंशिक संघटन को दर्शाते हैं।

इस विधि में अन्त में जो एक्स-किरण फिल्म हमारे हाथ में आती है उसमें एक निश्चित बैण्ड पैटर्न होता है। अंगुलियों से प्राप्त चिन्हों में जिस प्रकार एक विशेष पंक्ति बद्धता होती है उसी प्रकार की इस विधि द्वारा भी प्राप्त होती है। इसीलिये इस विधि का नाम "डी एन ए अंगुलिछाप" विधि रखा गया है।

[प्रस्तुति : डा. बी.एस. अग्रवाल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली-12]

आलू के छिल्के से प्रोटीन और प्लास्टिक

सम्पूर्ण विश्व में आलू का भोजन में अधिकाधिक प्रयोग होता है। इसका प्रयोग सिर्फ साग सब्जियों में ही नहीं होता बल्कि कई टन आलू तुरंत तैयार भोजन और डिब्बाबंद खाद्य उद्योगों द्वारा प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त घरों में पारम्परिक रूप से तथा कई भारतीय कम्पनियां भी आलू के वेफर, चिप्स तथा पापड़ बहुतायत में बना रही हैं। अब तक तो आलू का छिल्का बेकार समझ कर फेंक दिया जाता था। आर्गोन नेशनल लेबोरेटरी के डा. राबर्ट कोलमैन के एक अनुमान के अनुसार आलू के व्यंजनों को बनाने में केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रतिवर्ष दस करोड़ पौंड से अधिक आलू के छिल्के व्यर्थ रूप में फेंके जाते हैं।

हाल ही में कोलेमैन और उसके सहयोगियों ने आलू के छिल्कों से जैवनिम्नीकरणीय प्लास्टिक बनाने की एक उन्नत विधि विकसित की है। यह सस्ता प्लास्टिक खरीदारी और कूड़ा करकट फेंकने तथा नियत समय तक भंडारित उर्वरकों और कीटानाशकों को रखने आदि के लिये अति उपयुक्त होगा। खेतों में पलवार के ऊपर बिछाने के लिये भी यह उपयुक्त हो सकता है जो पूरी गर्मियों के बाद फसल कटने तक स्वतः ही नष्ट हो जाता है इसकी निर्माण विधि में उचित मात्रा में कुछ उपयुक्त रसायन डाल कर इसे और अधिक जैवनिम्नीकरणीय बनाया जा सकता है जो बैक्टीरिया द्वारा या फिर सौर ऊर्जा या पराबैंगनी किरणों द्वारा घुलकर स्वतः नष्ट हो सकता है।

आर्गोन विधि में आलू के छिल्कों में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट को पहले ग्लूकोस में और फिर लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर दिया जाता है जो सीधे-सीधे प्लास्टिक की चादरों में बहुलकीकृत किया जा सकता है।

इस प्रकार बनाये गये प्लास्टिक को संयुक्त राज्य के खाद्य और औषधि प्रशासन ने जैव-सुसंगत तथा एलर्जी प्रतिरोधी पदार्थ के रूप में मान्यता दे दी है।

इसी तरह की दूसरी अनुसंधान परियोजना में इडाहो नेशनल इंजीनियरिंग अनुसंधानशाला के अनुसंधानकर्त्ताओं ने एक ऐसी तकनीक विकसित की है जिसकी सहायता से आलू के छिल्कों को पौष्टिक खाद्य उत्पादों में बदला जा सकता है।

चुकन्दर के शीरे से चीनी बनाने के लिये विकसित विशिष्ट पृथक्करण तकनीक में इडाहो के जैव प्रौद्योगिकीविदों को इसके छिल्कों से प्रोटीन पाऊडर बनाने में सफलता मिली है। यदि व्यापारिक स्तर पर इसका उत्पादन होने लगेगा तो आलू व्यर्थ के बहुत बड़े भाग से पौष्टिक खाद्य पदार्थ बनाये जा सकेंगे।

सुभैया अरुणाचलम

अब आंखें टाइप करेंगी

टोरेंटो विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग विभाग ने एक ऐसे टाइपराइटर का आविष्कार किया है जिससे देखने मात्र से टाइप किया जा सकता है। विद्युत संचालित इस टाइप राइटर में 'की बोर्ड' के स्थान पर एक स्क्रीन होता है जिस पर पूरा 'की बोर्ड' अंकित होता है। इस अंकित 'की' बोर्ड की प्रत्येक कुंजी का संबन्ध टाइप राइटर के विद्युत संवेदी भागों से होता है। टाइप करते समय टाइपराइटर में धारा प्रवाहित की जाती है और टाइपिस्ट को कुछ क्षण तक टाइप करने वाले शब्द को निरन्तर देखते रहना पड़ता है इसके फलस्वरूप इच्छित शब्द स्वतः ही दब कर कागज पर अंकित हो जाता है।

यह टाइपराइटर विशेष रूप से अपंग हाथों वाले व्यक्तियों के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है।

रेशम भी बुलेट प्रूफ

इंग्लैंड की रायस्टन स्थित वी.ए. टेक्नोलॉजी कम्पनी ने ऐसा उच्च सामर्थ्य और प्रतिघात प्रतिरोधी रेशम बनाया है जो मकड़ियों द्वारा उत्पन्न रेशम जैसा है। इसकी विशेषता यह है कि यह बुलेट प्रूफ वस्त्र के रूप में तो प्रयुक्त होगा ही साथ ही एयरोस्पेस एवं स्वचालित वाहन उद्योगों के लिये भी उपयोगी होगा।

यह रेशम बैक्टीरिया द्वारा किण्वन से एक सम्मिश्र के रूप में तैयार होता है। इसका एक रेशा स्टील के रेशे की तुलना में पांच गुना ज्यादा मजबूत लेकिन हल्का होगा इसलिये इसके बने वस्त्र पहने जायेंगे ही साथ ही इससे स्वचालित वाहनों के लिये हल्के किन्तु उच्च प्रतिघात सह कलपुर्जे भी बनाये जा सकेंगे। इस रेशम का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन होने में अभी 2-3 वर्ष और लगेंगे।

अधिक हानिकर है पान मसाला

अंधाधुन्ध पान मसाले का इस्तेमाल भावी पीढ़ी के लिये भी खतरनाक हो सकता है। गुजरात कैंसर अनुसंधान संस्थान, अहमदाबाद के अनुसंधानकर्त्ताओं के अनुसार पान मसाले का इस्तेमाल क्रोमोसोमों को क्षतिग्रस्त करके शरीर में आनुवंशिक दोष उत्पन्न कर सकता है।

पान मसाले का शौकीन व्यक्ति जितना पान मसाला एक दिन में खाता है उसका बहुत कम प्रतिशत क्रोमोसोमों को हानि पहुंचाने के लिये पर्याप्त होता है, क्योंकि एक आदमी प्रतिदिन औसतन 60-80 ग्रा. तक पान मसाला खा लेता है।

क्या बला है ये....?

राज किशोर

चिकित्सक और वैज्ञानिक अभी एड्स की समस्या से निपट भी नहीं पाये हैं लेकिन उन्हें अपने कानों में एक अन्य रहस्यमयी बीमारी "सिड्स" के आतंक की थापें सुनाई पड़ने लगी हैं। एड्स जहां बच्चों से लेकर बूढ़ों एवं स्त्री-पुरुष सभी को, बिना किसी भेद-भाव के अपना शिकार बनाता है, वहीं सिड्स केवल सोते हुये शिशुओं को ही अपना शिकार बनाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शिशुओं की इस रहस्यमयी बीमारी को "अकस्मात शिशु मृत्यु लक्षण" यानि सडन इन्फैन्ट डेथ सिन्ड्रोम, संक्षिप्त नाम "सिड्स" की संज्ञा दी है। चूंकि इस रोग से ग्रस्त शिशुओं की मृत्यु निद्रावस्था में ही हो जाती है, इसलिये संगठन ने इस रोग को "शैय्या मृत्यु" भी कहा है।

लक्षण

इस रोग से ग्रस्त शिशुओं मेंरोग का आक्रमण उनकी निद्रावस्था के दौरान ही होता है। शिशुओं के माता-पिता बच्चों को पूर्णरूपेण स्वस्थ (बच्चों की 6 घातक बीमारियों से भी मुक्त) हालत में पलंग पर सोता हुआ छोड़ते हैं परन्तु सुबह वे उन्हें मृत अवस्था में पाते हैं, जबकि इस दौरान बच्चे न तो रोते हैं, न चिल्लाते हैं और न ही उनका दम घुटने जैसा कोई लक्षण दिखाई पड़ता है। इस प्रकार सिड्स के 95 प्रतिशत से भी अधिक मामलों में शिशु सोते-सोते ही असमय काल-कवलित हो जाते हैं।

सिड्स से अधिसंख्य शिशुओं की मृत्यु शीत ऋतु के महीनों में मध्य रात्रि से प्रातः आठ बजे के बीच होती है। इसके साथ ही ज्यादा भाई-बहनों वाले बच्चों (एक माता-पिता की सन्तानों) में सिड्स के आक्रमण की संभावनायें अधिक प्रबल हो जाती हैं। उन परिवारों के बच्चों की सिड्स से मरने की संभावना 4 से 10 गुना अधिक बढ़ जाती है जहां भाई या बहन की मृत्यु सिड्स के कारण हो चुकी हो। इसके साथ ही एक अन्य चौंका देने वाला तथ्य भी सामने आया है कि सिड्स के कारण लड़कियों की तुलना में लड़कों की मृत्यु अधिक होती है। यद्यपि वैज्ञानिक और चिकित्सक, दोनों ही शिशुओं की इस रहस्यमयी मृत्यु के रहस्य को उजागर करने में सतत प्रयत्नशील हैं परन्तु फिलहाल उन्हें अभी तक कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार शिशुओं की यह रहस्यमयी बीमारी लगभग पूरे विश्व में मौजूद है लेकिन सम्पन्न देशों में इसका प्रकोप अधिक है। यद्यपि अमेरिका और इंग्लैंड, शिशु स्वास्थ्य के मामले में सर्वश्रेष्ठ देश माने जाते हैं फिर भी सिड्स से मरने वाले शिशुओं की संख्या सबसे अधिक इन्हीं देशों में है। अकेले अमेरिका में ही प्रतिवर्ष लगभग 7 हजार से 10 हजार तक शिशु अपने जन्म के प्रथम वर्ष में ही सिड्स के शिकार हो जाते हैं जबकि इंग्लैंड में लगभग 2 हजार से भी अधिक शिशु प्रतिवर्ष इस रोग के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

भारत में भी

यद्यपि भारत वर्ष जैसे विकासशील देश में सिड्स के कारण शिशुओं की मृत्यु से सम्बन्धित अधिकृत जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अब तक किये गये अनुसंधानों के आधार पर इस रहस्यमयी बीमारी के होने के जो कारण और परिस्थितियां बतायी हैं, वे बहुत हद तक भारत में भी मौजूद हैं। इसलिये भारत में भी सिड्स से शिशुओं की मृत्यु की संभावनाओं से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार शिशुओं की इन असमय मौतों के लिये अन्य कारणों के साथ-साथ मां के गर्भधारण की आयु का भी सीधा सम्बन्ध है। संगठन के अनुसार शिशुओं में सिड्स से मरने का खतरा तब और बढ़ जाता है जब स्त्री के गर्भधारण की आयु 20 वर्ष से कम हो और यदि पुरुष की भी आयु 20 वर्ष से कम हो तो बच्चों की सिड्स से मृत्यु का आनुपातिक खतरा और भी अधिक हो जाता है।

सिड्स से मरने वाले 16.7 प्रतिशत शिशु वे होते हैं जिनका जन्म के तुरन्त बाद का भार काफी कम होता है। जन्म के समय 4-5 किलोग्राम भार के बीच बच्चों में सिड्स के कारण उनकी मृत्यु दर 0.91 प्रति 1000 होती है जबकि अत्यधिक कम भार वाले (लगभग 1 किग्रा. भार वाले) शिशुओं में यह दर 11.5 प्रति 1000 तक हो जाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सिड्स से शिशुओं की मृत्यु के लिये मुख्यतः दो कारणों को जिम्मेदार ठहराया है– 1. जन्म के समय शिशुओं के वजन का कम होना और 2. स्त्री का जल्दी-जल्दी गर्भ धारण करना यदि विश्व संदर्भ से हटकर भारतीय परिवेश पर नजर डालें तो यह दोनों ही कारण भारत वर्ष में मौजूद हैं।

अधिक खतरा

वर्तमान समय में विश्व स्वास्थ्य संगठन का यह मानना है कि सिड्स का निवारण एक कठिन कार्य है लेकिन संगठन के अनुसार आवश्यक सावधानियां बरत कर जैसे– 1. स्त्रियों द्वारा छोटी उम्र में और बार-बार गर्भ धारण से बचना, 2. दो बच्चों के बीच कम से कम दो-तीन वर्ष का अन्तर, 3. धूम्रपान और 4. नशीली दवाओं तथा नशीले पदार्थों का सेवन न करके, सिड्स के कारण होने वाली शिशुओं की मृत्यु दर में लगभग 40 प्रतिशत तक कमी लायी जा सकती है। □

[डा. राज किशोर, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद]

उच्च रक्तचाप में पोषक तत्वों की भूमिका

लेखक : आर.बी. सिंह तथा एस.एस. रस्तोगी; प्रकाशक : मेडिकल क्लिनिक्स तथा हॉस्पीटल, मुरादाबाद-10, इण्डिया; 1989; पृष्ठ संख्या : 226

यदि उच्च रक्त चाप का कोई विशेष कारण न हो अर्थात् इसका कारण किसी शारीरिक अंग की खराबी न हो तो ऐसे रक्तचाप को "एसेन्शियल" या "प्राइमरी" उच्च रक्तचाप कहते हैं।

स्वस्थ शरीर, रोग का उपचार तथा रोग की रोक-थाम के लिये पोषण की महत्वपूर्ण भूमिका है। पोषण की अनियमिततायें ही कई रोगों की कारक हैं। उच्च रक्त चाप के प्रत्यक्ष कारण तो अभी तक अज्ञात हैं, लेकिन इसके कुछ अनुमानित कारणों में एक कारण पोषण की अनियमितता है।

पिछले कुछ दशकों में हमारे आहार के विभिन्न पोषक तत्वों के उच्च रक्तचाप पर प्रभाव के कई पहलूओं पर काफी शोध कार्य हुआ है। इस पुस्तक में उस शोध कार्य को लेखकों ने अपनी सूझ-बूझ से विभिन्न विषयों में बांट कर सुन्दर शैली में यथाक्रम प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। मूल पुस्तक "न्यूट्रीशनल आस्पेक्ट्स आफ एसेन्शियल हाइपरटैन्शन" अंग्रेजी में है।

पुस्तक में विषय को 24 अध्यायों में बांटा गया है। इसे मुख्यत: पोषण शोधकर्ताओं तथा चिकित्सा विशेषज्ञों के लिये लिखा गया है परन्तु इसके अधिकतर अध्याय "विज्ञान प्रगति" के पाठकों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होंगे।

प्राय: सुनने में आता है कि अधिक नमक उच्च रक्त चाप का कारण है। इस विषय पर किये शोध कार्यों से भी यह निष्कर्ष निकला है कि बचपन में नमक का अधिक सेवन घातक होता है।

पोषण शोधकर्ताओं के अनुसार अधिक पोटैशियम वाला आहार उच्चरक्त चाप कम करता है। फल तथा सब्जियां पोटैशियम की अच्छी स्त्रोत मानी गयी हैं।

अधिकतर अध्ययनों में कैल्सियम उच्च रक्तचाप का कारण माना गया है, लेकिन कुछ ने इसकी कमी को भी उच्च रक्त चाप में सहायक पाया है। मैग्नीशियम युक्त आहार, हरी सब्जी, अनाज आदि, उच्च रक्तचाप वाले रोगी के लिये लाभकारी बताये गये हैं। इसी प्रकार जस्त, सेलीनियम, क्रोमियम और फास्फोरस को इस बीमारी में लाभकारी पाया है, जब कि कैडमियम, सीसा तथा पारा हानिकारक है। विटामिन "ए" व "सी" उच्च रक्तचाप में लाभप्रद हैं।

NUTRITIONAL ASPECTS OF ESSENTIAL HYPERTENSION

R. B. SINGH, MD

Medical Clinics and Hospital

मोटापा भी उच्च रक्तचाप के रोग का एक कारण है। वजन कम करने से रक्तचाप में कमी पाई गई है। रक्तचाप के बढ़ने में एल्कोहल, धूम्रपान, चाय तथा काफी का भी हाथ पाया गया है। मधुमेह (डाइबिटीज) के रोगियों में उच्च रक्तचाप की शिकायत अधिक पाई गई है, इसलिये उन्हें चीनी के कम उपयोग की सलाह दी गई है।

"एसेन्शियल उच्च रक्तचाप का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के रहन-सहन तथा उसके खान-पान की आदतों से है। मांसाहारी लोगों में यह रोग अधिक पाया गया है। शाकाहारी भोजन रक्तचाप को कम करने में सहायक पाया है। सोयाबीन, सूर्यमुखी के तेल व मक्के के तेल जिनमें बहुअसंतृप्त वसा होती है इस रोग में लाभकारी होते हैं। घी तथा मक्खन का सेवन कम करने की सलाह दी गई है। केला, अमरूद, खरबूजे आदि के सेवन से उच्च रक्तचाप कम होता है। प्याज व लहसुन भी इस रोग में उपयोगी है। रक्तचाप के रोगियों को अधिक से अधिक फल, सब्जियां, तन्तुयुक्त अनाज तथा मछली का उपयोग करना चाहिये।

आहार के अतिरिक्त मनुष्य की शारीरिक व मानसिक अवस्था भी इस रोग से संबंधित है। मानसिक तनाव तथा शारीरिक थकान व आलस्य इस रोग के प्रमुख कारणों में हैं। शारीरिक व्यायाम, योग तथा "मेडीटेशन" रक्तचाप के नियंत्रण में सहायक होते हैं।

इन सब विषयों के अतिरिक्त पुस्तक में पोषण के आधार पर मानव व सामाजिक इकाइयों की उत्पत्ति; उच्च रक्तचाप की यंत्रसंरचना; शरीर, ऊर्जा तथा उच्च रक्तचाप का संबंध; खाद्यसामग्री का रक्तचाप से संबंध तथा समाज व सरकार का दायित्व; आहार सम्बन्धी मानक तथा भोजन की संरचना; जन जागरण तथा उच्च रक्तचाप के नियंत्रण के उपाय आदि विषयों पर प्रकाश डाला है।

इस विनिबन्ध में सूचना चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न विषयों जैसे निदान शास्त्र (इटिओलोजी), रोगमूलक शास्त्र

(पैथोजेनेसिस) का रोग विज्ञान (इपीडियोलोजी) में किये गये शोधकार्यों, पर आधारित है। पोषण व आहार से सम्बन्धित प्रचुर मात्रा में सूचिबद्ध सूचना पुस्तक में है।

पुस्तक की भाषा सरल तथा प्रस्तुति सुन्दर है। छपाई ठीक है, लेकिन प्रोडक्शन की दृष्टि से इसे और सुधारा जा सकता था। पुस्तक में चित्रों की कमी महसूस होती है। ऐसी वैज्ञानिक पुस्तक में अनुक्रमणिका अवश्य देनी चाहिये थी।

पुस्तक विशेषज्ञों के अतिरिक्त हर उम्र के पाठकों के लिये भी उपयोगी है। इसमें मूल्य नहीं दिया है, जो हो सकता है हर पाठक के पहुंच तक न हो लेकिन यह पुस्तकालयों के लिये अवश्य लाभकारी होगी। पुस्तक का भारतीय भाषाओं में अनुवाद वांछनीय है।

(श्री एम.एस.एस. कार्की, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली)

बैलगाड़ियां और उपग्रह

विज्ञान और तकनीकी का भारत में विकास

लेखक : मोनिशा बाबू; अनुवादक : पी.एल. चित्रकार; प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली-110 016; पृष्ठ : 64 मूल्य : रु. 5.00
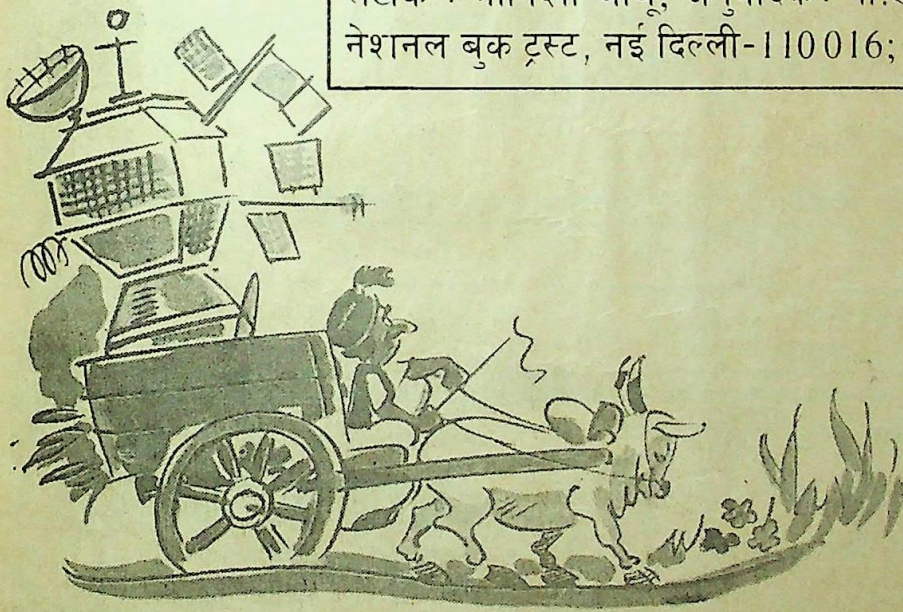
प्रस्तुत पुस्तक के नौ अध्यायों में आजादी से पूर्व तथा आजादी के पश्चात भारत में हुये विज्ञान के प्रसार का वर्णन है। पहले सात अध्याय आजादी से पूर्व तथा बाद में दो अध्याय आजादी के बाद में हुये विज्ञान की प्रगति की झलक प्रस्तुत करते हैं। पहले सात अध्यायों में सिन्धु नदी की घाटी सभ्यता से लेकर ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीय विज्ञान के पतन तक की कहानी का वर्णन है।

प्रथम अध्याय में लेखक ने सिंधु नदी घाटी के मोहनजोदड़ो नगर का वर्णन किया है और दिखाया है कि यह नगर, नगर नियोजन के लिये गौरव की बात थी। अध्याय दो में भारत में चिकित्सा विज्ञान और खगोल शास्त्र की उन्नति का वर्णन है और वैदिक ग्रंथों में यह दिखाया गया है कि उस समय भी भारतीय लोगों को शव विच्छेदन (पोस्ट मार्टम) का अच्छा ज्ञान था। अध्याय तीन में मौर्य शासन के दौरान हुई कृषि की प्रगति तथा उसमें प्रयोग होने वाले कृत्रिम सिंचाई साधनों के प्रयोग और अंक निर्माण में अत्यधिक अभियांत्रिक निपुणता का वर्णन है। इसी प्रकार अशोक के समय में सड़कों के निर्माण में हुए भूमि सर्वेक्षण तकनीकी का वर्णन है। अध्याय चार में आयुर्वेद के दो प्रसिद्ध ग्रंथ "चरक सहिंता" तथा "सुश्रुत सहिंता" का वर्णन है। इस अध्याय में यह भी बताया है कि चरक को हृदय तथ रक्त संचार का भलीभांति ज्ञान था। अध्याय पांच में गुप्त काल में हुये प्रसिद्ध वैज्ञानिक जैसे आर्यभट्ट, लतादेव, बराहमिहिर, भास्कर और ब्रह्मगुप्त तथा उनके वैज्ञानिक कार्यों का वर्णन है। दिल्ली का लौह स्तंभ, नालन्दा में 80 फुट ऊंची भगवान की तांबे की मूर्ति इस काल में हुये धातु वैज्ञानिकों की कार्य कुशलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। अध्याय छः में सवाई जयसिंह द्वारा स्थापित वेधशालाओं का उल्लेख है। अध्याय सात में ब्रिटिश साम्राज्य में हुये भारतीय विज्ञान के पतन के कारणों पर प्रकाश डाला गया है और जगदीश चन्द्र बोस तथा सी.वी. रमन द्वारा किये महान कार्यों का उल्लेख है। इस प्रकार लेखक ने इन सात अध्यायों में यह सिद्ध किया है कि भारत में वैज्ञानिक अनुसंधानों की धारणा आदिकाल से ही थी।

अध्याय आठ तथा नौ में भारत वर्ष में आजादी के पश्चात वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये किये गये प्रयत्नों का वर्णन है तथा गत 35 वर्षों में हुई विभिन्न क्षेत्रों की उपलब्धियों जैसे नाभिकीय ऊर्जा, अंतरिक्ष तथा इलेक्ट्रानिकी का वर्णन है। पुस्तक में आजादी के पश्चात् हुये विज्ञान विकास के विषय में जो लिखा है वह अपर्याप्त है लेकिन पुस्तक पढ़ने में रोचक है। इतने कम पृष्ठों में ही लेखक ने अपनी बात सही और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत की है।

(श्री के.सी. गर्ग, राष्ट्रीय विज्ञान प्रौद्योगिक और विकास अध्ययन संस्थान, डा. के.एस. कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली-110 012)

ग्राहकों के लिए सूचना

1. "विज्ञान प्रगति" (हिंदी वैज्ञानिक मासिक पत्रिका) प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) द्वारा प्रकाशित की जाती है। इसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों पर सामग्री प्रकाशित होती है। इसके पाठकों की संख्या तीन लाख से अधिक है।

2. इसकी एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। एक वर्ष के लिये शुल्क 25.00, दो वर्ष के लिये 40.00 रुपये और 3 वर्ष के लिये 60.00 रुपये है। दो वर्ष के लिये ग्राहक बनकर आप 10.00 रुपये की और तीन वर्ष के लिये ग्राहक बनकर 15.00 रुपये की बचत कर सकते हैं। चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनीआर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, निकट पूसा, नई दिल्ली-110 012** को भेजी जानी चाहिये।

3. विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

4. चैक भेजत समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें। चैक और ड्राफ्ट, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली, के नाम से भेजे जाने चाहिये।

5. कृपया ग्राहक फार्म भर कर शीघ्र भेजें।

ग्राहक फार्म

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी., हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110 012

मेरा नाम "विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में एक वर्ष के लिए (मास... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए। इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट क्रमांक..............दिनांक..............से "प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.", नई दिल्ली-110 012 के नाम से भेजे जा रहे हैं।

— हस्ताक्षर

पूरा पता ____________________

हमारे बालोपयोगी प्रकाशन

विभिन्न आयु वर्गों के बालक-बालिकाओं को सरल तथा सुबोध मातृभाषा के माध्यम से विज्ञान और टेक्नोलाजी का परिचय तथा तकनीकी जानकारी देने की दिशा में और उनमें विज्ञान के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने में हमारे अभिनव प्रकाशन उपयोगी हैं।

● ●

विज्ञान विनोद पुस्तक-माला

4 से 8 वर्ष तक के बच्चों को सरल कविताओं के माध्यम से विविध वैज्ञानिक व तकनीकी विषयों की जानकारी देने वाले बहुरंगी चित्रों से भरपूर अपनी किस्म की अकेली पुस्तक-माला। इसमें से अनेक पुस्तकें अन्तर्राष्ट्रीय बाल-पुस्तक प्रदर्शनी में पुरस्कृत हो चुकी हैं।

प्रत्येक का मूल्य 1.50 रु.

जल का चमत्कार	हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली, मलयालम तेलगू और उर्दू में।
बिजली का चमत्कार	हिन्दी, मराठी, मलयालम, बंगाली, तेलगू, उर्दू और गुजराती में।
चुम्बक का चमत्कार	हिन्दी, मराठी, मलयालम, बंगाली, तेलगू और उर्दू में।
हवा का चमत्कार	हिन्दी, बंगाली, गुजराती और मराठी में।
टेलीफोन की कथा	हिन्दी, मराठी और बंगाली में।
कांच का चमत्कार	हिन्दी में।
चर्म-प्रदायक जन्तु	हिन्दी (गद्य) में।

● ●

पुस्तक मंगाने का पता :
वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
पी.आई.डी. बिल्डिंग, हिलसाइड रोड,
नई दिल्ली-110012

ग्राहकों के लिए खुशखबरी

विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सी.एस.आई.आर. द्वारा प्रकाशित

विज्ञान प्रगति (हिन्दी मासिक)

अब आकर्षक साज-सज्जा में विशेष छूट के साथ उपलब्ध

- इसके एक अंक का मूल्य 2.50 रुपये और वार्षिक चन्दा 25.00 रुपये है।

परन्तु

- **दो वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र –40.00 रुपये अर्थात 10.00 रु. की बचत**
- **तीन वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र –60.00 रुपये अर्थात 15 रु. की बचत**

विशेष छूट का लाभ उठायें और चन्दे की राशि शीघ्र भेजें।

- यदि आप मनीआर्डर द्वारा शुल्क भेजें तो अपना नाम व पता बड़े व साफ-साफ अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर कूपन पर भी अपना पूरा पता पिनकोड नं. सहित लिखना न भूलें।
- चैक तथा डिमान्ड ड्राफ्ट "प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली" के नाम भेजें।
- विज्ञान प्रगति का प्रथम अंक वी.पी. द्वारा भी भेजा जा सकता है। यदि पाठक यह लिखित आश्वासन भेजें कि वह विज्ञान प्रगति के शुल्क से अतिरिक्त वी.पी. का खर्चा सहित अपनी वी.पी. छुड़ा लेंगे।
- अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें :-

वरिष्ठ बिक्री एवं वितरण अधिकारी प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड नई दिल्ली-110 012

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित
Regd. No. D-(C)-89

मार्च 1990 फाल्गुन 1911 मूल्य : 2.50 रुपए

ग्रीन हाऊस प्रभाव

आज़ादी के
स्तम्भ
नवम्बर के तीसरे हफ्ते में
भारत के लाखों स्त्रियों व पुरुषों ने,
युवाओं और वृद्धों ने
अपने मताधिकार का प्रयोग किया।
यहां सत्ता-परिवर्तन कई
अन्य देशों की तरह नहीं,
बल्कि लोकतांत्रिक तरीके से,
निर्बाध रूप से पर बड़ी तेजी से हुआ।
इस चुनाव से हमने एक बार फिर
सारी दुनिया को दिखा दिया कि
स्वतंत्रता और लोकतंत्र में
हमारी कितनी आस्था है,
और इससे हमें कितनी ताकत मिली है।
हमने आज़ादी व आस्था की
जो मशाल जलाई है,
उसे हम सदा प्रज्ज्वलित रखेंगे।
जनता की आवाज़
राष्ट्र की आवाज़
डीएवीपी 89/968

विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला

जनरुचि के 50 लघु विश्वकोशों की एक अनूठी संग्रहणीय भृंखला

मूल्य: 18/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें
मंगाने पर डाकखर्च माफ

■ प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री ■ प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित ■ सरस कथा शैली ■ फोटोटाइप सैट ■ बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई ■ बहुरंगी आवरण ■ वाजिब दाम

इस भृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करते हुए उसके ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार है।

उदाहरणार्थ **रोमांचक कारनामे** में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो **खोजें** में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। **अनसुलझे रहस्य** में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो **खेल और खिलाड़ी, 101 व्यक्तित्व** व **वैज्ञानिक** जीवनी-प्रधान पुस्तकें हैं। **विनाश-लीलाएं** व **दुर्घटनाएं** में मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है तो **गुप्तचर संस्थाएं, जासूस** व **जासूसी कांड** में जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं। **सभ्यताएं, मिथक एवं पुराण कथाएं** और **प्रेरक-प्रसंग** किसी भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ हैं तो **हत्यारे** में रक्त-पिपासु हैवानों की कथाएं हैं। **रोमांस-कथाएं** तथा **हस्तियों के प्रेम-प्रसंग** में लैला-मजनूं से लेकर हिटलर, कैनेडी, चार्ली चैपलिन, नेहरू जैसे व्यक्तियों के दिलों की धड़कनें हैं तो **अनमोल खजाने** में रहस्य और रोमांच से भरे खजाने हैं। **दुस्साहसिक खोज-यात्राएं** में कोलंबस, मार्को पोलो जैसे खोज-यात्रियों की गौरव-गाथाएं हैं तो **जन-क्रांतियां** में सभी महत्त्वपूर्ण क्रांतियों का ब्यौरा है। **भूत-प्रेत घटनाएं, अलौकिक रहस्य** तथा **मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे** पढ़कर आपकी रातों की नींद उड़ जायेगी। **कुख्यात महिलाएं** व **विलासी सुंदरियां** में मर्लिन मुनरो, जैक्लीन कैनेडी जैसी औरतों का निजी जीवन है तो **सनकी तानाशाह, राजनैतिक हत्याएं, तख्ता-पलट घटनाएं** व **आतंकवादी संगठन** में आपको विश्व-कूटनीति का असली चेहरा दिखायी देगा।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक सचित्र **मिनि एनसाइक्लोपीडिया** है।

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस अड्डों के बुकस्टालों पर मांगें। वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते:—

पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली-110006

शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

विषय-सूची

पृष्ठ 9

पृष्ठ 15

पृष्ठ 34

पृष्ठ 36

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

विज्ञान प्रगति

वर्ष:39, मार्च:1990, फाल्गुन:1911, अंक:3, पूर्णांक:4

विषय-सूची

पृष्ठ 40

पृष्ठ 28

पृष्ठ 16

अगले अंक के आकर्षण

खगोल विज्ञान के विकास में कहां तक पहुंचा है भारत?

क्या हैं ए एस एल वी -डी2 की असफलता के रहस्य?

जैवप्रौद्योगिकी से कैंसर का उपचार तथा

अन्य स्थायी स्तम्भ

मूलभूत परिवर्तन

मैं वर्षों से "विज्ञान प्रगति" का पाठक हूं। परन्तु जनवरी 90 जैसा अंक मैंने अब तक कभी नहीं पढ़ा। आपने पत्रिका के स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन करके सभी पाठकों का दिल जीत लिया। इसके लिये मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। "यूरेका" और "विज्ञान के लम्बे हाथ" बहुत पसन्द आये। आपका नया स्तम्भ "प्रश्न-मंच" सभी विद्यार्थियों के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। आशा है कि अब आप ऐसे ही अंक प्रकाशित करते रहेंगे।

[विकास कुमार दुहूण, आजाद नगर, बड़ौत (मेरठ)- 250611]

मूल्य बढ़ायें

नई साज-सज्जा के साथ प्रकाशित जनवरी अंक ने दिल जीत लिया। सभी स्तम्भ, लेख इत्यादि पसंद आये।

मेरा सुझाव है कि पत्रिका का मूल्य तीन रुपये कर लें इसे और नई साज-सज्जा के साथ एवं अधिक पृष्ठों के साथ प्रकाशित किया जाये जिससे पत्रिका में चार चांद लग जायें। रंगीन पृष्ठ देखकर मन खुशी से भर गया तथा इसमें विज्ञापन भी कम था। नये-नये स्तंभ भी प्रारंभ किये गये, और मुखचित्र आकर्षक था। सचमुच आपने हमें नये वर्ष का सबसे अच्छा एवं सुंदर उपहार दिया है।

[सुरेश सिंग, बाजार पारा, तिल्दा-नेवरा, रायपुर, मध्यप्रदेश]

स्तरीयता की नई शुरूआत

राष्ट्रभाषा हिन्दी में यद्यपि विज्ञान पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गई है, फिर भी "विज्ञान प्रगति" उन सब में मेरुदंड की तरह मजबूती से टिकी हुई है और इसमें दिन-प्रतिदिन निखार आता जा रहा है। जैसी रोचक, मौलिक एवं ज्ञानवर्धक सामग्री विज्ञान प्रगति में मिलती है वह किसी अन्य पत्रिका में नहीं मिल सकती। अपनी इस अलग पहचान के कारण ही विज्ञान प्रगति का स्थान निर्विवादतः अद्वितीय है। मैं विज्ञान प्रगति का नवम्बर 1985 से नियमित पाठक हूं और अब तक के समस्त अंक मेरे पास आज भी धरोहर के रूप में सुरक्षित हैं। किन्तु जनवरी 1990 का अंक तो बिलकुल नई संभावनायें पैदा कर रहा है, स्तरीयता की नई शुरूआत करता हुआ लगता है। इस अंक से कुछ नये स्तंभ "आरोग्य सलाह", "प्रश्न-मंच", "क्षितिज रेखा", "चित्रकथा" आदि प्रारंभ हुये हैं जो स्वागत योग्य हैं। इनके अतिरिक्त दो ऐसे स्तंभ हैं— "गल्प कथा" और "कणिका" जिनका सिर्फ नये सिरे से नामकरण हुआ है। ये वही "विज्ञान कथा" और "संक्षिप्त समाचार" हैं। जो हो, हम और आप अपनी जगह पर और पत्रिका अपनी जगह पर। निष्कर्षतः मैं यही कहूंगा कि इन सब परिवर्तनों से पत्रिका के स्तर में जो अभिवृद्धि हुई है वह संपादक मंडल की कोशिशों का सुपरिणाम हैं और इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

"संपादकीय" हालांकि आप आवश्यकतानुसार विशेष अवसरों पर देते हैं परन्तु उसकी प्रेरक शक्ति, दृढ़ विश्वास और पथ-प्रदर्शन हमारे भीतर आत्मविश्वास एवं लगाव के साथ-साथ आकर्षण पैदा करता है। आशा है विज्ञान प्रगति के पाठकों को यह स्तंभ नियमित प्राप्त होता रहेगा।

[कुमार महेन्द्र तिवारी "नीरज" बगुसरा, सेमरांव, भोजपुर (बिहार)]

विविध आयाम

इस समय जनवरी 1990 का विज्ञान प्रगति अंक हमारे हाथ में है। सम्पूर्ण पत्रिका ज्ञानवर्धक रही है। इसमें कोई भी वस्तु निरर्थक नहीं है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की अनुपस्थिति, कुछ जरूर अखर रही है लेकिन "प्रश्न मंच" नामक नये अध्याय ने हमारा मन मोह लिया। प्रस्तुत पत्रिका में आपने नये-नये अध्यायों के शीर्षक बड़े अच्छे दिये हैं। कणिका, क्षितिज रेखा, विविधा एवं संक्षिप्त समाचार, आरोग्य सलाह एवं गल्प कथा। "यूरेका" श्री बाल फोंडके द्वारा प्रेषित कथा बड़ी ज्ञानोपयोगी तथा ज्ञानवर्धक लगी। प्रो. एम.जी.के. मेनन के बारे में जानकारी देकर एक और नयी चीज की जानकारी इस पत्रिका के माध्यम से प्राप्त हुई। इसके अलावा आवरण चित्र बड़ा ही मनोरम तथा सुन्दर लगा, 'प्रकाशीय चाकू' तथा 'शुक्र पर निवास' विशेष सराहनीय रहे।

[निरन्जन कुमार, चौरसिया-सुल्तानपुर (उ.प्र.)]

सर्वोत्तम पत्रिका

पत्रिका नये वर्ष में नये कलेवर में नये स्तंभों और रंग बिरंगी सजधज के साथ आयी है, निश्चय ही पत्रिका हिन्दी की सर्वोत्तम वैज्ञानिक पत्रिका का लक्ष्य प्राप्त करेगी। जनवरी 1990 में "शुक्र पर निवास" अच्छा लगा। इसमें लेखक ने वास्तविक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। अंतरिक्ष के रहस्यमय संसार की पर्तें जैसे जैसे मानव उठाता जाता है यह और अधिक रहस्यमय होता जाता है। परन्तु मानव की जिज्ञासा उसे कुछ न कुछ करने को विवश कर देती है और इसी के परिणामस्वरूप अंतरिक्ष के नये आयामों का पता चलता है।

[संजीव कश्यप, बुबकपुर, दब थुआ, मेरठ (उ.प्र.); असीम कुमार सिन्हा, गंजपुर, रहुई भंडारी, नालंदा]

गागर में सागर

जनवरी अंक अपेक्षाकृत जल्दी प्राप्त हुआ। एक ही बार में सारी किताब पढ़ डाली। वास्तव में इस पत्रिका का एक-एक अंक गागर में सागर भर देने वाला होता है। पिछले कुछ महीनों से तो पत्रिका आश्चर्यजनक तरक्की कर रही है। इस अंक में "प्रकाशीय चाकू" पर दी गई जानकारी संग्रहणीय साबित हुई। इस प्रकार की जानकारी हमें अन्य किसी पत्रिका में देखने को नहीं मिलती तभी तो यह इतनी ढेर सारी पत्रिकाओं में अपनी अलग ही पहचान बनाये हुये है। प्रश्न मंच स्तम्भ आरंभ करके आप

पत्रिका में चार की बजाय आठ चांद लगा दिये हैं।

[ऋषि कुमार खदरिया, गावस्कर मार्केट, हनुमानगढ़ जं. (राजस्थान)]

कल्पना के अनुरूप

विज्ञान प्रगति का जनवरी 90 अंक मिला। बिल्कुल वैसा ही जैसा कि हमने कभी विज्ञान प्रगति की स्वप्न में कल्पना की थी। यह एक संग्रहणीय व यादगार अंक रहेगा। नयी साज सज्जा रूप रंग व नये स्तंभ पसंद आये। प्रकाशीय चाकू और शुक्र पर निवास लेख अच्छे लगे। संसार के महान गणितज्ञ के अंतर्गत हेनरी प्वांकारे के बारे में अत्यंत ज्ञानवर्धक जानकारी मिली। आशा है कि आप विज्ञान प्रगति में और नये सुधार करेंगे।

[अरुण कांत जिंदल, मोदी साईस एंड कामर्स कालेज, दिल्ली रोड, मोदीनगर (उ.प्र.)]

आकर्षक छपाई

जनवरी 90 का अंक मुझे बेहद पसन्द आया। इस अंक में लगभग 15 लेख थे, जिसमें मुझे सभी लेख अच्छे और ज्ञानवर्धक लगे। इस अंक का सुरेश नाडकर्णी द्वारा लिखित "शुभ यात्रा" बेहद ज्ञानवर्धक रहा।

विशेषत: इस अंक की छपाई नवीनतम व आकर्षक ढंग से हुई है और चित्र भी ईस्टमैनकलर में छापे गये हैं।

[दीप नारायण यादव, सपुत्र श्री जोखू राम यादव, मु. ऐबकपुर, पो.-चुनार, जि.-मिर्जापुर (यू.पी.)]

सुखद आश्चर्य

पत्रिका-परिवार को नव वर्ष की हार्दिक बधाई। वाह! आश्चर्य, सुखद आश्चर्य। नव वर्ष से पत्रिका के बदलाव को देख कर मुझे काफी हर्ष की अनुभूति हुई। आशा है परिवर्तन का चक्र सभी को पसंद आया होगा।

आवरण काफी आकर्षक और लुभावना लगा। जब पत्रिका का आवरण इतना आकर्षक है तो निश्चित ही भीतर की सामग्री भी रोचक होगी ही। आपकी पत्रिका ने इस बार सचमुच कमाल कर दिया। लेखों में "शुक्र पर निवास" और "विज्ञान के लम्बे हाथ" रोचक और ज्ञानवर्धक लगे। कृपया धन्यवाद ग्रहण करें। साथ ही सभी स्थायी स्तम्भों का क्या कहना। लेकिन अनुरोध है कि पत्रिका का मूल्य न बढ़ायें।

[अवध कुमार, द्वारा श्री ललन राय, श्री एस.पी. पाण्डेय का मकान, प. अशोक नगर, रोड़ नं. 7, कंकड़ बाग, पटना, बिहार]

अमूल्य पत्रिका

जनवरी 1990 का अंक प्राप्त हुआ। यह अमूल्य पत्रिका नये वर्ष में अपने रंग रूप में निखार लाती हुई प्रतीत हुई। इस बहुमूल्य ज्ञानवर्धक, रुचिकर तथा सर्वश्रेष्ठ पत्रिका में आपने कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं जिससे यह पत्रिका "दूज की चांद" बन बई है। जिस प्रकार इस पत्रिका को आपने नये रंगरूप, में आकर्षक साज-सज्जा से परिपूर्ण कर अनूठा बनाया है, वह प्रशंसनीय एवं सराहने योग्य है। आपने कई महत्वपूर्ण नये स्तम्भ जैसे प्रश्न मंच, आरोग्य सलाह आदि प्रकाशित कर हम लोगों के लिये इस पत्रिका को अत्यधिक उपयोगी बनाया है।

इस अंक में सभी लेख एक से बढ़कर एक हैं, परन्तु आरोग्य सलाह के अन्तर्गत श्री सुरेश नाडकर्णी का लिखा हुआ "शुभ यात्रा" बहुत ही ज्ञानवर्धक एवं रुचिकर है। लेखक ने जिस अंदाज से "मोशन सिकनेस" के बारे में समझाने की चेष्टा की है वह वास्तव में लेखक की कार्यकुशलता को परिलक्षित करती है।

[ख्वाजा असद आलम, सैयद अनवर ईमाम, मो.-हमजापुर, डा.-शेरघाटी, जिला-गया, बिहार]

विज्ञान प्रगति के स्वामित्व और प्रकाशन संबंधी सूचना

प्रपत्र-IV

(नियम-8 देखिये)

1.	प्रकाशन का स्थान	नई दिल्ली
2.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
3.	मुद्रक का नाम,	जी.पी. फोंडके
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	प्रकाशन और सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) डा. के.एस. कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली-12
4.	प्रकाशक का नाम	जी.पी. फोंडके
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	प्रकाशन और सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) डा. के.एस. कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली-12
5.	सम्पादक का नाम	दीक्षा बिष्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	प्रकाशन और सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) डा. के.एस. कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली-12
6.	व्यक्ति विशेष का नाम व पता जो पत्रिका का स्वामी, साझेदार और शेयर होल्डर हो, जो कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक का हिस्सेदार हो	वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) का प्रकाशन

मैं घोषित करता हूं कि उक्त विवरण मेरी जानकारी तथा विश्वास से पूर्णतया सत्य है।

(जी.पी. फोंडके)
हस्ताक्षर
प्रकाशक

ग्राहकों के लिए सूचना

1. "विज्ञान प्रगति" (हिंदी वैज्ञानिक मासिक पत्रिका) प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) द्वारा प्रकाशित की जाती है। इसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों पर सामग्री प्रकाशित होती है। इसके पाठकों की संख्या तीन लाख से अधिक है।

2. इसकी एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। एक वर्ष के लिये शुल्क 25.00, दो वर्ष के लिये 40.00 रुपये और 3 वर्ष के लिये 60.00 रुपये है। दो वर्ष के लिये ग्राहक बनकर आप 10.00 रुपये की और तीन वर्ष के लिये ग्राहक बनकर 15.00 रुपये की बचत कर सकते हैं। चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, निकट पूसा, नई दिल्ली-110 012** को भेजी जानी चाहिये।

3. विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

4. चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें। चैक और ड्राफ्ट, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली, के नाम से भेजे जाने चाहिये।

5. कृपया ग्राहक फार्म भर कर शीघ्र भेजें।

ग्राहक फार्म

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी., हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110 012

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में एक वर्ष के लिए (मास... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए। इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट क्रमांक .... दिनांक .... से "प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.", नई दिल्ली-110012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

— हस्ताक्षर

पूरा पता

अपनी बात

मार्च 1990

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
श्रीमती दीक्षा बिष्ट

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलबीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा
बशिष्ट ओझा

मुख पृष्ठ
पी. बनर्जी

टेलीफोन : 585359 और 586301

लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

आज के इस वैज्ञानिक युग में विज्ञान हमारे रोजमर्रा के जीवन में इस कदर समा गया है कि कोई भी उसकी उपलब्धियों से अछूता नहीं रहा है। इन उपलब्धियों के कारण हुये निरन्तर सामाजिक और आर्थिक विकास ने जन जीवन के रहन-सहन का ढांचा ही बदल दिया है। विज्ञान के कारण हमारा जीवन काफी आसान हो गया है। गांव-गांव तक बिजली लगने से प्रत्येक आदमी की कार्यक्षमता के साथ-साथ उसकी कार्यावधि भी तिगुनी हो गई है, क्योंकि पहले जो काम अंधेरे के कारण छोड़ने पड़ते थे, बिजली की रोशनी में पूरे होने लगे। इसी प्रकार लकड़ी;कोयले का स्थान शहरों में एल.पी.जी. ने लिया है तो गांवों में बायोगैस ने;शहरों में प्रेशर कुकर है तो गांवों में सौर कुकर। रेडियो, टी वी, कैमरा, बिजली, बिजली के उपकरण सभी ने मिलकर काया पलट कर दिया। पहले जहां सभी के लिये मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं होते थे वहां टी वी , वी.सी.आर. ने आज लोगों का घर-घर में मनोरंजन करने में कोई कसर नहीं छोड़ रखी। वैसे भी "महाभारत" और "रामायण" जैसे सीरियल जो लोगों को पढ़ने में रुचिकर नहीं लगते थे उन्हें देखने के लिये लोग सारे काम-धाम छोड़ कर नियत समय पर टी.वी. के सामने बैठ जाते हैं। इसके अतिरिक्त यातायात के साधन भी अब सर्वत्र उपलब्ध हैं।

इसी प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास हुआ है। कई लाइलाज रोगों का उन्मूलन हो गया है।

हां! विज्ञान के चतुर्दिश विकास से जो विकट समस्या इस समय हमारे सामने है वह है प्रदूषण की समस्या। यदि इस समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया तो क्या लाभ होगा हमें इन विज्ञान के वरदानों का।

यथार्थतः विज्ञान से हर क्षेत्र में हुये विकास हमारे लिये वरदान सिद्ध हुये हैं लेकिन इन विकासों के पीछे एक छोटी सी झलक अभिशापों की भी दिखायी देती है। यदि विज्ञान का दुरुपयोग न किया जाये तो निश्चय ही इन अभिशापों से बचा जा सकता है।

इसी प्रकार विश्व में हो रहे नये-नये आविष्कारों से भी जन मानस को अवगत कराना हमारा कर्त्तव्य बनता है। लेखक की लेखनी कैसे इस कार्य में खरी उतरे इसके लिए निश्चय ही लेखक का कर्त्तव्य बन जाता है, कि पहले वह जन मानस में व्याप्त विज्ञान के प्रति बनी अवधारणाओं और भय को लेखनी के माध्यम से दूर करके विज्ञान का जन-जन तक प्रचार करे।

तपेदिक के विरुद्ध अभियान

1. यदि आपको लगातार दो हफ्तों से भी अधिक समय से खांसी है या थूक में खून आता है, तो हो सकता है, आपको फेफड़ों की तपेदिक हो।

2. अपने नजदीकी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, औषधालय या तपेदिक केन्द्र पर स्वयं की, विशेष कर अपने थूक की, जांच कराएं।

3. तपेदिक का इलाज किया जा सकता है, बशर्ते डाक्टर द्वारा बताई गई दवाइयां नियमित रूप से निर्धारित अवधि तक ली जाएं।

4. बचाव हमेशा इलाज से बेहतर है। इसलिए अपने बच्चे को बी.सी.जी. का टीका लगवाएं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो (स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय)
स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय,
कोटला रोड, नई दिल्ली- 110002

davp 89/1023 HINDI

विश्व पर मंडराती प्राकृतिक विपदा—

ग्रीन हाऊस प्रभाव

आर.डी. रिखाड़ी

"आधा बम्बई समुद्र में डूब जायेगा। और साथ में डूबेंगे एक तिहाई फ्लोरिडा नगर, (अमेरिका), पूरा पर्थ (आस्ट्रेलिया), नीदरलैंड के कुछ भाग और बहुत सारे समुद्रतटीय प्रदेश। वर्षा बहुल क्षेत्र सरक जायेंगे और कुछ रेगिस्तानी इलाके हरे-भरे हो जायेंगे। पृथ्वी पर बीमारियों के कुछ नये वायरस पनपेंगे।"

उपर्युक्त उद्धरण किसी काल्पनिक विज्ञान कथा से नहीं लिया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह आने वाले कल की एक वास्तविक संभावना है। दुनिया के समस्त देशों को मिलकर समय रहते अत्यंत सशक्त व कठोर कदम उठाने होंगे, तभी इस खतरे से बचना संभव होगा। अन्यथा यह कथन एक 'भविष्यवाणी' ही है।

यह नया खतरा किसी प्राकृतिक प्रकोप का परिणाम नहीं है। बल्कि इसका मुख्य कारण है अंधाधुंध औद्योगिक विकास और हरे-भरे वनों का तेजी से सफाया।

नया खतरा

यह नया खतरा पैदा हुआ है कार्बन डाइआक्साइड जैसी कुछ गैसों की वायुमण्डल में विशेष वृद्धि के कारण। यह गैसें सूर्य से पृथ्वी पर आने वाली गर्मी को उस अनुपात में वापस ब्रह्माण्ड में नहीं जाने देतीं जिससे वायुमण्डल का ताप संतुलन बना रहे। इसका परिणाम यह हुआ है कि वायुमण्डल का औसत ताप धीरे-धीरे बढ़ रहा है। पिछले वर्ष अमेरिका और पश्चिमी देशों में पड़ी अभूतपूर्व गर्मी तथा इस दशक में औसत ताप में हुई विशेष वृद्धि इस बात की पुष्टि करती है। भारतवर्ष में इससे प्रभावित देहरादून शहर एक उपयुक्त उदाहरण है। यहां के निवासियों के अनुसार आज से सिर्फ 15-20 वर्ष पूर्व यहां बिजली के पंखे लगाने की बात लोग सोचते तक नहीं थे। परन्तु आज यह शहर दिल्ली और लखनऊ जैसे गरम शहरों की श्रेणी में आ चुका है। एक विश्लेषण के अनुसार इस सदी में अब तक औसत ताप में आधे से एक डिग्री तक की वृद्धि हो चुकी है। यह वृद्धि भूमध्य रेखा की अपेक्षा अक्षांशों व ध्रुवों पर कहीं अधिक है।

आखिर क्या है यह "ग्रीनहाऊस" प्रभाव? आइये इसे ठीक प्रकार से समझने के लिये पहले वास्तविक "ग्रीनहाऊस" का अर्थ समझ लें। "ग्रीनहाऊस" अर्थात "पौधाघर" ऊष्मारोधी दीवारों वाला ऐसा कमरा होता है जिसकी छत, कांच या पारदर्शी प्लास्टिक की होती है। सूर्य की किरणें कांच को भेद कर कमरे के ताप को बढ़ा देती हैं। किन्तु ऊष्मा का कमरे से बाहर की ओर विकिरण बहुत कम होता है। इस प्रकार सूर्य की ऊष्मा अन्दर घुस कर वहीं अटक जाती है। फलतः शीत ऋतु में भी कमरे का तापमान बाह्य वातावरण की अपेक्षा
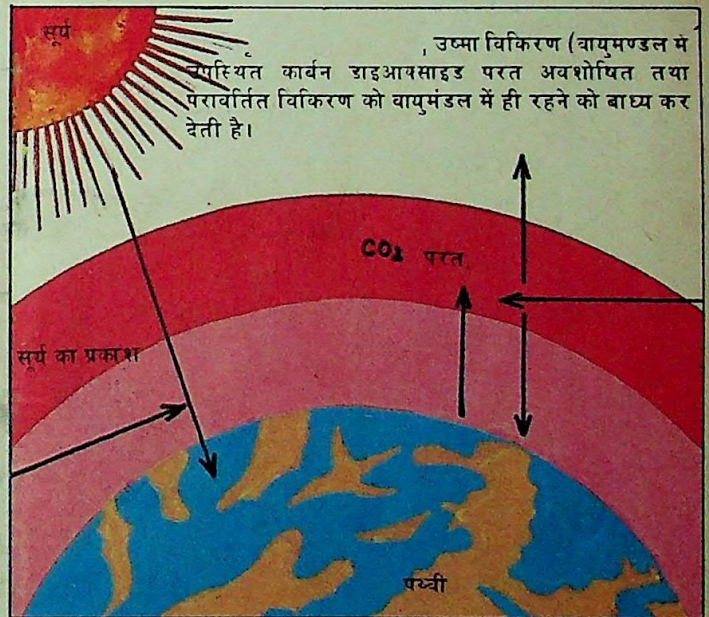
ऐसे गरमाता है भू-मंडल, कार्बन डाइआक्साइड से

इतना अधिक होता है कि जाड़ों के मौसम में भी कमरे के अन्दर ग्रीष्म ऋतु में पैदा होने वाली सब्जियां आदि उगायी जा सकती हैं। ठीक यही सिद्धांत सौर कुकर में काम करता है। अर्थात् एक बार किसी प्रकोष्ठ में ऊष्मा का घुसना और फिर वापस न लौट सकने के कारण वहीं ठहर जाना।

आज हमारी पृथ्वी इसी प्रकार का एक सौर कुकर बनने की स्थिति में आ गई है। अतः इस प्रभाव का नाम "सौर कुकर प्रभाव" अधिक उपयुक्त होगा।

सूर्य की ऊष्मा से गरम होने के बाद जब पृथ्वी ठंडी होने लगती है तब ऊष्मा पृथ्वी से बाहर की ओर विकिरित होती है। किन्तु कार्बन डाइआक्साइड तथा अन्य ऊष्मा रोकी गैसें इस ऊष्मा का कुछ अंश शोषित कर लेती हैं और फिर से भूतल को वापस कर देती हैं। इस
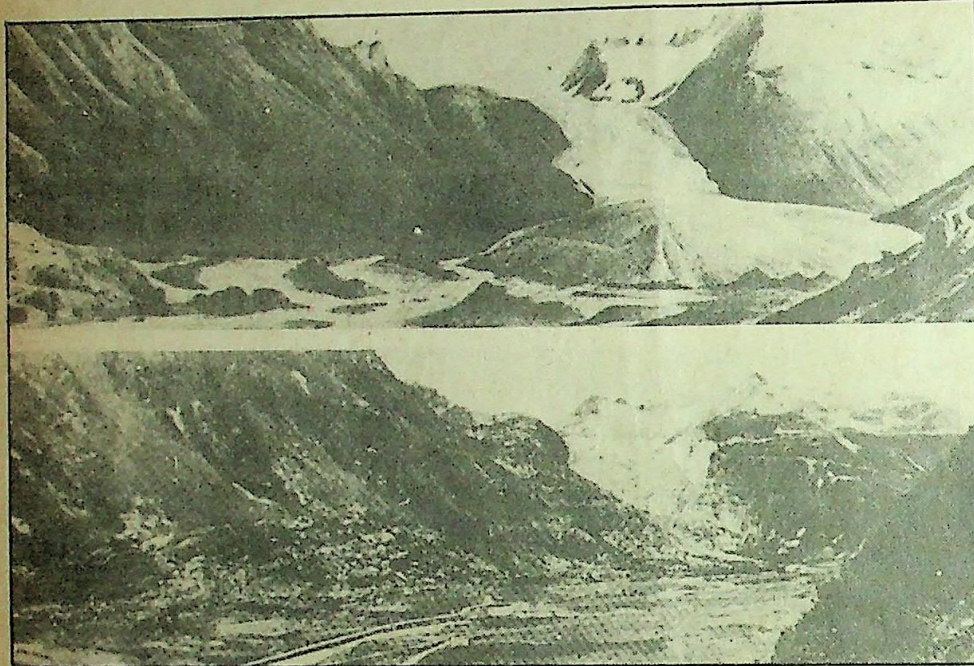
स्विट्ज़रलैंड का रोन ग्लेशियर का 1848 का चित्र (ऊपर) और नीचे 1970 में लिया गया उसी का चित्र, दोनों की तुलना में भू-मंडल के गरमाने का स्पष्ट प्रमाण दृष्टिगोचर होता है

प्रक्रिया में निचले वायुमण्डल में अतिरिक्त ऊष्मा जमा होती जाती है। पिछले कुछ वर्षों में इन ऊष्मा रोकी गैसों की मात्रा वायुमंडल में बढ़ जाने के कारण वायुमंडल का औसत ताप बढ़ गया है।

अहसास कैसे हुआ?

कार्बन डाइआक्साइड गैस जैसी ताप रोकी गैसों के कारण पृथ्वी के वायुमंडल के गरमाने की पूर्वघोषणा इस सदी के प्रारंभ में स्वीडन के स्वान्ते आर्हीनियस तथा अमेरिका के थामस सी. चैम्बरलिन ने की थी। परन्तु इन गैसों के वायुमंडल में जमाव पर विधिवत शोध कार्य 1958 से ही शुरू हो पाया। तब से ही स्क्रिप्स इंस्टीट्यूशन ऑफ ओसिनोग्राफी के चार्ल्स डी. कीलिंग ने कार्बन डाइआक्साइड के बढ़ते स्तर का निरन्तर रिकार्ड विभिन्न केंद्रों पर प्रस्तुत किया है।

भूमण्डल गरमाने के संबंध में ठोस सबूत मिलना 1988 के उत्तरार्ध से शुरू हुआ। सबसे सीधा सबूत दुनिया भर से प्राप्त तापमान के आंकड़े हैं। नेशनल एरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) के गोडार्ड इंस्टीट्यूट ऑफ स्पेस स्टडीज के जेम्स ई. हैन्सन व साथियों ने पिछले 1860 तक के तापमान रिकार्डों का विश्लेषण किया है। उनके विश्लेषणों से पता चला है कि तब से अब तक औसत भूमण्डल तापमान 0.5 से 0.7°से. तक बढ़ चुका है। सबसे अधिक ताप वृद्धि पिछले दशक में हुई है। यह वृद्धि सांख्यिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण तो है ही साथ में यह वैज्ञानिकों की परिकल्पना व भूमण्डल के वायुमण्डलीय माडलों के अनुरूप भी है। इंग्लैंड में ईस्ट एंग्लिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों को भी कुछ ऐसे ही परिणाम मिले हैं। इस सदी में अब तक के सबसे अधिक गर्मी वाले वर्षों का क्रम कुछ इस प्रकार पाया गया है — 1988, 1987, 1983, 1981, 1980 और 1986। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी वायुमंडल गरमाने की ओर इंगित करती हैं। कनाडा की झीलों का औसत ताप बढ़ गया है, अन्टार्कटिक महाद्वीप के चारों तरफ और आर्कटिक समुद्र के भीतर की ओर समुद्री बर्फ की वार्षिक अधिकतम सीमा में कमी नजर आती है। यूरोप व अन्य स्थानों पर जमीन के बीच वाले ग्लेशियर नीचे हो गये हैं।

जो परिणाम सामने आ रहे हैं वे कुल मिलाकर जलवायु विशेषज्ञों की परिकल्पना व भूमंडलीय माडलों के संकेतों से मेल खाते हैं। इन विशेषज्ञों का कहना है कि सबसे अधिक गरमाहट जाड़ों के मौसम में ऊंचे अक्षांशों पर महसूस की जायेगी। इन माडलों के अनुसार इन अक्षांशों पर गरमाहट भूमण्डलीय औसत के मुकाबले दुगनी होगी। इसके अतिरिक्त निचले वायुमंडल के गरमाने के साथ ऊपरी वायुमंडल ठंडा हो जायेगा और निचले अक्षांशों पर जमीन में अवक्षेप और नमी में कमी आयेगी। हाल के वर्षों में ये सभी लक्षण दृष्टिगत हुये हैं।

आंकड़ों को प्राप्त करने तथा विश्लेषण करने के संबंध में कुछ विवाद हो सकता है। परन्तु उपर्युक्त अवलोकनों और ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती मात्रा को देखते हुये इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि आर्हीनियस द्वारा लगभग एक शताब्दी पहले की गई पूर्वानुमानित प्रक्रिया चालू है।

वायुमण्डल में भविष्य में होने वाले संभावित परिवर्तनों के बारे में पिछले वायुमंडलीय परिवर्तनों के अध्ययन से जानकारी ली जा सकती है। सिर्फ 15,000 वर्ष पूर्व अमेरिका और यूरोप के उत्तरी भाग ग्लेशियरों से भरे थे। जलवायु परिवर्तनों के पीछे भी वायुमंडल की बदलती संरचना का हाथ है? उत्तर यद्यपि स्पष्ट नहीं है फिर भी हाल में कुछ विशेष प्रयास हुये हैं। पिछले युगों की वायुमण्डलीय संरचना पुराने ग्लेशियरों के बीच रुकी वायु के नमूनों की जांच द्वारा ज्ञात की जा सकती है। फ्रांस और रूस की एक संयुक्त टीम ने अन्टार्कटिक वोस्तोक स्टेशन पर ड्रिलिंग द्वारा बर्फ के 2,000 मीटर गहरे गर्भ से वायु के नमूने प्राप्त किये। यह नमूने 160,000 वर्ष तक

की पुरानी स्थिति की परीक्षा के लिये पर्याप्त थे। इसके समकक्ष ताप परिवर्तनों का पता आइसोटोप परिवर्तन तकनीक से लगाया गया। इन विश्लेषणों से यह बात भी साफ हुई कि जब जब कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ी, ताप भी बढ़ा।

वोस्तोक के प्रयोगों से ही यह भी ज्ञात हुआ कि कार्बन डाइआक्साइड के साथ-साथ मीथेन गैस में भी बढ़ोतरी हुई है। यद्यपि कार्बन डाइआक्साइड के मुकाबले मीथेन की मात्रा बहुत कम है, परन्तु इसकी विकिरणशीलता के कारण यह कार्बन डाइआक्साइड से 20 गुना अधिक ग्रीनहाऊस प्रभाव ला सकती है।

कारण

अब तक के अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि ग्रीनहाऊस प्रभाव का कारण कुछ गैसें हैं जो अब ''ग्रीनहाऊस'' गैसों के नाम से जानी जाने लगी हैं। इसमें कार्बन डाइआक्साइड प्रमुख है। अन्य गैसें हैं मीथेन, नाइट्रसआक्साइड और क्लोरोफ्लोरो कार्बन।

उन्नीसवीं सदी के मध्य से अब तक वायुमण्डल की कार्बन डाइआक्साइड 25 प्रतिशत बढ़ी है। परन्तु यह गैस आयतन में पूरे वायुमण्डल का मात्र 0.03 प्रतिशत ही है। जबकि नाइट्रोजन और आक्सीजन मिल कर 99 प्रतिशत वायुमण्डल बनाते हैं। ग्रीनहाऊस गैसों के इतनी सूक्ष्म मात्रा में होने के कारण वायुमण्डल में इनकी सान्द्रता आसानी से परिवर्तित हो जाती है। इनकी वृद्धि के साथ ही वायुमण्डल की ऊष्मा को रोके रखने की क्षमता भी बढ़ जाती है।

इन ऊष्मा रोकी ग्रीनहाऊस गैसों की वायुमण्डल में इस भयावह बढ़ोत्तरी के दो प्रमुख कारण हैं—औद्योगिकीकरण और जंगलों का विनाश।

औद्योगिकीकरण : औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप आज उद्योगों तथा घरों दोनों में जीवाश्मी ईंधनों, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ आदि का उपयोग काफी बढ़ गया है। इस समय हम प्रतिवर्ष लगभग चार अरब टन जीवाश्म ईंधन जलाते हैं। इसमें प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। यदि यह मान लिया जाये कि आज से हम इस वृद्धि को घटा कर दो प्रतिशत पर ले आते हैं तब भी इसकी खपत दुगुना होने की अवधि को 15-20 साल से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। इस प्रकार देखा जाये तो पहले ही काफी देर हो चुकी है। भूमण्डल को गरमाने से रोकना अब यदि असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य हो गया है।

जंगलों का कटान : आधुनिकतम सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिवर्ष दुनिया की लगभग छः करोड़ हेक्टेयर भूमि वृक्ष विहीन कर दी जाती है। अकेले भारतवर्ष में ही 16 लाख हेक्टेयर जंगल प्रतिवर्ष उजड़ रहे हैं। इसी गति से शताब्दी के अन्त तक कुल भूमि के केवल 5 प्रतिशत पर ही जंगल रह जायेंगे। इससे लगभग 20 प्रतिशत जीव जन्तु समाप्त हो जायेंगे। पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा कार्बन डाइआक्साइड को विघटित कर आक्सीजन छोड़ते हैं और इस प्रकार वायुमण्डल के कार्बन डाइआक्साइड स्तर में सन्तुलन बनाते हैं। जंगलों के कटने से कार्बन डाइआक्साइड की दो तरफ वृद्धि होती है। एक ओर प्रकाश संश्लेषण के घटने से कार्बन डाइआक्साइड का विघटन घट जाता है, दूसरी तरफ वृक्षों के ईंधन रूप में जलने या प्राकृतिक रूप से विघटित होने से अतिरिक्त कार्बन डाइआक्साइड वातावरण में पहुंचती है।

ग्रीनहाऊस प्रभाव का रेड सिग्नल

ग्रीनहाऊस प्रभाव का गहराता खतरा विश्व के सारे राष्ट्रों को परेशान कर रहा है। विशेषकर तटीय नगरों को, क्योंकि इससे आर्कटिक व अंटार्कटिक के विशाल हिमखण्ड पिघलकर समुद्री-जलस्तर बढ़ा देंगे और ये नगर भयावह जलप्रलय की चपेट में आ जायेंगे। कारण! पिछले एक सौ वर्षों में, वायुमण्डल में 36 लाख टन कार्बन डाइ आक्साइड गैस बढ़ गयी है। उधर, वायुमण्डल से 24 लाख टन ऑक्सीजन गैस खत्म हो चुकी है।

वायुमण्डल में कार्बन डाइ आक्साइड गैस की मात्रा बढ़ रही है जिससे अनुमानतः पिछले पचास वर्षों में पृथ्वी का औसत ताप 1° सेल्सि. बढ़ा है। सन् 2050 ई. तक ग्रीन हाऊस प्रभाव के कारण तापमान में न्यूनतम 4° सेल्सि. की वृद्धि हो सकती है। यदि ऐसा हुआ तो समुद्री-जलस्तर में 5' तक की बढ़ोत्तरी होगी और कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कोचीन इत्यादि तटीय नगरों का एक बड़ा हिस्सा पानी में डूब जाएगा।

कार्बन डाइ आक्साइड के अलावा और भी कई गैसों से ग्रीनहाऊस प्रभाव बढ़ रहा है। विश्व के वातावरण को गर्म करने वाली कुल ग्रीनहाऊस गैसों का चार प्रतिशत अकेले भारत छोड़ता है। विकसित देश विश्व की कुल ग्रीन हाऊस गैस का साठ प्रतिशत उगलते हैं, लेकिन सन् 2100 ई. तक विकसित और अविकसित देशों की साझेदारी बराबर-बराबर की हो जाएगी।

नयी दिल्ली में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा बचत सम्मेलन में प्रस्तुत अध्ययन में, अमेरिकी पर्यावरण संरक्षण एजेंसी की ओर से डाक्टर दलीप आहूजा ने जानकारी दी। वैज्ञानिकों का मानना है कि ग्रीनहाऊस गैसों का स्तर जितना बढ़ता जाएगा, उतनी ही ज्यादा वह सूर्य की गर्मी को अवशोषित कर वातावरण का तापमान बढ़ाती जायेंगी जिससे जलवायु में भयंकर परिवर्तन और शारीरिक विकार उत्पन्न होंगे।

अनिल कु.श.

तो कैसे बचें?

वैज्ञानिकों के अनुसार ''ग्रीनहाऊस'' प्रभाव लाने वाली गैसों की मात्रा इस हद तक बढ़ चुकी है कि यदि आज भी इन गैसों के निकलने को और न बढ़ने दिया जाये तो भी भविष्य को इस खतरे से सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। हां!यदि कार्बन डाइआक्साइड का उत्सर्जन तीन अरब टन प्रतिवर्ष कम कर दिया जाये तब जाकर कुछ वर्षों के लिये कार्बन डाइआक्साइड का स्तर स्थिर किया जा सकता है। कार्बन डाइआक्साइड का एक अणु पैदा होने के बाद औसतन 100 वर्ष तक वायुमण्डल में रहता है। तब जाकर इसे किसी प्राकृतिक प्रक्रिया (पेड़ों अथवा समुद्र आदि) के द्वारा शोषित किया जाता है।

वारंगल सेन्ट इलियास नेशनल पार्क, अलास्का के वाल ग्लेशियर में बड़ा छेद ग्रीन हाऊस प्रभाव के कारण ही हुआ है।

इस प्रकार यह आवश्यक हो जाता है कि एक ओर जीवाश्म ईंधनों का जलना कम किया जाये और दूसरी ओर जंगलों का विस्तार व पुनर्जीवन किया जाये जिससे ग्रीनहाऊस गैसों का शोषण अधिक से अधिक हो सके। परन्तु दोनों ही सुझाव देने में जितने सरल लगते हैं, इन पर अमल करना उतनी ही बड़ी टेढ़ी खीर है। उदाहरण के लिये विकासशील और अविकसित देशों को औद्योगिकीकरण की गति धीमी करने के लिये मना लेना आसान नहीं होगा। और यह बात न्यायसंगत भी नहीं होगी। सदियों से शोषित इन देशों के विकास के औद्योगिकीकरण की गति में ढील कैसे दी जा सकती है? दूसरी ओर बढ़ती आबादी की आवश्यकता पूरी करने के लिये अधिक ईंधन का जलना आवश्यक है।

जंगलों का विस्तार करना तो संभव नहीं है क्योंकि कृषि-भूमि पहले ही कम है। सामाजिक वानिकी तथा व्यर्थ पड़ी भूमि का पुनर्नवीकरण कछ हद तक इसमें सहायक हो सकते हैं। वन लगाने से
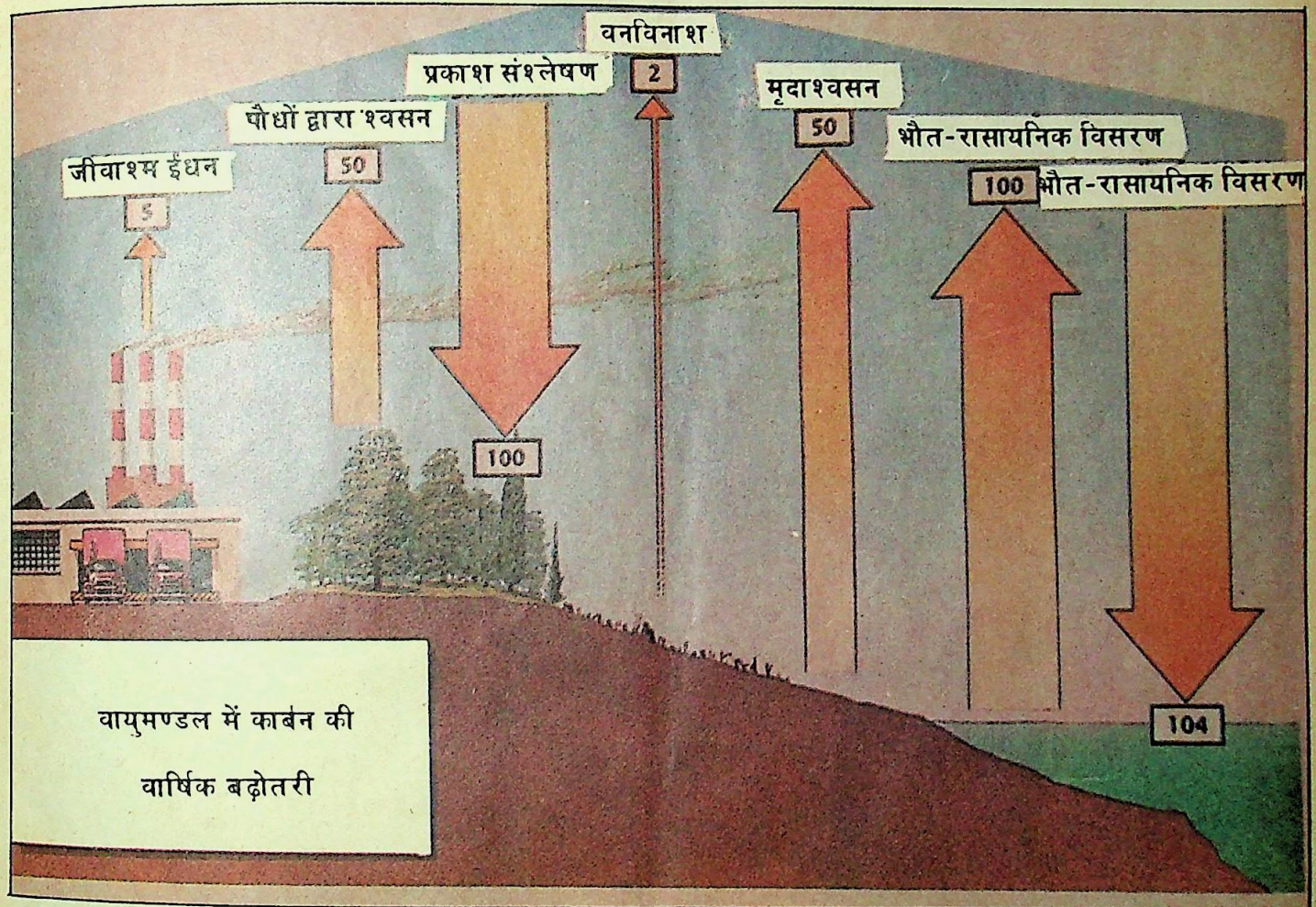
कार्बन का वार्षिक प्रवाह:एक अरब (10^9) मीट्रिक टन की इकाइयों में प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया में लगभग 100 अरब टन कार्बन, कार्बन डाइआक्साइड के रूप में वायुमंडल से पौधों द्वारा अवशोषित हो जाता है। वनस्पतियां तथा मिट्टी, श्वसन क्रिया द्वारा लगभग 50 अरब टन कार्बन वापस वायुमंडल में छोड़ती हैं। जीवाश्म ईंधन तथा वृक्षविनाश द्वारा क्रमश: पांच व दो अरब टन कार्बन वायुमण्डल में आता है। सतह पर होने वाली भौतिक-रासायनिक प्रक्रियायें 100 अरब टन कार्बन वायुमंडल में छोड़ती हैं और 104 अरब टन शोषित करती हैं। इस प्रकार कुल मिला कर चार अरब टन का लाभ पहुंचाती हैं।

अधिक जिम्मेदारी का काम है इनका पोषण और संरक्षण।

सौर ऊर्जा जैसे अन्य गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों को जीवाश्म ईंधन का विकल्प बना कर भी ग्रीनहाऊस गैसों की वृद्धि को रोका जा सकता है। इस समस्या का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसका समाधान राष्ट्रीय स्तर पर संभव नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है। ऐसा कोई विकल्प निकालना आवश्यक है जिससे विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध किये बिना वायुमण्डल का संरक्षण किया जा सके। इनमें से एक हल जो उभर रहा है वह यह है—"जैसा हर्जा वैसा खर्चा"—अर्थात जो देश जितना अधिक गैसों का उत्सर्जन कर वायुमण्डल को बिगाड़ेगा उसी अनुपात में उसे वायुमण्डल की सफाई के कार्यक्रमों पर खर्च भी करना होगा।

हाल ही में हुए गुट निरपेक्ष शिखर सम्मलेन में भारत ने "ग्रह संरक्षण कोष" स्थापित करने का सुझाव दिया था। इसे सिद्धांत रूप में मान लिया गया है। इस कोष से विकासशील देशों को ऐसी महंगी तकनीकों को अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकेगा जो वातावरण प्रदूषण को रोकती हैं। इस सहायता के अभाव में गरीब देश अपने विकास के लिये प्रदूषण करने वाली सस्ती तकनीकों को अपनाने पर मजबूर हो जायेंगे।

इस दिशा में एक बहु-राष्ट्रीय सम्मेलन भी शीघ्र आयोजित किये जाने की संभावना है। यदि वास्तविकता को समय रहते स्वीकार कर लिया गया तो भविष्य को ग्रीनहाऊस प्रभाव के दुष्परिणामों से बचाना असंभव नहीं होगा

[श्री आर.डी. रिखाड़ी, इन्वैंशन इन्टेलीजेन्स, एनआरडीसी, 20-21, जमरूद पुर, कम्युनिटि सैंटर, शॉपिंग काम्पलेक्स, कैलाश कालौनी एक्सटैंशन, नई दिल्ली- 110048]

बांच रहे हैं पौधे
बम्बई में प्रदूषण की व्यथा कथा

प्रेमानन्द चन्दोला

विज्ञान के युग में आज हर चीज मापी जा सकती है और तो और यंत्रों से झूठ और बदमाशी तक मापी जा सकती है। इसी तरह प्रदूषण को भी मापा जा रहा है। अपने देश में प्रदूषण के वितरण तथा इसके बुरे प्रभावों को मापने के लिए नन्हें पौधों का प्रयोग किया जा रहा है। मामूली पौधे ही प्रदूषण मापने के उपकरण हैं। इन्हीं को लेकर प्रदूषण संबंधी प्रयोगों का ताना-बाना बुना गया है। साइंस इंस्टीट्यूट, बंबई के परिस्थिति विज्ञान के प्रोफेसर एस.बी. चाफेकर और उनके दो सहकर्मियों डा. आर.पी. शेटी तथा डा. डी.बी. बोरालकर ने पौधों पर उद्योगों से उत्पन्न वायु प्रदूषणों के दुष्प्रभावों पर खोज की। जिनके परिणामस्वरूप बंबई महानगर में उद्योगों से होने वाले प्रदूषण की मात्रा के कच्चे चिट्ठे का पता लगा।

बंबई में हुई प्रदूषण संबंधी खोजें आंख खोलने वाली दिलचस्प खोजें रही हैं। सभी महानगरों की तरह बंबई में चलनेवाली मोटर-गाड़ियों, फैक्टरियों और उद्योगों से वहां का माहौल बेहद बिगड़ गया है। राष्ट्रीय पर्यावरण इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान (नीरी) के अनुमान के अनुसार केवल महानगर बंबई क्षेत्र के उद्योग, वातावरण में प्रतिदिन एक हजार टन प्रदषणकारी पदार्थ उगलते हैं। पर्यावरण बिगाड़ने वाले इन पदार्थों में कई हानिकारक तत्व और यौगिक होते हैं। इनमें कार्बन मोनोऑक्साइड का प्रतिशत 38.4, सल्फर डाइआक्साइड का प्रतिशत 38.4 और नाइट्रोजन के ऑक्साइडों और अमोनिया का प्रतिशत 34.4 होता है।

वैज्ञानिकों ने चैम्बूर को नगर का सर्वाधिक प्रदूषित भाग बताया है। चैम्बूर, बंबई नगर का पूर्वी बाहरी भाग है वहां अत्यधिक अमोनिया गैस पायी गई है। बंबई के पर्यावरण में शोधशालाओं, ताप-विद्युत केंद्रों, रासायनिक उर्वरक संयंत्रों, कपड़ा मिलों आदि से प्रतिदिन लगभग 320 टन सल्फर डाइआक्साइड गैस छोड़ी जाती है। सल्फर ऑक्साइडों और नाइट्रोजन ऑक्साइडों से तेजाबी वर्षा होती है जो फसलों, जंगलों, मानवों तथा अन्य पदार्थों पर बुरा असर डालती है। वर्षा के पानी के खारेपन वाले पहलू से पाया गया कि मानसून के दौरान कोलाबा और तारापुर एक ही तरह से स्वच्छ तथा अप्रदूषित थे, बांद्रा और बोरीवली कुछ-कुछ प्रदूषित और चैंबूर तथा ट्रॉम्बे सबसे अधिक प्रदूषित क्षेत्र थे।

गंधक का दूसरा यौगिक हाइड्रोजन सल्फाइड जीव पदार्थों के सड़ने गलने और मलजल से बनता है। इसकी असहनीय गंध हमारी
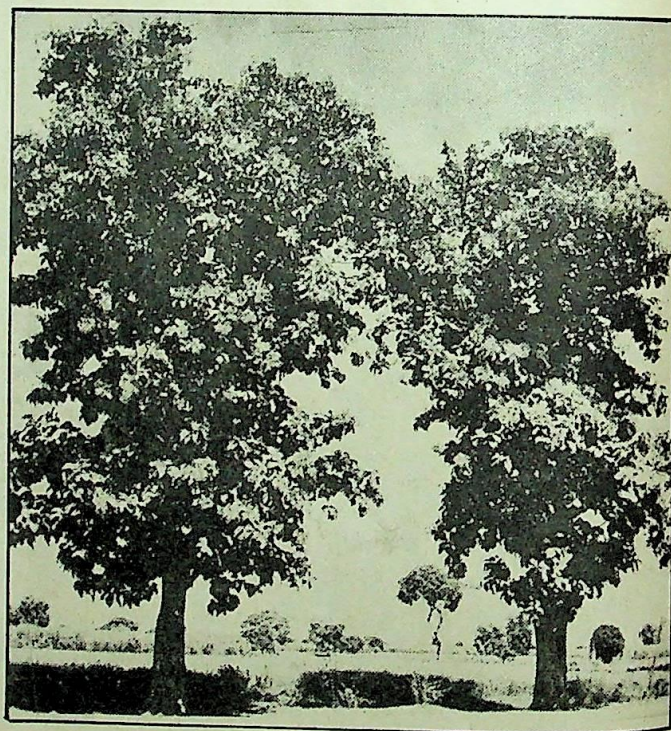
शोरिया रोबस्टा– जो काट काट कर इमारतों में लगा दी।

नाक सह नहीं सकती। नाइट्रोजन डाइआक्साइड आपसी क्रिया तथा तेजाब बनाने वाले उद्योगों से निकलती है। इसी तरह हाइड्रोजन फ्लोराइड, उर्वरक तैयार करने वाले संयंत्रों से तथा कार्बन मोनो ऑक्साइड पैट्रोलियम उद्योगों से निकलती है। क्लोरीन और अमोनिया गैस उद्योगों वाले क्षेत्रों में आकस्मिक रिसाव से पैदा होती हैं। इन वायु-प्रदूषण पदार्थों के दुष्प्रभाव भिन्न-भिन्न तरह के होते हैं लेकिन इनके मिल-जुले प्रभाव तो कयामत बरपाने वाले होते हैं। इनमें से कुछ सांस संबंधी रोग उत्पन्न करते हैं और भयानक अवस्था में तो फेफड़ों में रक्त वाहिनियों के सिकुड़ने से मौत तक हो जाती है। लगातार वायु प्रदूषित क्षेत्रों में रहने पर भी मनुष्य की शारीरिक क्षमता में कमी आ जाती है। ये प्रदषण पदार्थ पौधों के हरे पदार्थ

टेक्टोना ग्रैडिन्स– इससे अच्छी इमारती लकड़ी और कहां, ये वन ही काट डाले

पर्णहरित को नष्ट कर पौधों की भोजन निर्माण प्रक्रिया में भी रोड़ा अटका देते हैं।

इन प्रभावों की पहचान अलग-अलग प्रकार से नियंत्रित स्थितियों में पौधों को उगाकर और फिर इच्छित रसायनों से उनका मेल कराकर की गई। डा. चाफेकर ने भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे लेकर प्रयोग किए। उन्होंने पौधों की निम्नलिखित चार जातियों को चुना—कनकीआ, सनई, गौर और सूरजमुखी की पूसा नवबहार किस्म। इन पौधों को उगाकर उन्हें फिर बंबई शहर के साफ क्षेत्रों, सड़क के दोनों ओर तथा औद्योगिक क्षेत्रों के कुछ खास स्थानों अर्थात शहर के स्वच्छ क्षेत्र यानि कोलाबा का हौलिंड कैंप गार्डन, कुछ-कुछ स्वच्छ क्षेत्र साइंस इंस्टीट्यूट का बगीचा तथा प्रदूषित क्षेत्रों में तारापोरवाला अक्वेरियम के निकट वाला मरीन ड्राइव का समुद्रतटीय क्षेत्र, वोरली का सड़कों व उद्योगों वाला क्षेत्र, लोहा भवन की सड़कों वाला क्षेत्र, दक्षिणी-मध्य बम्बई का अंधाधुंध मोटर-गड़ियों वाला क्षेत्र, तथा दादर टी.टी. लालबाग, चैम्बूर और माहुल के उद्योग-प्रदूषित क्षेत्रों पर रोप दिया गया। इन क्षेत्रों में ऊपर बताए गए सभी पौधों को स्थापित कर उन पर उनके वातावरण का असर पड़ने दिया गया ताकि सही तस्वीर उभर कर सामने आ सके।

करीब एक महीने बाद इन पौधों को प्रयोगशाला में अध्ययन के लिए लाया गया। बढ़वार संबंधी खास लक्षणों, हरे पदार्थ, प्रोटीन अंश तथा तनों के सूखे भार वाले पहलू से पौधों का नापतौल और विश्लेषण किया गया। साफ क्षेत्रों और बाकी बिगड़े वातावरण वाले क्षेत्रों के पौधों के तनों की लंबाई में बहुत अन्तर पाया गया। स्वच्छ क्षेत्रों के पौधों के तने लंबे थे तो बाकी क्षेत्रों के पौधों के तने छोटे। कपड़े की मिलों और गैस संयंत्रों की बहुतायत वाले घने औद्योगिक क्षेत्रों में पौधों पर दुष्प्रभाव बहुत साफ थे। सड़कों के किनारे वाले पौधों की लंबाई भी कम बढ़ी। प्रदूषित क्षेत्रों में पौधों के हरे पदार्थ, प्रोटीन अंश तथा उपज पर बुरा असर पड़ा। विपरीत स्थितियों में पत्तियों की संख्या में भी कमी पाई गई। लालबाग क्षेत्र के अलावा सभी स्थानों पर पत्तियों का हानि प्रतिशत 58 से कम रहा लेकिन लालबाग के गैस कम्पनी वाले क्षेत्र में यह हानि प्रतिशत 60 से ज्यादा रहा। इससे सर्वाधिक प्रदूषित क्षेत्र का पता चला।

इस तरह नगर के अप्रदूषित क्षेत्रों के पौधों और प्रदूषित क्षेत्रों के पौधों की विभिन्न प्रकार की प्रतिशत क्षति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इन प्रतिशत मानों के औसत से ही "वायु प्रदूषण सूचक" का निर्धारण किया गया। खाद की किस्म, सिंचाई तथा विशेष प्रबंध सदृश कुछ परिवर्तनशील कारक पौधों की वृद्धि पर अलग-अलग तरह से प्रभाव डाल सकते हैं, लेकिन ये बहुत मामूली होते हैं।

पौधों को जब किसी वायु प्रदूषक से नुकसान पहुंचता है तो उनमें प्रायः उस प्रदूषणकारी पदार्थ से जुड़े खास लक्षण दिखलाई देने लगते हैं। इन लक्षणों से ही उस पदार्थ की पहचान होती है। प्रभावित पौधों पर खास लक्षणों वाले ये सबूत ही प्रदूषण का कच्चा चिट्ठा खोलते हैं। भविष्य में बड़े पैमाने पर अलग-अलग इलाकों में इस तरह से और अधिक जानकारी इकट्ठी की जा सकेगी। तब हम पर्यावरण सुधार वाली परियोजनाओं को मनचाहे ढंग से अच्छी तरह चला सकते हैं।

[श्री प्रेमानन्द चन्दोला, ई-1, साकेत, एम.आई.जी. फ्लैट, नई दिल्ली- 110017]

"बड़ा विचित्र चित्र है ! जरा बताओ तो किस चीज का है यह चित्र?"

"लगता है दो अजगर चन्दन के पेड़ पर लिपटने के लिये गुत्थम-गुत्था हो रहे हों।"

"नहीं, यह तो स्टार फ़िश का चित्र है।"

"मछली और पेड़ पर? आप जन्तु-जगत को छोड़कर वनस्पति जगत में आईये। अब भी नहीं बता पा रहे हो तो मैं ही बताता हूं। यह चित्र है एक पौधे का। पेड़ से चिपके इस पौधे को 'एपिफाइट या अधिपादप' कहते हैं। ये पौधे दूसरे पेड़-पौधों को सहारे के लिये प्रयोग करते हैं, परन्तु उन पर भोजन के लिए आश्रित नहीं होते। अर्थात्

परजीवी नहीं होते। सहारा देने वाले पेड़-पौधों को ये किसी प्रकार की हानि भी नहीं पहुंचाते। यह बात अलग है कि कभी-कभार सहारा देने वाला कोई पौधा या पेड़ की कोई शाखा इनके भार से टूट कर गिर जाती है।''

इन पौधों का जन्म उष्णकटिबंधीय जलवायु अर्थात् अधिक वर्षा तथा अधिक गर्मी वाले क्षेत्रों में होता है। अधिपादप के परिचित उदाहरणों में आर्किड्स, लाइकेन (शैव) और मॉस आदि हैं। भारत में ये प्रायः हिमालय के पूर्वी भाग विशेषकर दार्जिलिंग, सिक्किम आदि में पाये जाते हैं।

हां, पेड़ों पर चढ़ने के कारण इसे आप बेल मत समझियेगा। बेल की जड़ें तो जमीन के अन्दर होती हैं, परन्तु ये बेचारे इतने भाग्यशाली कहां कि इन्हें धरती मां की गोद या उसका दुलार पोषक तत्वों के रूप में मिल सके। इन बेचारों का तो जन्म ही प्रायः पेड़ों के ऊपरी भाग में या फिर तने व शाखाओं पर पाये जाने वाले छोटे-छोटे गड्ढेनुमा स्थानों पर होता है। भोजन पाने के लिये ये अपनी जड़ें नीचे की ओर लटका देते हैं, लेकिन इन में से इक्के-दुक्के की जड़ें ही जमीन को छू पाती हैं। ऊपरी भाग में होने के कारण इन्हें सूर्य का प्रकाश दूसरे छोटे पौधों की अपेक्षा पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। इसके अतिरिक्त ऊपर होने के कारण जानवरों द्वारा खाए जाने या कवक आदि लगने से नष्ट होने का भी भय नहीं रहता। ये एक प्रकार से लावारिस सा जीवन बिताते हैं, लेकिन आश्रय देने वाले से कभी कुछ नहीं लेते। मानों कह रहे हों, ''तुमने आश्रय दिया, रहने के लिये स्थान दिया, यही क्या कम है जो हम तुमसे भोजन भी लें''। इनकी हवा में लटकती जड़ें अपने आस-पास के वातावरण से जल-कण तथा अन्य पोषक तत्व प्राप्त कर लेती हैं और उसी के सहारे ये अपना निर्वाह कर लेते हैं।

वास्तव में अधिपादपों का जीवन बहुत ही संघर्षपूर्ण होता है। इनमें से कुछ तो गूदेदार होते हैं जिनमें आन्तरिक जल-संग्रहण क्षमता होती है जिससे ये जीवित रह पाते हैं। कुछ पौधों में विचित्र जल संग्रहण की व्यवस्था होती है जैसा कि **ब्रोमीलियाड** में। इनकी पत्तियों की बनावट कप के आकार की होती है जो वर्षा का पानी संग्रह कर लेती है। ब्रोमीलियाड के ये कप इतने अधिक कार्यसाधक होते हैं कि कई दूसरे पौधे तथा छोटे-छोटे जीव-जन्तु भी उन पर आश्रित हो जाते हैं। स्वयं सहारा लेने वाला दूसरों को भी सहारा देता है। उष्णकटिबंधीय अमेरिका के बहुत से जलीय कीट इन कपनुमा पत्तियों में ही पाये जाते हैं। मच्छरों के लिये भी ये कप विशिष्ट प्रजनन-स्थान का काम करते हैं। कभी-कभी तो मच्छरों की संख्या इतनी अधिक बढ़ जाती है कि मलेरिया फैलने की संभावना बहुत अधिक हो जाती है। पनामा नहर की जब खुदाई की जा रही थी तो कारीगरों व मजदूरों को मलेरिया से बचाने के लिये खुदाई के स्थान के आस-पास के सभी ब्रोमीलियाड का सफाया कर दिया गया था ताकि न रहे बांस और न बजे बांसुरी।

अपने को जीवित रखने के लिए ये पौधे कैसे-कैसे विचित्र तरीके अपनाते हैं। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत करता है **डिस्कीडिया रेफ्लेसियाना**। यह पादप अपनी सामान्य पत्तियों के साथ-साथ लंबी घड़े-नुमा पत्तियां भी विकसित करता है जिनमें वर्षा का पानी तथा उसके साथ आये पोषक तत्व एकत्रित हो जाते हैं। अब यह अधिपादप अपनी जड़ें इस घड़े-नुमा पत्ती में विकसित होने के लिये भेजता है। यही नहीं, इनमें से कुछ पत्तियां लंबूतरा आकार ग्रहण कर लटक जाती हैं और वर्षा का पानी एकत्र करने में टंकी का काम करती हैं। इनमें से कुछ पत्तियां उल्टी लटक जाती हैं तथा शुष्क रहती हैं। ये चीटियों आदि के लिये आश्रय-स्थान बन जाती हैं। इन चीटियों द्वारा छोड़ा गया बचा-कुचा भोजन तथा कचरा इस पादप के लिये उत्तम भोजन बन जाता है और इस प्रकार यह पौधा अपने लिये पोषक तत्व तथा पानी जुटाने में सफल होता है।

शेषांश पृष्ठ 31 पर

प्लास्टिक सर्जरी क्या है?

[नरेंद्र कुमार सिन्हा, जहानाबाद, बिहार]

"प्लास्टिक सर्जरी" ऐसी शल्य चिकित्सा है जिससे शरीर के विकृत तथा क्षत-विक्षत भाग को ठीक किया जा सकता है। इसमें शरीर के एक भाग से ऊतक निकाल कर दूसरे भाग में लगा दिया जाता है। इस तकनीक का विकास प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुआ था। प्रसिद्ध हिन्दू चिकित्सक 'सुश्रुत' ईसा से 800 वर्ष पूर्व से भी पूर्व विकृत नाक को इस विधि से ठीक करने में सक्षम थे।

इसे 'कास्मेटिक सर्जरी' भी कहते हैं। क्योंकि इसका किसी रोगी के चेहरे को और अधिक सुन्दर बनाने के लिये, चपटी या टेढ़ी नाक को आकर्षक बनाने के लिये भी प्रयोग किया जाता है। इससे ठोड़ी, गाल तथा पलकों की विकृतियों को भी ठीक किया जा सकता है। इससे कई जन्मजात विकृतियों, जैसे फटे तालु तथा खण्डित होंठ को भी ठीक किया जा सकता है। बुरी तरह जली हुई त्वचा के दागों पर शरीर के दूसरे भागों से साफ त्वचा प्रत्यारोपित कर प्लास्टिक सर्जरी द्वारा घाव ठीक होने के तुरन्त बाद तथा काफी समय बाद भी त्वचा को सुन्दर और आकर्षक बनाया जा सकता है।
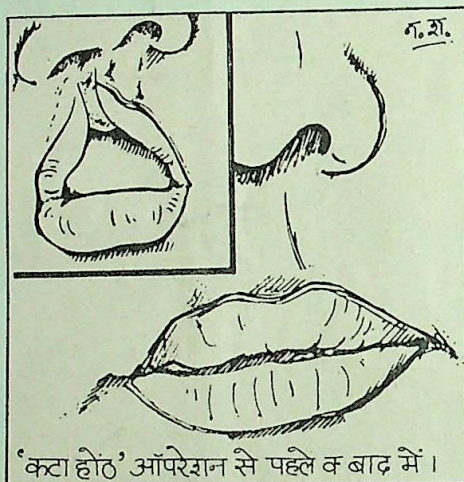
'कटा होंठ' ऑपरेशन से पहले व बाद में।

सी.बी. शर्मा

"ब्लैक बाक्स" क्या है?

[अरुण कुमार गुप्ता, जैनगर (बिहार)]

वास्तव में "ब्लैक बाक्स" का नाम गलत प्रचारित हो गया है। यह एक ऐसे विद्युत यंत्र के लिये प्रसिद्ध हो गया है जो अपने-आप में पूर्ण है और यह भी जरूरी नहीं कि यह काला ही होता हो। वायुयानों में लगा यह यंत्र "फलाईट रिकार्डर" के नाम से जाना जाता है। यह वायुयान के कार्यकलापों तथा पायलट दल के सदस्यों की बातचीत तथा अन्य आंकड़ों को एक टेप पर रिकार्ड करता रहता है। इस रिकार्डर को तैर सकने वाले एक मजबूत बाक्स में रखा जाता है ताकि दुर्घटना होने पर इसे कोई क्षति न पहुंचे। इसकी कार्य प्रणाली जांचने के लिये इसका सम्बन्ध वायुयान के रेडियो, सिग्नल तथा फ्लैश के साथ कर दिया जाता है। वायुयानों की प्रतिदिन की उड़ान में यह रखरखाव तथा नियंत्रण संबंधी दोषों को ढूंढता है। ब्लैक बाक्स में एकत्रित किये गये आंकड़ों का विश्लेषण करके यह पता लगाया जा सकता है कि वायुयान किन कारणों से खराब अथवा दुर्घटनाग्रस्त हुआ।
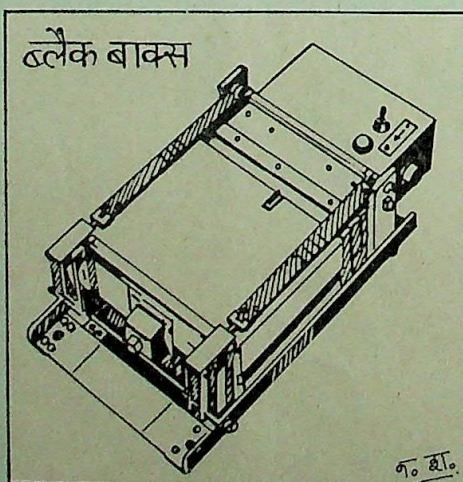
सी.बी. शर्मा

तेल के टैंकरों में लगी आग पानी से क्यों नहीं बुझती?

[चन्द्र मोहन सिंह, इलाहाबाद]

तेल, स्प्रिट तथा अन्य तीव्र ज्वलनशील पदार्थों में आग लग जाने पर उनको बुझाने के लिये एक विशेष तकनीक की आवश्यकता होती है।इस प्रकार की आग बुझाने की सर्वाधिक कारगर विधि है—झाग का प्रयोग। हल्का तथा बुलबुलेदार झाग साबुन के झाग से मिलता-जुलता होता है। जो इन तेलों पर तैरने लगता है। इस झाग को तब तक छोड़ा जाता
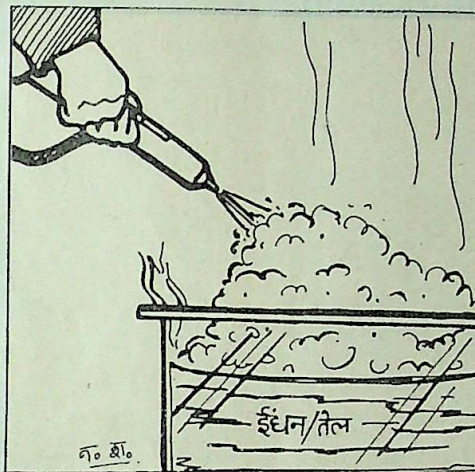
है जब तक कि यह समूची आग वाली सतह को कम्बल की तरह पूरा ढक न ले तथा आग बुझ न जाये।

यदि तेल में लगी आग बुझाने के लिये केवल पानी का छिड़काव किया जायेगा तो यह तेल को तितर-बितर कर देगा। इससे आग बुझने के बजाय फैल जायेगी।

सी.बी. शर्मा

लाइसोसोम को आत्महत्या की थैली क्यों कहते हैं?

[अखिलेश्वर शर्मा, बिहार]

लाइसोसोम (लाइसिस : घुलना, सोमा : शरीर) विभिन्न आकार की थैली जैसी संरचनायें है जो अधिकांशत: सभी जन्तु कोशिकाओं तथा कुछ पादप कोशिकाओं में उपस्थित होती है। जन्तु कोशिकाओं में ये गुर्दे तथा यकृत कोशिकाओं में बहुतायत में मिलती है एक भित्ति वाली इस कोशिका में लगभग ४० प्रकार के हाइड्रोलिटिक एजाइमों का मिश्रण होता है। ये एंजाइम विभिन्न कोशिकीय अवयवों को तोड़ने में सक्षम होते हैं। लाइसोसोम का प्राथमिक कार्य कोशिकीय पोषण है। जन्तु जगत के निम्न सदस्यों के लिये यही कोशिकायें तथा उनके हाइड्रोलयी एंजाइम, भोजन के पाचन के लिये उत्तरदायी है।

लेकिन जब कोशिकाओं को भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता तो
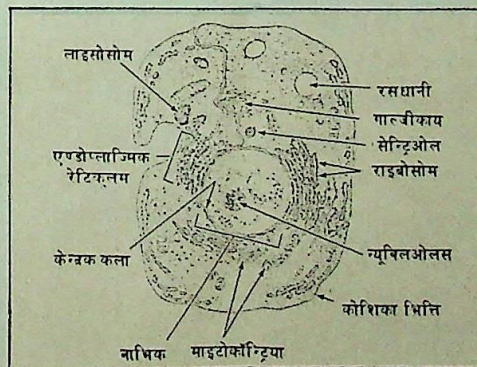
कोशिकायें लाइसोसोम की सहायता से अपने अवयवों को ही नष्ट करके भोजन के रूप में प्रयोग करती है। इस क्रिया को एन्टोफैगी कहते हैं। जब कोशिका के कोशिकीय अवयव लाइसोसोम के सम्पर्क में आते हैं तो ये उसकी थैली में एकत्र हो जाते हैं। जहां एंजाइम इन पर क्रिया करके इनको छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ देते है। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि कई कोशिकायें अपने लाइसोसोमीय पाचक क्रियाओं को ऐसे निर्देश दे देती है कि वे अपनी ही कोशिकाओं के अवयवों, यथा प्रोटीन, नाभिक अम्ल, पॉलीसैकेराइड तथा लिपिड आदि को इस क्रिया के दौरान नष्ट करना शुरू कर देती है। इसी कारण इन्हें 'आत्महत्या' की थैली कहा जाता है।

राजीव माथुर

डेविड हिल्बर्ट

गुणाकर मुले

सन् 1990 ई. का साल। उन्नीसवीं सदी का अवसान और बीसवीं सदी का उद्घाटन होने जा रहा था। उसी साल अगस्त में गणित की दूसरी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस का पेरिस में आयोजन होना था। कांग्रेस ने गॉटिंगेन (जर्मनी) के एक गणितज्ञ को विशेष रूप से आमंत्रित किया था। उन्हें गणितज्ञों की उस अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में एक विशिष्ट भाषण प्रस्तुत करना था।

गॉटिंगेन के वह गणितज्ञ भाषण के विषय के बारे में कई महीनों तक सोचते रहे। अंततः कांग्रेस से केवल एक महीना पहले ही वह विषय के बारे में निर्णय करके अपना भाषण तैयार कर पाए।

बुधवार, 8 अगस्त, 1900 ई. की सुबह सोरबोन (पेरिस) विश्वविद्यालय के एक कक्ष में दुनियाभर के चोटी के करीब 250 गणितज्ञ एकत्र हुए—गॉटिंगेन के उस जर्मन गणितज्ञ का भाषण सुनने के लिए।

मंच पर खड़े हुए व्यक्ति की उम्र चालीस साल से कुछ कम ही थी।

उसने ने जर्मन भाषा में धीरे-धीरे और बडी सावधानी से अपना भाषण आरंभ किया। भाषणकर्ता थे गॉटिंगेन विश्वविद्यालय के गणित के प्राध्यापक **डेविड हिल्बर्ट**।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दौर में बहुत-से पंडित यह कहने लगे थे कि जो कुछ खोजना था वह सारा आदमी ने खोज लिया है। यूरोप में बहुतों के मुंह से यह सुनने को मिलने लगा—**इग्नोरामुस् एत् इग्नोराबिमुस्**—हम अज्ञानी हैं और अज्ञानी ही बने रहेंगे!

हिल्बर्ट इस मान्यता के विरोधी थे। उन्होंने अपने भाषण में प्रतिपादित किया कि हर सवाल का एक निर्णायक हल प्राप्त करना संभव है। उन्होंने बलपूर्वक कहा : "यह विश्वास कि गणित का हर सवाल हल हो सकता है, अनुसंधानकर्ता के लिए प्रेरणा का एक महान स्रोत है। हमारे भीतर निरंतर एक आवाज उठती रहती है : यह सवाल है। खोजो इसका हल। यह हल तुम विशुद्ध चिंतन से प्राप्त कर सकते हो, क्योंकि गणित में ऐसी कोई चीज नहीं जो हमेशा अज्ञेय बनी रहे।"

उसके बाद हिल्बर्ट ने 20 वीं सदी के गणितज्ञों द्वारा हल किए जाने के लिए 23 महत्वपूर्ण सवाल प्रस्तुत किए। वस्तुतः उस दिन हिल्बर्ट ने अपने लिखित भाषण के 23 सवालों में से केवल 10 ही प्रस्तुत किए थे। मगर बाद में वे सारे सवाल पूरी सूची में उनकी क्रमसंख्या से ही पहचाने जाने लगे।

हिल्बर्ट ने 23 सवालों की अपनी सूची में पहला स्थान कांतोर के **सांतत्यक अनुमान** (कंट्यून्यूअम हाइपोथेसिस) को दिया। इसकी चर्चा हम पिछले लेख में कर चुके हैं। सवाल है—क्या प्राकृतिक
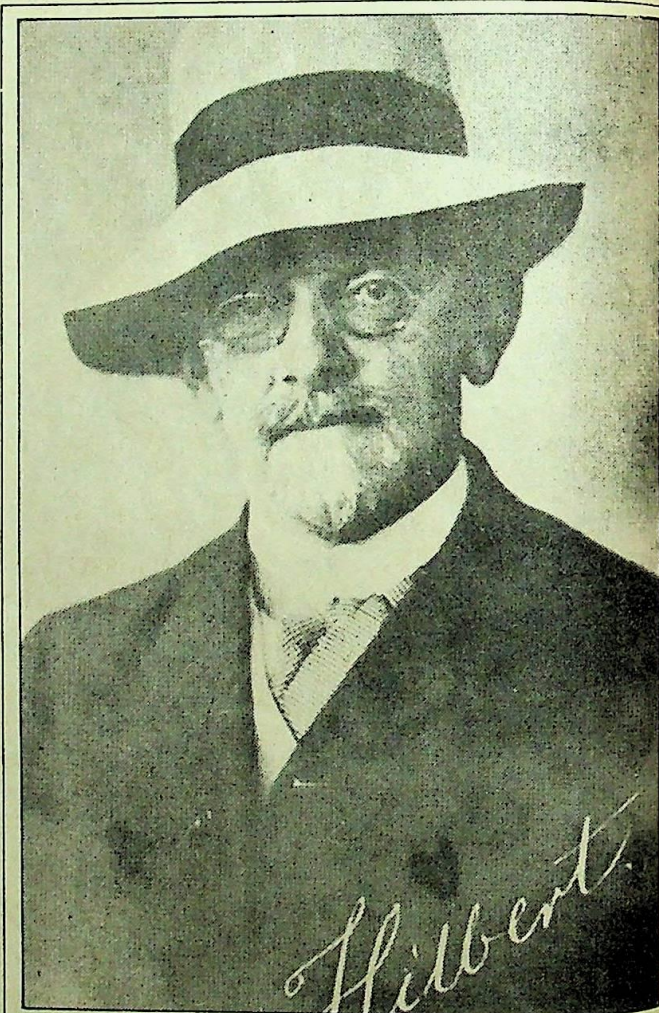
डेविड हिल्बर्ट

संख्याओं के अनंत समुच्चय और वास्तविक संख्याओं के अनंत समुच्चय के बीच में कोई अन्य अनंत समुच्चय है? इस समस्या का समाधान अंततः 1963 ई. में प्राप्त हुआ।

हिल्बर्ट ने गणितीय विषयों की आधारशिला से संबंधित सवालों को सर्वाधिक महत्व दिया था। प्रत्येक विषय के लिए स्वयंसिद्ध अभिगृहीत (एक्सियम्स) निर्धारित करके उनके बीच संगति या अविरोध की स्थापना प्रमाणित करना वे अत्यावश्यक समझते थे। ज्यामिति के लिए उन्होंने ऐसा सफल प्रयास भी किया था और इस विषय पर 1899 में उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी—**ग्रुन्टलागेन डेर ग्यॉमिट्री** (ज्यामिति के आधारतत्व)।

मान लिया गया था कि अंकगणित के लिए स्वीकार किए गए अभिगृहीतों में कोई असंगति या विरोध विद्यमान नहीं है। मगर हिल्बर्ट ने अपने दूसरे सवाल में कहा कि अंकगणितीय अभिगृहीतों की संगति की फिर से जांच होनी चाहिए। अपने छठे सवाल में हिल्बर्ट ने कहा कि भौतिक विज्ञान के जिन विषयों में गणित का व्यापक इस्तेमाल होता है उन्हें भी अभिगृहीतों की आधारशिला पर खड़ा करना आवश्यक है।

आधारतत्वों से संबंधित सवालों के बाद हिल्बर्ट ने अंकगणित व बीजगणित के क्षेत्र के कुछ विशिष्ट सवालों को लिया। सातवां सवाल कुछ संख्याओं की अपरिमेयता या अबीजीयता प्रमाणित करने के बारे में था। आठवां सवाल रीमान की परिकल्पना (जेटा-फलन मे मूलों) को प्रमाणित करने के बारे में था। सूची के अंतिम कुछ सवाल फलन सिद्धांत के क्षेत्र के थे।

हिल्बर्ट के भाषण ने गणित के क्षेत्र में आशावाद की एक जबरदस्त लहर पैदा कर दी। हिल्बर्ट द्वारा प्रस्तुत सवाल बीसवीं सदी के गणितज्ञों के लिए चुनौती बन गए। इनमें कई सवालों के हल मिल गए हैं और कई सवालों के पूर्ण हल प्राप्त करना अभी बाकी है। हिल्बर्ट के ही एक शिष्य मैक्स डेहन ने एक साल के भीतर तीसरे सवाल का समाधान खोज लिया (एक सम-चतुष्फलक को काटकर उसे उतने ही आयतन के एक घन में पुनर्स्थापित करना संभव नहीं है)। मैक्स डेहन ने उन गणितज्ञों के "गौरवशाली वर्ग" में प्रथम स्थान प्राप्त किया जिन्होंने बाद में हिल्बर्ट के सवालों को हल करने में योग दिया।

हिल्बर्ट 1990 ई. तक गणित के विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण खोजकार्य कर चुके थे। 1900 ई. के बाद उन्होंने गणित के विभिन्न विषयों के लिए ठोस आधारतत्व प्रस्तुत करने का काम किया। 1943 में उनका देहांत हुआ, तो तब तक आधुनिक गणित के अनेक विषयों के साथ उनका नाम अभिन्न रूप से जुड़ गया; जैसे, हिल्बर्ट समष्टि (दिक्), हिल्बर्ट असमिका, हिल्बर्ट का आधार प्रमेय, हिल्बर्ट-योसिदा प्रमेय, हिल्बर्ट निश्चर समाकल, हिल्बर्ट अभिगृहीत, हिल्बर्ट विभा, हिल्बर्ट समस्या, हिल्बर्ट उपसमूह, इत्यादि।

हिल्बर्ट के अनुसंधान-कार्य ने बीसवीं सदी के गणित के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। उनकी मृत्यु के समय तक उनके विद्यार्थी, और विद्यार्थियों के विद्यार्थी, केवल यूरोप के छोटे देशों में ही नहीं बल्कि इंग्लैंड, रूस, जापान, अमेरिका आदि अनेक देशों में फैल गए थे। हिल्बर्ट के समय में गॉटिंगेन को 'गणितज्ञों की काशी' समझा जाने लगा था। मगर दुर्भाग्य से हिल्बर्ट को अंततः वे दिन भी देखने पड़े जब हिटलर के शासनकाल में गॉटिंगेन का वैभव समाप्त हो गया।

डेविड हिल्बर्ट का जन्म 23 जनवरी, 1862 को तत्कालीन पूर्वी प्रशिया की राजधानी कोनिग्सबर्ग के समीप के वेहलाउ स्थान पर हुआ था। प्रेगेल नदी के मुहाने के पास बसा हुआ कोनिग्सबर्ग नगर अब सोवियत संघ की सीमा में है और कालिनिनग्राद के नाम से जाना जाता है। कोनिग्सबर्ग में प्रेगेल पर बने हुए सात पुलों ने गणित की जिस समस्या को जन्म दिया था और जिसका हल **आयलर** ने खोजा था वह बाद में जाकर **टॉपालाजी** जैसे महत्वपूर्ण विषय के लिए आधार बनी। महान दार्शनिक **इमान्यूअल कांट** (1724-1804 ई.)
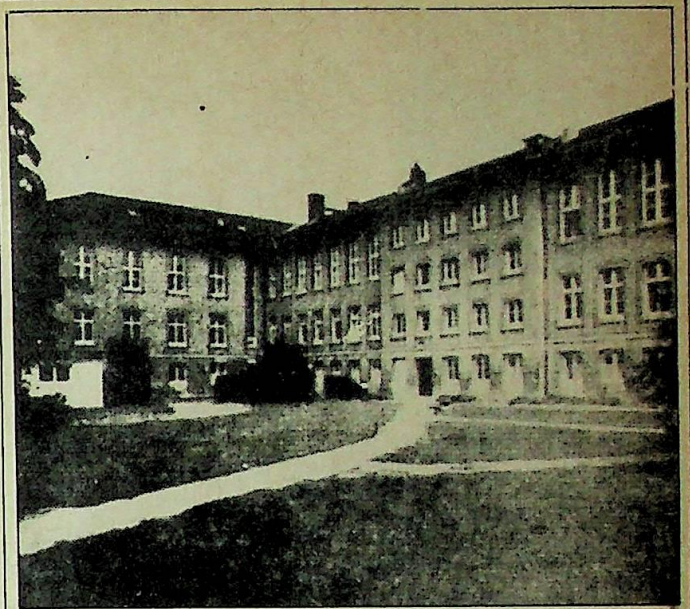
गॉटिंगेन का गणित संस्थान

का सारा जीवन कोनिग्सबर्ग में ही गुजरा।

जब डेविड का जन्म हुआ तो उसके पिता ओटो हिल्बर्ट कोनिग्सबर्ग क्षेत्र में न्यायाधीश थे। मां मेरिया थेरेसे की दर्शनशास्त्र, खगोल विज्ञान और अभाज्य संख्याओं में गहरी दिलचस्पी थी। डेविड को आकाश के नक्षत्र-मंडलों और अभ्याज्य संख्याओं की प्रारंभिक जानकारी अपनी मां से ही मिली होगी।

डेविड जब छह साल के थे तो उनकी बहन एलिसे का जन्म हुआ। आठ साल के डेविड को पहली बार कोनिग्सबर्ग के एक स्कूल में दाखिल किया गया।

दस साल की आयु होने पर डेविड हिल्बर्ट कोनिग्सबर्ग के फ्रेडरिकस्कोलेग जिमनेशियम में दाखिल हुए। उसी समय **मिन्कोवस्की** नामक एक रूसी यहूदी परिवार कोनिग्सबर्ग में आकर बसा। थोड़े ही समय में मिन्कोवस्की परिवार के तीन बालकों—मैक्स, ओस्कर और हरमान—ने कोनिग्सबर्ग में अपनी प्रतिभा की धाक जमा दी। इनमें हरमान मिन्कोवस्की बाद में डेविड हिल्बर्ट के गहरे मित्र और एक अत्यंत प्रतिभाशाली गणितज्ञ हुये

हरमान मिन्कोवस्की डेविड हिल्बर्ट से दो साल छोटे थे और कोनिग्सबर्ग के आल्टस्टाड्ट जिमनेशियम में अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने वहां का आठ साल का कोर्स साढ़े पांच साल में ही पूरा कर लिया और स्थानीय विश्वविद्यालय में दाखिल हो गए। डेविड हिल्बर्ट ने अंतिम वर्ष में विल्हेल्म जिमनेशियम में दाखिला लिया था। वहां की पढ़ाई पूरी करने उन्होंने भी कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। उस समय हिल्बर्ट 18 साल के थे।

कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय की अपनी एक अलग पहचान और वैज्ञानिक परंपरा थी। कांट ने यहां दर्शन व गणित पढ़ाया था, गणितज्ञ **याकोबी** (1804-51 ई.) यहां गणित के प्राध्यापक थे। सर्वप्रथम इसी विश्वविद्यालय ने वायरस्ट्रास को डॉक्टरेट की मानद उपाधि प्रदान की थी। हिल्बर्ट को विश्वविद्यालय का मुक्त वातावरण बेहद पसंद आया।

उस समय जर्मनी में परंपरा थी कि विद्यार्थी एक से दूसरे विश्वविद्यालय में जाकर पढ़ाई करते रहते थे। कोनिग्सबर्ग में पहले सेमेस्टर की गणित की पढ़ाई पूरी करने के बाद हिल्बर्ट हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में चले गए। वहां उन्होंने लाजारुस फुक्स के लेक्चर सुने।

हिल्बर्ट 1882 में कोनिग्सबर्ग लौट गए। हरमान मिन्कोवस्की भी बर्लिन में तीन सेमेस्टरों की पढ़ाई पूरी करके कोनिग्सबर्ग लौट आए थे। उसी दौरान 18 साल के हरमान मिन्कोवस्की और इंग्लैंड के गणितज्ञ हेनरी स्मिथ को सम्मिलित रूप से पेरिस एकादमी का गणित का **ग्रां प्रि** पुरस्कार मिला। उस समय से हिल्बर्ट और मिन्कोवस्की में गहरी मित्रता स्थापित हो गई।

उस समय कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में हेनरिख वेबर गणित के प्राध्यापक थे। कुछ समय बाद उनका स्थान गणितज्ञ लिंडेमान ने ले लिया। लिंडेमान ने प्रमाणित किया था कि π एक अबीजीय संख्या है और इसलिए 'वृत्त को वर्ग में बदलना' संभव नहीं है। लिंडेमान के प्रयास से ही एक तरुण गणितज्ञ एडोल्फ हुरविट्ज कोनिग्सबर्ग में प्राध्यापक बनकर आए। उनसे हिल्बर्ट को बड़ी प्रेरणाएं मिलीं।

विश्वविद्यालय में आठ सेमेस्टर की पढ़ाई पूरी करने के बाद हिल्बर्ट डाक्टरेट के लिए तैयारी करने में जुट गए। अनुसंधान-कार्य के लिए विषय चुना—बीजीय निश्चरों का सिद्धांत। 1885 में हिल्बर्ट को डाक्टरेट की डिग्री मिली।

उन दिनों जर्मनी के विश्वविद्यालयों में प्रिवातदोजेन्त (निजी अध्यापक) का अवैतनिक पद भी प्राप्त करना काफी कठिन काम था। हुरविट्ज की सलाह पर हिल्बर्ट अध्ययन-यात्रा पर निकल पड़े। सर्वप्रथम वे लाइपजिग गए—**फेलिक्स क्लाइन** के लेक्चर सुनने। उन दिनों गणित-जगत में क्लाइन की बड़ी ख्याति थी। केवल 23 साल की आयु में एरलांगेन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त होने पर क्लाइन ने जो उद्घाटन भाषण दिया था वह गणित के इतिहास में ''एरलांगेन प्रोग्राम'' के नाम से मशहूर है। उस ऐतिहासिक भाषण में क्लाइन ने समूह (ग्रूप) की धारणा का उपयोग करके तब तक खोजी गई सभी प्रकार की ज्यामितियों को एकसूत्र में बांधने का प्रस्ताव पेश किया था। हिल्बर्ट ने लाइपजिग में क्लाइन के लेक्चर सुने और एक सेमीनार में भी भाग लिया। क्लाइन भी हिल्बर्ट की प्रतिभा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। क्लाइन ने हिल्बर्ट को पेरिस जाकर फ्रांसीसी गणितज्ञों से संपर्क स्थापित करने और वहां हो रहे गणितीय कार्य का अध्ययन करने की सलाह दी।

उसी समय फेलिक्स क्लाइन को गौस, डिरिख्ले और रीमान जैसे महान गणितज्ञों के गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक-पद स्वीकार करने का निमंत्रण मिला। क्लाइन ने वह पद स्वीकार कर लिया और हिल्बर्ट पेरिस के लिए रवाना हो गए।

वहां वे कई फ्रांसीसी गणितज्ञों से मिले। वयोवृद्ध गणितज्ञ हर्मिट ने उन्हें ''गोर्डान की समस्या'' सुलझाने की सलाह दी। पेरिस के निवासकाल में हिल्बर्ट लगातार पत्र लिखकर क्लाइन को अपने अध्ययन और अनुभव की जानकारी देते रहे।

वापसी यात्रा में हिल्बर्ट क्लाइन तथा अन्य गणितज्ञों के अलावा लिओपोल्ड क्रोनेखेर से भी मिले।

कोनिग्सबर्ग लौटने पर हिल्बर्ट विश्वविद्यालय में निजी अध्यापक नियुक्त हुए। उस समय उनका प्रिय विषय था—निश्चर सिद्धांत। हिल्बर्ट अपने भाषणों के लिए हर बार नए-नए विषय चुनते थे। साथ ही, उन्होंने 'गोर्डान की समस्या' पर गहन चिंतन आरंभ कर दिया।

इस बीच हरमान मिन्कोवस्की बोन विश्वविद्यालय में प्रिवातदोजेंत नियुक्त हुए। हिल्बर्ट और मिन्कोवस्की का पत्र-व्यवहार जारी रहा। 1888 ई. में हिल्बर्ट पुनः गणितीय यात्रा पर निकले। उन्होंने 21 प्रमुख गणितज्ञों से मिलने की योजना बनाई थी। सर्वप्रथम वे एरलांगेन गए और वहां पॉल गोर्डान से मिले। गॉटिंगेन में क्लाइन और श्वार्ट्ज से मिले। बर्लिन में फुक्स, हेल्महोल्ट्ज, वायरस्ट्रास और क्रोनेखेर से मिले। हिल्बर्ट कोनिग्सबर्ग लौट आए और जोर-शोर से खोजबीन में जुट गए। उन्होंने 'गोर्डान की समस्या' का पूर्ण हल खोज लिया। हिल्बर्ट ने और भी कई शोध-निबंध प्रकाशित किए।

आगे के तीन-चार साल हिल्बर्ट के जीवन में बड़ी तेज रफ्तार के रहे। हिल्बर्ट को कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक का वैतनिक पद मिला। अक्टूबर, 1892 में तीस साल की आयु में **कैथे येरोश** नामक तरुणी के साथ हिल्बर्ट का विवाह हुआ। अगले वर्ष उनके पहले पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया **फ्रांज**। उसी समय लिंडेमान म्यूनिख चले गए, तो हिल्बर्ट को कोनिग्सबर्ग में प्राध्यापक का पद मिला। हिल्बर्ट का अनुसंधान-कार्य जारी रहा। उस दौरान उन्होंने बीजीय संख्या-क्षेत्रों पर काम किया और जर्मन मैथेमैटिकल सोसायटी के लिए संख्या सिद्धांत के क्षेत्र की गवेषणाओं को व्यवस्थित और सुदृढ़ आधार प्रदान करने की योजना **(जाहलबेरिख्ट)** में जुट गए—मिन्कोवस्की के साथ मिलकर।

क्लाइन के प्रयास से हिल्बर्ट को गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद मिला। मार्च 1895 में हिलबर्ट सपरिवार गॉटिंगेन चले आए और उन्होंने अपना शेष जीवन वहीं बिताया। कुछ समय बाद उन्होंने गॉटिंगेन में अपने लिए एक मकान भी बना लिया। हिल्बर्ट के जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ। 'जाहलबेरिख्ट' प्रकाशित हुई। मिन्कोवस्की ज़ूरिख में प्राध्यापक नियुक्त हुए।

गॉटिंगेन में तीन साल गुजारने के बाद 1898-99 के शीतकाल में हिल्बर्ट ने ज्यामिति के मूलतत्वों पर व्याख्यान देने की घोषणा की। यह एक नई चीज़ थी। हिल्बर्ट ने अपने व्याख्यानों में ज्यामिति के लिए नए सिरे से ठोस आधारतत्व प्रस्तुत किए और साथ ही एक पुस्तक भी तैयार कर ली—ज्यामिति के आधारतत्व। इस पुस्तक ने हिल्बर्ट को गणित-जगत में मशहूर बना दिया। इस पुस्तक का यूरोप की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ।

'ज्यामिति के आधारतत्व' के प्रकाशन के बाद हिल्बर्ट 'डिरिख्ले नियम' को निखारने में जुट गए। उनके पहले बड़े-बड़े गणितज्ञों ने इस नियम पर काम किया था। हिल्बर्ट ने इस नियम के लिए तार्किक सिद्धि प्रस्तुत कर दी।

नई शताब्दी की शुरूआत के साथ गॉटिंगेन में भी एक नए माहौल

की शुरूआत हुई। 1902 ई. में हरमान मिन्कोवस्की गॉटिंगेन में प्राध्यापक बनकर आए तो हिल्बर्ट के जीवन में नया उत्साह पैदा हो गया। दूर-दूर से, अमेरिका से भी, प्रतिभाशाली विद्यार्थी गॉटिंगेन पहुंचने लगे। 1903 में अठारह साल के **हरमान वाइल** गॉटिंगेन आए। उसी समय **मैक्स बोर्न** भी गॉटिंगेन पहुंचे और कुछ समय बाद हिल्बर्ट के सहायक बन गए। फिर जल्दी ही ओटो ब्लूमेन्थाल और अर्न्स्ट झेरमेलो गॉटिंगेन में प्रिवातदोजेन्त नियुक्त हुए उन दिनों हिल्बर्ट **अनंत चरों के सिद्धांत** पर काम कर रहे थे। बाद में उनका यह कार्य **हिल्बर्ट समष्टि सिद्धांत** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिल्बर्ट ने 1908 में पुराने **वेरिंग अनुमान** (प्रमेय) के लिए उपपत्ति प्रस्तुत की।

उस समय मिन्कोवस्की विद्युत-गतिकी के क्षेत्र में खोजकार्य कर रहे थे। आइंस्टाइन जूरिख में मिन्कोवस्की के विद्यार्थी रह चुके थे। आइंस्टाइन ने अपने आपेक्षिकता के सिद्धांत की स्थापना में मिन्कोवस्की के गणितीय सिद्धांतों का उपयोग किया है। मिन्कोवस्की ने दिक् और काल को आपस में बांधकर तीन विमाओं वाली ज्यामिति को चार विमाओं वाली भौतिकी में रूपांतरित कर दिया था।

सन् 1908 में मिन्कोवस्की 44 साल के थे और उनसे अभी बहुत-सी आशाएं थीं, मगर दुर्भाग्य कि वे ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहे। जनवरी 1909 के एक दिन भोजन के उपरांत मिन्कोवस्की उण्डकपुच्छशोथ (अपेंडिसाइटिस्) के जबरदस्त हमले के शिकार हुए। आपरेशन हुआ, मगर कोई लाभ नहीं हुआ। 12 जनवरी, 1909 को अस्पताल में ही हरमान मिन्कोवस्की का देहांत हुआ। कक्षा में मिन्कोवस्की के देहांत का समाचार सुनाते समय हिल्बर्ट-जैसे ख्यातनाम प्राध्यापक की आंखों से आंसू टपकते देखना विद्यार्थियों के लिए एक नया अनुभव था। गॉटिंगेन में मिन्कोवस्की के रिक्त स्थान पर 32 साल के **एडमंड लान्दौ** की नियुक्ति हुई। लान्दौ संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र की अपनी गवेषणाओं के लिए प्रसिद्ध हैं।

पाठक फर्मा के अंतिम 'प्रमेय' से परिचित होंगे (यदि 'न' का मान 2 से अधिक हो, तो धन पूर्णांकों के लिए $य^न + र^न = ल^न$ सबंध सभव नहीं है)। फर्मा के इस अनुमान की पूर्ण उपपत्ति प्रस्तुत करने के लिए जर्मनी के एक गणितज्ञ प्रो. पॉल वोल्फस्केहल ने गॉटिंगेन की विज्ञान परिषद के पास 1,00,000 मार्क की पुरस्कार-राशि जमा की थी। उस समय परिषद के अध्यक्ष हिल्बर्ट थे। बाद में मार्क की कीमत बेहद घट जाने के कारण उस पुरस्कार-राशि का कोई मूल्य नहीं रह गया। मगर उस समय उस पुरस्कार राशि से मिलने वाले ब्याज का बड़ा सदुपयोग हुआ। ब्याज का उपयोग करके हिल्बर्ट ने चोटी के कुछ गणितज्ञों को व्याख्यान देने के लिए गॉटिंगेन आमंत्रित किया। 1909 में हेनरी प्वांकारे भाषण देने गॉटिंगेन आए।

सन् 1905 में हंगेरी की विज्ञान अकादमी का 10,000 स्वर्ण मुद्राओं का बोल्याई पुरस्कार हेनरी प्वांकारे को मिला था। 1910 में यही पुरस्कार हिल्बर्ट को मिला। इस बार पुरस्कार कमेटी के सचिव प्वांकारे थे। हिल्बर्ट की गणितीय उपलब्धियों के बारे में प्वांकारे ने जो विवरण प्रस्तुत किया था वह 1911 में **आक्टा मैथेमैटिका** पत्रिका में प्रकाशित हुआ। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हिल्बर्ट ने **समाकल समीकरणों** के क्षेत्र में महत्वपूर्ण खोजकार्य किया था और इस विषय पर 1912 में उनका एक ग्रंथ भी प्रकाशित हुआ। वर्तमान सदी के दूसरे दशक में हिल्बर्ट ने भौतिकी के क्षेत्र में अनुसंधान-कार्य किया।

इस दौरान हिल्बर्ट ने फर्मा के प्रमेय को हल करने के लिए दी गई पुरस्कार राशि का अच्छा उपयोग किया। लोरेन्ट्ज और सोमेरफेल्ड को व्याख्यान देने के लिए गॉटिंगेन आमंत्रित किया; जेरमेलो को पुरस्कार प्रदान किया। जब कुछ व्यक्तियों ने हिल्बर्ट से कहा कि स्वयं आप ही क्यों नहीं फर्मा के अंतिम प्रमेय की उपपत्ति प्रस्तुत करते, तो उनका उत्तर था : "उस मुर्गी का वध मैं क्यों करूं जो सोने के अंडे दे रही है?"

प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ, तो जर्मनी के प्रख्यात विद्वानों और वैज्ञानिकों की ओर से कैसर के समर्थन में एक घोषणापत्र जारी किया गया। नेर्न्स्ट, प्लैंक और रोएण्टगेन – जैसे प्रख्यात वैज्ञानिकों ने इस पर हस्ताक्षर किए। मगर आइंस्टाइन और हिल्बर्ट ने हस्ताक्षर नहीं किए। आइंस्टाइन की तरह हिल्बर्ट को भी युद्ध से घृणा थी।

जब महायुद्ध आरंभ हुआ, तो हिल्बर्ट के पुत्र फ्रांज 21 साल के थे। फ्रांज जीवन में कुछ भी विशेष नहीं कर पाए थे। उन्हें कोई स्थायी काम भी नहीं मिल पाया। अंत में उनका मानसिक संतुलन भी बिगड़ गया। हिल्बर्ट दम्पति के लिए यह बहुत दुखदायी स्थिति थी.

रिचार्ड कौरांट विद्यार्थी बनकर पहले ही गॉटिंगेन आ चुके थे और हिल्बर्ट के कृपापात्र बन गए थे। प्रथम महायुद्ध के दौरान **एमिली नोएथेर** गॉटिंगेन आई। इस प्रतिभाशाली महिला गणितज्ञ की विस्तृत चर्चा हम आगे के एक स्वतंत्र लेख में करेंगे।

प्रथम महायुद्ध के बाद तीसरे दशक में (1922 से 1930 तक) हिल्बर्ट ने अपनी शक्ति गणित के लिए ठोस आधारतत्वों का सृजन करने में लगा दी।

जून 1925 में फेलिक्स क्लाइन का देहांत हुआ।

उस समय जर्मन प्रोफेसर का 68 साल की आयु होने पर अवकाश ग्रहण करने का नियम था। जनवरी 1930 में हिल्बर्ट 68 साल के हुए। विद्यार्थियों और प्राध्यापकों के एक बड़े समूह ने निश्चरों के बारे में दिया गया हिल्बर्ट का "विदाई भाषण" सुना। गॉटिंगेन की एक सड़क को "हिल्बर्ट स्त्रास्से" का नाम दिया गया।

उसी साल (नवम्बर 1930 में) 25 साल के तर्क विज्ञानी **कुर्त गोडेल** का एक क्रांतिकारी शोध-निबंध प्रकाशित हुआ। अत्यंत सरल शब्दों में कहें तो गोडेल ने सुदृढ़ तर्क के आधार पर यह प्रमाणित किया कि, ऐसे भी अनेकानेक कथन हैं जिनकी सत्यता, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में, प्रमाणित कर पाना कतई संभव नहीं है।

हिल्बर्ट की मान्यता थी कि किसी भी विषय के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसके लिए अभिगृहीतों को निर्धारित करके उनके बीच संगति स्थापित की जाए। स्वयं हिल्बर्ट ने ज्यामिति के लिए ऐसा ही किया था। वे चाहते थे कि अंकगणित के लिए भी ऐसा ही किया जाए। मगर कुर्त गोडेल ने उनके समूचे प्रोग्राम पर पानी फेर दिया। सिद्ध कर दिया कि एक

शेषांश पृष्ठ 43 पर

भयानक रोग-डिप्थीरिया

रमेश पोत्दार

साढ़े नौ होने वाले थे। डा. शर्मा ने एक घायल व्यक्ति की पट्टी करने के बाद हाथ धोते हुए स्वयं से कहा, "जाने का वक्त हो गया।" जैसे ही उन्होंने स्टेथेस्कोप रखने के लिये अपना बैग खोला उनको अपने क्लिनिक के बाहर किसी की आवाज सुनाई दी। झांक कर बाहर देखा, उनका सहायक किसी परेशान दम्पति को उनके कमरे में ला रहा था। उस स्त्री के हाथ में बच्चे को देखते ही डाक्टर समझ गये कि अब दो घंटे तक उनका बाहर निकलना मुश्किल है। साथ ही उनकी थकान भी जाती रही और स्वयं से बोले "पत्नी के साथ गप्पें मारने और खाने के प्रोग्राम को गुडबाई" क्योंकि कर्त्तव्यपरायण डाक्टर की आदत ही ऐसी होती है।

एकदम उनका ध्यान उस बच्चे की ओर गया। लगभग सात माह की एक सुन्दर सी लड़की अपनी मां की गोद में निढाल सी पड़ी थी। उसका रंग स्याह पड़ चुका था। वह परेशान, उनींदी सी हो रही थी और उसकी हर सांस के साथ गले से घरघराने की आवाज आ रही थी जिससे उसे बड़ी परेशानी महसूस हो रही थी। सांस लेने पर हर बार उसकी गर्दन के बीच में स्कन्ध अस्थि और उसके दूसरी ओर खिंचाव हो रहा था। उसके माता-पिता की परेशानी स्वाभाविक थी।

डा. शर्मा ने कहा "यह समय बात करने का नहीं,काम करने का है। बच्ची को जल्दी लिटाओ। पहले मैं इसे देख लूं, बातें फिर होंगी।"

हेडलाइट पहन कर डा. शर्मा ने सबसे पहले बच्ची का गला देखा। "ओह वही है जिसकी मुझे आशंका थी।"

गला अन्दर से लाल हो गया था, दोनों टॉन्सिलों के चारों ओर बहुत अधिक सैलाइवा जमा हो गया था और गले के पीछे गंदले सफेद रंग की झिल्ली सी बन गई थी जो बच्ची के स्वर यंत्र यानि लैरिंक्स तक फैली हुई लग रही थी। डा. शर्मा ने उसे छूने की बिल्कुल कोशिश नहीं की। क्योंकि छूने से उसके फटने का डर था जिससे खून बहना शुरू हो सकता था। झिल्ली से रक्त प्रवाह ही डिप्थीरिया के रोगी का मुख्य लक्षण है यह झिल्ली बहुत नाजुक होती है और इसके टूटते ही इससे खून बहने लगता है।

डा. शर्मा अपने आप में बुदबुदाये, "लगता है,इन्होंने इसे डी पी टी का टीका नहीं लगवाया है।". उन्होंने जोर से, लगभग चिल्लाकर बच्चे के माता-पिता से पूछा "क्या आपने बच्ची को ट्रिपिल या डी पी टी का टीका लगवाया है।"

बच्ची के पिता ने उसकी मां की ओर देखा और कहा "डाक्टर साहब, ये सब इसका काम है और इस तरह के सारे काम मैंने इस पर ही छोड़ रखे हैं।"

बेचारी मां जो पहले ही रो रही थी सिसकते हुये बोली. "डाक्टर इसे हम टीका लगाने ले जाने वाले ही थे,लेकिन पिछले तीन-चार महीनों से मेरे पति बहुत ही व्यस्त थे,जिससे हम नहीं जा सके.... लेकिन यह तो बिल्कुल ठीक थी बल्कि इस दौरान तो कभी बीमार भी नहीं पड़ी।"

डा. शर्मा ने बात को आगे बढ़ाना ठीक नहीं समझा।इसलिये रोगी का निरीक्षण कर ठीक निदान करते हुये बोले, "इसे भयानक डिप्थीरिया हो गया है जो इसके स्वर कोष्ठ तक पहुंच गया है। अब इसका शीघ्र इलाज आवश्यक है।"

जल्दी-जल्दी वे सभी लोग डा. शर्मा की कार में बैठ गये। जैसे ही ड्राइवर ने कार स्टार्ट की,डा. शर्मा ने अपने सहायक को शल्य चिकित्सक डा. वर्मा को फोन करने को कहा, ताकि वे भी समय पर अस्पताल पहुंच सकें।

डाक्टर बच्चे को सीधे "सिटी इन्फैक्शियस डिज़ीज" अस्पताल ले गये। जो जन-समुदाय को संक्रामक रोगों से बचाने के लिये अलग से खोला गया था और यहां पर संक्रामक रोगों से ग्रस्त रोगियों का इलाज किया जाता था। अन्दर घुसते ही डाक्टर शर्मा बोले, "भई यह जरा गंभीर मामला है। इसलिये बाकी खानापूरी बाद में कर लेंगे। पहले दो नर्सों और एक सहायक को जल्दी अन्दर भेजो।"

सबके आते ही वे बोले "यह बच्चा संक्रामक रोग ग्रस्त है। संभवतः डिप्थीरिया है। इसलिये इसे अलग कमरे में रखना होगा और इसकी देखभाल करने वाली नर्सें अन्य रोगियों को हाथ न लगायें।" ऐसा कह कर डा. शर्मा ने उसका उपचार आरंभ कर दिया और डिप्थीरिया के परीक्षण के लिये बच्ची के गले में निकलने वाले स्राव को पैथोलाजिस्ट के पास भेजने की तैयारी शुरू की। बच्ची को बिस्तर पर लिटाया और सक्शन मशीन की सहायता से बच्ची के गले में एकत्रित लार को बाहर निकाल कर नर्स को रबर कैथेटर की सहायता से ऑक्सीजन देने को कहा ताकि बच्ची सांस ले सके। लार को परखनली में रख कर उन्होंने पैथोलाजिस्ट को भेजा तथा स्वयं भी डिप्थीरिया के जीवाणुओं की जांच के लिये उसे विशेष रासायनिक माध्यम,जिसे 'मैककान्की माध्यम' कहते हैं,में रखा और केस शीट पर रोगी का विवरण लिखने लगे।

उसी समय डा. वर्मा ने भी हड़बड़ाते हुये कमरे में प्रवेश किया और बच्ची को देखते ही बोले, "हे भगवान! ये तो बिल्कुल नीली पड़ गई
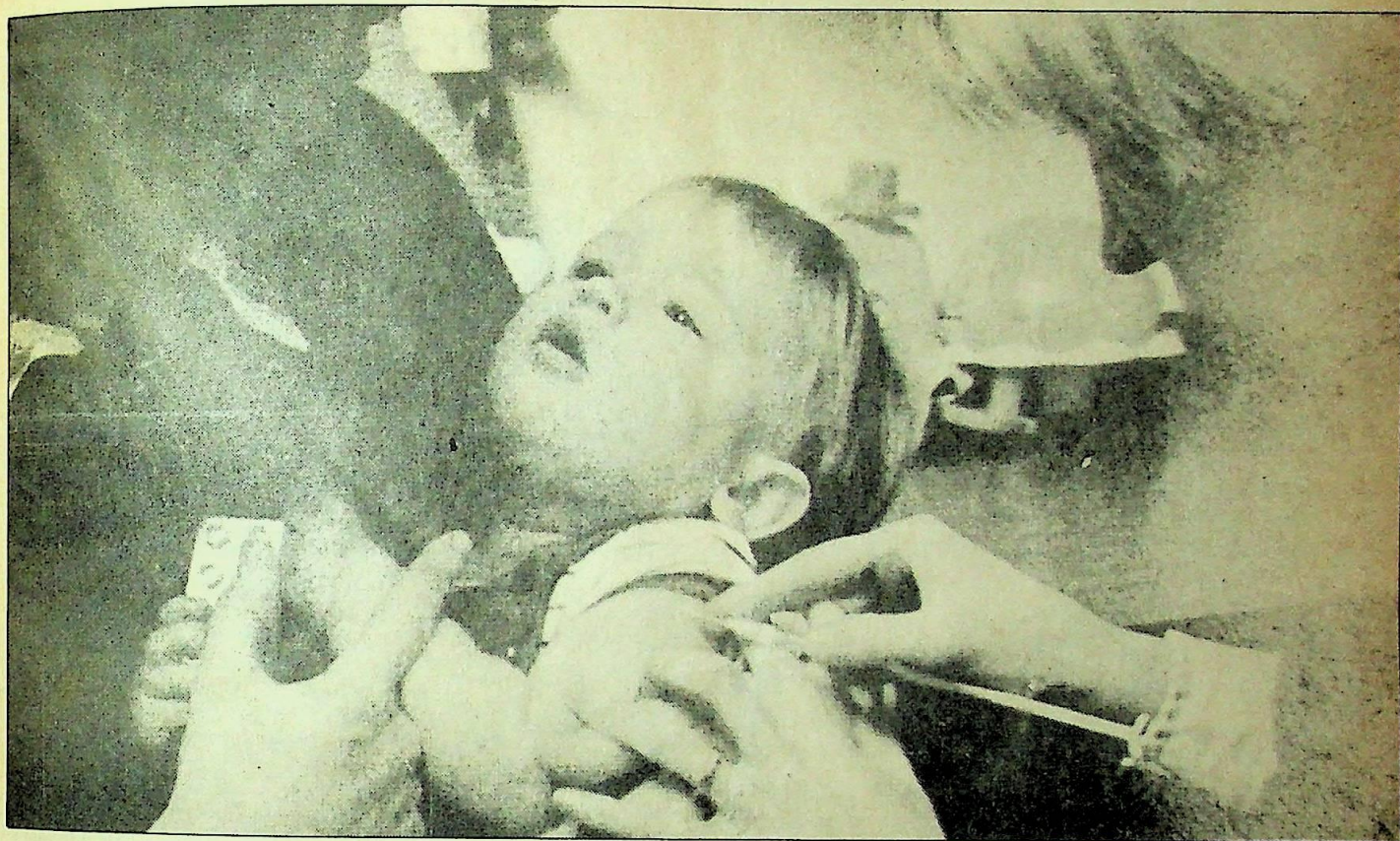
है। इसको गहन चिकित्सा कक्ष में ट्रैकियोस्टोमी के लिये ले जाओ, मैं अभी आता हूं।''

इस बीच डा. शर्मा ने बच्ची को कुछ इन्जेक्शन दिये। अब बच्चे का चिकित्सीय उपचार आरंभ हो चुका था। शल्य चिकित्सक डा. वर्मा ने बच्ची की श्वास नली में स्वर प्रकोष्ठ के ठीक नीचे तक बनी झिल्ली को तोड़ा ताकि बच्ची की श्वास नली खुल जाये। इस क्रिया को ही 'ट्रैकियोस्टोमी' (ट्रैकिया : श्वास नली; स्टोमी : खुलना) कहते हैं। श्वास नली के खुलते ही स्वच्छ वायु बच्चे के फेफड़ों तक पहुंची और उसका रंग ही बदलने लगा, उसे ताजगी महसूस होने लगी। वहीं पर खड़े बच्ची के मां-बाप ने अपने बच्चे का पुनर्जन्म देखा और वे उन दोनों डाक्टरों के प्रति कृतज्ञ हो गये।

डा. शर्मा ने उस दम्पत्ति को बताया कि रविवार छोड़ कर प्रतिदिन शाम को 4 बजे मैं रोगियों और अन्य इच्छुक व्यक्तियों को विभिन्न रोगों और उनकी रोकथाम के बारे में बताता हूं। आप भी कल वहां आइये, मैं वहां और बातें भी डिप्थीरिया के आगे के इलाज के बारे में बताऊंगा।

दूसरे दिन 4 बजे हाल में बहुत सारे लोग डाक्टर साहब की प्रतीक्षा कर रहे थे। दम्पत्ति पहली पंक्ति में बैठ गये। आज उनका बच्चा मस्त और हंसता खेलता नजर आ रहा था हालांकि "ट्रैकियोस्टोमी" की वजह से उसे बोलने में परेशानी हो रही थी।

डा. शर्मा ने कहा ''आज हम बच्चों, विशेषतः दो वर्ष से छोटे बच्चों को होने वाले भयानक रोग डिप्थीरिया के बारे में बतायेंगे। यह जानलेवा रोग है। इसमें बच्चों का दम घुटने लगता है क्योंकि बच्चों की श्वास नली में एक झिल्ली बन कर बच्चे के स्वर कोष्ठ तक फैल जाती है। जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न विषैले पदार्थ हृदय की मांसपेशियों को क्षतिग्रस्त कर देते हैं और कभी-कभी लगभग चार हफ्ते बाद बच्चे को लकवा भी पड़ जाता है। इस अवस्था में बच्चे कभी-कभी दो महीने तक ऐसे ही पड़े रहते हैं।''

''डा. साहब यह किस वजह से होता है?'' एक व्यक्ति ने पूछा।

''यह छड़ के आकार के छोटे **कार्नेबैक्टीरियम डिप्थीरी** नामक बैक्टीरिया से होता है। इसका संक्रमण छींकने, खांसने, थूकने, बलगम तथा डिप्थीरिया से ग्रस्त रोगी के संपर्क में रहने से होता है।''

''इसका मतलब यह छूत का रोग है'', दूसरा बोला।

''नहीं! महाशय नहीं। छूत के रोग तो त्वचा के सम्पर्क से ही हो जाते हैं। यह संक्रामक रोग तो हवा, पानी, दूध आदि के माध्यम से फैलता है।''

''डाक्टर साहब, ये शुरू कैसे होता है?''

''शरीर में बैक्टीरिया के प्रवेश करने के बाद 6-7 दिन तक बैक्टीरिया अपने को शरीर के ताप के अनुकूल बना लेते हैं और आमतौर पर गले को अपना निशाना बनाते हैं। वैसे डिप्थीरिया भी कई तरह का होता है। उदाहरण के लिये फासियल डिप्थीरिया गले और टान्सिल को बहुत प्रभावित करता है जबकि नासिका डिप्थीरिया रोगी के लिए कम और सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के लिए अधिक

हानिकारी होता है, क्योंकि उसके छींकने आदि से आसपास के लोग और विशेषकर बच्चे इससे जल्दी प्रभावित होते हैं। कभी-कभी इसमें नाक से खून भी बहता है। लेकिन गले का डिप्थीरिया सबसे अधिक हानिकारी होता है। इसमें श्वास नली और गला पूर्णतः बन्द हो जाता है जो अकाल मृत्यु का कारण बनता है।"

"डिप्थीरिया होने का पता कैसे चलेगा, डाक्टर साहब?" एक 15 साल के लड़के ने पूछा जो बहुत उत्साहित दिख रहा था।

"डिप्थीरिया ग्रस्त बच्चा खाना छोड़ देता है, उसे बुखार चढ़ जाता है। उसे कुछ भी निगलने में परेशानी होती है लेकिन वो उल्टी भी करता रहता है। उसके मुंह से निकली लार इतनी गाढ़ी हो जाती है कि उसे भोजन निगलने में कठिनाई होती है। जब संक्रमण गले तक पहुंच जाता है तो बच्चे की आवाज स्वतः ही घोड़े जैसी हो जाती है और उसकी खांसी के साथ कुत्ते की जैसी आवाज निकलती है। फिर रोग भयंकर रूप ले लेता है। उसे सांस लेने में कठिनाई होती है और स्वच्छ वायु न मिलने से उसका रंग नीला पड़ जाता है। इस स्थिति में पर्याप्त चिकित्सा न मिलने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसलिये बच्चों के मामले में हमें सावधान रहना चाहिये" डाक्टर ने बताया।

"डाक्टर साहब! इसका कोई और इलाज भी है?" एक दादी अम्मा ने पूछा।

"हां! सबसे बड़ा उपाय, बच्चे का जल्द से जल्द उपचार है। ध्यान रखें कि इलाज में जितनी देरी होगी बच्चे की जान को उतना ही खतरा बढ़ता जायेगा।"

"ऐसा क्यों होता है, डाक्टर?" कल वाली बच्ची के पिता बोले, अभी भी उनका चेहरा उतरा हुआ था।

"ऐसा इसलिये कि डिप्थीरिया के जीवाणु निरन्तर एक विषाक्त पदार्थ एण्डोटाक्सिन स्रवित करते हैं जो खून के साथ मिलकर सारे शरीर में फैल जाता है। एक बार विषाक्त पदार्थ शरीर की पेशियों हृदय या भुजाओं की तंत्रिकाओं में जम जाय तो विष प्रतिकारी पदार्थ, जिसे 'एन्टीडिप्थीरिक सीरम' भी कहते हैं, उस पर प्रभावी नहीं होता इसलिये रोगी का जल्दी इलाज करना आवश्यक होता है। हां! यह इसे उदासीन जरूर कर सकता है

"आपका मतलब है कि हमें रोगी को यह सीरम देना चाहिये। यह सीरम किसका होता है?" उस नौजवान ने फिर पूछा।

"वास्तव में यह घोड़े का शोधित सीरम है जिसे इन बैक्टीरियां के टीके लगे घोड़े से निकाला जाता है। शरीर की रक्षा करने वाले शरीर में उपस्थित सिपाहियों को प्रतिजन कहते हैं। ये घोड़े के खून में होते हैं। इन सीरम युक्त प्रतिजनों को घोड़े के रक्त से लेकर शोधित करके इंजेक्शन के रूप में रख लिया जाता है। लेकिन इसकी खुराक संक्रमण के अनुसार अलग-अलग होती है। इसलिये इसको देने से पहले इसकी प्रतिक्रिया जानने के लिये हमेशा त्वचा पर परीक्षण करना आवश्यक होता है।"

"डा. साहब एक बात मुझे भी बताइये, उपचार से पहले जिस अंग के ऊतक में यह विषैला पदार्थ जम जाता है उस अंग की क्या प्रतिक्रिया होती है?"

"प्रभावित अंगों के ऊतकों में व्यवधान आने लगता है, जैसे हृदय के प्रभावित होने पर नाड़ी धीमी हो जाती है, यहां तक कि हृदय गति ही रुक जाती है। यदि त्वचा स्वस्थ है और ऐसे संक्रमण को झेल सकता है तो वह पूरे आराम और उचित उपचार और दवाइयां जैसे स्टीरायड आदि खाने के बाद स्वस्थ हो जाता है।"

डिप्थीरिया के दूसरे बुरे प्रभाव को "पोस्ट डिप्थीरिक पालीन्यूराइटिस" कहते हैं जो शरीर की तंत्रिकाओं को प्रभावित करता है और इसका परिणाम होता है लकवा। यह प्रभाव सक्रमण के 4-6 सप्ताह बाद होना शुरू होता है और लगभग दो महीने तक बढ़ता जाता है। छाती या उदर भाग की श्वसनी पेशियों के लकवा ग्रस्त हो जाने से रोगी को स्वास्थ्य लाभ तक ऑक्सीजन देनी पड़ती है। कभी-कभी इस स्थिति में रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

"डा. साहब! क्या आप पूर्णतः इस रोग से लोगों को छुटकारा नहीं दिला सकते?" दादी अम्मा फिर बोली।

डा. साहब मुस्करा कर बोले, "दादी अम्मा ऐसा भी हो सकता है लेकिन वो तभी संभव है जब मां-बाप बच्चे को प्रत्येक डी पी टी का टीका निर्धारित समय पर दिलवायें। बच्चे को डी पी टी के टीके 6-8 सप्ताह की उम्र में दिये जाते हैं। उसके बाद डेढ़ वर्ष की उम्र में इसकी "बूस्टर डोज" दी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर 5 वर्ष की उम्र में भी जब बच्चा स्कूल जाना शुरू करता है, इसकी एक खुराक और दी जा सकती है क्योंकि इस समय भी संक्रमण की संभावना होती है।"

"डाक्टर साहब, ये मेरी गलती है। टी.वी., रेडियो पर देखने-सुनने के बावजूद भी मैंने लापरवाही दिखायी" उसी बच्ची की मां बोली।

डा. साहब धीमे से मुस्कुराये और उस दम्पत्ति को सांत्वना देते हुये बोले, "अब भविष्य में यह गलती मत दोहराना। यदि आपने सब टीके बच्चे को समय पर लगवाये होते तो आपको इस स्थिति से गुजरना ही नहीं पड़ता।"

"अच्छा, अब मैं चलूं। मेरा क्लिनिक जाने का समय हो गया है।" इतना कह कर डाक्टर दूसरे रोगियों के दवा दारू के इंतजाम को चल दिये।

[डा. रमेश पोत्दार, 69 डी.वी. प्रधान रोड, बंबई- 14]

आखिर डा. गिंगो ने ही सुलझायी मौत की गुत्थी

देवेंद्र मेवाड़ी

स्पैक्टर और सिपाही रामसिंह ने हॉस्टल में पहुंच कर वहां की युवतियों से माला के बारे में पूछताछ शुरू की।

"माला यहां कब से रह रही थी?"

"पिछले तीन वर्षों से।"

क्या उससे मिलने कोई आता था?"

"शायद नहीं। अकेली रहती थी, अक्सर।

कुछ बात न बनते देख इंस्पैक्टर बुरी तरह खीझ गया। बोला "आप लोग इतने अरसे से साथ रही हैं। क्या बता सकती हैं कि माला जैसी लड़की आत्महत्या भी कर सकती थी?"

"नहीं, ऐसी बात हम उसके बारे में सोच भी नहीं सकते"

इंस्पैक्टर खिन्न होकर बोला, "अच्छा आप में से दो-तीन यहां रहें, बाकी जायें। हम माला के कमरे की तलाशी लेंगे।"

''कुछ मिला रामसिंह?''

''नहीं सर, काम का कुछ नहीं मिला।''

तभी उसने सिरहाने की ओर से गद्दा उठाया और एक फोटो देख कर चौंक गया।

''सर! एक फोटो मिली है।''

''क्या, फोटो?''

इंस्पैक्टर ने झपट कर फोटो ले ली और उसे तीखी नजर से देखा। धीरे-धीरे उसके चेहरे पर कुटिल मुस्कान आ गयी।

उसने युवतियों की ओर देखा और कड़कते हुये कहा, ''आप लोग क्या ताक रही हैं? सब साथ रहती हैं मगर यह पता नहीं कि यहां क्या हो रहा है। इस फोटो को ले जा रहे हैं हम। पक्का सबूत है यह।....चलो, रामसिंह।''

पुलिस स्टेशन लौट कर इंस्पैक्टर ने तत्काल शरद कुमार को तलब किया। उसके चेहरे पर आंखें टिका कर व्यंग्य से बोला ''तो काफी दिनों से परिचित हैं आप माला के, शादी क्यों नहीं कर ली आपने माला से।''

''क्या कह रहे हैं आप?''

''वही, जो सच है। मैं जो कुछ भी कह रहा हूं, ठीक कह रहा हूं। सुबूत मुझे मिल गया है। ये फोटो स्पष्ट कहानी कह रही हैं।''

''इंस्पैक्टर! आप कुछ मेरी बात भी सुनेंगे।''

''क्या सुनूं आपकी? अब तो सब कुछ साफ है, श्रीमान जी। जैसे ही आपकी पोल खुलने लगी आपने उसे धक्का देकर अपने को साफ बचा लेना चाहा लेकिन ऐसा नहीं हो सकता,'' महाशय ''तो, कहिए, आप अपना अपराध स्वीकार करते हैं?''

''अपराध? मैं बेकसूर हूं। मैंने माला की हत्या नहीं की इंस्पैक्टर।''

''यह तो अब अदालत में साबित होगा।''

''ओह....ओह.....डा. गिंगो!''

बदहवाश होकर शरद कुमार, इंस्पैक्टर और सिपाही के साथ शहर से दूर उस पुरानी अकेली इमारत के पास पहुंचा। गेट पर तख्ती लगीं थी—कुत्तों से सावधान! इंस्पैक्टर ने कालबैल का बटन दबाया तो दबाये ही रखा। तब अचानक भड़ाके से दरवाजा खुला और एक दबंग नौकर ने बाहर झांका।

''कौन है? कहिये?''

''डा. गिंगो हैं?''

''नहीं हैं। क्या काम है?''

''काम है, किनारे हटो।''

''कह दिया, कोई नहीं है यहां।''

''चौप्प... जुबान लड़ाता है दरोगा जी से। हट जाओ रास्ते से।''

''अंदर आना मना है।''

अंदर से किसी खूंखार कुत्ते की आवाज सुनाई दी। तभी शरद कुमार ने नौकर से कहा,

''अंदर आने दो बंका।''

''डा. साहब.....''

''ठीक है....ठीक है.....आने दो। नीता है?''

''हां! आई हैं।''

इंस्पैक्टर और सिपाही शरद कुमार के साथ भीतर बैठक कमरे में पहुंचे। इंस्पैक्टर ने चारों ओर नजर फेरी। अलमारियों में पुस्तकें और तरह-तरह की चीजें रखी थीं। कई प्रकार के पत्थर, लकड़ियां के टुकड़े, पुरानी मूर्तियां, मुखौटे आदि। दीवारों पर ध्यान में बैठे कुछ

सन्यासियों के चित्र भी लगे थे। एक दीवार पर वृत्ताकार रेखाओं के बीच ''ओम्'' का पोस्टर टंगा था। कुछ शेल्फ में ''द माइंड रीच, सुपर नेचर, बायोग्राफी ऑफ ए योगी, मेंटल पावर, इंडिया ऑफ योगीज, जोनाथन लिविंग्स्टन सी गल आदि पुस्तकें दिखाई दे रही थीं। अभी इंस्पैक्टर कमरे की तमाम चीजों को देख ही रहा था कि अचानक डा. गिंगो ने कमरे में प्रवेश किया। उलझे, बिखरे बाल, चेहरे पर घनी दाढ़ी, सफेद एप्रन और आंखों पर चश्मा। सिर पर हैट रखते हुये वे इंस्पैक्टर की ओर देख कर चिल्लाये।

''कौन हैं आप लोग? किसने आने दिया आप लोगों को। बंका इनको बाहर निकालो।''

''डाक्टर......ये मेरे साथ हैं।''

''तुम्हारे साथ? अच्छा, अच्छा। अन्यथा पुलिस का मेरे घर में क्या काम।''

बीच में इंस्पैक्टर बोल पड़ा, ''काम है डाक्टर। एक तहकीकात के सिलसिले में आना पड़ा। शरद कुमार का कहना है कि आप साबित कर सकते हैं कि ये बेकसूर हैं। दरअसल बात ऐसी है कि.....''

''(डा. गिंगो चिढ़कर) जैसी है, मुझे पता है। और, मैं साबित

करूंगा कि बात जैसी है, हू-ब-हू वैसी सामने आये। आप क्या किसी बेकसूर को बिना किसी सुबूत के सजा दिलवायेंगे। आखिर क्या प्रमाण है आपके पास कि शरद ने ही हत्या की है। एक औरत इमारत से गिर गई और आपने उसके लिये इन्हें जिम्मेदार ठहरा दिया। क्या कहने हैं! वाह''!

''लेकिन परिस्थितियां तो यही साबित करती हैं डा. गिंगो।''

''परिस्थितियां किसी के खिलाफ नहीं होती हैं श्रीमान इंस्पैक्टर। उन्हें खिलाफ बना दिया जाता है।''

''आप समझने की कोशिश कीजिये, शायद आपको कुछ पता नहीं।''

''सब पता है मुझे शरद ने सब कुछ बता दिया है। माला और शरद अच्छे मित्र थे। बस, इससे अधिक कुछ नहीं।''

''इससे ज्यादा थे, इसीलिये माला की हत्या हुई। आपसे झूठ बोला है इन्होंने।''

''तुम्हें पता नहीं है मिस्टर, शरद मुझसे झूठ नहीं बोल सकता। बहुत पुराने परिचित हैं हम और मैं इसे एक साफ आइने की तरह जानता हूं। मैं पिछले कई वर्षों से मीनू को देख रहा हूं।''

''लेकिन, माला और इनका वह फोटोग्राफ? और इनकी बिटिया के संकेतों से भी साफ पता लगता है कि माला और श्रीमती नीता कुमार में कहासुनी हुई और शरद कुमार ने माला को बालकनी से नीचे फेंक दिया।''

''मीनू के संकेतों से? उसके संकेतों का मतलब समझते हैं आप? न जाने आपके इशारों का क्या मतलब लगाया होगा उस अबोध बच्ची ने। फिर भी घटना की चश्मदीद गवाह है वह। उसने सब कुछ अपनी आंखों से देखा। असलियत की तस्वीर तो बस उसकी याददाश्त में है इंस्पैक्टर!... वारदात की सही और साफ तस्वीर! मीनू की ''मेमोरी'' से ही केवल पता लग सकता है सच्चाई का। लेकिन, उसकी मेमोरी के प्रोजेक्शन के लिये उसे उस घटना पर अपना ध्यान केंद्रित करना होगा। ...तभी सच्चाई का पता लग सकेगा इंस्पैक्टर ...सच्चाई, जिसे तुम देख सको, मीनू की याददाश्त के खजाने से उस घटना के दृश्य को पर्दे पर लाना होगा। ...वैसे ही जैसे कंप्यूटर की मेमोरी से कोई जानकारी उसके पर्दे पर लाई जाती है। बस, उसी तरह.....।''

इंस्पैक्टर बुरी तरह चौंक गया– ''आप क्या कह रहे हैं, डाक्टर?''

लेकिन, डा. विचारों में खो गये। उनकी तंद्रा नीता कुमार की आवाज से भंग हुई।

''डाक्टर साहब! डाक्टर साहब!''

''क्या है? क्या है नीता?''

''यहां आइये। जल्दी देखिये.....''

डा. गिंगो ने इंस्पैक्टर, सिपाही और शरद कुमार को वहीं रुकने का संकेत किया और स्वयं नीता कुमार के साथ भीतर चले गये।

भीतर उनकी प्रयोगशाला थी, जिसमें तमाम वैज्ञानिक उपकरण रखे हुये थे। प्रयोगशाला के एक कोने में कुर्सी पर मीनू चुपचाप बैठी थी। आंखें मूंदे हुये, जैसे ध्यान में डूबी हुई हो। उसने एक हेल्मेटनुमा उपकरण पहना हुआ था, जिससे तार निकल कर एक टेलीविजन की तरह के उपकरण से जुड़े हुये थे। डा. गिंगो और नीता कुमार दबे पांव मीनू के पास गये। उन्होंने देखा कि टेलीविजन सदृश उपकरण के स्क्रीन पर तस्वीरें बन-बिगड़ रही थीं। कभी नीता कुमार के साथ मीनू दिखाई देती और कभी शरद कुमार मीनू को प्यार करते हुये दिखाई देते। फिर वे तस्वीरें धुंधली पड़ गईं। नई तस्वीरें दिखाई देने लगीं। खेलते-खिलखिलाते बच्चों की तस्वीरें। आपस में बतियाते हुये बच्चों की तस्वीरें।

तस्वीरें। ...डा. गिंगो के चेहरे पर सफलता की मुस्कान फैल गई। वे दबे पांव बैठक के कमरे में लौट आये और दरवाजा फेर कर खुशी से चिल्लाये।

''मिल गई! मिल गई इंस्पैक्टर।''

''क्या मिल गई डाक्टर?''

''मुझे अपने स्मृति दर्शक यंत्र पर स्मृति दिखाने में सफलता मिल गई है।''

''स्मृति दर्शक यंत्र?''

''हां, स्मृति दर्शक यंत्र। 'मेमोराइजर' भी कह सकते हो। मैंने बना लिया है यह यंत्र, जो आदमी की याददाश्त को तस्वीरों के रूप में पर्दे पर दिखा सकता है। भीतर मीनू जिन घटनाओं को ध्यान से याद कर रही है, वे फिल्म की तरह मेरे स्मृति दर्शक यंत्र के पर्दे पर साफ-साफ दिखाई दे रही हैं। मीनू बोल नहीं सकती। सुन नहीं सकती—लेकिन देख तो सकती है! याद तो रख सकती है। उसकी यादों के टुकड़े उभर रहे हैं पर्दे पर।''

फिर, अचानक रुक कर उन्होंने इंस्पैक्टर, सिपाही और शरद कुमार की ओर देखा। इंस्पैक्टर से बोले ''इस समय मीनू का ध्यान केंद्रित है। वह एकाग्रमन से घटनाओं को देख रही है। उसके मस्तिष्क से इस समय अधिकतम ''अल्फा तरंगें'' निकल रही हैं। इसीलिये वह शांत बैठी है.......''

''यह अल्फा....अल्फा तरंग क्या है, डाक्टर?''

''साइंस के अल्फाज इस्तेमाल कर रहा हूं इंस्पैक्टर। जब मन एकाग्र होकर ध्यान की अवस्था में आ जाता है तो पिछली घटनाओं को याद करने पर साफ-साफ मेमोराइजर में देखा जा सकता है।

''लेकिन इस सब का हमारे केस से क्या संबंध है?''

''गहरा संबंध है। माला के साथ क्या हुआ, इसकी चश्मदीद गवाह है मीनू। क्यों?''

''हां, चश्मदीद गवाह तो है, मगर.....''

''अगर-मगर कुछ नहीं इंस्पैक्टर। मुझे सारी कहानी मालूम है। मैं कई साल से यह प्रयोग कर रहा हूं—चुपचाप। मीनू इस प्रयोग में मेरे साथ रही है। यही कारण है कि शरद के बाहर आने-जाने पर भी मीनू और नीता कुमार शहर में यहीं रहते हैं। माला रघुवंशी वाला हादसा होने के बाद से ही शरद मुझे समय-समय पर सारी बातें बताता रहा है। मैं नहीं चाहता कि मेरे प्रयोगों के बारे में कोई जाने—कम से कम तब तक, जब तक मैं स्वयं न बता दूं.... क्या दिया

है दुनिया ने मुझे? जहां भी गंभीरता से अनुसंधान करने लगा सनकी कहा गया। सुविधाएं छीन ली गईं। तब मैंने अपने लिये, अपने मन मे संतोष के लिये अनुसंधान करना शुरू किया। स्वांतः सुखाय! मैंने मस्तिष्क की अल्फा तरंगों पर काम किया। मुझे लगा कि इन तरंगों को केंद्रित करके स्मृति को तस्वीरों की तरह दिखाया जा सकता है। तब मैंने स्मृति दर्शक यंत्र पर काम शुरू किया। और, आज....आज मेरे स्मृति दर्शक यंत्र पर स्मृति को दिखाना संभव हो गया है। मैं खुश हूं। मेरी सफलता है यह, केवल मेरी! मेरा आविष्कार है यह।....."

"अब सामने आयेगी सच्चाई इंस्पैक्टर। वह सच्चाई जिसे तुम अपनी आंखों से देखोगे। अपनी आंखों से, शरद और नीता अपराधी हैं या नहीं, यह अभी पता लग जायेगा। मीनू अभी ध्यान केंद्रित करने की सही अवस्था में है। माला रघुवंशी वाली घटना को उसे कैसे याद दिलाया जाये?

"मैं याद दिलाने की कोशिश करूं?" शरद ने कहा।

"खाली याद दिलाना कठिन होगा। उसे कोई ऐसी चीज दिखाओ कि उसे देखते ही माला रघुवंशी की उसे याद आ जाये....।"

सिपाही बोला, "सर, वो पर्स।"

इंस्पैक्टर चहका, "हां, पर्स, माला का पर्स थाने में जमा है। घटना के समय उसके हाथ में पर्स था। और, वो फोटो भी तो है—शरद कुमार और माला की.......।"

"मंगाइये। दोनों चीजें मंगाइये। पहले पर्स दिखा कर ही कोशिश करेंगे। फोटो में कहीं उसे अपने पिता के साथ देख कर उसे गुस्सा न आ जाये। गुस्सा आते ही अल्फा किरणों पर बुरा असर पड़ेगा। तब मीनू ध्यान केंद्रित नहीं कर पायेगी।"

शरद कुमार भीतर आने को तैयार हुआ, लेकिन डा. गिंगो ने रोक दिया, "तुम्हें अचानक यहां पाकर मीनू चौंक सकती है या उसका ध्यान बंट सकता है। थोड़ी देर रुको। पर्स और फोटो आ जाने दो।"

सिपाही पुलिस स्टेशन से पर्स और फोटो ले आया। डा. गिंगो ने दोनों चीजें लीं और बोले "अब देखते हैं, कौन है अपराधी। आप लोग बैठिये, मैं मीनू को तैयार करता हूं, उस हादसे की घड़ियों को याद करने के लिये।"

डा. गिंगो ने मीनू के पास जाकर धीरे से उसका कंधा छुआ। मीनू ने उनकी ओर देखा। तब उन्होंने उसकी आंखों के सामने माला का पर्स हिलाया। मीनू पर्स को देखती रही, लेकिन उसकी आंखें भावशून्य बनी रहीं। मीनू चमड़े की डोरी में गुंथे उस थैलेनुमा पर्स को देखती रही। फिर उसने कुछ सोचा। उपकरण के पर्दे पर तस्वीरें झिलमिलाने लगीं। पर्स की चमड़े की रंगीन कतरनों पर उसकी याददाश्त टिकने लगी। पर्दे पर उस पर्स की रंगीन कतरनें धीरे-धीरे उभरने लगीं। तब डा. गिंगो ने लिफाफे से तस्वीर निकाल कर मीनू को दिखायी। सहसा मीनू की आंखों में पहचान की चमक कौंधी। उपकरण के पर्दे पर चमड़े की कतरनों से ऊपर-नीचे तस्वीर दिखाई देने लगी।... पर्स कंधे पर लटका है। कंधा किसी महिला का है। महिला हाथ हिला-हिला कर उत्तेजित होकर कुछ कह रही है। फिर महिला का चेहरा दिखा। वह माला रघुवंशी है।

अचानक उसकी बगल में खड़ी महिला भी दिखाई देने लगी। वह नीता कुमार है। वह भी जोर -जोर से रोते हुये कुछ कह रही है। बात करते-करते माला के कंधे से पर्स फिसलता है। वह उसे फिर कंधे में डाल देती है। वह रो रही है। नीता कुमार के पास आती है। उसे समझाने की मुद्रा में कुछ कहती हैं, जैसे कह रही हो कि उसे उन लोगों के बारे में कुछ भी पता न था। अचानक माला सुबकते हुये नीता कुमार के गले लगती है और फफक-फफक कर रोने लगती है। फिर वह मीनू को देखती है। उसके अबोध चेहरे को देखती है। उसे बाहों में समेट कर प्यार करती है। फिर अचानक उदास हो जाती है। उसे निराशा का दौरा-सा पड़ता है। लगता है कि वह बहुत कुछ बोल रही है।... उत्तेजित हो रही है। तनाव उसके चेहरे पर झलकने लगता है।.....और, फिर अचानक....अचानक जैसे मिरगी के दौरे में बालकनी की दीवार का सहारा लेती है। ऐंठती है। उसके मुंह से झाग फटता है। फिर जोर से ऐंठती है और दीवार से पलट जाती है। श्रीमती नीता कुमार मुंह ढक कर, फफक कर रोते हुये दिखाई देती है। तभी चौंक कर भीतर की ओर देखती है। लगता है, कोई आया है या किसी ने दरवाजा खटखटाया या कालबैल बजाई। जाकर दरवाजा खोलती है। सामने शरद कुमार है। रोते हुये पति को घटना के बारे में बताते हुये दिखाई देती है.......

सभी उपकरण के पर्दे पर उभरते हुये दृश्य को देख रहे थे कि डा. गिंगो की आवाज ने उन्हें चौंका दिया।

"देखा? देख लिया? मैंने कोई फिल्म खुद बना कर नहीं लगाई थी इसमें समझे। यह घटना की असली तस्वीर है—मीनू की याद का एक टुकड़ा।"

"अब बताओ, किसने की हत्या? क्यों? मैं जानता हूं मेरे स्मृति दर्शक यंत्र को तुम्हारा कोर्ट-कानून नहीं मानेगा, लेकिन केस की असली तहकीकात के लिये तुम्हारे "ज्ञानचक्षु" तो खुल जायेंगे, न?"

अब जाकर सही लाइन पर केस की जांच करो। माला जिन डाक्टरों के पास कभी गई हो, उनका पता लगाओ फिर ये पता लगाओ कि क्या माला को इस तरह के दौरे पड़ते थे। ऐसी रिपोर्ट से प्रमाण मिल जायेगा। फिर पोस्टमार्टम से पता लगेगा कि मुंह में झाग था, पेशियां ऐंठी हुई थीं वगैरह। तब कहीं पहुंच पाओगे केस की तह तक... अब जाइए और अपना काम कीजिये।"

सबके चले जाने के बाद डा. गिंगो सोच में डूब गये—खामखां किस्सा बन गया!...... मैं किस उद्देश्य से स्मृति दर्शक यंत्र बना रहा था और यहां क्या उद्देश्य बन गया! अब खबर बन जायेगी। तमाम लोग भागे चले आयेंगे गिंगो का अजूबा देखने।

...नहीं, मैं नहीं चाहता कोई भीड़-भड़क्का, इनाम या शोहरत। मैं कुछ नहीं चाहता। मुझे शांति से काम करने दिया जाये। लेकिन, शांति अब यहां मिल नहीं सकती।....तब....तब क्या करूं? लोगों के आने से पहले....हां, उनके आने से पहले मुझे कूच कर जाना चाहिये। चीजें लाता रहेगा बंका बाद में......

डा. गिंगो ने अपनी पुरानी कार स्टार्ट की और अपनी प्रयोगशाला की ओर एक नजर डाल कर किसी अज्ञात स्थान की ओर प्रस्थान कर गये।

[श्री देवेंद्र मेवाड़ी, पंजाब नेशनल बैंक, भीखाजी कामा प्लेस, आर.के. पुरम, नई दिल्ली- 66]

शेषांश पृष्ठ 17 का

कई अधिपादप अपनी इन थैलियों या एयरिपर्चस में ह्यूमस इकट्ठा कर लेते हैं। इनमें से एक है नैस्ट फर्न। इसकी पत्तियों की बनावट इस प्रकार की होती है कि वह बाल्टी का काम कर सकती है। अधिपादप के ऊपरी भाग की पत्तियां जब सूख कर गिरती हैं तो इन बाल्टीनुमा पत्तियों में एकत्रित हो जाती हैं। इस प्रकार वहां इतना ह्यूमस इकटठा हो जाता है कि कई बार दूसरे जीव-जन्तु भी वहां रहने लगते हैं। जावा में इन पत्तियों में दो-दो फीट तक लंबे केंचुए देखे गये हैं।

अधिपादप की कथा सर्वाधिक व्याप्त स्पैनिश मॉस के वर्णन के बिना अधूरी ही रह जायेगी। कई पेड़ों के तनों पर विशेषकर ठूंठ हुए तनों पर एक प्रकार की हरी काई सी बिछी देखी होगी आपने। दूर से देखने पर लगता है मानो किसी ने मखमली गलीचे से तने को ढक दिया हो। यही होती है स्पैनिश मॉस। लेकिन इसका नाम न जाने कैसे स्पैनिश मॉस पड़ गया क्योंकि यह न तो स्पेन की है और न ही मॉस है। यह तो वास्तव में एक ब्रोमिलियाड है। यह अपना जीवन-यापन अभी तक बताये तरीकों में से किसी तरीके से नहीं करता। इसके पास न तो पानी संग्रहण के लिये ऊतक होते हैं और न ही ह्यूमस एकत्रित करने का कोई साधन। वर्षा का प्रारंभिक पानी जब तने के साथ बहता हुआ नीचे की ओर आता है तो अपने साथ बड़ी मात्रा में पोषक तत्व भी लाता है जिसे ये अधिपादप सोख लेता है और अपना जीवन-यापन करता है। बाद में आये पानी को, जिसमें पोषक तत्व नहीं होते, यह बह जाने देता है। यह आम धारणा है कि जिस तने पर यह फैल जाती है उसे मार डालती है परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। यह फैलता ही तब है जब तना ठूंठ बन जाता है। ऐसे तने में मृत कोशिकाएं अधिक होती हैं।

तो देखा आपने कैसे-कैसे पापड़ बेलने पड़ते हैं इन अधिपादपों को।

और अब बताता हूं प्रस्तुत चित्र के विषय में भी। यह चित्र है फ्लोरिडा (अमेरिका) में पाये जाने वाले अंजीर

जाति **फाइकस औरिया** अधिपादप का जिसने अपने सहायक ताड़ के पेड़ को जकड़ कर पकड़ रखा है। पुटन तथा हलब्रुक नामक वैज्ञानिकों ने इस अधिपादप का अध्ययन कर "अमेरिकन जरनल ऑफ बॉटनी" में एक शोध पत्र हाल ही में प्रकाशित किया है। इन्होंने बताया है कि इस पौधे की भू-अपवर्ती अर्थात् ऊपर की ओर जाने वाली जड़ें भी होती हैं। उन्होंने यह भी अध्ययन किया कि गुरुत्वाकर्षण के नियम का उल्लंघन कर यह पादप अपनी जड़ें ऊपर की ओर क्यों भेजता है। उन्होंने पाया कि यह ऐसा इसलिये करता है ताकि इसकी जड़ें जमीन छू लेने के उपरान्त भी ऊपरी भाग के घटकों में पाये जाने वाले ह्यूमस अथवा कार्बनिक पदार्थ ले सकें क्योंकि वहां जमीन की मिट्टी की अपेक्षा नाइट्रोजन की मात्रा तीन गुनी, पोटैशियम की छः गुनी तथा मैग्नीशियम की डेढ़ गुनी होती है। साथ ही मिट्टी से होने वाले रोगों से भी ये जड़ें बची रहती हैं जो कि स्वयं में एक बड़ा भारी लाभ है।

तो देखा आपने कैसा पौधा अजीब, खुद लेता सहारा पर कईयों को देता आसरा।

[डा. बी.एस. अग्रवाल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

वायुमण्डल कैसे बना?

विजय कुमार उपाध्याय

[पिछले अंक में आपने पृथ्वी की उत्पत्ति और विकास के बारे में पढ़ा। इस अंक में पढ़िये वायुमंडल कैसे बना?]

वायुमण्डल की उत्पत्ति तथा विकास को समझने के लिये पृथ्वी के प्रारंभिक वायुमण्डल के रासायनिक संघटन, समयानुसार वायुमण्डल में होने वाले योग तथा ह्रास के बारे में विस्तृत ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

प्रारम्भिक वायुमण्डल का रासायनिक संघटन

प्रारम्भिक वायुमंडल के संदर्भ में हमारी अटकलें इस बात पर निर्भर करती हैं कि पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम लोग किस परिकल्पना को ग्रहण करते हैं। यदि हम यह मान लें कि पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से हुई तो प्रारंभिक वायुमंडल पूर्णतः हाइड्रोजन तथा हीलियम गैसों से बना होगा। निस्संदेह नगण्य मात्रा में कुछ भारी तत्व भी विद्यमान रहे होंगे। प्रारम्भ में पृथ्वी की सतह का ताप इतना उच्च रहा होगा कि हाइड्रोजन तथा हीलियम जैसी हल्की गैसों का शीघ्र ही अंतरिक्ष में पलायन हो गया होगा। इतना ही नहीं, कुछ और हल्के तत्व जिनका परमाणु भार 20 से कम था, अन्तरिक्ष में करीब-करीब पूर्णतः विलीन हो गये होंगे। जैसे-जैसे पृथ्वी ठंडी होती गयी, वैसे-वैसे तत्वों का पलायन कम होता गया। पृथ्वी की वर्तमान परिस्थिति में हाइड्रोजन तथा हीलियम गैसें ही ऐसी हैं जो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा के बाहर पलायन करने में सक्षम हैं। 2000° सें. से नीचे के ताप पर जलवाष्प एवं कार्बन डाइआक्साइड स्थिर गैसें हैं। यह धारणा है कि पृथ्वी जैसे ही 2000° से. से नीचे के ताप तक ठंडी हुई, वायुमंडल में उपस्थित हाइड्रोजन, ऑक्सीजन तथा कार्बन के संयोग से जलवाष्प तथा कार्बन डाइआक्साइड का बनना प्रारम्भ हो गया। नाइट्रोजन अधिकतर असंयुक्त अवस्था में ही रही। जब पृथ्वी गैसीय अवस्था से द्रव अवस्था में परिणित हुई तो बहुत सी गैसें इसमें घुल गयी। समय-समय पर ज्वालामुखियों से मुक्त होती दिखाई देती हैं। जब पृथ्वी का ताप 374° से नीचे आया तो जल का बनना प्रारम्भ हो गया। जब पृथ्वी का ताप घटकर लगभग आज के ताप के बराबर हो गया तो बचा हुआ वायुमंडल मुख्यतः कार्बन डाइआक्साइड एवं अमोनिया का बना रह गया।

ग्रहाणु परिकल्पना के आधार पर प्रारम्भिक वायुमंडल की उत्पत्ति की प्रक्रिया बिल्कुल अलग रही होगी। इसके अनुसार वायुमंडल की गैसें मूल ग्रहाणुओं में उपस्थित रही होंगी। जब ग्रहाणु आपस में मिलकर ग्रहों का निर्माण करने लगे तो उनमें उपस्थित गैसें भी ग्रहों के वायुमंडल का हिस्सा बन गयीं।

प्रारम्भिक वायुमंडल के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जाती हैं। यूरी जैसे वैज्ञानिकों का मानना है कि प्रारंभिक वातावरण में मुख्यतः अमोनिया तथा मीथेन गैस उपस्थित थी। इसके कई कारण दिये जाते हैं। पहला तो यह कि यदि प्रारम्भिक वातावरण में हाइड्रोजन प्रमुख गैस थी तो उससे मीथेन एवं अमोनिया का निर्माण हुआ होगा,न कि कार्बन डाइआक्साइड या नाइट्रोजन का। दूसरा तथ्य जो विचारणीय है वह यह कि अधिकतर ग्रहों के वायुमंडल में मीथेन एवं अमोनिया ही प्रमुख गैस हैं, अतः पृथ्वी पर भी वैसा ही होना चाहिए। परन्तु ये ग्रह पृथ्वी की तुलना में सूर्य से अधिक दूर हैं तथा उनका भार भी अधिक है। अतः वहां की स्थिति की तुलना पृथ्वी के वातावरण से नहीं की जा सकती। प्रारम्भिक वातावरण में मुख्यतः कार्बन डाइआक्साइड एवं नाइट्रोजन थी इस संबंध में सन्तोषजनक एवं शक्तिशाली तर्क दिये जा सकते हैं। यदि उल्काओं को ग्रहाणुओं के समतुल्य माना जाय तो इनसे निकलने वाली गैसें भी प्रारम्भिक वातावरण के बारे में महत्वपूर्ण सूचना दे सकती हैं। उल्काओं में जो गैसें अभी तक पायी गयी हैं, वे हैं—कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड एवं नाइट्रोजन।

प्रारम्भिक वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड एवं नाइट्रोजन प्रमुख गैसें थी या मीथेन तथा अमोनिया, यह विवाद का विषय हो सकता है, परन्तु इस तथ्य में कोई विवाद नहीं है कि उसमें ऑक्सीजन मुक्त रूप में उपलब्ध नहीं थी। वातावरण में ऑक्सीजन की उत्पत्ति का प्रश्न काफी पेचीदा है। ऐसा तर्क दिया जाता है कि प्राक् कैम्ब्रियन काल के अधिकतर भाग में धरती की सतह की स्थिति अवायव्य थी। इस बात की पुष्टि गंधक समस्थानिकों के अनुपात पर किये गये शोध से होती है। ऑक्सीजन की उत्पत्ति के संबंध में तीन सिद्धांत दिये गये हैं :

(i) हरे पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के कारण ऑक्सीजन का उत्पादन

(ii) पृथ्वी की सतह का तापक्रम 1500° से. से अधिक होने पर जलवाष्प के तापीय विघटन द्वारा ऑक्सीजन का उत्पादन, तथा

(iii) वायुमंडल की ऊपरी परतों में सौर-विकिरण द्वारा प्रकाश रासायनिक प्रक्रिया से जलवाष्प का विघटन एवं ऑक्सीजन का उत्पादन।

आज की परिस्थिति में वायुमंडलीय आक्सीजन की मात्रा
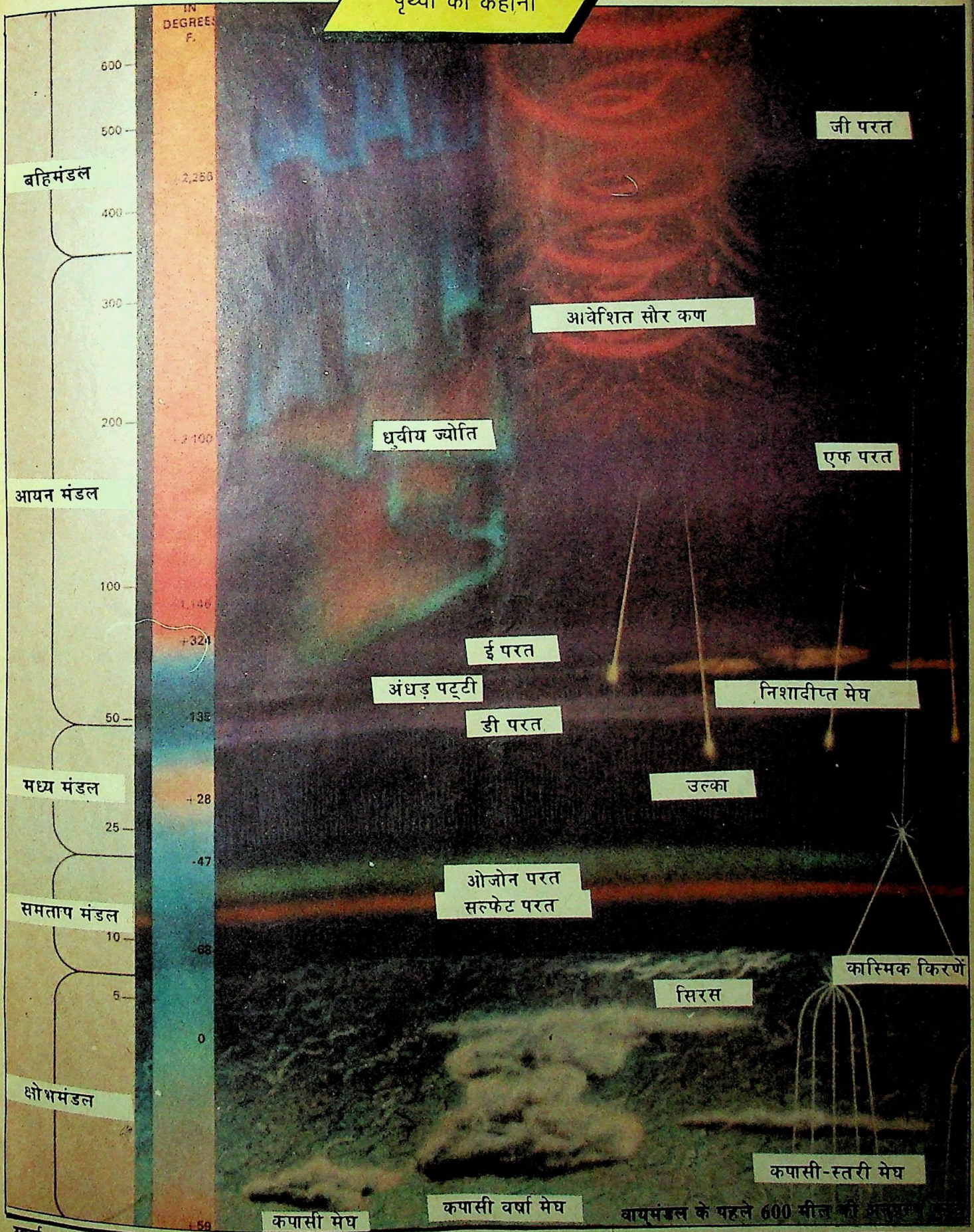
प्रकाश-सश्लेषण द्वारा लगभग स्थिर रहती है। लेकिन आदि काल में जबकि वायुमंडल ऑक्सीजन से मुक्त था तो प्रकाश-संश्लेषण असंभव जान पड़ता है। कार्बन डाइआक्साइड का पर्ण हरित द्वारा शोषण केवल विकसित किस्म के पौधों में ही संभव है। अविकसित पौधे तो ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं तथा कार्बन डाइआक्साइड छोड़ते हैं, जैसा कि आजकल हरे पौधे अंधेरे में करते हैं। अतः जब तक पौधे विकास की उन्नत अवस्था में नहीं पहुंच गये तब तक प्रकाश-संश्लेषण द्वारा ऑक्सीजन की उत्पत्ति असंभव थी। पौधों के विकसित अवस्था में पहुंचने के पहले तक ऑक्सीजन-उत्पादन के लिये अजैविक स्रोत की आवश्यकता थी। जलवाष्प के तापीय विघटन की प्रक्रिया भी असंभव जान पड़ती है, क्योंकि यह बहुत से अज्ञात घटकों पर निर्भर करती है। दूसरी ओर जलवाष्प का प्रकाश रासायनिक विघटन आज भी हो रहा है। वायुमंडल की ऊपरी परतों में जलवाष्प प्रकाश रासायनिक विघटन बहुत प्रभावशाली ढंग से चल रहा है जिससे लगातार ऑक्सीजन का उत्पादन हो रहा है, तथा साथ ही साथ इस प्रक्रिया द्वारा उत्पादित हाइड्रोजन पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा के बाहर निकलती जा रही हैं। अतः यह स्पष्ट है कि प्रारम्भ में वायुमंडलीय ऑक्सीजन के उत्पादन का पूरा श्रेय जलवाष्प के प्रकाश रासायनिक विघटन को ही जाता है। समयानुसार जैसे-जैसे विकसित पौधे अस्तित्व में आते गये प्रकाश-संश्लेषण की भूमिका बढ़ती गयी।

समयानुसार वायुमंडल में होने वाले योग

समयानुसार वायुमंडल में निम्नलिखित गैसों का समावेश हुआ : (i) मैग्मा के किस्टलीकरण से मुक्त हुई गैसें (ii) जलवाष्प के प्रकाश रासायनिक विघटन से उत्पन्न ऑक्सीजन (iii) प्रकाश-संश्लेषण से उत्पन्न ऑक्सीजन (iv) यूरेनियम एवं थोरियम के रेडियो सक्रिय विखंडन द्वारा उत्पन्न हीलियम (v) पोटैशियम के रेडियो सक्रिय विखंडन से उत्पन्न आर्गन।

ज्वालामुखियों का वायुमंडल में योगदान बहुत ही अधिक रहा है। जलवाष्प सबसे प्रमुख गैस है जो ज्वालामुखी से निकलती है। परन्तु यह शीघ्र ही द्रवीभूत होकर जल में बदल जाती है। यह अपने साथ ज्वालामुखी से निकली अन्य गैसों को भी घुला लेती है। जलवाष्प के बाद सबसे प्रमुख गैस जो ज्वालामुखी से निकलती है वह है कार्बन डाइआक्साइड। इसके अतिरिक्त कुछ नाइट्रोजन भी निकलती है।

जलवाष्प का प्रकाश रासायनिक विघटन एवं साथ ही साथ उत्पन्न हाइड्रोजन का बाहय अन्तरिक्ष में पलायन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे वायुमंडल में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती चली गयी। ऐसा अनुमान है कि इस विधि से उत्पन्न ऑक्सीजन की मात्रा 1.94×10^{6} मी. टन प्रतिवर्ष है। यदि पृथ्वी की उम्र 4.5×10^{9} वर्ष मानी जाय तो इस विधि से उत्पन्न कुल ऑक्सीजन की मात्रा 89×10^{14} मी. टन होनी चाहिए।

प्रकाश-संश्लेषण द्वारा उत्पन्न ऑक्सीजन की मात्रा की गणना भी आसानी से की जा सकती है लेकिन इसके लिये जैव कार्बन की कितनी मात्रा अवसादी चट्टानों में मिल गयी है ज्ञात होना आवश्यक है। भू-वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार अवसादी चट्टानों में मिल गयी जैव कार्बन की मात्रा, लगभग 250×10^{14} मी. टन कार्बन डाइआक्साइड के समतुल्य है, जिससे प्रकाश संश्लेषण द्वारा 182×10^{14} मी. टन ऑक्सीजन की उत्पत्ति होती।

हीलियम उत्पादन की दर 1.16×10^{-7} घन सेंमी./ग्रा. यूरेनियम एवं 2.43×10^{-8} घन सेंमी. प्रति ग्राम थोरियम प्रति वर्ष है। परन्तु इस प्रकार यूरेनियम एवं थोरियम के रेडियो सक्रिय विखंडन से उत्पन्न हीलियम की अधिकांश मात्रा बाहय अन्तरिक्ष में विलीन हो गयी तथा अब सिर्फ नगण्य मात्रा वायुमंडल में बची है।

आर्गन के तीन समस्थानिक वायुमंडल में पाये गये हैं। दूसरी निष्क्रिय गैसों की तुलना में आर्गन की मात्रा पृथ्वी के वातावरण में बहुत अधिक है। इसका कारण पोटैशियम के रेडियो सक्रिय विखंडन से लगातार आर्गन की उत्पत्ति तथा उसका वायुमंडल में विलय है।

समयानुसार वायुमण्डल में होनेवाले ह्रास

समयानुसार वायुमंडल से विभिन्न गैसों का ह्रास इस प्रकार होता रहा (i) फेरस यौगिक से फेरिक यौगिक बनने, गंधक यौगिकों से सल्फेट बनने, मैंगनीज यौगिकों से मैंगनीज डाइआक्साइड बनने तथा इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं में ऑक्सीजन का ह्रास हुआ (ii) पृथ्वी के अन्दर कोयला तथा खनिज तेल बनने में कार्बन डाइआक्साइड का ह्रास (iii) कैल्शियम तथा मैग्नीशियम कार्बोनेट बनने में कार्बन डाइआक्साइड की खपत (iv) नाइट्रोजन के विभिन्न आक्साइड बनने तथा मिट्टी में बैक्टीरिया की सक्रियता द्वारा नाइट्रोजन की खपत (V) पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा के पलायन द्वारा हाइड्रोजन तथा हीलियम की मात्रा में क्षति।

जहां चट्टानों का अपक्षय हो रहा हो वहां भी वायुमंडल से ऑक्सीजन का ह्रास होता है। अपक्षय के समय ऑक्सीजन का सबसे बड़ा उपभोक्ता लोहा है। पृथ्वी की सतह पर फेरस यौगिक शीघ्र ही फेरिक यौगिक में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन वायुमण्डल से निकलकर खनिजों से मिल जाती है। साथ ही ऑक्सीजन की कुछ मात्रा सल्फाइड का सल्फेट बनाने में व्यय होती है। मैंगनीज के आक्सीकरण में भी कुछ ऑक्सीजन व्यय होती है। समय-समय पर ज्वालामुखियों से उत्सर्जित कार्बन मोनोआक्साइड को कार्बन डाइआक्साइड में परिवर्तित करने में भी पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन व्यय होती है।

एक अनुमान के अनुसार कार्बोनेट चट्टान एवं दूसरे अवसादी चट्टानों में संयुक्त जैव कार्बन के जमा होने में वायुमंडल से लगभग 920×10^{14} मी. टन कार्बन डाइआक्साइड की क्षति हुई। धरातल पर प्रति वर्ग सेंमी. पर औसतन 2820 ± 560 ग्राम कार्बोनेट कार्बन तथा जैव कार्बन लगभग 700 ± 200 ग्राम। यदि कुल कार्बन की मात्रा जो वायुमंडल से अवसादी चट्टानों में मिल गई 3100 ग्राम प्रति वर्ग सेमी. मान ली जाय तो यह 158×10^{14} मी. टन कार्बन के बराबर होगी जो 580×10^{14} मी. टन कार्बन डाइआक्साइड के तुल्य होगी।

हवा से नाइट्रोजन का उपयोग कार्बनिक एवं अकार्बनिक दो विधियों से होता है। कार्बनिक विधियों में सूक्ष्म जीवों एवं सूक्ष्म पौ

द्वारा उपयोग सम्मिलित है। अकार्बनिक विधियों में हवा में विद्युत-विसर्जन एवं प्रकाश रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा नाइट्रोजन के विभिन्न आक्साइडों का निर्माण शामिल है। जैव विधियों द्वारा नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की दर धरातल पर 0.008 से 0.07 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति वर्ग सेमी. प्रति वर्ष है। अकार्बनिक विधियों द्वारा यह दर 0.0035 किग्रा. प्रति वर्ग सेमी. प्रति वर्ष है। इनमें से कुछ नाइट्रोजन जीवों के मरने तथा उनके सड़ने से पुनः वायुमंडल में वापस आ जाती है। कुछ नाइट्रोजन जीवों के मिट्टी के अन्दर सड़ने से मिट्टी में ही रह जाती है, तथा सान्द्रित होकर नाइट्रोजन खनिज (जैसे चिली साल्ट पीटर इत्यादि) के रूप में परिणित हो जाती है। धरातल पर नाइट्रोजन खनिज के रूप में उपस्थित नाइट्रोजन की मात्रा औसत रूप से लगभग 80 ग्राम प्रति वर्ग है। इसमें से लगभग 8 ग्राम प्रति वर्ग सेमी. आग्नेय चट्टानों के क्षरण से प्राप्त हुई है तथा शेष हवा से।

किसी भी ग्रह से गैसों का पलायन उस ग्रह के पलायन-वेग एवं गैस अणुओं के माध्य वर्ग-वेग पर निर्भर करता है। पृथ्वी का पलायन वेग 11.20 किमी. प्रति सेकंड है। शून्य अंश निरपेक्ष तापक्रम पर हाइड्रोजन का माध्य वर्ग वेग 1.84, हीलियम का 1.31, जलवाष्प का 0.62, नाइट्रोजन का 0.49, ऑक्सीजन का 0.46 तथा कार्बन डाइआक्साइड का 0.39 किमी. प्रति से. है। 100^0 निरपेक्ष तापक्रम पर ये वेग 17% बढ़ जाते हैं।

जीन्स की गणना के अनुसार कोई भी गैस जिसके अणुओं का माध्य वर्ग वेग पृथ्वी पलायन वेग के पांचवें भाग से भी कम है, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा के बाहर जाने में असमर्थ है। इसके अनुसार हाइड्रोजन तथा हीलियम जैसी गैसों को भी पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा के बाहर नहीं जाना चाहिए था। परन्तु तथ्य कुछ और ही है। पहला कारण तो यह है कि वायुमंडल की ऊपरी परतों में हाइड्रोजन एवं हीलियम के अणु परिवर्तनशील ऑक्सीजन के परमाणुओं के साथ टकराते हैं तो उनका माध्य वर्ग वेग पृथ्वी के पलायन वेग से बढ़ जाता है। दूसरा कारण यह है कि वायुमंडल की ऊपरी परतों का तापक्रम अधिक होने से हाइड्रोजन एवं हीलियम के माध्य वर्ग वेग इतना बढ़ जाते हैं कि वे पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा के बाहर चले जाते हैं।

[डा. विजय कुमार उपाध्याय, इंजीनियरिंग कालेज, भागलपुर, बिहार]

विशेष सूचना

अस्वीकृति कि स्थिति में यदि लेखक अपना लेख वापिस मंगवाना चाहते हों तो वे अपने लेख के साथ पता लिखा लिफाफा तथा उचित डाक टिकटें अवश्य भेजें।

कृत्रिम धागे-सबसे आगे

नीलू श्रीवास्तव

पालिस्टर धागों के निर्माण का रेखाचित्र

स्पिनरेट : छोटे-छोटे छिद्रों वाला उपकरण जिससे पिघला रसायन रेशों के रूप में बाहर निकलता है

स्पिनरेट से निकले धागे या रेशे

अचानक सूती कपड़ों का चलन कम हो गया और लोग भागने लगे पालिस्टर, टेरीन-टेरालीन कपड़ों की ओर। बड़े ही पसन्द किये गये ये कपड़े क्योंकि पहन कर कैसे भी बैठो-उठो कपड़ों की "शो" खराब नहीं होती, वैसे भी जल्दी हो तो "प्रेस" करने का झंझट भी नहीं। कभी सोचा है आपने कहां से आता है इस तरह का कपड़ा? कैसे बनते हैं इसके धागे? आइये, हम आपको बताते हैं कि कैसे बनता है कृत्रिम पालिस्टर धागा।

जिस प्रकार ठोस, द्रव तथा गैस छोटे-छोटे अणुओं के मिलने बनते हैं उसी प्रकार प्रकृति में पाये जाने वाले सभी रेशे या तन्तु छोटे-छोटे अणुओं के संयोजन से बनते हैं। यह छोटे-छोटे अणु आ में जुड़कर बड़े अणुओं का निर्माण करते हैं जो एक श्रृंखला जै संरचना बनाते हैं। इसी को फाइबर या रेशा कहते हैं। यह सभी तीव्र वैद्युत स्थैतिक बल या संयोजी बंधों द्वारा आपस में जुड़े होते सूती रेशों के निर्माण में सेल्युलोस के छोटे-छोटे अणु बहुलकीक क्रिया द्वारा जुड़कर बड़े जटिल अणु बनाते हैं और इस प्रकार धागों का निर्माण सेल्युलोस अणुओं से होता है। सूती धागे के बनने सभी रासायनिक क्रियायें प्राकृतिक रूप से होती हैं। वैज्ञानिकों दिमाग में एक प्रश्न बार-बार उठता था कि क्या सूती धागे की त सेल्युलोस के अलावा भी अन्य अणुओं को आपस में जोड़ प्रयोगशाला में कृत्रिम प्रकार के धागों का निर्माण किया जा सकता

रेशों को बट कर बनाया गया धागा

रील तथा धागों से बना कपड़ा
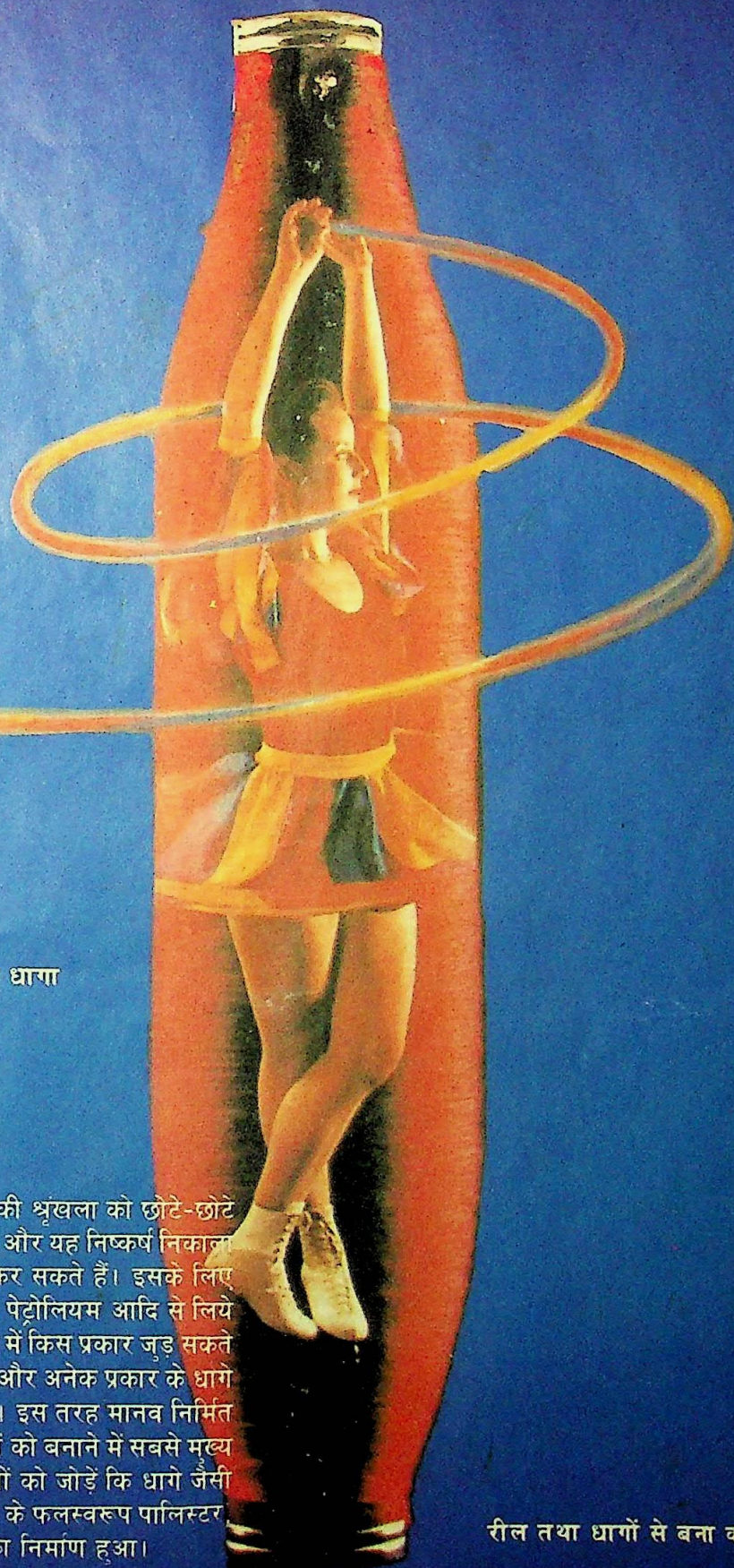
उन्होंने प्राकृतिक धागों की बड़े अणुओं की श्रृंखला को छोटे-छोटे अणुओं में तोड़कर सारी क्रिया को समझा और यह निष्कर्ष निकाला कि वे नयी किस्म के धागों का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए साधारण अणु उन्होंने लकड़ी, कोलतार, पेट्रोलियम आदि से लिये जिनके बारे में वे जानते थे कि यह आपस में किस प्रकार जुड़ सकते हैं। अन्त में वैज्ञानिकों को सफलता मिली और अनेक प्रकार के धागे प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से बनाये गये। इस तरह मानव निर्मित धागों की खोज हुयी। कृत्रिम रूप से धागों को बनाने में सबसे मुख्य बात यह थी कि किस तरह से इन अणुओं को जोड़ें कि धागे जैसी संरचना का निर्माण हो। वैज्ञानिक प्रयासों के फलस्वरूप पालिस्टर रेयान, नायलॉन, एक्रैलिक आदि धागों का निर्माण हुआ।

इससे यह भी सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार प्रकृति अणुओं को व्यवस्थित करके सूती धागों का निर्माण करती है उसी प्रकार
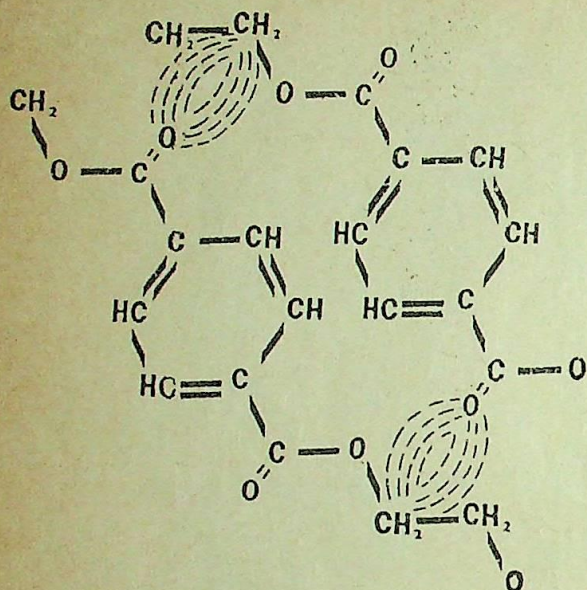
डेक्रान का क्रिस्टलीय लैटिस

वैज्ञानिकों ने भी अणुओं को व्यवस्थित करके सरल विधि द्वारा लचीले रेशों में परिवर्तित कर दिखाया। इन कृत्रिम रूप से तैयार धागों में से पालिस्टर धागों के कपड़े सर्वाधिक प्रयोग में लाये गये। सबसे पहला संश्लेषित रेशा ड्यू पोन्ट लोबोरेटरी ने बनाया जो नायलॉन के नाम से प्रचलित हुआ। ड्यू पोन्ट की इस खोज से प्रेरित होकर एक ब्रिटिश वैज्ञानिक डा. अल्फ्रेड केरीस ने पालिस्टर धागों की खोज की। इंग्लैंड में पहले यह धागे टेरीलीन के नाम से प्रसिद्ध हुये बाद में 1946 में संयुक्त राज्य अमेरिका की ड्यू पोन्ट लास ने डेक्रान के नाम से पालिस्टर धागों की खोज की।

पालिस्टर का रासायनिक संघटन

पालिस्टर धागों को पालीएथिलीन टेरीथैलेट के रासायनिक अणुओं से बनाया गया। इसके लिये मुख्यत: निम्नलिखित दो विधियां प्रयोग में लायी गयीं।

बैच मैथड और निरन्तर बहुलकीकरण

पहली विधि में डाइमेथिल टेरीथैलेट की क्रिया एथिलीन ग्लाइकॉल से करायी गयी जिससे पालीएथिलीन टेरीथैलेट का निर्माण हुआ और इस उत्पाद को 'टेरीलीन' नाम दिया गया।

दूसरी विधि में टेरीथैलेट अम्ल की क्रिया एथिलीन ग्लाइकॉल से करायी गयी और इससे पालीएथिलीन टेरीथैलेट बनाया जिसे 'डेक्रान' नाम दिया गया।

पालिस्टर धागों के निर्माण में प्रयुक्त रसायन कोलतार, पेट्रोलियम आदि से निष्कर्षित किये गये थे। इन रसायनों को निर्वात में उच्च ताप पर तब तक गर्म किया गया जब तक वह ठोस पारभाषी रूप में नहीं बदल गया। फिर इस ठोस पदार्थ को शहद जैसे द्रव में पिघलाया गया। इसके बाद इस पिघले द्रव को छोटे-छोटे छिद्रों वाले एक उपकरण स्पिनरेट से बलपूर्वक निकाला गया। जैसे ही पिघले द्रव की धारें स्पिनरेट से निकलीं इनको ठंडा कर लिया गया जिससे यह पतले बाल-रूपी रेशों में घनीभूत हो जाये। इस प्रकार प्राप्त इन मोटे रेशों को खींच कर अपनी मूल लंबाई से कई गुना अधिक लम्बा किया जा सकता है। इन्हीं रेशों को आपस में बटकर धागे बनाये जाते हैं जिससे पालिस्टर कपड़े बनाये जाते हैं।

विशेषतायें

पालिस्टर धागे चिकने तथा मजबूत होने के साथ-साथ अत्यन्त लचीले और प्रत्यास्थ होते हैं। ये हर मौसम में अपनी आकृति बनाये रखते हैं, न तो खराब होते हैं, न ढीले पड़ते हैं। नमी के प्रति उदासीन होने से पानी इनकी चिकनी सतह पर नहीं रुकता तथा पानी का इनकी आकृति, लम्बाई-चौड़ाई तथा लचीलेपन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यह थर्मोप्लास्टिक गुण रखते हैं अर्थात् एक बार यदि इन धागों को ताप की सहायता से आकृति दे दी जाये तो यह अपने उसी रूप में बने रहते हैं। अंतिम रूप से तैयार कपड़ों में सिकुड़न और झोल को रोकना इसी गुण के कारण संभव है। इसी कारण अनेक बार धुलाई तथा कई बार पहनने के बाद भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इसके बने कपड़े हल्के होते हैं। नाशक कीड़ों आदि का भी इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पालिस्टर धागों को अन्य धागों के साथ मिलाकर नये धागों का भी निर्माण किया गया है। किसी एक किस्म के धागों में जो कमियां होती हैं उनको दूर करने के लिये इन धागों को किसी दूसरी किस्म के धागों के साथ मिलाकर नयी किस्म तैयार की जाती है जिससे प्राप्त उत्पाद में दोनों धागों के प्रमुख गुण उपस्थित रहते हैं।

पालिस्टर धागों को ऊन के साथ मिलाकर भी कपड़े बनाये जाते हैं। जो देखने में तो ऊनी लगते हैं पर गुण पालिस्टर के भी होते हैं। इसी कारण इन कपड़ों में स्थायी तहें या धारियां बन जाती हैं जबकि ऊनी कपड़ों में ये नहीं बन सकतीं।

पालिस्टर धागों को सूत के साथ मिलाकर बनाये गये कपड़े आसानी से धुलते हैं, जल्दी सूखते हैं और 'प्रेस' करने की भी जरूरत नहीं होती।

उपयोग

पालिस्टर धागों का उपयोग सामान्यतः सभी पहनने वाले कपड़ों में किया जाता है। अब तो इसका उपयोग बहुतायत में हो रहा है। कागज के कारखानों में ये धागे बुन पट्टी या वोवेन बेल्ट के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। शल्य चिकित्सा में भी इनका प्रयोग होता है। इनका प्रयोग रस्सियां, मछली पकड़ने के जाल तथा नाव की पाल बनाने में भी होता है।

रखरखाव

इन कपड़ों को गर्म पानी में नहीं धोना चाहिये अन्यथा उनमें सिलवटें पड़ जाती हैं। धोने के बाद जरूरत पड़ने पर ही इन पर हल्की-सी 'प्रेस' करनी चाहिये। साफ धोने के लिये इन्हें कम से कम आधे घंटे पहले साबुन के घोल में भिगो देना चाहिये। धोने के बाद धीरे से निचोड़ना चाहिये। सिकुड़न कम करने के लिये इनको ठंडे पानी से धोना चाहिए और सुखाने के लिये गीला ही लटकाना चाहिये।

[श्रीमती नीलू श्रीवास्तव, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली]

सजीव कारखाने

बाल फोंडके

एक पुरानी कहावत है ''बोया पेड़ बबूल का तो आम कहां से खाय''। उस जमाने में तो यह कहावत खरी उतरती थी क्योंकि उस समय के सीमित ज्ञान और साधनों से प्रकृति में परिवर्तन संभव नहीं था। परन्तु जैवप्रौद्योगिकी के उद्भव के साथ अब यह भी संभव हो गया है।

आम के पेड़ से ही आम मिलते हैं। स्वाद तथा संघटन में भिन्न और अत्यधिक पौष्टिक दूध हमें केवल गाय ही दे सकती है न कि भैंस। इसी प्रकार आकर्षक और मुलायम रेशों वाली रेशम तैयार करने की क्षमता रेशम के कीड़ों में ही होती है। आवश्यकता पड़ने पर जीवन रक्षक औषधि पेनिसिलीन के लिये 'पेनिसिलियम' फफूंदी का ही प्रयोग करना पड़ेगा। दुनिया में यही सिलसिला चला आ रहा है क्योंकि हर जीव में आवश्यक रूप से कुछ निश्चित उत्पादों के निर्माण के लिये प्राकृतिक अनुदेश निहित होते हैं जो उस जीव की आनुवंशिक संरचना में त्रिपद कोड के रूप में लिखे होते हैं। जीन बनाने वाले डीएनए अणु अर्थात डीआक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल प्रत्येक जीव की जीनों के लिये एक विशिष्टता लिये होते हैं। डीएनए अणु की शृंखला पर लगी हुई नाइट्रोजनी बेसों की यह लड़ी आनुवंशिक कोड या एक विशिष्ट उत्पाद के निर्माण की सूची बनाती है। यह मशीनरी अपने विशिष्ट उत्पाद को बनाने के लिये प्रत्येक कोशिका में होती है लेकिन उत्पादों की निर्माण विधि में कोई विशिष्टता नहीं होती। यह मशीन स्पष्ट निर्देश और आवश्यक कच्चा माल मिलने पर कोई भी इच्छित उत्पाद का निर्माण कर सकती है। इस कोशिकीय फैक्टरी की विशेषता यह भी है कि यह इसकी परवाह नहीं करती कि इस फैक्टरी में तैयार उत्पाद का उपयोग कहां होगा और उसका लाभ किसे पहुंचेगा। लेकिन जैव प्रौद्योगिकी विदों के लिये यह बात अत्यधिक महत्व की साबित हुई क्योंकि इसी के द्वारा उन्हें मानव समाज की मांग के अनुसार सूक्ष्म जीवाणुओं से इच्छित उत्पाद बनाने का विचार आया। उदाहरण के लिये इन्सुलिन का निर्माण इसी खोज की उपलब्धि है। यह हारमोन मनुष्य के अग्न्याशय(पेन्क्रियाज) में बनता है। इस हारमोन से शर्करा चयापचय नियमित होता है। यह शरीर में शर्करा का संतुलन बनाये रखता है और उसको रक्त वाहिनियों में एकत्रित नहीं होने देता। लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जिनमें इन्सुलिन पर्याप्त मात्रा में नहीं बनता या शरीर में शर्करा स्तर बनाये रखने के लिये पूरे शरीर में नहीं पहुंच पाता। ऐसे रोगियों को समय-समय पर इन्सुलिन के इन्जेक्शन लगाने पड़ते हैं।

समस्या यह है कि इन्जेक्शन के लिये इतने इन्सुलिन की आपूर्ति कैसे की जाये क्योंकि रासायनिक विधि से यह बनाया नहीं जा सकता और केवल मानव शरीर में ही यह स्वतः बनता है। इसलिये इसकी कमी बनी ही रहती है। भाग्यवंश, यह पता चला कि मवेशियों, सुअरों से प्राप्त विशेषतः सुअर से प्राप्त इन्सुलिन को मानव शरीर विशेषतः सुअर से प्राप्त इन्सुलिन को मानव शरीर आसानी से स्वीकृत कर सकता है। फिर भी बढ़ती हुई मांग को देख अड़चन सामने यह भी है कि आने वाले समय में मानव शरीर सुअरों से प्राप्त इन्सुलिन को स्वीकृत करेगा भी या नहीं। अतः इस समस्या का हल करने के लिये कुछ सूक्ष्म जीवाणुओं को ''दास'' बनाकर उनसे निरन्तर मानव इन्सुलिन बनाने का काम लिया जा सकता है क्योंकि ''दास'' में किसी भी उत्पाद के निर्माण की क्षमता होती है। इसके लिये इन्सुलिन बनाने के लिये उसे जीन के रूप में आदेश देने की आवश्यकता होती है। इन जीनों को प्राप्त करने के लिये आनुवंशिक इंजीनियरों ने पहले अग्न्याशय (पेन्क्रियाज) में लांगरहेन्स द्वीप समूह की कोशिकाओं से इन्सुलिन जीन को बिलगा कर उसे **एशेरिशिया कोलाई** बैक्टीरिया के जीनोम में निवेशित कर बैक्टीरिया को इन्सुलिन उत्पादक फैक्टरी की तरह प्रयोग किया।

आण्विक आनुवंशिकी के क्षेत्र में इस तरह के विकास से पिछले दो दशकों में आनुवंशिक परिवर्तन कर विशिष्ट कार्यों में उपयोगी सूक्ष्म जीव तैयार किये गये हैं जिनका विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जा रहा है।

जैव प्रौद्योगिकी में हुई इस उपलब्धि के लिये हमें बैक्टीरिया, कवक आदि के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये क्योंकि इन्हीं पर आनुवंशिक इंजीनियरी के प्रयोग से अब उपयोगी औषधियों यथा हारमोन और टीके आदि का निर्माण संभव हुआ है।

आनुवंशिक इंजीनियरों के सामने इस कार्य में दो प्रमुख अड़चनें हैं। यद्यपि प्रक्रिया मुख्य रूप से वही रहती है परन्तु जैव-प्रौद्योगिकीविदों को विशिष्ट जीन बिलगाने और उसको 'दास' बैक्टीरिया की आनुवंशिक संरचना में निवेशित करने के लिये स्वनिर्मित विधियां विकसित करनी पड़ती हैं। बैक्टीरिया में निवेशन की यह विधि इतनी सटीक और सरल होनी चाहिये कि परपोषी रोगाणु को अपने लिये अनुपयोगी पदार्थ के निवेशन की भनक भी न मिले।

आक्सफोर्ड, इंग्लैंड में किये गये कुछ महत्वपूर्ण शोधों में वायरसों में बाह्य पदार्थ निवेशित कर उनका बाद में औषध निर्माण के कारखानों के रूप में प्रयोग किया गया।

इस विधि के कुछ अन्य लाभ भी हैं। इससे इल्लियों में संक्रमण करने वाले वायरस ''बैक्यूलोवायरस'' ने लम्बी अवधि तक जीवित

रहने की सुगम क्षमता प्राप्त कर ली है। वायरस प्रमुखतः एक अविकल्पी परजीवी होता है। अपनी किस्म के वायरसों को पैदा करने के लिये इसे आवश्यक रूप से पोषक कोशिका की आवश्यकता होती है। वायरस में आनुवंशिक निर्देश तो विद्यमान होते हैं परन्तु उनमें अपनी संख्या बढ़ाने की क्षमता नहीं होती।

इसलिये वायरस परपोषी कोशिका को भेद कर उसको नष्ट कर देते हैं और उसके कोशिकीय उपकरण पर नियंत्रण कर उसको अपने आनुवंशिक निर्देश मानने के लिये बाध्य करते हैं। हर तरह से असमर्थ होने के कारण मेजबान की निर्माण मशीन बड़ी मात्रा में भेदी वायरस के प्रतिरूप बनाने के लिये आवश्यक उत्पाद बनाने लगती है। जब इन प्रतिरूपों की संख्या निश्चित मात्रा तक पहुंच जाती है, ये वायरस परपोषी शिकार को मार कर नये शिकार की तलाश में मेजबान कोशिका से बाहर निकल आते हैं। वायरस की वृद्धि दर परपोषी कोशिकाओं की अपेक्षा प्रायः अधिक होती है। इसलिये सभी वायरसों को परपोषी उपलब्ध नहीं हो पाते। लेकिन इन वायरसों के सशक्त होने के कारण ये लम्बे समय तक निष्क्रिय सुप्तावस्था में रह जाते हैं।

बैक्यूलोवायरसों में भी बिल्कुल ऐसा ही होता है। जब तक ऐसा वायरस अपने किसी शिकार को मारता है तब तक इल्ली के शरीर का आधा भार वायरस कणों के कारण बढ़ जाता है। प्रत्येक वायरस विशिष्ट प्रोटीन आवरण का बना होता है जो नये प्रोटीन शील्ड बनाने के लिये निर्देश ले जाने वाले डीएनए की रक्षा करता है। यह प्रोटीन आवरण डीएनए को नष्ट होने तथा उसको विकिरण से होने वाली क्षति से भी रोकता है। बैक्यूलोवायरसों में तो यह क्रिया 10 वर्ष तक निरन्तर चलती रहती है। इसलिये वायरस लम्बे समय तक नये शिकार का इंतजार कर सकता है। परन्तु परपोषी मिलते ही वायरस बड़ी तेजी से सुप्तावस्था से उठता है और उसी तेजी से सक्रिय हो जाता है। गहरी तंद्रा से उसकी कार्यक्षमता में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। शीघ्र ही ये इल्लियों की कोशिका पर नियंत्रण कर उनको रक्षक प्रोटीन आवरण बनाने का आदेश देता है। गत एक दो वर्षों में जैव
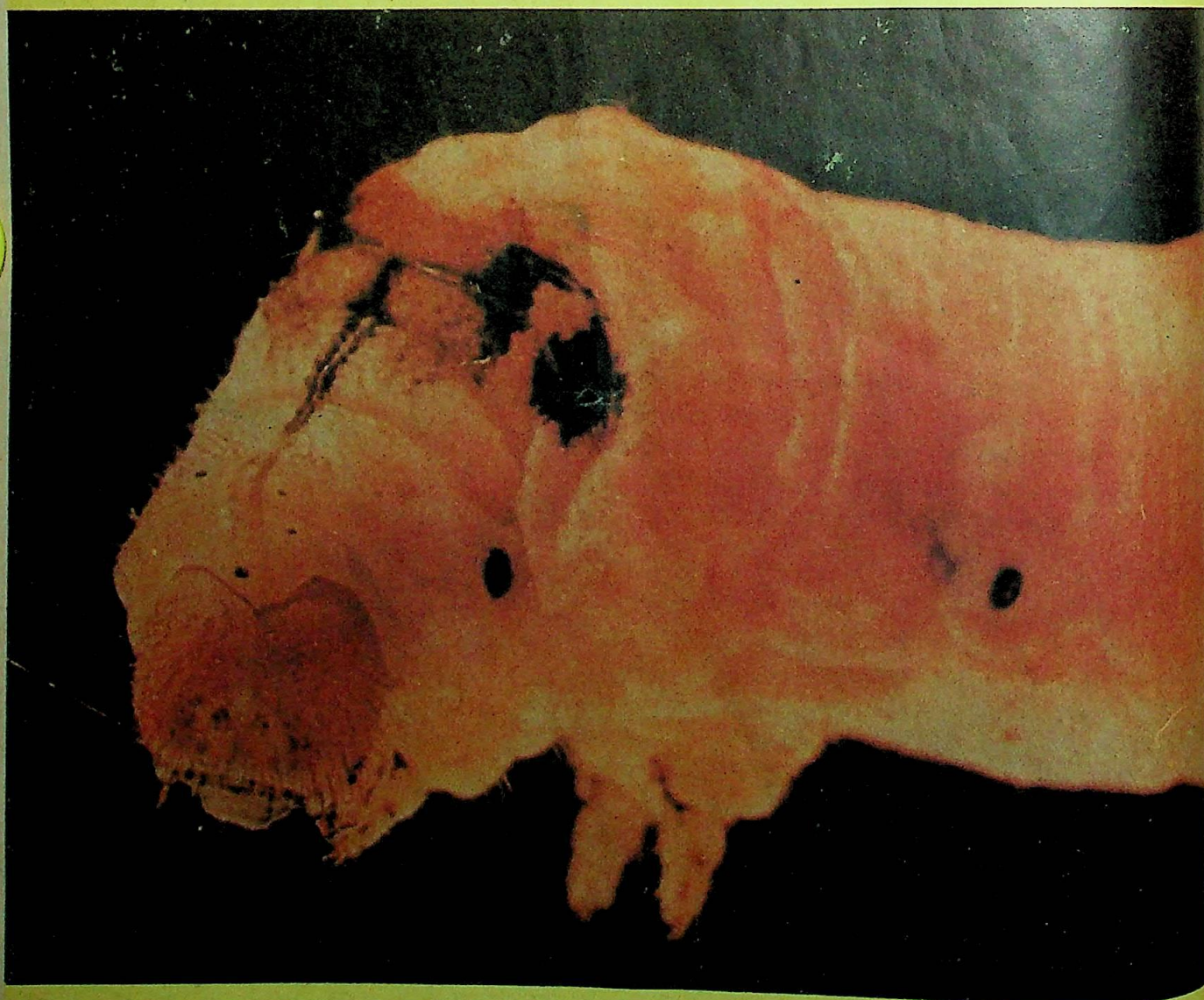
प्रौद्योगिकीविदों ने ऐसा अनुमान लगाया है कि ऐसे प्रतिभा सम्पन्न कर्मी से प्राप्त महत्वपूर्ण प्रोटीन उत्पाद, मानव शरीर नियंत्रक पदार्थ जैसे हारमोन तथा इन्टरफेरान, जो संश्लेषित रासायनिक पदार्थों से प्राप्त औषधियों की अपेक्षा अधिक उपयोगी हो सकते हैं, इनसे प्राप्त वैक्सीन तथा अन्य वायरस और बैक्टीरियाई उत्पाद भी रोग निदान आदि में प्रयोग किये जा सकते हैं।

आजकल यह उत्पाद संवर्धित कोशिकाओं में प्रोटीन उत्पाद के लिये जीन प्रेषण से कोशिकीय 'मजदूर' द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ये कोशिकायें बैक्टीरिया या यीस्ट की होती हैं, जो इच्छानुसार चुनी जाती हैं। कभी-कभी स्तनपाइयों की कोशिकाओं का भी प्रयोग किया जाता है। जैसे ही यह कोशिकायें विभाजित होती हैं उनकी संख्या में वृद्धि होती जाती है और प्राप्त संतति कोशिकाओं में भी वही जीन उपस्थित होती है। संतति कोशिकायें भी निरन्तर 'मालिक' की सेवा उसी निष्ठा के साथ करती हैं।

लेकिन ऐसे उत्पादों की मांग की वृद्धि को देखते हुए वैज्ञानिक नई कोशिकीय फैक्टरी की तलाश में हैं। वैसे ही पहले पर्यावरण इतना असंतुलित हो गया है अतः इसके लिये प्रदूषणकारी रासायनिक फैक्टरी लगाना बिल्कुल उचित नहीं है। इसलिये "सजीव कारखाने" या बैक्टीरियाई फैक्टरी इसका उपयुक्त विकल्प है। इसलिये नई और लाभकारी कोशिकीय फैक्टरी आज की परम आवश्यकता है। इच्छित प्रोटीनों के लिये बैक्यूलोवायरस से क्लोन जीन बनाना जैव-प्रौद्योगिकीविदों के लिये अनुसंधान का प्रमुख एवं रुचिकर विषय है। क्योंकि इससे वायरसों की मानव कल्याण में उपयोग की अत्यधिक संभावनायें हैं।

ऐसे बहुत से वायरस हैं जो मनुष्य सहित सभी स्तनपाईयों में कीटों द्वारा फैलते हैं। उदाहरणार्थ कीटों के काटने से यूरोप में भेड़ों में लूपिंग रोग फैलता है। इस संक्रामक रोग के उपचार हेतु क्लोनिंग करके उसी वायरस की जीनों को तैयार किया गया। इस तरह 'शिकारी' का ही 'शिकार' पर काबू पाने के लिये उपयोग किया गया।

जैवकीटनाशकों को बनाने में इस तरह की खोज से जैव-प्रौद्योगिकीविदों ने बैक्यूलोवायरस को क्लोनिंग एजेन्ट की तरह प्रयोग किया। उन्होंने सोचा कि जो जीन वायरसों का रक्षात्मक प्रोटीन आवरण बनाने के लिये उत्तरदायी है उसको ही क्यों न परपोषी की कोशिकीय मशीन से मानव उपयोगी प्रोटीन बनाने के काम में लाया जाये। एक बार यदि ऐसी युक्ति का विकास हो जाये तो इल्लियों पर आनुवंशिक रूप से परिवर्तित बैक्यूलोवायरस का ही संक्रमण कराया जा सकता है। इस प्रकार ये इल्लियां प्रोटीन और वैक्सीन बनाने के 'सजीव कारखानों' की तरह प्रयुक्त की जा सकती हैं।

क्या वायरसों का प्रयोग इस ओर लाभप्रद हो सकता है? यह भी दिलचस्प तथ्य है क्योंकि वायरस आमतौर पर बहुत खतरनाक होते हैं। लेकिन उनकी आनुवंशिक संरचना बदल कर उनको लाभकारी और पालतू बनाया जा सकता है। वायरस कण इल्लियों में 'ट्रोजन
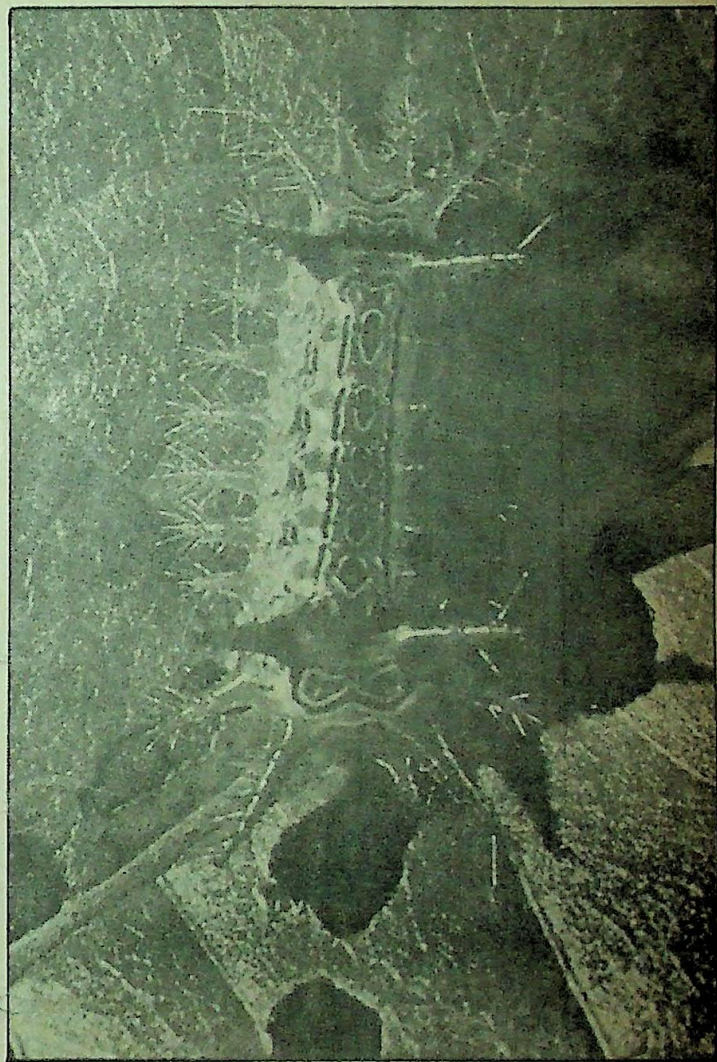
घोड़े के अंदर युद्ध के लिये तैयार सिपाहियों की भांति' छिपे हैं जो किसी भी क्षण वहां से अरबों की संख्या में बाहर निकल कर अपने असहाय पोषी को मार डालेंगे। इस तरह इन सजीव कारखानों की संख्या उत्पादन के साथ बड़ी तादाद में बढ़ाई जा सकती है। मृत इल्ली से भी उत्पाद निकालने में कोई हानि नहीं होती।

इल्लियों की विशिष्ट जाति के आधार पर बैक्यूलोवायरसों की 500 विभिन्न जातियों पहले ही ज्ञात है। इनमें से अधिकांश फैक्टरी के रूप में कार्य करने में सक्षम हैं।

आर्थिक दृष्टि से भी यह लाभदायी है क्योंकि एक इल्ली के पालन-पोषण में ज्यादा से ज्यादा कुछ पैसों का ही खर्च आता है जबकि उससे 3 मिलीग्राम तक उच्च मान वाली प्रोटीन प्राप्त हो सकती है। अतः स्पष्ट है कि वायरसों में क्लोनिंग, बैक्टीरिया में क्लोनिंग से सस्ती पड़ती है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार प्राप्त अंतिम उत्पाद, मानव शरीर के उत्पाद के अनुरूप होता है।

आक्सफोर्ड, इंग्लैंड के डा. डेविड बिशप ने पीलिया के खतरनाक रूप हिपेटाइटिस बी के निदान किट के लिये आवश्यक पदार्थों के

वायरस कैसे बढ़ते हैं
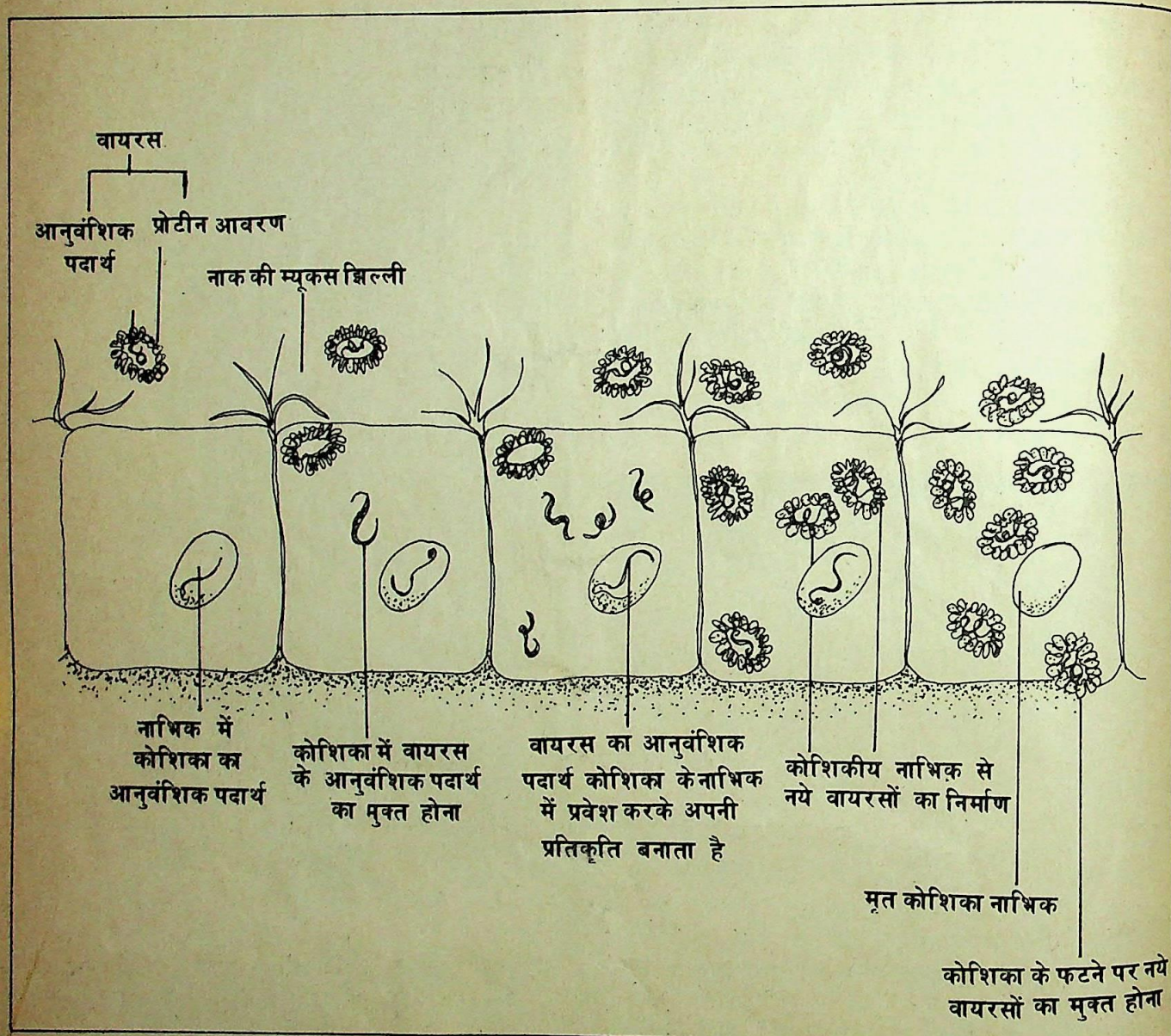
वायरस पूर्णतः परजीवी होते हैं अतः ये अन्य जीवों की कोशिकाओं में पलते बढ़ते हैं। जब वायरस किसी परपोषी कोशिका को भेदकर उसमें प्रवेश करता है तो 1. उसका आनुवंशिक पदार्थ उस परपोषी कोशिका से मिल जाता है; 2. जहां पर अधिक वायरस अधिक आनुवंशिक पदार्थ बनाना आरम्भ करता है; 3. अन्ततः नये वायरस बनते हैं और; 4. उनमें प्रोटीन का आवरण चढ़ जाता है तथा ये पुनः प्रोटीन मेम्ब्रेन से बाहर निकल कर कोशिका फटने पर बाहर आ जाते हैं तथा; 5. अन्य स्वस्थ कोशिकाओं को संक्रमित करते हैं।

निर्माण में बैक्यूलोवायरस का उपयोग करना आरंभ कर लिया है। उन्हें एड्स रोग के निदान के लिये भी इस विधि द्वारा एक नैदानिक किट तैयार किये जाने की आशा है।

इसी प्रकार कुछ ऐसी एन्टीबायोटिक औषधियां जैसे सिफेलोस्पोरिन जो साधारण बैक्टीरिया और कवकों से नहीं बनायी जा सकती, इस विधि से बनायी जा सकती है। अन्य कीटों को संक्रमित करने वाले वायरसों से इल्ली के अतिरिक्त भी लाभकारी औषधियां इस विधि द्वारा बनाई जा सकती हैं। भारत में, विशेषतः रेशम के कीड़ों को संक्रमित करने वाले वायरसों पर यह प्रयोग किया जा सकता है। रेशम के कीड़ों का महत्व भारत में इसलिये भी है क्योंकि अब रेशम कीटों की "खेती" पूरी तरह वैज्ञानिक विधि द्वारा की जा रही है।

[डा. बाल फोंडके, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

तड़ित-चालक

बारिश के दिन चकमक बिजली
कड़-कड़ शोर मचाती,
आसमान से धरती तक आ
अपना जोर दिखाती।

अब अक्सर हर छत के ऊपर
कुछ छड़ पड़ें दिखाई,
धरती से संबंध जोड़ जो
इसकी बनें दवाई।

कभी तोड़ती महल दो महले
कभी वृक्ष की डाली
कभी जान लेने को तत्पर
हो जाती मतवाली।

कार्य तड़ित-चालक का है कि
इसको निकट बुलाये
और तड़ित को त्वरित गति से
धरती तक पहुंचाये।

ऊंची और नुकीली चीजें
इसका बने निशाना
मानव ने यह तथ्य ज्ञान से
वर्षों पहले जाना।

धरती क्रोधित धन विद्युत को
आंचल में लिपटाती
तड़ित मौनवत् तेज गंवा फिर
सहज सहज हो जाती।

इसीलिये अब तड़ित प्रताड़ित
अधिक नहीं कर पाती,
मानव के हाथों पड़ अक्सर
मिट्टी में मिल जाती।

[श्री देवेन्द्र प्रसाद कंधवे, बोकारो स्टील सिटी-827 009]

गणितज्ञ

शेषांश पृष्ठ 23 का

निर्धारित चौखट के भीतर सत्य को प्रमाणित कर पाना बिल्कुल संभव नहीं है। **गोडेल के अपूर्णता प्रमेय** ने न केवल गणित को, बल्कि समूचे मानव चिंतन को एक जबरदस्त धक्का पहुंचाया है। फिर भी गोडेल ने स्वीकार किया कि गणित को अभिगृहीतों का आधार प्रदान करने का हिल्बर्ट का कार्यक्रम अत्यंत महत्व का है और जारी रहना चाहिए।

हिल्बर्ट अपनी **प्रूफ थ्योरी** पर कार्य करते रहे। बेर्नेज के सहयोग से वे गणित के आधारतत्व (ग्रुन्टलागेन डेर मैथेमैटिक) ग्रंथ का सृजन करते रहे। बाद में यह ग्रंथ दो खंडों में प्रकाशित हुआ।

जर्मनी में हिटलर का शासन शुरू हुआ। उसके साथ ही गॉटिंगेन में गणित के वैभवशाली युग का अवसान हो गया। कौरांट, लान्दौ, एम्मी नोएदेर, मैक्स बोर्न, हरमान वाइल आदि अनेक वैज्ञानिकों को गॉटिंगेन छोड़ देना पड़ा। गॉटिंगेन में हिल्बर्ट लगभग अकेले रह गए। एक भोज में बगल में बैठे नए नाजी शिक्षा-मंत्री ने उनसे पूछा—"अब यहूदी प्रभाव हट गया है, तो गॉटिंगेन के गणित संस्थान में गणित की स्थिति कैसी है?

"गॉटिंगेन में गणित" हिल्बर्ट ने उत्तर दिया, "अब वहां गणित—जैसी कोई चीज नहीं रह गई है!"

हिल्बर्ट के लिए दूसरे महायुद्ध के दिन बड़े दुखदायी रहे। अंत में 14 फरवरी, 1943 को इस महान गणितज्ञ का गॉटिंगेन में देहांत हुआ। करीब एक साल बाद श्रीमती हिल्बर्ट का देहांत हुआ।

डेविड हिल्बर्ट एक महान आशावादी गणितज्ञ थे। बीसवीं सदी के अधिकतर महान गणितज्ञ, हिल्बर्ट, के कृतित्व और विचारों से प्रभावित हुए हैं। गॉटिंगेन में हिल्बर्ट की समाधि-शिला पर वाक्य अंकित हैं : विर मुस्सेन विस्सेन।
विर वेर्देन विस्सेन।
— हमें अवश्य जानना चाहिए।
— हम अवश्य जान लेंगे।

[श्री गुणाकर मुले, अमरावती, सी- 210, पांडव नगर, दिल्ली- 110092]
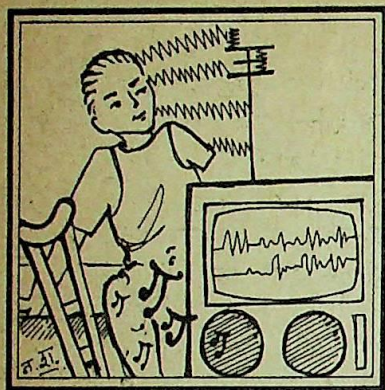
संगीत का आनन्द, इशारों से ही : मस्तिष्क की तरंगें, आंखों के इशारे और मांसपेशियों की हरकतों से संगीत-धुन की मधुर संगीत लहरें निकालना अब संभव हो गया है। बायोम्यूज नामक व्यवस्था के द्वारा कंप्यूटर विशेष इलेक्ट्रोडों की मदद से शरीर के विद्युत-संकेत ग्रहण कर उन्हें संगीत की सुरीली धुनों में परिवर्तित कर देगा।

बायोम्यूज नामक इस व्यवस्था को स्टेनफोर्ड के शरीर-विज्ञानी ह्युग एस. लस्टेड और स्नातक छात्र बेंजामिन नैप ने मिलकर विकसित की है। इससे वे विकलांग व्यक्ति ज्यादा लाभान्वित होंगे जो शारीरिक रूप से साज बजाने में अक्षम हैं।
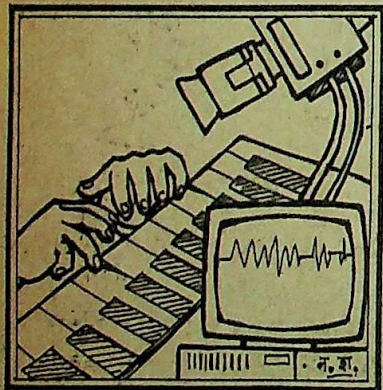
कंप्यूटर की नजर, अंगुलियों पर : कलाकार की अंगुलियां पियानो के कुंजी-पटल पर अपना कमाल दिखाती हैं और सारा वातावरण संगीतमय हो उठता है। जाहिर है, बेचारी अंगलियां थक जाती होंगी...। अब कंप्यूटर, कैमरे की मदद से कलाकार की अंगुलियों पर अपनी पैनी नजर रखेगा और विश्लेषण करके जानकारी देगा कि कितनी शक्ति अंगुलियों के जरिए कुंजी-पटल पर फैल जाती है, कब किसी खास धुन को निकालने के लिए अंगुली गलत चल गयी थी, वगैरह।

अंगुली की हड्डियों की गति को कंप्यूटर निर्धारित करके अपना निष्कर्ष निकालता है। इंडियाना स्थित परड्यू विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने कंप्यूटर के लिए विशेष प्रोग्राम तैयार किये हैं जिसके द्वारा पियानो या टाईप मशीन जैसे यंत्रों के कुंजी-पटल पर ऊपर या नीचे की दिशा में चलने वाली अंगुलियों पर नजर रखी जा सकती है।

इससे डाक्टरों को कलाकार की अंगुलियों में होने वाले दर्द या दूसरी परेशानियों का बेहतर ढंग से इलाज करने में काफी मदद मिलने की संभावना है।

कैरोलिन का कीर्तिमान : कब, कहां, किसे और कैसे मौत अपने दामन में समेट लेगी, कोई कह नहीं सकता। इसके बावजूद मौत से जूझने और उस पर विजय पाने की कोशिशें जारी हैं। हृदय-प्रत्यारोपण ऐसी ही एक कोशिश है।

कृत्रिम हृदय प्रत्यारोपण में डाक्टरों को अच्छी-खासी सफलता मिली है। सेंट लुई अस्पताल के डाक्टरों ने बताया कि सौ से भी अधिक लोगों को जार्विक-7 नामक कृत्रिम हृदय लगाया जा चुका है।

सेंट चार्ल्स की 57 वर्षीय कैरोलिन स्ट्डलर कृत्रिम हृदय से सबसे अधिक अवधि यानि 439 दिनों तक जीवित रहने वाली विश्व की प्रथम महिला थी। जार्विक-7 नामक कृत्रिम हृदय अस्थायी तौर पर तब तक के लिए लगाया जाता है जब तक किसी दानदाता का हृदय नहीं मिल जाए।

यों देखा जाए तो कैरोलिन की 'मौत' छह जुलाई 1988 को ही हो चुकी थी, परन्तु वह डाक्टरों की मदद से 439 दिनों तक कृत्रिम हृदय प्रत्यारोपण के सहारे, मौत से आंख-मिचौनी खेलती रही और उसे छलती रही। आखिरकार कैरोलिन को कटु सत्य का सामना करना पड़ा और चिकित्सा-विज्ञान के साथ-साथ उसे भी मौत के सामने नतमस्तक होना पड़ा।

सर्वाधिक लम्बी अवधि तक कृत्रिम हृदय से जीवित रहने वाला पुरुष केन्टकी के लुयीविले का विलियम सोएडर नामक व्यक्ति था जो 620 दिनों तक जीवित रहा।

प्रौद्योगिकी से इमारती लकड़ी : तेजी से हो रहे शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण देश में इमारती लकड़ी का संकट तो बढ़ता ही जा रहा है लेकिन हरे-भरे वृक्षों की अंधाधुंध कटाई से पर्यावरण के लिए खतरा अलग ही बढ़ रहा है।

बैंगलूर में काष्ठ-विज्ञान पर हुई एक सेमीनार की रिपोर्ट के अनुसार भारत में इस समय दो करोड़ टन इमारती लकड़ी की खपत हो रही है। इमारती लकड़ी की वर्तमान मांग और आपूर्ति के अध्ययन से पता चलता है कि सन 2000 तक मांग और आपूर्ति में दो करोड़ साठ लाख घ.मी. लकड़ी की खाई पैदा हो जाएगी।

आधुनिक प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से इमारती लकड़ी की मांग और आपूर्ति के बीच का फासला कम किया जा सकता है। नयी प्रौद्योगिकी में छोटे आकार की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है और दूसरे दर्जे की लकड़ी को भी उचित उपचार के बाद उपयोग में लाया जा सकता है।

सेमीनार में प्रस्तुत पेपर में बताया गया है कि इमारती लकड़ी का उत्पादन करने वाले जंगलों में से केवल आधे जंगल ही उचित समय के अंदर उपयोगी इमारती लकड़ी पैदा कर पाते हैं। इसके अलावा काटने के बाद से उपयोग में लाने तक लगभग 40 प्रतिशत इमारती लकड़ी नष्ट हो जाती है।
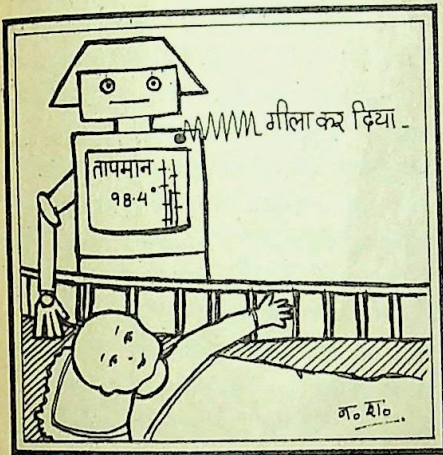
इलेक्ट्रानिक नर्स की ईजाद : जमाना बदला, जमाने के साथ जीने का सलीका बदला और जिन्दगी में कई नये-नये आधुनिक साज-सामान आने लगे। अब सुख-सुविधा के साज-सामानों की लंबी सूची में रोबोट के बाद 'नर्स' का नाम जुड़ गया है।

ऐसी अनोखी 'नर्स' जो हमारी तरह सांस नहीं लेती और खाना भी नहीं खाती, लेकिन बैटरी खाकर अपने नन्हें मरीजों का विशेष ध्यान रखती है। मेक्को नामक एक सहकारी संस्था ने इलेक्ट्रानिक नर्सों का अनोखा आविष्कार किया है।

इन इलेक्ट्रानिक नर्सों की ईजाद से दुधमुहें बच्चों की देखभाल का काम आसान हो जाएगा। सोवियत संघ के अजरबाइजान के शिशुगृहों में, ये उपकरण प्रत्येक शिशु के पालने के पास लगे हैं।

ये बच्चे के शरीर का तापमान लेते हैं और उनके शरीर के संबंध में अन्य सारी जानकारियां मुख्य नर्स के कमरे में रखी स्क्रीन पर आ जाती हैं।

इलेक्ट्रानिक नर्सों की कार्यकुशलता कमाल की है। बालक के बिस्तर गीला करके चीखना शुरू करने से पहले ही इलेक्ट्रानिक नर्स की खास 'आवाज' इसकी सूचना दे देती है।
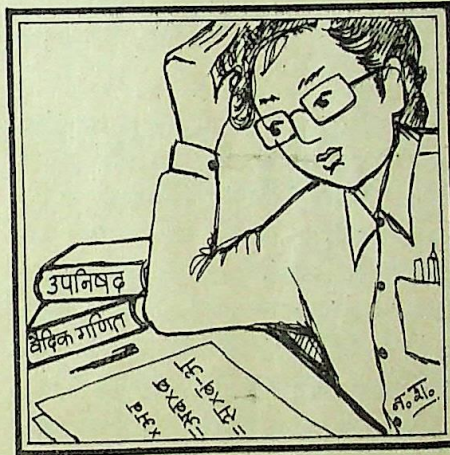
पहेली का हल : भारतीय गणितज्ञ डाक्टर एस.के. कपूर ने वैदिक गणित की सहायता से पिछले साढ़े तीन सौ वर्षों से उलझी एक पहेली का हल ढूंढ लिया है।

अमेरिका के माडर्न साइंस एण्ड वैदिक साइन्स नामक जर्नल में प्रकाशित शोध-पत्र में दी गयी जानकारी के अनुसार, डा. कपूर ने जाबाली उपनिषद् के बहुआयामी देशकाल सीमा के सिद्धांत की मदद से 1637 में एक फ्रांसीसी गणितज्ञ पियरे दी फर्मा द्वारा प्रस्तुत एक प्रमेय का हल ढूंढ निकाला है। इस प्रमेय के अनुसार दो घनों में एक घन अथवा दो अष्टफलक से एक अष्ट नहीं निकाला जा सकता।

अतिचालकता में अग्रणी : टोकियो विश्वविद्यालय के चिकित्सक कितास्जावा के अनुसार अतिचालकता में भारत के अग्रणी होने की आशा है। बैंगलूर में आयोजित विश्व अतिचालकता सम्मेलन में भाग लेने आए डा. कितास्जावा ने विचार व्यक्त किया है कि आने वाले समय में उच्च तापमान के अतिचालक पदार्थ की उन्नत किस्म की खोज भारत के वैज्ञानिक कर सकते हैं। यहां कुछ उच्च-स्तरीय रासायनिक प्रयोगशालाएं हैं जहां प्रतिभाशाली व धैर्यवान वैज्ञानिक एवं शोधकर्त्ता कार्य कर रहे हैं।

अतिचालक-क्षेत्र में अग्रणी वैज्ञानिक डा. कितास्जावा ने दिलचस्प जानकारी दी है कि जापान में वैज्ञानिकों एवं शोधकर्त्ताओं का धैर्य जवाब देने लग गया है और अब इस क्षेत्र में मात्र 28 प्रतिशत लोग ही अतिचालक पदार्थों की खोज में जुटे हुए हैं जबकि दूसरे लोग पुराने पदार्थों के अध्ययन में लग गए हैं।

अमेरिका में भी इस क्षेत्र में जो कठिन व महत्वपूर्ण काम हो रहा है उसमें भारतीय और चीनी शोधकर्त्ता ही प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। उच्च तापमान के अतिचालक पदार्थ की खोज के लिए पिछले तीन वर्षों से किए जा रहे अनुसंधान कार्य के विशेष एवं आशाजनक परिणाम नहीं निकले हैं। परिणामस्वरूप, इसका प्रतिकूल असर वैज्ञानिकों पर पड़ा है।

अचूक दवा अमृत कलश : हृदय रोग की एक आयुर्वेदिक दवा, अमृत कलश पर अब तक किए गए परीक्षणों से आशाजनक परिणाम निकले हैं। अमृत कलश नामक हृदय रोग की औषधि को एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने जड़ी-बूटियों से तैयार किया है जो हृदय की धमनियों में जमी वसा को हटा देने के बाद भी, उसे वहां जमने नहीं देती।

आयुर्वेदिक औषधि से शरीर में अन्य विकार उत्पन्न होने का खतरा भी कम होता है, अतः यह हृदय रोग से पीड़ित लोगों के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

अनिल कुमार शर्मा, 1100, तिमारपुर दिल्ली-54

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

प्रकाशक : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खण्ड-7, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली-110 066; वर्ष : 1989; अंक : 4; मूल्य : संस्थानों के लिये – 50 रुपये प्रतिवर्ष; विद्यार्थियों के लिये – 30 रुपये प्रतिवर्ष
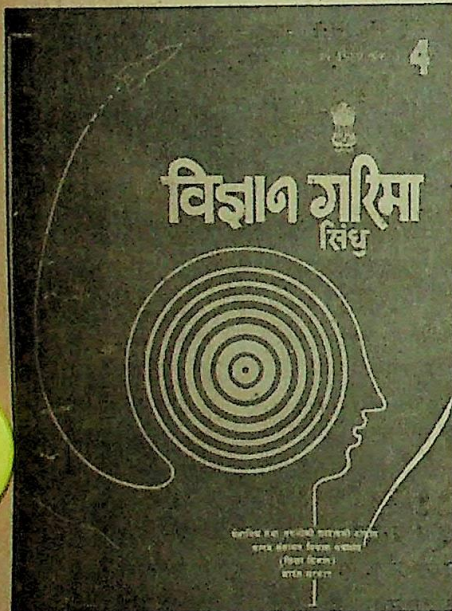
जन साधारण तक वैज्ञानिक जानकारी पहुंचाने के लिये किसी भी पत्रिका का प्रकाशन एक सस्ता और अच्छा साधन है। भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हिन्दी में विज्ञान की पत्रिकाओं की कमी हैं। पिछले 37 वर्षों से "विज्ञान-प्रगति" ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है, परन्तु इस पत्रिका का कार्यक्षेत्र जन साधारण है। हिन्दी में शोध-पत्रिकाएं नगण्य हैं। वैज्ञानिक शब्दावली की जानकारी देने वाली पत्रिका तो है ही नहीं। इस दिशा में प्रस्तुत पत्रिका ने उपस्थित रिक्त स्थान को भरने का अच्छा प्रयास किया है।

पत्रिका का कार्यक्षेत्र वैज्ञानिक विषयों पर लेख, वैज्ञानिक शब्दावली तथा सम्बन्धित विषय हैं। पत्रिका का मूल उद्देश्य, हिन्दी में पाठकों के लिये विज्ञान की पाठ्य पुस्तकीय और विविध सम्पूरक साहित्य की जानकारी देना है। इस उद्देश्य को पत्रिका के इस अंक में बखूबी निभाया गया है। इस अंक में कुल 18 लेख हैं जो अंतरिक्ष विज्ञान, गणित, भू-विज्ञान, कृषि, औषध विज्ञान, ऊर्जा जैसे क्षेत्रों पर आधारित हैं। लेखों के अतिरिक्त विविध-स्तम्भ में शब्दावली चर्चा, शब्द-भंडार, परिभाषा निदर्श, समीक्षा, आयोग की गतिविधियां और ग्रंथ-सूची शामिल हैं।

पत्रिका के कार्यक्षेत्र और उपयोगिता को देखते हुये, इसके प्रस्तुतीकरण में कुछ फेर-बदल करने से इसका लय एक समान हो सकता है और स्पष्टीकरण और आकर्षण बढ़ सकता है। शोध, समीक्षा और जन-साधारण पर लेखों को यदि अलग-अलग खण्डों में प्रस्तुत किया जाये तो पत्रिका में प्रस्तुत सामग्री अधिक स्पष्ट हो सकती है। इसके अतिरिक्त, अनुक्रम में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे अंतरिक्ष, भू, कृषि, ऊर्जा, पर्यावरण आदि के आधार पर लेखों को रखा जाये तो स्पष्टीकरण अधिक बढ़ जाता है। इससे पाठकों को अपनी रुचि के विषय चुनने में भी आसानी हो जाती है।

सन्दर्भ-साहित्य के प्रस्तुतीकरण में कहीं हिन्दी और कहीं अंग्रेजी का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं अंग्रेजी वाक्यों को हिन्दी में लिखकर प्रस्तुत किया गया है। यदि सन्दर्भ-साहित्य को एक ही भाषा और एक ही तरीके से प्रस्तुत किया जाये तो पत्रिका की एकसमानता बनी रहती है। एक ही तरीके का तात्पर्य, सन्दर्भ-साहित्य में लेखक, रचना, पत्रिका, वर्ष, अंक और पृष्ठों का विवेचन पूर्ण और एक समान होना है। इस दिशा में, सन्दर्भ-साहित्य को अंग्रेजी में प्रस्तुत किया जाये तो अच्छा रहेगा क्योंकि हिन्दी पत्रिकाओं की अत्यधिक कमी होने के कारण, लगभग समस्त सन्दर्भ-साहित्य की अंग्रेजी को ज्यों का त्यों हिन्दी में लिखने में स्पष्टीकरण कम हो जाता है। इस स्थिति का अवलोकन पृष्ठ 38, 39, 43 और 47 पर किया जा सकता है।

सम्पादन की दृष्टि से रचनाओं के प्रारम्भ में दिया गया सार अपूर्ण लगता है। पत्रिका के प्रस्तुत अंक के दूसरे लेख में अंकों को लिखकर प्रस्तुत किया गया है जैसे तेरह लाख नब्बे हजार कि.मी., छः हजार डिग्री सेंटीग्रेड, दो सौ साल आदि। ऐसा लगता है, सम्पादक ने रचना को बिना किसी सम्पादन के ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है। चित्रों का प्रस्तुतीकरण, उनके गद्य में वर्णन के स्थान से काफी हटकर किया गया है। चौथे लेख में यह स्थिति देखी जा सकती है। पृष्ठ 67 पर चित्र का सन्दर्भ, गद्य में नहीं दिया गया है और चित्र भी स्पष्ट नहीं है। चित्रों के प्रस्तुतीकरण में यदि चित्रकार का सहारा लिया जाये तो पत्रिका की सुन्दरता बढ़ सकती है। पत्रिका के अन्त में प्रस्तुत पुस्तक समीक्षाएं, स्टाफ के किसी एक व्यक्ति से करा ली गई हैं जो अध्यायों की पूर्ण जानकारी नहीं देतीं और अपूर्ण लगती हैं। इस दिशा में, विशेषज्ञों से समीक्षा कराने से पत्रिका में सुधार आयेगा। पत्रिका की छपाई यदि 8 पाइंट के स्थान पर 10 पाइंट में की जाती तो पाठकों की दृष्टि में पत्रिका अधिक अच्छी होती।

हिन्दी में विज्ञान प्रसार की आवश्यकता और उपयोगिता को देखते हुये, प्रस्तुत पत्रिका समस्त आवश्यक सामग्री लेकर प्रस्तुत हुई है। विषय सामग्री को देखते हुए इसका मूल्य उचित है। पत्रिका के सम्पादन परामर्श मण्डल में उच्चकोटि के शिक्षाविद् हैं जिनके निर्देशन में लेख कथन में पूर्ण और अच्छे हैं। आशा है, पत्रिका के आने वाले अंकों में सम्पादक मंडल अधिक अच्छा सम्पादन करेगा जिससे पत्रिका के स्पष्टीकरण, सुन्दरता और एकसमानता में वृद्धि होगी। भविष्य में विज्ञान में शोध कर रहे विद्यार्थियों, वैज्ञानिकों, प्रशासनिक अधिकारियों, योजनाकारों और अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों के लिये यह बहुत लाभकारी सिद्ध होगी।

[श्री पुरुषोत्तम त्यागी, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 110012]

रेत व चूने की ईंटें

सैंड प्लास्ट (इंडिया) लि., रेत एवं चूने की ईंटें (सैंड लाइम ब्रिक्स) बनाने का एक कारखाना, राष्ट्रीय राजमार्ग 8 पर बहरोड तहसील जिला अलवर में लगा रही है। ये ईंटें प्रचलित मिट्टी की ईंटों से कई प्रकार से बेहतर होंगी। ये अधिक सुन्दर, मजबूत, समान आकार की होंगी। इन्हें विभिन्न रंगों में भी बनाया जा सकेगा। इन ईंटों के प्रयोग से भवन निर्माण व्यय में 40 प्रतिशत तक की कटौती की जा सकेगी। ये ईंटें पारम्परिक ईंटों की तुलना में कई गुना मजबूत होंगी। इसके परिणाम स्वरूप 6-7 मंजिल तक के भवन-निर्माण में आर.सी.सी. के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इनके प्रयोग से दीवारों पर सीमेंट के प्लास्टर की आवश्यकता भी समाप्त हो जाती है।

यह कम्पनी ऐगी ईंटों का भी उत्पादन करेगी जिन्हें पारम्परिक रूप से इस्तेमाल करने वाली धौलपुर स्टोन जैसी सामग्री के स्थान पर प्रयोग किया जा सकेगा। इसके साथ ही यह कम्पनी बड़े आकार के ब्लाक एवं टाइल्स का भी उत्पादन करेगी जो अपने आप में भवन निर्माण को एक नई दिशा प्रदान करेगी। कम्पनी अपने "उत्पाद" को पारम्परिक ईंटों के मूल्य पर ही बेचेगी। बहरोड़ में स्थापित किये जाने वाले इस कारखाने की वार्षिक क्षमता लगभग नौ-दस करोड़ ईंटें, ब्लाक्स एवं टाइल्स प्रतिवर्ष है जो कि 15 करोड़ ईंटों के बराबर होगी। इस परियोजना की कुल लागत 6 करोड़ 17 लाख रुपये आने की संभावना है। आशा है इस कारखाने का व्यावसायिक उत्पादन मई 1990 में आरंभ हो जायेगा। कम्पनी द्वारा इस प्रकार के दो और कारखाने बंबई एवं कलकत्ता के समीप लगाये जायेंगे।

अंतरिक्ष में उपकरण

सोवियत अंतरिक्ष यात्री एलेग्जेंडर विक्तोरेंको और एलेग्जेंडर सैरब्राफ ने गत 9 जनवरी को प्रातः तीन घंटे तक खुले अंतरिक्ष में विचरण किया और उन्होंने अंतरिक्ष केंद्र मीर की स्थिरता प्रणाली को कार्यकुशल बनाने के लिये दो स्टेलर ट्रांस्ड्यूसर सफलतापूर्वक स्थापित किये। दोनों अंतरिक्ष यात्रियों ने विभिन्न सामग्री के नमूने भी एकत्र किये जिन्हें काफी लम्बे समय तक बाहरी अंतरिक्ष में रखा गया था। अंतरिक्ष में चलने के पश्चात दोनों यात्री स्वस्थ हैं। मास्को के समय के अनुसार आठ जनवरी को रात 11 बजकर 23 मिनट पर दोनों अंतरिक्ष यात्री खुले अंतरिक्ष में निकले और तीन घंटे बाद अंतरिक्ष केन्द्र मीर में लौट आये।

वैज्ञानिक राजा रामन्ना रक्षा राज्य मंत्री

डा. राजा रामन्ना की रक्षा राज्य मंत्री के रूप में नियुक्ति के बाद मन्त्री मंडल में एक और वैज्ञानिक की बढ़ौतरी हुई है। 64 वर्षीय डा. राजा रामन्ना ऐसे दूसरे विख्यात वैज्ञानिक हैं। इससे पहले प्रो. एम.जी.के. मेनन विज्ञान मंत्री बनाये जा चुके हैं। इन दोनों वैज्ञानिक प्रतिभाओं को अपने अपने कार्यक्षेत्र में लगभग समान धरातल पर रखा जा सकता है। अपने सतत शोध और वैज्ञानिक संस्थानों के प्रशासकीय अनुभव की दृष्टि से दोनों का योगदान स्तुत्य रहा है।

डा. रामन्ना की प्रारम्भिक शिक्षा बंगलूर और मद्रास में हुई। तत्पश्चात उन्होंने लंदन के किंग्ज कालेज से नाभिकीय भौतिकी में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की और 1949 में बम्बई के टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च में उनकी नियुक्ति हुई। 1954 में ट्राम्बे में परमाणु रिएक्टर का दायित्व उन्हीं को सौंपा गया। 1972 में डा. रामन्ना को भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र का निदेशक नियुक्त किया गया। 1974 के पोखरण के शान्तिपूर्ण परमाणु विस्फोट कार्यक्रम में भी उनकी प्रमुख भूमिका थी। उस समय वे परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष थे। 1978 से 1982 तक वे रक्षा मंत्रालय के सलाहकार रहे और 1982 में परमाणु ऊर्जा विभाग में लौट आये।

डा. रामन्ना ने परमाणु विखंडन की प्रक्रिया में महारत हासिल की है। परमाणु विखंडन का काम उन्होंने भारत की पहली परमाणु भट्टी "अप्सरा" में किया। डा. रामन्ना विख्यात वैज्ञानिक डा. होमी भाभा के निकट सहयोगी रहे हैं।

डा. रामन्ना संगीत और दर्शनशास्त्र में भी दिलचस्पी रखते हैं। निजी बातचीत में भी वे धार्मिक उद्धरणों का प्रयोग करते हैं। दसवीं सदी के भक्ति काल "मुकंदमाला" का उन्होंने अंग्रेजी अनुवाद भी किया है।

डा. रामन्ना गजब के पियानोवादक भी हैं और पियानो बजाना उन्होंने बचपन में ही सीख लिया था। जून 1982 में कुआलाल्मपुर में हुई भयानक वायु दुर्घटना में डा. रामन्ना की चमत्कार पूर्ण जीवन रक्षा शायद आज ही के दिन के लिये हुई थी।

डा. रामन्ना को शांतिस्वरूप भटनागर पुरस्कार, पद्मभूषण और पद्म विभूषण से भी सम्मानित किया जा चुका है।

अंगूर की दो फसल

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के प्रसार शिक्षा निदेशक डा. एम.एस. कैरो ने बताया है कि इस विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक वर्ष में अंगूर की दो फसल लेने की आसान तकनीक विकसित की है।

परलेटी और अंगूर की दूसरी किस्मों से आमतौर पर मई-जून में फल लिए जाते हैं। वैज्ञानिकों ने परलेटी किस्म की फसल लेने के एक सप्ताह पश्चात, बेलों की कांट-छांट की। उन्होंने पाया कि उन बेलों पर पुनः फल आने लगे। इससे उन्हें एक बेल से सितम्बर के अंतिम तथा अक्तूबर के दूसरे सप्ताह तक लगभग 20 किलो अंगूर मिले जबकि इन बेलों से जून की फसल में केवल 3 किलो प्रति बेल अंगूर मिले थे।

जून के महीने में परलेटी किस्म के अंगूरों की कीमत 2 से 3 रुपये प्रति किलो मिली जबकि सितम्बर में अंगूरों की कीमत लगभग 15 रुपये प्रति किलो रही। इस प्रकार जून की फसल से प्रति बेल 90 रुपये मिले जबकि सितम्बर की फसल से 300 रुपये प्रति बेल मिले।

R. No. 713/57

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित

Regd. No. D.(C)-89

ल 1990 चैत्र 1912

मूल्य : 2.50 रुपए

विज्ञान प्रगति

विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला

जनरुचि के 50 लघु विश्वकोशों की एक अनूठी संग्रहणीय श्रृंखला

मूल्य: 18/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें
मंगाने पर डाकखर्च माफ

■ प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री ■ प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित ■ सरस कथा शैली ■ फोटोटाइप सैट ■ बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई ■ बहुरंगी आवरण ■ वाजिब दाम

[इस] श्रृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से जोड़कर [उस]की चेतना को प्रबुद्ध करते हुए उसके ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार है।

[उदा]हरणार्थ **रोमांचक कारनामे** में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा [जै]सी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो **खोजें** में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे [प्रया]सों का रोचक विवरण है। **अनसुलझे रहस्य** में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर रक्त मिलाकर [मद्य] पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो **खेल और खिलाड़ी, 101 व्यक्तित्व** व [वैज्ञा]निक जीवनी-प्रधान पुस्तकें हैं। **विनाश-लीलाएं** व **दुर्घटनाएं** में मर्मांतक तबाहियों का [लेखा]-जोखा है तो **गुप्तचर संस्थाएं, जासूस** व **जासूसी कांड** में जासूसों की रोमांचकारी [गति]विधियां हैं। **सभ्यताएं, मिथक एवं पुराण कथाएं** और **प्रेरक-प्रसंग** किसी भटके हुए मन [के]लिए प्रकाश-स्तंभ हैं तो **हत्यारे** में रक्त-पिपासु हैवानों की कथाएं हैं। **रोमांस-कथाएं** [व] **हस्तियों के प्रेम-प्रसंग** में लैला-मजनूं से लेकर हिटलर, कैनेडी, चार्ली चैपलिन, नेहरू [जैसे] व्यक्तियों के दिलों की धड़कनें हैं तो **अनमोल खजाने** में रहस्य और रोमांच से भरे खजाने [व] **दुस्साहसिक खोज-यात्राएं** में कोलंबस, मार्को पोलो जैसे खोज-यात्रियों की [साहस]-गाथाएं हैं तो **जन-क्रांतियां** में सभी महत्त्वपूर्ण क्रांतियों का ब्यौरा है। **भूत-प्रेत** [घटन]ाएं, **अलौकिक रहस्य** तथा **मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे** पढ़कर आपकी [रातों] की नींद उड़ जायेगी। **कुख्यात महिलाएं** व **विलासी सुंदरियां** में मर्लिन मुनरो, जैक्लीन [जैसी] जैसी औरतों का निजी जीवन है तो **सनकी तानाशाह, राजनैतिक हत्याएं, [तख्त]ा-पलट घटनाएं** व **आतंकवादी संगठन** में आपको विश्व-कूटनीति का असली चेहरा [दिखा]यी देगा।

[कुल] मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने [वा]ला एक सचित्र मिनि एनसाइक्लोपीडिया है।

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांगें। वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते:—

पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली-110006

शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

विषयसूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

विज्ञान प्रगति

वर्ष 39, अप्रेल 1990, चैत्र 1912, अंक 4, पूर्णांक

पृष्ठ 10

पृष्ठ 14

पृष्ठ 16

पृष्ठ 21

विषयसूची

पृष्ठ 27

पृष्ठ 34

पृष्ठ 39

अगले अंक के आकर्षण

कम्प्यूटर बगिया का कमाल

पर्यावरण असन्तुलन – बांध भूकम्प और विध्वंस

पक्षियों में शिशु पालन परम्परा और जैव प्रौद्योगिकी

में पढ़िये – अब पेड़ बनेंगे कारखाने

अन्य स्थायी स्तम्भ

ओले का रहस्य

'विज्ञान प्रगति' का फरवरी अंक मिला। इसमें प्रकाशित डा. बी.एस. अग्रवाल द्वारा लिखित चित्र कथा से हमें ओलों के विषय में आद्योपांत जानकारी मिली। यह जानकार सुखद आश्चर्य हुआ कि जो ओला हम पृथ्वी पर देखते हैं उसका प्रारम्भिक आकार-प्रकार बहुत बड़ा तथा विचित्र होता है। यह जानकर तो हम विस्मित रह गये कि यदि किसी को यह जानना हो कि ओला जमीन पर गिरने से पूर्व कितनी बार पुनः ऊपर गया, तो ओले की परतों को गिन लेना चाहिए। क्योंकि किसी ओले में पायी जाने वाली परतों की संख्या उसके द्वारा लगाये गये चक्करों की द्योतक है। ऐसी ही एक जानकारी हमने वृक्षों के बारे में पढ़ी थी। यदि वृक्ष के तने को आरी से काटकर देखा जाए कि उसमें कितने गोल दायरे बने हुये हैं, तो समझ लेना चाहिए कि जब वह वृक्ष काटा गया उस समय उस की आयु उतने ही वर्ष की है। इस रहस्यमयी जानकारी के लिए हम लेखक के कृतज्ञ हैं।

[दिलीप कुमार सिंह, मेकैनिकल प्रोडक्शन, प्रथम वर्ष, टाउन पालीटेक्निक, बलिया]

प्रतियोगिता में सहायक

''विज्ञान प्रगति'' का फरवरी 1990 का अंक बहुत ज्ञानवर्द्धक लगा। इसमें श्री वी.एस. वैंकटवर्धन द्वारा लिखित लेख ''तराजू विज्ञान का'' बहुत पसंद आया। इससे हमें जानकारी प्राप्त हुई कि विज्ञान से अधिकतर लाभ धनी लोग ही उठा पाते हैं। गरीबों को लाभ प्राप्त करने का सुअवसर कम मिलता है। इसके अतिरिक्त विज्ञान ने जहां देश को आत्मनिर्भर बनाया है वहीं बेरोजगारी भी बढ़ायी है। विज्ञान की उन्नति से अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब हो गये हैं। अतः विज्ञान को ऐसे स्त प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे सबको समान लाभ हो। लेखक ने विज्ञान से लाभ और हानि दोनों को बहुत अच्छे तथा बेवाक शब्दों में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत लेख उन विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा जो प्रायः विज्ञान संबंधी वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहते हैं।

[1. शिव कुमार दुबे, भागलपुर बिहार; 2. ऋषिकेश मिलन, अभिशेख, एवं जीतू मनियारी, बिहार]

संसार के महान गणितज्ञ

विज्ञान प्रगति का गत फरवरी अंक कतिपय महत्वपूर्ण दृष्टिकोणों से बहुत सुन्दर और उपयोगी लगती है। इसमें जो श्रृंखला ''संसार के महान गणितज्ञ'' प्रकाशित हो रही है वह निस्सन्देह उच्च कोटि की है। कार्ल वायरस्ट्रास तथा ग्यार्ग कॉतोर जैसे महान गणितज्ञों के अन्वेषणों के बारे में पढ़कर हृदय प्रफुल्लित हो उठा और विचार करता रहा कि समाज कितना ऋणी है इन महान विभूतियों का। समाज के साधारण वर्ग को, इस प्रकार की श्रृंखला, एक नई दिशा, नई चेतना और नया अहसास देगी। ग्यार्ग कॉतोर जैसे महान गणितज्ञ ने अनन्त समुच्चय की व्याख्या किस प्रकार की इस विषय को विद्वान लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से लेख में समझाया है। इस लेख को पढ़ने के बाद गणित संबंधी हमारे कितने ही प्रश्न हल हो गये हैं।

[1. चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, जयगंज, अलीगढ़; 2. राकेश कुमार कर्ण, नया बलभद्रपुर, बिहार; 3.मो. एहसान राज, मुजफ्फरपुर, बिहार; 4. मुन्ना कुमार गुप्ता, गया, बिहार]

अतिमानव का भावी संसार

फरवरी 1990 की 'विज्ञान प्रगति' प्राप्त हुई। जैवप्रौद्योगिकी नामक स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित लेख ''अतिमानव का भावी संसार'', बहुत ही रोचक एवं ज्ञानवर्धक रहा। लेख में दी गयी जैव प्रौद्योगिकी सम्बन्धित समस्त जानकारी सराहनीय रही।

[1.दीप नरायन गुप्ता, आलम बाग, लखनऊ; 2. संजय कुमार अम्बेडकर, नवादा, बिहार; 3.शेखर श्रीवास्तव, रायगंज, अयोध्या]

गणित मनोरंजन

विज्ञान प्रगति के फरवरी अंक में ग[illegible] मनोरंजन स्तम्भ के अन्तर्गत घन[illegible] निकालने की सरल विधि पढ़ कर [illegible] हुआ। यदि किसी न किसी गणित सम्ब[illegible] समस्याओं का समाधान सरल भाषा[illegible] समझाते हुये किया जाए तो यह हमारे लि[illegible] बहुत उपयोगी होगा, क्योंकि उपरोक्त [illegible] से भी कुछ संख्याओं के घनत्व हम इस[illegible] से नहीं निकाल पाये हैं। जैसे 2744, 33[illegible] 4026, 4913, 16983, 5832, 68[illegible] 2000, 15625, 175761। कृपया अ[illegible] अंक में उपरोक्त विधि द्वारा इन संख्याओं [illegible] घनमूल निकालने की विधि बतायें।

[1. पंकज जैन, कुम्हारी, दुर्ग, मध्यप्रदेश; सुधीर श्रीवास्तव, अलीगंज, लखनऊ उत्तर प्रदेश]

पृथ्वी का विकास

'विज्ञान प्रगति' के फरवरी अंक [illegible] प्रकाशित 'पृथ्वी की कहानी' [illegible] अंतर्गत हमने पृथ्वी की उत्पत्ति और विक[illegible] के बारे में विस्तार से पढ़ा। यह प्रश्न लग[illegible] हर कक्षा के परीक्षाओं में पूछा जाता है। [illegible] लेख को पढ़कर पृथ्वी का विकास किस प्र[illegible] हुआ, हमें भली-भांति मालूम हो ग[illegible] आशा है पृथ्वी के बारे में इससे आगे [illegible] जानकारी अगले अंकों में मिलती रहेगी।

[1.दिनेश प्रसाद गुप्ता, अरवल, बिहार; 2.[illegible] कुमार, प्रवीन कुमार, विवेक कुमार तथा अ[illegible] कुमार, मोहनगंज, लखनऊ; 3. सूर्य प्रका[illegible] राजेन्द, राजीव, देवेन्द, धर्मेन्द, प्रदीप तथा [illegible] वाराणसी]

विज्ञापन अधिक न दें

'शायद पहली बार कभी [illegible] हुआ है कि महीने के प्रारम्भ होने [illegible] पूर्व ही विज्ञान प्रगति की प्रतियां बाजार [illegible] उपलब्ध हुई हों। जनवरी तथा फरवरी [illegible] दोनों समय पर मिल गए तथा विश्वास है [illegible] आगे भी अब विज्ञान प्रगति समय से पहले [illegible]

उपलब्ध होगी।

विज्ञान प्रगति वास्तव में हिन्दी में विज्ञान का एकमात्र वास्तविक प्रचारक है। कृपया अधिक विज्ञापनों द्वारा इसके स्तर को निम्न न बनायें।

तथ्य अधिक स्पष्ट दें। नए कलेवर में विज्ञान प्रगति का स्वागत है!

[प्रमोद कुमार पाण्डेय, पूर्वी चम्पारण, बिहार]

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

'विज्ञान प्रगति' पत्रिका को पढ़कर ऐसा लगता है कि हिन्दी में सिर्फ यही एक पत्रिका है जो विज्ञान के बारे में इतनी अधिक जानकारी इतने कम पृष्ठों में दे देती है। आज हमारे देश की अधिकांश जनता हिन्दी भाषा ही जानती है। हिन्दी में प्रकाशित होने वाली इस वैज्ञानिक पत्रिका से अधिक से अधिक लोगों तक ज्ञान पहुंच सकता है जिससे इनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण होगा, जिसका फायदा राष्ट्र को अवश्य होगा। अगर यह पत्रिका जन-जन तक पहुंचती है तो, अपेक्षा की जा सकती है कि भविष्य के राष्ट्र निर्माण में विज्ञान प्रगति का बहुत बड़ा हाथ होगा।

[राजेश कुमार गुप्त, टिकरिया, उमरई, हमीरपुर, उत्तर प्रदेश]

हर वर्ग के लिये उपयोगी

विज्ञान प्रगति का अंक मिला। मैं वाणिज्य का छात्र रहा हूं लेकिन फिर भी मैं नियमित रूप से इसे पढ़ता हूं। इसकी भाषा इतनी सरल तथा सुस्पष्ट है कि कला व वाणिज्य के छात्रों को भी इसे समझने में कोई दिक्कत नहीं होती। विज्ञान प्रगति पढ़कर हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि इससे हर प्राणी लाभान्वित हो सकता है जो अपना जीवन सुख से जीना चाहते हैं, भले ही उसे विज्ञान का ज्ञान न हो।

[शैलेश कुमार चौधरी, पटना, बिहार]

ध्वनि से टूटेंगे पत्थर

'विज्ञान प्रगति' का फरवरी 1990 का अंक मिला। इसमें "ध्वनि से टूटेंगे पत्थर" नामक लेख बहुत रोचक व ज्ञानवर्धक लगा। इसके अंतर्गत लिखित लिथोट्रिप्सी विधि जोकि वैज्ञानिक व असंक्रामक है, के बारे में दी गयी जानकारी सराहनीय है। हमारा विश्वास है कि अब तक के हिन्दी प्रकाशनों में ऐसी जटिल समस्याओं का निराकरण प्रथम बार आपकी पत्रिका "विज्ञान प्रगति" में पढ़ने को मिला है। इस विधि से उन सभी को लाभ होगा जिनके गुर्दे तथा मूत्रवाहियों में पत्थर है और जो बिना आपरेशन के उनको निकलवाना चाहते हैं।

[1. संदीप कुमार सिन्हा, रॉची, बिहार ; 2. विनोद कुमार शर्मा, धनबाद, बिहार ; 3. डी.एन. गुप्ता, गोण्डा, उत्तर प्रदेश ; 4. दन्नपत सिंह चौहान, जोधपुर, राजस्थान ; 5. शमीम अहमद खां, गांधी नगर, बस्ती, उत्तर प्रदेश ; 6. राजकुमार राम, उजियार, बलिया, बिहार ; 7. राजेश जायसवाल, रौतहट, नारायणी ; 8. सुनील कुमार, दुर्ग, मध्य प्रदेश]

मुख पृष्ठ का कमाल

'विज्ञान प्रगति' का गत फरवरी अंक हर दृष्टि से उत्कृष्ट रहा। मुख पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक गागर में सागर भर देने वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। प्रारम्भ में हमने यह पत्रिका अपने एक मित्र के पास देखी थी। इसके मुख पृष्ठ ने हमें इतना अधिक आकर्षित कर दिया था कि इसको पढ़ने के लिए हमें मजबूर होना पड़ा। इसके लेख पढ़ने पर यह पत्रिका हमारे दिल और दिमाग पर इस कदर छा गयी कि अब हर महीने हमें बेसब्री से बुक स्टाल के चक्कर लगाते रहना पड़ता है।

[1. ओम प्रकाश कश्यप, नैनीताल, उत्तर प्रदेश ; 2. ऋषि कुमार खदरिया, हनुमानगढ़ जंक्शन, राजस्थान]

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

फरवरी अंक के सारे पन्ने रोचकता और ज्ञान-विज्ञान के आंकड़ों से पूर्ण थे। आमुख कथा "विज्ञान और प्रौद्योगिकी समाज की कसौटी" पर पढ़कर ऐसा लगा मानो हमने सामाजिक विज्ञान का कोई भी ऐसा कार्य अछूता नहीं छोड़ा है जो अभी तक हम लोगों ने पूरा नहीं किया है। यह बात बिल्कुल सही है कि समाज को हमेशा विज्ञान और प्रौद्योगिकी से अनेक आशाएं रही है और समाज की सभी मनोकामनाएं पूर्ण भी होती रही हैं। लेकिन विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने समाज के लिए इतना उपकार किया है फिर भी अभी तक अधिकांश जनसाधारण का विज्ञान के प्रति लगाव नहीं है। हमारे वैज्ञानिकों ने भी अपने अथक परिश्रम और लगन से समाज का उद्धार किया है वहीं दूसरी और छोटी-छोटी वस्तुओं के भयंकर दुष्परिणामों को लेकर विज्ञान को बदनाम करते हैं। वास्तव में विज्ञान की हर उपलब्धि मानव का कल्याण करती है। वह बात अलग है कि उसमें परिचालन में गलती रह जाए अथवा उसका प्रयोग ना समझी से किया जाये, तभी विज्ञान के दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं। वरना विज्ञान ही वह विधा है जो पृथ्वी पर स्वर्ग ला सकती है।

[1. मो. शहाबुद्दीन, बालु बस्ती, किशनगंज ; 2. पंकज कुमार चतुर्वेदी, देवरिया, औरंगाबाद, बिहार ; 2. धीरेन्द कुमार सिंह, राकेश कुमार यादव, रायबरेली, उ.प्र. ; 2. इद्रदेव कुमार, अभय, शिगंज रोहतास, बिहार]

रंगीन चित्र

हम विज्ञान की पत्रिकाओं के पाठक हैं और विज्ञान प्रगति को तो पिछले पांच वर्षों से नियमित रूप से पढ़ते आ रहे हैं। इसका फरवरी 1990 अंक बेहद पसन्द आया। इसमें प्रकाशित रंगीन चित्रों ने मन मोह लिया।

[1. बृज नन्दन वर्मा, शाहजहांपुर, उ.प्र. ; 2. जितेन्द कुमार सिंह, क्लब रोड, औरंगाबाद, बिहार]

ग्राहकों के लिए सूचना

1. "विज्ञान प्रगति" (हिंदी वैज्ञानिक मासिक पत्रिका) प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) द्वारा प्रकाशित की जाती है। इसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों पर सामग्री प्रकाशित होती है। इसके पाठकों की संख्या तीन लाख से अधिक है।

2. इसकी एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। एक वर्ष के लिये शुल्क 25.00, दो वर्ष के लिये 40.00 रुपये और 3 वर्ष के लिये 60.00 रुपये है। दो वर्ष के लिये ग्राहक बनकर आप 10.00 रुपये की और तीन वर्ष के लिये ग्राहक बनकर 15.00 रुपये की बचत कर सकते हैं। चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, निकट पूसा, नई दिल्ली-110 012** को भेजी जानी चाहिये।

3. विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

4. चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें। चैक और ड्राफ्ट, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली, के नाम से भेजे जाने चाहिये।

5. कृपया ग्राहक फार्म भर कर शीघ्र भेजें।

ग्राहक फार्म

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी., हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110 012

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में एक वर्ष के लिए (मास... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए।
इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट क्रमांक .... दिनांक .... से "प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.", नई दिल्ली-110 012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

पूरा पता ________________

— हस्ताक्षर

विज्ञान प्रगति

अप्रैल 1990

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
श्रीमती दीक्षा बिष्ट

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलबीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा
बशिष्ट ओझा

मुख पृष्ठ
नीरू शर्मा

टेलीफोन: 585359 और 586301

लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये

वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

अपनी बात

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का आपस में ऐसा गठबंधन है जो कभी कल्पना में भी अलग नहीं किया जा सकता। देश के विकास में विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है और इसकी जोड़ीदार प्रौद्योगिकी का पुरातनकाल से ही मानव समस्याओं को सुलझाने में योगदान रहा है। इसी के फलस्वरूप आज मानव जीवन की काया ही पलट गई है और आज मनुष्य ठाटबाट की जिंदगी गुजार रहा है। यहां तक कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इतना विकास हुआ है कि गांवों में कठिन जीवनयापन अब सरल हो गया है।

विज्ञान की इन्हीं उपलब्धियों को याद करने के लिये प्रतिवर्ष 28 फरवरी का दिन "राष्ट्रीय विज्ञान दिवस" के रूप में मनाया जाता है। लेकिन विज्ञान को आम आदमी तक पहुंचाने के लिये यह जरूरी है कि आम आदमी की परिचित भाषा में विज्ञान को समझाया जाये। क्योंकि हर वस्तु के प्रचार-प्रसार का उत्तम माध्यम भाषा ही होती है। लेकिन भारत एक बहुभाषी देश है। इसके प्रत्येक प्रान्त की अलग भाषा के अतिरिक्त, एक ही प्रान्त की भाषाओं में भी विविधता है। लेकिन हिन्दी एक सरल और सुबोध भाषा है जिसमें रचा गया विज्ञान साहित्य सभी के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा इस अवसर पर आयोजित गोष्ठी में सी.एस.आई.आर. के अतिरिक्त महानिदेशक ने हिन्दी को विज्ञान और तकनीकी के प्रचार-प्रसार का उत्तम माध्यम बताते हुये स्पष्ट किया कि हिन्दी भारत की सम्पर्क भाषा है। गोष्ठी में भाग लेने वाले सभी चोटी के वैज्ञानिकों तथा विज्ञान राज्य मंत्री, प्रो. एम.जी.के. मेनन ने भी हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार पर बल दिया। डा. आयंगर ने स्पष्ट किया कि आज के परिपूर्ण मानव का निर्माण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के योगदान का ही फल है लेकिन मानव के लिये यह अत्यावश्यक है कि वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग देश विकास के लिये ही करे, त्रासदी के लिये नहीं।

कहां तक पहुँचा है खगोल विज्ञान?

राजेश कोछड़

खगोल विज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य के विकास के साथ ही जुड़ी है। जब उसने सीधा चलना सीखा तो उसकी दृष्टि आकाश की ओर गई। बुद्धि के विकास के साथ ही उसने अपने ज्ञान के आधार पर ब्रह्माण्डीय वातावरण को परखने और उस पर मनन करने का प्रयास किया।

समय की जानकारी रखने के व्यावहारिक उपयोग से खगोल विज्ञान को पहली प्रेरणा मिली। उस समय सूर्य और चन्द्रमा तथा समीप के पांचों ग्रह—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि, जिन्हें भू-केन्द्रीय ग्रहों के रूप में जाना जाता था, का अनुष्ठानों का समय निश्चित करने के लिये घड़ी के रूप में उपयोग किया जाता था। उस काल के स्मृति चिन्ह आज भी मौजूद हैं। बड़ा दिन यानि 25 दिसम्बर, ग्रिगोरियन कैलेण्डर में नये साल का दिन है। उसी तरह **मकर-संक्रान्ति** दक्षिणायन के अंत का प्रतीक है। वर्ष में आने वाली दोनों, **नव-रात्रियां** क्रमशः बसंत और शरद काल की याद दिलाती हैं। 12 वर्षों में आने वाला कुम्भ मेला बृहस्पति द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा पूरा करने पर लगता है।

खगोल विज्ञान के विकास का दूसरा कारण था स्वयं **मानव वृत्ति**। उस समय की मान्यताओं के अनुसार पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित थी और ग्रह उसकी परिक्रमा करते थे। नक्षत्र, दूर-दराज के अनजाने तथा अपरिवर्तनीय स्वर्ग लोकों के प्रतीक थे। अपने को पृथ्वी का स्वामी मानने वाले कबीलों के मुखियों का विश्वास था कि स्वर्ग से ईश्वर अपने दूतों द्वारा संदेश भेजेगा। अतः संकेतों को प्राप्त करने और समझने के लिये आकाश की ओर दृष्टि लगाये रखना उनके लिये आवश्यक था।

खगोल विज्ञान को गति देने के लिये प्रारंभिक प्रेरणा की आवश्यकता होती है, उसके बाद वह स्वयं ही गतिशील रहता है। प्रारंभिक काल में खगोल विज्ञान को तत्कालीन फलती-फूलती सभ्यताओं से संरक्षण मिला, जैसे बेबीलोनियन, यूनानी, भारतीय तथा अन्ततः अरबी। मध्य-कालीन युग में इसकी गति में शिथिलता आ गई और यह गर्त में चला गया।

सन् 1609 से हालैण्ड में दूरबीन के आकस्मिक आविष्कार के बाद खगोल विज्ञान का दूसरा चरण शुरू हुआ। इस दूरबीन का प्रयोग अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ वो भी जासूसी शीशों के रूप में। इसे सेना द्वारा सबसे पहले उपयोग में लाया गया। इसके लगभग एक वर्ष बाद इटली के एक विश्वविद्यालय के प्राध्यापक गैलीलियो गैलिली ने पहली दूरबीन बनायी और प्रदर्शन के बाद इसे सरकार को समर्पित कर दिया। इस विशेष प्रकार की दूरबीन से प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देने के भी दो घंटे पूर्व समुद्र में जहाजों को देखा जा सकता था। इस दूरबीन के महत्व को राज्य द्वारा स्वीकृत किये जाने के बाद गैलीलियो को अधिक वेतन पर जीवनपर्यन्त प्राध्यापक बना दिया गया। गैलीलियो ने खगोलीय दूरबीन का निर्माण किया, जिससे ब्रह्माण्ड के बारे में हमारे विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया।

गैलीलियो के लगभग चार शताब्दियों के बाद खगोल विज्ञान के इतिहास में पुनरावृत्ति हो रही है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका 2 मीटर व्यास वाली एक दूरबीन को अन्तरिक्ष में स्थापित करने की योजना बना रहा है। गैलीलियो के बाद प्रकाशीय खगोल विज्ञान के क्षेत्र में यह सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। ज्ञातव्य है कि इतनी व्यास की दूरबीन आज भी अन्तरिक्ष में मौजूद है, जो पृथ्वी की ओर केन्द्रित है तथा सेना के अधिकार में है। भारत इससे सबक सीख सकता है।

पृथ्वी से पृथ्वी पर मार करने वाली मिसाइल "अग्नि" की सफलता का महत्व अन्तरिक्ष राकेट "रोहिणी" से कहीं अधिक है क्योंकि जहां "अग्नि" प्रक्षेपास्त्र सेना की परिकल्पित आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है वहां दूसरे की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं है।

आधुनिक खगोल विज्ञान को भी प्रारम्भ में उपयोगितावादी उत्प्रेरण की आवश्यकता पड़ी जो उसे समुद्री यात्राओं की आवश्यकताओं से प्राप्त हुआ। किसी स्थान के अक्षांश और देशान्तर का पता लगाने के लिये आकाशीय पिण्डों की मदद लेनी होती है। समुद्री यात्रा के समय इसका महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि वहां कोई स्थल चिन्ह उपलब्ध नहीं होता और यदि किसी नाविक को अपने स्थान का अक्षांश और देशांतर मालूम न हो तो वह बीच समुद्र में भ्रमित रह जायेगा।

यूरोपवासियों द्वारा अपने छोटे व सीमित साधनों वाले महाद्वीप के छोड़ने के साथ ही व्यावहारिक खगोल विज्ञान और अधिक महत्वपूर्ण होता गया। अठारहवीं शताब्दी में भारत में ब्रिटेन की गतिविधियां बहुत बढ़ गई थी और उसको काफी लाभ प्राप्त होने लगा था। इससे नौकावाहन के लिये अच्छे यंत्र और घड़ियों के निर्माण को प्रोत्साहन मिला। बाद के वर्षों में घड़ी निर्माण कार्य में लगे कारीगरों द्वारा किये गये नये आविष्कार व सुधारों द्वारा औद्योगिक क्रांति लाने में मदद मिली। सेक्सटेन्ट, (समुद्र में सूर्य व क्षितिज के बीच का कोण नापने का यंत्र), दूरबीन, घड़ियों से लैस होकर अंग्रेज समुद्री जहाजों में यात्रा पर निकल पड़े। उनका ध्येय भारत की लड़खड़ाती स्थिति का लाभ

उठाना था। इस प्रक्रिया में ईस्ट इंडिया कंपनी का "वैश्य" परि
बदल कर "क्षत्रिय" संगठन में परिवर्तित हो गया।

उन्हें भारत पहुंचने तथा कंपनी के कब्जे में बढ़ती जा रही आ
भूमि के सर्वेक्षण के लिये खगोल-विज्ञान की आवश्यकता पड़ी। अ
अंग्रेजों के साथ-साथ ही आधुनिक खगोल विज्ञान भा
आया—राज्य के साधन के रूप में। अठारहवीं शताब्दी के अन्त
कंपनी ने मद्रास में एक वेधशाला स्थापित की। इसका कार्य भारत
"ग्रीनविच" की भांति कंपनी के या अन्य जहाजों की घड़ियां
मिलाने तथा अन्य उपकरणों की मरम्मत करने में सहयोग देना था
कंपनी के खगोलविद् एवं समुद्रीय-भौगोलिक सर्वेक्षक को प्रति मा

परावर्तक दूरदर्शी

192 पेगोडा वेतन मिलता था। एक पेगोडा लगभग 3.50 रु. के बराबर होता था। जलाशयों की मरम्मत और जल-मार्गों की देख रेख का अतिरिक्त कार्य भी सौंपे जाने पर उसे एक वैज्ञानिक के वेतन के दुगने से अधिक यानि 400 पेगोडा अलग से पारिश्रमिक दिया गया। निसंदेह, साम्राज्य निर्माण के उन प्रारंभिक दिनों में राजस्व की महत्ता विज्ञान से अधिक थी।

टीपू सुल्तान के पतन के बाद काफी परिवर्तन हुये। कंपनी का अधिकार क्षेत्र पूर्वी समुद्र तट से पश्चिमी तट तक फैल गया तथा ब्रिटेन और उससे पहले फ्रांस में किये गये सर्वेक्षणों के अनुरूप यहां भूमि का सर्वेक्षण तुरन्त आरंभ किया गया। बाद में इसे "भारत का बृहद त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण" के नाम से पूरे उप-महाद्वीप में लागू कर दिया गया।

सर्वेक्षण के विकास के साथ ही अंग्रेजों की भारत में स्थिति मजबूत होती चली गई। इंग्लैंड में ही खरीदे गये पुराने यंत्रों को भारत भेजकर सर्वेक्षण का कार्य शुरू हुआ। इन थोड़े से यंत्रों की टूट-फूट होने पर उन्हें सुधारने स्वदेश भेजना मुश्किल था क्योंकि आशान्तरीप के रास्ते से भेजने से बहुत अधिक समय लगता, और फिर जहाज डूब भी सकते थे। अतः इन उपकरणों को कंपनी की कार्यशालाओं में, जहां हथियार व बंदूकें ठीक होती थीं, स्वयं सर्वेक्षकों द्वारा सुधारने की व्यवस्था की गई। जल्दी ही इंग्लैंड से एक प्रशिक्षित कारीगर बुलाया गया जिसका काम यंत्रों की देखभाल करना तथा पुराने बेकार यंत्रों से नये यंत्र बनाना था। प्रशिक्षित कारीगर सर्वेक्षकों के साथ उपकरणों की देखभाल के लिये दौरे पर जाते थे।

शीघ्र ही यह महसूस किया जाने लगा कि उपकरणों की मरम्मत ही काफी नहीं है बल्कि उनके निर्माण में भी नियंत्रण की जरूरत है। एक भूतपूर्व एफ.आर.एस. सर्वेक्षण अधिकारी की कुशल देखरेख में इंग्लैंड में एक जांच वेधशाला स्थापित की गई। उसने नये उपकरणों के नमूने बनाये तथा योग्यता के आधार पर, बिना टेंडरों की परवाह किये, निश्चित किया कि इंग्लैंड या उससे बाहर उन्हें कौन बनायेगा। निर्माण के समय उनका निरीक्षण करने और भारत में सर्वेक्षण व अन्य सरकारी विभागों द्वारा उपयोग हेतु भेजे जाने से पूर्व उनकी अंतिम जांच करने की जिम्मेदारी भी उसी अधिकारी की थी। सन् 1890 में लगभग 30,000 पौंड मूल्य के करीब 10,000 उपकरणों का परीक्षण किया गया।

त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण का कार्य 100 वर्ष से अधिक समय तक चला। तब तक पूरे उप महाद्वीप की माप कर ली गई। यही नहीं भारत की सीमाओं से बाहर के कुछ प्रदेशों का सर्वेक्षण भी गुप्त रूप से किया गया। हिमालय की सबसे ऊंची चोटी का पता लगाना इस सर्वेक्षण की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। सर्वेक्षण के रिकार्ड में इसे के-15 के नाम से दर्शाया गया है। सर्वेक्षण का कार्य सर जार्ज एवरेस्ट (1790-1866) की देख-रेख में हुआ। उन्हीं के नाम पर इसे माउंट एवरेस्ट का नाम दिया गया।

सर्वेक्षण में लगी समस्त धन व जन शक्ति की उपयुक्तता इसके अत्यधिक प्रशासनिक व सामरिक महत्व के कारण थी। सर्वेक्षण ने एक आश्चर्यजनक वैज्ञानिक नियम को भी जन्म दिया : पर्वत पृथ्वी के नीचे के कम घनत्व वाले पदार्थों को संतुलित करते हैं, जबकि

क्रोनोग्राफ
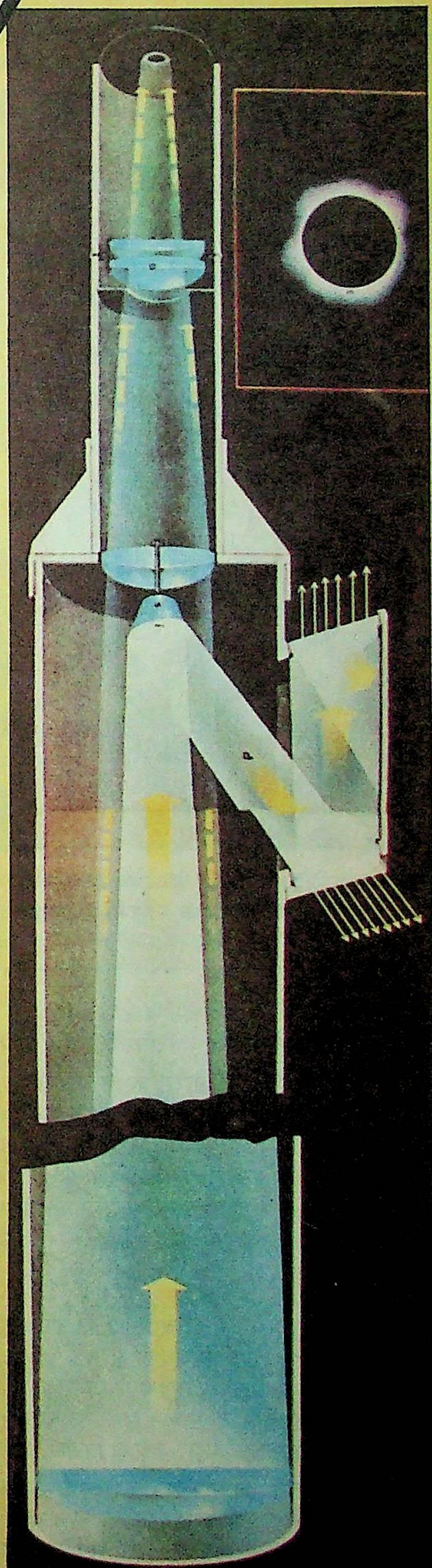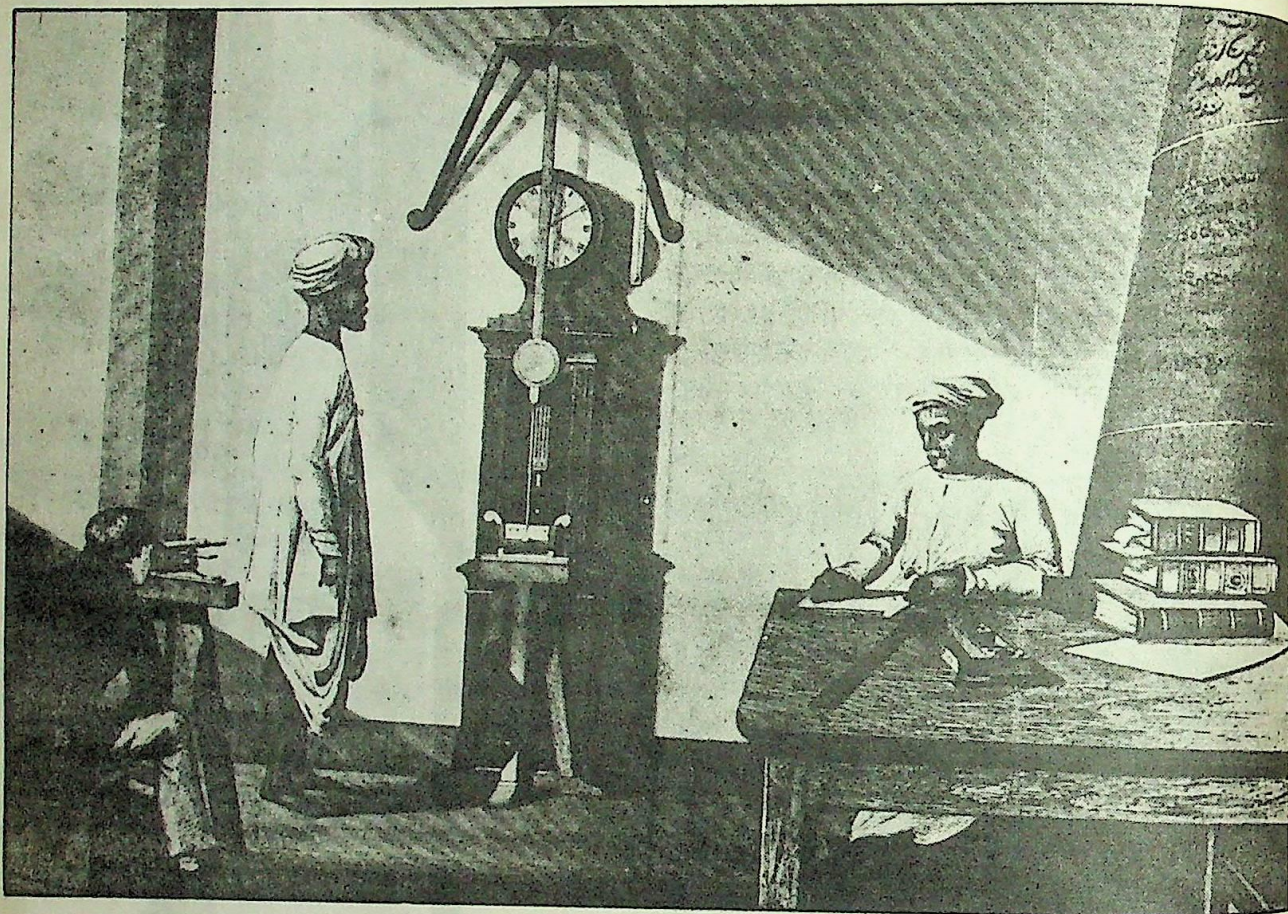
मद्रास में 1821 में गुरुत्व के कारण उत्पन्न त्वरण मान का निर्धारण करते हुये प्रेक्षक—जान गोल्डिंग हैम (बीच में) और उनके दो सहायक—तिरुवेंकटाचारी (बायें) तथा श्रीनिवासाचारी (दायें)। चित्र में एकदम दायें दिखायी दे रहा यह स्तंभ मद्रास में आज भी देखा जा सकता है।

समुद्र अपने नीचे मौजूद अधिक घनत्व वाले पदार्थों को। वर्ष 1877 में रायल सोसायटी के तीन फैलो सर्वेक्षकों के रूप में कार्य कर रहे थे।

व्यावहारिक खगोलकी ने, भारत के त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण के रूप में, राज्य की सबसे अच्छी सेवा की तथा सरकार को भी इसकी पूरी मदद करने में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। हां, शुद्ध खगोलकी की बात और थी क्योंकि इसे मिला सहयोग अवांछित और कम था। शायद ईस्ट इंडिया कंपनी को इस पर धन लगाना उचित नहीं लगा क्योंकि कंपनी समझती थी कि शुद्ध खगोलकी की देखभाल स्वयं इंग्लैंडवासी कर लेंगे।

वस्तुतः कंपनी भारत में अपने वैज्ञानिकों पर आश्रित नहीं थी जो अपने आपको इस नये देश में अग्रणी मानते थे। वेधशाला की स्थापना पर कंपनी के खगोलविद् ने दंभगर्भित भाषा में लिखा "अब से एक हजार वर्ष बाद लोगों को मालूम होगा कि अंग्रेजों की उदारता के कारण ही सबसे पहले यहां गणित-संबंधी विज्ञानों की नींव पड़ी।"

इस 'शानदार' घोषणा को मुश्किल से 16 वर्ष भी न बीते होंगे कि कंपनी ने धनाभाव के कारण वेधशाला को बन्द करने का विचार बनाया। त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण का कार्य बड़े संतोषप्रद तरीके से चल रहा था, परिणामस्वरूप वेधशाला सही अर्थ में बेकार लगने लगी। विडम्बना यह है कि खगोलकी साधारण विज्ञान तो हैं नहीं, यह इस मामले में बेजोड़ है कि कोई देश कितना ही धनाढ्य या शक्तिशाली क्यों न हो, परन्तु खगोल विज्ञान से परिपूर्ण नहीं हो सकता। पृथ्वी पर रहने वाला हर व्यक्ति केवल अपने हिस्से का आधा आकाश ही देख सकता है। आकाश का जो भाग मद्रास से दिखाई देता है, आवश्यक नहीं कि वह ग्रीनविच से भी दिखाई दे।

जैसे-जैसे कंपनी की व्यावहारिक खगोल विज्ञान की आवश्यकता बढ़ती गई (जो उसकी सम्पन्नता का प्रतीक था), वैसे ही शुद्ध खगोल विज्ञान को मदद करने का दबाव भी बढ़ता गया। फिर भी शुद्ध विज्ञान को सहयोग देने के तर्क समयानुसार बदलते रहे। 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक में शुद्ध खगोलकी का समर्थन याचना-पूर्ण था—समुद्री यात्रा तथा भूगोल के पुनश्च के रूप में। साठ वर्ष बाद सरकार ने पुनः, आर्थिक कारणों से नहीं बल्कि ब्रिटिश खगोलकी के धर्मगुरु, राज-खगोलविद् के कहने पर वेधशाला को बन्द करना चाहा। इस पर मद्रास में तीखी प्रतिक्रिया हुई क्योंकि वहां के वैज्ञानिकों को विश्वास था कि शासक वर्ग इस मामले में व्यापक दृष्टिकोण अपनायेगा तथा इस देश की जरूरतों को समझेगा।

आमुख कथा
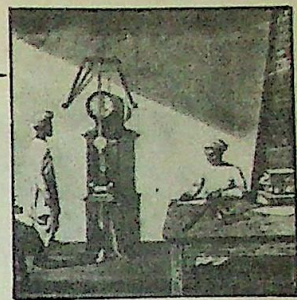
अंग्रेज प्रवासियों से इस देश को खगोलकी के लिये आर्थिक सहायता के रूप में केवल अल्प राशि ही मिलती थी। किसी भी समय वेधशाला में दो से अधिक बड़े उपकरण नहीं रहे तथा शुद्ध खगोलकीय वेधशाला के रूप में 70 वर्षों के कार्यकाल में उसे कुल 5 नये उपकरण उपलब्ध हुये। फिर भी इस वेधशाला ने कदाचित विज्ञान के क्षेत्र में कई अच्छे योगदान दिये। इसने 11000 नक्षत्रों की सही स्थिति बताने वाली एक विस्तृत सारणी तैयार की जिसे राज-खगोलविद् ने "आधुनिक युग की सबसे बड़ी सारणी" की संज्ञा दी। मद्रास स्थित वेधशाला से ही सबसे पहले यह तथ्य उजागर हुआ कि शनि ग्रह का पिण्ड उसके वृतों के बीच से देखा जा सकता है। एशिया महाद्वीप में एक छोटे ग्रह की सबसे पहली खोज का श्रेय भी इसी शाला को जाता है।

वेधशाला के जीवन में 1860 का वर्ष सबसे महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसके अस्तित्व को सुरक्षित रखने में जिस तथ्य ने सबसे अधिक सहयोग दिया वह था मूल्यवान दूरबीनों की, सर्वेक्षण यंत्रों की देखभाल करने बाहर से आये कुशल कारीगर द्वारा, मरम्मत।

विज्ञान की नई शाखा—सौर भौतिकी—के उद्भव के साथ ही भारतीय खगोल विज्ञान का पुन: भाग्योदय हुआ क्योंकि इसके लिये वांछित सामग्री—सूर्य का प्रकाश—इस देश में अत्यधिक मात्रा में सुलभ है। उस समय ऐसी मान्यता थी कि सूर्य की सतह के अध्ययन से पृथ्वी के मौसमों के बारे में जाना जा सकता है। मद्रास प्रेसीडेंसी में सन् 1880 में पड़े भयंकर अकाल के कारण सौर अध्ययनों की अधिक आवश्यकता महसूस हुई। इस कार्य के लिये 20 वीं शताब्दी के आरंभ में कोडाइकेनाल में एक सौर-भौतिकी वेधशाला स्थापित की गई। परन्तु कोडाईकेनाल में हुये कार्य का साधारण समस्याओं पर, जिन्हें पहले बहुत जरूरी समझा जाता था, कोई प्रभाव नहीं हुआ।

जैसा कि अनुमान था, ब्रिटिश भारत में खगोलकीय अध्ययनों में भारतीयों की केवल बाहरी भूमिका रही। उनसे सस्ते श्रमिक लाने के लिये कहा जाता था जिसे वे बखूबी निभाते। परन्तु इन श्रमिकों की भूमिका उस समय सिद्ध हुई जब उन्हें भेष बदल कर अफगानिस्तान, तिब्बत तथा चीन के क्षेत्रों में सर्वेक्षण के लिये भेजा गया, क्योंकि अंग्रेज सर्वेक्षकों को वहां जान का खतरा था। अंग्रेजों के निश्चित उपेक्षापूर्ण व्यवहार के अनुरूप इन गुप्त सर्वेक्षकों को केवल माप लेने का ही प्रशिक्षण दिया गया था। आंकड़ों के विश्लेषण की विधि उन्हें नहीं बताई जाती थी। उनको शक की नजर से देखा जाता था। अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होने पर उन्हें वैज्ञानिक स्वर्ण-पदकों, जागीरों तथा खिताबों से सम्मानित तो किया जाता था, अन्यथा उनके नाम का जिक्र भी नहीं होता था। ऐसे कुछ भारतीयों के नामों का वर्णन यहां दिया जा रहा है। (क्या उनके वंशजों की खोज की जा सकती है?) कुमायूं की पहाड़ियों में स्थित मिलाम ग्राम के निवासी नैनसिंह ने जुलाई 1874 में लेह से तिब्बत में प्रवेश किया और उस रास्ते से मार्च 1875 में असम पहुंचा। उसके चचेरे भाई किशन सिंह के कारनामे उससे भी अधिक रोमांचक हैं। वह दार्जिलिंग से सन 1878 में पैदल चलकर मंगोलिया तक पहुंचा और वहां से सन् 1882 में लौटा।

यद्यपि मार्ग-सर्वेक्षकों की प्रशंसा उनके जातिगत आधार पर होती थी, परन्तु सैयद मीर मोहसिन हुसैन का योगदान इससे भिन्न था। मीर मोहसिन अर्काट निवासी था। उसे अंग्रेज सर्वेक्षकों ने ढूंढा और इस विधा में शिक्षित किया। बाद में वह जार्ज एवरेस्ट का प्रमुख सहयोगी हो गया तथा सरकारी उपकरण विभाग का अध्यक्ष बना। यद्यपि अंग्रेज सरकार ने एक हिन्दुस्तानी को उसके अंग्रेज उत्तराधिकारी का पद देने पर आपत्ति की, परन्तु जार्ज एवरेस्ट के दृढ़ आग्रह के आगे सरकार को झुकना पड़ा।

जहां कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से सरकार की वैज्ञानिक कार्यों में मदद कर उन्नति कर रहे थे, वहीं मद्रास की वेधशाला ने सबसे पहला भारतीय खगोलविद् तैयार किया जिसने आधुनिक खगोलविज्ञान को भारतीय लोगों में फैलाया। वह था चिन्तामणि रघुनाथचारी। वह लड़का वेधशाला में दैनिक दिहाड़ी पर कार्य करता था। तरक्की करते हुये वह पहला सहायक बना। उसने एक परिवर्ती नक्षत्र का पता लगाया और रायल एस्ट्रोनोमिकल सोसायटी ने उसे अपना सदस्य बनाया। लोगों की जानकारी के लिये उसने भाषण दिये तथा भारतीय भाषाओं में पुस्तकें लिखीं।

भारत में आधुनिक खगोल विज्ञान के अंग्रेजी राज्य को वैज्ञानिक योगदान के रूप में विकसित होने, तथा उस पर अंग्रेजों का एकमात्र अधिकार होने के बावजूद भी यह विज्ञान इन सीमाओं से बाहर फैला। आधुनिक खगोल विज्ञान पर बंगाली में लिखी गई एक पुस्तक का मैट्रिक पास राधा गोविंद चन्द्र नामक एक व्यक्ति पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने अवलोकनात्मक खगोल विज्ञान का गहन अध्ययन कर अपना एक स्थान बनाया।

सृजन-मेधावी श्रीनिवास रामानुजन (1887-1920) का यद्यपि इस संदर्भ में सीधा संबंध नहीं है फिर भी वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें केवल हाई स्कूल तक की गणित का ही ज्ञान था और उसी के आधार पर उन्होंने गणित को इतना आगे बढ़ाया। उस समय के विद्वानों ने उनका परिचय इंग्लैंड के विशेषज्ञों से करवाया। यदि रामानुजन 100 वर्ष पहले पैदा हुये होते तो उन्होंने क्या चमत्कार दिखाये होते, कहा नहीं जा सकता। इसी प्रकार सुब्रमण्यम चन्द्रशेखर (जन्मतिथि : 1910) को, जिन्हें बाद में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया, सरकार की छात्रवृत्ति पर अध्ययन के लिये इंग्लैंड गये, परन्तु उन्हें न तो इंग्लैंड में और न भारत में ही कोई नौकरी मिली।

अंग्रेजों द्वारा भारत में स्थापित किये गये खगोलकीय संस्थानों का एक खास व्यावहारिक उद्देश्य था। केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही सरकार ने खगोल विज्ञान को, बिना कोई औचित्य निर्धारण की मांग के, सहयोग दिया है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इतिहास साक्षी है कि जूझती हुई संस्कृतियां खगोल विज्ञान का केवल लाभ के लिये उपयोग करती रहीं, जबकि आत्मविश्वासी संस्कृतियों ने इसे सुख और गर्व के लिये उपयोग किया।

(प्रस्तुति : श्री चन्द्रभान शर्मा, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12)
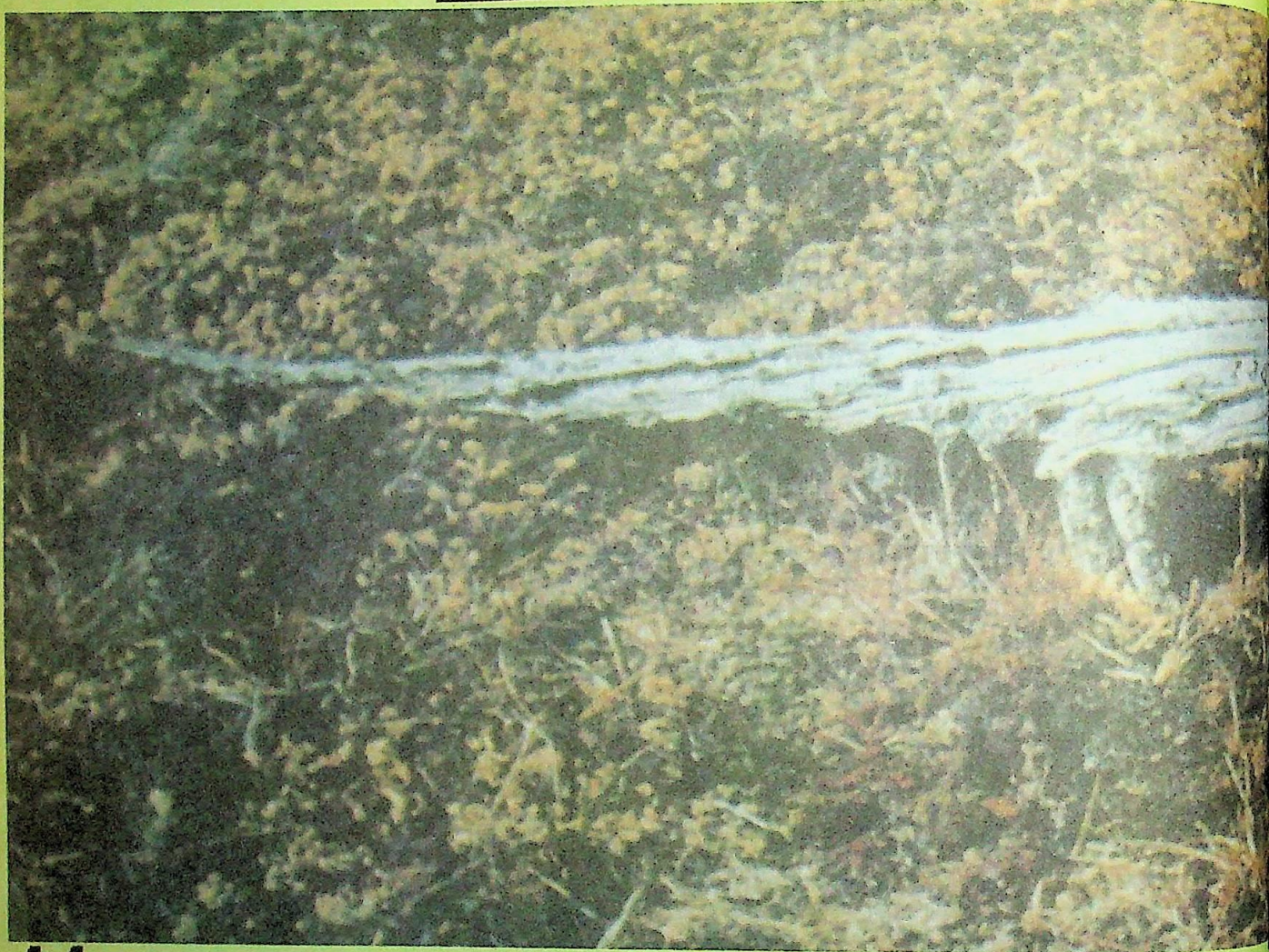
"यह आज आपने कैसा चित्र दिखा दिया ?"

"आप ही सोचिये न कि आपको यह किसका चित्र दिखायी दे रहा है ?"

"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोई घड़ियाल दलदल में फंसा हुआ पड़ा है। और कल्पना करूं तो मुझे ऐसा आभास होता है जैसे दो थकी हुई आंखें अपने अतीत को निहार रही हों।"

"हां ! सच तो यह ही है कि यह चित्र एक अतीत को ही दर्शाता है। एक ऐसा अतीत जो कई वर्षों से जमीन पर धराशायी पड़ा है तथा जिसने अपने कई साथियों को आते-जाते देखा है। इसने गर्मी से सर्दी व सर्दी से गर्मी अनेक मौसमी बहारों का लुत्फ भी उठाया है। लेकिन इन्हीं मौसमों की चपेट में आने से इसका अस्तित्व अब समाप्त हो चुका है और इसका केवल अवशेष मात्र ही रह गया है।"

"जब यह अवशेष जंगल में पड़ा है तो अवश्य ही किसी जानवर या पेड़-पौधे का होगा।"

"हां, बिल्कुल ठीक, यह घड़ियाल का नहीं बल्कि एक पेड़ के तने का ही अवशेष है जिसे सर्ज पेयेट और उनके सहयोगियों ने उत्तरी कनाडा से प्राप्त किया। इसकी संरचना के आधार पर ज्ञात हुआ है कि यह मध्ययुगीन स्प्रूस का अवशेष है। स्प्रूस, लम्बे-लम्बे सदाहरित वृक्षों का वंश है, जो उत्तरी गोलार्ध से शीतोष्ण, तथा ठंडे प्रदेशों में उत्तरी ध्रुव से लेकर गर्म शीतोष्ण प्रदेशों की पहाड़ियों में भी पाया जाता है। भारत में इसकी दो जंगली जातियां पायी जाती हैं और दो विदेशी जातियों को

पश्चिमी हिमालय में प्रवर्तित किया जा रहा है। स्प्रूस वृक्ष पाइनेसी या चीड़ कुल में आता है। परन्तु ये चीड़ वृक्ष की अपेक्षा अधिक ऊंचाई पर पाये जाते हैं। इसके तने, पत्तियां तथा शंकु का आकार, चीड़ वृक्ष से भिन्न होता है। स्प्रूस, हिमालय की पर्वत श्रृंखला में 2000-3500मी. की ऊंचाई पर अथवा कुछ स्थानों पर लगभग 1500मी. की ऊंचाई पर भी पाये जाते हैं। सघन वनों में इस वृक्ष की अधिकतम ऊंचाई 60मी. और अधिकतम व्यास 7मी. तक होता है,किन्तु सामान्य वृक्ष का आकार इससे काफी छोटा होता है। कभी-कभी इसके तने 21मी. की ऊंचाई तक शाखा विहीन होते हैं लेकिन प्रायः 9मी. से ऊपर उनमें शाखायें निकल आती हैं। शाखायें तने के चारों ओर चक्र रूप में लगी होती हैं। पत्तियां गहरी हरी, प्ररोहों के चारों ओर फैली हुई 4 पार्श्वीय, अन्दर की तरफ मुड़ी हुई, सुई के आकार की, खूंटी-सदृश पर्णाधार वाली होती है। इन वृक्षों का प्रजनन शंकु द्वारा होता है। इन शंकुओं में प्रजनन इकाइयां उपस्थित होती हैं। स्प्रूस वृक्ष से प्राप्त होने वाला काष्ठ हल्का तथा कोमल होता है। यह भवन-निर्माण में साज-सज्जा,हल्के पैकिंग बाक्स, साधारण फर्नीचर और दियासलाई की डिबिया आदि बनाने में उपयोग किया जाता है। इसकी कुछ प्रजातियों का काष्ठ अनुनादी होता है जो वाद्य यन्त्रों जैसे प्यानो तथा वायलिन बनाने में काम आता है। कागज तथा वस्त्र बनाने के लिये इसकी लकड़ी की लुगदी भी बनाई जाती है तथा इसका काष्ठ कृत्रिम रबड़ के उत्पादन के लिये भी इस्तेमाल में लाया जाता है। स्प्रूस विशेष त्यौहारों पर सजावटी कार्यों के लिये भी महत्वपूर्ण है।

इतने उपयोगी वृक्षों का संरक्षण आज अत्यन्त आवश्यक हो गया है। अन्धाधुन्ध वनों के कटान तथा वातावरण में लगातार बढ़ रही ग्रीनहाउस गैसों के कारण तापमान में हो रही वृद्धि का इन वृक्षों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। (यह इस चित्र से स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो रहा है।) अनुमान लगाने के लिये सर्ज पेयेट और उनके सहयोगियों ने लगभग 1000 वर्ष पूर्व के वातावरण जिसमें सर्दी (1305-1435 ई.), गर्मी (1435-1570 ई.) और कुछ बर्फीला (1570-1850ई.) समय रहा है तथा उस समय के मिले अवशेषों (जिनमें से उपरोक्त अवशेष एक है) के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि गर्मी के पश्चात कुछ बर्फीले (1435-1570) मौसम में स्प्रूस काफी फले फूले हैं तथा इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये यह आशा की जा सकती है कि आने वाले वर्षों में भी स्प्रूस इसी प्रकार वृद्धि करेगा। लेकिन यह कह सकना अभी कठिन है, क्योंकि आने वाले वर्षों में इन वृक्षों का क्या स्वरूप होगा यह जानने के लिये ग्रीनहाऊस गैसों की मात्रा में लगातार हो रही बढ़ोत्तरी का आकलन करना बहुत जरूरी है और इससे अधिक जरूरी है वनों के अंधाधुंध कटान पर अंकुश।

[डा. एम.के. सिंघल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]

क्या हैं ए एस एल वी-डी 2 की असफलता के रहस्य?

प्रमोचन मंच पर ए एस एल वी डी-2

डा. एस.सी. गुप्ता से भेंटवार्ता

डा. एस.सी. गुप्ता, विक्रम साराभाई स्पेस सैंटर के निदेशक हैं। कुछ समय पहले भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के योजनाबद्ध लांचिंग राकेट के क्रमिक विकास हेतु ए.एस.एल.वी.-डी 2 नामक राकेट श्री हरिकोटा के शार केन्द्र से छोड़ा गया जो अपने लक्ष्य में असफल रहा। ए.एस.एल. वी.- डी 2 मिशन की असफलता के कारणों का पता लगाने के लिये डा. एस.सी. गुप्ता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसे फेल्योर एनालिसिस कमेटी (एफ.ए.सी.) नाम दिया गया। इस समिति ने जब अपना कार्य पूरा कर लिया तो काउंट डाउन नामक पत्रिका ने डा. एस.सी. गुप्ता से इस मिशन की असफलता के रहस्यों के बारे में कुछ प्रश्न किये। उसी भेंटवार्ता के मुख्य अंश यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम में ए.एस.एल.वी. जैसे राकेटों का क्या महत्व है?

दूर संचार और अंतरिक्ष संचार प्रणाली उपग्रहों द्वारा उपयोग करने के लिये भारत की मुख्य अंतरिक्ष संस्था भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन या 'इसरो' ने इन उपग्रहों को अंतरिक्ष में भेजने के लिये ए.एस.एल.वी. जैसे राकेटों के विकास का कार्यभार अपने ऊपर लिया हुआ है। इसरो कार्यक्रम के दो मुख्य लक्ष्य हैं, पहला 1000
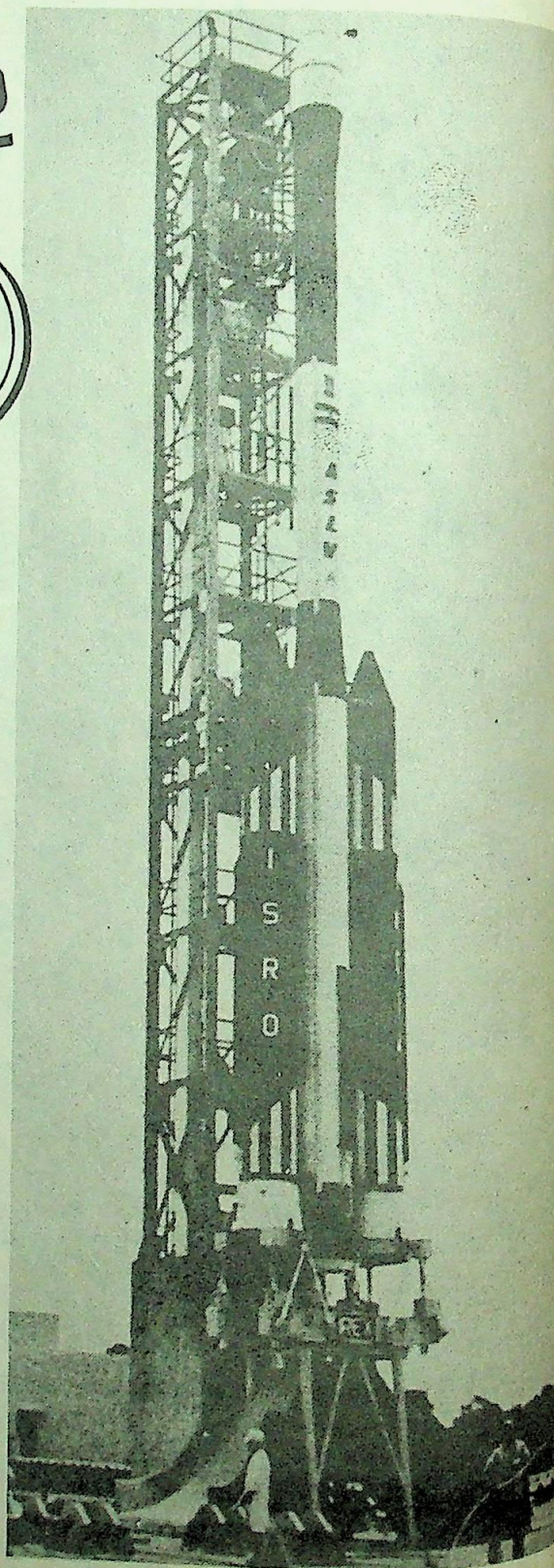
किग्रा. भार वाले रिमोट संवेदी उपग्रहों को 900 किमी. दूर ध्रुवीय सूर्य-समक्रमिक परिक्रमा पथ पर भेजने के लिये प्रमोचन राकेटों का निर्माण और दूसरा 2000 किग्रा. भार वाले तुल्यकाली उपग्रह (प्रमोचित्रों जो दूर संचार और मौसम विज्ञान सम्बन्धी जानकारी के लिये उपयोगी होते हैं) को 36000 किमी. दूरी पर तुल्यकाली परिवर्तनीय कक्ष पर भेजना। पहले और दूसरे लक्ष्य की पूर्ति करने वाले राकेटों को क्रमशः पी.एस.एल.वी. और जी.एस.एल.वी. नाम दिया गया है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इसरो ने एक क्रमिक विकास की योजना तैयार की है जिसके अनुसार पहले छोटे स्तर पर तकनीकी विकास से प्रमोचन राकेटों का निर्माण किया गया और इन तकनीकों को सर्वप्रथम 1980 में एस.एल.वी.-3 राकेट के निर्माण में प्रयुक्त किया गया। धीरे-धीरे इस कार्यक्रम को ए.एस.एल.वी.-3 के स्तर तक विकसित कर लिया गया। इस अवस्था में पहुंच कर पी.एस.एल.वी. और जी.एस.एल.वी. के निर्माण से पहले इन राकेटों में प्रयुक्त सूक्ष्म से सूक्ष्म तकनीकों का प्रमोचन राकेटों पर परीक्षण करना आवश्यक था। इन विकसित राकेटों पर जिन तकनीकी उपलब्धियों का परीक्षण किया गया वे थीं, स्ट्रेपआन तकनीक, केवलर मोटर (धारियों वाली नोजल सहित) ऊष्मा परिरक्षक, उड्डयन संबंधी तकनीक, क्लोज्ड-लूप-नियंत्रण, उर्ध्वाधर ढांचा सम्बन्धी तकनीक और एस-बैंड टैलीमीट्री।

इस प्रकार ए.एस.एल.वी. भारी राकेटों के निर्माण का एक विकासीय और माध्यमिक कदम कहा जा सकता है। हांलाकि हमारे दो ए.एस.एल.वी. मिशन असफल रहे हैं लेकिन हमने जिन तकनीकों का विकास किया था, उनकी परीक्षणात्मक पुष्टि हो गई और इससे भविष्य में उड़ानें भरने वाले राकेटों में जो परिवर्तन किये जायेंगे उनके लिये एक सुदृढ़ आधार तैयार हो गया है।

क्या आप एक के बाद एक होने वाली उन घटनाओं को संक्षेप में बताना चाहेंगे जिनके कारण ए.एस.एल.वी.-डी 2 की प्रक्षेपण उड़ान असफल हुई?

जब हम इसके प्रक्षेपण के लिये उल्टी गिनती गिन रहे थे तब हमें इसके मिशन की सफलता के बार में कोई संदेह नहीं था क्योंकि ए.एस.एल.वी.-डी 1 की असफलता के बाद उसकी तकनीकी खामियों का हमने गहन अध्ययन कर उन सब खामियों को पूरा कर लिया था, जिनके कारण ए.एस.एल.वी.-डी 1 की उड़ान असफल रही थी। इसी विश्वास पर हमने 13 जुलाई 1988 को ए.एस.एल.वी.-डी 2 का 14:48 घण्टे पर प्रक्षेपण किया। शुरू-शुरू में तो ए एस ओ- 1 और ए एस ओ- 2 मोटरें ठीक काम करती रही थीं और फिर 48.5 सेकंड में ए एस 1 मोटर ने कार्यभार संभाल लिया लेकिन उसी बीच पथ विचलन त्रुटि बढ़ती चली गई जिससे ए एस 1 मोटर की जांच नहीं हो सकी। थोड़ी देर बाद इसका ऊपरी हिस्सा टूट गया, जिससे राकेट के ऊपरी और निचले हिस्सों का विद्युत सम्बन्ध टूट गया। इस अवस्था तक पहुंचने में लगभग 50.5 सेकंड लगे। हमारी गणनाओं के अनुसार एस.आर.ओ.एस.एस- 11 उपग्रह को 52 सेकंड बाद राकेट से अलग हो जाना चाहिये था लेकिन ऐसा नहीं हुआ हालांकि ए.एस.ओ.- 1 और ए एस ओ- 2 मोटरों में आग लगने के बावजूद भी ए एस 1 मोटर अपना काम यथावत करती रही। इसी प्रकार एस.आर.ओ. एस.एस.- 11 उपग्रह जो समय से पहले ही अर्थात् चौथी अवस्था के राकेट के काम करने से पहले ही अलग हो गया था, बंगाल की खाड़ी
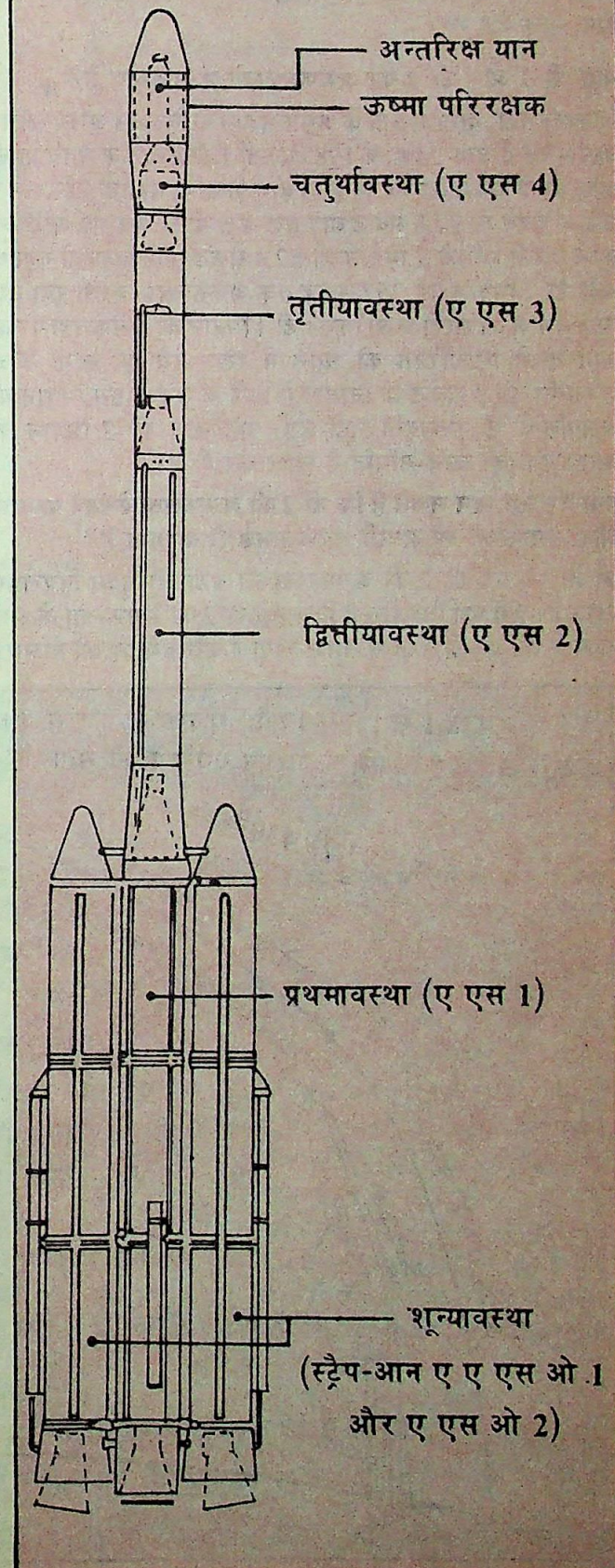
में गिरने से पहले तक अपना कार्य ठीक प्रकार से कर रहा था। प्रमोचन से लेकर ए.एस.एल.वी.-डी 2 बंगाल की खाड़ी में गिरने तक कुल 257 सेकंड का समय लगा। इस के गिरने से पहले तक निर्देश देने वाले उपकरण प्रोग्राम किये गये सामयिक संकेत ठीक-ठीक देते रहे।

क्या डी 1 और डी 2 की असफलताओं में समानता है?

बिल्कुल नहीं, दोनों राकेटों के असफल होने के बिल्कुल अलग-अलग कारण रहे हैं जहां 24 मार्च 1987 को डी 1 की उड़ान के समय पहली अवस्था के राकेट का ज्वलन ही न होने पाया था वहां डी 2 मिशन के उड़ान भरने के 97.8 सेकंड बाद तक कुछ मोटरें जल गई और कुछ काम करती रहीं। डी 1 मिशन जो 52.4 सेकंड में ही खत्म हो गया था वहीं डी 2 मिशन पूरे 257 सेकंड तक अपना कार्य करता रहा और फिर बंगाल की खाड़ी में जा गिरा। डी 1 मिशन की असफलता पर की जाने वाली सिफारिशों को ध्यान में रखते हुये हम लोगों ने जो परिवर्तन डी 2 राकेट के निर्माण में किये थे उनकी इस मिशन की असफलता में पुनरावृति नहीं हुई। यह बात डी 2 मिशन की असफलता की जांच समिति ने स्पष्ट कर दी है।

क्या हम यह मान सकते हैं कि डी 2 की असफलता के सारे पहलुओं और समस्याओं को अच्छी तरह समझ लिया गया है?

जी हां, हमने डी 2 की असफलता का बड़ा-ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमने डी 2 की असफलता के सभी पहलुओं को अच्छी तरह से समझ लिया है और हमें यह भी मालूम है कि उसमें क्या-क्या संशोधन करने हैं। एफ ए सी और ई आर पी दोनों समितियों ने भी डी 2 मिशन के उड़ान भरने के 50 सेकंड बाद आने वाली समस्याओं का बड़ा ही आलोचनात्मक विश्लेषण किया है और समितियों द्वारा जो सिफारिशें भविष्य के विकास कार्यक्रम के लिये की गई हैं, उन पर हम जल्दी ही अमल करने जा रहे हैं।

भविष्य में उड़ान भरने वाले ए एस एल वी - डी 3 में आप कौन-कौन से मुख्य परिवर्तन करने जा रहे हैं?

दोनों जांच समितियों की सिफारिशों के आधार पर तथा निरन्तर अतिरिक्त अध्ययनों के बाद हम एक ऐसा राकेट बनाने की कोशिश कर रहे हैं जो अपने मिशन में सफल हो सके। इसरो के अध्यक्ष के नेतृत्व में ई आर पी, इसरो तथा कुछ अन्य विशेषज्ञों ने इसके हार्डवेयर और साफ्टवेयर प्रोग्रामों में संशोधन करने का सुझाव दिया है, जिनको लागू करने का आखिरी निर्णय भी ले लिया गया है। इस विकास कार्य की परियोजना के तहत, वैद्युत, यांत्रिक, नियंत्रण-तंत्र संघटन और परीक्षण मिशन का कार्यक्रम शुरू कर दिया गया है। राकेट की उड़ान के समय तेज आवेग वाली हवाओं से उसे बचाये रखने के लिये नियंत्रण-तंत्र में विशेष परिवर्तन किये गये हैं। इस बार ए एस 1 मोटर को पहले से ही निश्चित समय पर कार्य करने के स्थान पर एक ऐसे तंत्र से जोड़ा जायेगा जिसको आर टी डी (रियल टाइम डिसीजन) पद्धति कहते हैं। राकेट के ढांचे को और सरल करने के लिये राकेट की तीसरी और चौथी अवस्थाओं के बीच की प्रचक्रण बेयरिंग को हटा दिया गया है।
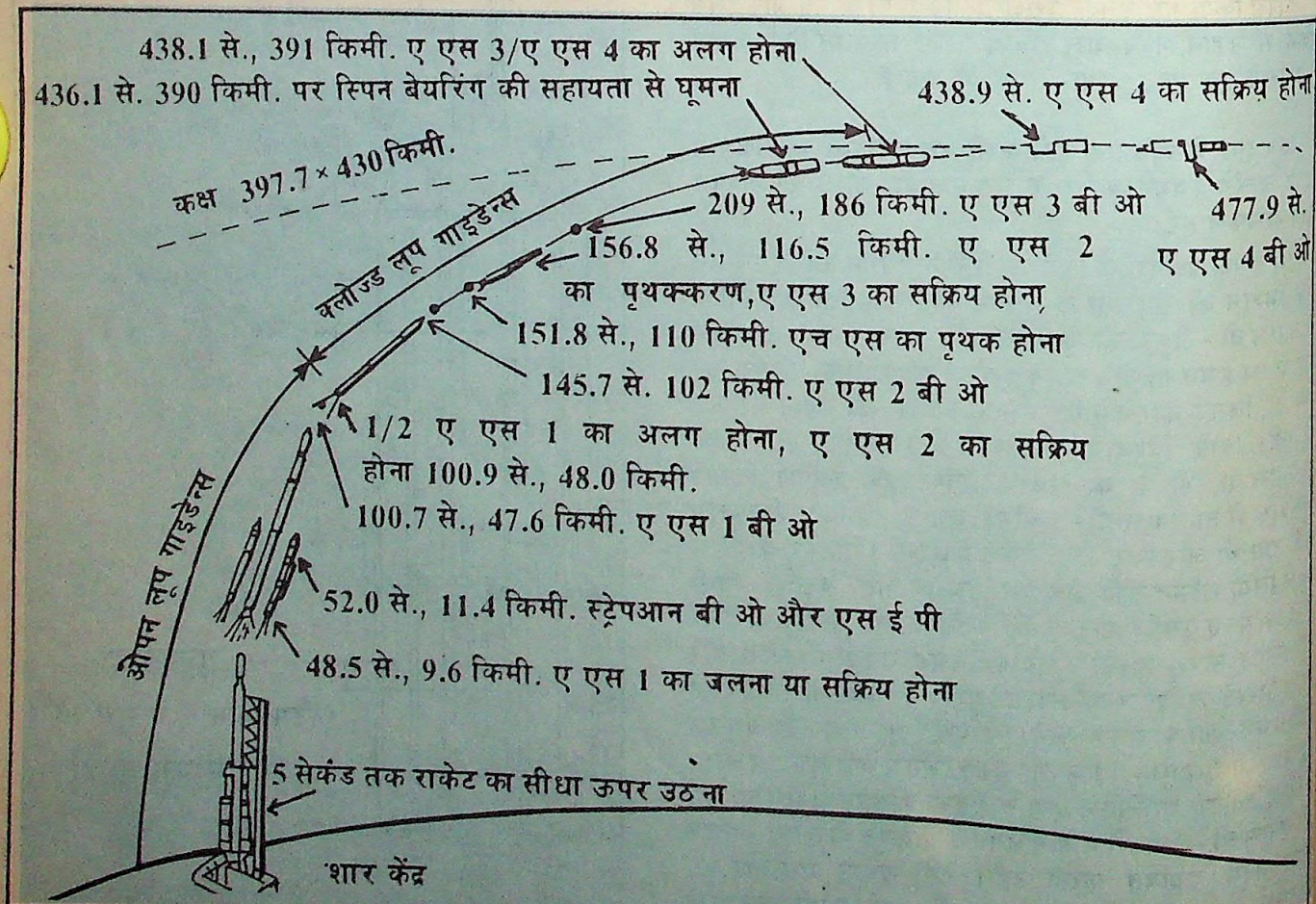
क्या होना चाहिये था
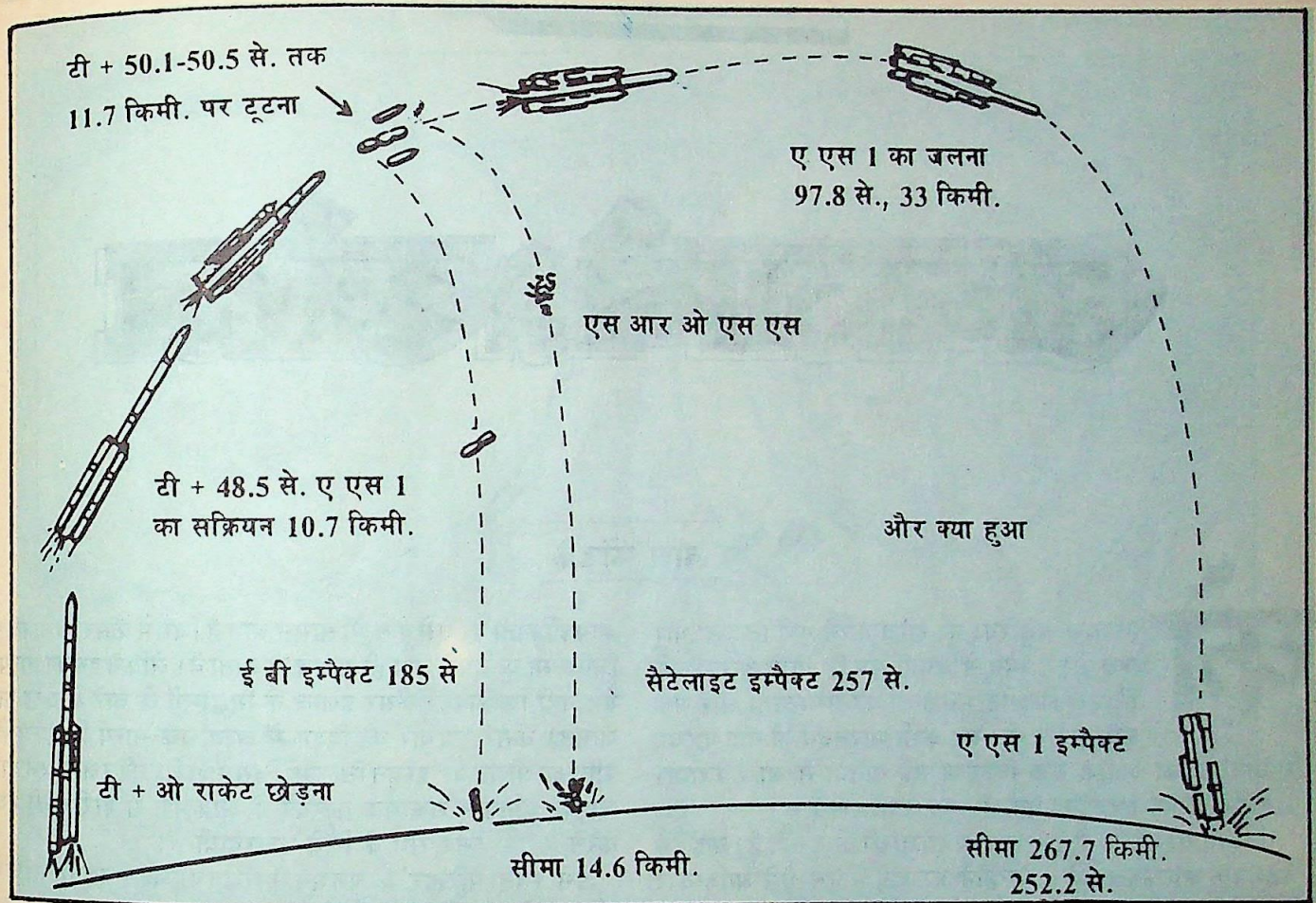
क्या इन जांचों से पी एस एल वी के प्रति हमारे दृष्टिकोण में सुधार हुआ है?

निश्चय ही हमारे दृष्टिकोण में सुधार हुआ है। ए एस एल वी की तुलना में पी एस एल वी एक काफी स्थिर, 2.8 मीटर व्यास वाला राकेट है। यह एक ऐसा राकेट होगा जिसके उपकरणों को, राकेट को पृथ्वी से ऊपर उठते समय ज्यादा बड़ा झटका महसूस नहीं होगा। ए एस एल वी के विपरीत पी एस एल वी की गति, दिशा, ऊंचाई आदि में परिवर्तन करने की क्षमता और उसको नियंत्रित करने का काम जो तंत्र करेंगे, वे राकेट के क्रोड भाग से जुड़े होंगे। पी एस एल वी के निर्धारित लक्ष्य की जानकारी कम्प्यूटर को दे दी जायेगी, क्योंकि इसकी यात्रा को नियंत्रित करने का काम कम्प्यूटर ही करेंगे। यद्यपि पी एस एल वी, ए एस एल वी की अपेक्षा एक ऊंचे स्तर का राकेट होगा लेकिन ए एस एल वी की उड़ानों से प्राप्त आंकड़े भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। पी एस एल वी के 6 घटकों में से दो पृथ्वी से उड़ान भरते समय अपने ईंधन का प्रयोग करेंगे जो बाद में अलग हो जायेंगे। बाकी के चार घटकों का ईंधन, राकेट के काफी दूरी तक उड़ान भरने के बाद सक्रिय हो जायेगा। यह सभी तकनीकी सुधार ए एस एल वी की उड़ानों के फलस्वरूप ही संभव हो पाये हैं। इन सारे अनुभवों के बावजूद पी एस एल वी के निर्माण कार्य में होने वाले खर्च में कोई ज्यादा वृद्धि नहीं हुई है और हमें आशा है कि यह राकेट पहले से निश्चित समय पर ही छोड़ा जायेगा।

पिछली दो असफलताओं ने जनता को काफी हतोत्साहित कर दिया है और अगर आप भी ऐसा ही अनुभव करते हैं तो इसका निवारण कैसे किया जायेगा?

आप ठीक कह रहे हैं यह मानव प्रकृति है कि बार-बार असफलता होने से वह थोड़ा बहुत विचलित तो हो ही जाता है। लेकिन इन असफलताओं से हमारे वैज्ञानिकों का मनोबल बढ़ा ही है, वे अब और ज्यादा तत्परता से इन कमियों को ठीक करने में लगे हुये हैं। हमारी जांच समितियों ने, विशेष रूप से ई आर पी ने, हमारा मनोबल बढ़ाने की ही बात कही है। जांच समितियों का कहना है कि हमारे वैज्ञानिकों को हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने संयुक्त राज्य के वेनगार्ड राकेट का उदाहरण देते हुये कहा कि 11 बार में सिर्फ तीन बार ही वेनगार्ड के प्रक्षेपण में सफलता मिली थी। इसलिये हमें उम्मीद नहीं छोड़नी चाहिये। हाल ही में हमारे वैज्ञानिकों ने पी एस एल वी स्टेज मोटरों का सफलतापूर्वक विकास कर लिया है जो अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है। असफलताओं के बावजूद हमारे वैज्ञानिकों के उत्साह और क्षमता में भी कोई कमी नहीं आई है।

डा. गुप्ता आपका बहुत-बहुत धन्यवाद! हम आपके ए एस एल वी- डी 3 मिशन की सफलता की कामना करते हैं।

[प्रस्तुति : श्री जे.बी. धवन, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12.]

बाल फोंडके

कोलम्बस अमेरिका की खोज करने नहीं निकला था। जब उसने स्पेन से अपनी समुद्री यात्रा आरम्भ की तो उसकी दृष्टि भारतवर्ष की सम्पन्नता और सुख साधनों पर थी। वह कभी भारतवर्ष तो नहीं पहुंचा, लेकिन उसका जहाज एक बिल्कुल नई दुनिया से जा टकराया। अनजाने में हुई खोज का यह भी एक उदाहरण है।

विज्ञान की दुनिया में इस तरह की खोजों की कमी नहीं है। कई ऐसे वैज्ञानिक कोलम्बस हुये हैं जिन्होंने अनजाने में ऐसे-ऐसे आविष्कार किये हैं जिनसे दुनिया ही बदल गई है। स्टीवन रोजनबर्ग भी ऐसा ही एक वैज्ञानिक कोलम्बस है। वह शल्य चिकित्सक बनना चाहता था। इसलिये उसने इसका प्रशिक्षण लेना भी आरम्भ कर दिया था। सन् 1968 में, अचानक एक दिन उसके क्लिनिक में एक रोगी पित्ताशय से पथरी निकलवाने आया। शल्य चिकित्सा करने से पहले रोजनबर्ग ने उस रोगी का पुराना मेडिकल रिकार्ड देखा। रिकार्ड देखकर रोजनबर्ग ने पाया कि इस रोगी से मिलता-जुलता एक रोगी, लगभग 12 वर्ष पूर्व एक दूसरे अस्पताल में असाध्य कैंसर से लड़ाई लड़ रहा था। उस अस्पताल के चिकित्सकों ने आपरेशन करने के लिये जैसे ही उसका पेट चीरा तो उन्हें मुट्ठी के आकार का एक ट्यूमर दिखायी दिया जो आस-पास की लसीका ग्रन्थियों तक अपनी जड़ें फैला चुका था। इस भयानक बीमारी से उसे बचाने के लिये, एक क्षीण आशा के साथ डाक्टरों ने उस ट्यूमर को निकाल भर दिया ताकि मरीज को कुछ समय के लिए राहत मिल सके और वह कुछ और दिन अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ बिता सके। लगभग 12 वर्ष पहले डाक्टरों ने जिसे मौत का ग्रास समझकर भगवान भरोसे छोड़ दिया था, आज वह रोजनबर्ग के सम्मुख स्वस्थ एवं प्रसन्नचित था। आज उसे अपनी पित्ताशय की पथरी का आपरेशन करवाना था।

जब रोजनबर्ग ने आपरेशन कक्ष में उसका पेट चीरा तो उन्हें कैंसर के कोई चिन्ह ही नहीं दिखाई दिये। रोजनबर्ग को समझने में देर नहीं लगी कि यह 'स्वतः परिहार' (स्पॉण्टेनियस रिमिशन) या अपने आप ठीक हो जाने का केस है। कैंसर रोग की उत्पत्ति भी अपने आप ही होती है। ऐसे केस भी सामने आए हैं जिसमें कैंसर बिना चि[illegible] चिकित्सा के अपने आप ही गायब हो जाता है। लेकिन इसका तात[illegible] यह नहीं कि डाक्टर कैंसर इलाज के सिद्धान्तों के बारे में कुछ [illegible] जानते। कैंसर उपचार की दिशा में अत्यधिक मान्य सिद्धान्त [illegible] प्रतिरक्षा पद्धति या 'इम्यून सिस्टम, जिसमें शरीर की रक्षा करने [illegible] कारक, प्रतिकूल संक्रामक कारकों के आक्रमण से शरीर की [illegible] करते हैं, ही कैंसर रोग के लिये उत्तरदायी है।

इस 'स्वतः परिहार' के अनुभव से रोजनबर्ग की इच्छाशक्ति [illegible] और उसने इन कारकों के दोहरे स्वभाव का अध्ययन करना शुरू [illegible] दिया ताकि वे कैंसर ग्रस्त दुर्भाग्यशाली रोगियों की सहायता [illegible] सकें। लगातार 20 वर्ष तक काम करने के बाद भी रोजनबर्ग को [illegible] क्षेत्र में कोई विशेष सफलता नहीं मिली। परन्तु शोध क[illegible] करते-करते वह एक ऐसे नये क्षेत्र में जा पहुंचा जहां से वह उस [illegible] का भी विस्तार कर सकता था। उस क्षेत्र का ना[illegible] था – जैवप्रौद्योगिकी।

जब रोजनबर्ग उस रोगी का पुराना रिकार्ड देख रहा था तो उ[illegible] पाया कि पहले आपरेशन के बाद उसके पेट में तीव्र संक्रमण हुआ [illegible] जिसके फलस्वरूप उसके पेट में विषाक्त मवाद बनना शुरू हो [illegible] था। स्वतः परिहार के सम्बन्ध में प्राप्त साहित्य का सर्वेक्षण कर[illegible] पता चला कि ऐसी घटनाएं चिकित्सा के कई केसों में हो चुकी हैं। [illegible] विचार रोजनबर्ग के दिमाग में घर कर गया। इस विचार को बल [illegible] मिला जब रोजनबर्ग ने पाया कि मरीज के पेट का कैंसर लसीकाणु [illegible] लिम्फासोइटों से अन्तः स्रवित हो गया है और ये लसीकाणु [illegible] प्रतिरक्षी हमले के सेनानायक हैं। फिर क्या था, रोजनबर्ग समझ [illegible] कि मरीज के पेट का ट्यूमर सक्रिय प्रतिरक्षी लसीकाणु के आक्रम[illegible] समाप्त हो गया था। कुछ हद तक संक्रमण इस विशिष्ट कैं[illegible] विनाशी लसीकाणुओं के निर्माण के लिये भी उत्तरदायी था। [illegible] प्रकार इस आशय की कि, प्रतिरक्षी पद्धति कैंसरकारी कोशिका[illegible] विकास को रोकती है, की पुष्टि हुयी। अब प्रायोगिक तौर पर [illegible] कार्य रोजनबर्ग को करना था। यह उसके लिये एक चुनौतीपूर्ण [illegible] था। रोजनबर्ग ने इस दिशा में आगे कार्य शुरू किया। उसने प्रति[illegible]
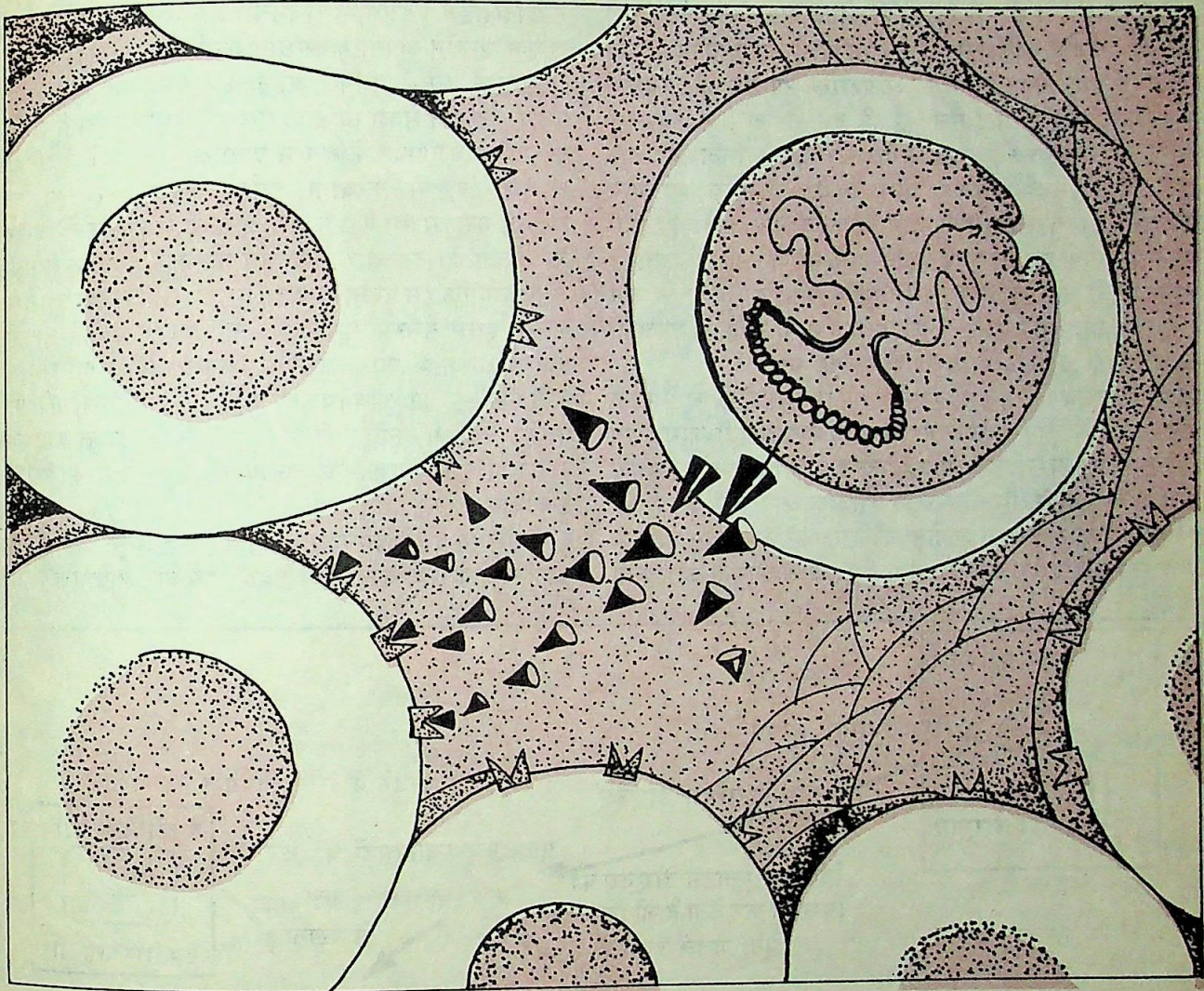
ट्यूमर पर आक्रमण : ट्यूमर-अंतःस्यंदित लिम्फोसाइट अथवा टी.आई.एल. उसी मेलानोमा पर आक्रमण के लिये तैयार, जिससे वह उत्पन्न हुआ है।

लसीकाणुओं का पता लगा कर उन्हें एकत्र करने की योजना बनायी। लेकिन उसके लिये यह कोई कठिन काम नहीं था क्योंकि ट्यूमर में उपस्थित लसीकाणुओं को आसानी से अलग किया जा सकता था। इन लसीकाणुओं को ट्यूमर इनफिल्ट्रेटिंग लिम्फोसाइट [(टी.आई.एल.) (ट्यूमर में मिले लसी कोश)] नाम दिया गया।

जब एक रोगी के मेलानोमा (एक प्रकार का ट्यूमर) से टी.आई.एल. निकालकर प्रयोगशाला में विकसित किये गये और उनको पुनः उसी रोगी के मेलानोमा में रख दिया गया तो तो उन्होंने केवल मेलानोमा पर ही आक्रमण किया। इससे न तो मेलानोमा फैला और न ही आस-पास की स्वस्थ कोशिकाओं को टी. आई.एल. से कोई हानि पहुंची। बाद में यह भी देखा गया कि क्या मेलानोमा में रखे गये टी.आई.एल. का शरीर के अन्य किसी भाग में स्थित मेलोनोमा पर भी संक्रमण हो सकता है तो पाया गया कि टी.आई.एल. तो पालतू कबूतर की तरह उसी मेलानोमा में पड़ा रहता है अर्थात् उसका संक्रमण अन्यत्र नहीं होता। इन प्रयोगों को करने के लिये रोजनबर्ग और उनके सहयोगी निरन्तर प्रत्यत्नशील रहते किन्तु लिम्फोसाइट एकत्र करना उनके लिये बड़ी समस्या थी और यही उन प्रयोगों के लिये आवश्यक थे और प्रयोगशाला में इन्हें विकसित करना भी संभव था। साथ ही किसी व्यक्ति से प्राप्त टी.आई.एल. भी प्रयोगों के लिये प्रर्याप्त नहीं होते थे।

कुछ वर्ष बाद एक संस्थान में कार्यरत वैज्ञानिक गैलो, ने शरीर में उपस्थित एक ऐसे वृद्धिकारक पदार्थ का पता लगाया जिसके प्रभाव से लसीकाणु बड़ी तेजी से और अधिक मात्रा में बनते थे। इस पदार्थ का नाम इन्टरल्यूकिन-2 (आई.एल-2) रखा गया। यह संस्थान रोजनबर्ग की प्रयोगशाला से अधिक दूर नहीं था।

अब रोजनबर्ग ने टी.आई.एल.के स्थान **पर आई.एल.-2** का प्रयोग शुरू किया और इससे उन्होंने एक नयी आश्चर्यजनक खोज की, क्योंकि आई.एल.-2 की सहायता से जो कोशिकायें विकसित गई थी वे स्वतः ही मारक कोशिकाओं या 'किलर सैलों' में परिवर्तित हो गयी। इन कोशिकाओं को 'लिम्फोकाइन एक्टीवेटेड किलर

कोशिका' या एल.ए.के. कोशिका नाम दिया गया। कुछ वैज्ञानिकों का तर्क था कि यदि आई.एल.-2 से ऐसी किलर कोशिकायें पैदा हो सकती हैं तो क्या कैंसर रोगी को आवश्यक उपचार और स्वास्थ लाभ के लिये केवल आई.एल.-2 ही देने से लाभ नहीं होता? रोजनबर्ग को यह तर्क अच्छा लगा और उसने आदमियों और जानवरों पर इसके अनेक प्रयोग किये। हालांकि परिणाम निराशाजनक थे, परन्तु ऐसे भी नहीं थे कि बिल्कुल आशा ही छोड़ दी जाये। प्रयोगों से यह भी स्पष्ट था कि रोगी को दी गई आई.एल.-2 की मात्रा इतनी नहीं थी कि उससे पर्याप्त मात्रा में एल.ए.के. बन सकें। लेकिन यदि आई.एल.-2 की अधिक मात्रा रोगी को दी जाती थी तो वह रोगी के लिये विषाक्त हो सकता था।

इस पर रोजनबर्ग के मन में विचार आया कि एल.ए.के. बडी मात्रा में कृत्रिम रूप में तैयार करके शरीर में प्रवेश करायी जाये। यह विचार अच्छा था, परन्तु इसे व्यावहारिक रूप देना कठिन था। दूसरी ओर एल.ए.के. स्वस्थ और कैंसरग्रस्त कोशिकाओं में कोई अन्तर भी स्पष्ट नहीं कर पा रहा था तथा दोनों कोशिकाओं को समान मात्रा में नष्ट कर रहा था। इसके बावजूद भी ट्यूमर के आकार में कोई कमी नहीं दिखाई दी। इससे भी रोजनबर्ग और उनके साथी निराश हो लेकिन उन्होंने अपना अनुसंधान कार्य छोड़ा नहीं।

उन्होंने एक बार फिर अपना ध्यान टी.आई.एल. पर कें किया। उन्होंने सोचा कि आई.एल.-2 की सहायता से लसीका को मारक कोशिका के रूप में प्रशिक्षित करने के बदले यह टी.आई.एल. से करवाना चाहिये, जिसे करने में पहल टी.आई.एल. सक्षम है और इसे आसानी से ट्यूमर से बिलगा जा सकता है। इस बार रोजनबर्ग को कुछ हद तक सफलता लगी। क्योंकि इस प्रयोग के बाद ट्यूमर का आकार घटता देखा ग लेकिन इससे समस्या पूर्णतः हल नहीं हुई थी क्योंकि टी.आई. पर्याप्त संख्या में प्राप्त करने के लिये प्रभावी मात्रा में कई ले आई.एल.-2 की आवश्यकता पड़ी। टी.आई.एल. की यह म पर्याप्त नहीं थी, क्योंकि टी.आई.एल. देने के तुरन्त बाद बार शरीर में इसका एक स्तर बनाये रखने के लिये आई.एल.-2 इंजेक्शन लगाने पड़ते थे।

इस समय दूसरी प्रयोगशालाओं में हो रहे अनुसंधान इस वैज्ञा कोलम्बस के लिये वरदान सिद्ध हुये। इस बार आई.एल.-2 की
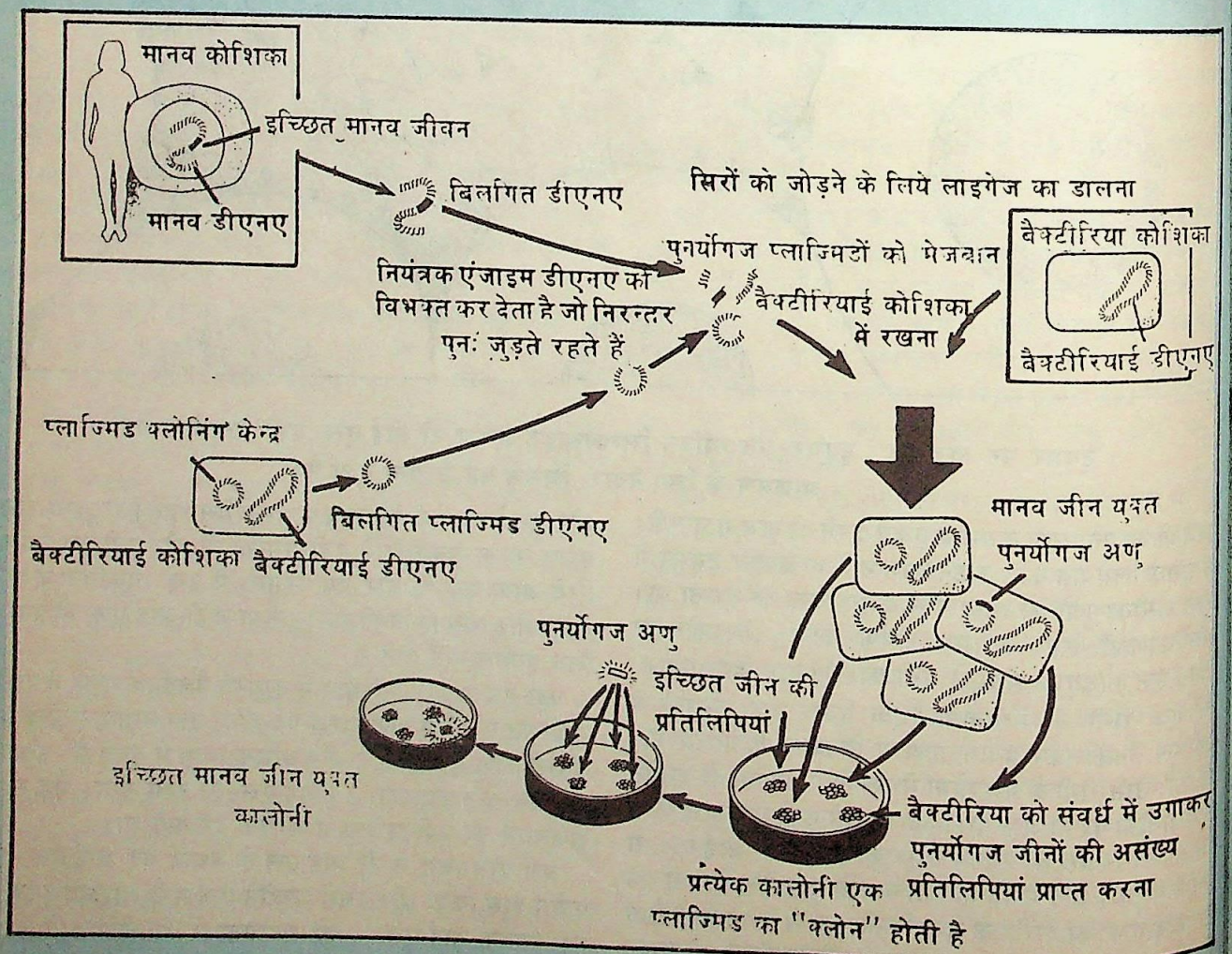
जीन क्लोनिंग विधि का सारांश

कैंसर की पहचान थर्मोग्राफी (एक्स-रे) से की जाती है– इससे पता चलता है कि इसमें कैंसर नहीं है

इस चित्र में थर्मोग्राफिक एक्स-रे स्तन-कैंसर की उपस्थिति दर्शाता है

को क्लोन कर दिया गया, अर्थात् आई.एल.-2 संश्लेषित करने वाली जीन को पैतृक कोशिका से निकाल कर, पुनः संयोजित डी.एन.ए. तकनीक का प्रयोग करके, एक बैक्टीरियाई कोशिका में प्रवर्तित कर दिया जो आई.एल.-2 बनाने का एक कारखाना बन सकती है।

अब रोजनबर्ग एवं उनके सहयोगियों को कुछ आशायें बंध गई थीं। सन् 1984 में रोजनबर्ग के पास एक 29 वर्षीया कैंसर से पीड़ित नर्स आई, जिसका मेलानोमा लगभग पूरे शरीर में फैल चुका था। उसकी जीने की आशाएं धूमिल हो चुकी थीं और वह अपने जीवन के चन्द दिन गिन-गिन कर काट रही थी। रोजनबर्ग ने उसको एल.ए.के. और आई.एल.-2 दिया। कुछ दिनों के इलाज के बाद कैंसर घटने लगा। लगभग डेढ़ महीने बाद पूरा कैंसर समाप्त हो गया।

आज कई रोगी इस उपचार से पूर्णतः ठीक हो चुके हैं। अब डाक्टर इस प्रक्रिया को अधिक शुद्ध बनाने में और इसके दुष्प्रभाव आदि के अध्ययन में जुटे हैं।

आज यह उपलब्धि, जो बहुत आसान लग रही है जैवप्रौद्योगिकी की ही देन है। संक्षेप में, जैवप्रौद्योगिकी द्वारा कैंसर के इलाज के लिए एक कोशिका,जो प्राकृतिक रूप से आई.एल.-2 बनाती है,लीजिये। इससे आई.एल.-2 बनाने के लिये उत्तरदायी जीन को बिलगाकर, क्लोन कर लें ताकि आई.एल.-2 का बड़े पैमाने पर निर्माण संभव हो सके। इसके बाद शल्य चिकित्सा द्वारा ट्यूमर के एक छोटे से भाग को निकाल कर, लिम्फोसाइटों को बिलगा लें। इन कोशिकाओं को भरपूर मात्रा में आई.एल.-2 दे दीजिये, जिससे उनकी संख्या में काफी वृद्धि हो। इन लिम्फोसाइटों को फिर से मरीज के शरीर में रख दें। शरीर में इसकी एक उचित मात्रा बनाये रखने के लिए आई.एल.-2 के निरन्तर इंजेक्शन देते रहें।

रोजनबर्ग और उनके सहयोगी अपनी इस सफलता से बहुत खुश हैं, परन्तु उनकी यह सफलता अभी प्रयोगशाला तक ही सीमित है। अभी कुछ वर्ष और लगेंगे जब इस विधि का उपयोग दुनिया भर के कैंसर ग्रस्त मरीज कर सकेंगे। लेकिन शुरूआत तो हो चुकी है। जैवप्रौद्योगिकी से ऐसी कोशिकायें तैयार की जा रही हैं जो कैंसर का खात्मा कर देगी। लेकिन रोजनबर्ग इससे भी आगे की सोच रहे हैं। वे जीन को स्थानान्तरित करके टी.आई.एल. के अन्दर दूसरा कैंसर प्रतिरोधी पदार्थ बनाना चाहते हैं ताकि वे संक्रमण के लिये अधिक प्रतिरोधी हो सकें लेकिन आज जिस गति से जैवप्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है, अब वह दिन भी दूर दिखाई नहीं देता।

[प्रस्तुति : श्री पुरुषोतम त्यागी, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय नई दिल्ली ।10012]

अधिकांश कार्बनिक यौगिकों में कार्बन तत्व अधिक क्यों होते हैं?

[वीरेंद्र प्रसाद, फर्टीलाईजर्स कालोनी, गोरखपुर]

कार्बन प्रकृति में बहुतायत में पाया जाने वाला तत्व है जो प्रकृति में कोयला ग्रेफाइट तथा हीरा, तीन अपर रूप में मिलता है। कार्बन का परमाणु चतुर्संयोजक है अर्थात् यह चार परमाणुओं से जुड़ सकता है। कार्बन के चार बन्धों के शीर्ष सम चतुष्फलक से जुड़ते हैं। इसके परिणामस्वरूप कार्बन से बने यौगिक बहुत स्थायी होते हैं।

कार्बन के कई परमाणु मिलकर एक लम्बी श्रृंखला अथवा एक चक्र अथवा दोनों बना लेते हैं। ऐसे यौगिक प्रकृति में बहुतायत में मिलते हैं और ये ही जीवन के आधार हैं। ये रसायन शास्त्र की एक अलग शाखा बनाते हैं जिसे कार्बनिक रसायन शास्त्र कहते हैं।
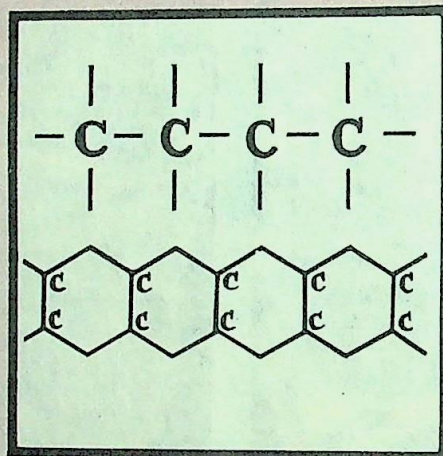
कभी-कभी कार्बन-कार्बन संरचनाएं अन्य दूसरे परमाणुओं यथा ऑक्सीजन, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर आदि से भी संयोग करती हैं। इस प्रकार के यौगिक भी बड़ी संख्या में मिलते हैं जो अकार्बनिक रसायन शास्त्र के अंतर्गत आते हैं।

सी.बी. शर्मा

आनुवंशिक अभियांत्रिकी क्या है?

[पालास कुन्डू, नाबाद्वीप, नाडिया, पश्चिमी बंगाल]

आनुवंशिक रोग के कारण कितने ही बच्चे जन्मजात वंशानुगत विकारों से ग्रस्त होते हैं जो उन्हें अपने माता-पिता से विरासत में मिलते हैं। इनमें दात्र अरक्तता तथा टे-सैक्स रोग ऐसे रोगों के आम उदाहरण हैं, लेकिन ऐसे बच्चों के अधिकांश माता-पिता चाहते हैं कि उनकी संतान इन रोगों से पीड़ित न हो।इस संबंध में वे आनुवंशिक संबंधी परामर्श चाहते हैं ताकि भविष्य में उत्पन्न होने वाले उनके बच्चे ऐसे रोगों से पीड़ित न हों।
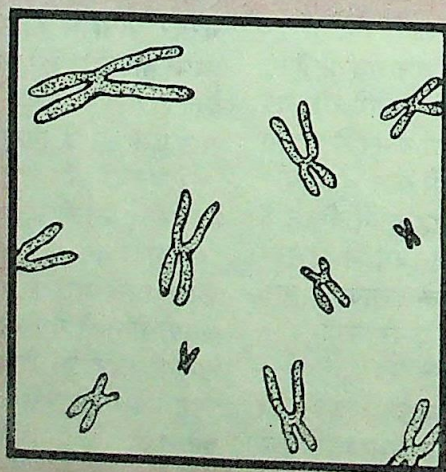
हम उस दिन की बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं जब आनुवंशिक रोगों का निदान और उपचार हो सकेगा। इस उद्देश्य को लेकर बनी शाखा को जेनेटिक इंजीनियरिंग या आनुवंशिक अभियांत्रिकी के नाम से जाना जाता है। आशा है निकट भविष्य में वैज्ञानिक क्रोमोसोमों में से विकृत जीन निकाल कर उसके स्थान पर सामान्य जीन प्रतिरोपित करने में सफल हो जायेंगे।

सी.बी. शर्मा

बिजली के तार पर बैठी हुई चिड़िया क्यों नहीं मरती?

[राम नरेश, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश]
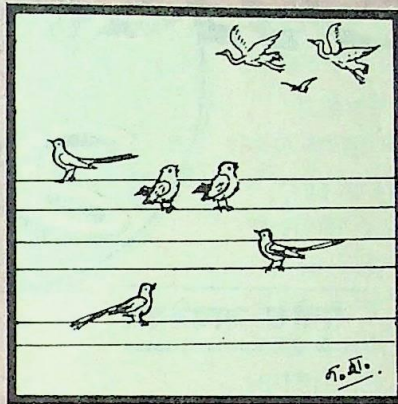
इलेक्ट्रिसिटी अथवा विद्युत की दो बेसिक इकाई हैं—धारा (करंट) तथा वोल्टता। यहां धारा, इलेक्ट्रानों का प्रवाह है जबकि वोल्टता, इलेक्ट्रानों पर पड़ने वाला वह दाब है जो इलेक्ट्रानों को उच्च विभव से निम्न विभव की ओर ले जाता है। बिजली के तार पर बैठी चिड़िया का पृथ्वी से सम्पर्क नहीं होने से परिपथ पूरा नहीं होता और चिड़िया नहीं मरती। लेकिन चिड़िया, जिस तार पर बैठी है वह यदि जमीन के सम्पर्क में हो या दूसरे बिजली के तार से टकरा रहा हो तो धारा चिड़िया से होकर प्रवाहित होने लगेगी जिससे विद्युत परिपथ पूरा हो जायेगा और चिड़िया मर जायेगी।

जगदीश बिष्ट

बिजली के उपकरणों की अर्थिंग क्यों आवश्यक है?

[गिरिजेश श्रीवास्तव, फैजाबाद, उ.प्र.]
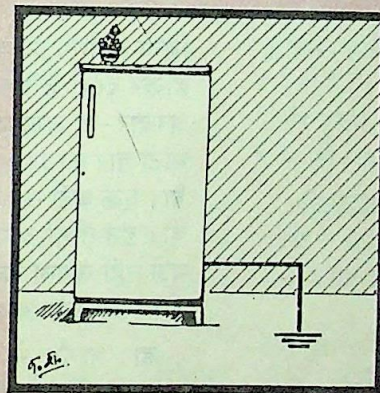
सामान्यतः किसी विद्युत उपकरण के अधात्विक भागों में धारा प्रवाहित नहीं होती और इन्हें छूने से भी कोई खतरा नहीं होता क्योंकि वे पूर्णतः विद्युतरोधी होते हैं। लेकिन कभी-कभी विद्युत-क्षरण होने पर इनमें से धारा प्रवाहित होने से, ये किसी व्यक्ति के लिये जानलेवा भी हो सकते हैं। ऐसा मानव शरीर द्वारा जमीन तक विद्युत धारा प्रवाहित होने से होता है। लेकिन विद्युत उपकरणों की अर्थिंग से ऐसा खतरा टल जाता है, क्योंकि अर्थ का तार, मानव शरीर की तुलना में क्षरण धारा को जल्दी तथा सरलतापूर्वक पृथ्वी तक पहुंचा देता है और उपकरण को उपयोग के लिये सुरक्षित बनाता है।

जगदीश बिष्ट

जब काँच और धातु की गर्म छड़ों पर ठंडे पानी की बूंदे डाली जाती हैं तो कांच की छड़ तड़क जाती है क्यों?

सभी पदार्थ, चाहे वह कांच हो अथवा धातु, गर्म होने की अवस्था में फैलते हैं। धातु, ताप तथा विद्युत की सुचालक है जबकि कांच नहीं। अतः जब भी कभी धातु के किसी भाग को गर्म किया जाता है तो धातु की उच्च ताप सुचालकता के कारण यह ताप सम्पूर्ण भाग में पहुंच जाता है तथा धातु का ताप शीघ्र ही समान हो जाता है और धातु अपनी बनावट को बनाये रखती है। दूसरी
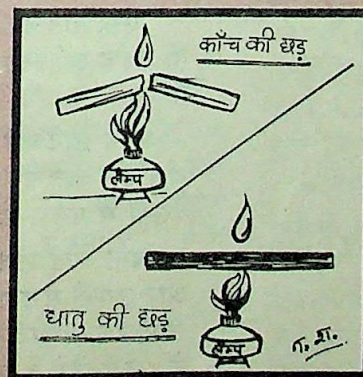
ओर चूंकि कांच ताप का कुचालक है इसलिए ताप एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं फैलता। अतः जब कांच की गर्म छड़ के किसी भाग पर ठंडे पानी की बूंदें डाली जाती हैं तो ताप में एक दम गिरावट आने के कारण उस भाग में संकुचन उत्पन्न होता है, जिसका उसके आस-पास वाले भाग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए यह संकुचित भाग में तड़क जाती है। लेकिन प्रयोगशाला में जो पाइरेक्स कांच प्रयोग में लाया जाता है वह नहीं टूटता क्योंकि यह व्यावहारिक रूप से गर्मी पाकर नहीं फैलता।

आर. साम्बशिवन

सुबोध जावडेकर

सागर के किनारे बने हुये गोदी के एक चबूतरे पर खड़े तीन व्यक्तियों की आकृतियां, भोर के प्रकाश में धुंधली-सी दिखाई दे रही थी।

इस प्रकार के वातावरण में असुविधा की परवाह किये बिना ये तीनों व्यक्ति तम्बू में रखे हुये एक यंत्र की ओर एकाग्रचित्त होकर देख रहे थे। इस तम्बू में अनेकानेक छोटे-बड़े उपकरणों का अम्बार-सा लगा था। उन उपकरणों से निकली हुई उंगली के जितनी मोटी तार का दूसरा सिरा समुद्र में काफी गहराई तक उतार दिया गया था। एक बड़ी-सी टोकरी में बर्फ के बीच में अनेक मछलियां रखी हुई थीं। इन तीनों व्यक्तियों में सबसे लम्बे कद के व्यक्ति ने कहा "सर मुझे नहीं लगता कि वे अब आयेंगे। उनके आने का हमेशा का समय बीत कर अब आधा घंटा ऊपर हो गया है।"

डा. भार्गव ने उसको फटकारते हुये कहा "राव! तुम बहुत उतावले हो। यदि समुद्र की मछलियों पर अनुसंधान करना हो तो ऐसी उतावली ठीक नहीं है। इस काम के लिये काफी धैर्य की जरूरत होती है। एक प्रकार से यह मछली पकड़ना ही है। घंटों तक मछली का फंदा जल में डाल कर बैठने की तैयारी होनी चाहिये"।

"ऐसी बात नहीं है सर," संभलते हुये राव बोला, "आज काफी देर हो गई है इसीलिये मैंने कह दिया था। अनुराधा, आपका क्या ख्याल है?"

अपने छोटे कद के कारण अनुराधा स्कूल की छात्रा जैसी लगती थी। इस बात पर कोई विश्वास नहीं करता कि उसका बड़ा लड़का दसवीं में पढ़ता होगा।

बिना कोई उत्तर दिये अनुराधा ने सामने रखे हुये उपकरण की ओर उंगली से इशारा किया। टी.वी के समान दिखाई पड़ने वाले उस उपकरण के परदे पर ऊपर के हिस्से में दो छोटे बिन्दु दिखाई देने लगे थे। जैसे-जैसे वे समीप आने लगे वैसे-वैसे उनका आकार बड़ा होने लगा। अनुराधा ने उपकरण की नॉब घुमाई। ये चित्र अब परदे के बीचों-बीच आ गये और उनकी बाहय रेखायें स्पष्ट होने लगीं।

"लंगड़ा और छोटी" अनुराधा के मुख से निकला। "क्या?" डा. भार्गव ने पूछा?

"कुछ नहीं कुछ नहीं" अनुराधा ने कहा।

"सर इसने डाल्फिनों का नामकरण किया है। लहानू, गब्दुक लंगड़ा इत्यादि" राव ने कहा।

"सर, वह तैरते समय कुछ तिरछा तैरता है जैसे एक पैर से लंगड़ा आदमी चलता है। इसलिये मैं उसे लंगड़ा कहती हूं।" अनुराधा ने कुछ अपराधी स्वर में कहा।

मिसेज देवलालीकर (अनुराधा) "क्या इतनी दूर से तुम्हें दो डाल्फिनों का फर्क समझ में आ जाता है। जो भी हो, उनका नामकरण करने की आवश्यकता नहीं है। वर्गीकरण के अनुसार ही उन्हें क्रमांक दिये गये हैं। उन क्रमांकों के अनुसार ही उन्हें पहचानना होगा। वही पद्धति विज्ञान के अनुसार होगी। यहां हमें उनकी आदतें, जीवन पद्धति, आपसी व्यवहार आदि का अध्ययन करना है। उनसे लाड़-प्यार नहीं करना हैं।"

"सर, रिपोर्ट लिखते समय मैं उनका उल्लेख क्रमांक से ही करती हूं, नामों से नहीं।"

"हमेशा उनका उल्लेख क्रमांकों से ही करना चाहिये, बातचीत के दौरान भी वे प्रयोग का विषय होते हैं। हमारे उपकरण जितने निर्जीव हैं डाल्फिन भी हमारे लिये उतनी ही निर्जीव हैं।"

"लेकिन सर, डाल्फिन निर्जीव नहीं हैं।"

"उन्हें वैसा ही समझना होगा। ज्यादा से ज्यादा हम उन्हें गिनी पिग समझेंगे।" डाक्टर का स्वर कुछ तुच्छतापूर्ण था।

"नहीं सर, डाल्फिन गिनी पिग भी नहीं हैं। वे मानव के समान बुद्धिमान हैं, उनमें भावनायें हैं, उनकी अपनी भाषा है और वे आपस में बातचीत भी कर सकते हैं।

"मिसेज देवलालीकर! आप डाल्फिनों की बुद्धिमत्ता के बारे में मुझे बताना चाहती हैं।

"डाल्फिनों के बारे में डा. भार्गव की अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञों में गणना होती है" राव बीच में बोल पड़े।

"क्षमा कीजिये, मैं आपका अपमान करना नहीं चाहती थी। मुझे केवल इतना कहना था कि डाल्फिनों की बुद्धि का स्तर मानव की बुद्धि के स्तर जैसा न भी हो, फिर भी उन्हें गिनी पिगज नहीं कहा जा सकता।"

"डाल्फिन की बुद्धि और उसकी भाषा पर जितना अधिकार मेरा है उतना किसी का नहीं। लेकिन यहां मुद्दा यह नहीं है। हमारे लिये डाल्फिन प्रयोगशाला में रखे गये प्राणी मात्र है। इससे अधिक कुछ भी नहीं। उन पर प्रयोग करते समय हमें भावनाओं में नहीं बहना चाहिये। हमें तो केवल उनके प्रेम जीवन का अध्ययन करना है। हमें देखना है कि नर और मादा में से यदि एक मर जाये तो दूसरे पर क्या असर होता है। यदि इसके लिये नर और मादा में एक को मारना भी पड़े, तो क्या आप ऐसा कर सकोगी।"

अनुराधा के संपूर्ण शरीर में एक सिहरन-सी पैदा हुई। मादा के मरने के बाद नर किस प्रकार से बेचैन हो उठता है, यह देखने के लिये क्या मादा को जान से मार डालना उचित होगा?"

सैकड़ों मील दूर रहने वाले अपने पति की मूर्ति क्षणमात्र के लिये उसके आंखों के सामने आ गई। जब उसका यहां आना निश्चित हो गया था तो वे कितने व्याकुल हो उठे थे। फिर भी अपनी भावनाओं पर संयम रखते हुये उन्होंने उसको अनुमति दे दी थी क्योंकि डा. भार्गव जैसे विख्यात वैज्ञानिक के साथ काम करना गर्व की बात थी। घर की याद से अनुराधा बेचैन हो उठी। चोंच के समान दिखाई देने वाले लंगड़े और छोटी के मुंह.अब पानी के बाहर दिखाई देने लगे। उनके लिये लाई हुई मछलियां अनुराधा तथा राव पानी में फेंकने लगे। पानी के बाहर उछल कर वे इन्हें पकड़ने लगे। उनका पेट भर जाने पर उन पर प्रयोग आरंभ हुआ।

अब तक डाल्फिन 'नजदीक आओ,' 'पानी के बाहर छलांग लगाओ,' 'दूर जाओ' आदि आदेश सरलता से समझकर उनके अनुसार काम करना सीख चुके थे। इससे आगे डा. भार्गव ने उनके ऊपर करने वाले प्रयोगों की रूपरेखा तैयार की थी। उनके मार्गदर्शन के अनुसार राव तथा अनुराधा ने काम प्रारंभ कर लिया था। विभिन्न दिशाओं में आवाज करते हुये उनकी सहायता से दिशा ज्ञान कराने का प्रयास जारी था। यदि कोई डाल्फिन दिशा ठीक तरह से पहचानने में सफल हो जाती थी तब उसे परितोषिक के रूप में बड़ी सी मछली खाने के लिये दी जाती.थी। उन्होंने कितनी बार दिशा ठीक से पहचानी और कितनी बार गलती की इसकी सारणी बनाई गई।

इस प्रकार के प्रयोग में डा. भार्गव, मि. राव तथा अनुराधा व्यस्त हो गये।

अनुराधा यद्यपि यांत्रिक रीति से काम कर रही थी पर डा. भार्गव के कहे हुये वाक्य वह भूल नहीं पा रही थी ..."प्रयोग की आवश्यकता के नाते नर और मादा में से यदि एक को जान से मारना जरूरी हुआ तो क्या तुम वह काम कर पाओगी?"

"क्या मेरे लिये ऐसा संभव होगा?"

'लेकिन प्राणियों पर प्रयोग करते समय क्या उनको निर्जीव वस्तु समझना जरूरी है। क्या डाल्फिन जैसे प्राणियों के साथ मित्रों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता? क्या उनके साथ हमारी भावनायें नहीं जुड़ सकती' आदि बातों पर वह कोई निश्चय नहीं कर पा रही थी। डा. भार्गव की हिदायतों के बावजूद भी अनुराधा डाल्फिनों की ओर गिनी पिग की दृष्टि से नहीं देख पा रही थी। उनके साथ उसका भावनात्मक संबंध बढ़ता ही जा रहा था।

बड़े तड़के वह सागर के किनारे पर जा बैठती। निर्देशित प्रयोग तथा उनके अनुसार रिपोर्ट तैयार करने के बाद भी वह जल्दी ही अपने निवास पर न लौटा करती थी।

शुरू में जब अनुराधा कैम्प में दाखिल हुई थी तब डा. भार्गव ने सोचा था कि छोटी सी लड़की हमारे काम में क्या सहयोग देगी? यहां का कठोर जीवन यह कैसे बर्दाशत कर पायेगी? एक आध महीने में परेशान होकर लौट जायेगी।

लेकिन कार्य में रत हो जाने का उसका स्वभाव, किसी प्रकार की शिकायत न करने की उसकी वृत्ति को देखकर अब उनकी राय बदल गयी थी।

लेकिन डा. भार्गव की किसी सहयोगी के बारे में बहुत अधिक विचार करने की आदत नहीं थी। तीन भिन्न-भिन्न स्थानों पर दस बारह सहयोगी काम कर रहे थे। डा. भार्गव के हिसाब में वे सभी अन्य उपकरणों जैसे उपकरण ही थे। नियत कार्य को ठीक प्रकार से वे करते हैं या नहीं इसके अलावा उनसे किसी प्रकार का लेना देना था ही नहीं।

उस दिन अनुराधा बहुत खुश थी क्योंकि उसकी डाल्फिनों ने उसके साथ बात की थी।

इस समय राव अपने ट्रान्जिस्टर पर बी.बी.सी. सुनने की कोशिश में था। उसने पूछा, "क्या कह रही हैं आप?"

"आज छोटी ने मुझे पुकारा" वह खुशी से फूली नहीं समा रही थी।

"क्या कहा? छोटी ने तुम्हें पुकारा।" विश्वास न होने के कारण राव ने पूछा।

"सच बिल्कुल सच, कल तुम्हें दिखाऊंगी, पुकारना बिल्कुल साफ तो नहीं था, लेकिन मुझे विश्वास है उसने अनुराधा कहा था।"

और तुम्हें वह सुनाई दिया? बिल्कुल असंभव "ट्रांन्जिस्टर को नीचे रखते हुये राव ने कहा। डाल्फिन बोल तो सकते हैं लेकिन उनकी आवृत्ति हमारे लिये पराश्रव्य हैं।

"मुझे मालूम है। लेकिन उस आवृत्ति में परिवर्तन करके हमें सुनाई दे ऐसी आवृत्ति परिवर्तन का यंत्र मैंने बनाया है।"

"और उस यंत्र पर तुमने डाल्फिन की आवाज सुनी?"

"केवल आवाज ही नहीं, मैंने उन्हें अपना नाम पुकारते हुये भी सुना।"

"तुम्हें आभास हुआ होगा," राव ने अविश्वास के स्वर में कहा।

"कदापि नहीं, कल तुम मेरे साथ चलो और खुद देख लो।"

उस रात अनुराधा को नींद नहीं आई। रात भर जाग कर उसने अपने पति तथा बच्चों को चिट्ठियां लिखीं। अपनी डाल्फिनों की बुद्धिमत्ता तथा चतुराई के बारे में लिखा और उनकी आवाज टेप करके भेजने का आश्वासन दिया।

डा. भार्गव उस दिन दूसरे मौके पर गये हुये थे, दूसरे दिन सबेरे लौट आये। आते ही डाल्फिन की खबर उनके कानों तक पहुंच गई। उन्होंने अनुराधा को बुला भेजा तो अनुराधा दौड़ते हुये उनके कमरे में पहुंच गई।

"मिसेज देवलालीकर, मैं यह क्या सुन रहा हूं।" डाक्टर भार्गव के चेहरे पर क्रोध था। अनुराधा सोच रही थी कि डाक्टर भार्गव उसका अभिनन्दन करेंगे। लेकिन वास्तविकता बिल्कुल इसके विपरीत थी। अनुराधा का चेहरा मुर्झा गया। "सर", बड़ी कठिनाई से वह बोली।

"तुमने डाल्फिनों को बात करना सिखाया? डाक्टर की आवाज में एक प्रकार की धार थी।

"हां, नहीं अर्थात् मैंने उन्हें बोलना नहीं सिखाया। उन्हें बोलना पहले से ही आता है। उनकी बातें सुनने के लिये मैंने केवल एक यंत्र बनाया है। वैसे यह यंत्र कोई नया नहीं है। आवृत्ति में परिवर्तन करने का उपकरण मेरे पास पहले ही था। मैंने उसे एडजस्ट करके उसके साथ माईक जोड़ दिया। अपना साउंड सिस्टम..."

"बस, बस बड़े उत्साहपूर्ण स्वर में बता रही अनुराधा को बीच में ही टोकते हुये डाक्टर भार्गव बोले "डाल्फिनों की भाषा, उनकी आवाज तथा आवृत्ति पर मुझे व्याख्यान नहीं सुनना।"

अनुराधा के उत्साह पर पानी फिर गया और वह चुप हो गई।

"डाल्फिन आवाज करते हैं आवृत्ति परिवर्तक का उपयोग करके उसे सुना जा सकता है। यह सब मुझे मालूम है। वे आपस में संभाषण कर सकते हैं यह भी सच है। लेकिन आदमी की आवाज सुनकर उसकी नकल करना उनके लिये बिल्कुल असंभव है। कुछ अजीब सी आवाज निकाली होगी और आवृत्ति परिवर्तक में गड़बड़ होने के कारण तुमने उसे सुना होगा और तुम्हें ऐसा लगा होगा कि तुम्हें उन्होंने पुकारा। आधे-अधूरे ज्ञान से घमंडी हो जाने वाले लोग मुझे अच्छे नहीं लगते।"

"लेकिन सर, मैंने पूरी जॉच कर ली है। पिछले कई दिनों से मैं यह प्रयोग कर रही हूं। उन की आवाज में उनको पुनः सुनाती हूं। उसके बाद सही आवाज कैसी आनी चाहिये यह उन्हें मैं बताती हूं। मुझे पता है कि बहरे व्यक्ति को बोलना सिखाने के लिये इसी यंत्र का प्रयोग किया जाता है। यह डाल्फिन बहुत बुद्धिमान हैं। किस प्रकार की आवाज करने से उच्च आवृत्ति के परिवर्तक द्वारा अपने कानों को

सुनाई देगा, यह वे जानते हैं। छोटे-छोटे शब्दों का उच्चारण वे कर सकते हैं। आप स्वयं परीक्षा करके देख लीजिये।"

"इन सारी बातों का परीक्षण हम अवश्य करेंगे। लेकिन नियत काम के अलावा ये काम करने के लिये तुम्हें किसने कहा?"

"सर, मुझे जो काम सौंपा गया है वह मैं पूरा निष्ठा से कर रही हूं। वह कार्य समाप्त होने के बाद ही मैंने प्रयोग किये हैं।"

"ये प्रयोग हैं" डाक्टर ने तुच्छतापूर्ण स्वर में कहा। बिना नाश्ता किये ही उन्होंने ड्राइवर को जीप निकालने के लिये कहा। रातभर बैठ कर लिखा हुआ पत्र अनुराधा ने ड्राइवर को डाक में डालने के लिये दिया।

"यह चिट्ठी आपने लिखी," उस पर पता देखकर डाक्टर ने पूछा?

"जी हां," अनुराधा ने उत्तर दिया।

"तो तुमने इसमें अपने यशस्वी प्रयोगों के बारे में अवश्य लिखा होगा," डाक्टर ने पूछा।

"हां, सर। क्या मुझे नहीं लिखना चाहिये था।"

"हां। मेरी अनुमति के बिना अपना अनुसंधान प्रकाशित नहीं करना। इस नियम का तुम्हें पता है न?"

"प्रकाशन, मैंने तो केवल अपने घर वालों को लिखा है।"

"यही तो बात है। तुम्हारा पति इस पत्र को लेकर तुरन्त अखबारवालों के पास जायेगा।"

"क्यों? अखबार वालों को इस प्रकार के खबरों की जरूरत होती है क्या?"

"इस प्रकार के अपूर्ण अनुसंधानों को प्रकाशित करना मुझे अच्छा नहीं लगता। इस पत्र को फाड़ दीजिये। अभी मेरे सामने।"

"सर मैं इसे नहीं भेजूंगी। वापिस आने के बाद जब आप इस प्रयोग की सत्यता देख लेंगे तभी मैं इसे पोस्ट करूंगी।" घर चिट्ठी लिखने पर डाक्टर इतने नाराज हो जायेंगे इसकी उसे कल्पना तक नहीं थी।

"फाड़ डालो, कह रहा हूं न। अभी मेरे सामने।" डाक्टर ने कर्कश स्वर में चीखते हुये कहा।

पत्र फाड़ते हुये अनुराधा की आंखों में आंसू आ गये।

कुछ दिनों के बाद "डा. भार्गव का अपूर्व शोध" नामक शीर्षक से "मछलियों को मानव की भाषा सिखाने में भारत के वैज्ञानिकों की अपूर्व खोज," ऐसा समाचार सभी अखबारों की सुर्खियों और सारी पत्रिकाओं में छप गया।

लेख के अन्त में "अनुराधा देवलालीकर तथा मोहन राव इनके सहयोग से ही मैं इस शोध कार्य में सफल हुआ हूं। उनके अमूल्य सहयोग का मैं आभारी हूं।" छपा था।

इस अभूतपूर्व सफलता पर डा. भार्गव पर अनेक सम्मानों की वर्षा सी होने लगी। विश्व के विद्यापीठों ने उन्हें मानद उपाधि से सम्मानित किया।

(शेषांश पृष्ठ 45 पर)

इलेक्ट्रानिक पासा

राजीव रंजन
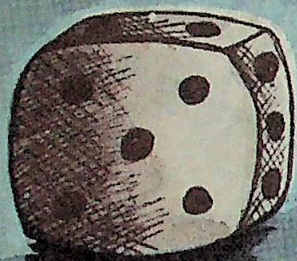
इलेक्ट्रानिकी क्षेत्र विस्तृत व व्याप्त है। जहां अंतरिक्ष, विमानिकी तथा कम्प्यूटर जैसे गूढ़ विषय इसके अन्दर समायोजित हैं, वहीं खेलों जैसे सरल लगने वाले विषय भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। खेलों में इलेक्ट्रानिक पद्धति का जोर पकड़ने का कारण, सुविधा तथा परिणाम की शुद्धता ही है। प्राचीन काल से ही भारतीय सभ्यता से चौपड़ और पासे का चोली-दामन का रिश्ता रहा है। जहां एक ओर ये मनोरंजन के सरल और सुलभ साधन रहे हैं वहीं वे मानसिक और तत्क्षण बुद्धि के परिचायक के रूप में भी माने जाते हैं। आज भले ही पासे को हम अंग्रेजी का "डाइस" जैसा सुन्दर व सुसंस्कृत शब्द देकर सम्बोधित करें परन्तु हमारा तात्पर्य तो केवल लूडो और व्यापारी जैसे खेलों के पासे से है। इलेक्ट्रानिक पासा, इलेक्ट्रानिक इंजीनियरी की विजय-यात्रा का एक छोटा पड़ाव है।

परिपथ चित्र में दर्शाये गये इलेक्ट्रानिक पासे में मुख्य रूप से दो एकीकृत परिपथों (आई.सी.-1 व आई.सी.-2) को उपयोग में लाया गया है।

घटकों की सूची

आई.सी.-1	-	एन.ई. 555
आई.सी.-2	-	सी.डी. 4017
एल.ई.डी. (ड$_1$ से ड$_5$)	-	हरा
ड$_6$	-	लाल
प्रतिरोध (र$_1$)	-	22 किलो ओहम
र$_2$	-	1.2 किलो ओहम
कंडेन्सर (क$_1$)	-	0.022 माइक्रोफैराड
स्विच (स$_1$)	-	(सामान्यतः बंद प्रकार का)
बैटरी एलीमिनेटर	-	9 वोल्ट
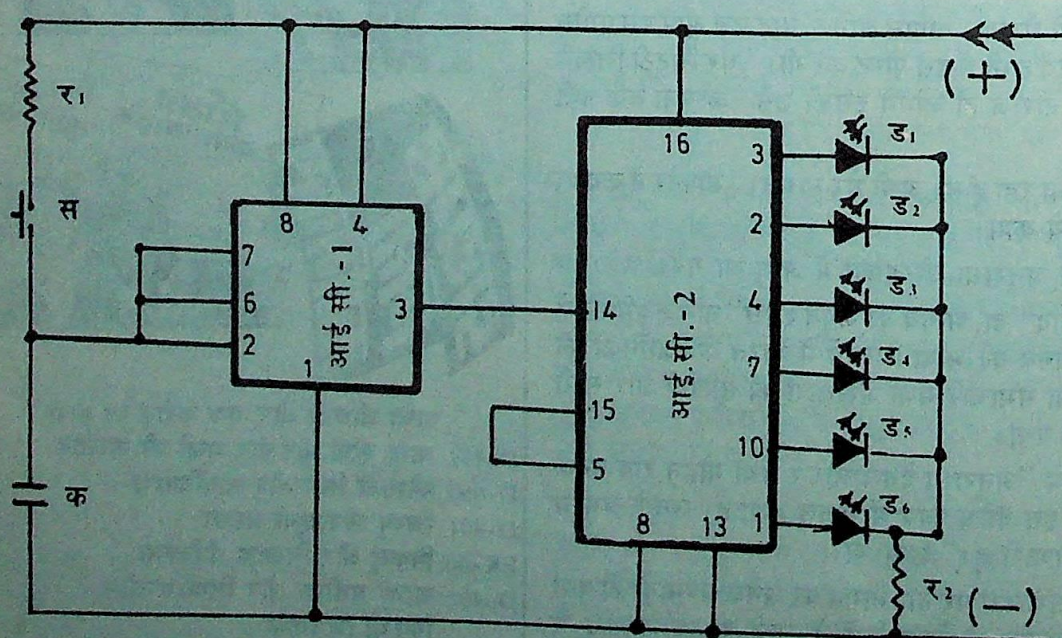
इलेक्ट्रानिक पासे का परिपथ
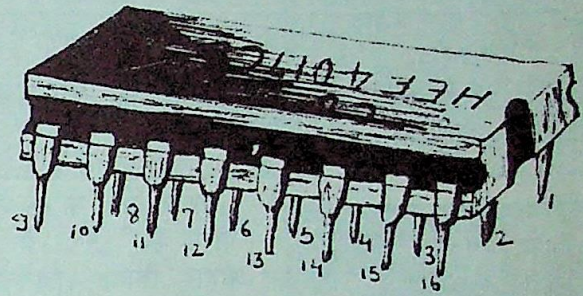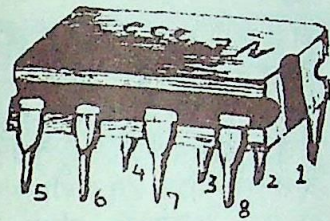
कार्य विधि

इस परिपथ में प्रयुक्त आई.सी.-1, जो दोलित्र या आसीलेटर के रूप में प्रयुक्त किया गया है, एक प्रकार का पल्स संकेत बनाने का कार्य करता है। ये पल्स संकेत पिन संख्या 3 से बाहर निकलते हैं। आई.सी. के कार्य करने के लिये, उसके अन्य दो पिनों (संख्या 8 तथा 1) पर क्रमशः धनात्मक व ऋणात्मक सप्लाई दी गई है।

आई.सी.-2 इस परिपथ में गणना (काउन्टिंग) का काम करता है। इसकी गणना का कार्य इस प्रकार से है:

आई.सी.-1 के पिन संख्या 3 से निकले हुये पल्स, उसकी पिन संख्या 14 से अन्दर प्रवेश करते हैं (ये पल्स ही आई.सी.-2 के द्वारा गिने जाते हैं)।

गणना के पश्चात आई.सी.-2 कीपिन सं. 1, 2, 3, 4, 7 व 10 से भिन्न प्रकार के संकेत निकलते हैं जो इन पिनों से जुड़े प्रकाश उत्सर्जक डायोडों (एल.ई.डी. — $ड_1$ से $ड_6$) को चालित करते हैं। प्रत्येक एल.ई.डी., आई.सी.-1 के पल्सानुसार ही चलता है यानि एक पल्स पर $ड_1$, दूसरे पर $ड_2$ और इसी प्रकार भिन्न पल्सों पर भिन्न संख्या के एल.ई.डी. जलेंगे। जलने-बुझने की यह प्रक्रिया इतनी जल्दी होगी कि आपको सारे के सारे एल.ई.डी. एक साथ जलते प्रतीत होंगे।

निर्माण विधि

एक कुचालक बोर्ड पर सारे घटकों को चित्र में दिये गये परिपथ के अनुसार यथास्थान सही-सही लगा दें और एक बक्से में इस प्रकार समायोजित करें कि स्विच $स_1$ का नॉब वाला सिरा बाहर रहे। अब एल.ई.डी. ($ड_1$ से $ड_6$) को क्रमानुसार बक्से में छोटे-छोटे छेद कर बाहर से लगा दें। इन छोटे-छोटे छेदों के पास $ड_1$ से $ड_6$ के लिये क्रमशः 1 से लेकर 6 तक के अंकों का निशान लगा दें जिससे एल.ई.डी. नंबरों के रूप में आपके समक्ष होंगे।

प्रयोग विधि

इस अनोखे पासे को प्रयोग में लाने के लिये सबसे पहले स्विच $स_1$ को दबाते हैं। जिससे सारे के सारे एल.ई.डी. जलने लगते हैं, मगर $स_1$ को छोड़ने पर कोई एक ही एल.ई.डी. जलता है जो किसी एक संख्या को इंगित करता है। यही अंक आपके पासे का अंक होगा।

सावधानी

परिपथ में प्रयुक्त आई.सी.-1 तथा आई.सी.-2 अत्यन्त संवेदनशील हैं। सोल्डरिंग करते समय थोड़ी सी उष्णता से भी इनके गरम होकर खराब होने का अंदेशा रहता है अतः इनके लिये आई.सी. आधार (बेस) का प्रयोग करें।

[श्री राजीव रंजन, डी.ई.ई. हाऊस नं. 559, सेक्टर- 1/बी, बोकारो इस्पात नगर, बिहार- 827012]

जीवनीय (द्विमासिक)

कार्यकारी सम्पादक : नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा; संपर्क स्थल : लोक स्वास्थ्य परम्परा समिति, सी 3/5 रिवर बैंक कालोनी, लखनऊ (उ.प्र.); वार्षिक शुल्क : 25 रुपये.

हमारे देश में जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह लोक स्वास्थ्य परम्परा के संबंध में भी धारणायें बनती और बिगड़ती रही हैं और ये धारणायें जन-जन तक प्रचलित भी रही हैं। इनमें से अनेक परम्पराएं आयुर्वेद, यूनानी और भारतीय स्वास्थ्य जैसी पद्धतियों के प्रकाश में मूल्यांकन करने पर शास्त्रसंगत सिद्ध होती हैं। परन्तु ये स्वास्थ्य परम्पराएं आज लोप होती जा रही हैं। प्रस्तुत पत्रिका का उद्देश्य इन लोप होती हुई लोक स्वास्थ्य परंपराओं को बचाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। पत्रिका का उद्देश्य अनेक देशव्यापी परम्पराओं पर आधारित ज्ञान के वैज्ञानिक स्वरूप को सरल भाषा में प्रस्तुत कर जन साधारण को रोजमर्रा की बीमारियों से बचाना है। यह पत्रिका ऐसा करने में सफल होगी या नहीं, कहना मुश्किल है परन्तु पत्रिका का प्रथम अंक जो कि ग्रीष्म अंक है उसके अवलोकन से प्रतीत होता है कि यह पत्रिका लोक स्वास्थ्य परम्पराओं को जन-जन तक पहुंचाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

प्रस्तुत अंक में 18 लेख हैं। प्रथम लेख 'ग्रीष्म ऋतु' पर है जो ग्रीष्म ऋतु में आहार विहार, रहन-सहन पर प्रकाश डालता है। इसी प्रकार कुछ लेख ग्रीष्म ऋतु में होने वाले रोग जैसे लू लगना, अतिसार व उनसे बचने के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान करते हैं। पांच लेखों में भिन्न प्रकार के औषधीय पदार्थों जैसे चन्दन, केवड़ा, बेल शंख पुष्पी तथा अदरक के औषधीय गुणों का वर्णन हैं। इसी प्रकार अन्य पांच लेख आहार प्रदार्थ जैसे करेला, परवल, पेठा, भुट्टा तथा सत्तू के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं। कुछ लेख ग्रीष्म ऋतु के शीतल पेयों के विषय में ज्ञान बढ़ाते हैं। पत्रिका का आवरण आकर्षक है और जड़ी बूटियों के उपयोग की याद दिलाता है लेकिन पत्रिका की छपाई में सुधार आवश्यक है। आशा है यह पत्रिका विभिन्न विषयों की जानकारी जनमानस की भाषा में प्रदान कर अपने मूल उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगी।

[डा. के.सी. गर्ग, निस्टाड्स, नई दिल्ली]

"साइंस टीज़र्स" और "मोर साइंस टीज़र्स"

लेखक : दिलीप एम. साल्वी; प्रकाशक : कोनार्क पब्लिशर्स, ए-149, मेन विकास मार्ग, दिल्ली-110 092; पृष्ठ : 122 प्रत्येक में; मूल्य : 30 रु. प्रत्येक का, हार्ड बाउण्ड 95 रु.
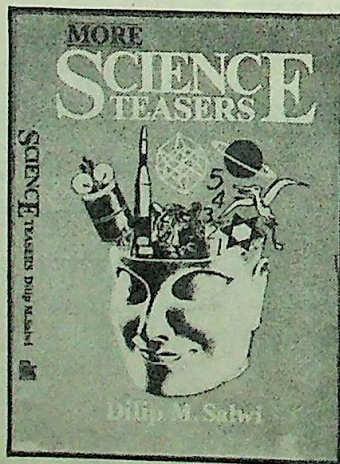
बच्चे एक ऐसी निधि हैं जिन्हें आप जैसे ढालना चाहें वैसे ढाल सकते हैं अतः उनका सही मार्गदर्शन करना आवश्यक है। बच्चों के विद्यार्थी जीवन में एक समय ऐसा आता है जब उन्हें कई विषयों में से कुछ का चयन करना पड़ता है ताकि वे अपने भविष्य का निर्माण कर सकें। लेकिन प्रायः बच्चों को विज्ञान के बारे में कुछ भ्रान्तियां हैं कि विज्ञान बड़ा कठिन विषय तो है ही, साथ ही नीरस भी। इन भ्रांतियों के निराकरण के उद्देश्य से ही ये किताबें प्रकाशित की गई हैं।

इन पुस्तकों में भौतिकी, रसायन और जीव-विज्ञान से लेकर पर्यावरण, कम्प्यूटर, कृषि, अंतरिक्ष तथा विज्ञान कथायें भी हैं। विज्ञान के विविध क्षेत्रों में होने वाली संभावित खोजों के बारे में भी ये पुस्तकें ज्ञानवर्द्धक सूचना देती हैं। आकाश में तारों को पहचानना, प्रयोगशाला के उपकरणों को जानना, ग्रहों की जानकारी प्राप्त करना, चित्रों को पहचानने आदि के बारे में ये पुस्तकें खेल-खेल में सूचना देती हैं।

लेखक ने लोकप्रिय विज्ञान के क्षेत्र में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से दो पुरस्कृत भी हुई हैं। जैसा कि बताया गया है कि पुस्तकें अंग्रेजी में हैं। यदि लेखक की कुछ पुस्तकों की तरह इनका भी हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित हो तो अत्युत्तम होगा। छपाई की दृष्टि से ये पुस्तकें आकर्षक हैं।

[श्री तुरशन पाल पाठक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 1100]

परतों का विकास

विजय कुमार उपाध्याय

हेनरी कैवेंडिश ने सन् 1798 ई. में गणना करके बताया कि पूरी पृथ्वी का औसत घनत्व 5.48 ग्राम प्रति घ. सेमी. है। हाल के अनुसंधान से पता चला कि पृथ्वी का औसत घनत्व 5.52 ग्राम प्रति घ. सेमी. है। चूंकि पृथ्वी की सतह पर उपस्थित शैलों का औसत घनत्व 2.80 ग्राम प्रति घ. सेमी. है, अतः यह स्पष्ट है कि पृथ्वी के भीतरी भाग का घनत्व 5.50 से अधिक होना चाहिए। आधुनिक जानकारी के अनुसार, गहराई के हिसाब से अधिक घनत्व के संस्तर मिले हैं तथा केन्द्र के पदार्थ का घनत्व लगभग 18 ग्राम प्रति घ. सेमी. है।

पृथ्वी का तापक्रम गहराई के साथ लगातार बढ़ता जाता है। भूपटल में तापमान वृद्धि की दर 10^0 से 50^0 सेल्सियस प्रति किमी. है। तापमान वृद्धि की औसत दर 30^0 सेल्सियस प्रति किमी. मानी जा सकती है। 1000 किमी. की गहराई पर यह दर घट कर 4.7^0 सेल्सियस प्रति किमी. हो जाती है। ए.जी. मैकनिश के अनुसार पृथ्वी के केन्द्र का ताप लगभग 2000^0 सेल्यि से अधिक नहीं हो सकता।

दाब भी पृथ्वी की गहराई के साथ बढ़ता जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी के केन्द्र पर यह 36 लाख वायुमण्डलीय दाब के बराबर है।

भूसंरचना :– अभी तक के अध्ययन से यह जानकारी मिली है कि पृथ्वी, तीन समकेन्द्रीय स्तरों में विभक्त है। ये तीन मुख्य स्तर हैं–भूपटल, प्रावर एवं क्रोड। भूपटल तथा प्रावर को मोहोविसिक असतति अलग करती है। संक्षिप्त भाषा में इसे मोह भी कहा जाता है। प्रावर एवं क्रोड को गुटेन वर्ग असतति अलग करती है।

भूपटल पृथ्वी की सब से बाहरी परत है जो ठोस अवस्था में है। इस परत की अधिकतम मोटाई 60 किमी. है जो पामीर के पठार क्षेत्र में पायी जाती है। समुद्रों की तलहटी में इस परत की मोटाई कम है, यहां तक कि प्रशान्त महासागर की तलहटी पर यह परत लगभग अनुपस्थित है। इस परत की औसत मोटाई 33 किमी. पायी गयी है। कोनरेड असतति 22 किमी. की गहराई पर भूपटल को दो पतले स्तरों में विभक्त करती है। बाहरी स्तर को सियाल कहते हैं जिसमें अधिसिलिक शैलों जैसे ग्रेनाइट, ग्रेनो डायोराइट की प्रधानता रहती है। भीतरी स्तर को सिमा कहते हैं जिसमें अल्प सिलिक शैलों जैसे-गैब्रो, बेसाल्ट आदि की प्रधानता रहती है।

भूपटल के नीचे प्रावर की परत है जो पृथ्वी के आयतन का लगभग 82% तथा पृथ्वी की मात्रा का लगभग 66% भाग अपने में समेटे हुए है। इसकी ऊपरी सीमा 33 किमी. की गहराई पर है जहां मोहोविसिक असतति इसे भूपटल से विलग करती है। प्रावर और क्रोड के नीचे का भाग लगभग 2900 किमी. गहराई पर है जहां गुटेनबर्ग असतति इसे क्रोड से अलग करती है। अभी तक किये गये अध्ययन से यह अनुमान लगाया जाता है कि प्रावर एक बहुत गाढ़े द्रव के रूप में है, जो डयूनाइट,पेरिडोराइट तथा इक्लोगाइट आदि शैलों से बना है। इस परत में उपस्थित पदार्थ का घनत्व 3.1 से 5.6 ग्राम प्रति घ. सेमी. तक है।

पृथ्वी की सबसे भीतरी परत क्रोड कहलाती है। इस का रेडियस 3,470 किमी. है। यह पृथ्वी के आयतन का लगभग 16% भाग तथा पृथ्वी की मात्रा का लगभग 33.5% भाग अपने में समेटे हुए है। इस परत का फैलाव पृथ्वी की सतह से 2900 किमी. की गहराई पर गुटेनबर्ग असतति से प्रारम्भ होकर पृथ्वी के केन्द्र तक है। क्रोड तीन पतले समकेन्द्रीय संस्तरों में विभक्त है। बाहरी क्रोड की मोटाई 2082 किमी. है तथा यह द्रव अवस्था में है। इसमें अधिकांश मात्रा निकेल तथा लोहे की है। मध्यवर्ती संस्तर लगभग 130 किमी. मोटा है। यह ठोस अवस्था में है तथा भारी तत्वों का बना है। क्रोड का भीतरी संस्तर लगभग 1250 किमी. मोटा है। यह भी ठोस अवस्था में है तथा भारी तत्वों से निर्मित है। क्रोड के पदार्थ का घनत्व 9.47 ग्राम प्रति घ. सेमी. से 18 ग्राम प्रति घ. सेमी. तक है।

विभिन्न परतों के विकास की प्रक्रिया :– पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी चाहे जिस परिकल्पना को भी हम ग्रहण करें, इसकी भीतरी संरचना जिसमें घनत्व के अनुसार विभिन्न परतों की सजावट है, यह सूचित करती है कि किसी काल में पृथ्वी अवश्य ही द्रव अवस्था में रही होगी। इस द्रव में इसके सभी घटक समसर्वत्र रूप में बिखरे हुए थे तथा इसमें संवाहन धारायें अनवरत काम कर रही थीं। ऐसी संभावना पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी दोनों प्रकार की परिकल्पनाओं से जाहिर होती है। यदि हम यह मान लें कि पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटके प्रज्वलित गैस पुंज के ठंडे होने से हुई तो यह स्पष्ट है कि गैस पहले द्रव में परिणित हुई तथा फिर ठोस में।यदि हम पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी ग्रहाणु परिकल्पना को मानते हैं तो भी यह स्पष्ट है कि टकराते हुए ग्रहाणु की गतिज ऊर्जा काफी ताप उत्पन्न करेगी। इतना ताप कि टकराने वाले ग्रहाणु पिघलकर आपस में सट जायें। इसके अतिरिक्त रेडियो सक्रिय विखण्डन से भी ताप उत्पन्न हुआ होगा।
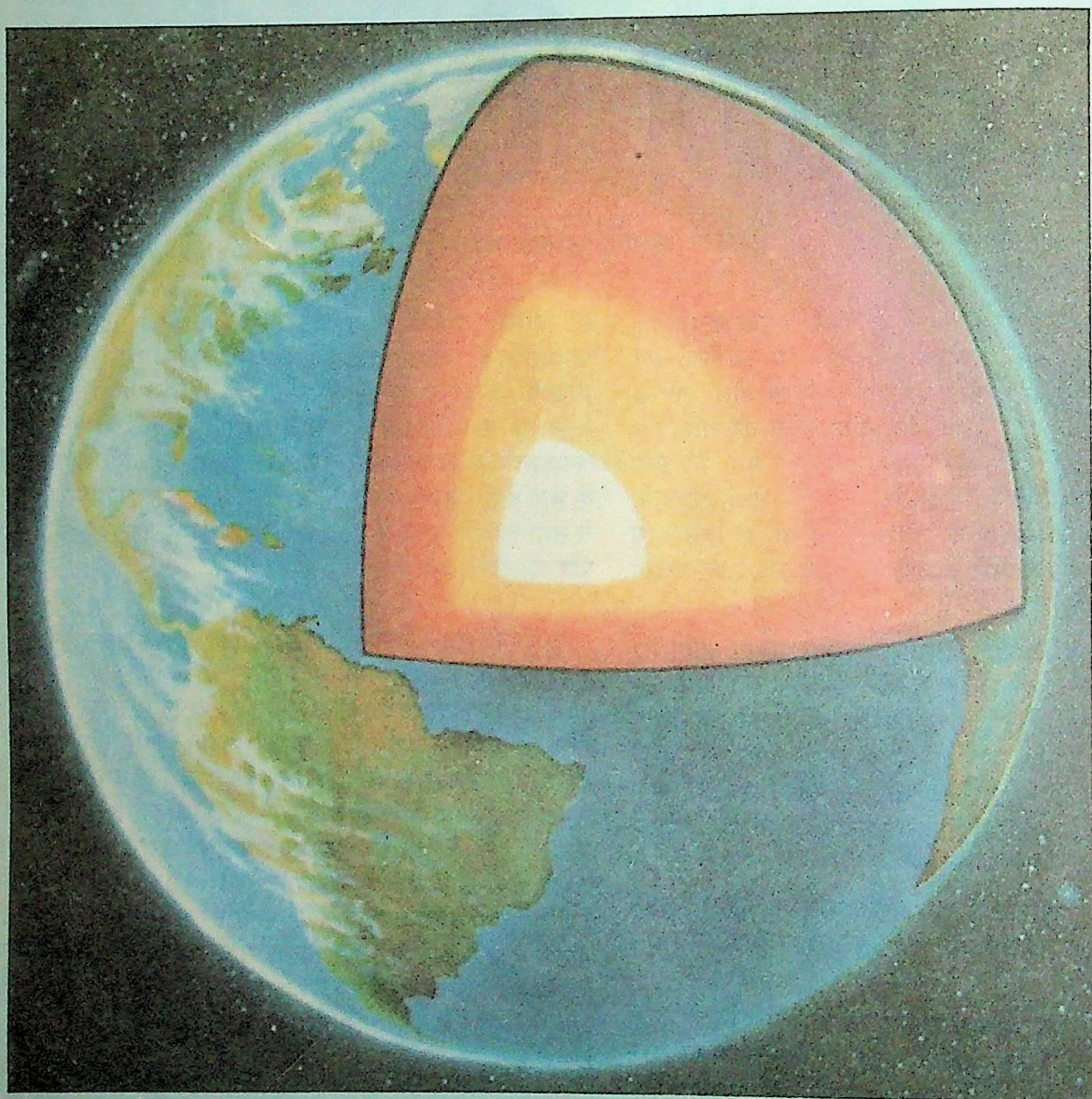
इस बहुस्तरीय पृथ्वी का गर्म आन्तरिक क्रोड संभवतः ठोस लौह और निकिल का बना होता है, बाहरी ठंडा क्रोड पिघली धातुओं, एक गर्म शैलीय प्रावर और एक पतली ठंडी पर्पटी का बना होता है।

ग्रहाणु-परिकल्पना के प्रणेताओं ने यह माना है कि नीहारिका के भीतर उपस्थित ग्रहाणुओं का तापक्रम अलग-अलग था, तथा जिन ग्रहाणुओं ने आपस में मिलकर पृथ्वी का निर्माण किया उनका तापक्रम काफी अधिक रहा होगा। सौर परिवार के अधिक घनत्व वाले भीतरी ग्रह तथा कम घनत्व वाले बाहरी ग्रह के गुणों में अंतर की व्याख्या तापमान के आधार पर अच्छी तरह की जा सकती है। ऐसा समझा जाता है कि नीहारिका-बादल के भीतरी भाग का तापमान अधिक था तथा इस क्षेत्र के ग्रहाणु अधिकांश सिलिकेट तथा लोहे के बने थे जिनसे सौर परिवार के भीतरी ग्रह बने। इसके विपरीत बाहरी भाग का तापमान कम था तथा इस क्षेत्र के ग्रहाणु जलवाष्प, अमोनिया एवं मीथेन के बने थे जिससे सौर परिवार के बाहरी ग्रह बने।

प्रारंभिक तथा अन्तिम अवस्था की कल्पना करने के बाद पृथ्वी की भौतिक तथा रासायनिक विकास की प्रक्रिया को हम लोग समझने की कोशिश कर सकते हैं। इस तरह की व्याख्या नर्टिग ने यह मानकर की कि पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटके गैस पुंज के ठंडे एवं संकुचित होने से हुई तथा लैटिमर ने यह मानकर की कि पृथ्वी की उत्पत्ति ग्रहाणुओं के आपस में मिलने से हुई। हालांकि नर्टिग तथा लैटिमर ने अलग-अलग प्रारंभिक स्थिति की कल्पना की परन्तु दोनों ने एक ही अंतिम स्थिति को माना कि क्रोड लोहे का बना है तथा प्रावर एवं भूपटल सिलिकेट का। यूरी ने भी ग्रहाणु, परिकल्पना को माना और कहा कि इस प्रकार से पृथ्वी की उत्पत्ति होने पर उसका प्रारंभिक तापमान 1500^0 से 2800^0 सेल्सियस तक पहुंच गया होगा।

पृथ्वी की उत्पत्ति चाहे जिस प्रकार से भी हुई हो इतना निश्चित है कि प्रारम्भ में यह काफी उच्च तापमान तथा द्रव अवस्था से गुजरी होगी। ऐसी सम्भावना व्यक्त की गयी है कि पृथ्वी की द्रवीय अवस्था में लोहा, आक्सीजन तथा सिलिकन एवं मैग्नेशियम जैसे तत्व प्रचुर मात्रा में थे। थोड़ी मात्रा में निकिल, गंधक, कैल्शियम तथा सोडियम जैसे तत्व भी मौजूद थे। आक्सीजन इतनी मात्रा में नहीं थी कि वह सभी विद्युत धनोद तत्वों को आक्सीजनयुक्त यौगिकों में परिवर्तित कर दे। फलस्वरूप कुछ लोहा तथा करीब-करीब पूरा निकिल पृथ्वी के केन्द्र की ओर उतरकर क्रोड में जमा हो गये। साथ ही साथ कुछ दूसरे भारी तत्व भी क्रोड में जमा होने लगे। क्रोड के ऊपर स्थित प्रावर में अधिकतर सिलिकेट जमा हुए। गंधक, लोहा तथा दूसरे तत्वों के साथ संयुक्त होकर अमिश्रणशील बूंदों के रूप में प्रावर तथा क्रोड में फैल गया। द्रव प्रावर जैसे-जैसे ठंडा होता गया संवाहन धाराओं के कारण पहले-पहल नीचे से रवाकरण प्रारम्भ हुआ तथा क्रोड के चारों ओर सिलिकेट का एक ठोस कवच बन गया। यह कवच प्रावर तथा क्रोड की सीमा रेखा बन गया। इस ठोस कवच के कारण क्रोड के शीतलीकरण की दर बहुत कम हो गयी। प्रावर में नीचे से जैसे-जैसे ओलीविन तथा पाइसेवसीन के रवाकरण से ठोस कवच मोटा होता गया। बचे हुए द्रव में एल्यूमीनियम, कैल्शियम, सोडियम, सिलिकन, जलवाष्प तथा कार्बन डाइआक्साइड की प्रतिशत मात्रा बढ़ती गयी।

प्रावर के ऊपर भूपटल की परत है। भूपटल के विकास के संबंध में भी पर्याप्त मत मतान्तर हैं। कुछ भूविज्ञानवेत्ताओं का मानना है कि संपूर्ण भूपटल पहले-पहल आग्नेय पत्थर (बेसाल्ट) के रूप में जमा था। ऐसा मानने पर यह स्पष्ट है कि थल एवं समुद्र के तल पर स्थित शैलों में फर्क नहीं होना चाहिए। इस परत में स्थानीय विभंग (फ्रैक्चर) के द्वारा नीचे की ओर से लावा तथा गर्म गैसों का समय-समय पर निष्काषन होता रहा। यही विभंग महाद्वीपों के नाभिक बने। विभंग के द्वारा निकलने वाला प्राकृतिक सिलिका तथा क्षारीय घोल जब भूपटल के साथ प्रतिक्रिया करता था तो उससे दूसरी तरह के शैलों का निर्माण होता था। अपक्षय, अपरदन तथा अवसादन के कारण भूपटल के शैलों में रासायनिक पृथक्करण की प्रक्रिया चलती रही।
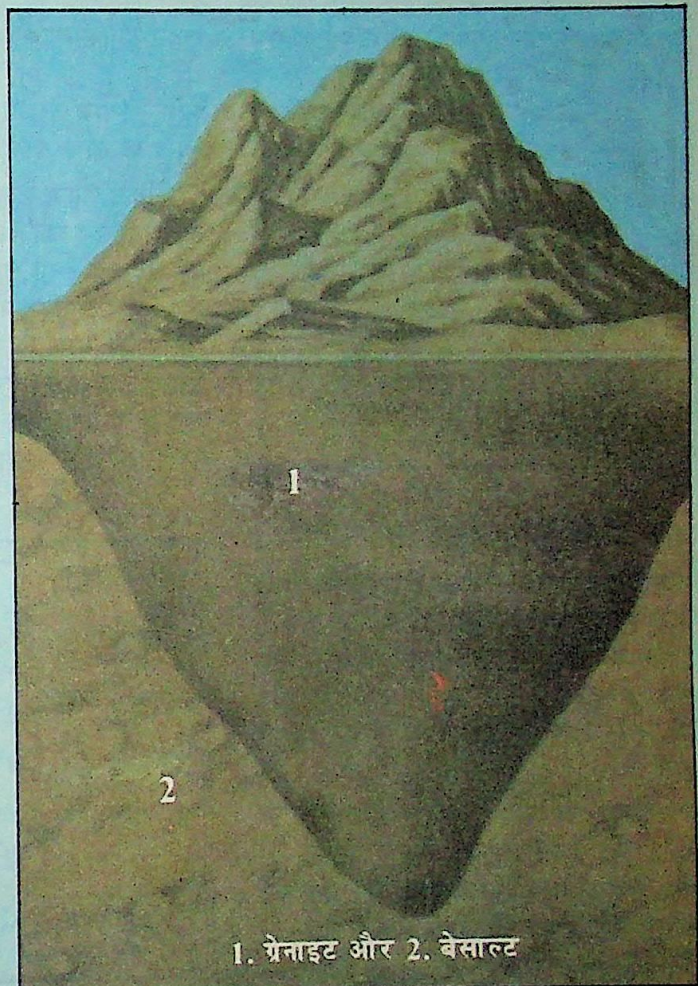
1. ग्रेनाइट और 2. बेसाल्ट

पृथ्वी की आन्तरिक काट

दूसरे मत के अनुसार प्रारंभिक महाद्वीप भूपटल के घनीकरण का नतीजा है। इस मत के अनुसार रवाकरण के द्वारा रासायनिक पृथक्करण हुआ। इस कारणवश पेरिडोटाइट-प्रावर आग्नेय पत्थरा वाला (बेसाल्टी) भूपटल बना। इस मत के अनुसार महाद्वीपीय नाभिक वहीं पर बना जहां पर ग्रेनाइट की बहुतायत थी।

आधुनिक अध्ययन से यह पता चला है कि स्थायी भूपटल का विकास एकाएक नहीं हुआ। यह पाया गया है कि पृथ्वी की आयु तथा पृथ्वी पर पाये गये सबसे पुराने शैल की आयु में करीब एक अरब वर्ष का अन्तर है। इस समयान्तराल के दौरान भूपटल में काफी हलचल एवं परिवर्तन आये। मूल महाद्वीपीय नाभिक आंशिक रूप में पुनः द्रवीभूत एवं पुनः रवाकरण के द्वारा ठोस बना है, वह भी एक बार नहीं अपितु कई बार।

[डा. विजय कुमार उपाध्याय, इंजीनियरिंग कालेज, भागलपुर, बिहार]
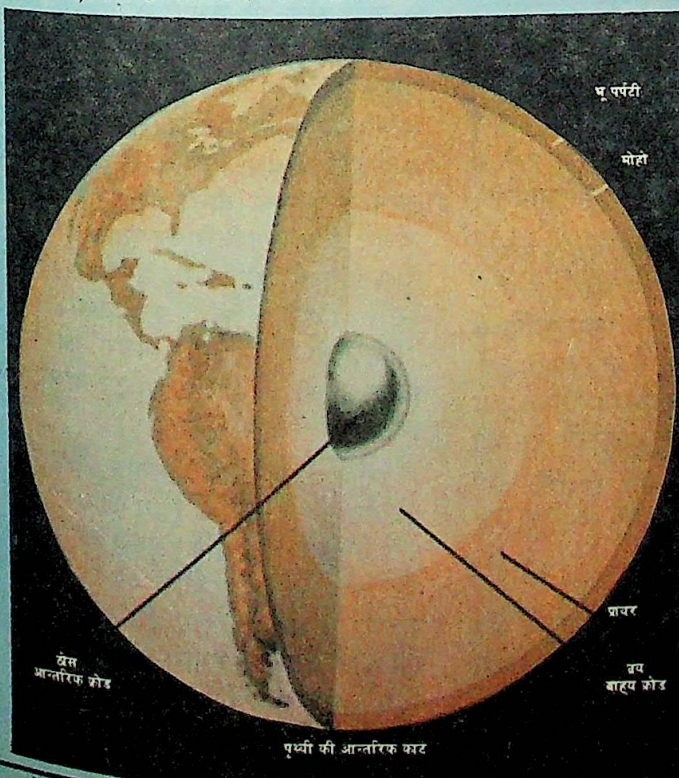
अब सायकिल धूप से चलेगी :

पश्चिमी जर्मनी के जरजन ब्रेमर ने एक ऐसी मशीन का निर्माण किया है जो सायकिल के पैडलों को तेज गति से चलाने के लिए सौर ऊर्जा के द्वारा शक्ति प्रदान करती है और सायकिल की गति 45 किमी. प्रति घंटे तक हो जाती है।

कैरियर पर लगे "सोलर मोड्यूल" से मोटर को मिली ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा, में परिवर्तित होकर सायकिल की गति को बढ़ाने में सहायक होती है।

सूर्यास्त के बाद सायकिल में लगी हुई बैटरी, सौर ऊर्जा के विकल्प के रूप में, सायकिल को बिना पैडल मारे तीन घंटे तक चला सकती है।

प्याज से दमा का उपचार :

शाकाहारियों ने लहसुन व प्याज को तामसी भोजन बता कर अस्वीकारा है। कुछ समय से लहसुन ने अपने औषधि गुणों के कारण खाद्य पदार्थों में उचित स्थान बना लिया है। लेकिन प्याज ने अपने सेवन करने वालों को स्वाद के साथ-साथ आंसू दिए हैं।

लेकिन प्याज के अनेक औषधीय गुणों का अब पता लग रहा है। हाल ही में वैज्ञानिकों ने इसे हृदय के लिए लाभकारी सिद्ध किया है। यहां तक कि पश्चिमी जर्मनी के वैज्ञानिकों ने प्याज को दमा के दौरे को कम करने में उपयोगी पाया है। इन वैज्ञानिकों ने प्याज के अर्क से, प्रयोगशाला के दमा पीड़ित जानवरों तथा मनुष्यों को, इस रोग से राहत दिलाई।

अब टमाटर नहीं सड़ेगा :

यदि जैव प्रौद्योगिकी का विकास इसी गति से हुआ तो निकट भविष्य में सड़े-गले फलों व सब्जियों का दिखना ही दुर्लभ हो जायेगा।

कैलीफोर्निया स्थित कालजीन इंक नामक बायोटैक कंपनी ने टमाटर की एक ऐसी किस्म का विकास किया है जिस से प्राप्त टमाटर भण्डारण अवधि में लंबे समय तक नहीं सड़ेंगे। ऐसे टमाटर अपने रंग-रूप व अन्य गुणों में साधारण टमाटरों जैसे ही होंगे। अमेरिका के फूड एण्ड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन ने इन्हें खाने के लिए हर तरह से सुरक्षित पाया है।

शीघ्र ही अन्य फल व सब्जियां भी जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से सड़ने-गलने से बचाई जा सकेंगी और लम्बे समय तक भण्डारित की जा सकेंगी। भारत जैसे देश के लिये ये न सड़ने वाली किस्म, जहां खाद्य पदार्थों की बड़ी मात्रा सड़ने के कारण नष्ट हो जाती है, वरदान सिद्ध होगी।

लेसर से अधिक अन्न उत्पादन

विज्ञान के सभी क्षेत्रों में किसी न किसी प्रकार से लेसर किरणों का प्रयोग हो रहा है। किरणें लंबी दूरी की टेलीफोन काल प्रेषित करने में मदद करती हैं तो स्टीरियो सिस्टम पर काम्पैक्ट डिस्क का डिजिटल कोड भी पढ़ती हैं।

कृषि क्षेत्र भी लेसर उपयोग से अछूता नहीं रहा। अब बीजों को बोने से पहले लेसर प्रकाश में रखने से किसान गेहूं, जौ आदि की अच्छी फसल ले पायेंगे। बेलोरसियन विज्ञान अकादमी के वैज्ञानिकों ने लेसर प्रकाश की तरंग दैर्ध्य तथा बीजों पर इसका प्रकाश डालने की उचित विधि का पता लगा लिया है जिस से फसल का अधिक उत्पादन हो सके। इस विधि में शोधकर्ताओं ने "हीलियम-कैडमियम" लेसर का प्रयोग किया है जो 441.6 नैनोमीटर वाला नीला प्रकाश उत्पन्न करता है।

इस शोध के उत्तम परिणाम, बीजों को [illegible] घंटे तक लेसर प्रकाश, जिस की दर 10 [illegible] प्रति वर्ग हो, में रख कर प्राप्त हुए हैं। [illegible] घंटे रुक कर फिर बीजों को दो घंटे [illegible] प्रकाश में सुखाया जाता है। इन प्रयोगों से गेहूं व जौ, दोनों के उत्तम बीज प्राप्त हुये हैं। लेसर उपचारित बीजों की अधिक उत्पादन क्षमता के साथ-साथ इन में प्रोटीन की मात्रा भी अधिक पाई गई है।

कैसे करें? : तेल उद्योग की एक बहुत बड़ी समस्या तेल से पानी अलग करने की है, क्योंकि अधिकांश तेल क्षेत्रों में पानी मिश्रित तेल बहुतायत में मिलता है।

इस समस्या के समाधान के लिए जोरहाट स्थित क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला ने एक रसायन विकसित किया है जो इस तेल की 90 प्रतिशत मात्रा को पानी से अलग करने में सक्षम है। इस के उपयोग से तेल अपने अवयवों में विघटित होकर पानी की सतह में तैरने लगता है जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है।

इस रसायन की क्षमता का अध्ययन तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग तथा आयल इण्डिया लिमिटेड ने अपने उत्तर पूर्वी तेल क्षेत्रों में किया है। अब क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जोरहाट इसका व्यापारिक स्तर पर उत्पादन का प्रयास कर रही है।

इंजेक्शन और चश्मा : चश्मे वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। यहां तक कि छोटे-छोटे स्कूल जाने वाले बच्चों के भी चश्मे तेज गति से चढ़ रहे हैं जो उन के खेल-कूद में बाधक होते हैं।

छोटी उम्र में आंख की इस खराबी को "मायोपिया" या शार्ट साइटेडनेस" कहते हैं। इस विकृति में "आइबाल" की लम्बाई बढ़नी शुरू हो जाती है। इस में आंख के लेन्स से दूर की वस्तु की परछाई रेटिना में न बनकर, लेन्स और रेटिना के बीच किसी अन्य स्थान पर बनती है। इस दशा में चश्मे में कानवेक्स लेन्स का प्रयोग होता है जिसकी ऋण "पावर" होती है।

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो चश्मे से छुटकारा न चाहता हो। इस का लगातार प्रयोग हर तरह से असुविधाजनक है। पिछले कुछ सालों से मायोपिया का उपचार शल्यचिकित्सा से किया जाता रहा है। लेसर किरणों का भी उपयोग इस रोग के उपचार में हो रहा है।

मास्को के हेल्महोल्ज इन्स्टीट्यूट व डाक्टर "शार्ट साइट" वाले मरीजों का इलाज आइबाल के पृष्ठ भाग पर पेनोजेल नामक संश्लेषित पालीमर का इंजेक्शन देकर कर रहे हैं। यह एक झागदार द्रव है। इस इंजेक्शन से आइबाल की ऊपरी परत को, जिसे इसक्लीरा कहते हैं, शक्ति मिलती हैं, जो आइ बॉल के आकार को बढ़ने से रोकता है।

पिछले पांच वर्षों में 1500 मरीजों को यह इंजेक्शन लग चुका है। इससे दो तिहाई लोगों के आंखों में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ।
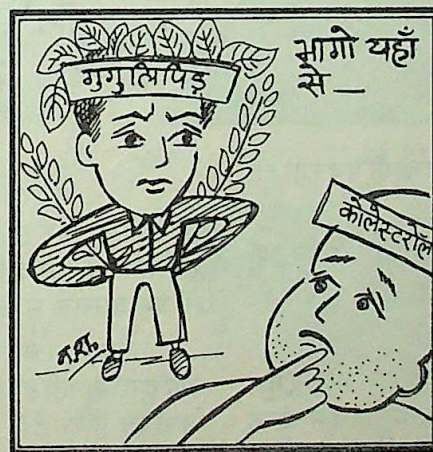
गुगुलिपिड—हृदय रोग की औषधि : वस्तुतः रक्त में कोलेस्टेरॉल की मात्रा में वृद्धि को हृदय रोग का कारण माना गया है। घी व मक्खन जैसे संतृप्त वसा अम्ल युक्त वसा के उपयोग से कोलेस्टेरॉल की मात्रा में वृद्धि होती है।

लखनऊ के केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान ने "गुगुलिपिड" नामक कोलेस्टेरॉल की मात्रा घटाने वाली औषधि विकसित की है। इस दवा का स्रोत राजस्थान, गुजरात व कर्नाटक में उगने वाला पेड़ 'कोमीफेरा मुकुल' है।

बंबई की इंडियन फारमास्युटिकल कंपनी ने सब से पहले 1987 में संस्थान की इस विधि का उपयोग कर "गुगुलिपिड" का उत्पादन आरंभ किया जिस की 47.75 लाख रुपये की बिक्री हुई।

इस विधि को अब फ्रांस की दवा बनाने वाली एक बहुत बड़ी कंपनी ने भी खरीद लिया हैं। यह औषधि बनाने की प्रथम भारतीय विधि होगी जिसे किसी विकसित देश ने खरीदा है।

प्रदूषण विहीन कीट नाशक : नीम को अपने औषधीय गुणों के कारण सम्पूर्ण विश्व में आदर पूर्ण स्थान प्राप्त है। मलेरिया जैसी जानलेवा बीमारी का निदान भी इस में है।

लन्दन में इम्पीरियल कालेज ऑफ साइंस एण्ड टैक्नोलाजी के कार्बन रसायनज्ञों ने नीम से एक ऐसे कीटनाशक की खोज की है जो मनुष्यों व छोटे जानवरों के लिये पूर्णतया सुरक्षित व हानिरहित है। कील विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डा. डेविड मौरगैन ने यह कीटनाशक रसायन अजाडिरेक्टीन, नीम के पेड़ (**अजाडिरेक्टा इण्डिका**) से प्राप्त किया। इस रसायन में प्रभावकारी कीटनाशक गुण पाये गये हैं।

इस रसायन की संरचना तथा संश्लेषण का अध्ययन इंपीरियल कालेज में प्रोफेसर स्टीनले के नेतृत्व में हुआ। इस कीटनाशक से प्रदूषण नाममात्र भी नहीं होता। यह रसायन खाद्य श्रृंखला में जमा न होकर शीघ्र ही विघटित हो जाता है। इसी कारण इसे 'पर्यावरण मित्र' कीटनाशक या ग्रीन कीटनाशक कहा गया है।
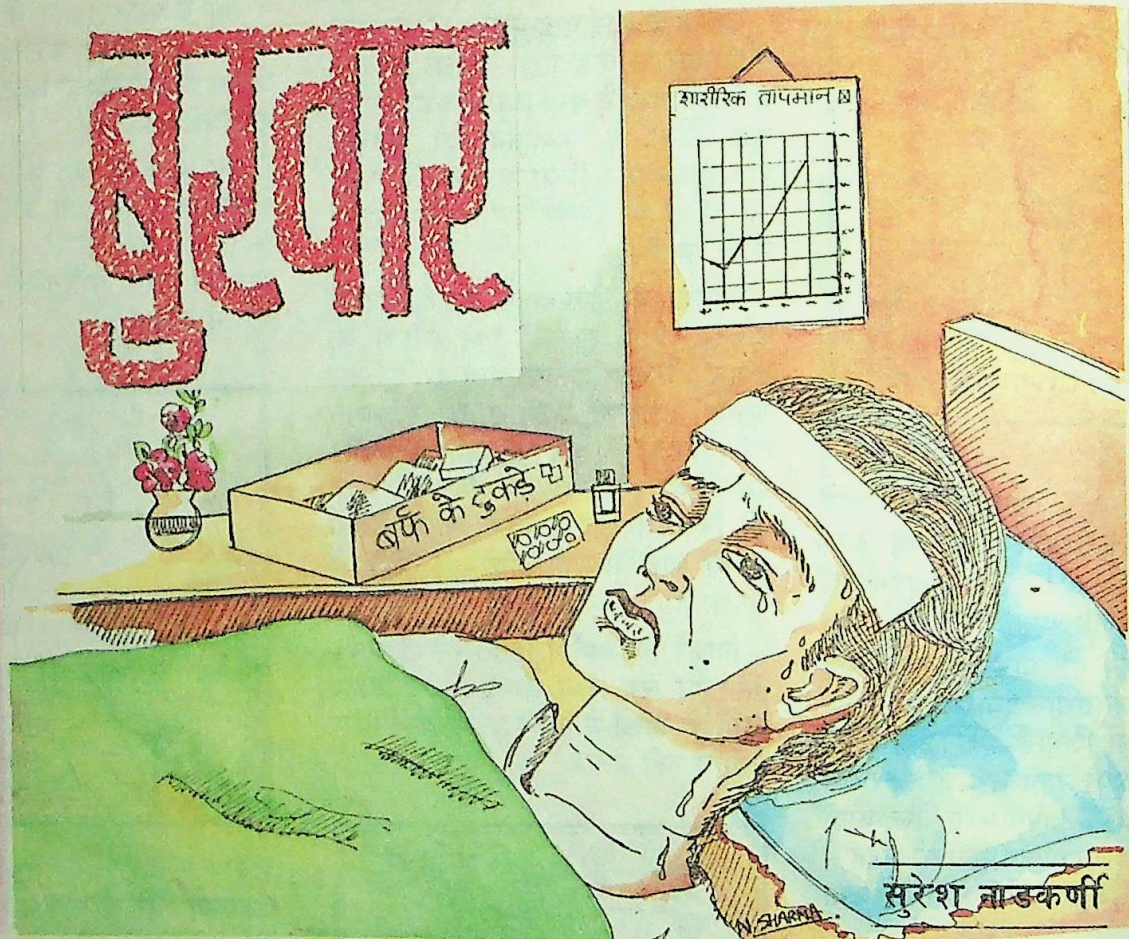
"अरे नीना! आज तुम सुस्त क्यों दिखायी पड़ रही हो, क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है?"

"नहीं, कोई खास बात नहीं है डाक्टर साहब, कुछ हल्का सा बुखार लग रहा है।"

"बुखार! कब से?"

"चिंता की कोई खास बात नहीं है डाक्टर साहब! आजकल मुझे प्रायः बुखार आ जाता है, मुझे चिंता भी नहीं है। दो चार दिन में अपने आप उत्तर जायेगा।"

"नीना! क्या मतलब है तुम्हारा? इसे बहुत साधारण बात मत समझो, चलो अपना परीक्षण करवा लो।"

"नहीं, डाक्टर साहब इसकी आवश्यकता नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूं।"

"नीना, यह ठीक नहीं है। तुम्हें इस तरह अपनी बीमारी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। शायद तुम नहीं जानती कि इस तरह बुखार का चढ़ना-उतरना घातक भी हो सकता है।"

"ओह! यदि ऐसा है तो कृपया आप पहले मुझे यह बतायें कि ज्वर क्या होता है? कैसे होता है और इसका क्या अर्थ होता है और ?"

"यह तो तुम जानती हो कि ज्वर का होना इस बात का संकेत है कि हमारे शरीर की साधारण प्रक्रिया में कोई व्यवधान उत्पन्न हो गया है।"

"हां! डाक्टर साहब, ऐसा तो स्वयं रोगी को भी अनुभव होता है क्योंकि बुखार में वह भी अपने को चुस्त-दुरुस्त अनुभव नहीं करता लेकिन वास्तव में ज्वर होता कैसे है।"

"यह बताना तो कठिन है कि ज्वर का दैहिक कारण क्या है लेकिन क्या तुम जानती हो कि हमारे शरीर का ताप, नियमनक्रिया-विधि नियंत्रित होता है।"

"हां! डाक्टर साहब मैंने ऐसा सुना तो है, लेकिन मुझे इसकी पू जानकारी नहीं है"।

"नीना! इससे पहले कि मैं तुम्हें विस्तृत जानकारी दूं तुम मुझे बताओ कि स्वस्थ मनुष्य के शरीर का सामान्य ताप क्या होता है।"

"हां, हां! यह तो मुझे पता है। सामान्य अवस्था में शरीर का ता 36.2^0 सेल्सि. या 97.2^0 फारेनहाइट होता है।"

"बिल्कुल ठीक! शरीर के इस सामान्य ताप के बढ़ जाने को ही ह ज्वर कह सकते हैं। वैसे तो शरीर के ताप में असामान्य वृद्धि को हम ज्वर का नाम दिया है, लेकिन जब यह वृद्धि बहुत कम हो तो निश्चित करना कि ज्वर है या नहीं, जरा मुश्किल होता है उदाहरणस्वरूप यदि मुंह से नापने पर शरीर का ताप 37.7^0 सेल्सि 100^0 फारेनहाइट हो तो उसे निश्चित ही ज्वर कहा जाता है। लेकि यही ताप यदि 99^0 फारेनहाइट हो तो यह जरूरी नहीं कि इसे

कहा जायेगा। यद्यपि यह भी उस सामान्य ताप से अधिक ही है जो कि आमतौर से थर्मामीटर में एक लाल तीर से अंकित होता है।"

"यह कैसे डाक्टर साहब! साधारणतः थर्मामीटर का लाल तीर तो सामान्य ताप ही बताता है न?"

"नहीं ऐसा नहीं है। थर्मामीटर में जो सामान्य ताप को दर्शाने वाला तीर का चिन्ह होता है वह संगणात्मक माध्य के आधार पर लगाया जाता है, उसका मतलब यह कदापि नहीं होता है कि हर मनुष्य का यही सामान्य ताप होगा या होना चाहिए। किसी भी मनुष्य का सामान्य ताप इस तीर से 0.5^0 कम या ज्यादा भी हो सकता है। इसलिए मैं कह रहा था कि 99^0 फारेनहाइट तापमान को निश्चित रूप से ज्वर की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।"

"अच्छा! डाक्टर साहब, लेकिन आप मुझे ताप नियमित करने वाली क्रियाविधि के बारे में बताने वाले थे न!"

"हां, अवश्य! हमारे शरीर की ताप नियमित प्रणाली हमारे मस्तिष्क में होती है जो विभिन्न उद्योगों में तापों को नियमित करने के लिये प्रयुक्त उपकरण थर्मोस्टैट या ताप स्थापी की भांति कार्य करती है।"

"डाक्टर साहब, क्या ज्वर की दशा में शरीर की ताप स्थापी प्रणाली बिल्कुल काम करना बंद कर देती है?"

"नहीं, काम तो यह ज्वर की दशा में भी करती है। लेकिन इस दशा में कई प्रकार के प्रोटीन, उनके विखंडित अवशेष या अनेक प्रकार के बैक्टीरिया द्वारा उत्सर्जित विषैले तत्वों के कारण इसका ताप स्थिरांक बढ़ जाता है। ऐसे तत्व जो इस प्रक्रिया को जन्म देते हैं, पायरोजन कहलाते हैं। सामान्यतः हमारे शरीर में यह पायरोजन या तो बैक्टीरिया द्वारा उत्सर्जित होते हैं या शरीर के विहासी ऊतकों द्वारा छोड़े जाते हैं।"

"यह तो समझ में आ गया डाक्टर साहब लेकिन बच्चों को अक्सर घातक अतिसार या डायरिया के साथ-साथ भी ज्वर हो जाता है।"

"हां! तुम बिल्कुल ठीक कह रही हो। इस दशा में जब शरीर में अतिसार के कारण पानी की कमी हो जाती है तब निर्जलीकरण से मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस, जिसमें मानव शरीर की ताप नियमन प्रणाली स्थित होती है पर प्रभाव पड़ता है, और यह गडबड़ा जाती है।"

"डाक्टर साहब! ज्वर के समय रोगी को ठंडक या कंपकंपी क्यों महसूस होती है?"

"चूंकि ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में रक्त का ताप, तापस्थापी के ताप स्थिरांक से कम होता है, तब स्वचालित तापस्थापी शरीर के ताप को बढ़ाने के लिए तेजी से कार्य करता है। इस अवस्था में रोगी अधिक ठंड महसूस.करता है। इसके अतिरिक्त रोगी की त्वचा रक्त वाहिनियों के सिकुड़ने के कारण ठंडी हो जाती है, इसी कारण कंपकंपी छूटने लगती है।"

"ऐसा कब तक होता है?"

"यह तब तक होता है जब सारे शरीर का ताप, ताप नियमन प्रणाली के बढ़े हुए ताप के बराबर नहीं हो जाता है। ऐसा होते ही रोगी को गर्मी या सर्दी का आभास नहीं होता।"

"क्या ताप कम होने का भी कोई संकेत शरीर की अवस्था से मिलता है?"

"निश्चित रूप से! ज्योंही ज्वर पैदा करने वाला तत्व या कारक समाप्त हो जाता है या दवाओं द्वारा समाप्त कर दिया जाता है तो तापस्थापी का ताप सामान्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में वह पहले से ठीक विपरीत दिशा में कार्य करता है अर्थात् अब रक्त का ताप 98.6° फारेनहाइट से अधिक होता है और तापस्थापी उसे वापस सामान्य सूचांक पर लाने का प्रयत्न करता है, तो त्वचा में बहुत गर्मी अनुभव होती है और रोगी को पसीना आता है। चिकित्सक की भाषा में इस स्थिति को "फ्लश" या "क्राइसिस" कहते हैं। रोगी की यह दशा ज्वर उतरने का संकेत देती है।"

"डाक्टर साहब, ज्वर की अधिकतम सीमा क्या होती है और क्या यह हानिकारक होती है?"

"शरीर का अधिकतम ताप 110° फारेनहाइट तक जा सकता है। लेकिन इस अवस्था से यदि ताप जल्द ही ब्रान्डी या बर्फ का पानी का लेप करके कम न किया जाये तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। वैसे भी शरीर का ताप 106° फारेनहाइट से अधिक होते ही मस्तिष्क की कोशिकायें नष्ट होने लगती हैं जो दुबारा कभी भी ठीक नहीं हो पाती हैं। इसके अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों की कोशिकायें भी क्षतिग्रस्त होती हैं और इससे कहीं कहीं रक्त-स्राव होने लगता है जो जान के लिये खतरनाक साबित हो सकता है।"

"डाक्टर साहब कभी-कभी गर्मियों में कुछ लोगों को लू लग जाती है, इससे कुछ मर भी जाते हैं, क्यों?"

"नीना! उसे यद्यपि हम ज्वर की संज्ञा नहीं दे सकते हैं, लेकिन यह सत्य है। इस स्थिति में हमारे शरीर की ताप नियमन प्रणाली वायमण्डल के अत्यधिक ताप के कारण नष्ट हो जाती है। इससे शरीर का ताप 107° से 110° फारेनहाइट तक हो जाने से रोगी की मृत्यु हो जाती है। हां, यदि समय रहते उपचार हो तो कुछ हद तक ताप नियंत्रित होने से रोगी बच सकता है।"

"डाक्टर साहब! कभी-कभी अन्तः शिरा इंजेक्शन से भी तो ज्वर हो जाता है?"

"हां! पहले प्रायः ऐसा हो जाता था। क्योंकि पहले शिरा से सुई लगाने के लिए जो उपकरण प्रयोग किये जाते थे वे साधारणतः उबालकर प्रयोग किये जाते थे। उबालने के बावजूद उनके द्वारा जीवाणु आदि अनेक पायरोजनों का शरीर में प्रवेश करने की सम्भावना रहती थी। लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब तो जो उपकरण प्रयोग किये जाते हैं वे पूरी तरह से कीटाणुरहित होते हैं और एक बार ही प्रयोग किये जाते हैं, जिससे ज्वर संक्रमण नहीं होता है।"

"लेकिन डाक्टर साहब, टायफॉयड या हैजे का टीका लगाने पर भी मुझे हमेशा ज्वर हो जाता था।"

"ऐसा इसलिए होता था क्योंकि ऐसे टीकों में पायरोजेनिक पदार्थ होता है। रोग से बचाव के लिए ज्वर लाने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है इसलिये इसे ज्वर चिकित्सा कहते हैं।"

"लेकिन डाक्टर साहब! क्या यह जरूरी है?" क्या यह धारणा सही है कि ज्वर का होना एक प्रकार से अन्य बीमारियों से बचाव करता है।

"हां यह ठीक है। कुछ चिकित्सा वैज्ञानिक भी यह मानते हैं कि बीमारियों के विरुद्ध एक निश्चित सीमा तक ज्वर शरीर की रक्षा करता है क्योंकि इससे कुछ बीमारियों के जीवाणु शरीर का ताप बढ़ने पर स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।"

"डाक्टर साहब! ज्वर के रोगी के लिये विश्राम आवश्यक है?"

"हां, बिल्कुल आवश्यक है। क्योंकि ज्वर के कारण असुविधा शिथिलता तथा थकान तो हो जाती है। कभी-कभी शरीर में दर्द भी होने लगता है। अतः विश्राम करने से रोगी के शरीर की ऊर्जा संचित होकर रोगों से लड़ने में काम आती है।"

"डाक्टर साहब! ज्वर के और क्या-क्या प्रभाव हो सकते हैं?"

"बुखार से पीड़ित व्यक्ति की मांसपेशियों और हड्डियों में जलन होने लगती है। सिरदर्द, प्यास, भूख में कमी, कब्ज, जीभ का बेस्वाद होना और त्वचा का शुष्क होना, बैचेनी आदि लक्षण भी बुखार के कारण होते हैं। इस स्थिति में हर डिग्री ताप बढ़ने के साथ-साथ नाड़ी की गति भी आठ या दस धड़कन प्रति मिनट की दर से बढ़ जाती है।"

"अच्छा, डाक्टर साहब! बुखार के रोगी को क्या खुराक लेनी चाहिए। कुछ लोग तो बुखार में भूखे रहते हैं और खा ही नहीं पाते।"

"नहीं' भोजन छोड़ना ठीक नहीं होता, क्योंकि ज्वर की दशा में शरीर में भोजन को आत्मसात करने वाली क्रियाएं तेज गति से होती हैं जिसके फलस्वरूप यद्यपि भूख नहीं लगती है, लेकिन शरीर को भोजन की आवश्यकता अधिक होती है।"

"डाक्टर साहब, क्या ऐसी भी बीमारियां हैं जिनके कारण ज्वर हो जाता है?"

"हां! ज्वर पैदा करने वाली बीमारियों की सूची काफी लंबी है। छुआछूत की सारी बीमारियां, मलेरिया, क्षयरोग, सर्दी-जुकाम, गले के संक्रमण, एनफ्लुएन्जा, खसरा, फोड़े आदि में ज्वर होता ही है। इसके अतिरिक्त पीलिया, अपेंडिसाइटिस, पित्ताशयकोप आदि में भी ज्वर हो जाता है।"

आपने तो काफी डरा दिया है अंतिम प्रश्न अवश्य पूछूंगी।

"ज्वर के रोगी की देखभाल कसे करनी चाहिए?"

"हां! यह जानना भी बहुत आवश्यक है। ज्वर के रोगी को पानी अथवा फलों का रस अधिक से अधिक पीना चाहिए। इसके साथ-साथ उसे अन्य शक्ति-वर्धक व हल्का भोज्य पदार्थ जैसे खिचड़ी थोड़ी-थोड़ी लेनी चाहिए। बाद में डाक्टर को अवश्य दिखाना चाहिए। कभी भी स्वयं डाक्टर नहीं बनना चाहिए क्योंकि डाक्टर ज्वर कम करने की दवा जैसे एस्पिरिन या पैरासिटामॉल के साथ-साथ एक उपयुक्त एन्टीबायोटिक भी देता है। डाक्टर जब तक कहे दवा जरूर खानी चाहिए। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ज्वर को बहुत अधिक बढ़ने नहीं देना चाहिए। 39° सेल्सियस ज्वर की अवस्था में बर्फ के ठंडे पानी से शरीर को ठंडा रखना चाहिए।"

"इतनी मूल्यवान जानकारी के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद डाक्टर साहब! लीजिये अब मेरा परीक्षण कीजिये।

[प्रस्तुति : डा. किशोर कुमार कक्कड़, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]

गणितज्ञ महिलाएं : 1

हाइपेशिया, आन्याजी, एमिली और सोफी जेरमी

गुणाकर मुले

पुरातन काल में, जब अभी पितृसत्ता के युग का आरंभ नहीं हुआ था, नारी ने मानव-समाज के उन्नयन में और कई विज्ञानों की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी उसके ऊपर थी, इसलिए शिशुरोगों के कई सारे परंपरागत उपचार उसी ने खोजे होंगे। पाककर्म उसी के जिम्मे था। उसने न केवल तरह-तरह की खाद्य वस्तुओं का चयन किया, अपितु आरंभ में मिट्टी के अनगढ़ बर्तन और टोकरियां भी उसी ने बनाई होंगी। रसायनशास्त्र की नींव नारी ने ही डाली है। आधुनिक रसायन को जन्म देने वाले मध्ययुग के कीमियागरों की साधना नारी (रससाधिका) के सहयोग के बिना अधूरी ही रह जाती थी। कृषिकर्म की जननी नारी ही है।

आरंभिक ऋग्वेदिक समाज को अपनी आदिम साम्यवादी कबीलाई व्यवस्था का स्मरण था, इसलिए नारी को अभी काफी आजादी थी। ऋग्वेद में घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि कई ऋषिकाओं के नाम देखने को मिलते हैं। इन महिलाओं ने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना की है। मगर बाद में भारतीय समाज में नारी की वह स्थिति नहीं रही। नारी जाति के लिए ज्ञान-विज्ञान के दरवाजे एक प्रकार से बंद हो गए। प्राचीन भारत में रानियां हुई, वीरांगनाएं हुई, संत-कवियित्रियां हुई, महिलाओं ने शिल्पों व तकनीकों के विकास में भी खूब योग दिया, मगर प्राचीन भारत की किसी वैज्ञानिक महिला के बारे में कहीं कोई जानकारी नहीं मिलती।

नारी के मामले में पितृसत्ता-प्रधान प्राचीन यूनानी समाज की भी यही स्थिति थी। देमोक्रितस, प्लेटो, अरस्तू, आर्किमिदीज, यूक्लिड आदि महान वैज्ञानिकों को जन्म देने वाली वैभव युगीन यूनानी संस्कृति ने किसी भी महिला वैज्ञानिक को पैदा नहीं किया। ईसा की चौथी सदी में जब यूनानी विज्ञान लगभग निष्प्राण को चुका था, तब एक अंतिम धड़कन के रूप में हमें सिकंदरिया के यूनानी विद्याकेंद्र में एक महिला वैज्ञानिक के दर्शन होते हैं। वह महिला थी **हाइपेशिया**— एक वैज्ञानिक पिता की पुत्री, एक गणितज्ञा, सिकंदरिया के विद्यापीठ में दर्शन की प्राध्यापिका। उसके एक जीवनीकार जे. तोलांद ने उसे "एक सर्वाधिक सुंदर, सर्वाधिक सदाचारी और सर्वाधिक प्रतिभासम्पन्न महिला" कहा है।

हाइपेशिया

हाइपेशिया को संसार की पहली महिला गणितज्ञ होने का गौरव प्राप्त है। गणित के इतिहासकार उसके जीवन और कृतित्व का उल्लेख करना नहीं भूलते। इसलिए भी नहीं भूलते कि उसकी जीवनकथा बड़ी कारुणिक है। सिकंदरिया के ईसाइयों ने हाइपेशिया की घोर नारकीय तरीके से हत्या कर दी थी। यह 415 ई. की घटना है। हाइपेशिया की हत्या के साथ ही प्राचीन यूनानी ज्ञान-विज्ञान का अवसान हो जाता है।

हाइपेशिया का जन्म 370 ई. के आसपास मिस्र देश के प्रख्यात नगर सिकंदरिया में हुआ था। उसके पिता, सिकंदरियावासी थिओन, एक उच्च कोटि के गणितज्ञ थे। थिओन ने यूक्लिड (लगभग 300 ई.पू.) के ग्रंथ **ज्यामिति के मूलतत्व** का संपादन करके उसका एक नया संस्करण तैयार किया था। उनके इस संस्करण की उपलब्ध हस्तलिपियों के आधार पर यूक्लिड के 'मूलतत्व' का प्रामाणिक पाठ तैयार करने में आधुनिक विद्वानों को बड़ी मदद मिली है। थिओन ने सिकंदरिया के प्रख्यात ज्योतिषी तालेमी (ईसा की दूसरी सदी का मध्यकाल) के ज्योतिष-ग्रंथ (अलमजिस्ती) का भी संपादन किया था। उन्होंने कुछ मौलिक कृतियां भी लिखीं और षाष्ठिक भिन्नों की सहायता से वर्गमूल ज्ञात करने का तरीका खोज निकाला।

ऐसे गणितज्ञ पिता की पुत्री थी हाइपेशिया। उसने गणित की शिक्षा अपने पिता से ही प्राप्त की थी। इस संदर्भ में हमें प्रख्यात भारतीय गणितज्ञ भास्कराचार्य (1150 ई.) और उनकी "लीलावती" का सहज ही स्मरण हो आता है। भास्कराचार्य की अंकगणित की पुस्तक का नाम "लीलावती" है। मगर लीलावती कौन थी और उसका गणितीय कृतित्व क्या रहा, इसके बारे में कहीं कोई जानकारी नहीं मिलती।

बताया जाता है कि हाइपेशिया ने कुछ समय तक अथेन्स में रहकर दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया था। सिकंदरिया लौट आने पर उसे वहां के विद्यापीठ में दर्शन व गणित की प्राध्यापिका का पद मिला था। उसके भाषण बड़े चाव से सुने जाते थे। वह अपनी वाक्पटुता और मधुर आवाज के लिए खूब प्रसिद्ध थी।

हाइपेशिया को एक गणितज्ञ के रूप में ज्यादा प्रसिद्धि मिली। वह सिकंदरिया के विद्यापीठ में गणित और ज्योतिष भी पढ़ाती थी। उसने सिकंदरिया के अंतिम महान गणितज्ञ **डायोफैंटस** (लगभग 260 ई.) की एक कृति पर टीका लिखी थी। डायोफैंटस की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है **अरिथमेटिका**। इसी कृति के साथ यूनानी जगत में

बीजगणित के अध्ययन का आरंभ हुआ था। मगर डायोफैंटस के बाद सोलहवीं सदी तक यूरोप में इस विषय का विकास नहीं हुआ। डायोफैंटस की यह कृति मूल ग्रीक और लैटिन अनुवाद के साथ 1621 ई. में उपलब्ध हुई। प्रसिद्ध फ्रांसीसी गणितज्ञ **फर्मा** (1608-65 ई.) ने डायोफैंटस की इसी कृति से संख्या-सिद्धांत का अपना अध्ययन आरंभ किया था। ग्रंथ के हाशिए पर ही वे अपनी टिप्पणियां लिखते थे। इसी ग्रंथ के हाशिए पर फर्मा ने अपनी प्रसिद्ध टिप्पणी लिखी थी : ''यदि न का पूर्णांक मान 2 से अधिक हो, तो य, र तथा ल के पूर्णांकीय मानों के लिए समीकरण $य^न + र^न = ल^न$ संभव नहीं है।'' यह ''फर्मा का प्रमेय'' अभी तक पूर्णतः प्रमाणित नहीं हो पाया है।

जानकारी मिलती है कि हाइपेशिया ने पेरगा-निवासी यूनानी ज्यामितिकार **एपोलोनियस** (लगभग 225 ई.पू.) की शांकव-गणित से संबंधित कृति पर भी टीका लिखी थी। यदि एक शंकु को विभिन्न प्रकार से काटा जाए, तो हमें वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय तथा अतिपरवलय नामक वक्र मिलते हैं। एपोलोनियस ने इन्हीं वक्रों का गणित प्रस्तुत किया था। मगर यह महत्वपूर्ण गणित करीब डेढ़ हजार साल तक उपेक्षित पड़ा रहा। पहली बार केपलर (1571-1630) ने शांकव-गणित का उपयोग करके सिद्ध किया कि सौर-मंडल के सभी ग्रह-उपग्रह दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में परिक्रमा करते हैं।

हाइपेशिया की एक ज्योतिष-कृति के बारे में भी जानकारी मिलती है। संभवतः यह कृति सिकंदरिया के प्रख्यात ज्योतिषी **तालेमी** (लगभग 150 ई.) की ज्योतिषसारणी पर लिखी गई टीका थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हाइपेशिया ने यूनानी जगत के तीन महान वैज्ञानिकों—एपोलोनियस, तालेमी और डायोफैंटस—की कृतियों पर टीकाएं लिखी थीं। मगर आज हाइपेशिया का कृतित्व उपलब्ध नहीं है। हाइपेशिया ने महत्व के कुछ यांत्रिक आविष्कार भी किए थे। इनमें मुख्य हैं—पानी के आसवन के लिए उपकरण, द्रवों का आपेक्षिक घनत्व बताने वाला यंत्र और एस्ट्रोलैब।

हाइपेशिया सिकंदरिया के नवप्लातोनी शिक्षाकेंद्र की प्राचार्या थी। थियोसोफी से मिलती-जुलती इस रहस्यवादी-चैतन्यवादी विचारधारा का उदय रोमन साम्राज्य के अवसानकाल में ईसा की तीसरी सदी में हुआ था, सर्वप्रथम सिकंदरिया में। यह विचारधारा उदीयमान ईसाई धर्म की जबरदस्त प्रतिद्वंद्वी थी। फिर भला ईसाई मतावलम्बी हाइपेशिया को कैसे सहन करते? मार्च 415 ई. में एक दिन ईसाइयों की एक भीड़ ने सिकंदरिया की इस विदुषी महिला की हत्या कर डाली। अपने प्रतिद्वंद्वियों को नारकीय यातनाएं देकर जिंदा मार डालने के कई सारे तरीके ईसाइयों ने खोज लिये थे। जानकारी मिलती है कि ईसाई साधुओं की भीड़ ने तेज धार वाली बड़ी-बड़ी सीपियों से हाइपेशिया के शरीर का मांस काट-काट कर उसे मार डाला।

हाइपेशिया ने निश्चय ही अनेक योग्य शिष्य पैदा किए होंगे। उनमें साइनेसियस् नामक उसके शिष्य ने सर्वाधिक ख्याति अर्जित की। उसके पत्रों से ही हाइपेशिया के बारे में सर्वाधिक जानकारी मिलती है। आधुनिक युग में हाइपेशिया पर यूरोप की भाषाओं में कई ग्रंथ लिखे गए हैं। अंग्रेज साहित्यकार चार्लस किंग्स्ले ने हाइपेशिया पर एक उपन्यास (1853 ई.) ही लिखा है।

हाइपेशिया प्राचीन यूनानी विज्ञान की अंतिम दीप्ति थी। उसकी शहादत के साथ यूनानी विज्ञान का अवसान हो जाता है।

मारिया जाएताना आन्याजी

हाइपेशिया के बलिदान के साथ प्राचीन यूनानी विज्ञान की इतिश्री

मारिया जाएताना आन्याजी

हुई थी। इसी तरह, कहा जा सकता है कि इतालवी विचारक ज्यार्दानो ब्रूनो की शहादत के साथ यूरोप में आधुनिक विज्ञान का श्री गणेश हुआ। यूरोप के नगरों में घूम-घूमकर कोपर्निकस के सूर्यकेंद्रवादी सिद्धांत का प्रचार करने वाले ब्रूनो को ईसाई धर्म-न्यायालय के आदेश से 1600 ई. में रोम में जिंदा जला दिया गया था।

यूरोप में बौद्धिक नवजागरण की नई लहर सर्वप्रथम इटली में ही उठी थी। सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में इटली में कई ऐसी विदुषी महिलाएं हुईं जिनकी विज्ञान और गणित में गहरी दिलचस्पी थी। इनमें सबसे अधिक गौरव मिला महिला गणितज्ञ **मारिया जाएताना आन्याजी** को। आन्याजी का जन्म इटली के मिलान नगर में 16 मार्च, 1718 को हुआ था। बचपन में ही उसने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। पांच साल की होने पर वह फ्रांसीसी भाषा अच्छी तरह बोलने लग गई थी। छः साल की मारिया ग्रीक से लैटिन में अनुवाद करने लग गई थी और नौ साल की होने पर वह नारी के अधिकारों के बारे में लैटिन में तैयार किए गए भाषणों को अपने नगरवासियों के सामने प्रस्तुत करने लग गई थी। उसने जर्मन, स्पेनी तथा हिब्रू भाषाएं भी सीखीं।

मगर मारिया आन्याजी को सर्वाधिक ख्याति उच्च गणित के क्षेत्र के उसके कार्य के लिए मिली। वह बीस साल की आयु में विश्लेषण-जैसे नए विषय पर एक बड़ा ग्रंथ लिखने में जुट गई थी। दो खंडों में प्रकाशित इस ग्रंथ का शीर्षक है : **इतालवी तरुणों के उपयोग के लिए विश्लेषण का पाठ्यक्रम**। रात-दिन लगातार परिश्रम करते रहने पर भी यह ग्रंथ तैयार करने में आन्याजी को पूरे दस साल लगे।

मारिया आन्याजी निद्राचारिणी थी। दिनभर किसी कठिन गणितीय सवाल पर काम करने के बाद रात को जब वह गहरी नींद सो जाती, तब भी उसकी अंतः चेतना में वह सवाल मंडराता रहता था। अक्सर वह निद्रावस्था में ही बिस्तर से उठती, अपने अध्ययन-कक्ष में पहुंचती, सवाल के हल को कागज पर उतारती और शयनकक्ष में लौट आकर सो जाती। दूसरे दिन मेज पर हल किए गए उस सवाल को वह देखती, तो उसे स्वयं बड़ा आश्चर्य होता था।

भारतीय गणितज्ञ रामानुजन के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही होता था। वे निद्राचारी तो नहीं थे, मगर उन्हें कई सवालों के हल स्वप्नावस्था में ही मिल जाते थे, जिन्हें वे सुबह उठने पर कागज पर उतार लेते थे। यह सब अंतः चेतना का 'चमत्कार' था। मगर रामानुजन देवी-देवताओं के चमत्कारों में भी आस्था रखते थे, इसलिए कहते थे कि नामगिरि देवी सपनों में आकर सवाल हल करने में उनकी मदद करती है।

आन्याजी का गणितीय विश्लेषण का ग्रंथ दो खंडों में 1748 में प्रकाशित हुआ। उसकी कीर्ति सारे यूरोप में फैल गई। फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने आन्याजी के कृतित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की। महिलाओं को सदस्य न बनाने का नियम न होता, तो अकादमी आन्याजी को सहज ही अपना सदस्य चुन लेती।

आन्याजी की गणितीय प्रतिभा की खूब स्तुति हुई। पोप बेनेडिक्ट-चतुर्दश ने आन्याजी को न केवल उपहार दिए, बल्कि बोलोना विश्वविद्यालय में उच्च गणित की प्राध्यापिका बनने के लिए उसके सामने स्वयं ही प्रस्ताव भी रखा। उस समय एक महिला के लिए यह एक बहुत बड़ा सम्मान था। यह पद स्वीकार करने के लिए बहुतों ने उससे आग्रह किया, अनुरोध किया। मगर अपनी प्रिय नगरी मिलान को छोड़ने के लिए वह तैयार नहीं हुई। इतना ही नहीं, उसका ग्रंथ प्रकाशित हो जाने के बाद उसने गणितीय अन्वेषण का कार्य एकदम छोड़ दिया और जीवन के शेष, करीब पचास साल दीन-दुखियों और वयोवृद्धों की सेवा करने में गुजारे। 9 जनवरी, 1799 को, 81 साल की दीर्घायु में मारिया आन्याजी का देहांत हुआ।

मारिया आन्याजी ने तीस साल की तरुणावस्था में गणित का अध्ययन भले ही छोड़ दिया हो, मगर वैश्लेषिक ज्यामिति से संबंधित उसकी अनुपम कृति यूरोप में ख्याति अर्जित करती रही। उसकी कृति के दूसरे खंड का 1775 में फ्रांसीसी में अनुवाद प्रकाशित हुआ। इतना ही नहीं, आन्याजी की कृति इतनी महत्वपूर्ण थी कि उसके दोनों खंडों का 1801 में अंग्रेजी में भी अनुवाद प्रकाशित हुआ। इटली में भी गणित के इस ग्रंथ का खूब गौरव हुआ। इसे एक क्लासिक कृति माना गया और इतालवी भाषा के बृहद मानक कोश की तैयारी में इसका उपयोग किया गया।

वैश्लेषिक ज्यामिति के अध्ययन में एक विशिष्ट वक्र के साथ आन्याजी का नाम सदा के लिए जुड़ गया है, मगर बड़े विचित्र रूप में। वक्र का नाम है—**आन्याजी की डाइन** (विच ऑफ आन्याजी)। इस वक्र का समीकरण है : $क्ष^{2य} + र^{2य} - र^{3} = 0$, जहां क्ष तथा य निर्देशांक हैं और र वक्र का निर्माण करने वाले वृत्त का व्यास है।

सर्वप्रथम गणितज्ञ फर्मा ने इस वक्र का समीकरण प्रस्तुत किया था फिर इतालवी गणितज्ञ ग्रांदी ने 1718 में इस वक्र के कई गुणधर्मों को स्पष्ट किया और इसे **वेसियेरा** नाम दिया। इतालवी में इस शब्द का अर्थ होता है **डाइन** (विच)। आगे जाकर मारिया आन्याजी ने इस वक्र की रचना के लिए एक सरल विधि प्रस्तुत की, तो उसका नाम इसके साथ जुड़ गया और तब से यह वक्र 'आन्याजी की डाइन' के नाम से ही जाना जाता है। परन्तु स्पष्ट है कि यह नाम न्योयोचित नहीं है। इसी तरह एक अन्य वक्र का नाम है : 'शैतान का वक्र (डेविलज कर्व)।

जो भी हो, मारिया आन्याजी एक प्रतिभासम्पन्न महिला थी। यदि वह गणितीय अनुसंधान को सतत जारी रखती तो गणित के इतिहास में अपने समकालीन बर्नूली-बंधु, आयलर, लाग्रांज, लाप्लास आदि गणितज्ञों जैसा उच्च स्थान प्राप्त करने में पूर्णतः समर्थ थी।

मार्क्वी एमिली द शातले

जिस साल मारिया आन्याजी की कृति प्रकाशित हुई, उसी साल (1748 ई.) फ्रांस की एक महिला-गणितज्ञ न्यूटन की महान कृति ''प्रिंसिपिया'' का लैटिन से फ्रांसीसी में टिप्पणियों-सहित अनुवाद करने में जुटी हुई थी। अगले वर्ष, 43 साल की आयु में, सितंबर 1749 में उसकी मृत्यु हुई। मगर मृत्यु के कुछ दिन पहले उसने 'प्रिंसिपिया' के अनुवाद का कार्य पूरा कर लिया था। उस महिला गणितज्ञ का नाम है : मार्क्वी एमिली द शातले।

मार्क्वी एमिली द शातले

एमिली का जन्म फ्रांस के एक धनाढ्य कुल में 17 दिसंबर, 1706 में हुआ था। उसने अपने पिता बैरन दे ब्रेतेयू से लैटिन, ग्रीक और इतालवी भाषाएं सीखीं। बाद में उसने गणित और भौतिकी का भी अध्ययन किया। उसने यूक्लिड और न्यूटन की कृतियों को पढ़ा। उसने क्लाइरो, मौपेर्त्यु, कोएनिंग और ज्यां बर्नूली-जैसे समकालीन श्रेष्ठ गणितज्ञों से उच्च गणित का ज्ञान प्राप्त किया था। उसमें गजब की गणना-शक्ति थी। नौ-नौ अंकों की दो संख्याओं का गुणन वह दिमाग में ही कर लेती थी। प्रख्यात भौतिकीविद ऐम्पियर ने एमिली को ''ज्यामिति की प्रतिभा'' कहा था। एमिली केवल प्रतिभा की ही नहीं, मोहक सौंदर्य की भी धनी थी।

उन्नीस साल की आयु में एमिली का मार्क्वी द शातले-लोमों के साथ विवाह हुआ। फिर भी फ्रांस के विख्यात व्यंग्यकार-विचारक वाल्तेयर (1694-1778) के साथ कोमल संबंध स्थापित करने और उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। एमिली के एक भव्य आवास में दोनों चौदह साल तक साथ-साथ रहे। दोनों ने मिलकर अध्ययन किया, लेखनकार्य किया, प्यार किया, और दोनों में झगड़े भी हुए। मगर इन संबंधों का विज्ञान व गणित को महती लाभ हुआ। वाल्तेयर ने उन्हीं दिनों ''न्यूटनीय दर्शन का सारतत्व'' नामक ग्रंथ लिखा और न्यूटन के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। और, एमिली न्यूटन की महान कृति ''प्रिंसिपिया'' का फ्रांसीसी में अनुवाद करने में जुट गई।

वाल्तेयर वैज्ञानिक नहीं था, फिर भी गणित के इतिहास में उसका नाम न्यूटन के साथ सदैव जुड़ा रहेगा। न्यूटन की अन्त्येष्टि (20

मार्च, 1727) के दिन वाल्तेयर लंदन में ही था। वह न्यूटनीय सिद्धान्तों से बड़ा प्रभावित हुआ था। यूरोप में न्यूटन के दर्शन का प्रचार करने में वाल्तेयर ने सर्वाधिक महत्व की भूमिका अदा की। बर्ट्रांड रसेल ने लिखा है : "वाल्तेयर की कृति 'दार्शनिक पत्रावली' के प्रकाशन के बाद ही न्यूटन लोकप्रिय हुए, उनकी लोकप्रियता चरम सीमा पर पहुंच गई।" विज्ञान के प्रख्यात इतिहासकार चार्ल्स सिंगर ने भी लिखा है : "वाल्तेयर के मनमोहक और सुस्पष्ट विवेचन के कारण ही न्यूटनीय दर्शन को वास्तविक विजय मिली, और अरस्तू के दर्शन को अंतिम रूप से दफना देना संभव हुआ।"

मगर इस कार्य में वाल्तेयर अकेला नहीं था। इस कार्य में उसे एमिली का भी सहयोग मिला। एमिली ने न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' का लैटिन से फ्रांसीसी में अनुवाद किया और साथ में अपनी ओर से टिप्पणियां भी जोड़ीं। वाल्तेयर से मनमुटाव हो जाने पर भी एमिली ने अनुवाद का कार्य जारी रखा और मृत्यु के कुछ दिन पहले इस जटिल कार्य को पूरा कर डाला। एमिली का किया हुआ 'प्रिंसिपिया' का यह अनुवाद उसकी मृत्यु (1749) के दस साल बाद 1759 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। एमिली ने भौतिक विज्ञान के बारे में भी एक पुस्तक लिखी।

यह सही है कि एमिली भोग-विलास का जीवन पसंद करने वाली महिला थी, मगर ज्यां बर्नूली ने ठीक ही कहा था कि उसे एक अच्छे गणितज्ञ का दिमाग मिला था। लैटिन में लिखी गई "प्रिंसिपिया" जैसी जटिल कृति को समझना और उसका अपनी भाषा में अनुवाद करना एक श्रेष्ठ गणितज्ञ के लिए ही संभव था।

सोफी जेरमी

महान गणितज्ञ कार्ल फ्रेडरिक गौस (1777-1855) क्वचित् ही किसी की स्तुति करते थे। अतः जब हम देखते हैं कि गौस ने एक गणितज्ञ की खूब प्रशंसा की, उसके साथ सालों तक पत्र-व्यवहार किया और उसे अपने गॉटिंगेन विश्वविद्यालय से 'डाक्टरेट' की उपाधि दिलाने की भी कोशिश की, तो स्पष्ट है कि वह निश्चय ही एक श्रेष्ठ गणितज्ञ रहा होगा।

मगर गौस को लंबे समय तक यह पता नहीं चला था कि वह गणितज्ञ वस्तुतः एक महिला है। दोनों एक-दूसरे से कभी नहीं मिले। वह गणितज्ञ महिला "लेब्लां" के छद्म नाम से गौस को पत्र लिखती थी। गौस को काफी बाद में जाकर ही पता चला कि 'श्रीमान लेब्लां' वस्तुतः एक महिला है और उसका असली नाम है—सोफी जेरमी।

वह जमाना ही दूसरा था। यदि कोई महिला विज्ञान और गणित के अध्ययन में दिलचस्पी दिखाती तो प्रायः उसका मखौल उड़ाया जाता था। आम तौर पर यही समझा जाता था कि विज्ञान का अध्ययन महिलाओं के बस की बात नहीं है। इसलिए आरंभ में सोफी जेरमी ने पुरुष के छद्म नाम से ही गौस, लेजेन्द्र और लाग्रांज-जैसे समकालीन दिग्गजों के साथ पत्र-व्यवहार किया था।

सोफी जेरमी (1776-1831) एक अत्यंत प्रतिभाशाली महिला गणितज्ञ थी। उसने ध्वनि-विज्ञान, प्रत्यास्थता (इलेस्टिसिटी) का गणितीय सिद्धांत तथा संख्या-सिद्धान्त के क्षेत्रों में महत्' खोजकार्य किया। उसकी गणना आधुनिक गणित-भौतिकी संस्थापकों में की जाती है।

गणित का अध्ययन जारी रखने में और इस क्षेत्र में सफल प्राप्त करने में सोफी को शुरू से ही अनेक कठिनाइयों का सा करना पड़ा। सर्वप्रथम, गणित की उसकी पढ़ाई में उसके माता-f ही बाधक बने। वे कहते : "एक लड़की के लिए ज्यामिति पढ़ने क्या लाभ?" मगर सोफी ने अपने ही बल पर गणित का अध्य जारी रखा। वह रात-दिन गणित में ही खोई रहती थी। माता-f को उसके स्वास्थ्य की चिंता हुई। वे प्रायः उसके कमरे में से रो और आग के साधन हटा लेते थे, ताकि वह रात को बिस्तर से उठ गणित पढ़ने न लग जाए। यहां तक कि रात को उसके लेट जाने उसके कपड़े भी वहां से हटा लिये जाते थे! मगर उसने हिम्मत छोड़ी। जब सब लोग सो जाते, तब वह उठती और रजाई-कंबल अपने को लपेटकर अपने प्रिय विषय के अध्ययन में जुट जा अंततः उसके माता-पिता ने हार मान ली और उसे गणित के अध्य की छूट दे दी। आगे जाकर सोफी ने लाग्रांज की देखरेख में गणित गहन अध्ययन किया।

नेपोलियन के आदेश से फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने एक सम का हल प्रस्तुत करने के लिए पुरस्कार की घोषणा की थी। सम थी : "प्रत्यास्थ सतहों के कंपन का गणितीय सिद्धान्त प्रस्तुत क और प्रयोगदत्त परिणामों से उसकी तुलना करना।" लाग्रांज ने कि इस समस्या का हल फिलहाल संभव नहीं है, क्योंकि इसके आवश्यक गणित उपलब्ध नहीं है। नतीजा यह रहा कि, सिवाय गणितज्ञ के, किसी ने भी इस समस्या को हल करने का प्रयास किया। वह गणितज्ञ थी—सोफी जेरमी।

यूरोप के वैज्ञानिकों को जब पता चला कि फ्रांस की वि अकादमी का **ग्राँ प्रि** पुरस्कार एक महिला को मिला, तो वे चकित गए। यूरोप के अनेक गणितज्ञों ने सोफी को बधाई-संदेश उसके बाद देलांबर, फूरिए, कोशी, ऐम्पियर आदि दिग्गजों के उसके वैज्ञानिक संबंध स्थापित हुए। सोफी जेरमी का कंपाय सतहों से संबंधित प्रबंध 1816 में प्रकाशित हुआ, तो एक चोटी गणितज्ञ के रूप में उसकी गणना होने लगी।

मगर सोफी जेरमी को एक पुरुष के समकक्ष सम्मान नहीं मिला। फ्रांस की विज्ञान अकादमी एक महिला को अपना सदस्य बना सकती थी। सोफी के सरकारी मृत्यु-प्रमाणपत्र में उसे "ए वार्षिक आय वाली महिला" कहा गया, न कि एक गणितज्ञा। में आइफेल टॉवर खड़ा किया गया तो उसमें प्रयुक्त सामग्री प्रत्यास्थता पर विशेष ध्यान दिया गया। इसलिए इस स्मारक पर इंजीनियर-वैज्ञानिकों के नाम उत्कीर्ण कर दिए गए। मगर जेरमी के प्रत्यास्थता सिद्धान्त का भरपूर उपयोग किए जाने पर आइफेल टॉवर की उस सूची में उसका नाम शामिल नहीं किया

[श्री गुणाकर मुले 'अमरावती', सी -210, पांडव नगर, दिल्ली -11

(शेषांश पृष्ठ 29 का)

डा. भार्गव के मार्गदर्शन में तैयार किया हुआ डा. अनुराधा देवलालीकर का शोध विद्यापीठ में प्रस्तुत किया गया।

सागर के किनारे पर अनुराधा अपने मित्रों से संभाषण कर रही थी। कानों पर हेडफोन लगे हुये थे। दिन में उसका अधिकतर समय तो समुद्र तट पर ही व्यतीत हो जाता था। यदि रात के समय भी किसी डाल्फिन की इच्छा उसके साथ संभाषण करने की हो तो वह संभव हो पाये इसलिये उसने टेप का प्रबंध कर रखा था। खाली समय में वह उस आवाज को सुना करती थी।

"मैं अब थोड़े ही दिनों में वापिस चली जाऊंगी" अपने चारों ओर इकट्ठे हुये डाल्फिनों को उसने बताया।

"वापिस का क्या मतलब" उसके मित्रों की समझ में नहीं आया।

"वापिस अर्थात मेरा घर, जहां मैं हमेशा रहती हूं।"

"वहां से तुम कब आओगी", छोटी ने पूछा।

"कभी नहीं", अनुराधा ने विषादपूर्ण स्वर में कहा।

"क्या तुम अब हमसे कभी नहीं मिलोगी?"

"नहीं! कभी भी नहीं" अनुराधा ने रुंआसी सी होकर कहा "क्यों? क्यों?" सबने शोर मचाया। इनको कैसे समझाया जाये, इस सोच में अनुराधा पड़ गई। आवाज को संयत करते हुये उसने कहा।

"मेरा घर बहुत दूर है। वहां से यहां पहुंचने में बहुत दिन लगते हैं।"

"तो हम उधर आयेंगे", लगड़े ने कहा। और सब ने चोंच ऊपर करके अपनी सहमति दर्शाई।

उस परिस्थिति में भी अनुराधा अपनी हंसी रोक न पाई। डाल्फिनों की यह बटालियन नागपुर आने के लिये तैयार हो गई थी।

"मेरे घर में सागर नहीं है", अनुराधा ने उन्हें समझाने का प्रयास किया। "वहां तुम नहीं आ पाओगे।" "तो फिर तुम वहां नहीं जाओ।"

"मुझे जाना ही होगा, मेरे बच्चे उधर हैं, मेरा पति वहां है।"

"पति-पति अर्थात"।

अनुराधा एक क्षण के लिये विचारों में डूब गई और दूसरे ही क्षण उसने जबाव दिया "पति अर्थात नर।"

"तो क्या, राव तुम्हारा नर नहीं है?"

"नहीं। नहीं।" हताश होकर उसने कहा।

"तो फिर तुम राव के साथ कैसे रहती हो?" गब्दुल ने पूछा। अपनी मादा को यदि वह दूसरे नर के साथ रहती हुई देखता तो वह उसे जान से मार डालता। इस प्रकार का भाव उसने अपने चेहरे पर दिखाया।

अनुराधा को हंसी आ गई।

"मैं तुम्हें छोड़कर अवश्य जा रही हूं किन्तु मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूंगी" उसने कहा।

"हम भी तुम्हें नहीं भूलेंगे, तुमने हमें आदमी के साथ बोलने की कला सिखाई।"

"मैंने....?" अनुराधा ने खिन्नता से कहा।

"तुमने नहीं तो और किसने," छोटी ने पूछा?

"डा. भार्गव ने। मैं तो केवल उनकी सहयोगी हूं।"

"डा. भार्गव! कौन? तुम्हारे साथ कभी-कभी आने वाला मोटा सा व्यक्ति।"

"हां, वही।"

"उसने कब हमें मानव की भाषा सिखाई, उसका क्या संबंध?"

"मैं उनके मार्गदर्शन में काम करती हूं।"

"तो क्या हुआ?"

हमारे यहां ऐसा ही रिवाज है। किसी भी उपलब्धि का श्रेय सदैव प्रमुख को ही जाता है।"

"श्रेय क्या?"

"अर्थात उपलब्धि में महत्वपूर्ण योगदान उसी का होता है।"

"वह उपलब्धि स्वयं उसने प्राप्त न की हो तब भी?"

"हां तब भी।"

सारे डाल्फिन विचार करने लगे। उन्हें लगा कि मानव की भाषा अभी तक वे पूरी तरह समझ नहीं पाये हैं।

इतने में जीप की आवाज आई। अनुराधा ने मुड़कर देखा। डा. भार्गव और राव जीप से उतर रहे थे।

"डा. अनुराधा देवलालीकर, अभी-अभी तार मिला है। आपका शोध विश्व विश्वविद्यालय ने स्वीकार कर लिया है। अभिनन्दन।" दोनों ने कहा।

"आपको इतने थोड़े समय में पी एच डी की उपाधि प्राप्त हुई इसका मुझे बहुत हर्ष है।"

"डा. देवलालीकर, अभी थोड़े ही दिनों में आप यहां से लौट जाओगी। लेकिन जाने से पहले एक प्रयोग में मुझे आपका सहयोग चाहिये।"

"कौन सा प्रयोग सर", अनुराधा ने पूछा।

"बताता हूं। ये आपके डाल्फिन बात करना तो सीख गये। लेकिन इनकी बात अभी संभाषण के स्तर पर नहीं आई है। जब तक ये झूठ बोलना नहीं सीख लेते तब तक इन्होंने मानव भाषा पूर्णतः आत्मसात कर ली है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।"

"मैं समझी नहीं सर"।

"भाषा अर्थात अपने विचार प्रकट करने का माध्यम। लेकिन मेरे विचार से यह परिभाषा गलत है। वास्तव में अपने मन के विचारों को छिपाकर रखने का माध्यम भाषा है" डा. भार्गव ने जोर से हंसते हुये कहा।

"हम अपने डाल्फिनों को झूठ बोलना सिखायेंगे। उसके लिये मैंने एक प्रयोग करने का निश्चय किया है। प्रयोग की सामान्य योजना इस प्रकार है। राव जरा मेरी रूपरेखा दो।"

धूप बढ़ रही थी। अनुराधा की समझ में डा. भार्गव की बात नहीं आ रही थी। उसे चक्कर सा आने लगा। यह देखकर डा. भार्गव ने

कहा ''राव, अनुराधा को जरा सहारा दो'', दोनों ने अनुराधा को जीप में बिठाया।

कैम्प पर जाने के बाद अनुराधा को कुछ ठीक महसूस होने लगा। दूसरे दिन राव अकेला ही काम पर गया। जब वह लौट आया तो उसने बताया कि डाल्फिन आये ही नहीं। ऐसा लगातार पांच छः दिन हुआ। तब अंत में उस स्थान को बंद करने का निर्णय लेना पड़ा। अनुराधा का वापिस जाने का दिन आया। सबसे विदा लेकर हवाई अड्डे पर ले जाने वाली जीप में वह जा बैठी।

सब लोग सोच रहे थे कि जाने के पहले वह कम से कम एक बार समुद्र तट का एक चक्कर जरूर लगायेगी। परन्तु उसने इस बारे में कुछ भी उत्साह नहीं दिखाया।

हवाई जहाज ने आकाश में उड़ान भरी। अनुराधा ने अपने पर्स में से छोटा टेपरिकार्डर निकाला और टेप शुरू की। टेप शुरू करते ही छोटी का स्वर सुनाई दिया।

''तुमने हमें मानव से बात करना सिखाया, किन्तु मानव की भाषा नहीं सिखा सकी।''

''डाक्टर भार्गव हमें वह सिखाने वाले हैं। आज सवेरे वे तुमसे कह रहे थे वह हमने सुन लिया।''

''हमें तुम्हारी भाषा नहीं सीखनी है क्योंकि उसके लिये झूठ बोलना पड़ता है। झूठ का अर्थ हम नहीं जानते और जानने की इच्छा भी नहीं रखते। ''श्रेय'' का मतलब आज सवेरे तुमने हमें बताया ''झूठ'' भी ऐसा ही कुछ होगा। हमें तुम्हारी भाषा नहीं चाहिये। हम अपनी दुनिया में खुश हैं। झूठ का अर्थ हमारी समझ में नहीं है। परन्तु झूठ सिखाने की तुम्हारी भी इच्छा नहीं है, यह हम तो समझ गये हैं, पर डा. भार्गव और राव की समझ में यही बात आई।''

''इस भाव को समझने के लिये मानव की भाषा आनी जरूरी है। हो सकता है कि यह भाषा न आने के कारण ही हम तुम्हारा समझ सके। मानव की भाषा बोलने वालों की समझ में यह भाव आ ही नहीं सकता।''

''तुम्हारे यहां से जाने के पहले हम सब तुम्हें मिलना चाह लेकिन हम डर रहे थे कि कहीं राव और डाक्टर भार्गव हमें पकड़ जबर्दस्ती मानव भाषा सीखने पर विवश न कर दें। इसीलिये बिना मिले यह संदेश रखकर हम जाते हैं।''

''तुम्हारे बच्चों तथा तुम्हारे पति से हमारी मिलने की इच्छा लेकिन वह अब संभव नहीं होगा।''

''यदि संभव हो तो अपने बच्चों को मनुष्य की भाषा नहीं सिखा हम सब तुम्हें कभी नहीं भूलेंगे।''

''तुम्हारा मित्र परिव

अनुराधा ने खिड़की से झांका नीला-नीला सागर नीचे फैला था।

[प्रस्तुति गजानन साल्पेकर, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्

सूक्ष्म आग बुझाऊ यंत्र

रियल वैल्यू अप्लाइसेंज के प्रबंध निदेशक फिरोज इंजीनियर का कहना है कि उन्होंने "सीज फायर" नामक आग बुझाने वाले एक इतने छोटे यंत्र का विकास किया है जो एक हाथ की मुट्ठी में समा सकता है तथा इसका भार केवल 600 ग्राम है। इसमें बार-बार गैस भरने का झंझट भी नहीं है। यह यंत्र बिजली से लगने वाली आग में भी सुरक्षित ढंग से अपना काम करता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इस यंत्र से धुंआ नहीं उठता। संकट के समय इससे आग आसानी से बुझाई जा सकती है। यह एक ऐसा यंत्र है जो आग के आस-पास उपस्थित आक्सीजन को हानिरहित मिश्रण में बदल देता है। ठंडा असर डालता है जिससे आग के दुबारा भड़क उठने की संभावना लगभग समाप्त हो जाती है। इस यंत्र में "हेलोन 1211" नाम की द्रवीकृत अल्प दबाव वाली गैस भरी जाती है।

जल परिशुद्धता जांच किट

डिफेंस रिसर्च डेवलपेंट आर्गेनाइजेशन ने "वाटर टेस्टिंग फील्ड किट" नाम से एक ऐसी छोटी किट का विकास किया है जो पेय जल की शुद्धता को सुनिश्चित करने में सक्षम होगी। नेशनल ड्रिंकिंग वाटर मिशन ने इस किट को मान्यता प्रदान की है। यह किट देश की नगर पालिकाओं के लिये विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। इस किट से ठीक-ठीक पता चल जाता है कि जल में रासायनिक पदार्थों की कितनी मात्रा विद्यमान है। यह जल में घुले सम्पूर्ण ठोस पदार्थों की, क्लोराइड, लोहा, नाइट्राइट और मुक्त क्लोरीन की जांच करता है। आधे घंटे के अंदर परीक्षणों से स्पष्ट हो जाता है कि इन पदार्थों की मात्रा हानिकर है अथवा नहीं। इससे जल में विद्यमान बैक्टीरिया का परीक्षण भी किया जा सकता है। इस परीक्षण में ए-कोलाई बैक्टीरिया की उपस्थिति का साफ-साफ पता लग जाता है। ज्ञातव्य है कि एं-कोलाई की उपस्थिति टायफायड, पैराटायफायड, हैजा, पेचिश, हिपेटाइटिस जैसे रोगों के जनक रोगाणुओं द्वारा किये गये प्रदूषण की सूचक हैं।

आशा है इस किट से दूध आदि की भी जांच की जा सकेगी।

भ्रूण हृदय को जीवित रखने में सफलता

त्रिवेन्द्रम स्थित श्री चित्र तिरुनल आयुर्विज्ञान संस्थान के निदेशक डा. एम.एस. पालियंथन ने बताया है कि भारतीय वैज्ञानिकों को अपरिपक्व भ्रूण के हृदय के ऊतकों को अलग कर प्रयोगशाला में 75 दिन तक जीवित रखने में सफलता मिली है। इन ऊतकों के अध्ययन से 'एंडोमायोकार्डियल फाइब्रोसिस' नामक घातक हृदय रोग के कारणों का पता लगाने में सहायता मिलेगी। इन ऊतकों से शरीर में प्रयोग किए जाने वाले प्लास्टिक की जीव-संगतता को परखने का भी एक नया तरीका हाथ लगेगा। इसके पहले इसकी जांच जानवरों पर की जाती थी।

उल्कापिंडों से संचार व्यवस्था

भारतीय सेना की सिग्नल कोर के प्रभारी मेजर जनरल ज्ञान सिंह बैंस ने बताया है कि गोपनीय सूचनाओं को तेजी व अबाधित रूप से भेजने के लिए आसमान से गिरने वाली उल्कापिंडों की सहायता ली जा सकती है। यह संचार प्रणाली यद्यपि महंगी है, पर अत्यन्त सुरक्षित है। यह प्रणाली निर्धारित केन्द्रों के बीच ही काम कर सकती है और सूचनाएं एक न्यूनतम और अधिकतम दूरी तक ही भेजी जा सकती है। न्यूनतम और अधिकतम दूरी की सीमाएं इसलिए हैं कि गिरते उल्कापिंडों का कुछ खास कोणों पर ही उपयोग किया जा सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि सूचनाओं को बार-बार प्रक्षेपित करके अधिकतम दूरी की समस्या दूर की जा सकती है।

अतिविशिष्ट सेवा मेडल से सम्मानित मेजर जनरल बैंस ने यह भी बताया कि आकाश में हर पल हजारों की संख्या में उल्काएं टूटती रहती हैं जिनमें से बहुत कम धरती से नंगी आंखों से देखी जा सकती हैं। इस प्रणाली में इन्हीं में से कुछ अदृश्य उल्काओं का इस्तेमाल करने की व्यवस्था की गई है। यद्यपि अनुसंधानकर्त्ता उल्कापिंडों के माध्यम से सूचनाएं भेजने के प्रयोग में सफल रहे हैं पर अभी और परीक्षण किए जाने हैं। इस प्रणाली का विकास रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन तथा सिग्नल इंजीनियरों ने मिल कर किया है।

उच्च क्षमता सौर पम्प

फ्रांस की एक कंपनी "टोटल एनर्जीज" ने हाल ही में उच्च दक्षता वाले एक नये सौर पम्प सैट को बाजार में उपलब्ध करवाया है। इस औद्योगिक नवीनीकरण के कारण इस पम्प की कार्यक्षमता 90 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ गई है। इसका कारण यह है कि इसमें ब्रुसहीन डी.सी. सीरिज मोटर का प्रयोग किया गया है जो कि फोटो वोल्टिक पैनल से चलती है। इस मोटर में रेअर अर्थस से बने चुम्बक प्रयोग में लाये गये हैं। उदाहरणार्थ अच्छी धूप में 1/2 मी.^{2} साईज के 4 सौर पैनलों को प्रयोग करके 10 मीटर की गहराई से 10 मीटर^3 पानी निकाला जा सकता है। ये सौर पम्प एकाकी घरों तथा छोटे-छोटे गांव के लिये बहुत उपयोगी हैं।

डा. बी.एन. टंडन पुरस्कृत

चिकित्सा और प्राथमिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में औरतों और बच्चों पर महत्वपूर्ण योगदान के लिये इस वर्ष प्रो. बी.एन. टंडन को "सासाकवा पुरस्कार" के लिये चुना गया है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से दिया जाने वाला यह सबसे बड़ा पुरस्कार है। ज्ञातव्य है कि प्रो. टंडन अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के डीन के साथ-साथ गेस्ट्रोइंट्रोलाजी विभाग के प्रमुख भी हैं। उनकी विशिष्ट सेवाओं को देखते हुये राष्ट्रपति ने उन्हें 1986 में पद्मविभूषण से सम्मानित किया था। प्रो. टंडन 1975 से

सरकार के एकीकृत बाल विकास सेवा कार्यक्रम के केंद्रीय तकनीकी कमेटी के चेयरमैन भी हैं।

क्या कृत्रिम फेफड़ा बनेगा?

अमेरिका में "इंट्रा वैस्क्यूलर आक्सीजेनेरेटर" नाम से एक यंत्र बनाया गया है। यह यंत्र मरीज के रक्त में आक्सीजन पहुंचा देता है तथा उससे कार्बन डाइआक्साइड निकाल देता है। यह बिना कोई हानि पहुंचाये एक सप्ताह तक रोगी के सीने में लगा रह सकता है। वर्तमान में अमेरिका के डाक्टर, फेफड़ों में जख्म होने की अवस्था में इसको फेफड़ों की सहायता के लिये रोगी के शरीर में लगा देते हैं। डाक्टरों का विश्वास है कि यह यंत्र फेफड़े का कार्य भी कर सकता है। इसलिये अमेरिका खाद्य व औषधि प्रशासन ने इस यंत्र को परीक्षण के तौर पर कुछ मरीजों में प्रत्यारोपित करने की अनुमति दे दी है।

थैलासीमिया बढ़ रहा है

ब्रिटेन के थैलासीमिया (रक्त दोष) रोग के विशेषज्ञ डा. बाकी तथा डा. विलियम, एक स्वयंसेवी संस्था थैलासीमिक्स इंडिया के आमंत्रण पर भारत आये थे। उन्होंने बताया कि थैलासीमिया एक भयंकर रोग है जो विशेषरूप से 1 से 8 वर्ष तक के बच्चों में पाया जाता है। एक अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष 5000 बच्चे ऐसे पैदा होते हैं जो इस रोग से ग्रस्त होते हैं।

डा. बाकी ने बताया कि रक्त दोष का यह रोग खून में लाल कणिकाओं की कमी अथवा इन की कम अवधि में ही समाप्त हो जाने से पैदा होता है। इस रोग से प्रभावित शिशु में रक्त की कमी हीमोग्लोबिन का स्तर कम होने से पीलिया, जिगर का बढ़ना, हड्डियों का रोग और मानसिक और शारीरिक विकास प्रभावित होता है और बच्चे आमतौर से 1 से 8 वर्ष तक की आयु में मर जाते हैं।

थैलासीमिया रोग के उपचार के संबंध में डा. बांकी ने बताया कि रोगी को 2 से 4 सप्ताह में नया रक्त चढ़ाना पड़ता है। शरीर में लौह तत्वों की आवश्यकता से अधिक वृद्धि को समाप्त करने के लिये जीवन रक्षक औषधि (डेसफेरल) इंजेक्शन द्वारा रोगी के शरीर में चढ़ाई जाती है।

डा. बांकी ने यह भी बताया कि यह रोग शिशु में मां-बांप से पैदा होता है तथा गर्भावस्था में इस रोग का पता नहीं चल पाता। शिशु के जन्म के बाद ही इस रोग का पता चलता है।

देशी घी से हृदय रोग नहीं

ओहियो विश्वविद्यालय में एनाटामिक पैथोलाजी के प्रोफसर डा. हरि शर्मा ने बताया है कि तैलीय खाद्य आमतौर पर शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ाते हैं और दिल की बीमारियों को आमंत्रित करते हैं। लेकिन भारत के खान-पान का अभिन्न अंग "शुद्ध देशी घी" इसका अपवाद है।

उन्होंने बताया कि शुद्ध देशी घी तो अधिकांश आयुर्वेदिक औषधियों का आधार है और नियमित भोजन में उनकी एक सुनिश्चित मात्रा दिल की बीमारियों को बढ़ाने की बजाय शरीर की रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता को बढ़ती है।

पश्चिमी देशों में बहुचर्चित आयुर्वेदिक रसायनों पर अपने अध्ययन के आधार पर डा. शर्मा ने बताया कि आयुर्वेदिक रसायन दिल के रोगों के लिये जिम्मेदार कोलेस्ट्रोल और एरयिरोसिलरोसिस की क्रिया को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करते हैं और एलोपैथिक औषधियों की तरह किसी प्रकार के हानिकारक पर्श्व प्रभाव उत्पन्न नहीं करते।

डा. शर्मा के अनुसार योग और उसकी सबसे सुगम शैली "भावातीत ध्यान" दिल के रोगों की रोकथाम और उपचार में बहुत ही सहायक होती है। हालैण्ड की स्वास्थ्य बीमा कंपनी "सिल्वर क्रास" द्वारा वर्ष 1984 से 5,000 लोगों पर किये गये शोध अध्ययनों की चर्चा करते हुये उन्होंने कहा 'भावा[तीत] ध्यान' करने वाले लोगों को अन्य लो[गों की] तुलना में दिल की बीमारियों का खतरा [...] प्रतिशत और कैंसर का खतरा 55 प्रति[शत] कम हो जाता है।

एयर कंडीशनर न चलायें

भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान [...] "बदलता वायुमंडल: [...] परिदृश्य" विषय पर एक सेमिनार [का] आयोजन किया गया। इस अवसर प[र] वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परि[षद] के महानिदेशक डा. ए.पी. मित्रा ने शोध पत्र पढ़ते हुये बताया कि वैज्ञानिकों ने ह[ाल] की खोजों में पाया है कि पृथ्वी एवं सूर्य [से] संबंधित कई परिकल्पनाओं में बदल[ाव] आया है। अब वायुमंडल की कु[छ] किलोमीटर तक दूरी वाली परम्परा[गत] परिभाषा भी गलत साबित हुई है। उन्[होंने] बताया कि ट्रेस स्पीशीज गैसें जिनकी मा[त्रा] कुछ अंश प्रति दस लाख (पी पी एम) [...] होगी। इस भयंकर बदलाव की वजह [...] इनमें कार्बन डाइआक्साइड, मीथे[न] क्लोरोफ्लोरो कार्बन इत्यादि हैं।

डा. मित्रा ने कार्बन डाइआक्साइड [...] असंतुलन से ग्रीन हाउस प्रभाव का उल्ले[ख] करते हुये वनों को अंधाधुंध नष्ट किये ज[ाने] के प्रति सावधानी रखने पर जोर दिया।

क्लोराफ्लोरो कार्बन प्रयोग करने [...] उद्योगों और इनके उत्पादों से वायुमंडल [के] चारों ओर पाई जाने वाली रक्षक गैस ओ[जोन] की सतह नष्ट हो रही है। उन्होंने सुझा[व दिया] कि यदि क्लोरो फ्लोरो कार्बन का प्र[योग] नियंत्रित नहीं किया गया तो कृषि उपज न[ष्ट] हो सकती है।

ज्ञातव्य है कि ओजोन गैस की सतह पृ[थ्वी] के वायुमंडल के चारों ओर फिल्टर का का[र्य] करती है और घातक पराबैंगनी किरणों [को] रोकती है। इन किरणों के प्रभाव से फ[सलें] नष्ट हो सकती हैं और मनुष्य की त्वचा कैं[सर] से प्रभावित हो सकती है।

डा. मित्रा ने एयरोसोल स्प्रे, प्लास्[टिक] फोम तथा एयर कंडीशनरों को वायुमंडल [में] क्लारोफ्लोरा कार्बन की वृद्धि का का[रण] बताते हुये इन पर रोक लगाने का सु[झाव] दिया।

हमारे बालोपयोगी प्रकाशन

विभिन्न आयु वर्गों के बालक-बालिकाओं को सरल तथा सुबोध मातृभाषा के माध्यम से विज्ञान और टेक्नोलाजी का परिचय तथा तकनीकी जानकारी देने की दिशा में और उनमें विज्ञान के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने में हमारे अभिनव प्रकाशन उपयोगी हैं।

● ●

विज्ञान विनोद पुस्तक-माला

4 से 8 वर्ष तक के बच्चों को सरल कविताओं के माध्यम से विविध वैज्ञानिक व तकनीकी विषयों की जानकारी देने वाले बहुरंगी चित्रों से भरपूर अपनी किस्म की अकेली पुस्तक-माला। इसमें से अनेक पुस्तकें अन्तर्राष्ट्रीय बाल-पुस्तक प्रदर्शनी में पुरस्कृत हो चुकी हैं।

प्रत्येक का मूल्य 1.50 रु.

जल का चमत्कार	हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली, मलयालम तेलगू और उर्दू में।
बिजली का चमत्कार	हिन्दी, मराठी, मलयालम, बंगाली, तेलगू, उर्दू और गुजराती में।
चुम्बक का चमत्कार	हिन्दी, मराठी, मलयालम, बंगाली, तेलगू और उर्दू में।
हवा का चमत्कार	हिन्दी, बंगाली, गुजराती और मराठी में।
टेलीफोन की कथा	हिन्दी, मराठी और बंगाली में।
कांच का चमत्कार	हिन्दी में।
चर्म-प्रदायक जन्तु	हिन्दी (गद्य) में।

● ●

पुस्तक मंगाने का पता :
वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
पी.आई.डी. बिल्डिंग, हिलसाइड रोड,
नई दिल्ली-110012

ग्राहकों के लिए खुशखबरी

विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सी.एस.आई.आर. द्वारा प्रकाशित

विज्ञान प्रगति (हिन्दी मासिक)

अब आकर्षक साज-सज्जा में विशेष छूट के साथ उपलब्ध

- ☐ इसके एक अंक का मूल्य 2.50 रुपये और वार्षिक चन्दा 25.00 रुपये है।

परन्तु

- ☐ **एक वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र-25.00 रुपये अर्थात 5.00 रु. की बचत**
- ☐ **दो वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र-40.00 रुपये अर्थात 20.00 रु. की बचत**
- ☐ **तीन वर्ष का ग्राहक बनने पर कुल चन्दा मात्र-60.00 रुपये अर्थात 30.00 रु. की बचत**

विशेष छूट का लाभ उठायें और चन्दे की राशि शीघ्र भेजें।

- ☐ यदि आप मनीआर्डर द्वारा शुल्क भेजें तो अपना नाम व पता बड़े व साफ-साफ अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर कूपन पर भी अपना पूरा पता पिनकोड नं. सहित लिखना न भूलें।
- ☐ चैक तथा डिमान्ड ड्राफ्ट "प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली" के नाम भेजें।
- ☐ विज्ञान प्रगति का प्रथम अंक वी.पी. द्वारा भी भेजा जा सकता है। यदि पाठक यह लिखित आश्वासन भेजें कि वह विज्ञान प्रगति के शुल्क से अतिरिक्त वी.पी. का खर्चा सहित अपनी वी.पी. छुड़ा लेंगे।
- ☐ अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें :-

वरिष्ठ बिक्री एवं वितरण अधिकारी प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड नई दिल्ली-110 012

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित
Regd. No. D (C)-89

मई 1990; बैसाख 1912

विज्ञान प्रगति

कम्प्यूटर बगिया का कमाल

अब पेड़ बनेंगे कारखाने

पक्षियों में शिशु पालन

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

वर्ष 39, मई : 1990, बैसाख 1912, अंक 5, पूर्णांक

पृष्ठ 10

पृष्ठ 17

पृष्ठ 22

विषयसूची

पृष्ठ 27

पृष्ठ 36

पृष्ठ 39

पृष्ठ 43

पत्रिका का वर्तमान रूप

आपको संपादक पद के लिये बहुत-बहुत बधाई। नये अंक में आपकी कार्यकुशलता केवल झलक ही नहीं रही अपितु अक्षरशः बोल रही है। पत्रिका के इस प्रभावी रूप के लिये मेरी ओर से विशेष बधाई।

मैं एक लंबे समय से इस पत्रिका का पाठक हूं। मैंने इसके उतार-चढ़ाव देखे और अनुभव किये हैं। इनमें पत्रिका का वर्तमान रूप अपना अलग स्थान बना गया है। नये स्तंभ, नई आवरण सज्जा और रंगीन सजधज ने पत्रिका को नया जामा पहनाया है।

[कुलदीप शर्मा, 602 कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली]

●

सुंदरता में अनोखी पत्रिका

पत्रिका अपनी सुंदरता मेंअनोखी और अपने आप में पूर्ण है। इसका मुख पृष्ठ बहुत ही आकर्षक होता है। पत्रिका हर व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करती है। जो भी इसे पढ़ता है, हमेशा के लिये इसका दोस्त बन जाता है।

इस पत्रिका में सभी लेख एक से बढ़कर एक हैं।

[अशोक गुप्ता, राजेश गुप्ता, जगदीश मंदिर सीहोर, मध्य प्रदेश और कुमारी प्रतिज्ञा पंचोली, छीपा बारवल, इंदौर, म.प्र.]

●

दो राय नहीं

'विज्ञान प्रगति' हिन्दी माध्यम की एक अत्यंत ज्ञानवर्द्धक पत्रिका है। मन, मार्च अंक बार-बार पढ़ने को लालायित हो रहा था। इसमें कोई दो राय नहीं कि इस पत्रिका ने अपने आपको पाठकों के परिवार का सदस्य बना डाला है। ''वायुमंडल कैसे बना'' विषय पर दी गई जानकारी वायुमंडल से संबंधित सभी शंकायें दूर कर गई। ''कृत्रिम धागे सबसे आगे'' विषय पर नीलू श्रीवास्तव का छपा लेख काफी उपयोगी बन पड़ा। क्या भविष्य में आप इसके पृष्ठों में बढ़ोत्तरी नहीं कर सकते? क्योंकि इतने पृष्ठों को तो एक ही सांस में पढ़ डालते हैं। साथ ही यह भी आशा करते हैं कि आप इस पत्रिका का स्तर उच्च बनायें रखेंगे।

[ए.ए. खान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय; अशोक कुमार गुप्ता, टाट बाबा मंदिर, सब्जी मंडी के पास, सीहोर, म.प्र.]

●

विज्ञान प्रगति का विज्ञान

मार्च 90 का अंक मिला। अब तो 'विज्ञान प्रगति' इतनी अच्छी लगती है कि मैं जब एक पढ़ चुकता हूं तो दूसरे के लिये दुकान का रोज चक्कर काटना शुरू कर देता हूं। इस अंक में सभी लेख अच्छे लगे। ''हम सुझायें आप बनायें'' न पाकर काफी अफसोस हुआ। एक साहब ने पूछा हमसे, विज्ञान की प्रगति कैसी है। हमनें कहा, ''विज्ञान प्रगति'' पढ़ो खुद जान जाओ।

[मुहम्मद आरिफ द्वारा श्री सईद उद्दीन सिद्दीकी, 8 नयी कालोनी, पो. अफीम कोठी, प्रतापगढ़]

●

संसार के महान वैज्ञानिक

'विज्ञान प्रगति' के दिसम्बर 1988 से नियमित पाठक हैं और अब तक के सारे अंक हमारे पास सुरक्षित हैं। मार्च के अंक में ग्रीन हाऊस प्रभाव, चित्रकथा, प्रश्न मंच, भयानक रोग—डिप्थीरिया, गल्प कथा, संसार के महान गणितज्ञ काफी पसंद आये। यदि आप विज्ञान प्रगति में संसार के महान वैज्ञानिक नामक स्तम्भ शुरू कर दें तो इससे पत्रिका में और भी निखार आ जायेगा तथा विज्ञान के विद्यार्थियों को काफी सहायता मिलेगी। पत्रिका में 'हम सुझायें आप बनायें' न पाकर काफी दुख हुआ। पत्रिका का मुख पृष्ठ आकर्षक था।

[संजय कुमार जैन, मो. माता वाला, पैमेश्वर गेट, फीरोजाबाद और राकेश विश्वकर्मा, कमानिया गेट, पनागर, जबलपुर]

संग्रहणीय अंक

मार्च अंक हर मायने में उत्कृष्ट मैं तो यह सोचकर गर्व म करता हूं कि मुझे इतनी पसंदीदा प पढ़ने को मिली। मासिक पत्रिका के इसने अपनी अनूठी छाप छोड़ी है। सं महान गणितज्ञ ''डेविड हिल्बर्ट'' के दी गई जानकारी हर मायने में संग्र साबित हुई। ''भयानक रोग—डिप्थीरि से बचने के बताये गये उपाय व्यावहा में लाने वाले थे। अगर प्रश्न-मंच स्त कुछ बढ़ा दिया जाये तो ज्यादा बेहतर र

[ऋषि कुमार खदरिया, खदरिया निवास, गा मार्केट, हनुमानगढ़ जंक्शन, राज.]

●

समाचार व कणिका

मैं विज्ञान प्रगति का नियमित पाठ वास्तव में विज्ञान प्रगति खरीद सर्वप्रथम समाचार व कणिका पढ़ क्योंकि ये पत्रिका की आत्मा हैं। सही यह है कि इनसे जितनी जानकारी हमें मि है उतनी न कोई समाचार पत्र दे सकता दूरदर्शन! इसमें हमें चौंका देने वाली पढ़ने को मिलती हैं। इस तरह यह प अब पत्रिका ही नहीं वरन वि समाचार-पत्र का भी कार्य कर रही है। अतिरिक्त एक निवेदन यह है कि पत्रिका में एक ऐसा स्तंभ आरंभ क विश्व में चल रहे वैज्ञानिक अनुसंधा जानकारी दे।

[विनीत गुप्ता 184 रामासदन आबूलेन, कैंट, उ.प्र.]

●

उतार-चढ़ाव का साक्षी

मैं विज्ञान प्रगति से अपने छात्र जीव जुड़ा हुआ हूं और तब से वर्तमा पत्रिका के हर उतार-चढ़ाव का साक्षी हूं। पत्रिका की वर्तमान आकर्षक सज्जा, उच्चस्तरीय एवं रोचकता से प सामग्री एवं अन्य सभी सूचनाओं का शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुतीकरण और तक कि विषय सूची का भी एक रोचक

आकर्षक ढंग से प्रस्तुतीकरण देखकर सहसा आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ कि हाथों में "विज्ञान प्रगति" ही है। निश्चय ही आप एवं आपके सभी सहयोगी इसके लिये बधाई एवं प्रशंसा के पात्र हैं।

पत्रिका को यह नया रूप देकर आपने, प्रकाशन के स्तर पर पत्रिका को वर्तमान में प्रकाशित हो रही वैज्ञानिक एवं साहित्यिक, सभी प्रकार की पत्रिकाओं के समतुल्य ला दिया है।

आशा एवं विश्वास है कि पत्रिका अपने नये कलेवर में दिनों-दिन प्रगति के मार्ग पर आरूढ़ होती जायेगी।

[राज किशोर, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उ.प्र.]

त्रासदी का अंत

आज मानव की भौतिकवादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप उपजे "ग्रीन हाउस प्रभाव" (मार्च 1990) पर लेख पढ़ा। इस त्रासदी का अंत क्या होगा, यह मानव बखूबी जानता है पर उसकी आंखों पर "अर्थ" और "भौतिकता" का मोटा पर्दा पड़ा है जिसके कारण वह स्वयं को तो क्या इस संपूर्ण विश्व को बलि पर चढ़ाने को उद्यत है। यदि इन दुष्टकार्यों को शीघ्र न रोका गया तो पानी सर से गुजरने वाली बात चरितार्थ होगी, तब हाथ मलने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा। तब सूर्य जो भगवान भास्कर के रूप में प्रसिद्ध हैं, क्रुद्ध होकर संपूर्ण विश्व को जलाकर राख कर दे, इसमें शायद ही संदेह हो। आज वैज्ञानिकों और समस्त मानव जाति को इस ओर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है।

[संजीव कश्यप, बुबकपुर, दबथुआ, मेरठ]

अल्प मूल्य पर बहुमूल्य

मैंने 'विज्ञान प्रगति' – का मार्च 1990 अंक पढ़ा। मैं इस पत्रिका का नवोदित पाठक हूं। मैंने आज तक इसे पढ़ा नहीं था, सिर्फ नाम सुना था। किन्तु जब मैंने इसकी लोकप्रियता सुनी तो बुक स्टाल जाकर विज्ञान प्रगति के इस अंक को खरीदा। पत्रिका पढ़ कर ऐसा लगा मानो सारे महत्वपूर्ण, रोचक ज्ञानवर्द्धक लेख या सूचनायें इसी पत्रिका में हैं। अच्छे कलेवर में रंग-बिरंगी सजधज के साथ आकर्षक स्तंभों, आमुख कथाओं के साथ यह पत्रिका वास्तव में अपने-आप में एक महत्वपूर्ण पत्रिका है। इतने कम दाम में इतनी बहुमूल्य रचनाओं से पूर्ण शायद ही कोई ऐसी पत्रिका होगी। इस अंक के सभी लेखक अच्छे थे। फिर भी उनमें "विश्व पर मंडराती प्राकृतिक विपदा—ग्रीन हाउस प्रभाव, वायुमंडल कैसे बना?, एवं कृत्रिम धागे सबसे आगे" इत्यादि लेख रोचक एवं ज्ञानवर्धक लगे। "प्रश्न-मंच" के अंतर्गत सभी प्रश्नोत्तर उल्लेखनीय रहे।

चित्रकथा के चित्र को देख कर एक बार तो मैं भी आश्चर्य में पड़ गया। आशा है आगे भी आप हम पाठकों को ऐसी ही महत्वपूर्ण, रोचक, ज्ञानवर्धक, उल्लेखनीय प्रश्नोत्तर आदि से परिचित कराते रहेंगे और हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। कणिका के अंतर्गत "इलेक्ट्रानिक नर्स की ईजाद" पढ़ा। पढ़कर खुशी हुई कि अब नर्सों को इस झंझट से मुक्ति मिल गई है कि वे बच्चे का किस प्रकार ख्याल रखें।

[विनय अग्रवाल "गुड्डू", द्वारा श्री जुगल किशोर गोयनका, चौक गया, (बिहार)- 823001]

पाक्षिक करें

'विज्ञान प्रगति' का मार्च 90 अंक मिला। आसान व स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ लेख 'ग्रीन हाउस प्रभाव' एक ही बार पढ़ने से समझ में आ गया।

आज भी विश्व, समय रहते प्रदूषण को भीषण संकट के रूप में मानने को तैयार नहीं। ग्रीन हाऊस प्रभाव से फसलों की पैदावार बढ़सकती है लेकिन इन छोटे फायदों से उस अप्रत्याशित नुकसान का आकलन नहीं किया जा सकता।

औद्योगीकरण पर ताला लगने से किसी भी देश को लकवा मार जायेगा। अतः वैज्ञानिकों को प्रदूषण उन्मूलन हेतु नये-नये आविष्कार करने चाहिये।

[विनय कुमार, द्वारा श्री डी.एन. सिंह, तपोवन, कोकर, रांची- 834001]

रोमांचक स्तम्भ

'विज्ञान प्रगति' बच्चों को देने से पहले मैं स्वयं भी विज्ञान समाचार, प्रश्न मंच तथा अन्य लेख पढ़ता हूं। पर जो स्थायी स्तंभ मुझे हमेशा रोमांचित करता है वह भाई गुणाकर मुले का गणितज्ञों का परिचय का आलेख होता है। मार्च अंक में ही डेविड हिल्बर्ट का व्यक्तित्व तथा कृतित्व पढ़कर मनमयूर नाच उठा। क्या कभी हमारे यहां भी ऐसी आस्था तथा कर्मठता का "सोने में सुगंध" जैसा मेल हो पायेगा? देवेंद्र मेवाड़ी की रचनायें सभी का मन मोहती हैं। मां भारती-हिंदी गुणाकर मुले जैसे भावानुवादकों तथा सर्जकों की सदैव ऋणी रहेगी जिन्होंने आचार्य दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी जैसी महान ऐतिहासिक रचनाओं की मनभावन अनुवाद कम और रचनायें ज्यादा की।

[प्रकाशचन्द्र शास्त्री, सहायक आचार्य एवं अनुवादक, राजनीति शास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर]

धरोहर अंक

सम्पादक जी आपने मुझे मेरे न मिले अंक भेजकर यह सिद्ध कर दिया कि आजकल इस कांटों भरे संसार में गुलाब के फूलों जैसे आपके जैसे दिल भी हैं और यह ईमानदारी का भी द्योतक है।

मुझे मेरा प्रथम अंक यानि कि मार्च अंक मिला। पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इस अंक में श्री देवेंद्र मेवाड़ी द्वारा लिखित गल्प कथा ने मन को कल्पनातिरेक करके झकझोर कर रख दिया। आशा है आप भविष्य में भी ऐसे अंक प्रकाशित करेंगे क्योंकि मैंने देखा है कि अब तक के सन 90 के तीनों अंक एक धरोहर के समान हैं। सम्पादकीय व सम्पादक के नाम पत्र अवश्य प्रकाशित करें क्योंकि यह ही एक ऐसा माध्यम है जो सम्पादक व पाठकों के विचारों का आदान-प्रदान करता है।

[अधिकारी जी.के. निर्दयी, गांव व पोस्ट-कक्केपुर, सरधना, मेरठ]

कृपया अप्रेल, 1990 अंक में 'प्रश्न मंच' में प्रकाशित प्रश्न को 'कार्बन के सर्वाधिक कार्बनिक यौगिक क्यों बनते हैं?' पढ़ें।

ग्राहकों के लिए सूचना

1. ''विज्ञान प्रगति'' (हिंदी वैज्ञानिक मासिक पत्रिका) **प्रकाशन एवं सूचना** निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) द्वारा प्रकाशित की जाती है। इसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों पर सामग्री प्रकाशित होती है। इसके पाठकों की संख्या तीन लाख से अधिक है।

2. इसकी एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। एक वर्ष के लिये शुल्क 25.00, दो वर्ष के लिये 40.00 रुपये और 3 वर्ष के लिये 60.00 रुपये है। दो वर्ष के लिये ग्राहक बनकर आप 10.00 रुपये की और तीन वर्ष के लिये ग्राहक बनकर 15.00 रुपये की बचत कर सकते हैं। चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, निकट पूसा, नई दिल्ली-110 012** को भेजी जानी चाहिये।

3. विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

4. चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें। चैक और ड्राफ्ट, प्रकाशन एव सूचना निदेशालय, नई दिल्ली, के नाम से भेजे जाने चाहिये।

5. कृपया ग्राहक फार्म भर कर शीघ्र भेजें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में एक वर्ष के लिए (मास... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए।

इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक .... दिनांक .... से

''प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.'', नई दिल्ली-110012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

— हस्ताक्षर

पूरा पता

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी., हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110 012

अपनी बात

विज्ञान प्रगति

मई 1990

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
श्रीमती दीक्षा बिष्ट

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलबीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा
बशिष्ट ओझा

मुख पृष्ठ
कृत्रिम फूल

पारदर्शी : अनूप कुमार तनेजा

टेलीफोन : 585359 और 586301

लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये

वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

मनुष्य की प्रवृत्ति शुरू से ही कुछ कर गुजरने की रही है, चाहे इसके लिये उसे कितना ही परिश्रम क्यों न करना पड़ा हो या कुछ खोना ही क्यों न पड़ा हो। प्रगतिशील जीवन की दौड़ में वह इस कदर दौड़ता रहा कि उसे पता ही नहीं चला कि कब उसने वन सम्पदा काट कर वहां गगन चुम्बी इमारतें खड़ी कर लीं और कब वह औद्योगिक इकाईयां खड़ी करते-करते प्रदूषण के जंगल में भटक गया। उसे कुछ होश तब आया जब गगन चुम्बी इमारत के एक फ्लैट में उसे किचन गार्डन तो क्या हरी घास का एक तिनका भी न मिला। अब क्या करे? हरियाली तो जरूरी है ही। मान लिया पार्क में घूम कर हरियाली का आनंद उठा लेंगे लेकिन ड्राइंगरूम के गुलदस्ते के लिये फूल कहां से आयें। रोज-रोज गुलदस्ते के लिये फूल ढूंढ कर जुटाना जब कठिन लगने लगा तो कृत्रिम फूलों की सोचने लगा। इसी धुन में गया कम्प्यूटर की शरण में और बना डाली—कम्प्यूटर बगिया।

कम्प्यूटर युग में तो पहुंच गया लेकिन बीमारियों ने क्या कभी किसी का पीछा छोड़ा है? जैसे-जैसे प्रगति होती गई बीमारियां भी नई-नई आती गई। लेकिन हार कभी मानी है मनुष्य ने?। उसने भी अपना एक ऐसा एजेण्ट तैयार किया कि वह करने लगा शरीर की जासूसी और उतार कर रख दिये पूरे शरीर के आंतरिक अंगों के चित्र और बीमारी का अता-पता भी बता दिया।

लेकिन मनुष्य की टिक कर बैठने की आदत तो है नहीं, वो कुछ न कुछ करता ही रहता है। जैसे ही जैवप्रौद्योगिकी से मुलाकात हुई तो पता चला कि पेड़-पौधों को भी कारखानों में बदलने की क्षमता उसमें है। वैसे तो ये पहले भी लघु उद्योगों की तरह काम करते थे लेकिन साहब अब तो आप इन्हें पूरी तरह कारखानों में बदल सकते हैं।

वैसे तो प्राचीन, मध्य और आधुनिक युग में कई महान गणितज्ञ हुये हैं और उनमें अधिकांश पुरुष ही हैं लेकिन महिलायें भी किसी क्षेत्र में पीछे नहीं रही हैं चाहे उन्हें उनके कार्य के अनुरूप उचित सम्मान न मिला हो। "सोफी जेरमी" (अप्रेल, 1990) इसकी प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उनकी मृत्यु के सरकारी प्रमाणपत्र में उनको "छोटी वार्षिक आय वाली महिला" कहा गया, न कि गणितज्ञा।

आधुनिक युग की कुछ प्रतिभाशाली महिलाओं ने इस धारणा को निराधार सिद्ध कर दिया है कि गणित केवल एक 'पुरुषोचित' विज्ञान है।

महिलाओं की प्रतिभा के संदर्भ में एक और रहस्य आपके सामने रखना उचित होगा। मूर्धन्य विद्वान, वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन को जिस शोध पर नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था उसको पूर्ण करने में उन्हें अपनी पहली पत्नी, जो स्वयं एक वैज्ञानिक थी, का पूर्ण सहयोग प्राप्त था, और उक्त पुरस्कार की राशि का आधा हिस्सा उन्होंने अपनी पत्नी को दे दिया था। हालांकि बाद में दोनों का संबंध विच्छेद हो गया था। लेकिन उनकी पत्नी ने इस रहस्य को कभी उजागर नहीं किया।

विज्ञान प्रगति के वर्ष 1990 के अंकों की प्रशंसा में हमें पाठकों के सैकड़ों पत्र प्राप्त हुये हैं, उन सभी को पत्रिका में स्थानाभाव के कारण प्रकाशित कर पाना असंभव प्रतीत हो रहा है, अतः पाठकों को प्रतिक्रियाएं भेजने हेतु हमारा धन्यवाद।

अनिल कुमार शर्मा

आज से लगभग दस लाख वर्ष पूर्व से मानव की कहानी की शुरूआत होती है। इसी काल से आदि मानव का विकास हुआ। वह धरती पर अपने दोनों पैरों पर खड़े होकर चलना सीखने लगा। मानव ने अपनी भूख-प्यास तृप्त करने के लिए भोजन उत्पन्न करने की कला सीखी और कृषि की शुरूआत हुई।

समय के साथ सभ्यता भी विकसित होने लगी और विकसित सभ्यता के कारण लोगों की जीवन-शैली बदल गयी। रहन-सहन के नए तौर-तरीकों ने मानो, मानव को प्रकृति से थोड़ा-सा काटकर दूर कर दिया।

मानव, आदिमानव युग से चलते हुए, एक लम्बा सफर तय करने के बाद, वैज्ञानिक युग में पहुंचा है। आज उसके लिए आकाश की ऊंचाई या सागर की गहराई एक सीमा रेखा नहीं है। आज उसकी इच्छा उस जहां को जानने-समझने की है जो सितारों के उस पार रहस्य के धुंध में छिपा हुआ है।

इतना सब कुछ होने के बावजूद मानव का मन प्रकृति की अनगिनत लीलाएं देखकर आज भी उतना ही प्रफुल्लित होता है जितना कि कई हजार वर्ष पूर्व। आज भी हमारा मन वर्षा की बूंदों को हरे पत्तों पर गिरता देखकर खुशी से झूम उठता है। रंग-बिरंगे फूल लुभाते हैं, प्रकृति का हरा-भरा संसार देखकर हमारे मन का मयूर प्रसन्नता से नाचने लगता है।

हमारी कई बुनियादी आवश्यकताएं फल-फूल और पेड़-पौधों से पूरी होती हैं। दिन-प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या और बढ़ते औद्योगीकरण आदि के कारण क्रमशः पेड़-पौधों और कृषि के लिए जगह सिमटती जा रही है। इसी कमी को दूर करने के लिए प्रयोगशाला में ही प्रकृति के फल-फूलों का विकल्प ढूंढने का प्रयास शुरू हुआ। बढ़ती मांग और अल्प-समय में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक था कि वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयोग कर ऐसी युक्तियों का आविष्कार या खोज करें।

सफलता के फूल खिले। फलस्वरूप, आज फल-फूलों के सदृश्य कृत्रिम स्वाद-गंध हमारी दिनचर्या में शामिल हो गए। इन दिनों बाजार में मिलने वाले ज्यादातर खाद्य व पेय पदार्थ तथा आइसक्रीम, चॉकलेट, दवाएं, शीतल पेय इत्यादि कृत्रिम स्वाद व गंध युक्त हैं। इसके अलावा सुगंधित पदार्थों का फैशन की दुनिया में अच्छा-खासा दबदबा है।

पेड़-पौधे प्रकृति की खूबसूरत और अद्भुत छटा में चार चांद लगाते हैं। शहरीकरण के बाद इस चांद को मानो, ग्रहण लगना शुरू हो गया। केवल कृत्रिम स्वाद-गंध से हमारी यह आवश्यकता पूरी नहीं होती। हरे-भरे पेड़-पौधों और उनके रंग-बिरंगे फूल-पत्तों को हवा में डोलते देखकर मानसिक ताजगी मिलती है जो मस्तिष्क के लिए उपयोगी है। परिणामस्वरूप, कृत्रिम स्वाद-गंध की खोज के बाद भी निगाहें कुछ और खोजती रहीं।

सिर के ऊपर एक छत की तलाश में पेड़ों की अंधाधुंध कटाई शुरू हुई जो आज भी जारी है। एक-एक करके पेड़ कटते गए और आसमान की ऊंचाई से बातें करने वाली अट्टालिकाएं खड़ी होने लगी। शहरीकरण ने धरती को सीमेंट और कंक्रीटों के जंगल में बदलना शुरू कर दिया।

एक निश्चित समय या दिन में कली फूल बनकर चटखेगी और फूल के अनुरूप उसमें से सुगंध स्वतः निकलने लगेगी। कम्प्यूटर प्राकृतिक फूल, व पत्ते का आभास देने के लिए क्रमशः इनके रंग बदलेगा। पतझड़ के मौसम में पत्तियों का रंग पीला और वसंत के आते ही पुनः हरा होने लगेगा।

यद्यपि आजकल की व्यस्त और भागदौड़ की जिंदगी में लोगों के पास समय का अभाव है पर घर-बाहर फूल-पत्ते, और पेड़-पौधों से सजाकर सुंदरता लाने की चाह ज्यों की त्यों है। सजावट और शौक के लिए बागवानी करना सभी लोगों के बस में नहीं है। बस, यहीं से कृत्रिम फूल या सजावटी पौधों की जरूरत महसूस होने लगती है।

कृत्रिम फूल-पौधे देखने में सदा असली जैसे और आकर्षक तो दिखते हैं ही, साथ ही मुरझाते भी नहीं हैं। अतः इनकी देखरेख में खास परेशानी नहीं होती।

ये कृत्रिम फूल-पत्ते, कागज, कपड़े, प्लास्टिक, इत्यादि से बनाए जाते हैं। आजकल ये पॉलिस्टर मिश्रित सिल्क से बनाये जाते हैं। पॉलिस्टर मिश्रित सिल्क के फूल-पत्ते खूबसूरत होने के साथ-साथ, टिकाऊ भी होते हैं। अतः ऐसे फूलों की लोकप्रियता अप्रत्याशित रूप से बढ़ती जा रही है।

कुछ को छोड़कर, सभी प्राकृतिक फूल अपने ही मौसम में उगते हैं। लेकिन कृत्रिम फूल, यहां प्राकृतिक फूलों को पीछे छोड़ देते हैं क्योंकि वे किसी मौसम के बिल्कुल मोहताज नहीं हैं।

अब कृत्रिम फूलों से सजेगा कमरा

इसके अतिरिक्त कृत्रिम फूलों का संसार खाद, पानी, रोशनी की समस्याओं से भी साफ बचा रहता है। कमरे के अन्दर या बाहर कहीं भी सुविधानुसार इन्हें रखा जा सकता है। असली बात तो यह है कि इनमें कीड़े और रोग आदि लगने का भय नहीं होता, जिससे इन पर कीटनाशक दवायें छिड़कने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः ये अस्पतालों में रोगियों के कमरों में रखने के लिये अत्युत्तम हैं।

आजकल आंतरिक साज-सज्जा हेतु कृत्रिम फूल-पौधे हमारा आवश्यक अंग बन गये हैं, फिर कृत्रिम फूल-पौधों को जलवायु या आर्द्रता परिवर्तन से नुकसान भी नहीं पहुंचता है।

एस्ट्रो-टर्फ यानि कृत्रिम घास की सफलता, वास्तविकता पर खूबसूरती से हावी होने का सफल प्रयास है। खेल के मैदान में बिछी कृत्रिम घास को खिलाड़ियों ने काफी सराहा है क्योंकि तेज बारिश की बौछारों के बाद भी कीचड़ का नामोनिशान नहीं। जरूरत पड़ने पर इसे मैदान से हटाया जा सकना भी संभव है। खेल के मैदान में जमा पानी को निकास द्वार से निकालकर एवं कुछ ही घंटों में सुखाकर, पुनः खिलाड़ियों के खेलने के लिए तैयार करना आसान है।

मॉडल के रूप में प्रदर्शित करने के लिए कृत्रिम फूल-पौधे उपयोगी होते हैं क्योंकि स्थान परिवर्तन और प्रदर्शन के लिए इन्हें तुरन्त तैयार करना आसान है। गत वर्ष नयी दिल्ली में आयोजित विश्व व्यापार मेले के 'स्पाइसेस बोर्ड' की दीर्घा में कृत्रिम इलायची का पौधा प्रदर्शित किया गया था। इसके अतिरिक्त कई राज्यों दीर्घाओं में कृत्रिम फूल-पत्ते और पेड़-पौधे सजावट के लिए रखे थे।

सन् 1970 में, कृत्रिम फूल-पौधों के अतिरिक्त एक कृत्रिम लगाने की केलिफोर्निया में पहल की गई। पहला प्रयास अ रहा। कृत्रिम पेड़ सूर्य की तेज रोशनी सह न सका और पिघल और उसके चटखीले रंगों की चमक भी फीकी पड़ने लगी।

लेकिन आज अल्बर्टा के एडमंटन में, 14 फीट की ऊंचाई कृत्रिम क्रिसमस के पेड़, क्रिसमस के कई दिनों बाद तक भी दि देते हैं। नये शोध, नवीन तकनीकों और इसे बनाने में प्रयुक्त में निरन्तर सुधार के बाद, अब ऐसे कृत्रिम फूल-पत्ते व पेड़ बनने लगे हैं जो काफी समय तक टिके रहते हैं और सूर्य की रोशनी में भी फीके नहीं पड़ते।

प्राकृतिक पेड़-पौधों को मिस्र की ममी के समान वर्षों तक सु रखे जा सकने के लिए, अल्बर्टा की एक कम्पनी अनोखा प्रयोग रही है। यदि प्रयोग सफल हो जाता है तो 15 फीट की ऊंचाई यूकेलिप्टस, देवदार, इत्यादि वृक्षों को वर्षों तक रासायनिक का लेप चढ़ाकर, सुरक्षित रखा जा सकेगा।

प्राकृतिक पेड़ को उपयोग में लाने के लिए एक आम प्रचलित है। वास्तविक पेड़ को सुखाकर उसे जीवित व हरा-भरा दिखा लिए ताड़-खजूर जैसे पेड़ की पत्तियों से सजा देते हैं। ऐसे पेड़

पक्की ज
लगाना

तने क
लिए पेड़
पत्तों से
आवश्य

प्राकृ
जीव-ज
कृत्रिमत
जीव-ज

कृत्रिम फूलों की खूबसूरती प्राकृतिक फूलों से कम नहीं

कृत्रिम प्रकृति में परिवर्तनशीलता गुण की पूर्ति के लिए प्रयास जारी है ताकि ये सदा एक जैसे उबाऊ न दिखें। अतः आशा है कि कम्प्यूटर द्वारा यह कमी पूरी की जा सकेगी। ऐसा अनुमान है कि यदि कृत्रिम पेड़-पौधों को कम्प्यूटर के प्रोग्राम से जोड़ दिया जाए तो उन्हें नियंत्रित करना संभव है। कम्प्यूटर, प्रोग्राम के अनुसार कृत्रिम पेड़-पौधों को संचालित करेगा।

एक निश्चित समय या दिन में कली फूल बनकर चटखेगी और फूल के अनुरूप उसमें से सुगंध स्वतः निकलने लगेगी। कम्प्यूटर प्राकृतिक फूल-पत्ते का आभास देने के लिए क्रमशः इनके रंग बदलेगा। पतझड़ के मौसम में पत्तियों का रंग पीला और वसंत के आते ही पुनः हरा होने लगेगा। कम्प्यूटर में एक बार साल भर के लिए प्रोग्राम निर्धारित कर देने पर, पूरे वर्ष कृत्रिम पेड़-पौधों और फूल-पत्तों का रंग-रूप बदलता रहेगा और स्वतः परिवर्तित होकर लोगों को लुभाता रहेगा।

लेकिन ऐसी बगिया, जिसका माली कम्प्यूटर हो, काफी खर्चीली होगी। खर्चीली होगी तो निश्चित ही चोरों को भी आकर्षित करेगी। लेकिन इसे भी कम्प्यूटर निपट लेगा, क्योंकि कृत्रिम पेड़ या पौधों को छूते ही अलार्म बजने लगेगा। इलेक्ट्रानिक सेंसर और अलार्म व्यवस्था की सहायता से आपकी अपनी कम्प्यूटर - बगिया स्वयं अपने आप ही, अपनी चोरी किए जाने की सूचना आपको दे देगी।

पक्की जगह में लगाए जाते हैं जहां प्राकृतिक नियमों के अनुरूप पेड़ लगाना संभव न हो।

तने का विकल्प पी.वी.सी. पाईप भी है। इसे प्राकृतिक स्पर्श देने के लिए पेड़ों से उतारी गयी छाल का जामा पहनाकर, ताड़-खजूर के पत्तों से सजा देते हैं। ऐसे कृत्रिम पेड़ों की कटाई-छंटाई करने की भी आवश्यकता नहीं होती।

प्राकृतिक पेड़-पौधों का संसार परिवर्तनशीलता के कारण समस्त जीव-जन्तु व प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित करता है। परन्तु कृत्रिमता के संसार में यह एक ऐसी कमी है जो खलती है और जीव-जन्तुओं को आकर्षित नहीं कर सकती।

हां! अब जरा यूं सोचिये कि आप कम्प्यूटरी बगिया में भ्रमण कर रहे हैं और एक खूबसूरत फूल को आपने स्पर्श कर दिया, यह क्या? यह फूल तो अपने बारे में सारी जानकारी स्पीकर द्वारा खुद-ब-खुद दे रहा है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती। फूल आपको याद दिलाएगा कि बगिया से निकलते वक्त कम्प्यूटर से अपना प्रिंट-आऊट ले लीजिए जिसमें उस फूल से संबंधित सारी जानकारी दर्ज है। कोई नटखट बच्चा फूल तोड़ने की कोशिश करेगा तो फूल-पत्ते उसे चेतावनी देते हुए मना करेंगे...। प्यार से पुचकार कर समझायेंगे और फिर भी वह न माने तो, खतरे का अलार्म बजा देंगे! क्यों? है, न यह कम्प्यूटर बगिया का कमाल....।

[श्री अनिल कुमार शर्मा, 1110 तिमारपुर, दिल्ली- 110 054]

सीताराम सिंह 'पंकज'

प्रायः सभी विकसित प्राणियों में शिशुपालन की सुंदर परम्परा देखने को मिलती है। मानव समाज तो इसमें काफी आगे है। उसके पास दिन प्रतिदिन नये-नये साधन उपलब्ध होते जा रहे हैं, ताकि बच्चे अच्छी तरह पल-बढ़ सकें। पक्षियों में अन्य जीवों की तरह अजब परंपरा दे... को मिलती है, वे भी अपने शिशुओं को भरपूर प्यार करते हैं। ... अंडे निकलने के पश्चात् अधिकांश पक्षियों के शिशु अस... अवस्था में पड़े रहते हैं। उन्हें पैत्रिक संरक्षण की सख्त आवश्य... होती है। तोता, कबूतर, फाख्ता, कौवा आदि के बच्चे कई दिनों... आंख भी नहीं खोल पाते और असहाय अवस्था में पड़े रहते हैं। ... प्रकार गायक पक्षियों जैसे कोयल और पपीहे के शिशु भी बिल... असहाय, अंधे और आवरणहीन होते हैं। ऐसे असहाय शिशु जन्म... लेकर कुछ दिनों तक भोजन के लिए पूरी तरह अपने माता-पिता... निर्भर करते हैं। किन्तु पक्षी-जगत में ऐसे पक्षी भी हैं जिनके शि... अंडे से बाहर निकलते ही दौड़ना आरंभ कर देते हैं। इतना ही नहीं... दो-तीन दिनों में ही आत्मनिर्भर होकर घोंसला छोड़कर स्व... जीवन व्यतीत करने लगते हैं। ऐसे आत्मनिर्भर पक्षी हैं—ती... मुर्गा, बत्तख, शुतुरमुर्ग आदि।
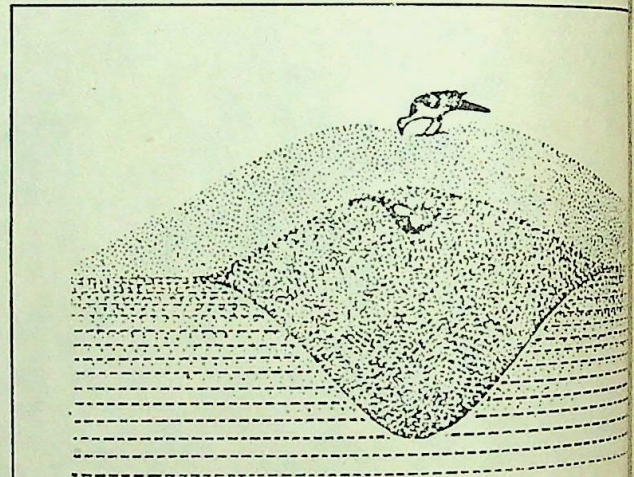
सेने के लिये मिट्टी में दबाये गये मैली फाऊल के अण्डे, ... चोंच थर्मामीटर की तरह ताप मापने में समक्ष होती ...

घोंसला निर्माण

घोंसले से पक्षियों का गहरा संबंध होता है। सच पूछिये तो घों... के निर्माण से ही शिशुपालन की शुरूआत हो जाती है। पक्षी अंडे... और शिशुपालन के लिये ही घोंसले का निर्माण करते हैं। वे घों... बनाना सीखते नहीं; वरन उनमें इसकी स्वाभाविक अनुभूति होती... कुछ पक्षियों के घोंसले तो बहुत खूबसूरत और मजबूत होते हैं, ... अधिकांश पक्षियों के घोंसले साधारण ढंग के ही होते हैं। बया... दरजिन फुदकी के घोंसले कलात्मक ढंग के होते हैं, जबकि कौवे... गिद्ध के घोंसलों में कोई आकर्षण नहीं होता। पक्षियों के घों... तिनके, घास-फूस आदि के बने होते हैं। सच पूछिये तो पक्षि... घोंसला-निर्माण का मुख्य उद्देश्य उनके अंडों-बच्चों तथा कु... तक उनकी मादा की सुरक्षा होता है। इसीलिये अधिकांश पक्षि... नर ही जोड़ा बनाने के बाद घोंसला बनाने की अपनी जिम्मे... समझ कर घोंसला बनाता है, जिसमें मादा सुरक्षापूर्वक रहकर ... सकती है।

अंडे सेना

अंडा देने के साथ ही पक्षियों का शिशुपालन-अभियान तेजी से आरंभ हो जाता है। जोड़ा बांधने के बाद मादा पक्षी अपने घोंसले में अंडा देती है। भिन्न-भिन्न पक्षियों में अंडों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। अक्सर अंडों की संख्या 4-5 होती है। कभी-कभी इनकी संख्या (किसी पक्षी विशेष में) 10-12 तक भी होती है। जहां तक अंडे सेने की बात है, मादा पक्षी ही इस कार्य को सम्पन्न करती है। मादा पक्षी के वक्षस्थल पर एक-दो स्थानों पर ऐसे स्थान निकल आते हैं, जहां से पर गिर जाते हैं। इन स्थानों से अंडों का शरीर से सीधा सम्पर्क बना रहता है और अंडों को पर्याप्त गर्मी मिलती रहती है जिससे अंडों के अंदर विकास तेजी से होता है। वैसे तो अधिकांश पक्षियों में अंडे सेने की जिम्मेदारी मादा की होती है, किन्तु कभी-कभी नर पक्षी भी अंडा सेने का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिये नर कबूतर बड़े शौक से अंडे सेता है। कभी-कभी तो वह अपनी मादा को हटा कर स्वयं अंडों पर बैठ जाता है और शिशुपालन का दायित्व निर्वाह करता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी पक्षी हैं जो अंडे देकर शिशुपालन की तमाम जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाते हैं। दरअसल ये पक्षी दूसरे पक्षियों के घोंसले में अंडे दे आते हैं; मसलन कोयल और पपीहे अपने अंडे चालाकी से दूसरे पक्षियों से सेवाते हैं। कहते हैं कि कोयल के अंडे मूर्ख कौआ सेता है।

मादा अंडों पर बैठ कर न केवल अंडों की रक्षा करती है, वरन् उनसे निकलने वाले अपने बच्चों को गर्मी, आंधी-तूफान से भी बचाती है। जब मादा अंडा सेती है, तो नर पक्षी अपनी मादा के लिये आहार की व्यवस्था भी करता है। कुछ पक्षी अपना अंडा न तो स्वयं सेते हैं और न ही दूसरे से सेवाते हैं, वरन् उसे प्रकृति के भरोसे छोड़ देते हैं। जैसे शुतुरमुर्ग अपने अंडों को घड़ियाल की तरह रेत में बने गड्ढे में छिपा देता है। ये अंडे दिन में सूरज से गर्मी प्राप्त करते हैं। रात्रि में वे अंडों पर स्वयं बैठ जाते हैं। सेलिबस नामक टापू पर रहने वाले पक्षी तो उष्ण जल के झरने के पास गड्ढे बनाकर उसमें अंडे देते हैं फिर उसे मिट्टी से ढक कर चले जाते हैं। समय पूरा होने पर अंडों के जनक स्वयं आकर ऊपर की मिट्टी साफ कर देते हैं और अंडे की दीवार तोड़कर शिशु पक्षी स्वतः बाहर निकल आता है। जहां बहुत अधिक गर्मी पड़ती है वहां पक्षियों को अंडों को ठंडा रखने के लिये बार-बार पानी से भिगोना पड़ता है। यदि ऐसा न किया जाये तो अधिक गर्मी के कारण अंडे के अंदर का शिशु नष्ट हो सकता है।

अण्डे सेने के लिये मादा घण्टों अण्डों पर बैठी रहती है

भोजन

अंडे से निकलने के बाद अधिकांश शिशु पक्षी असहाय अवस्था में रहते हैं और उन्हें निरंतर देखभाल की जरूरत होती है। नर-मादा पक्षी उन्हें सुपाच्य आहार देते रहते हैं। अनेक पक्षी अपनी चोंच में दाना, कीड़े-मकोड़े आदि लाकर अपने नवजात शिशु को खिलाते हैं। मादा बगुला मछलियों के टुकड़े अपने घोंसले में रख देती है, जिसे इशारा पाकर शिशु पक्षी खा लेते हैं। बच्चों के लिये भोजन की तलाश में जनक पक्षियों को दूर-दूर तक भटकना पड़ता है। गंगरा जैसी छोटी चिड़िया को अपने बच्चों के लिये 30-40 जोराइयां तलाश करनी पड़ती हैं। ट्टिस अपने शिशुओं को दिन भर में 300-500 बार भोजन लाकर खिलाता है। जाहिर है कि उसे इसके लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता होगा! कबूतर अपने बच्चों को एक प्रकार का दूध जैसा गाढ़ा पदार्थ खिलाते हैं जो काफी पौष्टिक और जीवनदायी होता है। इसे कबूतर का दूध (पिजन्स मिल्क) कहते हैं, जिसका निर्माण कबूतर के चुगे हुये अधपके दानों से उसके गले की थैली के भीतर होता है।

मुर्गी अपने नवजात शिशुओं के साथ निवास-स्थान के आस-पास घूमती है और उन्हें दाना चुगना भी सिखाती है तथा उनको खतरे से बचने का संकेत भी देती है। खतरे की आहट पाते ही शिशु दौड़कर मां के पास चले जाते हैं और मुर्गी उन्हें अपने पंखों में छिपा लेती है। इस प्रकार मुर्गी के पंख उनके शिशुओं की सुरक्षा के लिये घोंसले जैसा ही काम करते हैं। धूप और वर्षा से सुरक्षा के लिये कई पक्षी अपने बच्चों को अपने पंखों की छतरी में छिपा लेते हैं।

उड्डयन प्रशिक्षण

जब शिशु पक्षियों में धीरे-धीरे पंख उग आते हैं, तो उन्हें हवा में भलीभांति उड़ने का प्रशिक्षण दिया जाता है। वैसे उड़ना पक्षियों का

बच्चों को खाना खिलाती हुयी मार्बलर

एक नैसर्गिक सहज गुण हैं; किन्तु आरंभ में अधिकांश पक्षियों को उड़ने का प्रशिक्षण लेना ही पड़ता है। पहले तो उन्हें जमीन पर फुदकना और एक डाली से दूसरी डाली पर उड़ कर पहुंचना सिखाया जाता है, फिर वे स्वतः हवा में अपने जनकों के साथ उड़ने लगते हैं।

शिकारी पक्षी जैसे बाज, बहरी आदि अपने बच्चों के सामने हवा में मांस के टुकड़े उछाल देते हैं। मांस के प्रलोभन में बच्चे पंख फड़फड़ाकर हवा में उड़ने का प्रयास करते हैं और शनैः शनैः उड़ने लगते हैं। आलसी पक्षी जो स्वेच्छा से उड़ना नहीं चाहते, उन्हें माता-पिता जबर्दस्ती घोंसले से बाहर धकेल देते हैं, जिससे विवश होकर वे उड़ने लगते हैं। बाज और गरुड़ जैसे पक्षी अपने शिशुओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिये उन्हें चोंच से मार-मार कर घोंसले से बाहर निकाल देते हैं।

जलीय पक्षियों को अपने शिशुओं को तैरने और गोता लगाने

तिनका-तिनका जोड़ कर बनाते हैं पक्षी अपना घोंसला

आहार तलाशने का प्रशिक्षण भी देना पड़ता है। धीरे-धीरे वे तैरने और मछली पकड़ने में निपुण हो जाते हैं। डुबडुबी अपने बच्चों को तैरने और गोता लगाने का विधिवत प्रशिक्षण देती है।

प्राणों की बाजी

जाहिर है कि पक्षी अपने शिशुओं को बहुत प्यार करते हैं और कभी-कभी तो उन्हें अपने शिशुओं के लिये जान से हाथ तक धोना पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पक्षी अगर अपने शिशुओं की सुरक्षा न करें, तो पृथ्वी से उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

टिटिहरी अपने अंडों की सुरक्षा के लिये खूब नाटक करती है। दुश्मन को अपने अंडों के निकट देखकर अपना एक पंख इस प्रकार झुकाकर चलती है, मानो वह घायल हो। लेकिन जब शत्रु उसका पीछा करने लगता है, तो कुछ दूर लंगड़ा कर चलने के बाद एकाएक फुर्र से हवा में उड़ जाती है। कभी-कभी इसी चालाकी में उसे अपने प्राण भी गंवाने पड़ते हैं। इसी प्रकार भुजंगे की बहादुरी भी मशहूर है। यह पक्षी अपने से बड़े कद के पक्षियों पर भी आक्रमण पर बैठता है। कुछ पक्षी अपने बच्चों को मौसम की जानकारी भी देते हैं। इस प्रकार पक्षियों में अन्य विकसित प्राणियों की तरह शिशुपालन की सुंदर और शालीन परंपरा मिलती है, जो कई मायनों में प्रेरक और अनुकरणीय है।

[प्रो. सीताराम सिंह "पंकज", विभागाध्यक्ष "जन्तु विज्ञान", के.एस.आर. कालेज, सरायरंजन- 848 127 बिहार]

शरीर का जासूस

सी.एल. गर्ग और पूनम शर्मा

पिछले 25 वर्षों में आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी अविष्कार हुये हैं। इनसे जिन रोगों की चिकित्सा कुछ वर्ष पहले तक असंभव थी आज संभव हो गई हैं। शल्य चिकित्सा की उपलब्धियों को देखकर तो आंखें चौंध जाती हैं। सूक्ष्म शल्य चिकित्सा से लेकर हृदय, फेफड़े और गुर्दे जैसे महत्वपूर्ण अंगों का प्रत्यारोपण अब संभव हो गया है। रोग निदान की दुनिया में तो कम्प्यूटरयुक्त ऐसी मशीनों का आविष्कार हो गया है जो पल भर में शरीर के आंतरिक विकारों का पता लगा देती हैं। अल्ट्रासाऊंड, लैपरोस्कोपी आदि इसके कुछ मुख्य उदाहरण हैं।

पिछले दशक में रोग निदान की दुनिया में दो महान धमाके हु[ए] जिन्होंने सारे संसार में तहलका मचा दिया है। ये दो धमाके हैं कै[ट] स्कैनर और एन.एम.आर. स्कैनर के। कैट स्कैनर एक ऐसा यंत्र है [जो] एक्स-किरणों द्वारा शारीरिक रोगों का पता लगाता है। एन.एम.आर. स्कैनर, न्यूक्लियर मैग्नेटिक रेसोनैंस या नांभिक[ीय] चुम्बकीय अनुनाद के सिद्धांत पर कार्य करता है। इससे प्राप्त हो[ने] वाले परिणाम कैट स्कैनर की तुलना में अधिक शुद्ध और सही हो[ते] हैं। साथ ही साथ इस यंत्र में शरीर को हानि पहुंचाने वाले एक्स[-किरणों] जैसे विकिरण प्रयोग में नहीं लाये जाते। इसलिये यह जा[...]
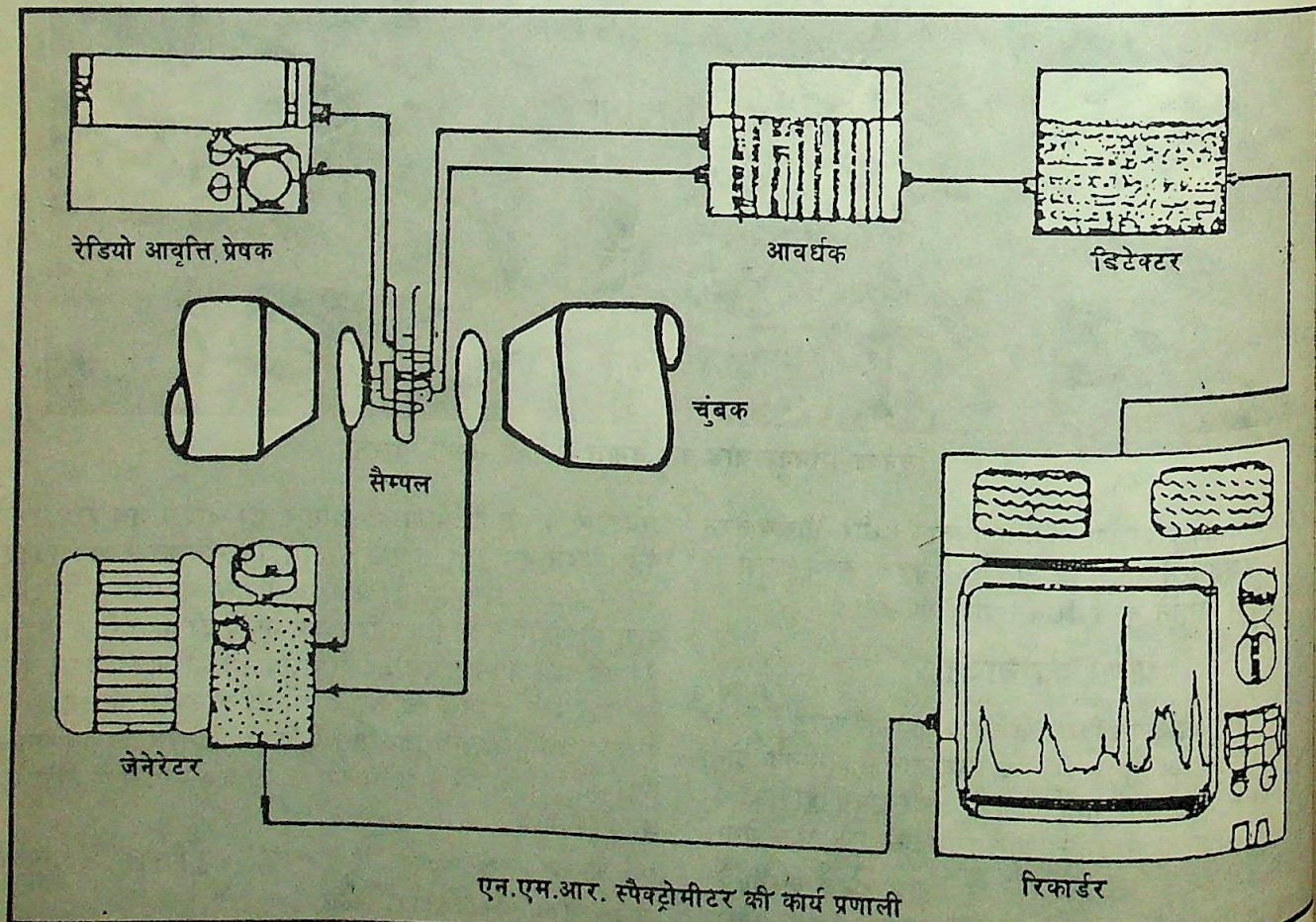
एन.एम.आर. स्पैक्ट्रोमीटर की कार्य प्रणाली
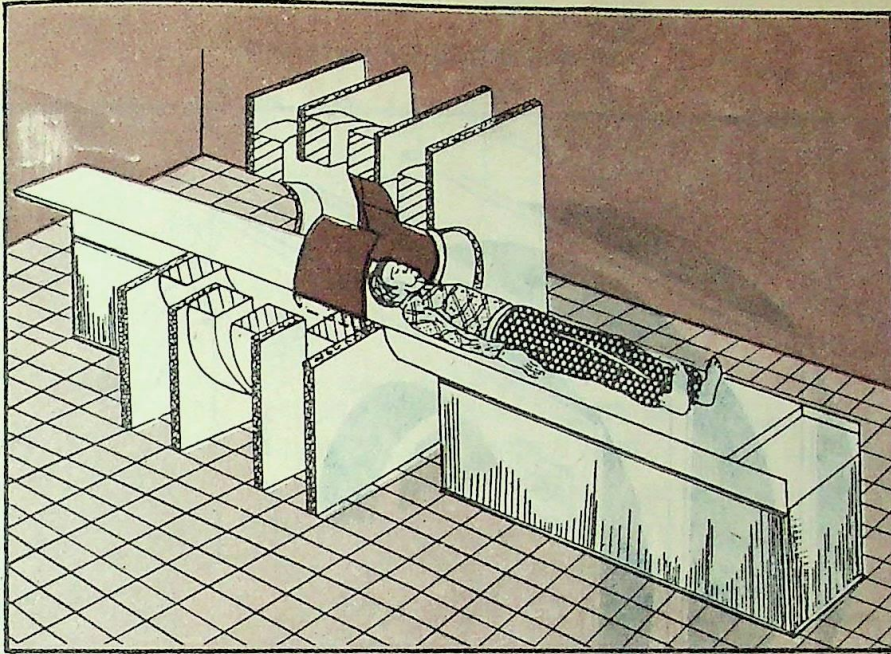
एन.एम.आर. स्कैनर का रेखा चित्र

आवश्यक है कि क्या है एन.एम.आर. स्कैनर और कैसे हुआ इसका विकास?

विकास

एन.एम.आर. स्पैक्ट्रोस्कोपी की नींव लगभग 30 वर्ष पहले स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के डाक्टर फ्लीक्स ब्लॉक और हारवार्ड विश्वविद्यालय के एडवर्ड एम. परसैल ने डाली थी। इस महानतम कार्य के लिए इन दोनों वैज्ञानिकों को 1952 का नोबेल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। परन्तु एन.एम.आर. स्पैट्रोस्कोपी का रोग निदान में उपयोग कुछ वर्ष पहले ही होना आरंभ हुआ है। यह तभी संभव हो पाया जब 1973 में न्यूयार्क स्टेट यूनिवर्सिटी के पॉल सी लॉटवर ने एन.एम.आर. संदेशों के कम्प्यूटर की सहायता से, प्रतिबिंब निर्मित करने में सफलता प्राप्त की। अनेक अनुसंधानों के बाद एन.एम.आर. संदेशों द्वारा सिर के विकारों के 1980 में प्रतिबिंब प्राप्त किए गए। उसके बाद 1986 तक दुनिया में उत्तम किस्म के रोग निदान के लिए एन.एम.आर. स्कैनर बनने लगे थे। और बाद में मस्तिष्क और शारीरिक रोगों का पता लगाने में इन यंत्रों का प्रयोग होने लगा।

कार्य सिद्धांत

हमारे शरीर में लगभग 70 प्रतिशत जल के अणु हैं। जल के इन अणुओं की मात्रा शरीर के अंगों में समान नहीं है। हम जानते हैं कि जल के अणु हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर बनते हैं। हाइड्रोजन के परमाणुओं के नाभिकों में चुंबकीय आघूर्ण होता है। जब इन नाभिकों को एक समान चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाता है तो ये चुंबकीय क्षेत्र के साथ अनुयोजित होने का प्रयास करते हैं। विद्युत चुंबकीय विकिरणों को अवशोषित करने से इनके चुंबकीय अक्ष लगाये गए चुंबकीय क्षेत्र की दिशा से विचलित हो जाते हैं। इससे उत्पन्न संकेतों को कम्प्यूटर टी.वी. स्क्रीन पर प्रतिबिंब के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

शरीर के अंदर निर्मित किसी भी रसौली में पानी का घनत्व आसपास के ऊतकों से भिन्न होता है। इसलिए टी.वी. स्क्रीन पर उभरने वाले चित्रों में से रसौलियां स्पष्ट दिखाई देती हैं।

एन.एम.आर. स्कैनर में चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करने वाली कुछ कुंडलियां तथा विद्युत चुंबकीय तरंगें शरीर में भेजने के लिये एक ट्रांसमीटर और शरीर से आने वाले संदेशों को चित्रों में प्रतिबिम्बित करने के लिए एक कम्प्यूटर होता है। उनका संबंध रोगी को लिटाने के लिए एक मोटर चालित स्ट्रेचर से होता है। स्ट्रेचर को आगे-पीछे करके शरीर के उस हिस्से को, जिसकी स्कैनिंग करनी होती है, चुंबकीय कुंडलियों के बीच में लाते हैं। चुम्बकीय अनुनाद के संदेश कम्प्यूटर से होते हुए टी.वी. स्क्रीन तक पहुंच जाते हैं। इस पर्दे पर रोगी के स्कैन किये हुये अंग का चित्र उभर जाता है। इस चित्र का कैमरे द्वारा चित्र ले लिया जाता है, जिससे शारीरिक विकार का पता लग जाता है। इसके कार्य के अनुरूप इसे 'शरीर का जासूस' की संज्ञा दी जा सकती है।

रोग निदान क्षमताएें

यह स्कैनर आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में रोग निदान के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इस तकनीक से हृदय की गतिविधियों का जीता-जागता अध्ययन किया जा सकता है। रक्त परिसंचरण तंत्र में किसी बाधा के कारण होने वाली स्थानीय खून की कमी को इस यंत्र द्वारा तत्काल पता किया जा सकता है।

एन.एम.आर. का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग शुरू-शुरू में कैंसर की रसौलियों का पता लगाने के लिए हुआ था। इसकी सहायता से 1 मिमी. व्यास तक की रसौलियों का पता लगाया जा सकता है। इसकी सहायता से मस्तिष्क की रसौली और मस्तिष्क में रक्त वाहिनियों में रुकावट, गुर्दे की पथरी, जिगर और फेफड़ों के विकारों आदि का पलभर में पता लगाया जा सकता है। यह तकनीक इतनी संवेदनशील है कि इससे दिल की धड़कनों तक का पूर्ण आभास हो जाता है। इससे
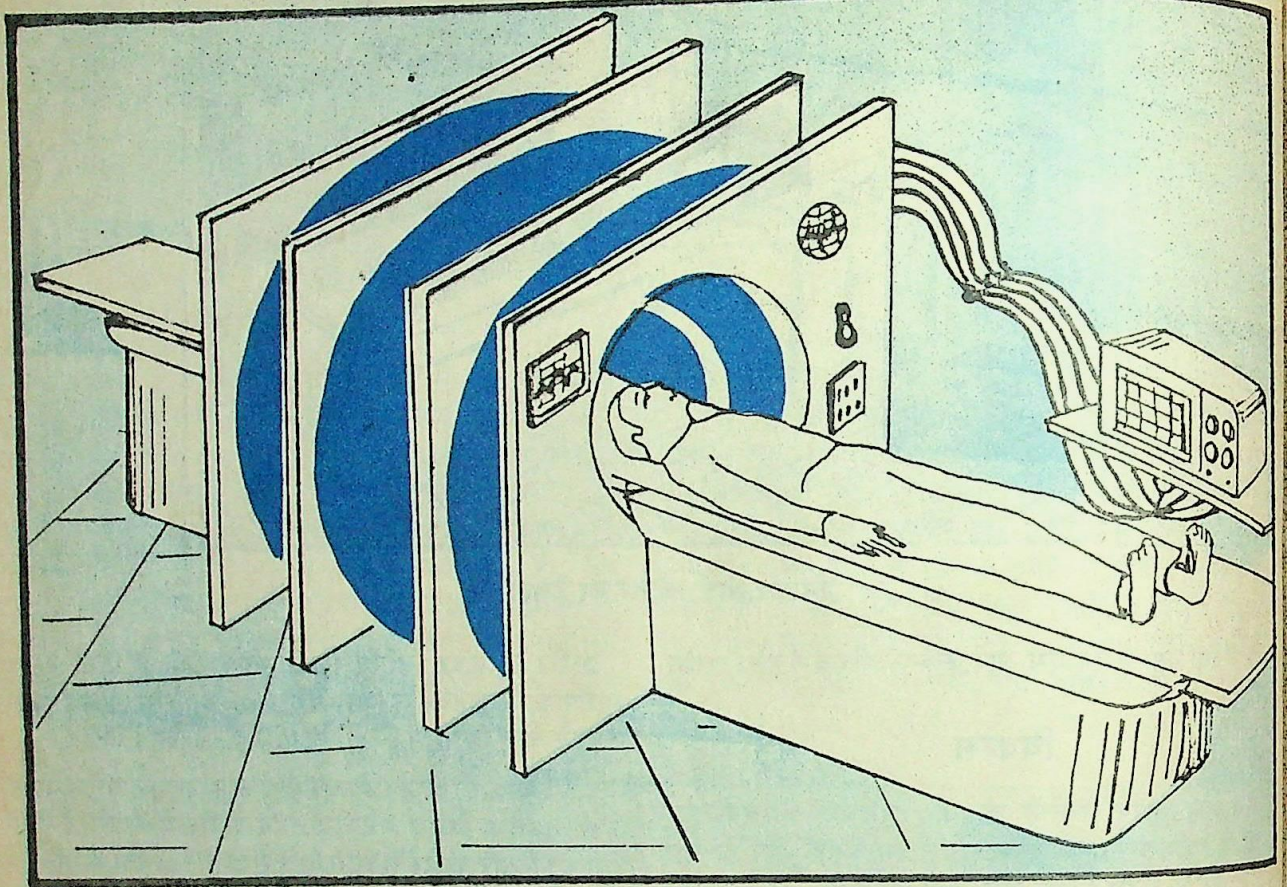
स्कैनर द्वारा रोगी की स्कैनिंग

फेफड़ों की छोटी-छोटी गांठों का भी पता लगाया जा सकता है। इसके द्वारा शरीर के किसी भी भाग की स्कैनिंग की जा सकती है। इससे मस्तिष्क में रक्त स्राव, पक्षाघात से मस्तिष्क के ऊतकों पर दुष्प्रभावों तथा पित्ताशय और छाती के अनेक रोगों का पता लगाकर रोग की चिकित्सा की जा सकती है। रोग निदान की दुनिया में यह बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हुआ है। इस प्रकार इससे मस्तिष्क, पेट, जिगर, गुर्दे, पित्ताशय, हृदय, फेफड़ों जैसे महत्वपूर्ण अंगों के विकारों का पल भर में पता चल जाता है। इससे चार मिनट में शरीर के आंतरिक भाग के 20 चित्र लिए जा सकते हैं। इस यंत्र से प्राप्त चित्र तीन विमाओं वाले होते हैं जिससे विकास की स्थिति का शुद्धता के साथ पता चल जाता है।

इस यंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्कैनिंग के दौरान इससे शरीर पर कोई घातक दुष्प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि स्कैनिंग के लिए इसमें घातक विकिरणों का प्रयोग नहीं किया जाता।

एन.एम.आर. सुविधाऐं

विश्व के विभिन्न देशों के अस्पतालों में अभी तक एन.एम.आर. स्कैनरों की संख्या केवल 1000 के लगभग है। इसका कारण संभवतः इसका बहुत अधिक मूल्य है। एक यंत्र की कीमत लगभग 5 क[illegible] है। अतः सामान्य अस्पतालों में इस उपकरण को स्थापित क[illegible] आर्थिक दृष्टि से संभव भी नहीं है। इतना महंगा होने के बावजूद इसका प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

हमारे देश में भी दो एन.एम.आर. स्कैनर स्थापित किए जा [illegible] हैं। इनमें से एक स्कैनर, रक्षा अनुसंधान और विकास संगठ[illegible] इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर मेडिसिन एण्ड एलाइड साइं[illegible] तिमारपुर, दिल्ली में और दूसरा बंबई के ब्रीच कैण्डी अस्पताल में [illegible] दोनों ही जगह ये रोगियों की सेवा में उपलब्ध हैं।

इतनी बड़ी उपलब्धियों के बावजूद भी वैज्ञानिक इन यंत्रों [illegible] अनेक सुधार करके भविष्य में बेहतर किस्म के और सस्ते [illegible] विकसित करने के प्रयास कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त और भी [illegible] रोग निदान यंत्रों के विकास पर विश्व में निरंतर कार्य हो रहा है। [illegible] आशा की जाती है कि अब वह दिन दूर नहीं जब वैज्ञानिक [illegible] द्वारा रोग निदान के लिए और भी उत्तम यंत्र विकसित कि[illegible] सकेंगे।

[डा. सी.एल. गर्ग और पूनम शर्मा, 63 प्रेम नगर, दिल्ली- 110 0[illegible]

ध्वनि प्रदूषण और भू-क्षरण

[लेखक : डा. श्याम सुंदर पुरोहित; प्रकाशक : एग्रो बॉटेनिकल पब्लीशर्स (इंडिया), VI-E/176 जयनारायण व्यास नगर, बीकानेर; पृष्ठ : 34; मूल्य : 9.00 रुपये]
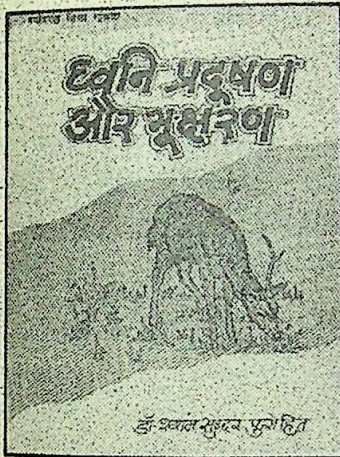
जिस गति से देश का औद्योगिक विकास हो रहा है उतनी ही तेजी से बढ़ रहा प्रदूषण देश के लिये गंभीर एवं विकट समस्या बनता जा रहा है। वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण से तो अनेक गंभीर बीमारियां फैल ही रही हैं लेकिन अब वह दिन भी दूर नहीं है जब ध्वनि प्रदूषण का भी जन स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने लगेगा।

जैसा कि पुस्तक के शीर्षक से मालूम हो जाता है कि प्रस्तुत पुस्तक को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा गया है। इसके प्रथम भाग में ध्वनि प्रदूषण और दूसरे भाग में भूक्षरण के बारे में जानकारी दी गयी है। प्रथम भाग को पुनः तीन अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय में ध्वनि प्रदूषण और इसकी शिक्षा के बारे में बताया गया है। कर्ण प्रिय और कर्ण भेदी ध्वनि क्या होती है इसका वर्णन चित्रों द्वारा किया गया है। लेखक ने इस अध्याय में एक तालिका भी दी है जिसमें विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति दी गई है। दूसरे अध्याय में शोर का जन स्वास्थ्य पर क्या और कैसे प्रभाव पड़ता है, समझाया गया है। तीसरे अध्याय में ध्वनि प्रदूषण के नियंत्रण के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

भू-क्षरण वाले भाग को भी तीन अध्यायों में बांटा है। प्रथम अध्याय में भू-क्षरण और इससे होने वाली हानि का अति संक्षिप्त परिचय दिया है। दूसरे अध्याय में जल तन्त्र तथा जल द्वारा होने वाले भू-क्षरण की सचित्र जानकारी दी है। तीसरे अध्याय में वायु द्वारा होने वाले भू-क्षरण को समझाया गया है।

पुस्तक की सबसे बड़ी कमी यह है कि ध्वनि प्रदूषण या भू-क्षरण किस प्रकार रोका जा सकता है, इसका विस्तृत वर्णन कहीं नहीं है, जो कि बहुत आवश्यक था। पुस्तक में यूं तो पर्याप्त चित्र हैं लेकिन उनका विवरण गद्य में कहीं नहीं दिया गया है।

पुस्तक में दो अलग-अलग विषयों—ध्वनि प्रदूषण और भू-क्षरण का साथ-साथ दिया जाना समझ में नहीं आता। यह दोनों विषय आपस में बिल्कुल मेल नहीं खाते। दोनों विषयों पर दो पुस्तकें अलग-अलग लिखी जा सकती थीं। पुस्तक का शीर्षक पढ़ने से ऐसा भ्रम होता है जैसे ध्वनि प्रदूषण से ही भू-क्षरण होता है।

कुल मिला कर पुस्तक जन सामान्य के लिये ज्ञानवर्धक है। पुस्तक की भाषा सरल और रोचक है।

[डा. राजीव गुप्ता, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

संतुलित आहार

[लेखिका : सरोजनी वि. आर्य; प्रकाशक : भागीरथ सेवा संस्थान, 10/144 नया राजनगर, गाजियाबाद; मुद्रक : आर.एम. प्रिंटर्स, मण्डी श्याम नगर, दनकौर, बुलन्दशहर; पृष्ठ : 95; मूल्य : साधारण संस्करण : 36 रु. तथा पुस्तकालय संस्करण : 45 रु]

जन साधारण में वैज्ञानिक अभिरुचि जगाने और विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में "संतुलित आहार" जैसी पुस्तक का प्रकाशन इस दिशा में एक सफल प्रयास है।

भोजन, आहार और खाद्य पदार्थों के अध्ययन तथा इस पर किये गये अनुसंधान से संबंधित विषय को पोषण विज्ञान कहते हैं। सामान्यतः ये महत्वपूर्ण जानकारियां आम जनता को पढ़ने को नहीं मिलती। इसलिये इस पुस्तक का प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है। "संतुलित आहार" में लेखिका ने पोषण विज्ञान की प्रारंभिक जानकारी तथा दैनिक स्वास्थ्य में इसके महत्व को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है।

पुस्तक में भोजन और उसके तत्व, लवण, खनिज, विटामिनों, भोजन के अवशोषण, पाचन क्रिया, आहार में संतुलन, पाक क्रिया तथा भोजन पकाने की विधियों के पोषक तत्वों पर प्रभाव, खाद्य पदार्थों में प्रदूषण, मिलावट व आहार की परिरक्षण संबंधी जानकारी दी गई है।

लेखिका ने आहार के विभिन्न तत्वों की संरचना, उपयोगिता, कार्य, कमी से होने वाले रोग, अधिक मात्रा में सेवन करने से हानि आदि का विवरण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दिया है तथा इन्हें भली-भांति समझाने के लिये उपयुक्त आंकड़े तालिकाओं में दिये हैं। पुस्तक की रोचकता को कुछ उचित चित्र देकर बढ़ाया जा सकता था।

प्रत्येक शारीरिक क्रिया के लिये शरीर को ऊर्जा भोजन से ही प्राप्त होती है इसी बात को ध्यान में रखते हुये लेखिका ने विभिन्न वर्ग, लिंग तथा आयु के व्यक्तियों, विशेष रूप से

शेषांश पृष्ठ ...... पर

अब पेड़ बनेंगे कारखाने

बाल फोंडके

कई मान्यता प्राप्त शब्द कोशों के अनुसार "प्लांट" शब्द के दो अर्थ हैं। एक वनस्पति वर्ग के विशिष्ट सदस्य के लिये, जिसका पर्याय वृक्ष या पेड़ है। यह सजीव है और प्रकाश संश्लेषण अथवा अपना भोजन स्वयं बनाने की क्रिया इसका विशिष्ट लक्षण है। दूसरी ओर, इस शब्द का प्रयोग मानव निर्मित अथवा कृत्रिम औद्योगिक उत्पादों के निर्माण के लिए प्रयुक्त संयंत्र या मशीनरी के लिए भी हो सकता है।

इस शब्द के दोनों अर्थों में कोई समानता नहीं है। इनमें एक प्राकृतिक एवं सजीव संपदा है जबकि दूसरा मानव निर्मित और किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही बनाया जाता है। हरित वानस्पतिक संपदा से हमें कई उपयोगी वस्तुएं प्राप्त होती हैं। प्रकृति ने इनको कई उत्पाद बनाने के लिए सक्षम किया है और मनुष्य ने भी इन उत्पादों का अपने लिए पर्याप्त उपयोग ढूंढ लिया है। किन्तु मानव का वृक्षों के इन उत्पादों के निर्माण में कोई हस्तक्षेप नहीं चलता है। दूसरी ओर, औद्योगिक इकाई या संयंत्र पूर्णतया मानव निर्मित होते हैं और इनसे निर्मित उत्पाद, मानव की रुचि एवं इच्छानुसार बनाये जाते हैं।

निकोटियाना टेबेकम (तम्बाकू) की पुष्पित शाखा

जैवप्रौद्योगिकी के उन्नत विकास के फलस्वरूप वैज्ञानिक इन दोनों विभिन्न अर्थों को एक करके, हरित वानस्पतिक संपदा को औद्योगिक इकाई में परिवर्तित करने में जुटे हैं। इस दिशा में वे कुछ हद तक सफल भी हुए हैं। कैलिफोर्निया, संयुक्त राज्य अमेरिका के वैज्ञानिक तम्बाकू के पौधे की पत्तियों से एक ऐसा प्रोटीन प्राप्त करने में सफल हुए हैं जो साधारणतया चूहों द्वारा संश्लेषित की जाती है।

जहां मानव को प्रकृति ने रोग फैलाने वाले सूक्ष्म जीव दिए हैं, वहीं प्रकृति ने मानव और अन्य स्तनपाइयों को एक सुसंगठित रोग संरक्षण प्रणाली-प्रतिरक्षा तंत्र भी दिया है।

यह प्रणाली अपने पराये' सिद्धांत पर कार्य करती है। लसीकोश अथवा लिम्फोसाइट, एक प्रकार के श्वेत रक्त कण, प्रतिरक्षातंत्र की मूल इकाई हैं जिनमें 'अपनी' और 'बाह्य' वस्तुओं को पहचानने की क्षमता होती है। यह पहचान इन 'बाह्य' वस्तुओं के चारों ओर के सांस्थितिक लक्षणों से संभव होती है और हर एक के लिए भिन्न होती है। ये लक्षण, जो किसी पदार्थ के लिये परिचय पत्र का कार्य करते हैं—प्रतिजन या "ऐंटीजन" कहलाते हैं।

जब प्रतिजन परिचय पत्र से यह निश्चित हो जाता है कि यह 'बाह्य' वस्तु है और इससे शरीर को हानि हो सकती है तो यह प्रणाली और उसके सैनिक लसीकोश तुरन्त सक्रिय हो जाते हैं और फलस्वरूप एक कोशिकीय जैव-रासायनिक क्रियाओं की श्रृंखला शुरू हो जाती है। इस क्रिया में ये एक विशेष प्रकार का प्रोटीन अणु बनाते हैं। यह अणु गोल होता है, और प्रतिजन से विशेष प्रकार का संबंध रखता है। यह संबंध प्रायः सांप-नेवला या ताले-चाबी जैसा होता है।

यह प्रोटीन अणु प्रतिजन के हिसाब से बनते हैं—यह प्रतिकाय या "ऐंटीबॉडी" कहलाते हैं। लसीकोश, एन्टीबॉडी बनाकर उन्हें स्रवित करते हैं। रक्त वाहिनियों द्वारा ये एन्टीबॉडी रक्त के प्रवाह के साथ शरीर के हर कोने में पहुंच जाती हैं और प्रतिजन का पीछा करके प्रतिजन पर प्रहार करती हैं, इन पर टूट कर इनको मार देती हैं। इस प्रकार ये प्रतिजन किसी प्रकार के संक्रमण के लिये असमर्थ हो जाते
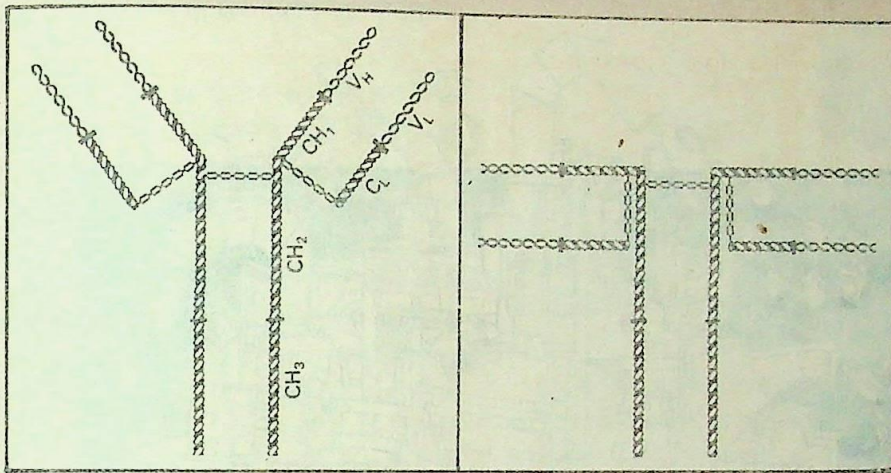
एन्टीबॉडी अणु

एन्टीबॉडी अणु, गोलाकार प्रोटीनों के कुल का सदस्य होता है। संयुक्तरूप से इन्हें इम्यूनोग्लोब्यूलिनकहते हैं। इम्यूनोग्लोब्यूलिनों का मुख्यत:पांच किस्में होती हैं।लेकिन इनमें IgG संकेतों से निर्देशित वर्ग बहुतायत में मिलता है। रोगों से रक्षा करने की क्षमता रखने वाली एन्टीबॉडी सामान्यतः इसी IgG वर्ग की होती है और इसके 'Y' के आकार के अणु होते हैं। इनका अणु भार लगभग 180,000 होता है, यह दो जोड़ों वाले चार पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला से बना होता है। हर जोड़े के दोनों सदस्य एक समान होते हैं। एक जोड़े की प्रत्येक श्रृंखला का अणु भार लगभग 30,000 होता है। 214 अमीनो अम्ल आपस में जुड़ कर यह श्रृंखला बनाते हैं। दूसरे जोड़े की श्रृंखला से छोटे होने के कारण इन्हें हल्की श्रृंखला कहा जाता है। भारी श्रृंखला का अणु भार दुगुना यानि 55,000 होता है और इसमें 450 अमीनो अम्ल होते हैं। एक हल्की श्रृंखला दूसरी भारी श्रृंखला से और दो भारी श्रृंखलायें भी आपस में डाइसल्फाइड सेतुओं से जुड़ी होती हैं। यह सेतु इस प्रकार स्थित और बने होते हैं कि इनसे अणुओं में कुछ लचीलापन आ जाता है और ये अंग्रेजी के अक्षर T से Y तक के विभिन्न के आकार बना सकता है।

मुख्यतः आधी हल्की श्रृंखला में अमीनो अम्ल का अनुक्रम विभिन्न एन्टीबॉडी में विभिन्न प्रतिजन की विशिष्टता के कारण अलग-अलग होता है। इसे अस्थिर क्षेत्र कहा जाता है। दूसरे अर्द्ध भाग में अमीनो अम्ल का अनुक्रम सभी एक विशिष्ट वर्गों के एन्टीबॉडी में अपने विशिष्टता के विपरीत स्थिर होता है। यह स्थिर क्षेत्र कहलाता है।

भारी श्रृंखला में भी विभिन्न क्षेत्र होते हैं जो प्रायः संवादी हल्की श्रृंखला स्थिर क्षेत्र की लंबाई के समान होता है। शेष भारी श्रृंखला को समान लंबाई के तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है, जिनके हर एक भाग में स्थिर अमीनो अम्ल अनुक्रम होता है। दोनों श्रृंखलाओं के ये अस्थिर क्षेत्र एक दूसरे के समीप रहते हैं। दोनों अस्थिर क्षेत्रों के मुक्त छोर मिलकर एक ऐसी रचना बनाते हैं जो विशिष्ट प्रतिजन को बांध सकते हैं। इस प्रकार हर एक एन्टीबॉडी अणु दो प्रतिजन स्थानों को बांध सकता है और इसलिए इन्हें द्विसंयुज कहते हैं। अणु का लचीलापन इन्हें विभिन्न संरूप के प्रतिजन से बांधने में सहायक होता है।

[प्रस्तुति – डा. तपन कुमार मुकर्जी]

हैं। ये अब सिर्फ स्केवेंजर अथवा अपमार्जक कोशिकाओं की सहायता से शरीर से बाहर निकलने की प्रतीक्षा करते हैं।

इस प्रकार एण्टीबॉडी की जीव-जंतुओं को रोगों से बचाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि कोई जीव, किसी कारणवश एन्टीबॉडी बनाने में असमर्थ होता है तो बाहर से निवेशित एन्टीबॉडी जीवों को मृत्यु से बचाने में सहायक हो सकती हैं। हालांकि इस प्रकार के रोग संरक्षण के लिए बहुत ही अधिक मात्रा में एन्टीबॉडी की आवश्यकता होगी।

प्रतिजन एवं एन्टीबॉडी के गहरे संबंधों के कारण वैज्ञानिकों ने प्रकृति प्रदत्त एण्टीबॉडी के गुणों से ज्यादा गुण वाली एण्टीबॉडी प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। ये अति विशिष्ट एन्टीबॉडी, जिनकी अपने प्रतिजन के प्रति उच्च आसक्ति होती है, इन प्रतिजनों को ढूंढने में सहायक हो सकती हैं।

इन्हीं कारणों से एन्टीबॉडी की अत्यधिक मांग है। परन्तु शरीर में इनकी मात्रा कम होती है। क्योंकि कुछ लसीकोशों का केवल कुछ अंश ही इन्हें बना सकता है तथा इन्हें बनाने वाले लसीकोशों का जीवनकाल भी सीमित होता है। इसलिए ये एन्टीबॉडी का एक सीमित अंश बनाकर समाप्त हो जाते हैं।

सत्तर के दशक के मध्य में जार्ज कोहलर एवं सेजार मिलस्टीन ने इस समस्या से निपटने के लिए एक तकनीक विकसित की। उन्होंने
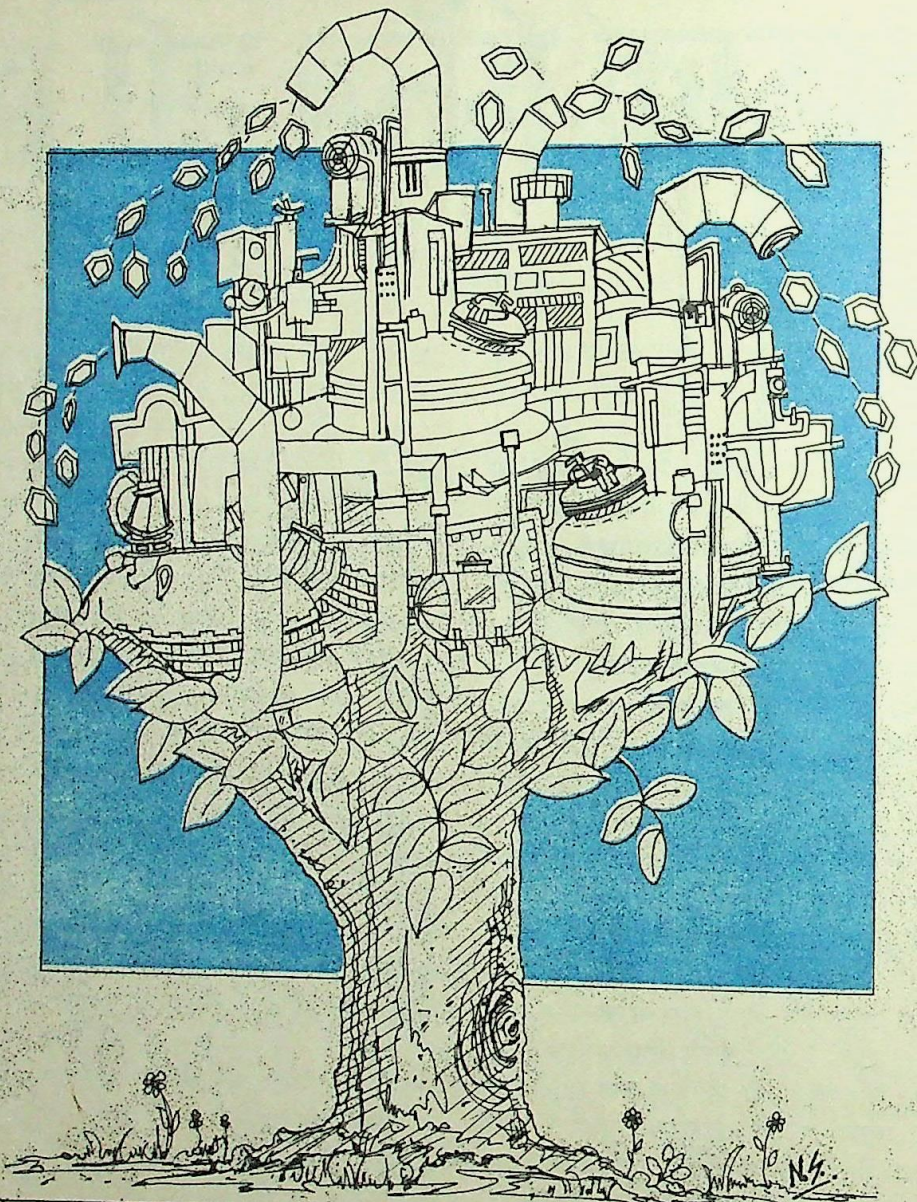
पेड़ बन गया कारखाना

एक मायेलोमा कोशिका या कैंसर युक्त लसीकोश, जिसका जीवन काल असीमित था ढूंढ निकाली। ये कोशिका एक इम्यूनोग्लोब्यूलिन बनाती है, जिसका प्रतिजन पर कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं होता। अतः ये बेकार होती है मगर कोहलर और मिल्सटीन को एक देदीप्यमान विचार सूझा, उन्होंने सोचा कि कितना अच्छा हो यदि, लसीकोश में मायेलोमा कोशिका की तरह अमर रहने एवं लसीकोश की तरह विशिष्ट एन्टीबॉडी बनाने के गुणों का समावेश हो जाए।

इसको साकार करने के लिए उन्होंने दो कोशिकाओं का संयोजन कराया। इससे उन्हें एक ऐसी संकर कोशिका प्राप्त हुई, जिनमें दोनों के गुण विद्यमान थे। इस संकर कोशिका या हाइब्रिडोमा को परखनली या जन्तुओं में उगा कर अधिक मात्रा में शुद्ध और आवश्यकतानुसार उच्च क्षमता वाली एन्टीबॉडी प्राप्त की जा सकती है।

लेकिन अब भी हाइब्रिडोमा को उगाना अपेक्षाकृत मंहगा पड़ता है। इसके अलावा इसके लिए विशेष अनुभवी एवं प्रशिक्षित वैज्ञानिकों की आवश्यकता होती है जो इन संकर कोशिकाओं का लालन-पालन सावधानीपूर्वक करके इन्हें उगा सकें।

कथनी-करनी में बड़ा अन्तर होता है। केवल जन्तु कोशिकायें ही और उन कोशिकाओं के केवल एक विशिष्ट वर्ग में ही एन्टीबॉडी बनाने की क्षमता होती है। परन्तु आज जैवप्रौद्योगिकी के आगमन से वैज्ञानिक अब प्रकृति की प्रतिबंधित बाधाओं से विचलित नहीं हैं। ला रोया, कैलिफोर्निया की स्क्रिप अनुसंधान प्रयोगशाला के ऐन्ड्र
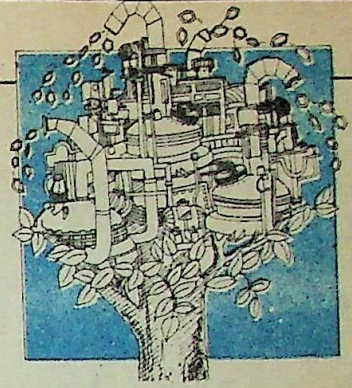
हियात्, रोबर्ट कौफ़रकी एवं कैथरिन बौवडिश ने नई विधि से पादप कोशिका का उपयोग कर, एन्टीबॉडी बना कर प्रकृति को चुनौती दी है।

उन्होंने पाया कि एन्टीबॉडी एक ऐसा प्रोटीन अणु है जिसमें दो जोड़े, पालीपेप्टाइड श्रृंखला के होते हैं जिसमें इन प्रोटीनों के संश्लेषण के लिए कोड युक्त ब्लू प्रिन्ट वाले विशेष जीन होते हैं। चूहों तथा तम्बाकू के पौधों की कोशिकाओं में समान प्रकार के कुछ प्रोटीन होते हैं। इसलिए सबसे पहले उन्होंने दो प्रकार की अमीनो अम्ल की श्रृंखलाओं—एक हल्की तथा एक भारी को देखा जो एन्टीबॉडी अणु बनाती हैं। किसी भी किस्म की प्रोटीन बनाने की विधि जीन में निहित होती है और ये जीन डी एन ए अणु में रहते हैं। डी एन ए अणु कोशिका नाभिक के अंदर होता है। लेकिन विभिन्न अम्लों को प्रोटीन की पालीपेप्टाइड श्रृंखला में जोड़ने का कार्य केन्द्रक के बाहर साइटोप्लाज्म में होता है। इसलिए प्रोटीन को बनाने के लिए निर्देशों को निर्माण स्थल पर पहुंचाया जाता है। यह कार्य संदेश वाहक आर एन ए (मैसेन्जर आर एन ए) द्वारा सम्पन्न होता है जो जीन बनाने वाले डी एन ए अणु का संपूरक होता है।

इन सब सूचनाओं के साथ हियात् और उनके सहकर्मियों ने एक हाइब्रिडोमा को चुना, जिससे उन्होंने 6 डी 4 नामक विशेष एन्टीबॉडी बनायी। इन कोशिकाओं ने बड़ी मात्रा में 6 डी 4 एन्टीबॉडी बनायी, लेकिन सिर्फ वे इस प्रोटीन को नहीं बनाते थे। अतः 6 डी 4 बनाने वाली जीन को ढूंढना भी इतना आसान नहीं था, उसको बिलगाने की तो बात ही दूर थी।

इस प्रकार हियात् और उनके सहकर्मियों ने इस समस्या को चारों ओर से घेरने का प्रयास किया। उन्होंने विशेष संदेशवाहक आर एन ए को ढूंढकर उसका उपयोग सपूंरक डी एन ए (सी-डी एन ए) को खोजने में किया। प्रारंभ में उनको हल्के और भारी श्रृंखला के सी-डी एन ए अलग-अलग मिले। पुनर्योगज—डी एन ए तकनीक के प्रयोग से उन्होंने इन दोनों सी-डी एन ए को दो विभिन्न तम्बाकू के पौधों की कोशिकाओं में प्रवेश कराया।

इन कोशिकाओं से संपूर्ण पौधे उगाये गये। हियात् और उनके सहकर्मियों को उस समय अपार हर्ष हुआ जब उन्होंने पाया कि इन पौधों की पत्तियों में अन्य प्रोटीनों के अलावा 6 डी 4 की हल्की और भारी श्रृंखला भी मौजूद थी। इस प्रकार उन्होंने आधी लड़ाई जीत ली।

उनका अगला ध्येय पौधे से पूर्ण अणु को प्राप्त करना था। इसके लिए वैज्ञानिकों ने दो पुष्पित पौधों के दो जोड़ों का नैसर्गिक संकरण कराकर संकर किस्म बनाई। इन संकर पौधों को उगाने पर वैज्ञानिकों ने देखा कि मैंडल के नियमानुसार कुछ पौधों में दोनों प्रकार की एन्टीबॉडी श्रृंखला नहीं थी, कुछ में केवल भारी या हल्की श्रृंखला ही थी। मगर चौथे वर्ग की संकर संतान पौधों की पत्तियों में सम्पूर्ण 6 डी 4 एन्टीबॉडी मौजूद थी। हियात् और उनके मित्रों को 6 डी 4 की अधिक मात्रा देखकर प्रसन्नता हुई। यह मात्रा सम्पूर्ण प्रोटीन के एक मिलीग्राम में 4000 नैनोग्राम (1 नैनोग्राम = 10^{-9} ग्राम) थी। इस प्रकार वे तम्बाकू के पौधे को एन्टीबॉडी बनाने वाली इकाई में रूपान्तरित करने में सफल हो गए। वे एक पौधे से एक ऐसी प्रोटीन बनाने में समर्थ हो गए जो अभी तक जन्तु-जगत के एक जीव तक ही सीमित थी। यह जैवप्रौद्योगिकी की एक और सफलता थी।

इस असाधारण नई तकनीक के मुख्य प्रयोग का लक्ष्य स्पष्ट था। क्योंकि एन्टीबॉडी का प्रतिजन से एक विशिष्ट संबंध होता है, वैज्ञानिक इसी को विचार में रखकर प्रभावी औषधि को अपनी इच्छानुसार पूर्व निर्धारित जगह पर भेजने के तरीकों की सोच में थे। इस प्रकार की चिकित्सा की विशेष रूप से कैंसर में आवश्यकता होती है। ज्यादातर कैंसर के रासायनिक प्रतिविष-प्रतिकारक अथवा एन्टिडोट बहुत विषालु होते हैं। वे कोशिकाओं को तो मार सकते हैं, मगर उनमें कैंसर और स्वस्थ कोशिकाओं में अंतर करने की क्षमता नहीं होती है। अगर ऐसी औषधि को एन्टीबॉडी के साथ बांध दिया जाये तो एन्टीबॉडी इसको ठीक से मार्ग प्रदर्शित करके कैंसर कोशिका तक पहुंचा सकती हैं। हालांकि यह क्रियाविधि तभी काम में लाई जा सकती है जब अपेक्षित एन्टीबॉडी अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध हो। हियात् के संयंत्र में इनकी पूरी मात्रा उपलब्ध कराने की क्षमता थी।

इस तकनीक की उपयोगिता का यहीं अंत नहीं होता। हियात् के अनुसार इस तकनीक से पौधों में भी प्रतिरक्षा सुरक्षा उपाय संभव हो सकेगा। अब तक प्रकृति का यह प्रतिरक्षा उपाय केवल जन्तुओं तक ही सीमित है। पौधे, जिनमें बैक्टीरिया, कवक एवं वायरसों का आक्रमण होता है, इस प्रतिरक्षा पद्धति से वंचित हैं। मगर अब अनुरूप एन्टीबॉडी बनाने वाले जीनों को पौधों में निवेशित कराकर इन शत्रुओं से रक्षा के लिए तैयार किया जा सकता है।

हियात् के पास और भी कई महत्वाकांक्षी योजनाएं हैं। उनके विचार से कुछ विषैले पदार्थों के प्रति एन्टीबॉडी बनाने वाले पौधों को दूषित जल में उगाया जा सकता है। जल में पाएं जाने वाले दूषित पदार्थ आसानी से पौधों की कठोर कोशिका-भित्ति को भेद सकते हैं। विषैले अणुओं के अंदर आते ही एन्टीबॉडी इन पर टूट कर इन्हे अक्रिय और अचल कर देती हैं। ये "बन्दी" विषैले पदार्थ कोशिकाभित्ति को भेद कर वापस जल में आने में असमर्थ होते हैं। इन पौधों को काटकर पर्यावरण को कुछ हद तक स्वच्छ किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि ये नए पौधे, जैवप्रौद्योगिकी के अग्रिम शोध के कारण "कल्प वृक्ष" बनने के लिए तैयार हैं।

[प्रस्तुति : डा. टी.के. मुकर्जी, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]
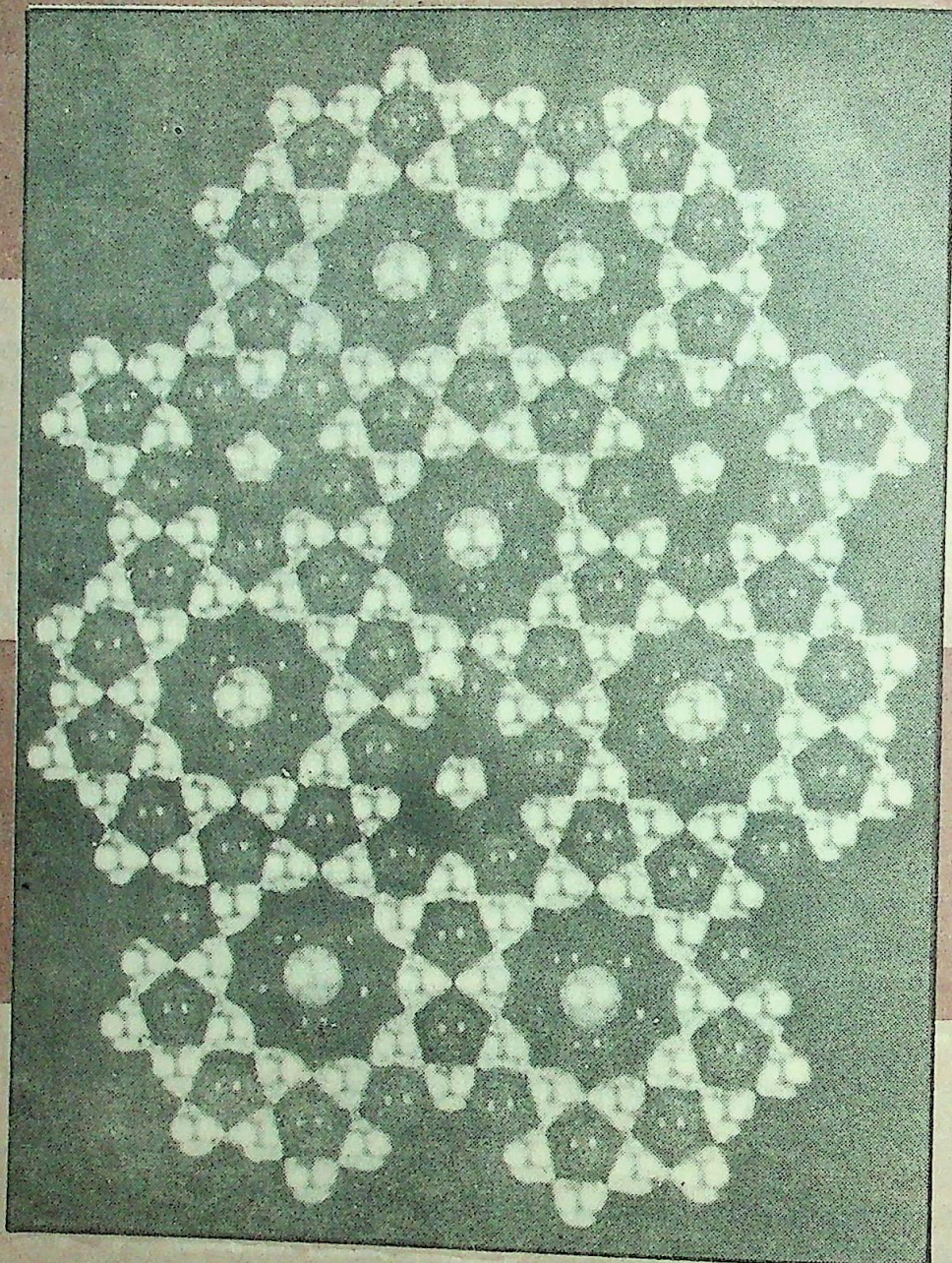
"कितनी अनुपम आकृति है, प्रतिसाम्यता का एक अद्‌भुत रूप दर्शाती है। यह तो बताओ जरा, यह चित्राकृति किसकी है?"

"किसी महाराजा के शयन-कक्ष की छत पर बना रत्न-जड़ित डिजाइन लगता है।"

"नहीं, किसी सुघड़ नारि द्वारा त्यौहार पर बनाई गई अल्पना का चित्र है।"

"यह इतना सुन्दर अवश्य है कि अल्पना के लि इसका प्रयोग हो सके, पर उसका चित्र नहीं है। यह चि है एक प्रकार के क्रिस्टल या रवे के माडल का।"

"क्या? क्रिस्टल के मॉडल का?"

"हां, तुम्हें आश्चर्य इसलिये हो रहा है कि दैनि जीवन में जो क्रिस्टल तुम प्राय: देखते हो वे हैं नमक चीनी, मिश्री आदि के। उनका रूप, रंग आकार आदि स इस चित्र से भिन्न दिखाई देते हैं। वास्तव में उन स

ठोस पदार्थों को, जिनकी एक विशेष ज्यामितिक संरचना होती है, क्रिस्टलीय पदार्थ कहते हैं। प्रकृति में मिलने वाले अनेक धातुओं के खनिज, क्रिस्टलों का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न खनिजों के क्रिस्टल अनेक रूप, रंग तथा आकार लिये होते हैं। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि प्रत्येक ठोस पदार्थ क्रिस्टलीय नहीं होता। इस वर्ग में आते हैं कांच, प्लास्टिक, रबड़ आदि। ऐसा इसलिये है क्योंकि इन पदार्थों की संरचना में सुव्यवस्थित क्रमबद्धता की कमी होती है जिसे क्रिस्टल 'प्राण' कहा जा सकता है।"

विभिन्न आकारों व रूपों की बात सुनकर आपके मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि आखिर कैसे पाते हैं ये क्रिस्टल विभिन्न रूप। तो सुनिये, आपके आस-पास अनेक भवन हैं। ये सभी भवन विभिन्न आकार तथा रूप लिये हैं जबकि सभी भवन एक ईंट के ऊपर दूसरी ईंट रख कर बनाये जाते हैं। वास्तव में इन भवनों का अन्तिम रूप ईंटों के रखने के ढंग पर निर्भर करता है। ठीक इसी प्रकार किसी क्रिस्टल का रूप भी उसके रिक्त स्थान के भरने के ढंग पर निर्भर करता है। रिक्त स्थान को भरने के लिये विभिन्न आकार के ब्लाकों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ हैं आयताकार, त्रिकोणीय, षटकोणीय ब्लाक व प्रिज्म आदि।

प्राकृतिक रूप से मिलने वाले क्रिस्टलों का यदि हम अध्ययन करें तो हमें पता चलता है कि प्रकृति एक बड़े ही कुशल शिल्पी के रूप में कार्य करती है। यह रिक्त स्थान भरण का कार्य बड़ी ही दक्षता और मितव्ययतापूर्वक करती है जिससे अधिक से अधिक ज्यामितिक इकाईयां कम से कम स्थान में समा सकें। अधिक से अधिक ज्यामितिक इकाईयों को कम से कम स्थान में समाने की प्रक्रिया ही 'क्रिस्टल' के रूप को जन्म देती है।

आकृति के पश्चात आते हैं आकार पर। किसी क्रिस्टल का आकार उसकी बनने की गति पर निर्भर करता है। क्रिस्टल जितना धीरे बनता है, उतना बड़ा बनता है और जितनी तेजी से बनता है उतना छोटा बनता है। यह इसलिये होता है कि कणों को रिक्त स्थान भरण के समय अपना स्थान ग्रहण करने में कुछ समय लगता है। धीरे-धीरे बनने के कारण ही भूवैज्ञानिक प्रक्रम द्वारा बने खनिजों के क्रिस्टल अधिकतर बहुत बड़े होते हैं, कई-कई टनों तक के। संसार में प्राकृतिक रूप से प्राप्त अब तक का सबसे बड़ा क्रिस्टल 'बैरिल' खनिज का था जिसका भार 380,000 किग्रा., लम्बाई 18 मी और व्यास 3.5 मी था। यह 1976 में मैलेगासी देश के मैलाकियालीना नामक स्थान पर मिला था।

किसी क्रिस्टलीय पदार्थ का आकार व रूप उसके बनने की अवस्थाओं पर आधारित होता है। इन अवस्थाओं में विभिन्नता के कारण किसी क्रिस्टल का 'पृष्ठ' विभिन्न आकार तो ले सकता है परन्तु प्रकृति का कमाल देखिए, प्रत्येक आकार में दो पृष्ठों के बीच का कोण अर्थात् अन्तरापृष्ठीय कोण सदा वही रहता है। इस कोण का क्रिस्टल-विज्ञान में बहुत महत्व है।

अन्तरापृष्ठीय कोण के अतिरिक्त क्रिस्टलों की एक विशेषता होती है—उनकी सुडौलता अथवा प्रतिसाम्यता। यह प्रतिसाम्यता विभिन्न प्रकार की होती है। जैसे कुछ क्रिस्टल ऐसे होते हैं जिन्हें यदि बीच से काट दिया जाये तो दोनों भाग एक दूसरे का प्रतिरूप दिखाई देते हैं। जबकि कुछ क्रिस्टल ऐसे होते हैं कि यदि उन्हें एक विशेष अक्ष पर घुमाया जाये तो एक ही रूप कई अवस्थाओं में दृष्टिगोचर होता है। कुछ क्रिस्टलों का एक निश्चित सममिति केन्द्र होता है। क्रिस्टलों के विभिन्न रूपों, आकारों व प्रतिसाम्यता के अध्ययन को 'क्रिस्टल विज्ञान' कहते हैं।

क्रिस्टल की विशेष ज्यामितिक संरचना पर उसके कई भौतिक गुण आधारित होते हैं, इनमें से एक है विषमदैशिकता का गुण। यह क्रिस्टलीय पदार्थों का वह गुण है जिसके कारण वे विभिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न भौतिक गुण दर्शाते हैं।

(शेषांश पृष्ठ 47 पर)

निरंजन घाटे

"मैं आज कुछ खास तोहफा लेकर घर आ रहा हूं।" जयंत का फोन आया था। जयंत कुछ मैकेनिकल चीज लायेगा यह बात रागिनी पहले ही समझ गई थी। जयंत "भारत यंत्र मानव निर्माण" में वरिष्ठ इंजीनियर था। हर महीने पंद्रह दिन के बाद वह कुछ नया खिलौना लाता था। रागिनी एक दो दिन के बाद उससे बोर हो जाती थी। जयंत के फोन के बाद वह विचारों में खो सी गई। इसी बीच टेलीफोन की घंटी बज उठी। माधुरी का फोन था। इस फोन ने उसके लिये नयी झंझट पैदा कर दी थी, क्योंकि माधुरी के सामने आने से पहले अपना तथा घर का हुलिया ठीक करना बहुत जरूरी था। उसे एक पुरानी बात याद आ गई। एक बार दुर्वे मैडम उससे ऐसे ही पूछ बैठी थीं, 'क्या घर में ऐसे ही रहती हो?' यह सवाल सुनकर वह बहुत शार्मिंदा हुयी थी, लेकिन उसको गुस्सा भी बहुत आया था। खुद तो इतनी मोटी थी लेकिन दूसरों को टोकने में हर समय आगे रहती थी, दुर्वे मैडम। रागिनी ने टी.वी. बंद करके ही फोन उठाया, थोड़ी देर हो गई, तो फोन पर हेलो कहते ही सविता ने एकाएक पूछा, "क्या हम... तुम्हें डिस्टर्ब तो नहीं किया है?" शायद जयंत आज घर पर हो... इसलिये पूछ रही हूं। आज तीनों का रागिनी के घर पर आने... प्रोग्राम था। दिन भर वहीं रहकर वो वापस शाम का लौटेंगे। इस... कोई शक ही नहीं था, क्योंकि उनके सवेरे आने का मतलब ही... होता था। यह सोचकर रागिनी ने झूठ बोलना पसंद किया, नहीं, नहीं... डिस्टर्ब तो नहीं किया, लेकिन आज 'रामा' आने वाला नहीं है।... उनकी बात का विषय रामा ही बन गया। बंबई में रहकर वह... 'रामा संस्कृति' की शिकार बन गयी थी। घर का सारा काम रामा... तो करता था। वैसे तो रामा भी घर का क्या काम करता था?... मशीन चलाना और जाते जाते बर्तन फेंक देना। पुराने जमाने में... बरसों तक वही बर्तन घर में रखते थे। पीतल और स्टील... धातुओं के बर्तन होते थे, तब ऐसा उसने सुना था। क्या अजीबोग... रिवाज थे, पुराने जमाने के।

टिंग, टिंग, टिंग, टिंग, टिंग, घंड़ी ने पांच बजाये। अब...

आफिस से आता ही होगा। यह विचार मन में आते ही काल बेल बज उठी, और जयंत दरवाजा खोलकर मुस्कुराता हुआ अंदर आया। उसके साथ उसका दोस्त भी था, लेकिन इस आदमी को रागिनी ने पहले कभी देखा नहीं था। दरवाजा बंद करके रागिनी ने जयंत की ओर प्रश्नवाचक मुद्रा में देखा। जयंत ने परिचय कराया,"रागिनी, ये अमर! अपना नया दोस्त! अमर, ये मेरी पत्नी रागिनी।" अमर ने नमस्कार किया।

"बैठो अमर! आराम से बैठो!" जयंत ने अमर को बैठने को कहा। "वो सरप्राइज कहां है?" रागिनी ने जयंत से पूछा।

"क्या खाना, सो गम खाना।" जयंत ने मुस्कराते हुए कहावत सुनायी और टाइ की नॉट ढीली करते हुये अंदर चला गया। जाते-जाते उसने अमर से कहा, "अमर, अब सुना अपनी दास्तान, रागिनी, आज से रामा की छुट्टी।"

"रागिनी देवी, मेरा नाम अमर है। मैं 'भारत यंत्र मानव समूह' में तैयार हुआ हूं। सिर्फ मेरा आण्विक हृदय इंपोर्टेड है। भारत में मेरे जैसा और कोई नहीं लेकिन अमेरिका में मेरे जैसे दो और ब्रिटेन में एक यंत्र मानव कार्यरत हैं। मैं आपकी सेवा में हाजिर हूं।" अमर बिल्कुल किताबी बातें कर रहा था। अपने मैनुअल के अनुसार वो अपना परिचय देने को मजबूर था। वह आश्चर्य से अमर की ओर देखे जा रही थी और धीरे-धीरे पीछे की ओर सरक रही थी। इतने में जयंत बाहर आ गया।

रागिनी के मन में अमर के बारे में जो कुछ संशय पैदा हुआ था, उसको जयंत ने स्पष्ट कर दिया। "रागिनी डरने की कोई बात नहीं। अमर एक मशीन है। इसके इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क में जो संस्कार भरे हुये हैं उनके मुताबिक अमर किसी भी आदमी को छू तक नहीं सकता। ये जानते हुये भी तुम्हें अगर डर लग रहा हो तो धीरे-धीरे वो अपने आप कम हो जायेगा। यह अमर की परीक्षा है। यदि अमर अपने घर में रहकर कुछ सीख सके तो बहुत ही बढ़िया बात हो जायेगी। अमर जो भी भाषा बोलेगा वह बिलकुल स्पष्ट होगी। उसको कहो कि उसके लिये मराठी भाषा सीखनी बहुत जरूरी है। ताकि वह यहां किसी भी घर में जाकर बातचीत कर सके।

रागिनी फिर भी आश्वस्त नहीं हुई। आखिर अमर एक ताकतवर यंत्र ही तो था। जो कुछ भी कर सकता था, उसकी इस आशंका से अमर फिर विस्मित होते हुये बोल पड़ा, "रागिनी, मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया है कि अमर कुछ नहीं करेगा। क्योंकि जब अमेरिका में इसका इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क बन रहा था तो उसमें आसिमोव के नियम दृढ़ता से बिठा दिये गये थे, उन नियमों के अनुसार :

1. कोई भी यंत्रमानव किसी भी स्थिति में अपने मालिक अथवा किसी भी व्यक्ति को किसी तरह का धोखा नहीं देगा।
2. जो भी आज्ञा मानव, यंत्रमानव को दे तो हर यंत्रमानव का कर्त्तव्य है कि यदि पहले नियम के पालन में बाधा न आ रही हो तो वह उस आज्ञा का पालन करे।
3. पहले दो नियमों का पालन करते हुये यंत्रमानव स्वयं की रक्षा भी करेगा।"
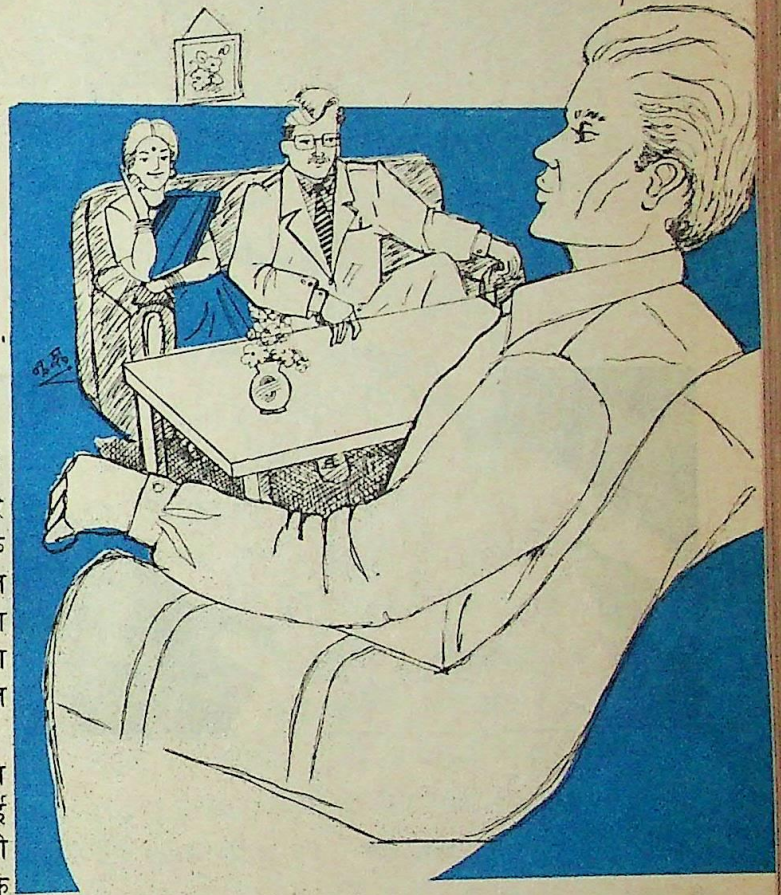
यह सुनने के बाद रागिनी थोड़ी सी शांत और आश्वस्त हुई। शुरू शुरू में अमर का घर में रहना रागिनी को थोड़ा विचित्र सा लगता था। अमर एक यंत्र था लेकिन रसोई घर बड़ी सफाई और करीने से संभालता था। कपड़े आदि भी धोता था। लेकिन उसकी मौजूदगी—रागिनी के लिये कभी-कभी संकोच पैदा करती थी।

थोड़े दिनों बाद रागिनी अभ्यस्त हो गई थी। बाद में उसे समझाकर रागिनी ने दरवाजे पर दस्तक देना भी सिखा दिया था। रागिनी ने महसूस किया कि अमर ने घर का सब कारोबार संभाल लिया है तो उसने 'रामा' की छुट्टी कर दी। अब रामा प्रतिदिन बाहर खड़ा हो कर नये रामा की राह देखता था। यह कोई पहला मौका नहीं था, इससे पहले भी उसे कई बार निकाला गया था। लेकिन हर नया रामा पुराने रामा के हाथ से पिटाई होने के बाद भाग जाता था। और रागिनी को भी फिर इसी रामा को रखने के अलावा और कोई रास्ता नहीं दिखायी देता था।

एक दिन जयंत और रागिनी दोनों कहीं बार गये। यह रामा के लिये तो बहुत ही अच्छा मौका था। रामा उनके घर पहुंचा। दरवाजे पर बड़ा ताला देखकर वो ठिठक गया लेकिन उसने प्रयास नहीं छोड़ा और सोचते-सोचते वह पिछले दरवाजे की ओर चल पड़ा। दस्तक सुनते ही अमर ने आवाज दी, "कौन है?"

(शेषांश पृष्ठ 47 पर)

जादू के रंग गणित के संग

आइवर यूशिएल

"दादा जी, दादा जी, हम आ गये," कहते हुये सुरुचि और सुकेत ने घर में घुसते ही अपने-अपने बस्ते बैठक की मेज पर पटके और फिर दोनों दादा जी को घेर कर बैठ गये।

दादा जी अभी पूरी तरह से बैठ भी नहीं पाये थे कि सुकेत ने बोलना शुरू कर दिया, "दादा जी, दादा जी, आपको पता है, आज स्कूल में क्या हुआ था?" वह अपनी बात पूरी कर पाता इससे पहले ही सुरुचि ने सब कुछ बड़े संक्षेप में कह डाला;

"आज हमारे स्कूल में एक जादूगर आया था"।

"अच्छा, जादूगर?" दादा जी ने हैरानी दिखाते हुये पूछा।

"हां, हां दादा जी, जादूगर! बड़े मजेदार तमाशे दिखाये उसने। इतना मजा आया कि बस क्या बतायें मन करता है रोज-रोज देखने को मिलें ऐसे खेल" सुकेत की तो खुशी के मारे आंखें ही बंद हुई जा रही थीं।

"दादा जी, आप रोज-रोज बस कहानियां ही सुनाते हैं, आज कोई जादू करके दिखाइये न? प्लीज....." सुरुचि दादा जी की गर्दन में बाहें डालकर अपनी बात मनवाने की कोशिशं करने लगी।

"अरे, दादा जी कोई जादूगर हैं, जो जादू दिखायेंगे?"

सुकेत ने अपनी समझदारी दिखाते हुये कहा।

"हां, हां, हैं। तुझे क्या? दिखायेंगे और जरूर दिखायेंगे। देख लेना तुम।" सुरुचि ने अपनी बात रखने को कह डाला।

"अरे भई, लड़ो मत तुम लोग, मैं तुम्हें जादू जरूर दिखाऊंगा पर अभी पहले बस्ते उठा कर ठीक जगह रखो, मुंह हाथ धोकर नाश्ता करो और फिर थोड़ी देर आराम भी। शाम को अपने आसपास वाले छोटे-बड़े सब दोस्तों को भी बुला लेना फिर सब के सामने होगा मेरे जादू का खेल।"

यह सुनकर जहां सुरुचि बहुत खुश हो गई वहीं सुकेत आश्चर्य के साथ दादा जी को देखता ही रह गया।

शाम होते ही अपने दोस्तों के साथ सुरुचि और सुकेत दादा जी के चारों और बैठ गये, जादू का खेल देखने के लिये।

"देखो बच्चो! मैंने हैट से खरगोश निकालने या हवा से खींचकर नोट तैयार कर देने वाले जादू के खेल दिखाने के लिये तुम्हें यहां इकट्ठा नहीं किया है। मैं यहां गणित के ऐसे जादू तुम्हारे सामने प्रस्तुत करूंगा जिसमें तुम न सिर्फ आनन्द लोगे बल्कि इन्हें सीखकर दूसरों को भी आश्चर्य में डुबो सकोगे।" इतना कह कर दादा जी सुकेत को कागज-पेंसिल पकड़ाते हुये बोले–"इसे अपने सबसे गहरे दोस्त को दे दो।"

सुकेत ने उसे लेकर अपने से अपेक्षाकृत बड़े दोस्त सुधांशु को पकड़ा दिया। "लो भई सुधांशु तुम पांच अंकों वाली कोई एक संख्या कागज पर लिख लो और हां, संख्या के बारे में मुझे कुछ भी बताने की जरूरत नहीं है।"

"लिख ली? अच्छा तो अब इस संख्या को 2 से गुणा करो।"

"गुणा कर लिया हो तो गुणनफल में 5 जोड़ दो।"

"अब योग को 50 से गुणा कर डालो।"

"हो गया गुणा? जो गुणनफल आया हो उसमें अपनी आयु जोड़ो और फिर साल में दिनों की संख्या (365 होती है) भी जोड़ डालो।"

"सारी गणना हो जाने पर जो संख्या मिले उसमें से 615 घटाओ तो जरा।"

"हां, अब संख्या को ध्यान से देखो। सात अंकों की इस संख्या के पहले पांच अंक तो वही होने चाहियें जो तुमने पहले लिखे हैं और आखिरी दोनों तुम्हारी उम्र हैं। क्यों, ठीक है न?" कहकर दादा जी ने सुधांशु की तरफ देखा तो उसका आश्चर्य से खुला मुंह देखकर बोले "अरे भई, मुझे दिखाओ कागज जरा।"

कागज पर सब कुछ इस तरह लिखा था–

पांच अंकों वाली संख्या 32506

दो से गुणा करने पर $32506 \times 2 = 65012$

गुणनफल में 5 जोड़ने पर $65012 + 5 = 65017$

50 से गुणा करने पर $65017 \times 50 = 3250850$

आयु जोड़ने पर $3250850 + 15 = 3250865$

365 जोड़ने पर $3250865 + 365 = 3251230$

615 घटाने पर $3251230 - 615 = 3250615$

दादा जी ने सब बच्चों को सुधांशु का कागज दिखाते हुये कहा "देखो बच्चो, हमें जो उत्तर मिला है उस सात अंकों वाली संख्या के पहले पांच अंक वही हैं जो सुधांशु ने स्वयं सोचे थे और बाद के दो अंक उसकी उम्र हैं। क्यों, कैसा रहा यह जादू?

अगर तुम्हें पसंद आया हो तो मैं तुमसे वायदा करता हूं कि हर माह तुम्हें इसी तरह एक न एक जादू सिखाता रहूंगा।"

[श्री आइवर यूशिएल "शाश्वत" बी- 82बी, मयूर विहार II, दिल्ली- 110 091]

विज्ञान प्रगति के अप्रेल, 1990 अंक में पृष्ठ 36-37 पर प्रकाशित "कणिका" के लेखक श्री एम.एम.एस. कार्की हैं।

घड़ियों पर लिखे शब्द 'ज्वेल्स' से क्या तात्पर्य है? 17 से 21 ज्वेल्स में क्या अन्तर है?

[के. एस. राहुल, कटरा, मऊनाथ भंजन]

स्वचालित या चाबी से चलने वाली एक सामान्य यांत्रिक कलाई घड़ी में लगभग सौ से भी अधिक छोटे-बड़े पुरजे होते हैं। इनमें से कुछ गतिशील पुरजे घड़ी की कार्यशीलता तथा गुणवत्ता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं और वास्तव में मुख्यतः इन्हीं पुरजों पर घड़ी की सारी कार्यक्षमता निर्भर करती है। इसीलिए घड़ी में ये गतिशील पुरजे संश्लेषित या कृत्रिम रत्नों के बने ''बीयरिंग'' द्वारा लगाये जाते हैं। इन्हीं कृत्रिम रत्नों को ''ज्वेल्स'' कहा जाता है। कृत्रिम रत्नों की बीयरिंग, इन पुरजों में न्यूनतम घर्षण करती है। सामान्यतः एक घड़ी में 17 से 25 कृत्रिम रत्नों का प्रयोग किया जाता है जिनको घड़ी में ''ज्वेल्स'' की संख्या के रूप में अंकित किया जाता है।

किशोर कुमार कक्कड़

शैम्पू क्या है?

[कृपा शंकर मिश्र, नैनी, इलाहाबाद-211 008]

शैम्पू सिर के बालों को धोने के लिए प्रयोग किया जाने वाला एक विशेष प्रकार का साबुन है। बालों की सफाई में यह सामान्य साबुन से अधिक प्रभावशाली तथा हानिरहित होता है। गाढ़े द्रव या क्रीम के रूप में उपलब्ध शैम्पू में मुख्यतः तीन गुण होते हैं। बालों पर शैम्पू की प्रक्रिया खारे पानी से अप्रभावित रहती है। इसकी पानी में घुलनशीलता अधिक होती है, पर तैलीय तथा मोमीय पदार्थों का घोल कर दूर करने में, साबुन की अपेक्षा यह अधिक सक्षम होता है। वैसे तो शैम्पू का मुख्य कार्य सिर और बालों में चिपके हुए धूल कणों
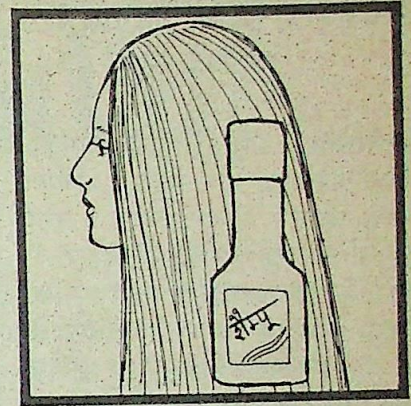
को और त्वचा से निकलने वाले तैलीय पदार्थों को धोकर साफ करना है परन्तु आजकल शैम्पू बालों को सुव्यवस्थित करने, उन्हें पोषक तत्त्व प्रदान करने या बालों की सिकरी दूर करने के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसके लिए इसमें अलग-अलग प्रकार के पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं।

किशोर कुमार कक्कड़

न्यूक्लियर फाल आउट क्या है?

[दीपा जोशी, अल्मोड़ा]

किसी भी नाभिकीय विस्फोट के फलस्वरूप दो प्रकार के नाभिकीय विकिरण उत्पन्न होते हैं। प्रारंभिक या तात्कालिक विकिरण तथा अवशेष विकिरण। प्रारंभिक विकिरण वे विकिरण होते हैं जो विस्फोट के समय से एक मिनट के अंदर ही उत्पन्न होते हैं। इसके बाद वे सभी विकिरण अवशेष विकिरण की श्रेणी में आते हैं। जब नाभिकीय विस्फोट जल या पृथ्वी की सतह के समीप होता है तो विस्फोटक में संग्रहीत द्रव्य, मिट्टी या जल के कण के साथ मिलकर असंख्य छोटे-बड़े नाभिकीय अवशेषों का रूप लेकर वातावरण में काफी ऊंचाई तक फैल जाते हैं, नाभिकीय विस्फोट के ये रेडियोधर्मी अवशेष वायुमंडल में कई महीनों या सालों तक उपस्थित रहते हैं और धीरे-धीरे विकिरण पदार्थों के रूप में पृथ्वी पर गिरते रहते हैं। जीवधारियों के लिये अत्यन्त हानिकारक इन रेडियोधर्मी अवशेषों के गिरने की प्रक्रिया को ही ''न्यूक्लियर फाल आउट'' कहते हैं।

किशोर कुमार कक्कड़

फ्लाईएश से भवन-निर्माण सामग्री

तमिलनाडु स्थित नेवेली लिग्नाइट कार्पोरेशन के मुख्य अभियंता (सिविल), श्री एस. षन्मुगसुन्दरम ने उनके यहां के अभियंताओं और वैज्ञानिकों द्वारा गत 10 वर्षों में फ्लाईएश के उपयोग पर किये गये गहन शोध के आधार पर बताया कि सिमेंट के स्थान पर फ्लाईएश का आंशिक उपयोग लाभप्रद है। इससे अन्य नई तकनीकों से अधिक बढ़िया, मितव्ययी और टिकाऊ, भवन-निर्माण सामग्री बनाने में मदद मिल सकती है। नेवेली लिग्नाइट कार्पोरेशन के ताप विद्युत प्लांटों से प्रति वर्ष बेकार समझ कर लगभग दो लाख टन फ्लाईएश फेंक दी जाती थी। इस शोध के आधर पर अब तक 14,000 टन फ्लाईएश का उपयोग कंक्रीट निर्माण कार्यों में किया गया है, जिससे लगभग 57 लाख रुपये की बचत हुई है।

ल्यूकेमिया का इलाज

अनीसा अब 17 वर्ष की है। दो वर्ष पूर्व उसकी 42 वर्षीय मां मैरी को यह पता चल गया था कि उसकी बेटी "ल्यूकेमिया" (रक्त में लाल कणों का बनना बंद हो जाना) से पीड़ित है तथा उसकी मेल खाती अस्थि मज्जा के प्रत्यारोपण से ही उसकी जान बचाई जा सकती है। अनीसा के बड़े भाई तथा माता-पिता की अस्थि मज्जा मेल नहीं खायी, अतः उनकी अस्थि मज्जा का प्रत्यारोपण अनीसा में नहीं हो सकता था। बहुत ढूंढने पर भी अनीसा से मेल खाती अस्थि मज्जा वाला कोई व्यक्ति नहीं मिला, तो डाक्टरों ने बताया कि अनीसा के जन्मदाता ही उससे मेल खाती अस्थि मज्जा वाले शिशु को जन्म दे सकते हैं और इसकी संभावना भी केवल 25 प्रतिशत ही है। परिस्थिति विषम थी क्योंकि उसकी मां को 42 वर्ष की आयु में गर्भधारण करना घातक सिद्ध हो सकता था। इसके अतिरिक्त उसने 16 वर्ष पूर्व नलबंदी का आपरेशन भी कराया हुआ था। उसे उलटवाना भी कोई सरल नहीं था। संयोग से मैरी का नलबंदी आपरेशन सही प्रकार से उलट गया और उसको गर्भ धारण भी वांछित प्रकार के अस्थि मज्जा वाले बच्चे का ही हुआ। अब मैरी के अप्रेल,1990 में इस बच्चे को जन्म देने के बाद भी अनीसा को अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण हेतु साढ़े पांच वर्ष और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि इस आयु से कम के बच्चे के शरीर से अस्थि मज्जा नहीं ली जा सकती। बच्चे के नाड़ू का प्रयोग अवश्य तुरन्त हो सकता है क्योंकि इसमें अस्थि मज्जा तैयार करने वाली कोशिकाओं की भरमार होती है, लेकिन अस्थि-मज्जा की इस मात्रा से अनीसा का काम चलता नहीं दिखाई देता।

डाक्टरों का अनुमान है कि अनीसा की स्थिति अब "स्थिर" है तथा वह साढ़े पांच वर्ष तक प्रतीक्षा कर सकती है।

गुलाब के फूलों का निर्यात

नई दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने 1969 में राज्य व्यापार निगम के सहयोग से पेरिस, नीदरलैंड और फ्रेंकफुर्त को अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता वाले गुलाब के फूलों का निर्यात प्रारम्भ किया था। इससे काफी लाभ हुआ।

फूलों के निर्यात की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार ने वाणिज्य मंत्रालय के संसाधित आहार निर्यात परिषद् द्वारा उत्पादकों एवं व्यापारियों का एक प्रतिनिधि मंडल 1981 में मास्को, एम्सटर्डम, हैम्बर्ग और फ्रेंकफुर्त भेजा था मंडल ने रिपोर्ट में सिफारिश की कि निर्यात के लिये गुलाब को खुले में उगाना ठीक नहीं है। उसे शीशाघरों या प्लास्टिक घरों में उगाना ठीक रहेगा, इस प्रकार उगाने से निर्यात के योग्य उत्तम गुणवत्ता वाले गुलाब के फूल प्राप्त किये जा सकेंगे। ज्ञातव्य है वर्तमान में शीशाघरों या हरित घरों में गुलाब उत्पादन की पद्धति का प्रचलन भारत में नहीं के बराबर है।

ढके क्षेत्र में गुलाब के फूलों का उत्पादन खुले क्षेत्र में उगाने से कम-से-कम दस गुना अधिक होता है। इसके अतिरिक्त फूलों की गुणवत्ता भी खुले में उगाये गये फूलों के मुकाबले बेहतर होती है। इसलिये फूलों को निर्यात करने के लिए हरित घर या शीशा घर पद्धति को अपनाया जाना चाहिये।

लुधियाना स्थित पंजाब कृषि विश्व विद्यालय और नई दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में किये गये प्रयो एवं परीक्षणों से पता चला है कि देश खपत हेतु या निकटवर्ती विदेशी बाज (मध्य-पूर्व देश) में निर्यात हेतु गुलाब खुले खेतों में भी उगाया जा सकता है। थोड़े अच्छे गुणवत्ता वाले फूल चाहिये पौधों के सिरों पर या कलियों को पालीथ की हल्की परत से ढकने से भी काम च सकता है।

(शेषांश पृष्ठ 19 का)

साहित्य परिचय

स्त्रियों, गर्भवती महिलाओं तथा बा युवाओं व युवतियों के लिये ऊर्जा आवश्यकता का विवरण कई तालिकाओं सुविधाजनक ढंग से प्रस्तुत किया है।

पुस्तक में यह बात समझाने का प्रय किया गया है कि संतुलित आहार का चुन केवल स्वाद तथा खाद्य पदार्थ के मूल्य निर्भर न होकर आहार के पोषक तत्वों अधिक होना चाहिये। लेखिका ने खा पदार्थों के पोषक तत्वों, को बिना कि अतिरिक्त लागत के, बढ़ाने की विधियां सुझाई हैं। जैसे दालों व अनाजों का अंकुर व पानी में भिगोना, सब्जियों को धो बड़े-बड़े टुकड़ों में काटना, चावल का मा न निकालना, किण्वन (फरमैंटशन) द्वा विटामिनों की मात्रा को बढ़ाना आदि।

संतुलित आहार क्या है? कैसे आहार अधिक पौष्टिक बनाया जा सकता है? प्रश्नों का उत्तर भी पुस्तक में स्पष्ट रूप सरल भाषा में दिया है।

पुस्तक के अंतिम भाग में लेखिका ने हर व्यक्ति को जानने वाली बातें तथा उपभोक्ता के अधिकार व सरकारी अधिनियम की जानकारी भी दी है। खाने में मिलावट और किन-किन पदार्थों से की जाती है? इनसे शरीर को क्या हानि होती है? पहलुओं पर विस्तृत वर्णन है जो आम जन का सामान्य ज्ञान बढ़ाने में सहायक हो

[डा. नरेन्द्र स्वरूप वर्मा, आनुवंशिकी विभा भा.क.अ.सं., नई दिल्ली- 110012]

जलमण्डल की उत्पत्ति

विजय कुमार उपाध्याय

जलमंडल, पृथ्वी पर बिखरा हुआ पानी का एक आवरण है जिसमें मीठा जल, खारा जल एवं बर्फ आदि सभी शामिल हैं। एक पुराने मतानुसार पृथ्वी का जलमण्डल मूल जलमण्डल का शेष भाग है। यह मान्यता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति के समय इसमें शामिल गैसों में जलवाष्प भी थी। जब पृथ्वी ठंडी एवं संकुचित होने लगी तो यह पहले गैस से द्रव में फिर द्रव से ठोसावस्था में परिणित हुई। और जब पृथ्वी की सतह पर ठोस पपड़ी जमने लगी तो शायद पहली बार जल.की बूंदें बन कर पृथ्वी की सतह पर गिरी। परन्तु पृथ्वी की सतह पर जमी यह ठोस पपड़ी इतनी गर्म थी कि जल की बूंदें उस पर पड़ते ही फिर वाष्पित हो गयी! इस प्रकार से कुछ समय तक यही क्रम चलता रहा। जैसे-जैसे पृथ्वी की सतह ठंडी होती गयी, वाष्पीकरण भी कम होता गया तथा वर्षा का जल पृथ्वी पर जमा होने लगा और यह पानी ऊंचे स्थान से नीचे की ओर बहकर बड़े-बड़े गड्ढों में जमा होने लगा जिससे सागर एवं महासागर बने।

चूंकि कई कारणों से उपर्युक्त परिकल्पना संतोषजनक नहीं थी अतः बहुत से भूवैज्ञानिकों ने इसे नहीं माना। दूसरी परिकल्पना के अनुसार जलमण्डल का विकास उस जलवाष्प से हुआ जो समय-समय पर ज्वालामुखियों के साथ पृथ्वी के भीतरी प्रावर से बाहर निकली। यह जलवाष्प एवं अन्य गैसें पृथ्वी के प्रावर में उस समय घुल गयी थीं जब पृथ्वी गैस अवस्था से द्रव अवस्था में परिणित हुई।

इस जलमंडल के विभिन्न सदस्य हैं—समुद्र, खाड़ी, झील, नदियां, झरने, जल प्रपात एवं भू-जल। समुद्रों का पूरा क्षेत्रफल लगभग 361×10^6 वर्ग किमी. या पृथ्वी की सतह का लगभग 70.8% है। समुद्र की सतह पर पानी का घनत्व 1.028 ग्राम प्रति घन सेंमी. है। गहराई के साथ पानी का औसत घनत्व 1.03 ग्राम प्रति घन सेंमी. माना है। इस हिसाब से सागरों एवं महासागरों के पानी की कुल मात्रा 1413×14^{15} मीट्रिक टन होती है। गोल्डस्मिट के अनुमान के अनुसार धरती के प्रति वर्ग सेंमी. पर जलमंडल का औसत वितरण इस प्रकार है—समुद्री जल 278.11 किग्रा.,मीठा जल 0.1 किग्रा., महाद्वीपीय बर्फ 4.5 किग्रा. एवं जलवाष्प 0.003 किग्रा.। इस तरह पूरे जलमंडल का लगभग 94% भाग समुद्री जल है।

समुद्री जल का संघटन

समुद्री जल के औसत रासायनिक संघटन की सही जानकारी सर्वप्रथम डिटमार नामक वैज्ञानिक ने दी। उसने यह जानकारी समुद्री जल के 77 नमूनों के विश्लेषण से प्राप्त की थी। ये नमूने सन 1872 ई. से 1876 ई. के बीच एच.एम.एस. चैलेंजर नामक जहाज द्वारा संसार के चारों ओर की समुद्री यात्रा के दौरान इकट्ठे किये गये।

उसने पाया कि समुद्री जल में घुले लवणों की औसत मात्रा 35 ग्राम प्रति किग्रा. है। इसमें सोडियम, पोटैशियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम एवं स्ट्रांशियम के लवण घुले हुये हैं। इसमें सर्वाधिक मात्रा में सोडियम क्लोराइड है। लवणों के अतिरिक्त आक्सीजन, कार्बनडाइआक्साइड, आर्गन, हीलियम एवं हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी गैसें भी इसमें घुली हुई हैं।

पार्थिव जल का संघटन

समुद्री जल के अतिरिक्त शेष जल इस श्रेणी में शामिल हैं हालांकि जलमंडल की कुल मात्रा में पार्थिव जल का प्रतिशत बहुत ही नगण्य है, फिर भी इसका महत्व भू-रासायनिक कारणों से बहुत अधिक है! पार्थिव जल शैलों के अपक्षय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिये इस जल की मात्रा एवं उसका संघटन का ज्ञान अत्यावश्यक है। अन्ततः यह जल समुद्री जल से मिलकर उसके रासायनिक संघटन पर भी प्रभाव डालता है। यद्यपि पार्थिव जल का मुख्य स्रोत वर्षा है परन्तु कुछ पानी गर्म झरने के रूप में धरती के अंदर से भी निकलता है। वर्षा का जल कई भागों में बंट जाता है। कुछ धरती में प्रवेश कर आंतरिक भू-जल में मिल जाता है तथा कुछ वाष्पीकरण द्वारा वायुमंडल में वापस चला जाता है! झरनों एवं नदी के रूप में बहता जल, पृथ्वी पर उपस्थित कुछ लवणों को अपने मे घुला लेता है। घुले लवणों की मात्रा समय एवं स्थान के अनुसार कम या अधिक हो सकती है!

पृथ्वी का लगभग 10% भाग बर्फ से ढका है! इस बर्फ का अधिकांश भाग (लगभग 85%) अंटार्कटिक में है, जिसका क्षेत्रफल लगभग 7500000 वर्ग किमी. है। इसी प्रकार बर्फ का लगभग 11.4% भाग ग्रीनलैंड में फैला है जिसका क्षेत्रफल लगभग 1000000 वर्ग किमी है। ऐसा अनुमान है कि यदि पृथ्वी पर उपस्थित पूरी बर्फ पिघल जाये तो समुद्रों की सतह 30 से 60 मीटर ऊंची उठ जायेगी।

एक अनुमान के अनुसार वार्षिक वर्षा की मात्रा लगभग 123.4×10^{12} मीट्रिक टन है जिसमें लगभग 27.35×10^{12} मीट्रिक टन जल नदियों द्वारा समुद्र में मिल जाता है। इस जल में लगभग 27.35×10^8 मीट्रिक टन लवण घुलकर समुद्र में प्रतिवर्ष आते हैं। नदी-जल की औसत लवणता लगभग 100 भाग प्रति दस लाख है। परन्तु वास्तविक लवणता की निम्नतम एवं अधिकतम सीमा क्रमशः 13 एवं 9185 भाग प्रति दस लाख है।
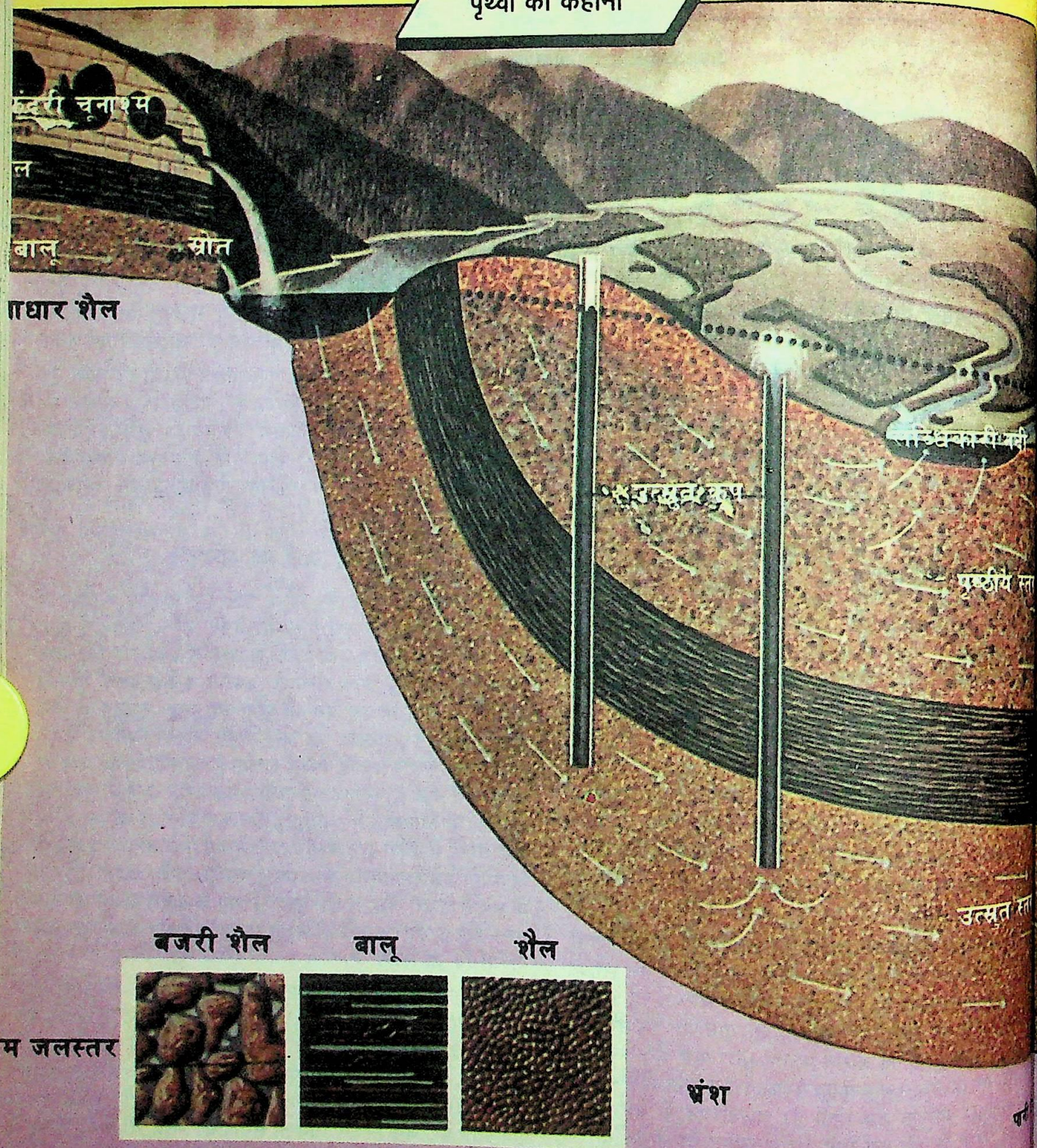
परीक्षणों के अनुसार नदी एवं समुद्र के रासायनिक गुण आपस में एकदम विपरीत हैं। समुद्री पानी में जहां सोडियम की मात्रा मैग्नीशियम से अधिक तथा मैग्नीशियम की मात्रा कैल्सियम से अधिक है वहीं इसके विपरीत नदी के पानी में कैल्सियम, सोडियम से अधिक तथा सोडियम, मैग्नीशियम से अधिक है। इसी प्रकार समुद्री जल में क्लोराइड, सल्फेट से अधिक तथा सल्फेट कार्बोनेट से अधिक है जबकि नदी के पानी में कार्बोनेट सल्फेट से अधिक तथा सल्फेट क्लोराइड से अधिक है। नदी में घुले पदार्थों की आपूर्ति के अतिरिक्त कुछ कारक ऐसे हैं जो समुद्री जल के संघटन को नियमित करते हैं। समुद्र में बहुत सी प्रतिक्रियायें होती हैं जो उसमें घुली वस्तुओं के संतुलन को परिवर्तित करती हैं। अवसादी कणों द्वारा अधिशोषण तथा भस्म विनिमय के कारण कुछ आयन घोल से विलग हो जाते
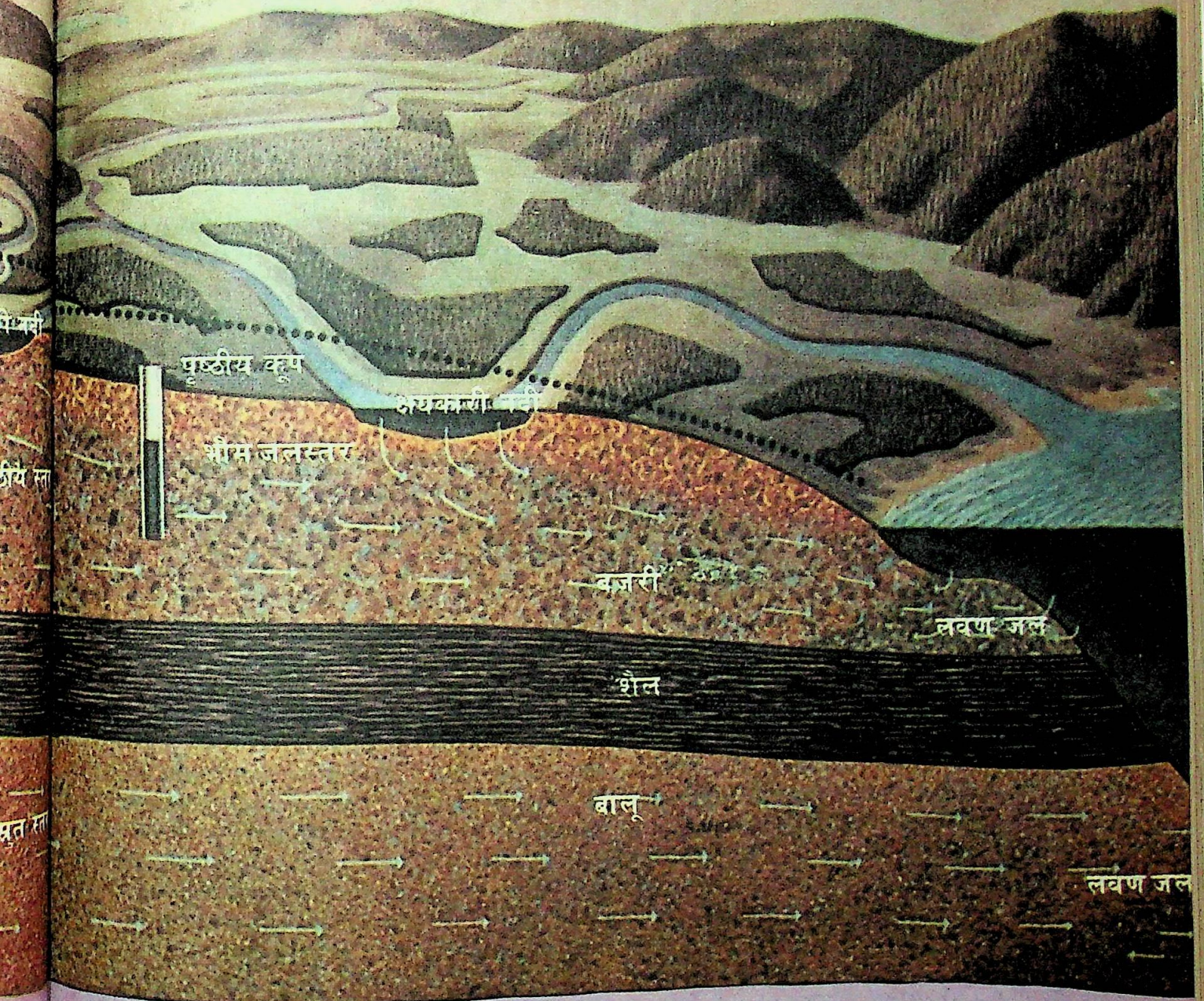
समुद्र में घुले पदार्थों का संतुलन

तथा कुछ आयन अवसादी पदार्थों के साथ प्रतिक्रिया कर कुछ नये खनिजों को उत्पन्न करते हैं। जल से, घुली वस्तुओं को निष्कर्षित करने में जैविक क्रियायें मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। कैल्सियम कार्बोनेट में ऐसा विशेष रूप से होता है। प्रायः इसी से समुद्री जीव अपने बाह्य कवच बनाते हैं। कुछ हद तक सिलिका की भी यही स्थिति है, जो बहुधा डायटमों द्वारा उपयोग में लाया जाता है।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि समुद्री पानी की लवणता में क्रमिक वृद्धि नदियों के पानी में घुली वस्तुओं से हुई। यदि ऐसा हुआ भी होगा तो इसमें बहुत समय लगा होगा। यदि समुद्रों की औसत लवणता 35% तथा समुद्री जल की मात्रा 1413×13^{15} मीट्रिक टन मान ली जाये तो समुद्री पानी में घुले लवणों की मात्रा 49.5×10^{15} मीट्रिक टन होगी।
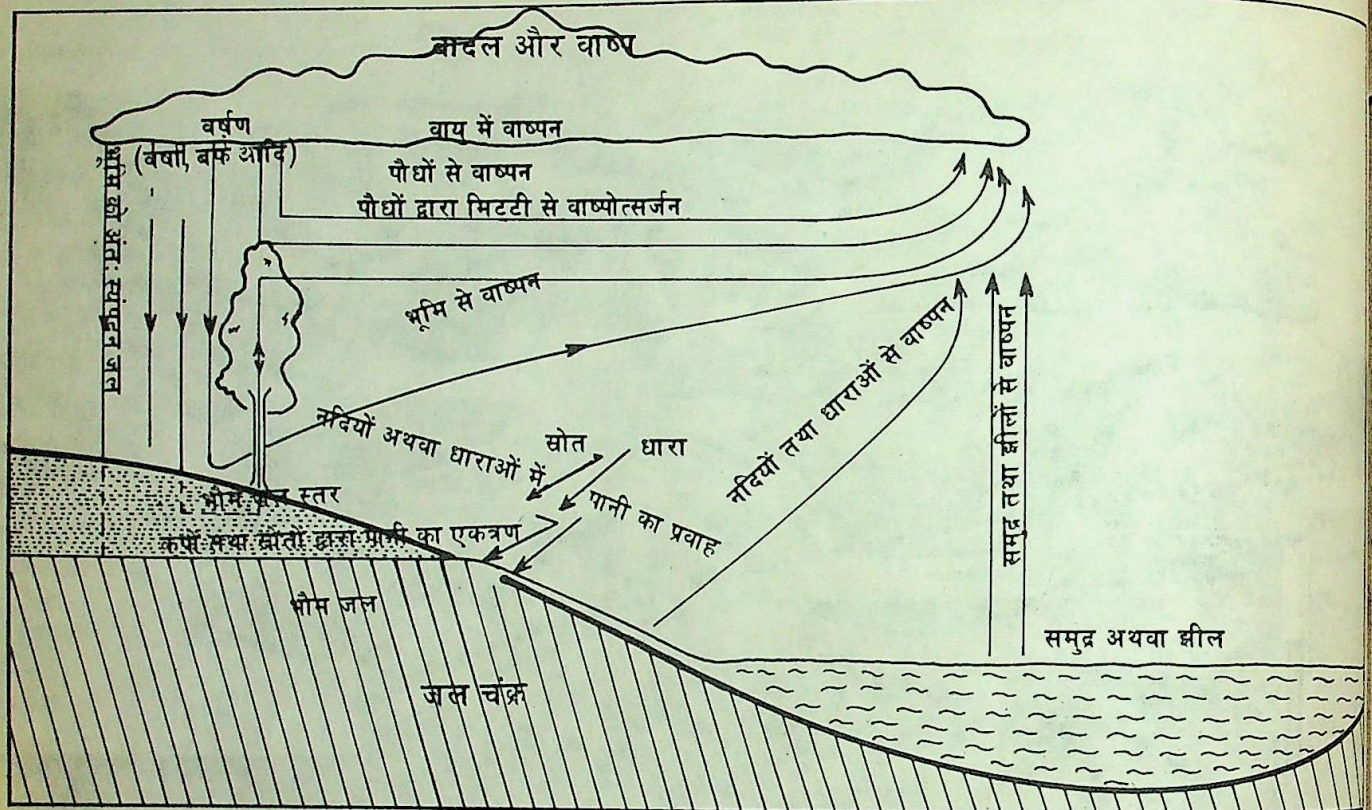
साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि समुद्र एक सीमा तक यथास्थिति में है जहां प्रवेश करने वाला कोई तत्व उतनी ही मात्रा में अवसाद के रूप में जमा होकर संतुलित हो जाता है। यदि इस यथास्थिति परिकल्पना को ग्रहण कर लिया जाये तो हम लोग प्रत्येक-तत्व के लिये एक आवास काल को परिभाषित कर सकते हैं। इस परिभाषा के अनुसार समुद्री पानी में घुले किसी तत्व की कुल मात्रा को तत्व की उस मात्रा से विभाजित किया जाता है जो प्रति वर्ष नदियों द्वारा समुद्र में लायी जाती है। परन्तु इसमें कठिनाई यह है कि बहुत से ऐसे तत्व हैं जिनकी उपस्थिति नगण्य मात्रा में है और उनके संबंध में पर्याप्त आंकड़े भी उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में हम यह मान सकते हैं कि समुद्र में प्रवेश करने वाले प्रत्येक तत्व की मात्रा भूपटल में उसकी प्रतिशत मात्रा की समानुपाती होगी। इस तरह से गणना करने पर कुछ मुख्य तत्वों के आवास काल इस प्रकार हैं :– चांदी 2.1×10^6 वर्ष, बेरियम 8.4×10^4 वर्ष, सोना 5.6×10^5 वर्ष, पारा 4.2×10^4 वर्ष, सीसा 4.5×10^5 वर्ष, सोडियम 2.6×10^8 वर्ष तथा मैंगनीज 1.4×10^3 वर्ष।

इन सब में सोडियम का आवास काल सबसे लंबा और समुद्रों की उम्र के लगभग समतुल्य है। यह सूचित करता है कि सोडियम की क्रियाशीलता समुद्री वातावरण में नहीं के बराबर है। सोडियम न तो अवसादी खनिजों में और न ही यह जैवक्रियाओं में उपयोग में आता है। अल्प प्रचुरता वाले तत्वों का आवास काल तो छोटा है ही। मैंगनीज के बहुत छोटे आवास काल का कारण मैंगनीज का चुतर्संयोगी अवस्था में आक्सीकृत होकर घोल से हटना तथा मैंगनीज डाइआक्साइड का कणों के रूप में अवक्षेपित होकर समुद्र तल पर बैठ जाना है। सिलिका तथा एलुमीनियम भी ऐसे तत्व हैं जिनका आवास काल बहुत छोटा है। सिलिका तो स्पष्टतः जैवक्रिया में उपयोग हो जाता है लेकिन एलुमीनियम किसी जैवक्रिया में शामिल नहीं होकर समुद्र के जलीय घोल से निकलकर मृत्तिका खनिज के रूप में अवक्षेपित हो जाता है।

गोल्डस्मिट ने समुद्र में विभिन्न तत्वों की आपूर्ति एवं उनके निष्कासन के सन्तुलन का अध्ययन किया। उसके द्वारा की गयी तुलना का आधार अपक्षय, विखंडन एवं अवसादन द्वारा आपूर्ति की गयी विभिन्न तत्वों की कुल मात्रा थी। गोल्डस्मिट के अनुसार धरातल के प्रति वर्ग सेंमी. पर लगभग 160 किग्रा. आग्नेय चट्टान अपक्षयित होती है। चूंकि प्रति वर्ग सेंमी. पर लगभग 260 किग्रा. समुद्री पानी है, अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रति किग्रा. समुद्री पानी पर लगभग 600 ग्राम आग्नेय चट्टान अपक्षयित हुयी। अतः प्रति किग्रा. समुद्री पानी के लिये घुले पदार्थ आपूर्ति के लिये 600 ग्राम आग्नेय चट्टान विभव मूल हुआ। वस्तुतः उपर्युक्त 600 ग्राम का सिर्फ एक छोटा भाग ही घुलकर समुद्र में आया। गोल्डस्मिट ने एक सन्तुलन खाका तैयार किया जो 600 ग्राम आग्नेय चट्टान में विभिन्न तत्वों की विभव-आपूर्ति तथा एक किग्रा. समुद्री पानी में उपस्थित मात्रा का संबंध बताता है। वास्तविकता यह है कि कुछ तत्वों की सान्द्रता अपक्षय से आपूर्ति होने वाली मात्रा से बहुत ही अधिक है। इनमें समुद्री जल के साधारण धनोद-क्लोराइड, सल्फेट, बोरेट एवं ब्रोमाइड हैं। इतनी अधिक सान्द्रता का कारण यह भी हो सकता है कि या तो ये प्रारंभिक समुद्र में बहुत अधिक मात्रा में उपस्थित रहे होंगे या इनकी आपूर्ति ज्वालामुखी से उत्पन्न गैसों अथवा गर्म झरनों द्वारा होती रहती है।

[डा. विजय कुमार उपाध्याय, इंजीनियरिंग कालेज, भागलपुर, बिहार]

खसरा

रमेश पोतदार

चर्च के घण्टे ने अभी रात के दो ही बजाये थे। डा. शर्मा ने इसकी हल्की सी आवाज सुनी और पुनः करवट बदली। वे एक स्वप्न देख रहे थे। अर्धस्वप्न अवस्था में ही 'काल बेल' की कर्कश आवाज उन्हें सुनायी पड़ी थी। शीघ्र बिस्तर से उठकर अर्धनिद्रा की अवस्था में दरवाजे की ओर जाने लगे, लेकिन उनके दरवाजे तक पहुंचने से पूर्व ही उनका नौकर दरवाजा खोल चुका था और इस असमय आये हुये आगंतुक से वार्तालाप कर रहा था। डाक्टर ने अपने आपसे प्रश्न किया 'क्या हम डाक्टर लगातार कुछ घंटे भी शांति से नहीं सो सकते?' परन्तु अच्छे डाक्टर की तरह उन्होंने रोगी को जल्दी से देख कर विदा करना ही उचित समझा।

डा शर्मा ने देखा कि लगभग दो वर्ष का बच्चा अपनी मां की बांहों में बदहवासी की हालत में पड़ा है, उन्होंने फौरन भांप लिया कि बच्चा अवश्य किसी-न-किसी भयंकर बीमारी का शिकार हो गया है।

उनके इशारे पर बच्चे के मां-बाप कमरे के बाहर रखी कुर्सियों पर बैठ गये। डाक्टर साहब ने उस दम्पति से पूछा, ''क्या हुआ है बच्चे को?''

संक्षेप में कहानी यह थी कि बच्चे को पिछले 4-5 दिन से तेज बुखार था। रात के लगभग 1 बजे उसे भयानक दौरा पडा था, उसके दोनों नेत्र गोलक बाहर निकल आये और भुजाओं में ऐंठन होने से वे काफी सख्त हो गई थी। यहां तक कि डा. शर्मा के दरवाजे की घंटी बजाने के कुछ क्षण पूर्व तक बच्चे की भुजायें बराबर ऐंठी हुयी थी।

डा. शर्मा ने अपने आपसे कहा, ''लगता है तेज ज्वर के कारण इसके शरीर में ऐंठन हो गई है।'' लेकिन डाक्टर शर्मा अपनी आदत के अनुसार जल्दी में कुछ कहने से पहले रोगी को ठीक से देखकर ही अपनी राय बताते थे। बच्चे के मां-बाप ने बताया कि जैसा बुखार इस समय बच्चे को है, वैसा ही दो सप्ताह पहले भी हुआ था लेकिन उस समय ऐसी स्थिति नहीं हुई थी। डाक्टर साहब ने बच्चे की मां से उसके कपड़े उतारने के लिये कहा। डाक्टर ने ध्यान से देखा कि बच्चे के सारे शरीर पर विशेष रूप से चेहरे तथा छड़ धड़ काले धब्बे पड़े हुये हैं। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि दो सप्ताह पहले बच्चे को अवश्य खसरा निकला होगा। उन्हें इस बात पर जरा भी अचरज नहीं हुआ कि बच्चे की मां ने डाक्टर को खसरे के बारे में नहीं बताया, क्योंकि उन्हें पता था कि आमतौर से लोग खसरे की बीमारी को गंभीरता से नहीं लेते। कुछ लोग यह समझते हैं कि खसरे की बीमारी हो ही जाया करती है और जल्दी ही इससे छुटकारा भी मिल जाता है। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।

डा. शर्मा ने बच्चे की मां से पूछा, ''क्या! पिछले कुछ दिनों में बच्चे को खसरा निकला था?'' उसने कहा,''हां! डाक्टर साहब, इसके पूरे शरीर में फूले-फूले लाल रंग के दाने निकले थे।'' लेकिन वे इस बात से प्रसन्न थे कि उस समय इसके शरीर से समूची गर्मी बाहर निकल गयी थी। लेकिन अचानक उसको पुनः बुखार आने से उसको दौरा पड़ गया। अब डा. शर्मा ने बच्चे का परीक्षण किया। उन्होंने पाया कि बच्चा आधा होश में है और उसकी आंखों तथा कानों में दर्द हो रहा है। डा. शर्मा इस बात से आश्वस्त हो गये कि बच्चे की गर्दन में कहीं जकड़न नहीं है और एक तरफ होने वाले लकवे के लक्षण भी नहीं हैं। इस बीमारी को चिकित्सा शास्त्र में ''हेमोप्लीजिया'' कहते हैं। इस प्रकार के कोई चिह्न उस समय नहीं थे। उन्होंने खसरे के बाद होने वाले ''मस्तिष्क ज्वर'' का भी अस्थायी रूप से निदान किया। इस ज्वर में मस्तिष्क की धूसर कोशिकाओं में सूजन आ जाती है। इस समय तो यह निश्चित ही था कि बच्चे को अस्पताल में दाखिल करवा कर तुरंत गहन चिकित्सा व देखरेख की आवश्यकता है।

डा. शर्मा ने आवश्यक उपचार के लिये बच्चे के मां-बाप को अस्पताल के डाक्टर के नाम एक पर्चा लिख कर अस्पताल में भर्ती करवाने को भेजते हुये कहा, ''अभी बच्चे की स्थिति काफी गंभीर और खतरनाक है लेकिन मैं आशा करता हूं कि यह 48 से 72 घंटे के अंदर होश में आ जायेगा। अतः आप चिंता न करें।''

अगले दिन जब डा. शर्मा राउंड पर निकले तो उन्होंने पाया कि बच्चे को बुखार तो है लेकिन वह होश में है और उसके बाद उसे कोई दौरा भी नहीं पड़ा।

डा. शर्मा ने अपने आप से कहा, ''ये सारे लक्षण अच्छे हैं, और बच्चा बड़ा भाग्यशाली है कि उसे कोई स्थायी हानि नहीं पहुंची।'' डाक्टर ने ये सभी बातें उस दम्पत्ति को नहीं बतायी क्योंकि अच्छे और अनुभवी डाक्टर शर्मा जानते थे कि खसरा ऐसी घातक बीमारी है जो बहुत जल्दी रंग बदलती है जिससे डाक्टर और मां-बाप धोखा खा जाते हैं और रोगी असमय काल का ग्रास बन जाता है।

सौभाग्य से तीसरा दिन परिवार के लिये खुशी की किरणें लेकर आया। आज बच्चे के मुंह पर मुस्कराहट थी और वह पूरी तरह होश में था किन्तु उसे अभी काफी कमजोरी महसूस हो रही थी। अब डा. शर्मा ने बच्चे को देखा और उसके मां बाप से बोले, ''फिलहाल

खसरे के दाने वैसे तो पूरे शरीर में निकलते हैं लेकिन पीठ तथा भुजाओं पर अधिक निकलते हैं। दाने मुंह के अंदर भी निकलते हैं, इनको कॉपलिक के दाने कहते हैं।

आपका बच्चा खतरे से बाहर है, लेकिन यदि आप खसरे जैसी घातक बीमारी के विषय में और अधिक जानना चाहते हैं तो आप अस्पताल में आज सायं 4 बजे होने वाली सामूहिक परिचर्चा में उपस्थित हो सकते हैं।"

अपने बच्चे की अच्छी हालत देखकर दोनों डा. शर्मा के प्रति कृतज्ञ हो गये।

खसरे पर व्याख्यान आज शाम को होना था, लेकिन पहली दो सभाओं में डाक्टरों ने श्रोताओं को बता दिया था कि लोगों को खसरे की बीमारी के विषय में गहराई से जानना चाहिये ताकि सही जानकारी होने पर वे इससे निपट सकें। आज भी वहां बहुत भीड़ थी।

डा. शर्मा प्रायः किसी भी बीमारी पर व्याख्यान देने से पहले उसकी एक संक्षिप्त रूप-रेखा श्रोताओं को बता देते और अन्त में वे श्रोताओं से बीमारी के विषय में प्रश्न आमंत्रित करते और उनके उत्तर बहुत सरल भाषा में देते थे ताकि सभी लोग आसानी से समझ सकें। आज भी उन्होंने यही तरीका अपनाया था।

उन्होंने कहा, "खसरा, संक्रामक रोगों यथा छोटी माता तथा चेचक, अब जिसका उन्मूलन हो गया है, की तरह वायरसजन्य रोग है।" यद्यपि आजकल वायरस शब्द का प्रयोग बहुतायत में होता है लेकिन जो लोग वायरस के बारे में नहीं जानते उनके लिये मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं वायरस 20 मिमी. से 300 मिमी. तक के आकार के अतिसूक्ष्म जीवाणु हैं जिन्हें इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है। वायरसों को उनकी विषाणुजन्य आकृति, आकार और रोग फैलाने की क्षमता के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त किया गया है। खसरे का वायरस पैरामिक्सोवायरस कुल का सदस्य है जिसमें आर.एन.ए. उपस्थित होता है। यही एक ऐसी किस्म है जो कि संक्रमित रोगी में रोग प्रतिरोधता उत्पन्न करती है। लेकिन फिर भी खसरे की तरह के अन्य वायरस भी हैं जो इस तरह की बीमारी उत्पन्न करते हैं।"

क्षमा मांगते हुये एक वृद्ध ने प्रश्न किया, "लेकिन डाक्टर साहब खसरे में ऐसी कौन सी विलक्षणता है कि बचपन में हर मनुष्य को खसरा निकलता है। मेरे सभी बच्चों तथा पोते-पोतियों को यह निकला था और भगवान की दया से वे सब अब बिल्कुल ठीक है।"

डा. शर्मा स्वीकारोक्ति में अपना सिर हिलाते हुये बोले, "हां खसरा आज भी और पहले भी एक सर्वव्यापी रोग रहा है। वास्तव में विश्व के सभी बच्चे तथा बड़े अपनी जिंदगी में एक बार कभी-न-कभी खसरे की चपेट में अवश्य आते हैं। लेकिन आज जो कुछ हमें खसरे के बारे में विदित है वह पहले की तुलना में इतना अधिक भयावह है जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। जैसा कि आप जानते हैं खसरे की बीमारी में लगभग 4-5 दिन तक तेज बुखार आता है, जुकाम होता है, आंखें दुखती हैं, नाक से पानी बहता है तथा खांसी होती है। इसके पश्चात् माथे से लेकर पैर के अंगूठे तक लाल दाने निकलने शुरू होते हैं और इसी क्रम में ये गायब होते जाते हैं।

खसरे का वायरस

बच्चे को खसरे का टीका जरूर लगवायें

लेकिन, जब बुखार स्थिर हो जाता है तो हम समझते हैं कि अब खसरा ठीक हो जायेगा। वास्तव में यह एक धोखा देने वाली स्थिति होती है। क्योंकि कई बच्चों में मुख्य रोग खसरे की तुलना में वे विकार अधिक खतरनाक होते हैं जो खसरे के कारण उत्पन्न होते हैं।"

मस्तिष्क ज्वर से पीड़ित एक बच्चे के पिता ने कहा, "हे भगवान! हमें तो इन बातों का ज्ञान ही नहीं था। डाक्टर साहब कृपया खसरे के बाद होने वाले मस्तिष्क ज्वर के बारे में भी बताइये।"

डा. शर्मा ने अपनी टाई की गांठ ठीक की और बोले, "हमें इन विकारों को एक-एक करके समझना चाहिये ताकि खसरे से होने वाली हानियों के बारे में अच्छी तरह से पता चल सके। पहली बात यह है कि खसरे के कारण अनेक बच्चों में अन्य संक्रमणों से लड़ने की रोगप्रतिरोध क्षमता काफी हद तक कम हो जाती है। चिकित्सा तथा वैज्ञानिक भाषा में इसे प्रतिरक्षात्मक असमर्थता अर्थात् इम्यूनोलाजिकल इनकम्पीटेंस कहते हैं। यदि हम ऐसे बच्चों की खोज करें जो टी.वी., काली खांसी, कुपोषणता जैसी बीमारियों से ग्रस्त हैं तो हमेशा यही पायेंगे कि इन बच्चों को पहले खसरा निकला था और खसरा निकलने से पूर्व वे ऐसी किसी बीमारी के शिकार नहीं थे। खसरे के बाद ही ये सब समस्यायें उत्पन्न हुई थीं।"

"आप बिल्कुल ठीक कहते हैं डाक्टर," एक चार वर्ष के बच्चे की मां बोली, "मुझे उन दिनों की याद है जब मेरे एक वर्षीय पुत्र अमित ने "स्वस्थ बच्चा" नाम की प्रतियोगिता में पुरस्कार प्राप्त किया था। इसके बाद उसको खसरा निकल आया। उसका स्वास्थ्य काफी गिर गया। लगभग दो वर्ष में वह दुबला-पतला हो गया है। इस बीच में उसे बार-बार खांसी और जुकाम हो जाता है। अब जाकर कुछ कम हुआ है।"

"और क्या-क्या विकार इससे उत्पन्न हो जाते हैं डाक्टर," अस्पताल में भर्ती उस बच्चे की मां ने पूछा। डाक्टर ने बताया कि "सबसे अधिक डरावना तथा सामान्य विकार खसरे के बाद श्वास नली में खसरा फुप्फुस शोथ या मीजल ब्रोंकोन्यूमोनिया है। इस स्थिति में बच्चे के दोनों फेफड़ों में बलगम भर जाता है और बच्चे की सांस तेजी से चलने लगती है। विशेषतः खसरे की बीमारी के पश्चात् यदि कोई दो वर्ष से कम आयु का बच्चा एक मिनट में 50 से भी अधिक बार सांस लेता है तो उसको तुरंत डाक्टर को दिखाना आवश्यक है। असावधानी के कारण देरी करने के परिणामस्वरूप बच्चे के फेफड़े की आक्सीजन समाप्त हो जायेगी और हो सकता है कि बच्चे की मृत्यु भी हो जाये। विशेष रूप से वे बच्चे जिनका पोषण ठीक रूप से नहीं होता तथा जिनका वजन कम होता है उनमें यह परेशानी दुर्भाग्यपूर्ण हो सकती है।"

तभी गांव से कुछ ही दिनों पहले शहर आयी एक महिला बोली, "लेकिन डाक्टर हमारे समाज में तो खसरे के रोगी को न तो कोई दवा देते हैं और न ही घर में कोई चीज तलते-छौंकते हैं। मांसाहारी भोजन तो तब तक नहीं बना सकते जब तक खसरे के दाने बिल्कुल गायब न हो जायें। क्या ऐसा करना ठीक है?"
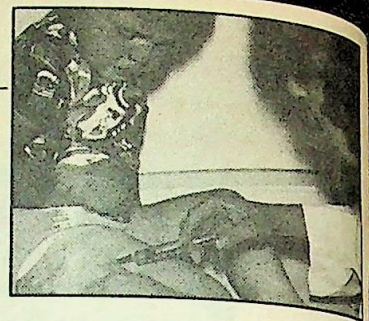
डाक्टर ने कहा, "बहुत से समुदायों में ऐसा होता है लेकिन उन्हें इसकी भारी कीमत भी चुकानी पड़ती है। यद्यपि खसरा एक वायरसजन्य रोग है और वायरस को मारने की कोई अचूक औषधि अब तक उपलब्ध नहीं है। ब्रोंकोन्यूमोनिया (श्वसनी फुप्फुस शोथ) भी एक अन्य प्रकार के जीवाणु से होता है। यह उन बच्चों के लिये विशेष रूप से खतरनाक होता है जिनके फेफड़े और शरीर कमजोर होते हैं। अतः ऐसे बच्चों को ठीक होने के लिये एंटीबायोटिक दवाएं अवश्य दी जानी चाहिये। चूंकि बच्चे को वायरस और जीवाण दोनों से ही होने वाली बीमारियों का सामना करना होता है, इसलिये उसे जो भी अच्छा लगता है, भले ही उसे भूख न हो, अवश्य खिलाना चाहिये। खसरे के वायरसों को यह पहचान नहीं होती है कि आप ब्राहमण हैं, वैश्य हैं, क्षत्रिय अथवा शुद्र हैं। आप शाकाहारी हैं अथवा मांसाहारी। इस मामले में खसरा कोई भेद-भाव नहीं बरतता। बच्चे को जो अच्छा लगे खिलाइये।" यह सब बातें डाक्टर ने एक हल्की मनःस्थिति में बतायी और अन्धविश्वास से दूर रहने की सलाह दी।

फिर वही महिला उठ कर बोली, "यह तो केवल एक विकार के बारे में आपने बताया, अन्य विकारों के बारे में भी आज ही बताइये, न!"

"अच्छी बात है। खसरे के पश्चात् उत्पन्न होने वाली दूसरी परेशानी है मस्तिष्क शोथ की। इससे बच्चा मरता तो नहीं है किन्तु अपंग अवश्य हो जाता है। यह स्थिति खसरा निकलने के लगभग दो सप्ताह बाद आ सकती है। ऐसी स्थिति या तो मस्तिष्क की धूसर कोशिकायें प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने से अथवा वायरसों में प्रतिजनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होती है। दोनों ही स्थितियों में बच्चे के दिमाग पर असर पड़ता है। इससे मिरगी आ सकती है अथवा उसके केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर विकार उत्पन्न हो सकता है। कभी-कभी तो वायरस 8-9 वर्ष तक शरीर में बने रहते हैं। इससे 'सबएक्यूट एक्लीरोजिंग पैन इंसेफेलाइटिस' नाम की एक मस्तिष्कीय व्याधि हो जाती है। इसके फलस्वरूप हाथ-पैरों में ऐंठन, जिसे 'मायोक्लोनस' भी कहते हैं,होने लगती है। इससे दिमागी शक्ति का ह्रास होता है तथा अंधापन हो जाता है और रोगी की धीरे-धीरे यानि 6 माह से 1 वर्ष तक के अंदर मृत्यु हो जाती है।

डा. शर्मा ने खसरे के विषय में जो दुखांत चित्रण किया था इससे वहां का वातावरण बहुत शोकमय और बोझिल हो गया था। स्तब्धता सी छा गई थी वहां। स्वयं डा. शर्मा को ऐसा एहसास हुआ कि उन्होंने इस विषय में कुछ अधिक ही बोल दिया है।

अतः सांत्वना देने के स्वर में वे बोले, "भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि खसरा, रोगी के लगभग सभी तंत्रों को प्रभावित कर सकता है और मनुष्य खसरे को कितने ही बुरे नामों से पुकार सकता है लेकिन खसरे के बारे में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि खसरा एक मामूली रोग नहीं है और इसलिये इससे बचाना ही चाहिये।

जैसा कि अपेक्षित था श्रोताओं में से एक साथ दो व्यक्तियों ने पूछा, "क्या हम इससे बच सकते हैं, डाक्टर साहब?"

"चूंकि अब इसका टीका उपलब्ध है इसलिये अब इसको भली-भांति तथा सरलता से रोका जा सकता है। जैसा कि आप समझते हैं कि इस रोग की विशिष्टता यह है कि यह संक्रामक रोग है। रोगी में दाने दिखने से पूर्व भी यह रोग दूसरों को संक्रमित कर सकता है। अतः व्यावहारिक रूप से आप खसरे निकले रोगी को अलग नहीं कर सकते। इसका कारण, अब तक रोगी के आस-पास रहने वाले व्यक्ति न केवल संक्रमित हो चुके होंगे बल्कि उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्ति भी संक्रमित हो रहे होंगे। अतः उपयुक्त यही रहेगा कि समाज के प्रत्येक बच्चे को टीका लगाकर इस रोग से प्रतिरक्षित कर दिया जाये अर्थात न होगा बांस और न बजेगी बांसुरी।"

डाक्टर की बात खत्म भी न होने पाई थी कि वही वृद्ध महिला बोली, "ये वैक्सीन या टीका क्या है?" डाक्टर ने कहा, "खसरे की दो तरह की वैक्सीन है—एक जो केवल खसरे रोग के लिये लगाई जाती है, उसे खसरे की वैक्सीन या टीका कहते हैं। दूसरी तनुकृत वैक्सीन जिसे 'एम.एम.आर.' कहते हैं। अपने नाम के अनुसार खसरे, मम्प्स और रूबेला (जर्मन खसरे) के लिये संयुक्त रूप से लगाई जाती है। एम.एम.आर. की एक वैक्सीन तीनों रोगों के प्रति प्रतिरक्षात्मक होती है। यद्यपि इन वैक्सीनों को 15 महीने की आयु में प्रयोग में लाया जाना चाहिये लेकिन भारत में तो 8 महीने की आयु में ही खसरा निकल आता है। अतः यह वैक्सीन बच्चे को 9 महीने की अवस्था में ही दे दी जाती है। वैसे अभी भी परीक्षण किये जा रहे हैं, ताकि ऐसी वैक्सीन बन सके जो चार मास की आयु में लगायी जा सके। वास्तव में यह वैक्सीन भविष्य में एक वरदान साबित होगी।"

एक वृद्ध ने पूछा, "क्या वैक्सीन लेना सुरक्षित है?" उसने पहले कभी यह टिप्पणी भी की थी कि वैक्सीन लेने से तो अच्छा यह रहेगा कि एक बार खसरा ही निकल आये।

"हां, वैक्सीन लेना बिल्कुल सुरक्षित है बल्कि बच्चे को वैक्सीन न लगवाना उसकी जान के लिये खतरनाक हो सकता है।"

"डाक्टर हमें यह कैसे पता लगेगा कि वैक्सीन उच्च गुणों से भरपूर है?"

"यदि इस वैक्सीन को फैक्ट्री से लेकर बच्चे को दिये जाने तक ठंडक में रखा गया हो तो समझ लेना चाहिए कि वैक्सीन ठीक है। इसको रोशनी से दूर तथा 2° से. से 8° से. पर परिरक्षित करना चाहिये। एम.एम.आर. वैक्सीन हालांकि काफी महंगी है लेकिन है बड़ी फायदेमंद।"

श्रोताओं को धन्यवाद करते हुये डा. शर्मा शीघ्रता से क्लिनिक की ओर चल पड़े और सभी श्रोता खसरे से संबंधित जानकारियां पाकर निश्चय कर चुके थे कि वे खसरे की वैक्सीन अवश्य लगवायेंगे। अतः आज भी डाक्टर का स्वास्थ्य शिक्षा देने का उद्देश्य पूर्ण रूप से सफल रहा।

[डा. रमेश पोत्दार, 69, डी.वी. प्रधान रोड, दादर बंबई- 400 014]

गणितज्ञ महिलाएं : 2

सोमेरविले, कोवालेवस्काया और नोएथेर

गुणाकर मुले

गणितज्ञों के जीवन में निश्चय ही कुछ विशेषताएं होती हैं, कुछ ऐसी बातें होती हैं जो अन्य विषयों के विचारकों में प्रायः कम ही देखने को मिलती हैं। जैसे, अधिकांश गणितज्ञ 30-35 साल की उम्र तक अपना प्रमुख खोज कार्य कर चुके होते हैं। और, जब कोई महिला गणित के क्षेत्र में काम करती है तो वह, न केवल प्रखर प्रतिभा का बल्कि, घोर संघर्ष करने की अपनी क्षमता का भी परिचय देती है। आधुनिक युग की ऐसी ही कुछ प्रतिभाशाली महिलाओं ने प्रमाणित कर दिया है कि गणित केवल एक 'पुरुषोचित' विज्ञान नहीं है।

मेरी सोमेरविले

न्यूटन ने विश्व की यांत्रिकी को अपने 'प्रिंसिपिया' ग्रंथ में नए सिद्धांतों के साथ प्रस्तुत किया था। इस महान कृति में सिद्धांत तो नए थे, क्रांतिकारी थे, मगर इसे न्यूटन ने ज्यामिति के पुराने गणितीय ढांचे में ही प्रस्तुत किया था। न्यूटन ने कलन-गणित का भी सृजन किया था, मगर 'प्रिंसिपिया' में उन्होंने इसका इस्तेमाल नहीं किया। अतः 'प्रिंसिपिया' को एक काफी कठिन ग्रंथ माना जाता था। न्यूटन के सिद्धांतों का उपयोग करके विश्व-यांत्रिकी को नए कलन (वैश्लेषिक) गणित के ढांचे में प्रस्तुत करना आवश्यक था।

यह काम किया फ्रांस के महान गणितज्ञ लापलास (1749-1827) ने। लापलास ने वैश्लेषिक गणित का उपयोग करके **विश्व-यांत्रिकी** के नाम से पांच खंडों में एक ग्रंथ लिखा। मगर यह ग्रंथ भी आसान नहीं है। लापलास का गणितीय विवेचन अत्यंत संक्षिप्त है। वे प्रायः ''यह स्पष्ट है कि...'' कहकर आगे बढ़ जाते हैं। इस ग्रंथ के अंग्रेजी अनुवादक नेथेइनल बौडिच ने लिखा है : ''लापलास के ग्रंथ में जब भी 'यह स्पष्ट है कि...' से मेरा सामना होता है, तो मैं समझ जाता हूं कि विषय को स्पष्ट करने के लिए आगे कई घंटों तक माथापच्ची करनी होगी।''

ऐसी जटिल कृति का अंग्रेजी में प्रामाणिक सार-संक्षेप प्रस्तुत किया एक महिला मेरी सोमेरविले ने। फ्रांस की महिला गणितज्ञ मार्क्वी एमिली दु शातले ने न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' का फ्रांसीसी में अनुवाद किया था। मेरी सोमेरविले ने लापलास की कृति का अंग्रेजी में सार-संक्षेप प्रस्तुत किया। मेरी की यह पुस्तक इतनी अच्छी मानी गई कि इसे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पाठ्य-पुस्तक का स्थान मिला।

मेरी सोमेरविले का जन्म 26 दिसंबर, 1780 को जेडबर्ग (स्काटलैंड) में उसके मामा और भावी ससुर थॉमस सोमेरविले की हवेली में हुआ था। उसके पिता सर विलियम फेयरफैक्स नौसेना में एडमिरल थे। ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बावजूद मेरी को स्कूल की अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला। उसे अपने ही प्रयास से ज्ञान अर्जित करना पड़ा।

मेरी का पहली बार गणित से सामना तब हुआ जब वह पंद्रह साल की थी। उसने फैशन की एक पत्रिका के एक पृष्ठ के अंत में गणित का एक सवाल देखा, जो उसे अंकगणित का प्रतीत हुआ। मगर पन्ना पलटने पर उसने देखा कि सवाल को कुछ विचित्र-सी रेखाओं और 'एक्स' व 'वाइ'—जैसे अक्षरों में प्रस्तुत किया गया है। ''यह सब क्या है?'' मेरी ने किसी से पूछा। उसे बताया गया कि यह बीजगणित है।

तब से मेरी के मन में गणित के प्रति दिलचस्पी बढ़ी। उसने गणित पढ़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया। मगर परिवार में ऐसा कोई नहीं था जो उसे गणित की पढ़ाई में मदद कर सके। उसने किसी तरह यूक्लिड की ज्यामिति और बीजगणित की एक पुस्तक प्राप्त की और स्वयं ही गहराई से उनका अध्ययन करने में जुट गई। मेरी की गणित की यह पढ़ाई उसके माता-पिता को पसंद नहीं थी, क्योंकि उनके मतानुसार यह पुरुषों के अध्ययन का विषय था।

प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद मेरी ने अपना अध्ययन जारी रखा और बाद में अपने मामा की मदद से ग्रीक व लैटिन भाषाएं सीखीं।

चौबीस साल की आयु में, 1804 में, लंदन के कैप्टन क्रेइग नामक एक रिस्तेदार से मेरी का विवाह हुआ। मगर दो साल बाद कैप्टन का देहांत हो गया तो विधवा मेरी स्काटलैंड लौट आई और पुनः गणित व विज्ञान के अध्ययन में जुट गई। 1812 में पुनः एक अन्य रिश्तेदार डा. विलियम सोमेरविले से उसका विवाह हुआ। तब पहली बार मेरी

के लिए गणित की पुस्तकों का एक छोटा संग्रह उपलब्ध हुआ। तब वह नए उत्साह के साथ गणित के अध्ययन में जुट गई। चार साल बाद, 1816 में, मेरी अपने पति के साथ लंदन चली गई।

लंदन में एक गणितज्ञ महिला के रूप में मेरी सोमेरविले की ख्याति फैलती गई। मार्च 1827 में मेरी को लॉर्ड ब्राउघम का एक पत्र मिला, जिसमें उससे अनुरोध किया गया था कि वह लापलास की कृति **विश्व-यांत्रिकी** का अंग्रेजी पाठकों के लिए सार-संक्षेप प्रस्तुत कर दे। मेरी चकित रह गई। उसे लगा कि उसका स्वयं अर्जित ज्ञान इतना परिपूर्ण नहीं है कि वह लापलास की कृति को अंग्रेजी में प्रस्तुत कर सके। मगर जब उस पर इस कार्य के लिए अधिक जोर डाला गया तब उसने इस शर्त पर काम करना स्वीकार किया कि पुस्तक यदि स्तरीय नहीं होगी तो पांडुलिपि को आग के हवाले कर दिया जाएगा।

मेरी सोमेरविले ने एक साल के भीतर अपना ग्रंथ, जिसे **खगोल की यांत्रिकी** का नाम दिया गया, तैयार कर लिया। यह ग्रंथ महज एक अनुवाद नहीं था, बल्कि लगभग एक स्वतंत्र कृति थी। ग्रंथ के प्रकाशित होते ही सोमेरविले की कीर्ति तेजी से फैलती गई। **कैरोलिन हर्शेल** के साथ मेरी सोमेरविले को भी रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी का सम्मानित सदस्य चुना गया। कैरोलिन प्रख्यात खगोलविद् विलियम हर्शेल की बहन थी। उसने अपने भाई के खगोलीय अनुसंधानों में सहयोग दिया था और स्वयं भी कई धूमकेतुओं, नीहारिकाओं तथा तारा-गुच्छों की खोज की थी।

मेरी सोमेरविले को यूरोप व अमरीका की कई वैज्ञानिक संस्थाओं ने अपना सदस्य चुना। सरकार ने उसे 300 पौंड वार्षिक पेंशन देना तय किया। उसकी पुस्तक का अध्ययन उन विद्यार्थियों के लिए आवश्यक माना गया जो परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करना चाहते हैं।

मेरी सोमेरविले ने बाद में और भी कई ग्रंथ लिखे। जैसे, **भौतिक विज्ञानों के संबंध** और **भौतिकीय भूगोल**। उसने वक्रों और सतहों के बारे में 246 पृष्ठों का एक गणितीय प्रबंध भी लिखा। अस्सी साल की आयु होने के बाद मेरी सोमेरविले ने एक और ग्रंथ लिखा। कई साल तक काम करते रहने के बाद तैयार हुआ यह ग्रंथ था—**आणविक और अतिसूक्ष्म का विज्ञान**। वह जीवन के अंतिम दिनों तक अध्ययन करती रही, लिखती रही। उसने अपना आत्म-चरित्र भी लिखा, जो उसकी मृत्यु के करीब एक साल बाद प्रकाशित हुआ।

मेरी सोमेरविले ने अपने जीवन के अंतिम दिन इटली में गुजारे। वहीं पर, 92 साल की सुदीर्घ आयु में, नेपल्स में 29 नवंबर, 1872 को उसका देहांत हुआ। मेरी सोमेरविले ने सिद्ध कर दिया कि एक महिला स्वयं अपने बल पर गणित—जैसे जटिल विषय का अध्ययन कर सकती है, गृहस्थी संभाल सकती है और सुदीर्घ आयु भी प्राप्त कर सकती है।

सोफिया कोवालेवस्काया

घटना 1888 ई. की है। फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने वैज्ञानिकों के हल के लिए एक समस्या प्रस्तुत की थी और उसके लिए **प्रि बोर्दी** नामक एक पुरस्कार की घोषणा की थी। समस्या थी : "किसी ठोस पिंड का एक स्थिर बिंदु के चतुर्दिक परिभ्रमण करने का सिद्धांत।"

इस पुरस्कार के लिए 15 प्रबंध प्राप्त हुए। प्रतियोगिता के नियम के अनुसार इन प्रबंधों पर लेखकों के नाम नहीं लिखे गए थे। प्रत्येक प्रबंध के साथ एक सीलबंद लिफाफा था, जिसमें एक कागज पर लेखक का नाम दर्ज था। प्रत्येक प्रबंध पर एक आदर्श-वाक्य लिखा गया था, और वही आदर्श वाक्य संलग्न लिफाफे पर भी लिखा गया था। यह व्यवस्था इसलिए थी कि प्रबंध का मूल्यांकन करते समय निर्णायक मंडल के सदस्य यह जान न पाएं कि उस प्रबंध का लेखक कौन है।
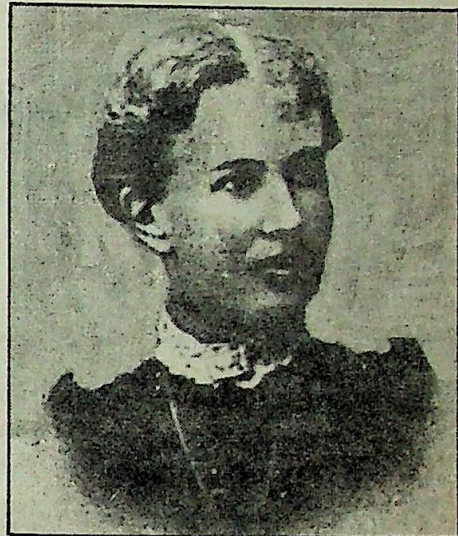
सोफिया कोवालेवस्काया

अंततः, 15 प्रबंधों में से न. 2 के प्रबंध को सर्वोत्तम हल के रूप में चुना गया। उस प्रबंध पर और उसके साथ के लिफाफे पर आदर्श-वाक्य लिखा हुआ था : "जो जानते हो, उसे कहो; जो करना चाहते हो, उसे करो; फिर जो होगा, देखा जाएगा।"

सीलबंद लिफाफा खोला गया। भीतर प्रबंध के लेखक (लेखिका) का नाम था—**सोफिया कोवालेवस्काया**।

प्रबंध उच्च स्तर का था, विशेष महत्व का था, इसलिए निर्णायक-मंडल के सुझाव पर पुरस्कार की राशि तीन हजार फ्रांक से बढ़ाकर पांच हजार फ्रांक कर दी गई। सोफिया कोवालेवस्काया ने एक ऐसे सवाल का नया हल प्रस्तुत किया था जिस पर पहले आयलर और लाग्रांज—जैसे महान गणितज्ञ काम कर चुके थे।

बोर्दी पुरस्कार के लिए चुने गए सवाल का गणित और भौतिकी के क्षेत्र में बड़ा महत्व है। एक स्थिर बिंदु के इर्द-गिर्द किसी ठोस पिंड की परिभ्रमण-गति को हम एक लट्टू की गति के रूप में आसानी से समझ सकते हैं। गाइरोस्कोप या गाइरो-कंपास के प्रयोग में भी इसी प्रकार की गति व्यक्त होती है। जहाज, हवाई जहाज और अब अंतरिक्षयानों की यात्राओं में भी गाइरोस्कोप का बहुत बड़ा महत्व है। दरअसल, बोर्दी पुरस्कार के लिए दी गई समस्या का पूर्ण हल अभी भी प्राप्त नहीं हुआ है। आज से करीब सौ साल पहले सोफिया कोवालेवस्काया ने इस समस्या का सबसे बेहतर हल प्रस्तुत कर दिया था।

उस समय सोफिया स्टाकहोम विश्वविद्यालय में गणित की प्राध्यापिका थी। उस समय तक रूस की सर्वश्रेष्ठ महिला गणितज्ञ के रूप में उसकी ख्याति यूरोप भर में फैल चुकी थी। फ्रांस की विज्ञान

सोफिया कोवालेवस्काया अपनी पुत्री सोन्या के साथ

अकादमी की ओर से पुरस्कार की घोषणा का सोफिया को जो पत्र मिला उस पर लुई पाश्चर और जोसफ बर्त्रा के हस्ताक्षर थे। पुरस्कार प्राप्त करने के लिए सोफिया पेरिस पहुंची। एक विशिष्ट समारोह में उसने पुरस्कार प्राप्त किया। अकादमी के अध्यक्ष पियरे जान्सें ने समारोह में उपस्थित वैज्ञानिकों को संबोधित किया: "जो पुरस्कार-सम्मान आज हम प्रदान कर रहे हैं उनमें सर्वाधिक कठिनाई से प्राप्त किया गया एक सर्वाधिक गौरवशाली सम्मान एक महिला को प्राप्त हुआ है। निर्णायक-मंडल के सदस्यों का मत है कि उनका कृतित्व, न केवल उनके गहन-गंभीर ज्ञान, बल्कि उनकी महान प्रतिभा का भी परिचायक है।"

गणित के क्षेत्र में इतना ऊंचा सम्मान प्राप्त करने पर और रूस की महान महिला गणितज्ञ के रूप में सारे यूरोप में ख्याति अर्जित करने पर भी सोफिया के लिए यह संभव नहीं था कि वह अपने देश के किसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका का पद पा सके। सोफिया को विवश होकर पुनः स्टाकहोम लौटना पड़ा।

सोफिया (सोंजा) का जन्म रूस के एक खानदानी परिवार में 15 जनवरी, 1850 को, मास्को में हुआ था। पिता वासिली कुक्रोवस्की सुशिक्षित थे, सैनिक अफसर थे, धनाढ्य थे, इसलिए सोफिया को बचपन में किसी चीज का अभाव नहीं था। उसकी एक बड़ी बहन थी, एक छोटा भाई था। सोफिया एक असाधारण सुंदरी थी; उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में अद्भुत आकर्षण था।

चौदह साल की आयु तक, निजी अध्यापकों की देखरेख में, सोफिया ने गणित का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। साहित्य में भी उसकी गहरी दिलचस्पी थी। सत्रह साल की होने पर उसने सेंट पीटर्सबर्ग (आधुनिक लेनिनग्राद) जाकर नौसेना के स्कूल के एक अध्यापक से कलन-गणित सीखा। स्पष्ट हुआ कि सोफिया में प्रतिभा है, गणित के प्रति गहरी दिलचस्पी है, मगर उस समय रूस के विश्वविद्यालयों में लड़कियों के लिए प्रवेश वर्जित था। अंत में तय हुआ कि सोफिया और उसकी बहन उच्च अध्ययन के लिए विदेश जाएंगी।

उस समय कुछ ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी कि जीवन के कु[illegible] क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए तरुणियों का अपने पिता के संरक्षण से मुक्त होकर "पत्नी" बनना आवश्यक था। सोफिया को भी ऐसा ही करना पड़ा। उसने 1868 में व्लादिमीर कोवालेवस्की नामक ए[illegible] तरुण से "विवाह" कर लिया। मगर उनका वास्तविक वैवाहिक जीवन पांच साल बाद ही शुरू हुआ।

सोफिया ने विज्ञान के अध्ययन के लिए जर्मनी के हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय को पसंद किया। उस समय हेल्महोल्ट्ज, किर्होफ और बुन्सेन—जैसे प्रख्यात वैज्ञानिक इस विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। सोफिया के गणित के प्राध्यापक थे कोनिग्सबर्गेर, जो बर्लिन विश्वविद्यालय के गणितज्ञ कार्ल वायरस्ट्रास (1815-1897) के

लेखक-परिचय

श्री गुणाकर मुले का जन्म महाराष्ट्र के अमरावती जिले के एक गांव में 1935 में हुआ। उनकी मातृभाषा मराठी है। मराठी, संस्कृत व हिंदी का आरंभिक अध्ययन गांव में करने के उपरान्त उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में गणित का अध्ययन किया। उसके बाद गणित, खगोल-विज्ञान, भौतिकी, विज्ञान का इतिहास, पुरातत्व और पुरालिपिशास्त्र जैसे विषयों पर स्वतंत्र लेखन किया। अब तक इन विषयों से संबंधित करीब 30 मौलिक पुस्तकें, दस अनूदित पुस्तकें और हिंदी तथा अंग्रेजी में 3000 से अधिक लेख प्रकाशित हुए। श्री मुले की प्रमुख कृतियां: अक्षर-कथा, अंतरिक्ष-यात्रा, नक्षत्र-लोक, भारतीय विज्ञान की कहानी, भारतीय लिपियों की कहानी, भारतीय अंक-पद्धति की कहानी, सौर-मंडल, सूर्य हैं तथा अन्य पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं।

सम्प्रति भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के सीनियर फैलो हैं, गवेषणा का विषय: 'प्राचीन भारत में विज्ञान और टेक्नोलाजी'। साथ ही, नेशनल-बुक ट्रस्ट के लिए दो खंडों में 'भारतीय विज्ञान का इतिहास' लिख रहे हैं।

शिष्य रह चुके थे। शिष्य से गुरु की प्रशंसा सुनी, तो सोफिया ने बर्लिन जाने का फैसला किया। उस समय बर्लिन विश्वविद्यालय में छात्राओं को प्रवेश नहीं मिलता था। मगर कोनिग्सबर्ग की सिफारिश पर और सोफिया की प्रतिभा को पहचान कर वायरस्ट्रास ने सोफिया की गणित की पढ़ाई की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। कक्षा में दि[illegible] गए लेक्चरों को वे सोफिया के लिए पुनः दोहराते थे। सोफिया [illegible] साल की तरुणी थी। उसने वायरस्ट्रास को यह भी नहीं बताया था कि उसका "विवाह" हुआ है। वायरस्ट्रास उससे 35 साल बड़े [illegible] अविवाहित थे, और उस समय फलन-सिद्धांत के महान आचार्य के रूप में सारे यूरोप में उनकी कीर्ति फैली हुई थी। सोफिया ने वायरस्ट्रास के सान्निध्य में चार साल (1870-74) तक उच्च गणित का गहन अध्ययन किया। दोनों में गहरे कोमल संबंध भी स्थापित हुए, और दोनों में लंबे समय तक पत्र-व्यवहार चला। वायरस्ट्रास ने सोफिया के बारे में लिखा है: "उसकी जैसी प्रतिभा, क्षमता और लगन वाले विद्यार्थी मुझे बहुत कम मिले हैं।"

बर्लिन-निवास के चार सालों में सोफिया ने, न केवल गणित का पाठ्यक्रम पूरा किया, बल्कि तीन गणितीय प्रबंध भी प्रस्तुत किए। पहले प्रबंध में उसने फ्रांसीसी गणितज्ञ कोशी के एक अवकल समीकरण को अधिक व्यापक बनाया। दूसरे प्रबंध में आबेलीय फलनों को विकसित किया और तीसरे प्रबंध में शनि के वलयों की रचना का विवेचन किया। ग्रहों के वलयों का विषय आज भी बड़े महत्व का है। इधर के वर्षों में बृहस्पति, यूरेनस और नेपच्यून के इर्द-गिर्द भी वलय खोजे गए हैं।

सोफिया के इन प्रबंधों के महत्व को पहचानकर गॉटिंगेन विश्वविद्यालय ने, उसकी अनुपस्थिति में ही, उसे 'डाक्टरेट' की उपाधि प्रदान की (1874)। उसके कृतित्व के महत्व के कारण उसकी मौखिक परीक्षा भी नहीं ली गई।

सोफिया स्वदेश लौटी। उसने सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर दिया। इसी बीच उसके पिता की मृत्यु हुई, तो वसीयत के अनुसार उसे काफी धनराशि मिली। उसके पति मास्को में जीवाश्म-विज्ञान के प्राध्यापक थे, मगर उनका व्यवसाय घाटे में चल रहा था। सोफिया को पिता से मिला पैसा भी जल्दी ही खत्म हो गया। उन्हें कष्टों का सामना करना पड़ा। इसी बीच उनकी एक पुत्री हुई।

कठिनाइयों के बावजूद सोफिया ने गणित का अपना अन्वेषण जारी रखा। 1880 में वह बर्लिन गई। आगे के तीन साल तक यूरोप के विभिन्न नगरों में रहकर उसने गणितीय अनुसंधान के कार्य को जारी रखा। अप्रेल 1883 में पेरिस में उसे समाचार मिला कि उसके पति ने आत्महत्या कर ली है। लगातार चार दिन तक कमरे में बंद रही। होश आया, तो वह पुनः गणितीय अन्वेषण में डूब गई।

अब काम-धंधे के बारे में सोचना उसके लिए आवश्यक हो गया था। रूस के किसी विश्वविद्यालय में पद मिलने की कोई उम्मीद नहीं थी। इसी बीच वायरस्ट्रास के गणितज्ञ शिष्य मित्तागं-लेफ्फलेर ने सोफिया को स्टाकहोम विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका का पद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। नवंबर 1883 में सोफिया स्टाकहोम पहुंची। वहां उसका बड़ा स्वागत हुआ। एक समाचार पत्र ने लिखा : "आज हम अपने नगर में किसी मनचले-मूर्ख राजकुमार का नहीं, बल्कि विज्ञान की राजकुमारी मैडम कोवालेवस्काया का स्वागत कर रहे हैं। पूरे स्वीडेन में वह पहली महिला प्राध्यापिका होगी।"

आरंभ में सोफिया को एक अवैतनिक प्राध्यापिका के रूप में पढ़ाना पड़ा। मगर बाद में स्थायी प्राध्यापिक के रूप में उसकी नियुक्ति हुई। उसी दौरान उसने बोर्दी पुरस्कार के लिए प्रबंध तैयार किया था। वह स्वीडेन से प्रकाशित होने वाली गणित की प्रसिद्ध शोध-पत्रिका **आक्टा मैथेमैटिका** की एक संपादक भी नियुक्त हुई।

सोफिया एक अत्यंत साहसी महिला थी। वह अपने नाशवादी (निहिलिस्ट) विचारों के लिए प्रसिद्ध थी। उसकी साहित्यिक प्रतिभा भी उच्च कोटि की थी। उसने बचपन की अपनी स्मृतियों को एक पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

स्वदेश में कोई पद न मिलने के कारण सोफिया को स्टाकहोम में ही रहना पड़ा। वहीं पर न्यूमोनिया की शिकार होने के बाद 10 फरवरी, 1891 को, केवल 41 साल की आयु में, सोफिया कोवालेवस्काया का देहांत हुआ। उस समय वह अपनी सृजन-शक्ति के शिखर पर थी।

एम्मी नोएथेर

गॉटिंगेन महिलाओं के मामले में काफी उदार विश्वविद्यालय था। महान गौस गॉटिंगेन से सोफी जेरमी को डाक्टरेट की उपाधि दिलाना चाहते थे। सोफिया कोवालेवस्काया को गॉटिंगेन में दाखिला नहीं मिला था। मगर गॉटिंगेन पहला जर्मन विश्वविद्यालय था जिसने एक महिला—सोफिया कोवालेवस्काया—को डाक्टरेड की उपाधि दी थी।

मगर यही विश्वविद्यालय, बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भी, डाक्टरेट प्राप्त एक श्रेष्ठ महिला गणितज्ञ को, डेविड हिल्बर्ट और फेलिक्स क्लाइन—जैसे गणितज्ञों की जबर्दस्त सिफारिश के बावजूद, आरंभ में प्रिवातदोजेंत-जैसा अवैतनिक पद भी दे नहीं पाया था। सीनेट के कुछ सदस्यों का कहना था : एक महिला प्रिवातदोजेंत कैसे हो सकती है? प्रिवातदोजेंत होकर एक दिन वह प्रोफेसर बनेगी और फिर सीनेट की सदस्य। क्या एक महिला को सीनेट में आने दिया जा सकता है?"

हिल्बर्ट ने करारा उत्तर दिया : "किसी उम्मेदवार का लिंग उसके प्रिवातदोजेंत बनने में बाधक नहीं हो सकता। सीनेट कोई स्नानघर नहीं है।"

हिल्बर्ट द्वारा लगातार तीन साल तक प्रयत्न करते रहने पर ही अंत में, 1919 में, उस महिला को गॉटिंगेन में प्रिवातदोजेंत का पद मिला। बाद में उसे प्राध्यापक का भी पद मिला। आज उस महिला को आधुनिक बीजगणित की एक जन्मदाता के रूप में स्मरण किया जाता है।

उस महिला गणितज्ञ का नाम है—**एम्मी नोएथेर।**

एम्मी का जन्म एरलांगेन (पश्चिम जर्मनी) में 23 मार्च, 1882 को हुआ था। उसके पिता मैक्स नोएथेर (1844-1921) एरलांगेन विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे। इसी विश्वविद्यालय में फेलिक्स क्लाइन ने सभी ज्यामितियों के एकीकरण के लिए एक योजना (एरलांगेन प्रोग्राम) प्रस्तुत की थी (1872)। एम्मी के पिता ने एक बीजगणितज्ञ के रूप में ख्याति अर्जित की थी। उस समय बीज

गणितज्ञ पॉल गोर्डोन (1837-1912) भी उसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे और नोएथेर परिवार के घनिष्ट मित्र थे। एम्मी ने उसी विश्वविद्यालय में अध्ययन किया और वह भी बीज गणितज्ञ बनी। गोर्डोन की देखरेख में खोजकार्य करके उसने 1907 में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। गोर्डोन ने अवकाश ग्रहण किया, तो उनका स्थान गणितज्ञ अर्न्स्ट फिशर ने ग्रहण किया। वे भी बीजगणितज्ञ थे और **निश्चरों** (इन्वेरियंट्स) के सिद्धांत में उनकी विशेष दिलचस्पी थी। एम्मी की भी इस विषय में दिलचस्पी बढ़ी। उसके कई शोध-निबंध प्रकाशित हुए। पिता अस्वस्थ रहते तो वह विश्वविद्यालय में उनकी कक्षाएं भी लेती थीं। एम्मी के भाई ने भी गॉटिंगेन में गणित की पढ़ाई की थी।

पिता ने अवकाश ग्रहण किया, मां की मृत्यु हो गई और भाई सेना में भर्ती हो गया, तो प्रथम महायुद्ध के दौरान, 1916 में एम्मी गॉटिंगेन चली आई। हिल्बर्ट के खूब प्रयास करने के बाद ही 1919 में एम्मी को प्रिवातदोजेंत का पद मिला। एम्मी की कुछ आय हो, इसलिए हिल्बर्ट अपनी कुछ कक्षाएं उसे सौंप देते थे। वह 1922 में विश्वविद्यालय में विशिष्ट प्राध्यापक नियुक्त हुई। यह अवैतनिक पद था, इसलिए विश्वविद्यालय ने एक बीजगणितज्ञ के नाते उसके गुजारे के लिए अलग से नियमित कुछ वेतन की व्यवस्था कर दी थी। एम्मी नोएथेर 1933 तक इसी पद पर काम करती रही।

एम्मी एक प्रभावशाली अध्यापिका नहीं थी। नाक-नक्शे में वह पुरुष जैसी लगती थी। उसके विद्यार्थियों ने उसे 'डेर नोएथेर' का नाम दे रखा था। (जर्मन में पुल्लिंग संज्ञाओं के पहले डेर शब्द लगता है)। मगर एम्मी ने एक बहुत ही कोमल दिल और एक प्रखर दिमाग पाया था। उसे प्रायः विदेशी विद्यार्थियों को ही पढ़ाना पड़ता था। हालैंड के गणितज्ञ वान डेर वाएर्डेन और सोवियत गणितज्ञ पॉल अलेक्सांद्रोफ गॉटिंगेन में एम्मी नोएथेर के विद्यार्थी थे।

हिटलर के शासन में आने के बाद अन्य अनेक यहूदियों की तरह एम्मी नोएथेर को भी अपना पद त्यागना पड़ा। जर्मनी छोड़कर उसने पेन्सिलवेनिया के ब्राइन मात्र कालेज में प्राध्यापिका का पद स्वीकार कर लिया। वह प्रिंसटन की 'इंस्टीट्यूट फार एडवांस्ड स्टडी' की भी सदस्या बनी। आगे के करीब दो साल तक एम्मी नोएथेर ने बीज-गणित के क्षेत्र में अत्यंत महत्व का कार्य किया। "सब्स्ट्रैक्ट रिंग्स" और "आइडियल थ्योरी" से संबंधित उसका गवेषणा-कार्य आधुनिक बीजगणित के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण साबित हुआ है।

यह लेखमाला व्यापक संदर्भों, विस्तृत टिप्पणियों, उपयोगी परिशिष्टों और बेहतर चित्रों—आकृतियों के साथ जल्दी ही पुस्तक रूप में प्रकाशित होगी।

अप्रैल 1935 में एम्मी नोएथेर के नासूर का आपरेशन हुआ। पहले लगा कि उसे स्वास्थ्यलाभ हो रहा है; मगर अचानक कुछ जटिलताएं पैदा हो गईं, और 26 अप्रैल, 1935 को एम्मी नोएथेर का देहांत हुआ। उसकी मृत्यु के बाद आइंस्टाइन सहित अनेक वैज्ञानिकों ने उसे श्रद्धांजलि अर्पित कीं। एम्मी के अनेक वर्षों के सहकर्मी **हरमान वाइल** ने कहा : "वह एक महान गणितज्ञ थी। मैं समझता हूं, वह अब तक की दुनिया की सबसे बड़ी महिला गणितज्ञ थी। वह एक श्रेष्ठ महिला थी।"

(लेखमाला समाप्त)

[श्री गुणाकर मुले 'अमरावती' सी-210, पांडव नगर, दिल्ली -110092]

यंत्र सेवक

(शेषांश पृष्ठ 27 का)

"मैं हूं! रामा!" रामा की मराठी भाषा अब तक भी अशुद्ध थी। पिछला दरवाजा खोलते हुये अमर ने सोचा मालिक ने तो आगे वाले दरवाजे को ही खोलने को मना किया था, "यह दरवाजा मत खोलना।" मगर पिछले दरवाजे के बारे में तो उसने कुछ भी नहीं कहा था। दरवाजा खुलते ही रामा झटके से अंदर आ गया और बोला, "तू क्या समझता है, खुद को, खोपड़ी निकाल दूंगा तेरी। मेरे सिवा इस घर में दूसरा कोई काम नहीं करेगा, अगर यहां से गया नहीं तो तेरे दांत तोड़ डालूंगा।" यह सुनकर अमर अचरज में पड़ गया। यदि यह आदमी मुझे मारेगा तो उसी के हाथ में चोट लगेगी, यह तो बहुत बुरा हो जायेगा। रामा आदमी है। उसको दुःख न होने देना मेरा फर्ज है। ऐसा सोचते हुये अमर ने रामा को समझाने की कोशिश की। लेकिन रामा तो आपे से बाहर था। उसने अमर पर हाथ उठाया। ये क्या उसके हाथ में चोट लगी। रामा वहां से दर्द से बिलबिलाते हुये बाहर निकल भागा।

शाम को जब जयंत और रागिनी वापस लौट रहे थे तो उन्हें रामा ने आवाज देकर रोक लिया, "साहब! घर में मत जाना वहां एक भूत है। मैंने उसको मारा तो मुझे ही चोट लग गयी।" यह सुनकर जयंत हंस कर बोला, "रामा, चलो मेरे साथ! मैं उस भूत का राज खोलता हूं।" तीनों घर लौटे। रामा और अमर की पहचान करा देने के बाद जयंत ने कहा "अमर यंत्रमानव है भूत नहीं।" यह सुनते ही रामा बोला;

"पीठ पर मारो, साहब पेट पर मत मारो। सब काम यह यंत्र करेगा तो मैं भूखा मर जाऊंगा।" ऐसा कह कर रामा चला गया। इसी बीच रागिनी चाय बना लाई। चाय पीकर जयंत ने आवाज लगाई, "अमर, यह बर्तन ले जाकर इन्हें साफ कर दो?"

"सौरी सर। मैं ऐसा नहीं कर सकता। यदि मैंने यह काम किया तो रामा भूखा मर जायेगा, और! यह तो पहले नियम के खिलाफ होगा।" यह सुनकर जयंत और रागिनी अपना माथा पीटते हुये सोफे पर बैठ गये। लेकिन अपने मालिक को अचानक क्या हुआ यह बात अमर के दिमाग के बाहर थी।

[श्री निरंजन घाटे 734, सदाशिव पथ, पुणे- 411 030]

चित्रकथा

(शेषांश पृष्ठ 25 का)

क्रिस्टलों को चार भागों में रखा जा सकता है। ये भाग उनकी आधारी इकाई के अनुसार किये गये हैं। 'आण्विक क्रिस्टल' की आधारी इकाई अणु होती है। ये नरम तथा कुचालक होते हैं। हाइड्रोजन, कार्बनडाई आक्साइड आदि के क्रिस्टल इसके उदाहरण हैं। जिन क्रिस्टलों की आधारी इकाई परमाणु होती है वे 'सहसंयोजक क्रिस्टल' कहलाते हैं। ये काफी सख्त होते हैं तथा इनका गलनांक काफी उच्च होता है। हीरे, क्वार्ट्ज आदि के क्रिस्टल इसके उदाहरण हैं। 'आयनी क्रिस्टलों' में आयन (धनात्मक अथवा ऋणात्मक) आधारी इकाई होती है। ये पर्याप्त सख्त, भंगुर और कुचालक होते हैं। नमक, शोरे आदि के क्रिस्टल इसके उदाहरण हैं। धातुओं के आधारी इकाई वाले क्रिस्टल 'धात्विक क्रिस्टल' कहलाते हैं। इनमें कुछ नरम होते हैं तथा कुछ सख्त। ये सुचालक होते हैं। तांबे, लोहे चांदी आदि के क्रिस्टल इसके उदाहरण हैं।

विज्ञान भी नये-नये क्रिस्टल बनाने में पीछे नहीं रहा है। दो या अधिक धातुओं को मिलाकर मिश्र धातुओं के कई क्रिस्टल बनाये गये हैं।

और अभी हाल ही में तो विज्ञान ने एक अद्भुत चमत्कार कर दिखाया। यह माना जाता था कि ठोस पदार्थ या तो पूर्ण प्रतिसाम्यता दर्शाते हुये क्रिस्टलीय रूप में होते हैं या क्रमबद्धता का पालन न करते हुये कांच, प्लास्टिक आदि के रूप में। कुछ वर्ष पूर्व तक इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि इन दोनों के बीच में भी कोई अन्य पदार्थ हो सकता है अर्थात् जो न तो पूर्णतया प्रतिसाम्यता दर्शाता हो, न पूर्णतया अव्यवस्था। इनका स्वरूप अर्द्धआवर्ती होता है। पदार्थ के ऐसे विषम रूप को अमेरिका के पाल स्टीनहार्ट तथा डॉव लेवाइन ने एक नया नाम दिया 1984 में– 'क्वासी क्रिस्टल या अर्द्ध-क्रिस्टल'। इन अर्द्ध-क्रिस्टलों के बनने के विषय में कई धारणायें हैं। कुछ इनके निर्माण को महज एक संयोग बताते हैं तथा कुछ इनकी संरचना को नियम-बद्ध बताते हैं। इनकी इस संरचना को दर्शाने के लिए कई माडल भी बनाये गये हैं। प्रस्तुत चित्र में भी एक ऐसा ही माडल है जो चांदी, कोबाल्ट तथा तांबे के अणुओं को दर्शाते हुये बनाया गया है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ये अर्द्ध-क्रिस्टलीय पदार्थ विशेष एवं नवीन भौतिक गुण दर्शायेंगे।

[डा. बी.एस. अग्रवाल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]

कृभको
सफ़लता के प्रति वचनबद्ध

कृभको, सफ़लता की कहानी के साथ-साथ लक्ष्यपूर्ण संगठन से प्राप्त परिणामों एवं सर्वोत्तम उदाहरणों का, नाम है।

कृभको, उन हजारों सहकारी संस्थाओं के समर्पित प्रयत्नों का नाम है, जो देश के कोने-कोने में स्थित हैं। ये संस्थाएं देश की सबसे बड़ी सहकारी संस्था का सदस्य होने का गौरव अनुभव करती हैं।

कृभको उत्कृष्ट यूरिया उत्पादन के साथ-साथ और भी बहुत कुछ करता है। हज़ीरा कारखाने की क्षमता उपयोग के हिसाब से विश्व रिकार्ड कायम कर चुकी है, जो इसकी प्रमुख सफ़लता है। ऐसी बहुत सारी उपलब्धियाँ है जो कृभको की सफ़लता का इतिहास निर्मित करती हैं।

कृभको के कार्यक्रमों का निर्धारण किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा को सुधारने के उद्देश्य से किया जाता है। जैसे कि ब्लाक प्रदर्शन, मिनी-किट बाँटना, फसल गोष्ठियाँ, सामाजिक- वृक्षारोपण, बंजर-भूमि विकास, ग्राम सेवाओं का विस्तार और सहकारी ढांचे को सुदृढ़ करना।

साथ ही ग्रामीण जन-जीवन से सम्बद्ध स्वास्थ्य, सफाई, कल्याण, खेल-कूद तथा सांस्कृतिक पहलुओं पर उचित ध्यान दिया जाता है।

भविष्य को भी अनदेखा नहीं किया जाता है। वार्षिक प्रबन्ध-सम्मेलनों, कार्यशालाओं और बैठकों की सहायता से संस्था की भावी योजनाओं को मूर्त रूप दिया जाता है और सुधार किया जाता है। उत्पादन बढाने के लिए समिति निरंतर प्रयासरत रहती है और सहकारी माध्यम से किसानों की सहायता के लिए डी. ए. पी. और फॉस्फेटिक उर्वरकों की नई परियोजनाएँ आरम्भ करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहती है। वर्तमान कार्यक्रमों और नीतियों में निरंतर सुधार किया जाता है, ताकि हमेशा की तरह कृभको सदा आगे बढता रहे।

अधिक से अधिक सहकारी संस्थाओं के सहयोग से कृभको विकास पथ पर निरंतर अग्रसर हो रहा है और इसके साथ-साथ भारतीय किसान फल-फूल रहे हैं।
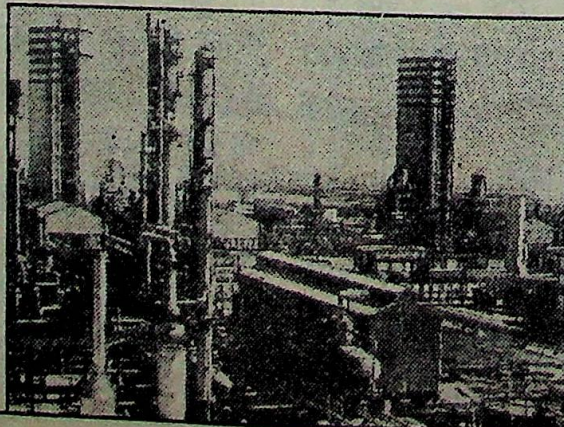
कृषक भारती कोआपरेटिव लिमिटेड
रेड रोज हाउस, 49-50 नेहरु प्लेस,
नई दिल्ली- 110 019.

किसानों का पथ प्रदर्शक

विज्ञान प्रगति
कहां से, कैसे
आते हैं ये बादल
त्रिशंकु दूरबीन

एलनीनो दक्षिणी दोलन तथा मानसूनी वर्षा की भविष्यवाणी

पिछले कई दशकों से भारत में भी मानसूनी वर्षा की भविष्यवाणी बहुत पहले ही की जाती रही है। इसकी शुरूआत सर वाकर गिलबर्ट ने उस समय की थी जब वे भारत के मौसम विज्ञान विभाग के प्रमुख थे। यह भविष्यवाणी भविष्य वक्ताओं को दिये गये मानसूनी वर्षा तथा असंख्य पूर्ववर्ती लक्षणों के बीच सांख्यिकी साहचर्य के आधार पर की जाती है। ये भविष्यवाणियां सम्बद्ध मानसूनी वर्षा की डिग्री बदलने के साथ-साथ बदलती रहती हैं। पिछले कुछ वर्षों से नये पूर्वसूचक भी सम्मिलित किये गये हैं। हाल ही में 16 पूर्वसूचक प्रयोग में लाये गये जिसमें दो हैं : (1) वर्तमान वर्ष का दक्षिणी दोलन सूचकांक तथा (2) पिछले वर्ष का दक्षिणी दोलन सूचकांक।

दुर्भाग्यवश इतने पूर्वसूचक उपयोग करने के बाद भी मौसम की भविष्यवाणी की गुणता में आवश्यक सुधार नहीं हुआ है। अमेरिका के मैसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी के प्रो. लारेंज जो कि मौसम संबंधी आंकड़ों की भविष्यवाणी के विशेषज्ञ हैं, ने एक बार मत प्रकट किया था कि "जब नमूने का आधार सीमित होता है तो कई पूर्वसूचकों का प्रयोग कठिनाइयां उत्पन्न कर सकता है। कठिनाई इस बात की है कि पूर्वसूचकों की संख्या जितनी अधिक होगी उससे इस बात की संभावना उतनी ही अधिक होगी कि इन विचित्र भविष्यवक्ताओं की भविष्यवाणी में कहीं न कहीं साम्यता अवश्य देखने को मिलेगी। जैसे कि वर्तमान वर्ष का दक्षिणी दोलन सूचकांक गत वर्ष के लिये असंगत रहेगा। इसलिये दोनों ही भविष्यवाणियां समर्थन के योग्य नहीं हो सकती।

प्रत्येक भविष्यवाणी की दूसरे से आत्मनिर्भरता की जांच करने के लिये परीक्षणों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक पूर्वसूचना का आपेक्षिक महत्व जानने के लिये इसकी जांच करना बहुत आवश्यक है। यह सामान्यतः प्रत्येक भविष्यवक्ता द्वारा घोषित मौसम की कुल वर्षा में विभिन्नता पर निर्भर करती है। अतः 16 पूर्वसूचकों का उपयोग करने के बजाय यदि केवल कुछ ही प्रयोग में लाये जायें तो अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। इस संबंध में अभी तक यह ज्ञात नहीं है कि दक्षिणी दोलन सूचकांक द्वारा कितने परिवर्तनों की व्याख्या की गई है।

रेखीय प्रत्यावर्तन समीकरणों के साथ इसकी कठिनाई यह है कि केवल इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है कि मानसून इसलिये अच्छा रहेगा क्योंकि अधिकतर भविष्यवक्ताओं ने इसके पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है। उदाहरण के तौर पर 1966 में 14 में से 8 पूर्वसूचक अच्छे मानसून के पक्ष में थे, इसके बावजूद भी मानसून कमजोर रहा। इस प्रकार अन्य सैकड़ों उदाहरण हैं।

अंततः समय से पूर्व भविष्यवाणी करने के लिये पूर्वसूचनाओं का अच्छी तरह विश्लेषण करना आवश्यक है।

आजकल सामान्य वर्षों में से ± 19% विचलन को नगण्य मान कर इसे सामान्य मानसून समझा जाता है। सांख्यिकीय विश्लेषण के लिये इतना अंतर पर्याप्त होता है।

इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये लेखक का विचार है कि हम उस स्थिति में नहीं पहुंचे हैं कि एलनीनो दक्षिणी दोलन के समाघातों का सही अनुमान लगा कर बहुत पहले ही मानसून वर्षा की मात्रा की घोषणा कर सकें। इसका यह तत्पर्य नहीं कि हम इस ओर प्रयास करना ही छोड़ दें। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र का सतही तापमान न केवल एलनीनो दक्षिणी दोलन के लिये बल्कि मानसून की तेजी या गतिकी के लिये भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हमें इस बात की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है कि किस प्रकार समुद्र का सतही तापमान थर्मोक्लाइन इन्टरफेस पर पानी के उतार-चढ़ाव से कैसे गड़बड़ा जाता है और वेग के क्षेत्रीय तथा भूमध्यरेखीय घटकों द्वारा कैसे अभिवाहित होता है।

विश्व में इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये अब अमेरिका में वाशिंगटन के क्लाइमेट एनेलेसिस सेंटर में एन्सो पर प्रत्येक वर्ष सलाहात्मक बुलेटिन तैयार किये जाते हैं। जनवरी 1990 के बुलेटिन के अनुसार प्रशांत महासागर में परिस्थितियां पुनः एन्सो घटना की ओर अग्रसर हो रही थीं। बुलेटिन में कही गयी मुख्य बातें इस प्रकार हैं (1) अन्तिम गर्म प्रावस्था लगभग चार वर्ष पूर्व हुई थी, (2) भूमध्यरेखीय क्षेत्र में बहुत अधिक गर्म पानी एकत्र हो गया है तथा (3) भूमध्यरेखीय पूर्वी हवायें कमजोर पड़ गई हैं तथा केन्द्रीय प्रशांत महासागर में संवहनी सक्रियता बढ़ गई है। इन परिस्थितियों में 1990 में अच्छी मानसूनी वर्षा होने की संभावना नहीं है। इसलिये स्थिति की ध्यानपूर्वक जांच करने की आवश्यकता है।

[श्री पी.के. दास]

रैपिडैक्स® इंगलिश स्पीकिंग कोर्स
एक रिकार्ड
3,00,00,000 तीन करोड़ से अधिक पाठकों द्वारा अपनायी गयी भारत की बारह भाषाओं में प्रकाशित सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक
उर्दू
पंजाबी
गुजराती
हिन्दी
बंगला
असमी
मराठी
उड़िया
तेलुगु
कन्नड़
तामिल
मलयालम
सभी कोर्सों में बड़े साइज़ के 400 से अधिक पृष्ठ
मूल्य: 36/- प्रत्येक डाकखर्च: 5/-
'रैपिडैक्स' कोर्स
भी प्रमुख बुकसैलरों, रेलवे
टेशन एवं बस अड्डों पर स्थित
क स्टॉलों पर मिलते हैं।
.पी.पी. द्वारा मंगाने के लिए
लिखें:-
पुस्तक महल
री बावली, दिल्ली-110006.
10-B, नेताजी सुभाष मार्ग,
रियागंज, नई दिल्ली-110002.
22/2, मिशन रोड, बंगलौर-560027
श्रेष्ठता की कसौटी
देशभर के प्रसिद्ध अखबारों की सम्मितियों में से कुछ के अंश:-
•....वार्तालाप शैली में लिखी हुई यह पुस्तक अंग्रेजी बोलना आसानी से सिखा सकती है... अंग्रेज़ी का सारा आवश्यक ग्रामर भी इस पुस्तक को पढ़कर स्वत: समझ में आ जाता है। —नवभारत टाइम्स, दिल्ली
•....बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक की तलाश थी, जिसको पढ़ते-पढ़ते ही अंग्रेजी बोलचाल का अच्छा-खासा ज्ञान हो जाये और इस कसौटी पर रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स खरी उतरी। —बम्बई समाचार, बम्बई
•....इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें चुने हुए, दैनिक उपयोग में आने वाले शब्दों की उपयोगी सूची अर्थ सहित दी गई है।... प्रत्येक पाठ के अन्त में भाषा व व्याकरण सम्बन्धी कुछ आधारभूत बातें अलग से समझाने का प्रयास भी निस्संदेह प्रशंसनीय है। —जुगान्तर, कलकत्ता
•....इसमें अंग्रेजी सिखाने की अभ्यास सामग्री इतने बढ़िया ढंग से दी गई है कि कान्वेंट स्कूलों में भी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। —दिनामानी, मद्रास
•....अंग्रेजी भाषा को शुद्ध और प्रभावपूर्ण ढंग से जितना लिखना जरूरी है, उतने ही प्रभावपूर्ण ढंग से उसके शब्दों का सही उच्चारण तथा सही बोलना भी जरूरी है और ये सब गुण पुस्तक के क्रमवार अभ्यासों में मौजूद हैं। —गुजरात मित्र, सूरत
•....आकर्षक आवरण एवं सुन्दर छपाई से सुसज्जित, यह पुस्तक अल्प समय में ही अंग्रेजी सिखाने में सक्षम होने के कारण सभी स्त्री-पुरुषों, विशेषकर गृहिणियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी। —डेक्कन क्रोनिकल
•....वास्तव में यह एक बहुत ही उपयोगी कोर्स है। इसमें तमिल जानने वाले बगैर किसी परेशानी के ग्रेजुएट जैसी अंग्रेजी बोल सकते हैं। —सण्डे स्टैण्डर्ड, मद्रास
•....रैपिडैक्स कोर्स ही एकमात्र ऐसा विस्तृत कोर्स है, जो हर किसी को 60 दिन में अंग्रेजी बोलना व लिखना बिना किसी शिक्षक या स्कूल में गये, सिखाने में सक्षम है। —नागपुर टाइम्स, नागपुर
•....अंग्रेजी सीखने के लिए इसका क्रमवार अभ्यास अपनी एक विशेषता है। —गुजरात समाचार, अहमदाबाद

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान
परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

विज्ञान प्रगति

वर्ष : 39, जुलाई :1990, आषाढ़ :1912, अंक :7, पूर्णांक

पृष्ठ 10

पृष्ठ 14.

पृष्ठ 18.

पृष्ठ 24

विषय सूची

पृष्ठ 27

पृष्ठ 28

पृष्ठ 30

पृष्ठ 34

अनोखा परिवर्तन

'विज्ञान प्रगति' का मई 1990 का अंक हमें प्राप्त हुआ। इस अंक का मुख पृष्ठ इतना आर्कषक एवं लुभावना था कि मन को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह विज्ञान प्रगति ही है। नये वर्ष के शुभारम्भ से इस पत्रिका में हर मास एक नया तथा अनोखा परिवर्तन देखने को मिलता है। इस अंक में प्रकाशित सभी लेख खास कर कम्प्यूटर बगिया का कमाल, पक्षियों में शिशु पालन, गल्प कथा यंत्र सेवक तथा डा. रमेश पोत्दार द्वारा लिखित लेख ' खसरा ' बहुत ही रोचक तथा ज्ञानवर्धक रहे। लेकिन कणिका की अनुपस्थिति कुछ अखर सी गई।

[दीप नरायन गुप्ता एवं प्रेम नरायन गुप्ता, ग्राम व पोस्ट-चारू, बभनान, गोण्डा, उ.प्र.]

बेमिसाल पत्रिका

'विज्ञान प्रगति' अपने आप में एक बेमिसाल पत्रिका है। इसका मूल्य चाहे कितना भी हो, पढ़ने वाले पढ़ते ही रहेंगे। हर मास इस पत्रिका का बेसब्री से इंतजार रहता है। मैं इस पत्रिका का नियमित पाठक हूं। मई 1990 अंक मिला। आइवर यूशिएल द्वारा लिखित "जादू के रंग गणित के संग" लेख पढ़कर बड़ी खुशी हुई। मैंने कई दोस्तों को उनकी उम्र बता दी। कृपया हर माह ऐसा लेख छापें। पत्रिका में "हम सुझाये आप बनायें" न पाकर काफी दु:ख हुआ।

[राकेश कुमार जायसवाल, सरमुज्वा, रौतहट, नेपाल]

सुझाव व समालोचना

मई अंक पढ़ा। गल्प कथा ने पुन: प्रभावित किया। खसरे की जानकारी संग्रहणीय बन गयी। अन्य लेख भी आकर्षक एवं ज्ञानवर्धक बन पड़े हैं। मार्च अंक की तरह इसमें भी "हम सुझाएं आप बनायें" स्तम्भ न देखकर काफी दु:ख हुआ। आप कृपया प्रशंसा पत्रों के स्थान पर सिर्फ शुद्ध प्रशंसकों के नाम प्रकाशित करें एवं समालोचकों के विचार संक्षेप में प्रकाशित करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न, विज्ञान कार्टून, वैज्ञानिकों के चित्र भी प्रकाशित करें। सुझावों और समालोचनाओं पर यदि आप उचित ध्यान दें तो पत्रिका का विकास द्रुत गति से होगा।

आशा है इस कड़वे पत्र को स्वीकार करने की कृपा करेंगे जिससे मैं आगे आपको सुझाव और आलोचनायें भेज सकूं।

[अजित जैन "जलज", ककरवाहा, टीकमगढ़, म.प्र.]

नई सामग्री मनमोहक छपाई

सन् 1990 में अंकों में आश्चर्य की बात यह लगी कि अब पत्रिका माह के पहले ही छप कर बाजार में छा जाती है। इस बदलाव या प्रगति के लिए संपादक मंडल व अन्य कर्मचारी तथा सहयोगीगणों को बहुत-बहुत धन्यवाद। दूसरी बात यह है कि अब पत्रिका में विशेष नयी-नयी सामग्रियां, मनमोहक छपाई के साथ हाथ लगती हैं। मुझे आशा है आगामी अंकों में भी इसी तरह अन्य विषयों को स्थान मिलता रहेगा ताकि विज्ञान हर व्यक्तियों के हाथों में छा जाए।

[भीम नाथ गोसाई, पो-श्समार, गिरिड़ीह- 829 115 बिहार]

एक सुझाव

आपकी पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' कल पहली बार पढ़ी। न जाने क्यों ख्याल आया कि आज विज्ञान प्रगति खरीदी जाये। घर जाकर पुस्तक पढ़ी तो पाया कि मुझे वो पत्रिका मिल गई है, जिसकी मुझें तलाश थी। पर्यावरण, जैवप्रौद्योगिकी, कथा-कहानी, रोगों की जानकारी व उपचार, गणितज्ञों की जानकारी सभी तो था इसमें। पूरी पत्रिका एक ही सांस में पढ़ डाली। मई 1990 अंक में पृथ्वी की कहानी, अत्यन्त महत्वपूर्ण लगी। इसके अलावा कम्प्यूटर बगिया का कमाल, शरीर का जासूस, जैवप्रौद्योगिकी, गल्पकथा आदि भी सराहनीय थे। गणित मनोरंजन में मनोरंजन के साथ-साथ कुछ नये गणितीय तथ्य भी मिले। मैं कोशिश करूंगा कि इसके पुराने अंक भी कहीं से लेकर पढ़ूंगा। मैं इस पत्रिका के लिये एक सुझाव भी देना चाहता हूं। यदि आप पत्रिका में एक प्रतियोगिता का आयोजन करायें जिससे पाठकों में इसकी रुचि बढ़ेगी तथा उन्हें यह बोध भी होगा कि हमने विज्ञान में कितनी प्रगति कर ली है।

[राकेश गुरुरानी, गुरुरानी निवास, तिलढुकरी, पिथौरागढ़ (उ.प्र.) पिन- 262 501]

धारावाहिक 'श्रृंखला' को विदा

मई 1990 का अंक मेरे हाथ में है, इतना अच्छा लगा कि लेखनी अनायास ही विचार प्रकट करने के लिए उठ गई। ' कृत्रिम पुष्प ' एवं पृथ्वी की उत्पत्ति से संबंधित लेख सराहनीय थे और विशेषकर खसरे के बारे में जानकारी रोचक थी।

गुणाकर मुले जी की धारावाहिक श्रृंखला समाप्त हुई, दु:ख हुआ। उनको एवं विज्ञान प्रगति को देखकर लगता है कि हिंदी में भी विज्ञान संबंधी अति उच्चस्तरीय लेखन संभव है। गुणाकर जी और विज्ञान प्रगति को बधाई।

[रवि बंसल, 14, हाली हॉस्टल, एम.एम. हा. ए.एम.यू., अलीगढ़]

सतही जानकारी

मई अंक का मुख पृष्ठ काफी आकर्षक लगा। अपने क्षेत्र से संबंधित होने के कारण मैंने सबसे पहले "कम्प्यूटर बगिया का कमाल" पढ़ा। पढ़ कर विचार आया कि लेख अपने आप में पूर्ण नहीं था। लेखक ने लेख किसी छोटे से समाचार आदि को पढ़कर तैयार किया है। लेखक ने 'कृत्रिम फूलों' व '-' कम्प्यूटर नियंत्रित ' अलग-अलग तथ्यों को पानी व तेल की तरह मिलाने की कोशिश की है। क्योंकि अगर हम लेख को ध्यान से पढ़ें तो पायेंगे कि पूरा लेख का सार सिर्फ अंतिम चार पैराग्राफ में निहित है। बाकी लेख का लेखन या तो मूल केंद्रीय तथ्य से मेल ही नहीं खाता या फिर अलग-अलग तथ्यों को निराधार बन्धों में जोड़ने की कोशिश की गई है। कम्प्यूटर किस प्रकार से फूलों का रंग बदलेगा इस तरह की जानकारी सिर्फ ऐसा लिख देने से नहीं मिल जाती। मेरे विचार में ये लेख लिखा सतही जानकारी के आधार पर कल्पि

विज्ञान प्रगति

जुलाई 1990

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
श्रीमती दीक्षा बिष्ट

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलबीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्णा
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा

आवरण
नीरु शर्मा

टेलीफोन : 585359 और 586301
लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

"मौसम" शब्द दिन में एक बार तो हमारे मुंह से निकल ही जाता है कि आज का मौसम कैसा है? कई बार दो अनजानों के बीच परिचय भी मौसम से ही होता है। व्यक्तिगत पत्रों में भी हम अपने शहर के मौसम का हाल बताना कभी नहीं भूलते। कोई भयंकर महामारी या जुखाम जैसी बीमारी का दोषी भी मौसम परिवर्तन को माना जाता है।

गर्मी और सर्दी से बचाव तो आप किसी न किसी तरीके से कर ही सकते हैं लेकिन क्या करें बरसात के मौसम का—इसके मिजाज का तो पता ही नहीं चलता। ये निर्भर करता है—मानसून पर।

मानसून क्या है? और कहां से आता है? कैसे की जाती है मौसम की भविष्यवाणी। मानसून कमजोर और भयावह कैसे हो जाता है। कभी सूखा तो कभी भयावह बाढ़।

लेकिन आज हमारी यह स्थिति है कि हम मौसम संबंधी उपग्रहों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर लोगों को आने वाले खतरों से आगाह कर सकते हैं। ये उपग्रह हमें तूफान, बाढ़ आदि की पूर्व सूचना दे देते हैं जिससे जानमाल की हानि को रोका जा सकता है।

30 अगस्त 1983 को छोड़ा गया इन्सैट 1-बी हमें मौसम समुद्र जल संबंधी आंकड़ों के आधार पर तूफान, बाढ़ चक्रवात आदि की चेतावनी 12-14 घंटे पूर्व दे देता है।

लेकिन भारत आजकल पुनः संकट के दौर से गुजर रहा है क्योंकि इन्सैट-1-बी का कार्यकाल अगस्त 1990 में समाप्त होने जा रहा है और इसका विकल्प अभी तक विवादास्पद है।

लेकिन मौसम विज्ञान द्वारा बनाये गये 16 पूर्वसूचक भविष्य में कितने खरे उतरेंगे यह तो समय ही बतायेगा।

वायुमण्डल पर महासागरों का प्रभाव

पी.के. दास

हाल ही के वर्षों में विश्व के अनेक भागों में मौसम की असामान्य अनियमितताओं, विशेष रूप से 'एलनीनो' जैसी घटनाओं ने हमारा ध्यान महासागरों के मौसम पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर आकर्षित किया है। 1960 के उत्तरार्द्ध में अफ्रीका के साहेल क्षेत्र में पड़ा भयंकर सूखा तथा 1982 और 1987 में भारत में कमजोर मानसून ऐसी विपदाओं के मुख्य उदाहरण हैं। अनेक विशेषज्ञों ने विचार व्यक्त करते हुये बताया है कि इस शताब्दी में अन्य दशकों की अपेक्षा 1980-90 के दशक में मौसम की अधिकतम अनियमिततायें देखने को मिली हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? यह जानना अत्यावश्यक है।

पृथ्वी का लगभग दो तिहाई भाग विपुल जलराशि से घिरा हुआ है लेकिन प्राचीन काल में इसके बारे में कोई विशेष ज्ञान किसी को नहीं था। हाल के वर्षों में हुये तकनीकी सुधार के कारण समुद्र के आलौकिक रहस्यों और उसके मौसम पर प्रभाव का अध्ययन करना संभव हुआ है।

इस क्षेत्र में ध्वनि तरंग सुदूर संवेदन एक संभावना पूर्ण हथियार है। पानी में आसानी से अधिकाधिक ध्वनि तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के तौर पर पानी के नीचे किये गये डायनामाइट के विस्फोट की आवाज हजारों किमी. दूरी तक रिकार्ड की जा सकती है। विस्फोट के संकेत जितने समय में आते-जाते हैं उतने समय में समुद्र तल के विभिन्न गुणधर्मों का अनुमान लगाया जा सकता है। यही तकनीक समुद्री धाराओं के संरूपण की रूपरेखा अथवा भंवरों की अभिकल्पना तथा गंभीर ताप एवं लवणता की रूपरेखा बनाने में उपयोग की जा सकती है। इस तकनीक को महासागरीय ध्वनिक होमोग्राफी अथवा **ओसन एकाउस्टिक टोमोग्राफी** कहते हैं। इस तकनीकी की तुलना मानवीय खोपड़ी की एक्स-रे तकनीक से की जा सकती है।

आजकल विभिन्न प्रकार के प्रेक्षेणों के लिये मौसम उपग्रहों का बहुतायत में प्रयोग किया जाने लगा है। समुद्र तल की लहरों की ऊंचाई नापने के लिये अत्याधुनिक उपग्रहों में **स्कैटेरोमीटर** यंत्र लगाया जाने लगा है। इससे समुद्र पर चलने वाली हवाओं के आंकड़े ज्ञात हो जाते हैं।

सौर तथा पार्थिव विकिरण को मापने के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका ने हाल ही में **अर्थ-रेडियेशन बजट एक्सपेरीमेंट** (ई.आर.बी.ई.) प्रमोचित किया। इससे बादल किस प्रकार विकिरण बजट या उसके घटाव-बढ़ाव को माडुलित करते हैं, पता चलेगा।

निस्संदेह इन विकास कार्यों के फलस्वरूप आने वाले वर्षों में समुद्र और वातावरण की पारस्परिक क्रियाओं की अधिक महत्वपूर्ण जानकारी मिल सकेगी। आइये देखें कि समुद्र और वायुमण्डल की पारस्परिक क्रियायें किस प्रकार से वायुमण्डलीय गतिविधियों द्वारा प्रभावित होती हैं। हवा तथा पानी, दोनों की ही गतियां द्रव की गति के समान एक ही नियम से नापी जाती हैं, लेकिन इस समानता के बावजूद इनमें अनेक रोचक अंतर भी हैं।

पृथ्वी की सतह पर वायुमण्डल में हवा का कुल भार लगभग 10 मीटर गहरे पानी की उथली परत के बराबर होता यह पृथ्वी की संपूर्ण सतह पर फैला होता है। पानी का घनत्व, वायु के घनत्व से हजार गुना अधिक होता है। इसी प्रकार महासागरीय बेसिनों में पानी का भार, वायुमण्डल में उपस्थित वायु के भार से लगभग 300 गुना अधिक होता है।

वायुमण्डल की गति की विलक्षण तीव्रता लगभग 10 मीटर प्रति सेकण्ड होती है। तीव्र गति से जाते हुये जेट में अथवा घने वायुमण्डलीय जल भंवर में यह वेग 100 मीटर प्रति सेकण्ड तक बढ़ सकता है। दूसरी ओर समुद्री धाराओं का विशेष वेग 0.1 मीटर प्रति सेकण्ड होता है। इसका अधिकतम मान लगभग 1.0 मी. प्रति सेकण्ड तक होता है। इस प्रकार समुद्री प्रतिरूपों की अपेक्षा वायुमण्डल की गतियां 100 गुनी अधिक तेज होती हैं। वायु की तेज गति का तात्पर्य पानी के अधिक घनत्व के बावजूद भी वायुमंडल में 10-15 गुनी अधिक गतिज ऊर्जा होना है।

वायु तथा पानी की ऊष्मा धारिता में सुस्पष्ट अंतर होता है। वायु की विशिष्ट ऊष्मा पानी की विशिष्ट ऊष्मा की लगभग एक चौथाई होती है। इसी प्रकार पानी की ऊष्मा धारिता वायु के मान की अपेक्षा हजार गुना से भी अधिक होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सौर विकिरण का सागर पर प्रभाव बहुत धीमा होता है। भूमि व तटीय प्रदेशों के आसपास समुद्री हवायें अधिक होती हैं। विश्व की मानसूनी हवाओं का उद्‌भव वायु और पानी की ऊष्मा धारिता के अंतर के कारण ही होता है। इससे यह भी विदित होता है कि प्राप्य तापीय ऊर्जा से गतिज ऊर्जा का अनुपात समुद्र के लिये बहुत अधिक होता है। इसी कारण वायुमण्डल को समुद्र में लहरों को चलाने में काफी कठिनाई होती है।

क्या आपने कभी सोचा है कि तब वहां क्या स्थिति होती है जब हवा पानी के ऊपर बह रही हो। इस स्थिति में वायु द्वारा ऊर्जा का
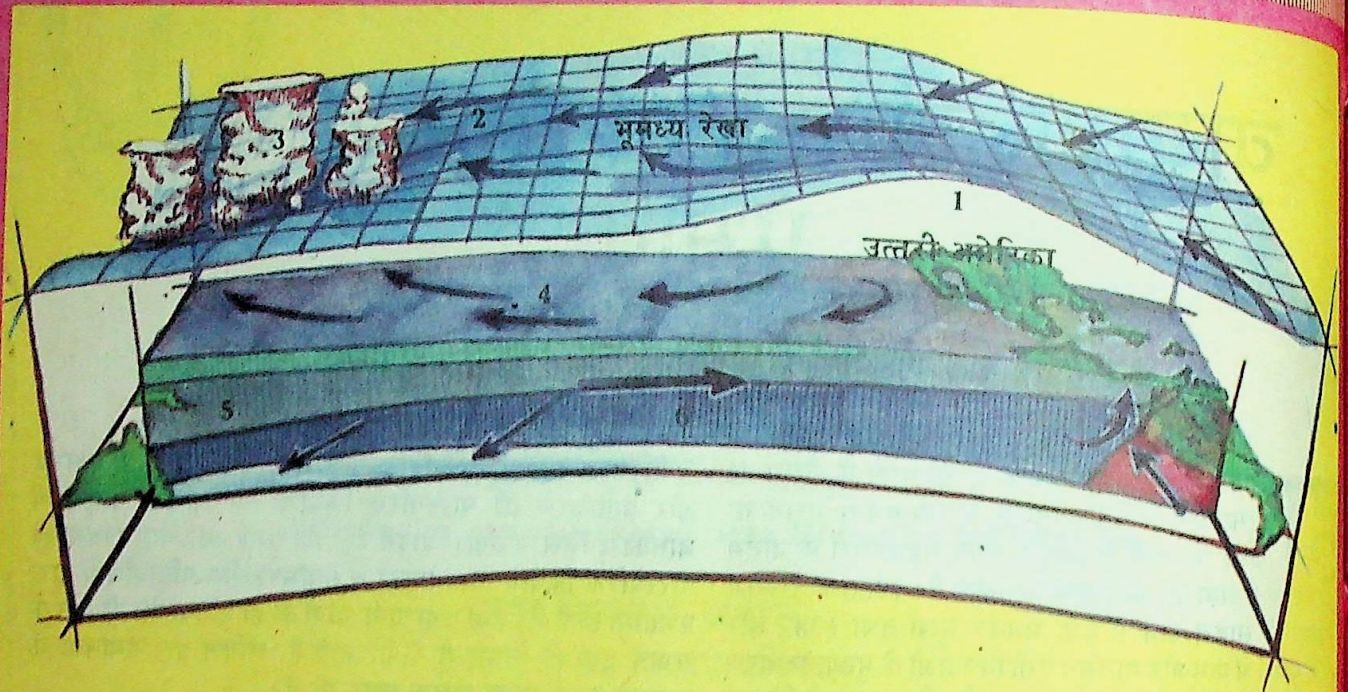
सामान्य मौसम (1) उच्च दाब प्रणाली दर्शाता है (2) पूर्वी प्रशान्त महासागर के ऊपर 'पहाड़ों से नीचे' व्यापारिक हवाएं चलने के लिये तत्पर (3) इण्डोनेशिया के ऊपर नम निम्न दाब प्रणाली की ओर तथा (4) पश्चिम की ओर बहने वाली समायोजित धारा को प्रेरित करती है (5) पश्चिमी प्रशान्त महासागर में गर्म पानी इकट्ठा होने लगता है (6) शीत उपसतह का पानी, एक अवधारा में वापिस आ जाता है (7) दक्षिणी अमेरिका में गर्म पानी की सतह उथली रहती है।

वस, वायु के वेग तथा पानी के परस्पर घर्षण से उत्पन्न बल के कारण होता है। हवा-पानी के तल पर पानी द्वारा अर्जित ऊर्जा, घर्षण बल तथा पानी के वेग के गुणनफल के समान होती है। परन्तु, वायु का वेग बहुत अधिक होता है इसलिये वायु द्वारा ऊर्जा के क्षय का छोटा सा अंश ही पानी को मिल जाता है। वास्तव में, वायुमण्डल से स्थानान्तरित ऊर्जा, लहरें, जो तीव्रता से चलती हैं, को उत्पन्न करने में पर्याप्त सक्षम होती है।

हवा के अत्यधिक दाब के कारण पानी विशेषकर समुद्र के ऊपरी 100 मीटर में एक स्थान से दूसरे स्थान को बहता है। इसे समुद्र की ऊपरी मिश्रित सतह या 'अपर मिक्सड लेयर' कहते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में वायु के प्रभाव के कारण प्रबल अस्थिरता होती है। इस मिश्रित सतह के पानी का ताप तथा लवणता लगभग समान होती है। इस मिश्रित परत के नीचे 'थर्मोक्लाइन' होता है जहां गहराई के साथ-साथ ताप व लवणता तीव्रता से बदलती रहती है। थर्मोक्लाइन मिश्रित परत के नीचे स्थित होने के कारण मिश्रित परत तथा गहरे समुद्र के मध्य अंतरापृष्ठ या इंटरफेस का कार्य करता है। चूंकि वायुमण्डल समुद्र तल के तापमान के प्रति बहुत संवेदनशील होता है इसलिये समुद्र के अन्य क्षेत्रों की तुलना में मिश्रित परत में होने वाले परिवर्तनों का वायुमण्डल पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

पृथ्वी के घूर्णन से उत्पन्न बल, गतिमान वायु अथवा पानी के वेग के समानुपाती होता है। यह पानी की गति की दिशा से समकोणत प्रभाव डालता है। उत्तरी गोलार्ध में गति के दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्ध में गति के बायीं ओर क्रियाशील होता है। इस विक्षेपक बल को कोरिऑलिस बल कहते हैं जो इसके खोजकर्ता वैज्ञानिक गुस्ताव कोरिऑलिस के नाम पर रखा गया है। यदि पृथ्वी के घूर्णन के कोणीय वेग को ओमेगा (Ω) तथा अक्षांश को फाई (ϕ) से प्रदर्शित किया जाये, तो उस स्थान का कोरिऑलिस बल $2\Omega Sin\phi X V$ होगा, यहां V वायु अथवा पानी के गतिशील अंश का वेग है। इस मात्रा को ($2\Omega Sin\phi$) कोरिऑलिस पैरामीटर कहते हैं और इसे f से प्रदर्शित किया जाता है।

कोरिऑलिस पैरामीटर (f) एक प्रकार की आवृत्ति को दर्शाता है जिसकी इकाई (सेकण्ड)$^{-1}$ होती है। इसका परिणाम लगभग एक (दिन)$^{-1}$ होता है। इसी कारण इसे कोरिऑलिस फ्रीक्वेन्सी या आवृत्ति कहते हैं। थोड़े समय के लिये क्योंकि समय (T) का मान $1/f$ से बहुत कम होता है तो पृथ्वी के घूर्णन को हवा अथवा पानी के गतिमान आयतन पर कार्य करने का ज्यादा समय नहीं मिल पाता है। इसलिये पानी का बहाव उसी दिशा में होता है जिधर वायु का दाब पड़ता है। लेकिन यदि गति का विश्लेषण काल दिनों या महीनों तक हो तो समय (T) का मान $1/f$ से बहुत अधिक होता है। परिणामस्वरूप पानी का बहाव वायु के दाब के कारण समकोणत होता है। क्योंकि पृथ्वी का घूर्णन इसे विक्षेपित कर देता है। वायु तथा पृथ्वी के घूर्णन की धाराओं की दिशा बनती है। इसे एकमन स्पाइरल कहते
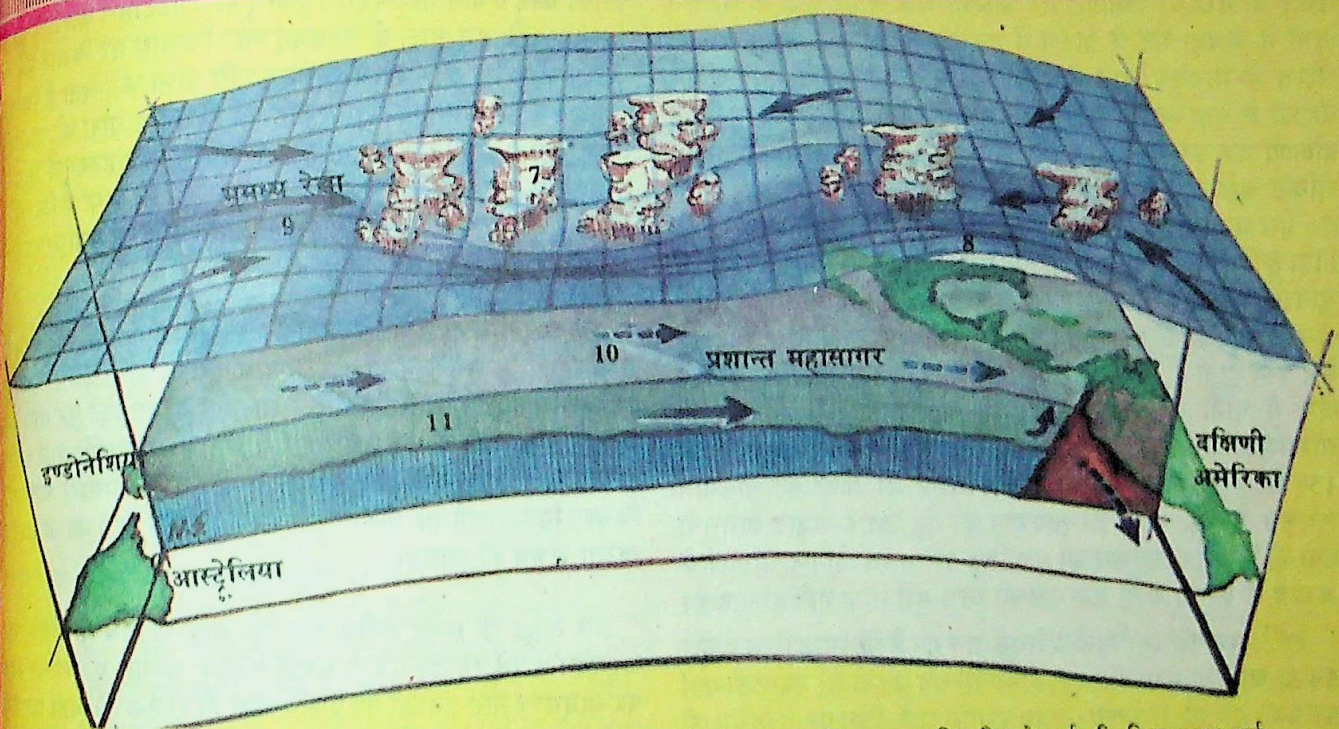
प्रत्येक कुछ वर्षों में इस पद्धति में विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे 1982-83 में भयानक स्थिति हो गई थी, निम्न दाब पूर्व की ओर चलता है, तथा (8) उच्च दाब कमजोर पड़ जाता है (9) व्यापारिक हवायें विचलित हो जाती हैं तथा इनके स्थान पर पूर्वी हवायें बहने लगती हैं। जिसके कारण (10) सतही धारायें उल्टी दिशा में बहने लगती हैं, (11) गर्म पानी दक्षिणी अमेरिका की ओर बहने लगता है, इस घटना को केल्विन लहर कहते हैं। चूंकि सामान्यतः विश्व के चौथाई भाग का मौसम स्थिर रहता है इसके नष्ट होने के दूरगामी प्रभाव होते हैं। इसका कारण अज्ञात है। यद्यपि एलनीनो तथा मानसून प्रणाली एक दूसरे से इतने संबंधित हैं कि उनमें हुये परिवर्तनों से दोनों प्रभावित होते हैं।

एकमन स्पाइरल
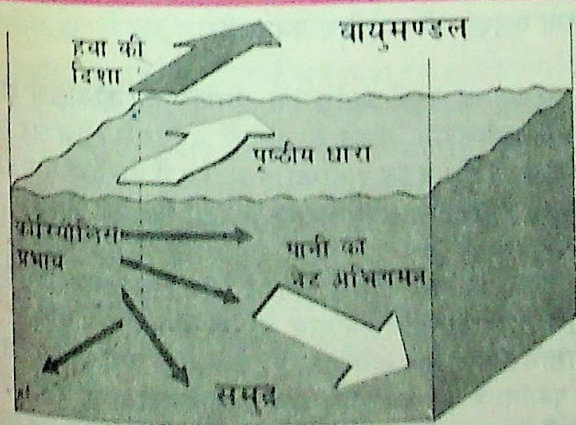
है। इसका यह नाम डब्ल्यू. एकमन के नाम पर पड़ा है जिसने 1902 में सतही दबाव से उत्पन्न लहरों का वर्णन किया था। एकमन के स्पाइरल से समुद्री तट के आसपास गहराई की तीव्रता ज्ञात की जा सकती है। लेकिन यह भूमध्य रेखा पर अधिक प्रभावशाली नहीं होता क्योंकि भूमध्यरेखा के आसपास भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में f का मान बहुत कम होता है।

कोरिऑलिस पैरामीटर (f) का मान भूमध्यरेखा पर लगभग समाप्त हो जाता है। इसका मान अक्षांश के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है जिससे पश्चिमी सीमा में तीव्र चक्राकार बड़ी समुद्री धारायें उठती हैं। इस रोचक प्रक्रिया का प्रदर्शन सर्वप्रथम एक अमेरिकी भौतिक विज्ञानवेत्ता हेनरी स्टोमल ने किया था। मोटे तौर पर इस घूर्णन का एक परिणाम ही माना जा सकता है क्योंकि किनारों की धारायें समय के साथ-साथ पृथ्वी के घूर्णन से आधार प्राप्त करती हैं। संसार में अनेक तटीय धाराओं जैसे अटलांटिक महासागर के पश्चिमी तट की गल्फ स्ट्रीम तथा जापान की कुरोशियो धारा पश्चिमी सीमावर्ती धाराओं की तीव्रता की मुख्य उदाहरण हैं। भारतीय मानसून के संदर्भ में जो एक धारा महत्वपूर्ण है वह है सोमाली धारा। यह अफ्रीका के पूर्वी तट से उठती है।

सोमाली धारा विश्व की कुछ उन गिनी-चुनी धाराओं में से एक है जो ऊपरी हवा से अपनी दिशा परिवर्तित कर लेती है। उत्तरी भारत में ग्रीष्म ऋतु के दौरान यह भारतीय समुद्र तट की ओर घूमने से पूर्व भूमध्यरेखा के दक्षिण में लगभग 10° उत्तर से थोड़ा हट कर उत्तर की दिशा में बहती है। शीत ऋतु में यह सर्दी अथवा उत्तर पूर्वी मानसून के साथ कदम मिलाते हुये दक्षिण की ओर बहती है।

इस धारा का एक महत्वपूर्ण लक्षण भंवरों के बनने से संबंधित है। प्रेक्षणों के अनुसार (1) धारा में एक दक्षिणी चक्र है, जो भूमध्य रेखा तथा 4° उत्तर के बीच में स्थापित है, (2) एक उत्तरी चक्र 5° तथा 9°

उत्तर के मध्य में स्थापित है। दक्षिणी चक्र अप्रैल माह के अन्तिम दिनों में अथवा मई के प्रारंभ में बनना शुरू होता है अर्थात् दक्षिण भारत में मानसून आने के ठीक एक माह पूर्व। हाल में किये गये प्रेक्षणों से पता चलता है कि मानसून के आगे बढ़ने के साथ-साथ दक्षिणी चक्र उत्तर की ओर प्रवृत्त होकर उत्तरी चक्र में मिल जाता है। लेकिन कुछ वर्षों में यह उत्तरी चक्र में न मिल कर दूर निकल जाता है। इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि जिन वर्षों में मानसून अच्छा होता है उनमें दक्षिणी चक्र अधिक प्रबल होता है लेकिन जिन वर्षों में मानसून कमजोर होता है उनमें दक्षिणी चक्र या तो होता ही नहीं है अथवा होता है तो बहुत कमजोर। इन दोनों चक्रों के मध्य का क्षेत्र वेज रूपी होता है, जहां समुद्र की सतह का तापमान कम होता है। इस क्षेत्र में पानी का उठान ऊपर की ओर होता है। जून माह में सोमालिया के तट के आसपास के क्षेत्र का तापमान प्रायः कम से कम 15° सें. रहता है जबकि बम्बई के समुद्र की सतह का तापमान लगभग 30° सें. रहता है। तापमान का यह उतार-चढ़ाव मानसूनी हवा के विकिरण संतुलन को प्रभावित करता है। लेकिन आंकड़ों के अभाव के कारण अभी तक इस की जांच पूरी तरह नहीं हो पाई है।

इस विषय पर उल्लेखनीय अनुसंधान हुये हैं कि समुद्र किस प्रकार इन दो चक्रों के मध्य में स्वयं को व्यवस्थित करता है। स्पष्टतः यहां पर पवन तंत्र की दो अलग-अलग प्रणालियां हैं, जिन पर अध्ययन की आवश्यकता है। एक तो धीमी हवा है जो अप्रैल के अन्तिम दिनों में समुद्र के किनारे-किनारे उत्तर की ओर मेडागास्कर से भूमध्यरेखा तक बहती है। कम्प्यूटर पर किये गये सांख्यकीय प्रयोगों से पता लगता है कि यह हवा किनारे पर एक मन्थर धार का निर्माण करती है और जैसे ही यह भूमध्यरेखा को पार करके उत्तर की ओर घूमती है वैसे ही कोरिओलिस बल इसे दायीं और विक्षेपित कर देता है। धारा के बहने की प्रवृत्ति तट की ओर जाकर पुनः भूमध्यरेखा पर लौटने की होती है। अन्ततः यह संवृत पाश या 'क्लोज्ड लूप' बनाती है जिसे सोमाली धारा का दक्षिणवर्ती चक्र कहते हैं। हवा बहने की दूसरी प्रणाली अधिक तीव्र होती है। यह नीचे चलने वाली तेज जेट धारा के रूप में जून के प्रारंभ में अफ्रीका के पूर्वी किनारे के साथ-साथ उत्तर की ओर पहुंचने के बाद भारतीय तट की ओर बढ़ने लगती है। इस जेट धारा की खोज एक ब्रिटिश मौसम विज्ञानी जान फिण्डलेटर ने की थी। इसीलिये इसको फिण्डलेटर जेट कहते हैं। यह उत्तरी चक्र के लिये प्रभावी क्रियाविधि प्रदान करती है।

यदि समुद्र में चक्रों का निर्माण समुद्र पर वायु दाब के कारण होता है तो इससे दो प्रश्न उठते हैं : भारत में ग्रीष्म मानसून के प्रारम्भ होने से एक माह पूर्व ही सोमाली धारा क्यों बननी प्रारंभ हो जाती है? और क्या समुद्र का यह व्यवहार हवा के दबाव के घटकों के घूर्णन के कारण होता है?

पहला प्रश्न ब्रिटेन के प्रख्यात गणितज्ञ सर जेम्स लाइटहिल के शोध-पत्र का रोचक विषय है। प्रो. लाइटहिल ने परिकल्पना की थी कि अप्रैल के अंत में तटीय धारायें अफ्रीका के समुद्री तट से बहुत दूर उत्तरी हिन्द महासागर में होने वाले वायुमण्डलीय विक्षोभ के कारण उत्पन्न होती हैं। पहले यह मान्यता थी कि अप्रैल के अंत में सुदूर क्षोभ की गति इतनी धीमी होती है कि पूर्वी अफ्रीका के समुद्री तट पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु प्रो. लाइटहिल के शोध पत्र के अनुसार यदि हम धारा के लम्बवत् स्तर विन्यास पर विचार करें तो पता चलेगा कि क्षोभ इतनी अधिक गति प्राप्त कर लेता है कि वह मानसून के प्रारम्भ होने से एक माह पूर्व ही तटीय धारा को प्रभावित करने लगता है। निस्संदेह वायु दाब यहां बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि तटीय धाराओं को उत्पन्न करने के लिये क्या वायु दाब का पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है।

भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में ऊष्णकटिबन्धी वायुमण्डल में वायु दाब के घूर्णीय तथा अपसारी भागों का परिणाम बराबर होता है। परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि समुद्री धाराओं की गतिकी पर वायु दाब का घूर्णन भाग ही अधिक प्रभावशाली होता है। एक सांख्यिकी प्रयोग से पता चला है कि यदि वायु दाब के घूर्णीय तथा अपसारी भागों पर विचार किया जाये तो सोमाली धारा के दक्षिणी चक्र का अनुकरण करना संभव हो जायेगा।

हम समुद्र के संकरे तटीय क्षेत्र पर वायु के दाब के प्रभाव का अध्ययन करते रहे हैं। परन्तु समुद्री बेसिन, प्रशांत महासागर क्षेत्र पर वायुमण्डलीय हवाओं का प्रभाव बड़ा ही रोचक है। यहां पर हमें वायुमण्डल तथा समुद्र से उत्पन्न दोनों ही प्रकार के क्षोभों पर विचार करने की आवश्यकता होती है। वायुमण्डल का समुद्री बहाव पर प्रभाव हवा के दबाव के कारण ही होता है। दूसरी ओर समुद्र वाष्पीकरण हेतु लेटेन्ट अथवा गुप्त ऊष्मा के फ्लक्स परिवर्तन से वातावरण को प्रभावित करता है। थर्मोक्लाइन के घटने-बढ़ने तथा हवा की गति में उतार-चढ़ाव से हवा में अभिवहन के कारण समुद्र सतह के तापमान में परिवर्तन होता रहता है तथा जो बाद में गुप्त ऊष्मा फ्लक्स को प्रभावित करता है।

जलवायु की लम्बी अवधि तक अनियमितता को दक्षिणी दोलन या 'सदर्न आसीलेशन' कहते हैं। इसकी सर्वप्रथम खोज सर गिलबर्ट वाकर ने की थी। वे इस शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय मौसम विज्ञान सेवा के प्रमुख थे। सर गिलबर्ट ने देखा कि जब भी कभी उत्तरी हिन्दमहासागर के ऊपर दाब कम होता है तब दक्षिणी प्रशांत महासागर पर दाब अधिक होता है और ठीक इसके विपरीत जब उत्तरी हिन्द महासागर में दाब अधिक होता है तब दक्षिणी प्रशांत महासागर पर दबाव कम होता है। दबाव का वर्षा से विपरीत संबंध यह दर्शाता है कि जब शीत ऋतु में हिन्दमहासागर पर कम दबाव होता है तो आगामी मानसून के अच्छे होने की संभावना बढ़ जाती है। दक्षिणी दोलन का समय 2 से 7 वर्ष तक का होता है। दक्षिणी दोलन की तीव्रता दो केन्द्रों मध्य प्रशांत महासागर में स्थित ताहिती (18° दक्षिण 149° पश्चिम) तथा उत्तर आस्ट्रेलिया में स्थित डार्विन (12° दक्षिण, 130° पूर्व) जो हिन्द महासागर के उत्तरी भाग का प्रतिनिधित्व करता है, के समुद्री तल के दबावों के अंतर से नापी जाती है। दक्षिणी दोलन सूचकांक का ऋणात्मक मान, उत्तरी हिन्दमहासागर पर वायु का उच्च दबाव तथा उदासीन मानसून को दर्शाता है।

(शेषांश पृष्ठ 43

विजय कुमार उपाध्याय

पर्वत धरातल के उन भागों को कहा जाता है जो आस-पास के क्षेत्र से काफी ऊंचे होते हैं। ये नीचे चौड़े तथा ऊपर की ओर संकरे होते जाते हैं। पर्वत के ऊपरी संकरे भाग को शिखर या चोटी कहते हैं। कम ऊंचे पर्वतों को पहाड़ियां कहते हैं। प्रायः आस-पास की जमीन से 300 मीटर से अधिक उभार को पहाड़, जबकि इससे कम उभार को पहाड़ी कहा जाता है।

पर्वतों को तीन वर्गों में बांटा गया है– (i) आग्नेय पर्वत, (ii) अवशिष्ट पर्वत, तथा (iii) विवर्त्तनिक पर्वत।

आग्नेय सक्रियता द्वारा दो प्रकार के पर्वतों का निर्माण होता है– ज्वालामुखी पर्वत तथा अन्तर्वेधी पर्वत। ज्वालामुखी से निकले लावा के संचय से बड़े-बड़े पर्वतों का निर्माण होता है। ज्वालामुखी से लावा का निकास या उद्गार मुख्यतः दो प्रकार से होता है।

1. **केन्द्रीय उद्गार** उसे कहते हैं जब लावा एक ही स्थान से विशद मात्रा में बाहर निकलता है। केन्द्रीय उद्गार से ही ज्वालामुखी पर्वतों का निर्माण होता है। हवाई द्वीप का मोना बोआ तथा तंजानिया का किलिमंजारो केन्द्रीय उद्गार से बने ज्वालामुखी पर्वत के उदाहरण हैं। ऐसे पर्वतों के शैल बहुत छोटे-छोटे खनिज रवों के बने होते हैं।
2. **विदरी उद्गार** में पृथ्वी की सतह या भूपटल पर दरारें पड़ जाती हैं जिनके फटने पर लावा बाहर निकलता है। विदरी उद्गार से पठारों का निर्माण होता है। भारत में दक्षिण का पठार विदरी उद्गार का उदाहरण है।

मैग्मा जब भूपटल के विभिन्न स्तरों में अन्तर्वेधन करके ठोस बन जाता है तो अन्तर्वेधी पर्वतों का निर्माण होता है। अन्तर्वेधी पर्वत दो प्रकार के होते हैं– पातालीय तथा अर्द्ध पातालीय। जब मैग्मा पृथ्वी की सतह से अथाह गहराइयों में ही ठोस बन जाता है तो पातालीय पर्वतों का निर्माण होता है। फिर ये पातालीय पर्वत पृथ्वी की हलचल के समय पृथ्वी की सतह पर आ जाते हैं। ऐसे पर्वतों में उपस्थित शैल बड़े आकार के खनिज रवों के बने होते हैं। उदाहरण स्वरूप ग्रेनाइट तथा गैब्रो। ऐसे पर्वत बैथोलिथ आदि के रूप में पाये जाते हैं, इनका आकार बहुत विशाल होता है। जब मैग्मा अपेक्षाकृत पृथ्वी की सतह से कम गहराई पर ठोस बन जाता है तो अर्द्ध पातालीय पर्वतों का निर्माण होता है। ऐसे पर्वतों के शैल मध्यम आकार के खनिज रवों के बने होते हैं। उदाहरण स्वरूप डोलेराइट। इस तरह के पर्वत प्रायः छोटे आकार के डाइक, सिल तथा लैकोलिथ के रूप में पाये जाते हैं।

धरातल के पहाड़ों के अपरदन की दर में आपेक्षिक अन्तर के कारण अवशिष्ट पर्वतों का निर्माण होता है। पृथ्वी की सतह पर अपक्षय तथा अपरदन निरन्तर होता रहता है, जिससे मृदुल शैल शीघ्रता से कट-छंट कर घाटी में परिणित हो जाते हैं। इसके विपरीत कठोर शैल पहाड़ के रूप में खड़े रह जाते हैं। मोड़दार पर्वतों के मुख्य दो अंग होते हैं– अपनति (ऐंटीक्लाइन) तथा अभिनति (सिंक्लाइन)। अपनति में तनाव के कारण शैल कमजोर पड़कर मुलायम हो जाते हैं, अतः उनका अपरदन शीघ्र होता है। इसके विपरीत अभिनति में सम्पीडन के कारण शैल के कण आपस में अधिक कस जाते हैं, तथा शैल कठोर बन जाते हैं, अतः उनके अपरदन की दर बहुत कम हो जाती है। अतः मोड़दार पर्वत क्षेत्र में अपनति के स्थान पर घाटी तथा अभिनति के स्थान पर पर्वत बन जाते हैं। अरावली, विंध्याचल, सतपुड़ा, छोटा नागपुर पठार, पूर्वी एवं पश्चिमी घाट अवशिष्ट पर्वतों के उदाहरण हैं। पारसनाथ, मन्दार हिल, राजगिर तथा बराबर की पहाड़ियां भी इसी श्रेणी में आती हैं।

विवर्त्तनिक पर्वतों की दो श्रेणियां होती हैं– मोड़दार पर्वत तथा भ्रंशोत्थ पर्वत। मोड़दार पर्वत अधिक महत्वपूर्ण हैं तथा संसार में इन्हीं की संख्या अधिक है। संसार की अधिकांश पर्वत मालायें जैसे हिमालय, आल्पस, रौकी तथा ऐंडीज इसी श्रेणी में आती हैं। भ्रंशोत्थ पर्वतों का निर्माण भ्रंशन से होता है। जब बड़े पैमाने पर भ्रंशन होता है तो उत्पादित पर्वत खण्डों के आपेक्षिक विस्थापन से दो पर्वत खण्डों पार्श्व तथा नीचे धंसे भाग को अवपात पार्श्व कहते हैं, उर्ध्वपात पार्श्व ही भ्रंशोत्थ पर्वत कहलाता है। यूरोप के हार्ज पर्वत, बासवेज तथा ब्लैक फॉरेस्ट एवं दक्षिण भारत का नील गिरि भ्रंशोत्थ पर्वत के उदाहरण हैं।

मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति का कारण उन पर लगता हुआ सम्पीडन बल है। इन पर्वतों के निर्माण के सम्बन्ध में अनेक मत प्रकट किये गये हैं। सबसे प्रमुख है सम्पीडन कल्पना। इस
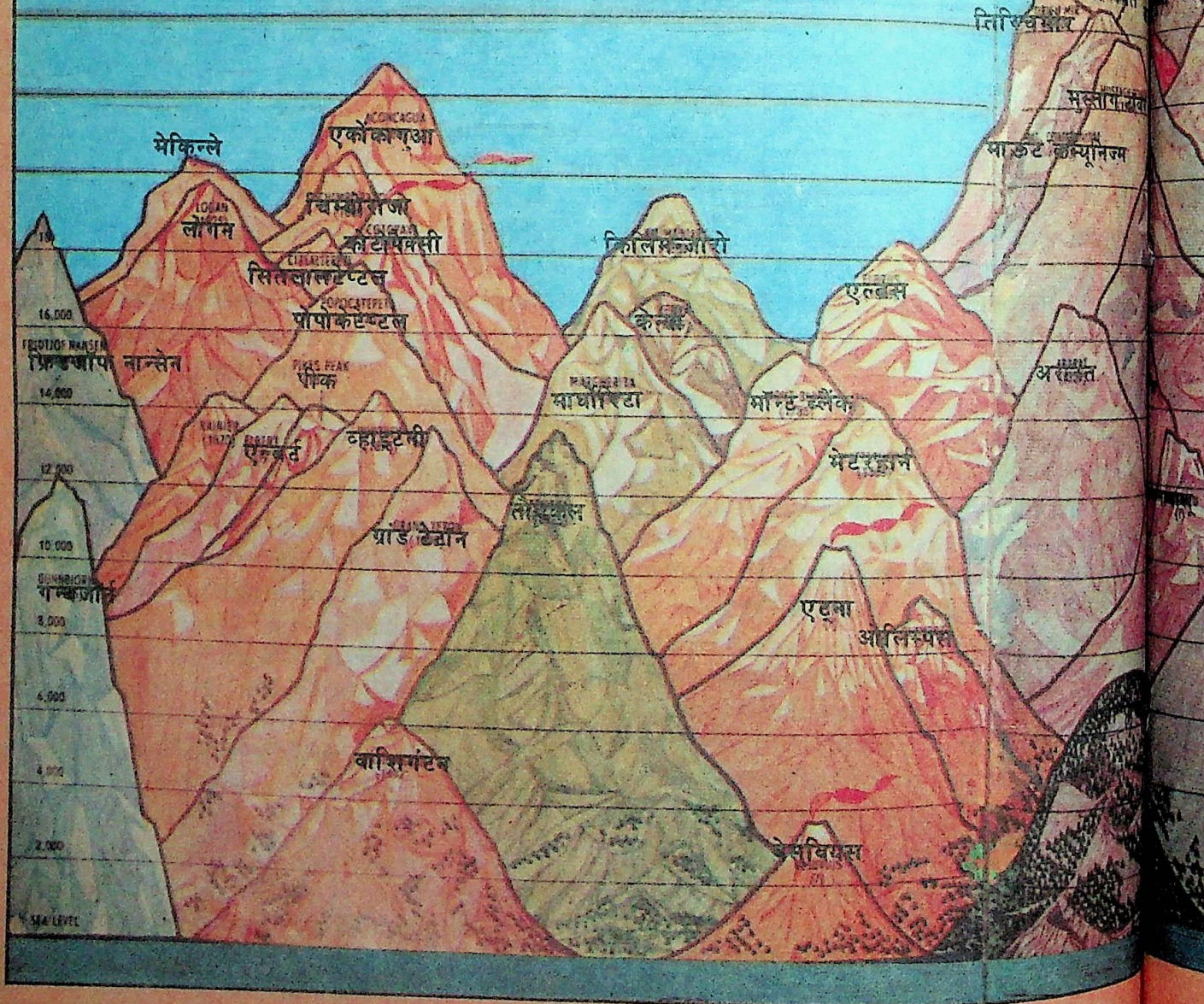
परिकल्पना के अनुसार पृथ्वी विकिरण द्वारा लगातार अपना ताप खो रही है। इस विकिरण की दर पृथ्वी के इतिहास के प्रारम्भिक काल में बहुत अधिक थी। विकिरण के द्वारा जैसे-जैसे ताप पृथ्वी से बाहर निकलता गया वह ठंडी होकर संकुचित होती गयी। इसके फलस्वरूप पृथ्वी की सतह पर झुरियां पड़ गयी। इन्हीं झुरियों ने मोड़दार पर्वतों का रूप लिया।

कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी की सतह पर अपक्षय एवं अपरदन निरन्तर हो रहा है। इस कारण चट्टानें एक स्थान पर टूटती हैं तो इनसे उत्पन्न कण अवसाद के रूप में दूसरे स्थान पर गहरे गर्त्त में जमा होते रहते हैं। इस प्रकार गर्त्त को भूअभिनति कहते हैं। लगातार जमा होते रहने से अवसाद का भार इतना बढ़ने लगता है कि भूअभिनति का तल धीर-धीरे धंसने लगता है। ज्यों-ज्यों भूअभिनति
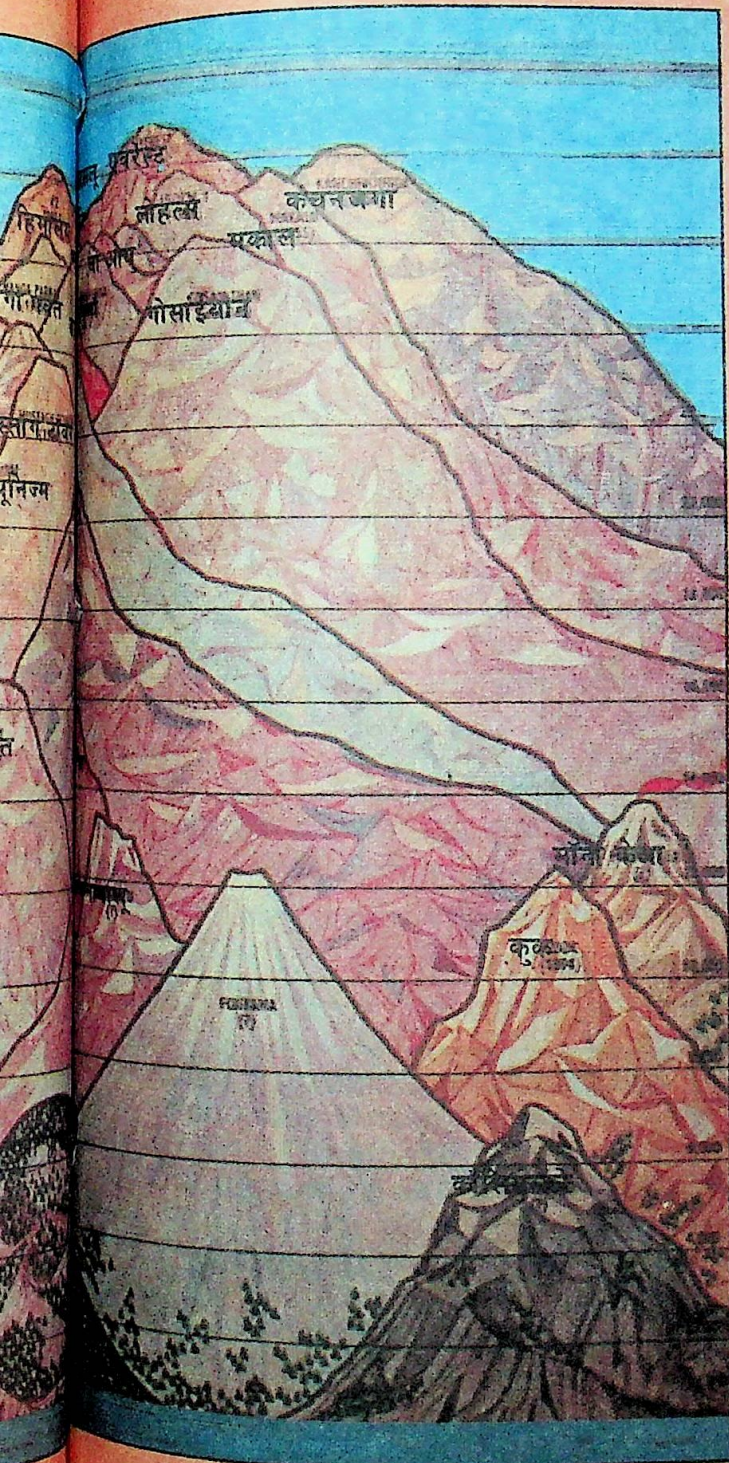
ऑस्ट्रेलिया

तल पृथ्वी की सतह से नीचे धंसते जाता है, उसका ताप बढ़ता जाता है। अन्त में ताप इतना बढ़ जाता है कि अवसाद पिघलने एवं फैलने लगता है। भूअभिनति तल के धंसने के कालक्रम में भूअभिनति के दोनों किनारे धीरे-धीरे एक दूसरे के पास सटने लगते हैं। इस कारणवश संकुचल बल पैदा होता है, जिससे मोड़दार पर्वतों का निर्माण होता है।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि भूविस्थापन के समय जब दो या अधिक महाद्वीप आपस में टकराते हैं तो टकराने वाले किनारे पर सम्पीडन बल पड़ने के कारण उस स्थान पर मोड़दार पर्वत का निर्माण होता है। वेजेनर के मतानुसार महाद्वीपों के विषुवतीय विस्थापन के कारण आल्पस एवं हिमालय पर्वत श्रृंखला की उत्पत्ति हुई तथा पश्चिमवर्त्ती विस्थापन के कारण रौकी एवं ऐंडीज पर्वत मालाओं का निर्माण हुआ।

जौली ने पर्वत-निर्माण के लिये तापीय चक्र परिकल्पना का प्रतिपादन किया। इसके अनुसार सियाली भूपटल के खण्ड सिमा-परत की सतह पर तैरते रहते हैं। सिमा-परत में रेडियो सक्रिया तत्व काफी मात्रा में उपस्थित हैं। इन तत्वों के रेडियो सक्रिय विखण्डन से ताप की काफी मात्रा उत्पन्न होती है। ऐसा पाया गया है कि सियाली परत में सिमा-परत की अपेक्षा अधिक मात्रा में रेडियो सक्रिया तत्व उपस्थित हैं। परन्तु उससे उत्पन्न ताप पृथ्वी से विकिरण द्वारा बाहर निकलने वाले ताप को संन्तुलित करने में ही व्यय हो जाता है। जबकि सिमा-परत में उत्पन्न ताप संग्रहीत होते रहता है। ताप-संग्रह के कारण सिमा-परत उस स्थान पर पिघल जाती है और सियाली खण्ड उसमें डूबने लगता है। ज्यों-ज्यों सियाली खण्ड डूबता है, उसका तापमान बढ़ता जाता है जिसके कारण उसमें फैलाव आता है। बाद में सिमा-परत में संग्रहीत ताप समुद्र तल से होकर बाहर निकल जाता है। ताप खोने से सिमा-परत पुनः द्रव से ठोस अवस्था में परिणित होने लगती है और उसका घनत्व बढ़ने लगता है। सिमा-परत का घनत्व बढ़ने से सियाली भूखण्ड ऊपर उठने लगता है। ज्यों-ज्यों सियाली भूखण्ड ऊपर उठता है, उसका ताप घटता जाता है जिस कारण उसका संकुचन होने लगता है। संकुचन के कारण भूपटल जहां-तहां सिकुड़ कर मोड़दार पर्वत का रूप ले लेता है।

पर्वत-निर्माण प्रक्रिया की व्याख्या के लिये आर्थर होक्स ने एक नये मत का प्रतिपादन किया जिसे भूविज्ञान में संवाहन-धारा परिकल्पना के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार भूपटल के नीचे प्रावर में संवाहन धारायें चलती रहती हैं। अवरोही संवाहन धारायें भूपटल के नीचे के हिस्से में अधः कर्षण (डाउन-ड्रेजिंग) उत्पन्न करती है। जब दो अवरोही धारायें एक स्थान पर मिलती हैं तो वह स्थान सम्पीडन अनुभव करता है और नीचे की ओर धंसता जाता है। इन स्थानों पर भूअभिनतियों का निर्माण होता है। परन्तु जब दो आरोही धारायें एक स्थान पर निकल कर प्रतिकूल दिशाओं में जाती हैं तो भूपटल में उत्पन्न तनाव से विभंग पैदा होता है। यही विभंग रिफ्ट घाटी बनाता है। अवरोही धाराओं से उत्पन्न भूअभिनतियों में अपक्षय तथा अपरदन से उत्पादित कण जमा होते रहते हैं। भूअभिनति के धंसने के कारण उसमें उपस्थित अवसाद पृथ्वी के भीतर लगातार बढ़ते हुए ताप के सम्पर्क में आता है तथा अन्ततः फैल कर ऊपर की ओर उठने लगता है जिससे पर्वतों का निर्माण होता है।

संवाहन धारा परिकल्पना के आधार पर आल्पस तथा हिमालय की उत्पत्ति की व्याख्या अच्छी तरह की जा सकती है। पैंजिया महाद्वीप के नीचे उत्पन्न दो आरोही संवाहन धाराओं ने भूपटल में तनाव पैदा किया जिससे पैंजिया दो भागों में टट गया— उत्तर में लौरेशिया तथा दक्षिण में गौंडवाना लैंड। इन दोनों के बीच एक
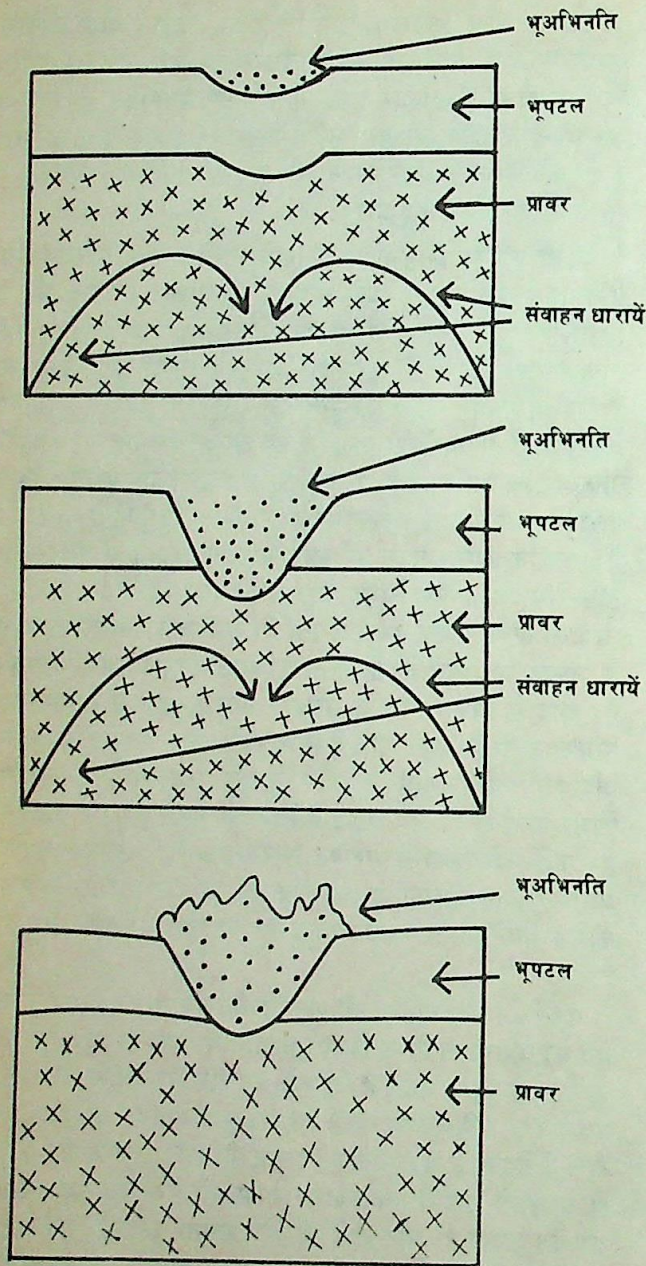
लम्बी रिफ्ट घाटी पैदा हुई जो टेथी सागर में बदल गयी। टेथी सागर ने एक विशाल भूअभिनति का कार्य किया जिसमें उत्तर की तरफ लौरेशिया तथा दक्षिण की तरफ गौंडवाना से अपक्षय जनित कण अवसाद के रूप में जमा होते रहे। अवसाद के बोझ से टेथी का तल धंसता गया तथा लगातार बढ़ते ताप के कारण अवसादा फैलता गया और अन्ततः दोनों तरफ से लगते सम्पीडन बल के कारण मोड़दार पर्वत के रूप में बदल गया जिसे आज हम आल्पस-हिमालय पर्वत श्रृंखला के रूप में देखते हैं।

सन् 1930 ई. में हारमेन ने दोलन-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके अनुसार प्रावर में उपस्थित पदार्थ को कुछ अज्ञात ब्रह्माण्डीय

(शेषांश पृष्ठ 23 पर)

एलनीनो का लीलामय संसार

वीरेन्द्र शर्मा

"एल-नीनो" को अपशकुन का देवता, अनहोनी का सूचक, बरबादी का मसीहा और न जाने क्या-क्या समझा जाता रहा है। यहां तक की मछुवारों ने इसकी रहस्यमय लीला से त्राण पाने के लिए प्रकृति से डरकर इसे ईसामसीहा का पुत्र भी मान लिया। जिस घटना व अनहोनी को आदमी का अबोध मन नहीं समझ पाता उसे वह भगवान की लीला समझ कर प्रकृति के मत्थे मढ़ देता है। मौसम को अस्त-व्यस्त व ध्वस्त करने वाले 'एल-नीनो' के साथ भी ऐसा ही हुआ है।

इसकी विनाश लीला के मूक साक्षी वर्षों से पेरूवियन तट के अबोध मछुवारे रहे हैं जिन्होंने अब से करीब दो सौ साल पहले इसके प्रकोप से तटीय समुद्र की मछलियों व पक्षियों को 'बड़े दिन' के आस पास प्रत्यक्ष रूप से काल-कवलित होते देखा। उन्हें ईसा के जन्मदिन पर रोटियों के लाले पड़े गये,परन्तु तब तक इसे एक स्थानीय घटना व अन्धविश्वास समझकर इसके प्रकोप से बचने के लिए आदमी साधना करता रहा। यूं तो 'एल-नीनो' का तांडव विकसित व विकासशील राष्ट्र सभी देखते रहे हैं लेकिन इस मौसमी घटना के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर मौसम-विदों का ध्यान विलम्ब से गया।

दबी जुबान से तब यह कहा गया कि 'एल-नीनो' मौसम के मिजाज को ही नहीं गड़बड़ा देता है बल्कि जलवायु पर इसके अल्प-दीर्घकालिक प्रभाव व्यापक स्तर पर पड़ते हैं। बात आई गई हो गयी और एल-नीनो अपना तांडव दिखाता रहा और जब तब मौसम-विदों को चुनौती देता रहा। पिछले कुछ वर्षों में अनियमित मानसून से फसलों के उत्पादन में भारी कमी के साथ-साथ पेयजल की मात्रा और पशुओं के लिये चारे की कमी से अनेक विपत्तियां उभरकर आयीं।

वर्षा की इस अनियमितता के कारण पड़े सूखे का दोषी बिना सोचे समझे वनों के विनाश तथा निरंतर बढ़ते हुये औद्योगिक प्रदूषण को ठहरा दिया गया। इसी प्रकार भौम जलस्तर में कमी आने तथा पेय जल में लवणों की बढ़ती मात्रा का दोषी भी आधुनिक हरित क्रांति जो रासायनिक खाद तथा अत्यधिक सिंचाई पर निर्भर है, को ठहराया गया। निस्सन्देह पिछले कुछ वर्षों में उपरोक्त कारणों ने स्थिति को बिगाड़ने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। लेकिन मानसून का बिगड़ता मिजाज एल-नीनो के प्रकोप के कारण है और यह एक स्थानीय घटना न होकर विश्वव्यापी घटना है। इस बात की पुष्टि दुनिया भर के जलवायुविदों ने 1957 में की। इस अद्भुत घटना को वैज्ञानिक शब्दावली में 'एल-नीनो सदर्न ओसिलेशन' (ई.एन.एस.ओ.) नाम दिया गया।

वैज्ञानिकों ने एल-नीनो को दाक्षण-पश्चिमी मानसून को कमजोर करने के लिये ही दोषी नहीं ठहराया बल्कि इस बात के लिये भी दोषी पाया कि इसके कारण उत्तरी अमरीका में विशेषरूप से कनाडा में सर्दी के दिनों में भयंकर गर्मी पड़ी और तापमान सामान्य से एकाएक 9° से. बढ़ गया था। बाकी के क्षेत्र में भयंकर सूखा पड़ा

इसी प्रकार पश्चिमी व पूर्व अफ्रीका में भयंकर गर्मी पड़ी तो आस्ट्रेलिया, सोवियत संघ व केन्द्रीय अमरीका के कुछ भागों में जहां एक ओर अभूतपूर्व सूखा पड़ा, वहीं दूसरी ओर आस्ट्रेलिया, कीनिया व फिलीपीन के कुछ भाग अति-वृष्टि की चपेट में आ गये। 1972-73 में एल-नीनो की विनाश-लीला ने मौसम विदों की नींद ही हराम कर दी थी।

सोवियत रूस जैसे सम्पन्न राष्ट्रों को सूखे का सामना करने के लिए अन्न आयात करना पड़ा। पेरू की तो अर्थव्यवस्था ही चौपट हो गई क्योंकि पेरू तट की अधिकांश मछलियां और समुद्री पक्षी मर गये।

इसी प्रकार मैक्सिको की खाड़ी के क्षेत्र में आधुनिक समय की शीत ऋतु में पड़ने वाली सबसे उग्र बारिश हुई। यूरोप सहित विश्व के अन्य भागों में भी मौसम विचित्र सा रहा।

फिर वैज्ञानिकों ने माना कि वर्ष 1976-77 के दौरान अमरीका जिस भयंकर सर्दी की चपेट में आया था उसका कारण एल-नीनो का आगमन था। 1972-73 वर्ष में एल-नीनो के कारण ही अमरीका असाधारण रूप से सर्दी के मौसम में गर्म हो उठा था। इसका मतलब यह निकला कि एल-नीनो एक आवधिक अन्चीन्हा मेहमान है जो दो से सात वर्षों के अंतराल में आ धमकता है और अपनी विनाश लीला का तांडव दिखा जाता है। वर्ष 1987 में तो पूरे विश्व के मौसम का मिज़ाज पूर्वानुमानों के बिल्कुल विपरीत रहा।

वैज्ञानिकों के मतानुसार एल-नीनो का कोई निश्चित क्षेत्र नहीं है। भूमध्य रेखीय प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में चारों ओर पेरू के उत्तरी तट अथवा इक्वाडोर के आसपास का सतही जल गर्मी के दिनों में भी आमतौर पर ठण्डा रहता है। ऐसा पेरू लहरों के प्रवाह के कारण होता है। ये लहरें गर्म पानी की ऊपरी सतह को समुद्र तटों की ओर बहा ले जाती हैं जिससे पानी के नीचे की ठण्डी सतह ऊपर आ जाती है।

लेकिन दक्षिणी गोलार्द्ध में क्रिसमस के आसपास भीषण गर्मी पड़ती है जिस कारण पानी की ऊपरी सतह अचानक असामान्य रूप से गर्म होने लगती हैं। इससे मछुआरों के लिये एंचोवी मछली पकड़ने में भयंकर विपदा उत्पन्न हो जाती है।

ठण्डे पानी में सामान्यतः नाइट्रेट तथा फास्फेट जैसे पोषक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होते हैं। ये प्राणितप्लवकों अथवा जूप्लैंक्टान, जो एंचोवी मछलियों का उत्तम भोजन हैं, को प्रकाश संश्लेषण हेतु पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार प्रदान करते हैं और मछ्वारों को यहां
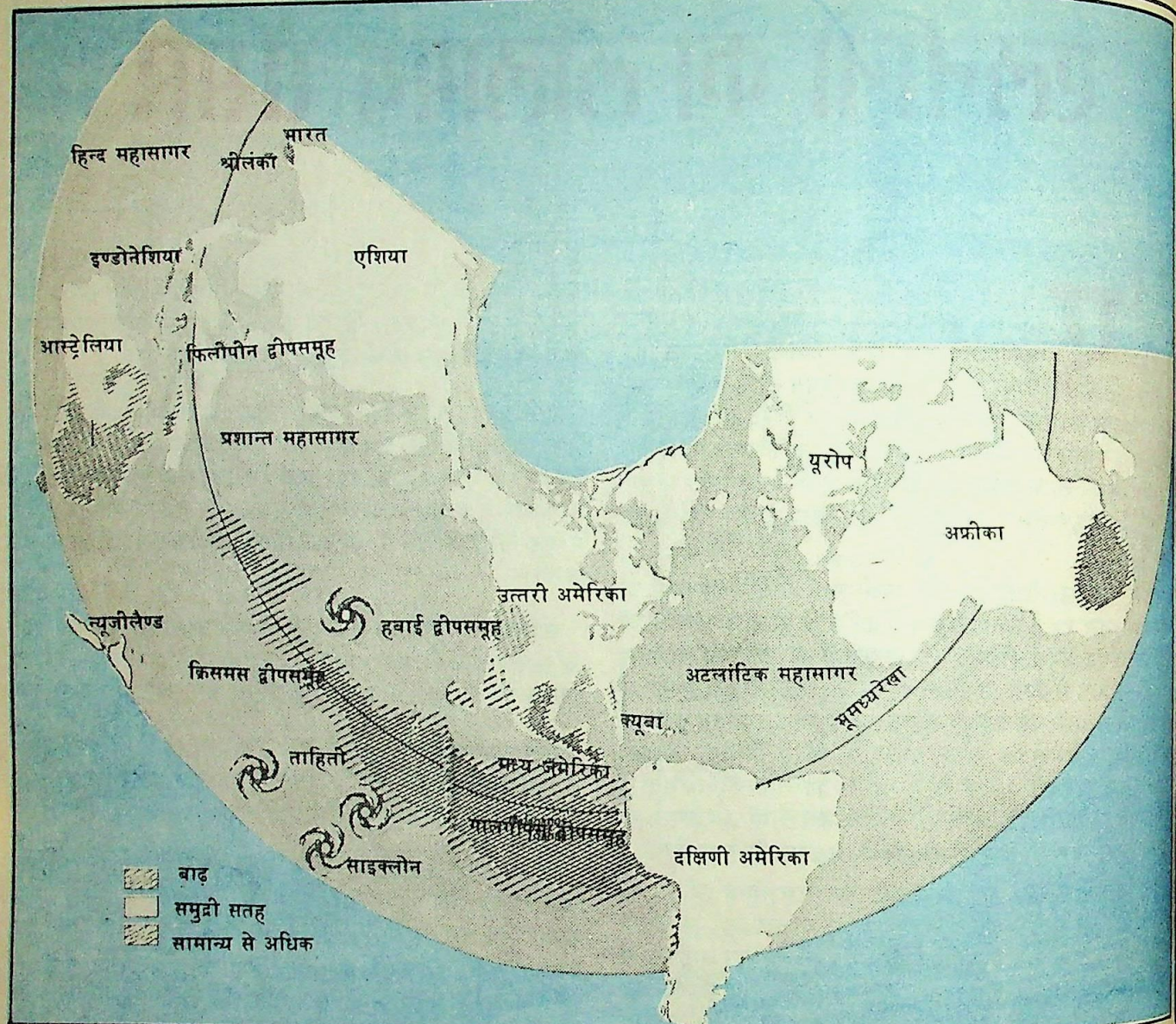
स पयाप्त मात्रा म उत्तम मछलियां प्राप्त होती हैं। लेकिन अचानक सतह का पानी गर्म होने से पानी के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं और भोजन के अभाव में मछलियों की मात्रा भी एकाएक कम हो जाती है। इसका सीधा असर मत्स्य उद्योग पर पड़ता है।

यह एक वार्षिक घटना है जो उत्तर में स्थित पेरू से और अधिक दक्षिण की ओर नहीं बढ़ती, लेकिन यहां पर लगभग 3 माह तक अपना प्रभाव बनाये रखती है और मार्च अथवा अप्रेल के अंत में जाकर समाप्त होती है।

एन-नीनो नाम की मौसमी घटना जलवायु को अपने तरीके से नचाती है। कभी-कभी ग्रीष्म काल तथा गर्मी सामान्य से काफी अधिक हो जाती है। यानी तापक्रम सामान्य से 7° सेल्सि. तक हो जाता है और वर्ष भर बढ़ा हुआ ही रह सकता है। इसके अतिरिक्त गर्म पानी बहुत अधिक क्षेत्र में फैल कर पेरू के समूचे तटवर्ती क्षेत्र तथा पूर्वी और केन्द्रीय भूमध्य रेखीय प्रशांत महासागरीय क्षेत्र को पूरी तरह घेर लेता है।

इस प्रकार की भयंकर घटना को ही वैज्ञानिक क्षेत्र में एल-नीनो का नाम दिया गया है। ऐसे एल-नीनो ने 1953, 1957-58, 1965, 1972-73, 1976-77, 1982-83 और अभी हाल ही में 1986-87 में अपने चमत्कार दिखाये हैं।

इस प्राकृतिक घटना के परिणामों का ठीक-ठीक पता अब तक भी नहीं था। 1956 में अमेरिकी वैज्ञानिक डा. जैकब ब्जेरकनेज ने विस्मय के साथ कहा कि एल-नीनो का लीलामय संसार ही जलवायु में होने वाले अप्रत्याशित परिवर्तनों के लिये उत्तरदायी है और सामान्यतः एल-नीनो प्रायः एक और घटना जिसे 'दक्षिणी दोलन' या 'सदरन असीलेशन' कहते हैं से संबद्ध है।

सर्वप्रथम 1924 में वायुमण्डीय दाब पद्धति से इसका पार-प्रशांत रूप में संबंध का पता चला। जब भी कभी पूर्वी द्वीप समूहों पर वायुमण्डीय दाब पड़ता है तो निचली सतह पर स्थित इण्डोनेशिया तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया पर दाब कम हो जाता है तथा पूर्वी द्वीप समूह में दाब घटने पर नीचे दाब बढ़ जाता है। दाब बढ़ने और घटने अथवा घटने और बढ़ने का यह क्रम आवर्ती होता है। इस अंतर को मूर्तरूप देने के लिए पश्चिमी प्रशांत महासागरीय क्षेत्र के दाब में

इक्वाडोर और पेरू के तटों पर एलनीनो का प्रभाव सर्वाधिक मत्स्य उद्योग पर पड़ता है: (ऊपर के चित्र के अनुसार) जब खाद्य श्रृंखला स्वाभाविक रूप से चलती रहती यानि (1) हवा उत्तर की ओर बहने तथा (2) पृथ्वी के घूर्णन के दबाव से गर्म पानी की सतह पश्चिम की ओर बह जाती है और (3) और नीचे की सतह का पोषक तत्वों से युक्त पानी ऊपर आ जाता है (4) जो जलीय पौधों के लिये उत्तम होता है। ये जलीय पौधे ही मछलियों का भोजन हैं (5) इन पौधों का पुनः चक्रण होता है और इस प्रकार खाद्य श्रृंखला स्वतः चलती रहती है लेकिन (नीचे) एलनीनो के आगमन पर हवायें, पश्चिम की ओर, जल का बहाव तथा तटीय क्षेत्रों में पानी उठने लगता है जिससे ऊपरी गर्म सतह अभिवाहित नहीं होती तथा ठण्डी धारा के साथ पर्याप्त पोषक तत्वों के अभाव में (6) जलीय पौधे नष्ट हो जाते हैं और मछलियों को भोजन न मिलने से वे मर जाती हैं जिसका सीधा प्रभाव मत्स्य उद्योग पर पड़ता है।

पूर्वी क्षेत्र के दाब को घटाकर एक सूचकांक तैयार किया गया है। जब यह अंतर सामान्य रूप से अधिक होता है तो यह सूचकांक धनात्मक और सामान्य से कम होता है तो सूचकांक ऋणात्मक होता है।

लेकिन अब यह माना गया है कि इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि जब सम्पूर्ण विश्व का मौसम एल-नीनो के अनुरूप हो जाता है तो एक जटिल समस्या बन जाती है। भारतीय उपमहाद्वीप अथवा वह सभी क्षेत्र जहां दक्षिण-पश्चिमी मानसून की वर्षा होती हैं, एल-नीनो से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं: क्योंकि दक्षिणी महासागरीय वायुमंडलीय क्षेत्र में ही दक्षिणी मानसूनी हवाओं का उद्गम स्थान है।

ऐसा भी देखा गया है कि जब एल-नीनो के साथ-साथ दक्षिणी दोलन दाबान्तर सूचकांक भी कम होता है तो भारत में वर्षा नहीं होती है। लेकिन इसके विपरीत अवस्था में वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है और कभी-कभी तो इतनी अधिक हो सकती है कि बाढ़ की विभीषिका भयंकर रूप धारण कर लेती है।

वर्ष 1950 से समुद्र जल का ताप और वायुमंडीलय दाब का लेखा-जोखा रखा जा रहा है। इन उपलब्ध आंकड़ों से 'एल-नीनो दक्षिणी दोलन' के बीच संबंध तथा भारत में मानसून के व्यवहार के कारणों का स्पष्ट पता चलता है।

1972-73 में पड़े अकाल की विभीषिका को कोई भुला नहीं सकता। उस साल यह सूचकांक निम्नतम था। जनवरी 1986 में उस समय एल-नीनो का पता लगा जब कम्प्यूटर ने अचानक उसके आने की भविष्यवाणी की। उस वर्ष अगस्त माह के आरम्भ के साथ यह आया भी था। यह अब तक की घटनाओं में विचित्रतम सिद्ध हुई क्योंकि यह लगभग दो वर्ष तक विद्यमान रही।

जितनी अवधि तक यह रहा इसने घोर तबाही मचायी। भारत में आयी बाढ़ सर्वविदित है। समूचे विश्व में इसने भयंकर तूफान मचाया। पूरी पृथ्वी पर पिछले 100 वर्ष में 1987 का वर्ष सबसे अधिक गर्म रहा और इसके परिणामस्वरूप भयंकर सूखा पड़ा।

सैकड़ों बार यह अपने वास्तविक रूप में आने से पूर्व ही इस प्रकार का प्रभाव छोड़ता है कि यह असफल हो गया है किन्तु यह अपने दगने वेग से पनः प्रकट हो जाता है।

1987 में एक ओर तो भारत के गुजरात, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दिल्ली यानि की उत्तरी भारत के लगभग सभी राज्य सूखे की चपेट में आ गये और जब भारत में मानसून पहुंचा तो कई राज्यों में बाढ़ की तबाही मचाने से नहीं चूका। यही नहीं अमरीका के मैदानी क्षेत्रों को भी भयंकर सूखे की चपेट में लेता गया।

जो भी हो इसका जाना ही हमारे देश के लिये लाभकारी रहेगा क्योंकि इससे भारत में अच्छी वर्षा हुई है जिसके फलस्वरूप बहुत अच्छी फसल होने की संभावना भी बढ़ी है। मौसम विज्ञानी व जलवायु-विद् एल-नीनो के मिजाज को यद्यपि अभी भी ठीक से समझ नहीं पाये हैं लेकिन सैमूर-क्रे जैसे कम्प्यूटर-विद् अब नये प्रकार के कम्प्यूटर माडल बनाकर वायु-संवहनी धाराओं का अध्ययन करने

(शेषांश पृष्ठ 45 पर)

लू से बचिये

सुरेश नाडकर्णी

"यूं तो नीना शुरू से ही अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह थी लेकिन जबसे उनके "फेमिली डाक्टर" ने उसे बुखार के बारे में पूर्ण एवं आश्चर्यजनक जानकारी दी थी तब से वह अपने स्वास्थ्य के प्रति काफी सतर्क रहने लगी थी और आज जैसे ही मां ने नागपुर से प्राप्त चचेरी बहिन की शादी का निमन्त्रण पत्र उसके हाथ में थमाया तो नीना नागपुर की गर्मी के बारे में सोचकर ही परेशान हो उठी। अपनी इस परेशानी से निपटने के लिये उसने सुबह ही डाक्टर के पास जाने का निश्चय किया।

"गुडमार्निंग, डाक्टर साहब!"

"गुडमार्निंग नीना, कैसे आयी, अभी तक यहीं हो, गर्मियों की छुट्टियों में कहीं बाहर नहीं गयी?"

"इसीलिये तो डाक्टर साहब, मैं आपके पास आयी हूं।"

"ओह, नीना, मैं कोई टूरिस्ट आफिसर नहीं हूं।"

"डाक्टर साहब, आप मेरी हर बात मजाक में न लिया करें। मैं आपसे अपने सफर के बारे में कुछ सलाह मशविरा लेने आयी हूं।"

"अच्छा! तो पूछो क्या पूछना है तुम्हें?"

"डाक्टर साहब, इस बार हम नागपुर जा रहे हैं।"

"वाह! गर्मियां बिताने के लिये कितना अच्छा शहर चुना है तुमने, नीना!"

"हमें वहां जाना ही है डाक्टर, क्योंकि मेरी चचेरी बहिन की शादी है वहां।"

"बिल्कुल ठीक! जाना तो पड़ेगा ही, लेकिन तुम्हारा प्रश्न क्या है?"

"डाक्टर साहब यह तो आप भी जानते हैं कि नागपुर गर्मियों में भट्टी की तरह तपता है, इसके अतिरिक्त मैं समाचार पत्र लगभग रोज ही पढ़ रही हूं—नागपुर में गर्मी से तीन आदमी मरे, कभी चार मरे।"

"हां! ये आदमी लू लगने से मरते हैं।"

"इसीलिए तो डाक्टर मैं भयभीत हूं। मैंने गर्मी से उत्प[न्न] समस्याओं के बारे में कुछ पढ़ने की कोशिश की थी लेकिन मैं होशियार नहीं कि पढ़ कर ही हर बात समझ लूं। इसीलिये [...] आयी हूं।"

"कोई बात नहीं। अब बताओ कौन सा प्रश्न तुम्हारे दि[माग में] घूम रहा है।"

"गर्मी के बारे में पढ़-पढ़ कर डाक्टर, मैं बड़ी उलझन में [...] हूं।, कृपया आप मुझे गर्मी से होने वाले दोष अथवा विकारों के [बारे में] बता सकते हैं?"

"पुस्तकों से तो हमें गर्मी से होने वाले 14 विकारों के बारे [में पता] चलता है।"

"लेकिन डाक्टर उनमें तो अधिकतर लू अथवा हीट स्ट्रोक [के बारे] में लिखा है।"

"हां मैं तुम्हें लू लगने के बारे में बताता हूं। लेकिन क्या तु[म जानती हो] है कि आदमी समतापी प्राणी है।"

"हां! डाक्टर यह मुझे मालूम है समतापी प्राणियों में श[रीर का] ताप बनाये रखने के लिये 'ताप नियामक प्रणाली' होती है [जो शरीर] का ताप एक सा बनाये रखती है,चाहे बाहरी वातावरण का [ताप कुछ] भी हो।"

"बिल्कुल ठीक, जब शरीर की यह ताप नियामक प्रणाली [...] हो जाती है तो लू लग जाती है।"

"यह तो बड़ी खतरनाक बात है डाक्टर! लेकिन आदमी [...] पता कैसे लगता है।"

"लू लगने के मुख्य लक्षण में शरीर का ताप एकाएक [...] तक की 40° सें. या इससे भी अधिक हो जाता है। इससे [...] अनेक विकारं उत्पन्न हो जाते हैं और बेहोशी भी हो [...]

विस्थापित कर दिया है, क्योंकि इनसे कम ताप पर ही 10—20% से अधिक गैसोलीन प्राप्त होती है और ऊर्जा की जो बचत होती है सो तो अलग है ही।

लेकिन अब तक के ज्ञात जियोलाइट की उपयोगिता, वलय और चैनल के आकार के कारण सीमित है और यहीं पर यह नई खोज उपयोगी दृष्टिगोचर होती है। 10 अथवा 12 वलयों की आन्तरिक संरचना वाले कई सर्वाधिक उपयोगी जियोलाइट अपनी आत्मस्तुति करते हैं। उपयोगी, परन्तु दुर्लभ फौजासाइट नाम से प्रचलित जियोलाइट में 12 एकक वलय होते हैं जबकि बहुतायत में प्रयोग में आने वाले संश्लेषित जियोलाइट ZSM5 में 10 एकक वलय होते हैं। बॉगसाइट ही ऐसा पहला जियोलाइट है जिसमें बड़े छिद्रों युक्त एक त्रिविमीय चैनल प्रणाली होती है और इसकी आंतरिक संरचना में 10⁻ और 12⁻ एकक दोनों ही वलय होते हैं। बॉगसाइट की यह संरचना औद्योगिक क्षेत्र में उपयोगी हाइड्रोकार्बनों को फांसने में महत्वपूर्ण व्यावसायिक भूमिका निभाती है। इसके अतिरिक्त उच्च ताप पर भी जिस पर पेट्रोरसायन उत्प्रेरण की क्रिया होती है, बॉगसाइट स्थायी होते हैं।

बॉगसाइट का मिलना भी अनथक प्रयत्न और चमत्कार का संयोजन है जो कई वैज्ञानिक खोजों की विशेषता को दर्शाता है। यह खोज, इसके जनकों यानि 18 शौकिया वैज्ञानिकों, जिनमें पोर्टलैंड स्टेट यूनिवर्सिटी के भौतिकी के प्राध्यापक डोनाल्ड जी. हॉवार्ड और स्नोहोमिश, वाशिंगटन, डाक कर्मचारी रूडी डब्लयू. शेरनिक भी सम्मिलित थे, का अनथक प्रयास था। उन्हें 3-4 महीनों तक अपना सप्ताहान्त विशिष्ट प्रशान्त महासागरीय उत्तर-पश्चिम के शीत, निरन्तर वर्षा और 40° ताप में व्यतीत करना पड़ा। उनका केन्द्र बिन्दु गोबल वाशिंगटन के निकट कोलंबिया नदी से कुछ ही दूर एक 6 से 8 फीट व्यास का 5 फीट गहरा गड्ढा था।

अचानक चमत्कारिक आविष्कार की बात इसलिये उठी—क्योंकि यह समूह बॉगसाइट की खोज नहीं कर रहा था (क्योंकि किसी को भी इसके यहां होने का पता ही नहीं था)। वे हाल ही में खोजे गये शैरनिसाइट जियोलाइट को ढूंढ रहे थे। शैरनिश की दो वर्ष पहले खोज की गई थी लेकिन इससे बॉगसाइट जैसी चेतना जागृत नहीं हो सकी।

वैज्ञानिकों ने इस रहस्यमय नमूने को चेनी के ईस्टर्न वाशिंगटन स्टेट कालेज में प्राथमिक एक्स किरण विश्लेषण के लिये भेजा। क्रिस्टल वैज्ञानिकों ने तब महसूस किया कि यह एक नये तरह का खनिज है। मगर इस खनिज की संरचना कैसी थी? इसके लिये कई सहयोगियों द्वारा भौतिक रासायनिक और प्रकाशिक परीक्षण किये गये। अंत में, शिकागो विश्वविद्यालय के भू-भौतिकीविद् जोसफ वी. स्मिथ और जोसेफ प्लूथ ने इसकी 10⁻ और 12⁻ वलय के भिन्न संयोजन वाली परमाणु रचना को अनुमित किया। गत वर्ष नवम्बर में अमेरिकी भू-वैज्ञानिक समिति के एक अधिवेशन में इसके परिणामों को प्रस्तुत किया गया।

इसकी संरचना ने उद्योगों की लालसा को बढ़ाया। टेरीटाऊन, न्यूयार्क की रसायनज्ञ महिला एडिथ फलैनिगन, इस नये क्रिस्टल के भविष्य के लिये आशावान हैं। हालांकि व्यावसायिक स्तर पर प्रयोग के लिये प्रकृति में ज्यादा बॉगसाइट नहीं है मगर फलैनिगन मानती हैं कि बॉगसाइट के भौतिक और रासायनिक गुणों को प्रयोगशाला में पुनरुत्पादित करने पर, व्यावसायिक दृष्टि से सक्षम पर्याप्त पदार्थ मिल सकता है। और यही उनकी दृष्टि में करने योग्य है।

और शिकागो के स्मिथ का कहना है कि, यह........ दर्शाता है कि बहुत सारा अच्छा वैज्ञानिक कार्य बहुत विलक्षण शौकीनों द्वारा शांति से होता है और इसी शांत खोज का परिणाम है यह चित्र यानि कि भू-विज्ञान की नई खोज-नये जियोलाइट-बॉगसाइट का 10⁻ और 12⁻ एकक वलय का माडल जिसे शिकागो विश्वविद्यालय के जोसेफ स्थिमथ ने बनाया है।

[डा. टी.के. मुकर्जी, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110 01

माटी का मोह

लक्ष्मण लोढे

पृथ्वी से 40,000 किमी. दूर स्थित उस अंतरिक्ष यान की लाल बत्ती जलने लगी, उसी के साथ-साथ टेलीफोन की घंटी जैसी घंटी भी बजने लगी।

चंद्रा के पलंग के सिरहाने के सामने की छत पर लगा हुआ र्दा प्रकाशित हुआ और पृथ्वी के नियंत्रण कक्ष का कमरा पर्दे पर देखाई पड़ने लगा। अंतरिक्ष केंद्र के संचालक चंद्रा से बोलना चाह हे थे, लेकिन चंद्रा की उनसे बोलने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं थी। वह कुछ सुनना भी नहीं चाहता था। परंतु उन्हें देखे बिना, उनसे बोले बेना, उनकी सुने बिना कोई चारा भी तो नहीं था।

चंद्रा ने पलंग पर पड़े-पड़े आंखें खोली और पर्दे पर देखने की बजाय अंतरिक्ष यान के अंदर चारों ओर देखा। उसको बचपन में पढ़ी टालस्टॉय की कहानी याद आ गई, "एक मनुष्य को कितनी जमीन चाहिए?" उस कहानी का तात्पर्य था कि मनुष्य को उसे दफनाने के लिए केवल साढ़े तीन हाथ जमीन की आवश्यकता होती है। चंद्रा के चेहरे पर एकाएक विषाद भरी मुस्कान फैल गई। वास्तव में इस अंतरिक्ष यान में उसके हिस्से उतनी ही जमीन आई थी यानि उसकी कब्र के जितनी।

कब्र शब्द मन में आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गए।

"चंद्रा मैं तुमसे ही बोल रहा हूं, इधर ध्यान दो", अंतरिक्ष केंद्र के संचालक उसे डाट रहे थे।

"हां! कहिए.... सुन रहा हूं।"

"चंद्रा आज यह मैं तुम्हें तीसरी बार चेतावनी दे रहा हूं। पिछले तीन दिनों में तुमने अपना जांच अभ्यास बिल्कुल नहीं किया।"
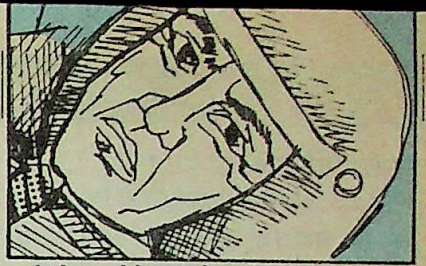
"हां नहीं किया।"

"क्यों ऐसा कब तक चलेगा, चंद्रा? यह तुम्हें करना ही है। तुम जानते हो मनुष्य निर्मित इस प्रथम अंतरिक्ष यान के तुम प्रथम मानव हो, यानि संपूर्ण मानव सृष्टि के प्रथम प्रतिनिधि और तुम्हें पता है इस अंतरिक्ष यान के लिए कितना खर्च हुआ है?"

"हां! मालूम है!"

"तो ध्यान से सुनो! इसे हमेशा पूर्ण रूप से चालू स्थिति में रखना तुम्हारी ही जिम्मेदारी है। कंप्यूटर सब कुछ कर रहे हैं। विश्व की सारी जानकारी आवश्यकतानुसार कंप्यूटर इकट्ठा कर तुम्हें भेज रहे हैं।"

"मुझे, मेरा तो प्रश्न ही नहीं उठता?"

"जानते हुए भी तुम अनजान बन रहे हो? कंप्यूटर ही तो कर रहे हैं सब, परंतु इनमें कुछ खराबी आ जाये तो उसे ठीक करने का काम तुम्हारा है। अतः कंप्यूटरों की जांच तुम्हें दिन में एक बार तो करनी ही होगी, यह तुम्हारे अनुबंध में निश्चित था।"

"अनुबंध में और भी बहुत सी बातें निश्चित थीं। मुझे तीन वर्षों में पृथ्वी पर लौटना था, उस अनुबंध का क्या हुआ?" चंद्रा ने ऊब कर कहा।

"मुझे पता है, वह भी मेरे ध्यान में है।" संचालक फिर समझाने के स्वर में बोले, "परन्तु उसके लिए दो बातें जरूरी हैं। एक, तुम्हें वापस लाने का तंत्रज्ञान हमें मिले और दूसरा, तुम्हारे जितना ही योग्य मनुष्य भी तो मिलना चाहिए जो तुम्हारा काम संभाल ले। आज तक तुम्हारे जितना बुद्धिमान मनुष्य हमें मिला भी नहीं, एक तरह से यह तुम्हारी विजय है—अभी भी तुम पृथ्वी के सबसे बुद्धिमान....!"

"बस.... करो यह सब, मुझे सब याद है।" चंद्रा के स्वर कड़ुवाहट भरे थे।

"देखो चंद्रा, तुम्हारा यह व्यवहार ठीक नहीं। माना कि मूल करार की अपेक्षा तुम्हें कुछ दिन अधिक रहना पड़ रहा है लेकिन उसके बदले तुम्हारा पूरा वेतन तुम्हारे नाम से बैंक में जमा हो रहा है। तुम्हारे परिवार को भी वेतन मिल रहा है। वे उसका उपयोग कर रहे हैं। ...यह सब जाने दो तुम आज का कार्य कब शुरू करोगे? उठो और अब शुरू करो।"

"नहीं करता अभी, बाद में करूंगा, जब मेरे मन में आयेगा, तब कर लूंगा।"

"तो ध्यान से सुनो, दिन में एक बार तो जांच कार्य होना ही चाहिए।" संचालक ने पुनः चेतावनी दी और पर्दे पर का प्रकाश गुम हो गया साथ ही संचालक भी अस्पष्ट होते हुए दृष्टि से ओझल हो गया।

"मुझे धमकी दे रहा है। कहता है परिवार वालों को वेतन देता हूं।" चंद्रा फुसफुसाया, संचालक की इस बात से उसका मन और अधिक कड़ुवाहट से भर गया। पिछले महीने संचालक ने उसकी मां, पत्नी और लड़के को पृथ्वी के केन्द्र पर स्थित कमरे में उससे मिलवाया था। तीनों ने पूछा था कि आप लौटकर कब आ रहे हो, हम दिन-रात तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पर उसे उसी दिन शंका हुई थी, उसे सारे गोल-मटोल, मौज में दिखाई दे रहे थे क्योंकि उसके यहां होने से ही उन्हें उसका वेतन मिल रहा था। उसके पृथ्वी पर लौट जाने से यह पारिवारिक आय बंद हो जायेगी। उन्हें भी उसका पृथ्वी पर लौटना पसंद नहीं था क्या? उनका बोलना, उसके बारे में उनकी जिज्ञासा सब कुछ ऊपरी लग रही थी। वे लोग आपस में उसके बारे में क्या बोलते और क्या सोचते थे, यह जान लेना उसके लिये जरूरी था—परंतु यह असंभव था क्योंकि उसे सिर्फ पृथ्वी पर स्थित केन्द्र का वह कमरा ही दिखाई देता था। उस कमरे में घटित घटनाओं को ही वह सिर्फ देख सकता था और वे उस कक्ष से उसका अंतरिक्ष यान देख सकते थे। उनका विश्व बहुत बड़ा था जिसका एक भाग ही केवल उसे दिखाई दे सकता था। वह प्रतिक्षण क्या कर रहा है इस पर उनकी दृष्टि थी।

"यह मेरा सौभाग्य है कि ये मेरे मन के विचारों को नहीं जान सकते हैं।" पलंग पर पड़े-पड़े उसने अपने बगल का एक बटन दबाया। एक तरफ की खिड़की पर का पर्दा हट गया। खिड़की से बाहर का काला आकाश और उसमें टिमटिमा रहे असंख्य सितारे दिखाई देने लगे। दो क्षण ही उसने उस आकाश की ओर देखा और फिर दरवाजा बंद कर दिया। उस आकाश की ओर क्या देखना? पिछले साढ़े चार वर्ष से वह दिन-रात वही आकाश देख रहा था—फिर उसे स्वयं पर ही हंसी आ गई। क्या दिन-रात! रात-दिन होने के लिए क्या वह पृथ्वी पर था? यहां उसके अंतरिक्ष यान पर दिन भी नहीं था और रात भी नहीं थी—साथ था सिर्फ समय का, एक अखंड, अनंत उदासीन समय का साढ़े चार साल का साथ। यह साढ़े चार साल भी पृथ्वी के दृष्टिकोण से गिने नहीं बल्कि इस अंतरिक्ष यान पर दिन-रात की संकल्पना और इसी तरह वर्ष की संकल्पना जो कि अर्थहीन थी। जीवन में कोई नयापन नहीं था। और इसीलिए भूतकाल में घटित घटनाओं को याद करने के अलावा दूसरा कोई काम नहीं था। पिछले साढ़े चार सालों में उसने यह भी हजारों बार किया था।

वह पृथ्वी का सबसे बुद्धिमान मानव होगा, ऐसा उसने कभी सोचा भी नहीं था। पृथ्वी पर वह एक साधारण इलेक्ट्रिकल इंजीनियर था—एक फैक्टरी में काम करता था। वह विवाहित था। स्वयं को वह एक सामान्य, परंतु सुखी इंसान समझता था।

एक दिन उसका, उसके वरिष्ठ अधिकारी से झगड़ा हो गया और उसने आवेश में नौकरी छोड़ दी। इंजीनियर होने के कारण उसे विश्वास था दूसरी नौकरी शीघ्र ही मिल जायेगी और फिर से वह सुखी-जीवन जियेगा, परंतु उसका यह विश्वास टूट गया। बेरोजगारी की अल्प अवधि में वह परेशान हो गया। अचानक समाचार पत्र के इस विज्ञापन पर उसकी नजर अटक गई। देश-विदेश के सभी समाचार पत्रों में यह विज्ञापन प्रकाशित हुआ था।

"मानव निर्मित प्रथम भूस्थिर अंतरिक्ष यान पर जाने हेतु प्रथम मानव होने का सम्मान किसे मिलेगा? शायद उस सम्मान के अधिकारी आप हों। नियुक्ति कंप्यूटर द्वारा की जायेगी। क्यों न आप भी प्रयत्न करें? नियुक्त व्यक्ति को केवल सम्मान ही नहीं बल्कि पांच

लाख रुपये प्रतिमाह वेतन के रूप में दिये जायेंगे।" हालांकि यान में तीन वर्ष अकेले ही गुजारनें थे किंतु जीवन के ये तीन वर्ष शेष जीवन को सुखमय तथा इतिहास में स्वयं का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखवाने का श्रेय प्रदान कर सकते थे।

मनुष्य को और क्या चाहिए पैसे एवं ख्याति। इसी के लिए सभी प्रयत्नशील रहते हैं। चंद्रा ने भी यूं ही आवेदन कर दिया था।

वर्तमान पत्रों ने उसे बुद्धिमता की जांच कहा था, परंतु वास्तव में वह बुद्धिमता की जांच थी ही नहीं—केवल बुद्धिमता की जांच हो तो विश्व में उससे अधिक कई बुद्धिमान मिलेंगे, वह अच्छी तरह समझता था।

बुद्धिमता तथा शारीरिक क्षमता के साथ एक और महत्वपूर्ण कसौटी इस प्रतियोगितात्मक परीक्षा में थी—वह थी प्रतिक्रिया अभिव्यक्ति की। अंतरिक्ष के उस प्रथम यान पर कभी भी, कुछ भी हो सकता है। दूर अंतरिक्ष में इतने समय तक मनुष्य रहा नहीं था। कोई भी घटना हो या दुर्घटना हो तो मनुष्य तुरंत उस पर प्रतिक्रिया कर नियंत्रण कर सकता है। प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए प्रत्येक को अलग-अलग समय लगता है। इस प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिए जिसे कम से कम समय लगेगा, उसी व्यक्ति का चयन कंप्यूटर करने वाला था,क्योंकि वहां आकाश में कोई व्यवधान आने पर क्या करना है,यदि पता हो तो भी वह कम से कम समय में करना आवश्यक होता है।

और अनपेक्षित रूप से चंद्रा का चयन हो गया था। उसकी प्रतिक्रिया अभिव्यक्ति का समय 0.001 सेकंड था। उसके बाद दूसरे नम्बर पर एक आस्ट्रेलियाई युवक था जिसका कार्यकाल 0.007 सेकंड था।

चंद्रा का चयन हुआ और अगले तीन महीनों में ही वह बहुत प्रसिद्धि पा गया। अगले तीन महीनों के प्रशिक्षण काल के पूर्व के यह तीन महीने उसकी दृष्टि से सचमुच अविस्मरणीय थे। सारे विश्व की पत्र-पत्रिकाओं में उसकी तस्वीर छपी थी। देश-विदेश के रेडियो, टेलीविजन संस्थाओं ने उससे साक्षात्कार लिये थे। सम्मान तो प्रायः नित्य ही होते थे।

अमरीका के ज़ॉन कनेडी स्पेस सेंटर से उसका यान आकाश में छोड़ा गया—तब वह उस दृष्य को स्वयं देख नहीं रहा था तथापि उसे विश्वास था कि संसार का प्रत्येक मनुष्य उसे प्रेम से विदा कर रहा है। संसार के किसी भी व्यक्ति को मानव जाति से इतना प्रेम पहले कभी नहीं मिला था। न यूरी गागरीन को और न ही आर्मस्ट्रांग को।

'विश्व का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति' के रूप में स्वयं का वर्णन उस दौरान उसे असंख्य बार सुनाई पड़ रहा था।

परन्तु प्रथम तीन वर्षों का करार कब का समाप्त हो चुका था। चंद्रा को वापस पृथ्वी पर लाने का तंत्र ज्ञान निश्चित ही उतने दिनों में खोजा जा चुका होगा—इस बारे में उसके मन में लेश मात्र भी शंका नहीं थी। परंतु संचालक द्वारा कही हुई दूसरी समस्या सच होने की संभावना थी। उसके जितने कम रियेक्शन टाइम वाला—कम से कम 0.002 सेकंड रियेक्शन वाला भी दूसरा व्यक्ति अब तक न मिला होगा।

क्या इस कारण मैं सदा के लिए यहां रहूं? मेरे जितना बुद्धिमान मनुष्य यदि न मिले तो उसमें मेरा क्या दोष? चंद्रा का मन विद्रोह कर उठा—परंतु वह कुछ कर नहीं सकता था। वह अकेला था और स्वयं पृथ्वी पर जा नहीं सकता था। उसे पृथ्वी पर लाना न लाना उनके हाथों में था और इसीलिए उसे उनके आगे झुकना पड़ता था।

चंद्रा के लिये जन्मजन्मांतर अंतरिक्ष में बिताने की यह कल्पना असहनीय थी। कभी वह सोचने लगता कि जैसे अंतरिक्ष यान पृथ्वी की परिक्रमा करता है वैसे ही शायद अनंतकाल तक उसका प्रेत भी पृथ्वी की परिक्रमा करता रहेगा।

संसार के सबसे बुद्धिमान मनुष्य को उससे कम बुद्धि वाले मनुष्यों द्वारा संघटित रूप से दिया गया दंड अब सिद्ध हो गया था। यह सम्मान नहीं था। यह सबसे बुद्धिमान होने के कारण मिली हुई आजन्म एकांतवास की कोठरी थी।

चंद्रा जानता था इस अंतरिक्ष संस्था के लोग जैसे भी हों, फिर भी साधारण मनुष्य इनके जितना खराब नहीं है। काश, उसके मन की आज की व्यथा यदि पृथ्वी के सामान्य लोगों तक पहुंच पाती तो शायद पृथ्वी पर हाहाकार मच गया होता। आंदोलन किये जाते, उसे वापस लाने के लिए जनता उन्हें मजबूर कर देती।

परन्तु.... सब सोचना व्यर्थ था।

शिव लिंग पर विराजमान नाग के समान ही अंतरिक्ष संस्था के लोग थे। साधारण मनुष्य निःसंदेह सहृदय होते हैं किन्तु ये लोग निर्दयी हैं, विडम्बना यह थी कि वह साधारण मनुष्यों तक पहुंच नहीं सकता था। इसीलिए इधर उसने सत्याग्रह शुरू कर दिया था। रोज का उसका जांच अभ्यास न करना अंतरिक्ष संस्था के संचालक को अब परेशान कर रहा था।

पलंग पर पड़े-पड़े चंद्रा को अपने सत्याग्रह का परिणाम भी महसूस हो रहा था। यदि उसने ऐसा ही हठीला व्यवहार जारी रखा तो वो बदला ले सकते थे, उसे पृथ्वी पर कभी न लौटाने का निश्चय करके! शांतिपूर्वक चंद्रा उठा और अपने नित्य अभ्यास की गिनती की। वे हमेशा उसका निरीक्षण करते रहते हैं—उसे उनकी इच्छानुसार गर्दन झुकानी ही पड़ेगी।

"चंद्रा, क्या कर रहे हो?" अंतरिक्ष यान का वह पर्दा प्रकाशमान हुआ और संचालक का गुस्से भरा स्वर चंद्रा के कानों पर पड़ा।

"मैं क्या कर रहा हूं यह आपको दिखाई दे रहा है न? फिर क्यों पूछ रहे हो?"

"देखो—चंद्रा, यू आर एक्सपोजिंग यूवरसेल्फ टू कॉस्मिक रेज। इसका परिणाम भयंकर होगा, तुम मर जाओगे।"

"मुझे पता है", चंद्रा इतना ही बोला था। तब तक वह अंतरिक्ष यान की खिड़की के चार में से तीन पेंच खोल चुका था। आखिरी पेंच निकालने से पूर्व चंद्रा ने कहा, "मनुष्य के शरीर पर अंतरिक्ष की कॉस्मिक किरणों का निश्चित रूप से क्या परिणाम होगा इसका तुम लोगों ने आज तक सिर्फ अंदाज ही लगाया है न? मनुष्य को इस तथ्य का पता लगे इसलिए मैं स्वयं ही बलि का बकरा बन रहा हूं! 'गिनीपिग बन' रहा हूं तुम्हारे लिये।"

(शेषांश पृष्ठ 42 पर)

....और लटक गई हब्बल अंतरिक्ष में

सुभाष शर्मा

अप्रेल 24, 1990 को शटल डिस्कवरी ने उड़ान भरी और हब्बल दूरबीन को अंतरिक्ष में स्थापित कर दिया। यह अंतरिक्ष दूरबीन वैसे तो नवम्बर 1984 में ही तैयार हो गयी थी लेकिन चैलेंजर शटल की दुर्घटना तथा अन्य कई कारणों से इसको अंतरिक्ष में स्थापित करने का कार्यक्रम बार-बार स्थागित होता रहा। प्रक्षेपण में विलम्ब के कारण इस दूरबीन को कैलीफोर्निया स्थित लौकहीड प्लांट के एक विशेष कक्ष में रखा गया और इसके रखरखाव पर नवम्बर, 1984 से ही औसतन एक करोड़ डालर प्रतिमाह खर्चा भी करना पड़ा। इस प्रकार से यह कार्यक्रम कुल मिलाकर काफी महंगा पड़ा है।

इतनी अर्थहानि के बाद भी इसे अंतरिक्ष में स्थापित करने का क्या लाभहोगा? यह प्रश्न सबके मन में बार-बार उठा ही होगा। वास्तव में दूरबीन एक यांत्रिक आंख होती है जो इस पर पड़ने वाले प्रकाश के आधार पर विभिन्न सूचनाएं देती है। बाह्य अंतरिक्ष में दूरदराज़ से आने वाले विशिष्ट प्रकाश की तीव्रता तो पहले से ही काफी कम होती है और पृथ्वी के सघन वायु मण्डल में प्रवेश करने पर वह और भी कमजोर पड़ सकती है जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर स्थित दूरबीनों से कम सूचना ही प्राप्त हो पाती है। उधर अंतरिक्ष स्थित दूरबीन जहां एक ओर कम तीव्रता के प्रकाश से अनेक सूचनाएं एकत्र कर सकती है वहीं यह काफी विस्तृत क्षेत्र से प्रकाश को बटोर भी सकती है। इस कारण से अंतरिक्ष में स्थित दूरबीन अपेक्षाकृत अधिक जानकारियां प्रदान कर सकती है। वैसे प्रकाश के आधार पर जानकारी प्राप्त करना बहुत ही विस्मयकारी है। अब यदि हम अपनी आंख को ही लें तो यह पृथ्वी और समुद्र तल पर कुछ ही किलोमीटर दूर की वस्तुओं को देख पाती है लेकिन आकाश में ऐसे पिंडों के प्रकाश को भी हमारी आंख देख सकती है जो हजारों या लाखों नहीं बल्कि करोड़ों और अरबों किलोमीटर दूर स्थित हैं। कई बार तो हम उन पिंडों को भी आकाश में देखते रहते हैं जो वास्तव में समाप्त भी हो गए होते हैं। इसका कारण यह है कि इन पिंडों से निकला प्रकाश ही पृथ्वी तक आने में सैकड़ों वर्ष का समय लेता है। जब हम इतना सब आंखों से ही देख सकते हैं तो फिर अंतरिक्ष स्थित दूरबीन से तो अंतरिक्ष के अनेक रहस्य उजागर होने चाहिये। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह दूरबीन आकाश गंगा के रहस्यों से पर्दा उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी। यह क्वासार पिंडों जो हमसे सर्वाधिक दूरी पर स्थित हैं के बारे में सूचनाएं एकत्र करेगी। एक क्वासार से 1000 करोड़ तारों वाली आकाश गंगा से भी सौ गुना ऊर्जा निकलती है। ब्लैक होल (श्याम विवर) के बारे में भी यह दूरबीन अनेक जानकारियां एकत्र करेगी।

वैसे तो अंतरिक्ष में हब्बल की स्थापना एक सामान्य सा वैज्ञानिक कार्य माना जा सकता है लेकिन इसकी महत्ता को किसी भी प्रकार से कम नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों का कहना है कि कोई पौने चार सौ वर्ष पहले गैलीलियों ने 1609 में जब पहली दूरबीन बनायी थी तब खगोलीय पिंडों के अध्ययन का एक नया युग शुरू हुआ था। उसी प्रकार हब्बल दूरबीन भी अंतरिक्ष की अनेक गुत्थियों को सुलझाकर एक नये युग का सूत्रपात करेगी। हब्बल दूरबीन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रिंसटन विश्वविद्यालय के प्रो. लायमन स्पिटजर का कहना है कि जिस प्रकार 6 दशक पहले तक क्वासार पिंडों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी, लेकिन पालीमर में 508 सेमी. तथा माउंट विल्सन में 254 सेमी. व्यास वाली दूरबीन की स्थापना से क्वासार पिंडो का पता चला, उसी प्रकार यह दूरबीन भी ऐसी ही नयी जानकारी देगी। माउंट विल्सन दूरबीन को तो स्वयं एडविन हब्बल ने ही स्थापित किया था। इसी से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उन्होंने कहा था कि ब्रह्मांड लगातार फैल रहा है। उन्हीं के नाम पर इस दूरबीन का नाम 'हब्बल दूरबीन' रखा गया है। वास्तव में वैज्ञानिक जगत की हब्बल के प्रति यह एक विनम्र श्रद्धांजलि है। जहां हब्बल ने ब्रह्मांड के बारे में अनेक बातें उजागर की वहां हब्बल दूरबीन तो 10-20 अरब वर्ष पूर्व तक घटित हुई कुछ ब्रह्माण्डीय घटनाओं की जानकारी प्राप्त करेगी।

इस दूरबीन के पांच महत्वपूर्ण अंग हैं। इनमें एक अति आधुनिक कैमरा है जो काफी दूर के पिंडों के चित्र ले सकता है। एक अन्य कैमरा धुंधले पिंडों के चित्र लेने के लिए है। यह दोनों कैमरे अंतरिक्ष को पांच गुना अधिक गहराई से तथा पच्चीस गुना अधिक धुंधले पिंडों को दस गुना अधिक सूक्ष्मता से देख सकेंगे। इसके अतिरिक्त इस दूरबीन में

हब्बल दूरबीन में दो अत्याधुनिक कैमरे, दो स्पेक्ट्रोग्राफ और एक प्राथमिक दर्पण है।

दो स्पेक्ट्रोग्राफ हैं जो चमकीले और धुंधले पिंडों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे। इसमें दूरदराज से आने वाले प्रकाश की तीव्रता को मापने का एक फोटोमीटर भी है। इन सारे उपकरणों के लिए इस दूरबीन में लगे 235 सेमी. (94 इंच) के प्राथमिक दर्पण का महत्व सबसे अधिक है। इसके मध्य में 65 सेमी. व्यास का छेद भी है। सबसे पहले आने वाला प्रकाश इसी दर्पण पर पड़ेगा, इससे परावर्तित होकर यह 32.5 सेमी. व्यास वाले द्वितीयक दर्पण पर पड़ेगा जो इसे कैमरों तथा स्पेक्ट्रोग्राफों की ओर भेजेगा। इस प्रकार से इस दूरबीन के लिए प्राथमिक दर्पण का महत्व सबसे अधिक है। स्पष्ट है कि इस दर्पण की दो मुख्य विशेषतायें होनी चाहिए। पहली तो यह कि यह पड़ने वाले लगभग समस्त प्रकाश को परावर्तित करने में समर्थ होना चाहिये और दूसरी यह कि इसकी सतह भी चिकनी होनी चाहिए।

नासा ने इस दर्पण की सतह के निर्माण के लिए यह शर्त लगायी थी कि इसकी सतह पर पड़ने वाले नियान प्रकाश की तरंग, लंबाई के चौसठवें भाग तक ही खुरदरी हो सकती हैं, जिसका अर्थ है कि इसमें सेमी. के दो लाखवें भाग के बराबर गहरे गड्ढे हो सकते हैं यदि प्राथमिक दर्पण को मैक्सिको की खाड़ी के बराबर मान लिया जाये तो इस पर बनने वाले उबड़-खाबड़ स्थानों की ऊंचाई 0.55 सेमी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसी पैमाने पर किसी भी अच्छे चश्मे के शीशों पर 15 मीटर ऊंची नीची सतह दिखायी देगी।

इस दर्पण को बनाने का ठेका नासा ने 1977 में पर्किन-एल्मर कारपोरेशन को दिया। वास्तव में इस ठेके को लेने में पर्किन-एल्मर की निगाह 6 करोड़ डालर के सोलर ऑप्टिकल दूरबीन पर थी जि

हब्बल अंतरिक्ष में लगातार 15 वर्ष तक कार्य करेगी न ही मौसम से प्रभावित होगी।

हब्बल के 4 वर्ष बाद अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किया जाना है। कोई दो दर्जन इंजीनियरों तथा अन्य सहायकों ने 1981 में इसका निर्माण पूरा किया। प्राथमिक दर्पण को बनाने का ठेका लेने के लिए पर्किन-एल्मर ने अपनी तकनीकी क्षमता को सिद्ध करने के लिए, ठेका लेने से पूर्व एक ऐसी दूरबीन नली बनायी जो अंतरिक्ष में केवल एक सेमी. का 6 करोड़वां भाग ही बढ़ेगी या घटेगी। इसके साथ ही उन्होंने ऐसे सैंसरों के बनाने में भी सफलता प्राप्त की जिसकी दृष्टि से 250 किमी. दूर उड़ती हुई मक्खी भी नहीं बच सकती। इन सफलताओं से प्रेरित होकर ही पर्किन-एल्मर 7 करोड़ डालर में हब्बल के लिए आवश्यक दर्पण वगैरह बनाने के लिए तैयार हो गयी। इससे पहले यह फर्म अंतरिक्ष दूरबीन कॉपरनिकस के लिए दस लाख डालर में आवश्यक दर्पण नहीं बना सकी थी।

इस दर्पण पर पालिश करने के लिए भी कीलों का विशेष चबूतरा बनाया गया जिस पर यह दर्पण अंतरिक्ष की तरह ही टिकाया जा सकता था। इस कीलों के चबूतरे को बनाने में 20 लाख डालर लगे। चार वर्ष के दौरान हब्बल कार्यक्रम का कुल खर्चा 43.5 करोड़ डालर से बढ़कर 1.1 अरब डालर तक पहुंच गया। इसी कारण नासा को प्राथमिक दर्पण की जल्दी लगी थी। उधर इस पर रिग्बी और उनके सहयोगी पालिश कर रहे थे। इस पालिश में हुई कुछ गड़बड़ी के कारण प्राथमिक दर्पण की सतह अपेक्षित सीमा तक अर्थात y/64 तक समतल नहीं हो पायी थी। नासा जल्दबाजी में अपने पुराने मानदंड में भी ढील देने को तैयार थी लेकिन रिग्बी ने इसे स्वीकार नहीं किया और बाद में उन्होंने दर्पण को निर्धारित मानदंड से 20% अधिक समतल करने में सफलता प्राप्त कर ली, जिसका अर्थ था कि यदि इस दर्पण को मैक्सिको की खाड़ी के बराबर बड़ा माना जाए तो इसकी हाइपरबोलिक सतह में केवल आधा सेमी. के उतार-चढ़ाव ही हो सकते हैं। इस दर्पण को घिसने के बाद इस पर लेपन या कोटिंग की बात आयी जिसे करडाक व उनके सहयोगियों ने पूरा किया। लेपन के लिए 15 लाख डालर की लागत से विश्व का सबसे बड़ा निर्वात लेपन कक्ष बनाया गया। इसके लिए एक सप्ताह तक शक्तिशाली पम्पों द्वारा जो दबाव पैदा किया गया वह अंतरिक्ष में हब्बल को स्थापित करने के स्थान के दबाव का 1000 वां भाग ही था। दर्पण पर लेपन करने के लिए चांदी के स्थान पर एल्युमिनियम को चुना गया क्योंकि यह पराबैंगनी प्रकाश को सोख लेता है। दर्पण पर एल्युमिनियम की एक सेमी. के दस लाखवें भाग के बराबर मोटाई की तथा मैग्नीशियम क्लोराइड की एक सेमी. के चार लाखवें भाग के बराबर मोटी परत चढ़ायी गयी। यह परत इतनी हल्की थी कि यदि यह वातावरण में फैल जाती तो वातावरण में कई दिन तक धुएं की तरह ही दिखायी देती रहती। कुल मिलाकर इस दर्पण को नासा की निर्धारित तकनीकी मानदण्डों से भी बेहतर बनाया गया। इससे दूरबीन को अपेक्षा से 10 प्रतिशत अधिक प्रकाश मिलेगा जिसके कारण हब्बल दूरबीन का दर्पण अंतरिक्ष में एक अरब प्रकाश वर्ष के बराबर अधिक दूरी तक झांक सकेगा।

कुल मिलाकर हब्बल कार्यक्रम अब तक का सबसे महंगा मानव विहीन कार्यक्रम तो रहा है, लेकिन इसकी मदद से अनेक ऐसी जानकारियां मिल सकती हैं जिनके बारे में आज हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। नये बने तारों, ब्रह्मांड के आविर्भाव; तारों के विकास आदि के बारे में यह दूरबीन महत्वपूर्ण जानकारी एकत्र करेगी। कुछ वैज्ञानिक तो यह भी मानते है कि हब्बल दूरबीन ऐसी जानकारी भी जुटा सकती है जिसके विश्लेषण से ऐसे तथ्य सामने आयेगें जिनके बारे में आज तक किसी ने कल्पना भी न की हो।

अनुमान है कि यह दूरबीन अंतरिक्ष में कोई पंद्रह वर्षों तक रात दिन काम करेगी और ब्रह्मांड के रहस्यों को कैद करके पृथ्वी पर भेजेगी। इसमें बिजली बनाने के लिए सौर पैनल लगे हैं। इस दौरान इस पर किसी भी तरह से मौसम का प्रभाव नहीं पड़ेगा। हां! बीच-बीच में इसकी मरम्मत की व्यवस्था की गयी है। यही नहीं

ब्रह्मांड के अतीत में झांकने को तत्पर हब्बल दूरबीन

लम्बाई में 42 फीट और 14 फीट व्यास वाली भीमकाय हब्बल दूरबीन अंतरिक्ष में त्रिशकु की तरह लटकी हुई ब्रह्मांड के अतीत के रहस्य खोलने को तत्पर है। अमेरिकी अंतरिक्ष शटल डिस्कवरी द्वारा मंगलवार एक मई को पृथ्वी की कक्षा में 357 करोड़ रुपये की लागत से स्थापित इस दूरबीन का हब्बल नाम इसके निर्माता खगोल शास्त्री हब्बल के नाम पर रखा गया है।

हब्बल टेलीस्कोप की तुलना वैज्ञानिक फंतासी फिल्मों में दिखाई गई टाइम मशीन से की जा सकती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार यह शक्तिशाली दूरबीन ब्रह्मांड की सबसे दूरस्थ, सबसे धूमिल दिखाई देने वाली और नवजात वस्तुओं का, चाहे वे तारक ग्रह हों, उल्का पिंड, या आकाश गंगाएं हों या क्वासार, स्पष्ट दर्शन करा सकेगी।

केलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के खगोल शास्त्री जेम्स वेस्टफाल के अनुसार हब्बल टेलीस्कोप की मदद से बीते युगों को भी देखा जा सकेगा। यह दूरबीन आकाश में लटकी वस्तुओं द्वारा अब से करोड़ों वर्ष पहले फेंकी गई प्रकाश किरणों को भी देख रही होगी। उदाहरण-स्वरूप सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश किरणों को पहुंचने में लगभग आठ मिनट का समय लगता है, इससे पृथ्वीवासी सूर्य को आठ मिनट पूर्व रूप में देखता है। इसी प्रकार जब हम एक अरब प्रकाश वर्ष दूर स्थित किसी आकाश गंगा को देखते हैं तो हमें आकाश गंगा का आज से एक अरब प्रकाश वर्ष पहले का रूप दिखायी देता है।

इससे भी अधिक दिलचस्प बात क्वासार के संबंध में है। क्वासार इस ब्रह्मांड के दूसरे छोर पर स्थित तारक ग्रह हैं। यद्यपि वे किसी अन्य बड़े तारे के समान ही हैं, लेकिन उनमें से प्रत्येक से इतना अधिक विकिरण होता है जितना सम्भवतः एक पूरी आकाश गंगा से होता हो। वेस्टफाल के अनुसार जब 10 लाख प्रकाश वर्ष दूर किसी क्वासार से प्रकाश की एक किरण ने अपनी आकाश गंगा की यात्रा आरंभ की होगी तो पृथ्वी की आकाश गंगा दूधिया ब्रह्मांड धूलि और गैस का घूमता घना बादल ही रही होगी। क्वासार से प्रकाश किरण की दीर्घयात्रा के समय में यह धूल और गैस एकत्र होकर आकाश गंगा के रूप में ठोस हो गई जिसमें हमारा सूर्य और पृथ्वी स्थित हैं।

पृथ्वी के दूषित वायुमंडल के कारण पृथ्वी पर स्थित सर्वाधिक विशालकाय टेलीस्कोप भी 10 अरब प्रकाश वर्ष से अधिक दूर तक नहीं देख सकती और उतनी दूरी के भी केवल धुंधले चित्र ही ग्रहण कर सकती है। अंतरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में स्थापित हब्बल टेलीस्कोप 14 अरब प्रकाश वर्ष पुरानी प्रकाश किरणों को भी ग्रहण कर सकती हैं। अधिकतर खगोल शास्त्रियों का अनुमान है कि "महाविस्फोट" (बिग बैंग) की घटना, जिसके कारण तारों और ग्रहों का जन्म हुआ, 15 अरब वर्ष पुरानी है। वैज्ञानिकों को आशा है कि हब्बल दूरबीन से उस प्रकाश पुंज को देखा जा सकेगा जो लगभग 14 अरब साल पहले पृथ्वी की ओर रवाना हुआ था।

हब्बल टेलीस्कोप से खगोल शास्त्रियों को बड़ी आशाएं हैं। नासा के अंतरिक्ष दूरबीन कार्यक्रम के एक वैज्ञानिक एडवर्ड वाडलर के अनुसार इस हब्बल टेलीस्कोप की सहायता से ब्रह्मांड की 92 प्रतिशत आयु का सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकेगा। जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय के खगोल शास्त्री डगलस डंकन तो उस युग को देखने के लिये उद्यत हैं जब आकाश गंगा पहली बार बननी आरंभ हुई। इससे हम अपनी आकाश गंगा के जन्म का भी पता लगा सकेंगे।

इस नये शक्तिशाली टेलीस्कोप से ब्रह्मांड के अंतिम भविष्य का भी पता चल सकेगा। खगोल शास्त्री हब्बल ने पता लगाया था कि अधिकतर आकाश गंगाएं पृथ्वी से दूर हटती जा रही हैं क्योंकि यह सारा ब्रह्मांड ही पहले महाविस्फोट के बाद आकार में फैलता जा रहा है।

आश्चर्य चकित कर देने वाले सुपरनोवा के अध्ययन में भी इस टेलीस्कोप से मदद मिलेगी। अभी तक पृथ्वी पर स्थित सर्वाधिक शक्तिशाली दूरबीनों से एक अरब प्रकाश वर्ष दूर तक स्थित सुपर नोवा का ही पता चल सकता था। हब्बल टेलीस्कोप से पांच अरब प्रकाश वर्ष दूर स्थित सुपर नोवा को भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकेगा। इन दूरस्थ सुपरनोवा के अध्ययनों से इस बात का पता भी लग सकेगा कि ब्रह्मांड की गति धीमी क्यों हो रही है?

हब्बल टेलीस्कोप का सम्भवतः सबसे बड़ा लाभ ब्रह्मांड को एक सही रूप देने के लिए होगा जिसमें पृथ्वी से तारों की और तारों के बीच की दूरियां काफी हद तक सही नापी जा सकेगी।

इसके 70 के लगभग कलपुर्जे ऐसे हैं जिन्हें अंतरिक्ष में ही बदला जा सकता है। कुल मिलाकर यह दूरबीन वैज्ञानिक एवं तकनीकी जटिलता का एक जीता-जागता उदाहरण है। दुनिया भर के वैज्ञानिक अपने-अपने प्रयोगों के लिए इसका उपयोग करेंगे। फिलहाल ऐसे प्रयोगों की संख्या 162 है। इन प्रयोगों को प्राथमिकता के आधार पर चुना गया है। प्रथम चरण के बाद दूसरे चरण में भी प्रयोगों को किया गया जाएगा और तब तक ब्रहमाण्ड के कुछ रहस्य से पर्दा उठना प्रारंभ हो चुका होगा।

[डा. सुभाष शर्मा, भौतिक विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार, गढ़वाल]

शीतल पेय कितने सुरक्षित

'शीतल पेयों का समाज के उच्च तथा मध्य वर्ग में अपना एक सम्मानित स्थान है। वर्षों से इन पेयों की बोतलें लोगों के फ्रिजों को सुशोभित कर रही हैं। शहरी बच्चों का बस चले तो पानी के बदले हर समय वे इन बोतलों से ही अपनी प्यास बुझायें। लेकिन दुर्भाग्य से पिछले कुछ समय से शीतल पेय को संदेहात्मक परिस्थितियों से गुजरना पड़ रहा है।

इन पेयों में उपयोग होने वाले ब्रोमीनयुक्त वनस्पति तेलों अथवा ब्रोमीनेटेड वेजीटेबल आयल (बी.वी.ओ.) के हानिकारक प्रभावों के कारण विश्व स्वास्थ्य संस्थान की रिपोर्ट से एक चिंतनीय स्थिति उत्पन्न हो गई है। इस अध्ययन के अनुसार बी.वी.ओ. मानव कोशिकाओं को हानि पहुंचा सकता है, कैंसर जैसे रोग को प्रेरित कर सकता है और इसके कारण त्वचा से संबंधित कई विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

शीतल पेय, जिन्हें मृदु पेय या कार्बोनेटेड पेय भी कहते हैं, कई रसायनों के मिश्रण होते हैं। इनमें मुख्य हैं पेय को स्वादिष्ट तथा सुगंधित बनाने वाले पदार्थ जिन्हें 'फ्लेवरिंग एजेन्ट' कहते हैं। इस के लिए अधिकतर सुगंधित तेलों का प्रयोग होता है। ये तेल पानी में अघुलनशील होने के कारण मृदु पेय के ऊपर तैरने लगते हैं। लेकिन पेय को आकर्षक बनाने के लिये फ्लेवरिंग एजेन्टों का पेय में घुलना आवश्यक है। अतः इनको पूर्णतः विलेय करने के लिए विशेष रसायनों 'डिस्परसिंग एजेन्ट' का प्रयोग करना पड़ता हैं। बहुप्रचलित बी.वी.ओ. ही मृदु पेयों में डिस्परसिंग एजेन्ट का कार्य करता है।

बी.वी.ओ. के अतिरिक्त जो रसायन डिस्परसिंग एजेन्ट का कार्य करते हैं उन में मुख्य हैं: ग्लाइसिरायल एबीटेट (एस्टर गम), सुक्रोज एसीटेट आइसोब्यूटाइरेट, ग्लाइसिरोल ट्राइबेन्जोएट तथा प्रोपाइलीन डाइबेन्जोएट का मिश्रण व डेका-ग्लाइसिरोल एस्टर्स का मिश्रण।

बी.वी.ओ. न केवल फ्लेवरिंग पदार्थों का पेय में समान वितरण करता है बल्कि पेय के धुंधले अथवा 'क्लाउडी' स्वरूप को निखारता भी है। पेय का धुंधलापन पेय में प्रकाश के प्रवेश को रोकता है। इस प्रकार फ्लेवरिंग पदार्थों की प्रकाश से संभावित क्षति रुक जाती है तथा पेय को सुरक्षा मिल जाती है। इन्हीं गुणों के कारण बी.वी.ओ. मृदु पेय उद्योग का प्रिय डिस्परसिंग व क्लाउडिंग एजेन्ट बन गया है।

अब प्रश्न उठता है यदि बी.वी.ओ. के खाद्य पदार्थों में उपयोग से हृदय, यकृत, अंडकोष तथा गुर्दे पर घातक प्रभाव पड़ सकता है तो इस के उपयोग में अब तक प्रतिबंध क्यों नहीं लगा। इस दिशा में हमारे देश में प्रगति धीमी है, कई विकसित देश इस पर पहले ही प्रतिबंध लगा चुके हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसके उपयोग की केवल नाम मात्र (15 भाग प्रति दस लाख भाग, आज्ञा है।

भारत सरकार ने भी इस के उपयोग पर एक तरह से प्रतिबंध लगा दिया है। 'प्रिवेन्शन ऑफ फूड एडलटरेशन एक्ट' के अंतर्गत लगे इस प्रतिबंध में उद्योगों को बी.वी.ओ. के स्थानापन्न के लिए दो वर्ष का समय दिया गया था। यह अवधि अब समाप्त हो चुकी है। वन व पर्यावरण राज्य मंत्री ने भी खाद्य पदार्थों में विषैले रसायनों के उपयोग पर रोक का आश्वासन दिया है। "कन्ज्यूमर यूनिटी तथा ट्रस्ट सोसाइटी" ने भी ऐसे रसायनों के प्रयोग पर प्रतिबंध की मांग की है।

"पारले" का दावा है कि उसके उत्पादों में बी.वी.ओ. का प्रयोग समाप्त हो गया है। 'पेप्सी फूड्स' का भी कहना है कि उस के पेयों में इस रसायन का उपयोग नहीं होगा। अब प्रश्न है बी.वी.ओ. को विस्थापित करने वाला रसायन क्या है? क्या वह विषैले गुणों से पूर्णतः मुक्त है?

यदि बी.वी.ओ. पर रोक लग भी जाय तो भी ये शीतल पेय पूर्णतः सुरक्षित नहीं दिखते क्योंकि इनमें मिले हर रसायन के कुछ न कुछ दुष्प्रभाव सामने आ रहे हैं।

मृदु पेयों में उपस्थित कैफीन का संबंध हृदय रोग, ट्यूमर आदि कई रोगों से पाया गया। इनमें अम्ल की अत्यधिक मात्रा पेप्टिक अल्सर का कारण बन सकती है। इससे आमाशय में अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है, भूख कम हो जाती है। शीतल पेयों में उपस्थित साइट्रिक अम्ल व फास्फोरिक अम्ल दांतों के लिए हानिकारक हैं, फास्फोरिक अम्ल शरीर के कैल्सियम-फास्फोरस संतुलन को बिगाड़ सकता है।

ये तो थी पेय पदार्थों की बात। हमारे घरों में प्रतिदिन उपयोग होने वाले मसाले या फिर जैम, जेली, आइसक्रीम, मिठाईयां आदि खाद्य पदार्थ भी ऐसे हानिकारक रसायनों से अछूते नहीं हैं। यद्यपि इन के उपयोग पर रोक के लिए आवाज उठ रही है लेकिन वह समय अभी दूर है जब इन खाद्य पदार्थों को ऐसे हानिकारक रसायनों से पूर्णतः मुक्ति मिल पायेगी।

[श्री एम.एम.एस. कार्की, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]

परखनली में उगेगा फूलदार बांस

बाल फोंडके

> घर नम्बर पंचदश-चार, बना बाँस का जिसका द्वार!
> दीवारें औंर छत बाँस की, फर्श बाँस का? चमत्कार!

ये पक्तियां छठे दशक के मध्य में गाये जाने वाले एक लोकप्रिय गीत की हैं। इस उष्णकटिबन्धी नरकुल की प्रशंसा के साथ-साथ कवि स्पष्ट रूप से आश्चर्य चकित भी लगता है। यही इस बहुआयामी निर्माण सामग्री का दुर्भाग्य है। पौराणिक 'कल्पवृक्ष' की भांति ताड़ की भी सर्वत्र पूजा की जाती है, जबकि इस सम्मान का अधिकार अपने विस्तृत बहुप्रयोगों के कारण बांस को मिलना चाहिये था।

विशेषरूप से उष्ण कटिबन्धी प्रदेशों में बांस का महत्व स्वयं सिद्ध है। पालने में झूलने से लेकर अंतिम यात्रा के लिये बनाई गई अर्थी में प्रयुक्त बांस का मनुष्य के जन्म से मरने तक का साथ है। जानवरों के चारे और इमारती लकड़ी के स्रोत के रूप में इसका विशेष स्थान है। इसका रेशा कागज उद्योग में आवश्यक कच्चे माल के रूप में काम आता है। कुटीर उद्योग में इसकी खपरियां, टोकरियां एवं ग्रामीण गृहणियों के लिये रसोई घर में प्रयुक्त अन्य आवश्यक सामग्री बनाने

के काम में आती हैं। बेंत का उपयोग बांस के मकान, फर्नीचर आदि बनाने में भी होता है जो देखने में तो कच्चे लगते हैं परन्तु होते बड़े मजबूत हैं और न ही सड़ते-गलते हैं। गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं के निर्माण के समय कारीगरों और मजदूरों के खड़े होने के लिये मचान या 'पाड़' बांस के लट्ठों से ही बनती हैं। इसके अतिरिक्त इसकी घास और इसके कोमल प्ररोहों में इतनी अधिक मात्रा में प्रोटीन होती है कि जहां एक ओर यह मनुष्य के लिये पौष्टिक भोज्य पदार्थ है वहीं पशुओं, विशेषतः बड़े पांडाओं के लिये पौष्टिक चारा भी है। बांस के आर्थिक महत्व को देखते हुये ऐसा लगता है कि जैवप्रौद्योगिकी की तकनीकों से, जिन्होंने हरित क्रान्ति लाने में इतना योगदान दिया है, इस वृक्ष की सुधरी किस्में विकसित की जा चुकी होंगी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। हालांकि ऐसा नहीं था कि इस ओर प्रयत्न ही नहीं किए

गये। प्रयत्न तो अवश्य किये गये लेकिन जिन जैवप्रौद्योगिकीविदों ने इस पर कार्य किया वे इस पौधे के कुछ विशिष्ट लक्षणों के कारण हताश हो गये।

किसी पौधे की संकर किस्म पैदा करने के लिये दो वांछित गुणों वाली मौजूदा किस्मों में संकरण कराना आवश्यक होता है। पादप प्रजनन की भाषा में संकरण, लैंगिक प्रजनन पौधों में केवल पुष्पित अवस्था में ही संभव है। परन्तु बांस 30 वर्ष में केवल एक बार पुष्पित होता है जिससे इस दिशा में किये जाने वाले सारे प्रयत्न विफल हो

जाते हैं। हां, बीजों को रासायनिक पदार्थों से उपचारित कर या विकिरण द्वारा प्रेरित करके भी नई किस्में पैदा की जा सकती हैं। परन्तु इसके लिये बीजों की पर्याप्त मात्रा होना आवश्यक है और बीज की मात्रा केवल फूलों के बनने की दर पर ही निर्भर करती है। विकसित की गई अनेक किस्मों में से उपयोगी किस्म का चयन कर उसका आगे लालन-पालन करने में तीन से चार पीढ़ियों का समय लगता है। बात फिर यहीं आकर अटक जाती है क्योंकि बाँस की एक पीढ़ी पूरी होने में 30 या 60 या कभी-कभी 120 वर्ष तक लगते हैं।

इसके अतिरिक्त इस पौधे में और भी अनेक ऐसी रोचक विशेषतायें हैं जो पौधा समय-समय पर प्रगट करता है। यह एक विडम्बना ही है कि यह पौधा बहुत तेजी से बढ़ता है, जहां एक ओर इसकी वृद्धि दर 4 सेमी. प्रति घन्टा है, वहीं इसे पुष्पित व फलित होने में 120 वर्ष तक लग जाते हैं। यह 40 मी. तक ऊंचा बढ़ सकता है और इसके तने की मोटाई 30 सेमी. तक हो जाती है। कभी-कभी इसकी जड़ें जमीन में चारों ओर फैल जाती हैं जिनसे नये प्ररोह फूटते हैं। इसके फलस्वरूप घने और दूर-दूर तक फैले बांस के जंगलों का विस्तार होता है। लेकिन कालांतर में जब कभी पेड़ों पर फूल खिलने का समय आता है तो सारे बांस एक साथ फूलते हैं, चाहे कोई पेड़ किसी भी अवस्था में क्यों न हो। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि इसके तुरन्त बाद सारे के सारे पेड़ एक साथ समाप्त हो जाते हैं और

हरित बांसों वाला वह सुन्दर हरा भरा जंगल एक उजाड़ मैदान में परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार यह जाति पादप प्रजनकों तथा जैवप्रौद्योगिकीविदों के लिये सदैव एक चुनौती रही है। कुछ समय पूर्व तक समाधान की दिशा में कोई प्रगति नहीं हो सकी थी। परन्तु अब राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे के तीन वैज्ञानिकों ने इस चुनौती को स्वीकारा और इस अनमने पौधे को प्रयोगशाला की परखनली में समय से पूर्व पुष्पित व फलित होने को बाध्य कर दिया है।

तीन वैज्ञानिक रजनी नदगौडा, वर्षा पराश्रमी तथा टॉनी मेसकेरेन्हस ने स्वयं को इस दुष्कर कार्य के लिये तैयार किया। उन्हें बांस के पौधे में निहित उस जैविक घड़ी की गति को तीव्र करना था जिसकी कार्य प्रणाली की कोई जानकारी उन्हें उपलब्ध नहीं थी। और होती भी कैसे, क्योंकि अब तक प्रयोगशाला की परिधि में इस जिद्दी पौधे को मनाने में कोई भी सफल नहीं हुआ था। कठिनाइयों को नकारते हुये वैज्ञानिकों की इस टोली ने बांस की दो प्रजातियों— **डेंड्रोकेलेमस ब्रेन्डिसी** तथा **बेम्बूसा अरून्डीनेसिया** के बीज एकत्रित किये। उन्होंने इन बीजों को सुक्रोज तथा अगार युक्त हल्के अम्लीय पोषक माध्यम में, अंधेरे में अंकुरित होने रख दिया। एक सप्ताह में बीज अंकुरित हो गये। इस अवस्था में इन्हें मध्यम तीव्रता के प्रकाश में शीतल ताप पर रख दिया गया। इन बदलती परिस्थितियों ने मानो जादू का काम किया, अंकुरित पादपकों की लंबाई 5-6 सेमी. तक बढ़ गई।

इस सफलता से संतुष्ट होकर वैज्ञानिकों ने 3 से 4 सेमी. लम्बे पौधों के टुकड़े, उनके शीर्ष जो वृद्धि को प्रेरित करते हैं, काटकर उन्हें पोषक तत्वों के ताजे तरल मिश्रण में, कुछ और शर्करा डाल कर पुनः रख दिया। अब की बार इन संवर्धित पादपकों को शुरू से प्रकाश में इस सावधानी के साथ रखा गया कि ताप 28^0 सेल्सि. से अधिक न हो। इस उपचार का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उनसे प्ररोहों के गुच्छे फूट पड़े।

क्या है ऊतक संवर्धन?

प्रत्येक जीव, चाहे वह पौधा हो या जन्तु विभिन्न प्रकार की रचक कोशिकाओं से मिल कर बनता है। मूलतः ये कोशिकायें दो प्रकार की होती हैं : कायिक या सोमेटिक कोशिकायें जो आपस में मिलकर विभिन्न ऊतकों तथा अंगों का निर्माण करती हैं तथा आनुवंशिक अथवा जनन कोशिकायें, जो सन्तानोत्पत्ति में भाग लेती हैं।

इन दोनों प्रकार की कोशिकाओं में मुख्य अंतर उनमें संचित आनुवंशिक सूचना की कुल मात्रा से होता है। कायिक कोशिकाओं में क्रोमोसोमों के जोड़ों की पूरी संख्या होती है जबकि जनन कोशिकायें पौधों में परागकण तथा अण्ड कोशिका और जन्तुओं में शुक्राणु तथा डिम्ब में हर जोड़े में केवल एक क्रोमोसोम होता है। जब एक डिम्ब, शुक्राणु द्वारा निषेचित होता है तो परिणामस्वरूप बनी जर्म कोशिका में दोनों समूहों यानि नर और मादा से आने वाले क्रोमोसोम से हर क्रोमोसोम का जोड़ा तैयार होता है। क्रोमोसोम की संख्या इस प्रकार पूरी होने से उस निषेचित कोशिका में संपूर्ण आनुवंशिक सूचनायें उपलब्ध होती हैं। जर्म कोशिका विभाजित होकर संतति कोशिकायें बनाती है और इस तरह प्रत्येक संतति कोशिका में क्रोमोसोम के पूरे जोड़े उपस्थित रहते हैं, जैसे कि माता कोशिका में थे। परिणामस्वरूप संतति कोशिका में, माता कोशिका में उपस्थित आनुवंशिक रूप का सही-सही प्रतिरूप उभरता है। वृद्धि की प्रावस्था में कोशिकाओं की संख्या निरंतर बढ़ती जाती है। एक निर्धारित स्थिति में कुछ कोशिकाओं में विशेष परिवर्तन होने लगते हैं जिससे वे बहुकोशिकीय व बहुअंगीय जीव के विभिन्न अंगों के निर्माण में एक रचक के रूप में काम में आ सकें।

किसी भी विकसित प्राणी में विभिन्न विशिष्ट कोशिकायें सौंपे गये विशिष्ट कार्यों को ही करती हैं। यद्यपि उनमें से प्रत्येक कोशिका में पूरी आनुवंशिक सूचना निहित रहती है परन्तु फिर भी उसका कुछ भाग ही कोशिका द्वारा सुचारु रूप से किये जाने वाले कार्य हेतु उपयोग में लाया जाता है। इनमें से प्रत्येक कोशिका में भी संपूर्ण आनुवंशिक सूचना उपस्थित रहती है जो जर्म कोशिका में उपस्थित थी तथा जिससे पूरे जीव का निर्माण हुआ। अतः सैद्धांतिक रूप में प्रत्येक कायिक कोशिका में जर्म कोशिका के समान क्षमता होती है। यदि किसी प्रकार प्राणी की भलाई और उसकी उत्तरजीविता के लिये प्रकृति द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों को हटा कर उपयुक्त वातावरण उत्पन्न किया जाये, तो कायिक कोशिकाओं की इस सुप्त क्षमता को उभारा जा सकता है। ऊतक संवर्धन की प्रक्रिया इस दिशा में एक कदम है।

आज से डेढ़ सौ वर्ष से भी पूर्व जर्मन जन्तु विज्ञानी थियोडोर श्वान ने सबसे पहले यह सुझाव दिया था कि कोशिकाओं को शरीर से बाहर भी विकसित किया जा सकता है, परन्तु तब यह एक कोरी कल्पना थी। इसे प्रायोगिक रूप से जांचने में अगले पचास वर्ष और लगे। श्वेत रक्त कोशिका यानि ल्यूकोसाइट्स को सबसे पहले ऊतक संवर्धन के द्वारा उगाया गया। विकसित पौधों में इस प्रक्रिया का सफलतापूर्वक प्रयोग केवल इस शताब्दी के आरम्भ में ही संभव हो सका।

पिछले दो दशकों में पौधों पर इस दिशा में अपेक्षाकृत तीव्रता से उन्नति हुई है। प्रयोगशाला में संवर्धित पौधे के छोटे प्ररोह के शीर्ष से पूरा पौधा विकसित कर लिया गया है। कई बार तो संवर्धित प्ररोहों से प्राप्त पादपकों को भूमि पर प्रतिरोपित कर ठीक-ठाक ढंग से देखभाल कर पूर्ण पौधे के रूप में विकसित कर लिया गया है।

इस कार्य के लिये सबसे पहले पौधे का कोई भाग—प्ररोह, तना, पत्ती या पुष्पगुच्छ—पौधे से काट कर अलग कर लिया जाता है और इसे उचित पौष्टिक माध्यम में रखा जाता है। इस क्रिया में वैज्ञानिक का काम एक ऐसे उचित पौष्टिक माध्यम की खोज करना है जो संवर्धित कोशिकाओं की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तथा जिसमें उनका द्रुत एवं क्रमिक विकास हो सके। यद्यपि आज ऊतक संवर्धन हेतु अनेक पौष्टिक माध्यम उपलब्ध हैं लेकिन केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के तोशियो मुराशिगे द्वारा तैयार माध्यम पूरे विश्व में प्रयुक्त किया जाता है।

प्रायः पौधे से काटे गये भाग की विभिन्न बैक्टीरिया, कवक आदि से शीघ्र ही संक्रमित होने की संभावना होती है। ये सूक्ष्म जीवाणु भी प्रचुर पोषक युक्त संवर्धन माध्यम में पोषित हो कर तेजी से बढ़ते हैं। इससे न केवल संवर्धन माध्यम दूषित हो जाता है अपितु पौधों की कोशिकाओं के लिये आवश्यक पदार्थों की भी कमी हो जाती है। इस समस्या से निपटने के लिये दो सावधानियां अपनायी जाती हैं।

पहली, तो यह कि उपयोग से पहले माध्यम को पूरी तरह रोगाणु रहित कर दिया जाये तथा दूसरी जीवाणुओं की वृद्धि रोकने के लिये माध्यम में कुछ प्रतिजैवी पदार्थ मिला दिये जायें। संवर्ध माध्यम द्रव या ठोस किसी भी प्रकार का हो सकता है। ठोस माध्यम के लिये इसमें पौष्टिक कार्बोहाइड्रेट अगार मिलाया जाता है। इस माध्यम में उगाये जाने पर पौधे की कोशिकायें निरन्तर विभाजित होकर कोशिकाओं का एक समूह बना लेती हैं, लेकिन इन कोशिकाओं में कोई भिन्नता नहीं होती। कोशिकाओं के इस अविभेदित समूह को 'कैलस' कहते हैं।

कैलस (चित्र अ) समान कोशिकाओं से बना तथा अनियमित आकार का घना पिण्ड होता है जिसमें सामान्यतः एक पौधे के सभी भाग होते हैं, लेकिन वे दिखाई नहीं देते।
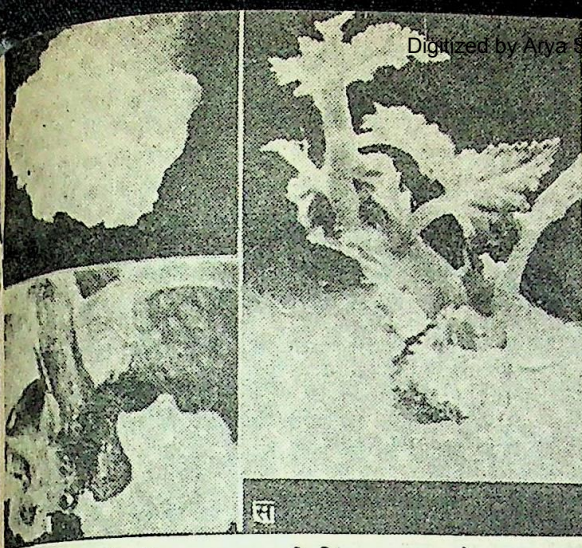
इस स्थिति में सामान्यतः विभिन्न प्रकार के पादप हारमोन यथा आक्सिन या साइटोकिनिन आदि की एक खुराक दी जाती है। इनके प्रभाव से कैलस की कोशिकायें विभेदित हो जाती हैं तथा जड़ और प्ररोह का निर्माण होने लगता है (चित्र ब)। इससे आगे का विकास या तो संवर्धन फ्लास्क या गमले में किया जा सकता है (चित्र स)। बाद में प्राप्त पौद को पूर्ण विकास और परिपक्वन हेतु खेत में प्रतिरोपित कर दिया जाता है।

पौधों में ऊतक संवर्धन का एक प्रमुख लाभ यह है कि व्यावसायिक दृष्टि से उपयोगी जो वृक्ष खेत के वातावरण में उगने में अधिक समय लगाते हैं उनका सूक्ष्म-प्रवर्धन किया जा सकता है। सूक्ष्म-प्रवर्धन से सम्पूर्ण प्रक्रिया तेजी से सम्पन्न की जा सकती है।

सूक्ष्म-प्रवर्धन के लिये सामान्यतः प्ररोह का शीर्ष प्रयोग किया जाता है। 5-6 सेंमी. से कुछ लम्बा एक टुकड़ा लेकर उसे एक ठोस माध्यम में रोप दिया जाता है। माध्यम में पूर्णतः स्थापित होने के कुछ समय बाद इसमें नये प्ररोह निकलने आरंभ होते हैं जो अन्ततः एक गुच्छे का रूप ले लेते हैं। इन नये प्ररोहों में से प्रत्येक को पुनः नये माध्यम में रख कर उप-संवर्धन द्वारा नये प्ररोहों के गुच्छे प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार थोड़े समय में 3-4 उप-संवर्धों से हजारों प्ररोह प्राप्त होते हैं, जिसमें से प्रत्येक प्ररोह एक नये पादपक को जन्म दे सकता है। प्राकृतिक परिस्थितियों में इस पूरी क्रिया में कई वर्ष लग जाते हैं।

प्ररोहों को संवर्धित कर विशेष अतिरिक्त हारमोनों द्वारा जड़ों को जन्म देने के लिये प्रेरित किया जा सकता है। इस प्रकार प्ररोह और जड़ वाले बहुत से पादपक प्राप्त किये जा सकते हैं, जिन्हें बीच-बीच में आगे के विकास के लिये भूमि में प्रतिरोपित किया जा सकता है।

आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण असंख्य पौधों को अब सूक्ष्म-प्रवर्धन विधि द्वारा सफलतापूर्वक उगाया जाना संभव हो गया है। अगर यह कहा जाये कि एक प्ररोह शीर्ष से उचित संवर्धन द्वारा एक वर्ष में लाखों पौधे पैदा किये जा सकते हैं तो यह अतिशयोक्ति न होगी। उद्यानविदों और वनों के विकास के लिये भी पादप ऊतक संवर्धन ने आशाजनक द्वार खोल दिये हैं।

कई पौधों को, जिनमें से 'आर्किड' भी एक है, को उगाना बड़ा कठिन कार्य है। दूसरे पौधों में, जिनमें बांस आदि आते हैं, एक पीढ़ी उगने में सैंकड़ों वर्ष तक लग जाते हैं। ऐसे पौधों को बड़ी संख्या में उगाने के लिये ऊतक संवर्धन बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। इससे न केवल प्रवर्धन की गति ही बढ़ाई जा सकती है अपितु उस पर बड़ी कुशलता से अंकुश भी लगाया जा सकता है।

ऐसे अनेक प्रयोगों को कार्यान्वित करने में ऊतक संवर्धन से सहायता मिली है जिन्हें किसी और तरह से करना संभव नहीं था। उदाहरणार्थ, यदि किसी रासायनिक पदार्थ की आविषालुता का प्रभाव मनुष्यों पर जांचना है तो इसके लिये हमें केवल जानपदिक रोग विज्ञानीय आंकड़ों अथवा एपिडेमियोलॉजिकल डाटा, पर ही निर्भर करना होगा क्योंकि मनुष्यों पर उसका प्रयोग करना न तो वांछनीय है, न ही संभव। साथ ही रोग विज्ञानी आंकड़ों से प्राप्त सूचना सदैव सीमित होती है जिनसे अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। ऊतक संवर्धन इस प्रकार की स्थितियों में वरदान सिद्ध हुआ है, क्योंकि इन हानिकारक रसायनों का प्रभाव संवर्धित की जा रही कोशिकाओं पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। इस विधि का उपयोग कैंसर जनक रसायनों, विषाणुओं, विकिरण तथा रोगोत्पादक जीवाणुओं के प्रभावों को जानने के लिये किया गया है। साथ ही विभिन्न लाभदायक या प्राकृतिक पदार्थों जैसे हारमोन, विटामिन, रोगनाशक औषधियों का प्रभाव जांचने में भी इसे काम में ला सकते हैं।

आनुवांशिक गुणों में सुधार की दृष्टि से की जाने वाली आधुनिक जैवप्रौद्योगिक प्रक्रियाओं के लिये ऊतक संवर्धन अत्यन्त लाभदायक तकनीक है। संवर्ध कोशिकाओं में आसानी से किये जा सकने वाले संलयन द्वारा नये संकर पौधे पैदा किये जा सकते हैं। विशेष जल-अपघटनीय एन्जाइम से उपचारित कर कोशिकाओं का बाहय आवरण तोड़ दिया जाता है तथा अंदर का प्रोटोप्लास्ट आसानी से दूसरे किस्म के प्रोटोप्लास्ट से संलयित किया जा सकता है। इस प्रकार इन दो विभिन्न पौधों, जिनमें वांछनीय आनुवंशिक गुण हैं तथा प्राकृतिक रूप में जिनका एकीकरण संभव नहीं है—संकर किस्में पैदा की जा सकती हैं। अन्तर्जातीय संकर प्रजातियों की उत्पत्ति अब संभव हो गई है। चूंकि संवर्धन तकनीक द्वारा क्लोन अर्थात् समान कोशिकाओं वाली कालोनी बनाना संभव है अतः वांछनीय आनुवंशिक गुणों वाली यह 'कालोनी' भविष्य के लिये भी सुरक्षित रखी जा सकती है।

लगभग दो दशक पहले यह तकनीक एक जिज्ञासा का विषय थी या यूं कहिये कि साहसिक अनुसंधानरत वैज्ञानिक के हाथों में भ्रामक औजार की तरह थी परन्तु आज यह कई व्यवसायों का प्रमुख आधार बन गई है।
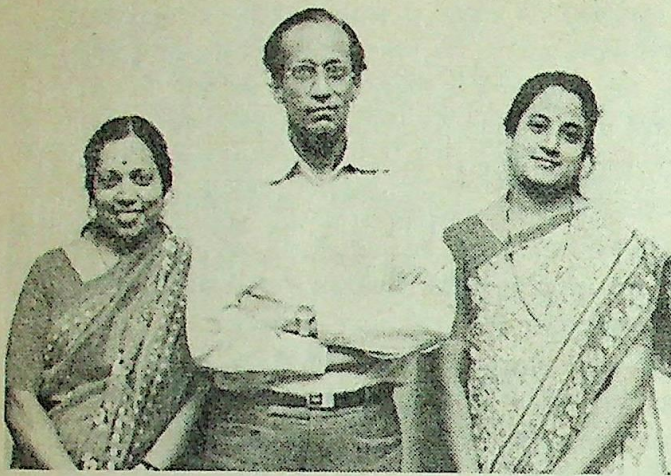
रजनी नवगौडा, टानी मेसकेरेन्हस वर्षा पराक्षमी

इससे प्रोत्साहित होकर मेसकेरेन्हस तथा अनेक सहयोगियों ने हर प्ररोह को अलग कर उसे नारियल के दूध तथा एक अथवा अनेक किस्म के वृद्धिकारी रसायनों में रखकर पोषित होने दिया। इस प्रकार बड़ी संख्या में उप संवर्ध तैयार किये गये तथा पूरी प्रक्रिया को पुनः दोहराया गया। तीसरी बार में सफलता हाथ लगी। वे प्ररोह, जिन्हें नारियल के दूध तथा साइटोकिनिन हारमोन मिश्रित माध्यम में रखा गया था, अचानक पुष्पित हो उठे और उसमें सामान्य फूलों के गुच्छे उभर आये। एक संवर्ध पात्र में रखे 15 से 20 प्ररोहों में से लगभग 60 प्रतिशत पर फूल लगे। बांस की दोनों प्रजातियों में ऐसा ही हुआ।

स्वाभाविक-रूपेण हर्षातिरेक होते हुये भी वैज्ञानिकों की दृष्टि अपने उद्देश्य से नहीं हटी। उन्हें तो यह सिद्ध करना था कि जो कुछ उन्होंने देखा है वह क्षणिक नहीं निरन्तर है। इसके लिये उन्होंने पूरी प्रक्रिया को एक बार फिर दुहराया और स्वयं को आश्वस्त किया कि समयापूर्व पुष्पन की पुनरावृत्ति सम्भव है। यही नहीं इन फूलों से बीज भी निकले। कुछ अर्ध-संवर्धों को बीच में ही भूमि में आरोपित किया गया, जो तेजी से बढ़े और फूले। **बेम्बूसा अरून्डीनेसिया** के प्रत्येक संवर्ध ने, चाहे वह जमीन पर उगा था या परखनली में पनपा, 50 बीजों को जन्म दिया। अन्य प्रजातियों में हर एक का योगदान सापेक्ष रूप से कम रहा, जो केवल 5 बीजों तक सीमित था।

मेसकेरेन्हस तथा उनके साथियों की धारणा है कि यह तो केवल 'श्रीगणेश' है। प्रयोगशाला में विकसित बांस के प्ररोह यद्यपि सुन्दर एवं स्वस्थ हैं लेकिन वे अब भी उन पोषक तत्वों के मिश्रण की खोज में जुटे हैं जो इस पौधे में छिपी निष्क्रियता को समाप्त कर उसे अन्तर्निहित उत्पादन चक्र की श्रृंखलाओं से मुक्त कर सके।

सारा संसार इस रोमांचक खबर को पढ़कर झूम उठा। प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' में प्रयोग के बारे में छपी मेसकेरेन्हस और उनके साथियों की रिपोर्ट का पश्चिमी वैज्ञानिकों तथा 'सैक्युलर वेस्टर्न प्रेस' ने अपूर्व स्वागत किया। यही नहीं 'नेचर' पत्रिका ने इस विषय पर आमंत्रित सम्पादकीय भी छापा—यह एक ऐसा गौरव है जो केवल अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्वेषणात्मक लेखों को ही दिया जाता है। 'न्यूयार्क टाइम्स' ने इसे मुख पृष्ठ पर स्थान दिया। 'न्यू साइंटिस्ट' से भी ऐसी ही प्रशंसा की आशा थी। 'दी इकोनोमिस्ट' में दुर्लभ स्थान-प्राप्ति के बावजूद एक पूरे पृष्ठ का लेख छपा।

आखिर ऐसी क्या बात थी जिससे हर कोई इतना प्रभावित हुआ। 'दी इकोनोमिस्ट' ने अपने विशेष अंग्रेजी अंदाज में लिखा "बांस के उत्पादन-चक्र के अग्रिम होने से अनेकों सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त होगा"। वास्तव में ऐसा ही है, पर कैसे?

गुणानुरूप, ये वैज्ञानिक अपनी आशाओं के बारे में बहुत विनम्र हैं। उनके अनुसार इस सफलता से उन्हें साइटोकिनिन जैसे पादप हारमोनों का पौधों में उगने और उनके विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का सही पता चल सकेगा।

संसार की दृष्टि इस अन्वेषण से सुलभ होने वाले आर्थिक लाभों की ओर लगी है। इससे कम से कम अधिक उन्नत तथा रोग प्रतिरोधी विभेदों के विकास की संभावनायें तो हैं ही, बीजों के लगातार उपलब्ध होने से उन उजाड़ भूखण्डों को, जहां के बांस के जंगल प्राकृतिक रूप से नष्ट हो गये हैं, पुनः हरा भरा किया जा सकता है। एक ऐसी सुदृढ़ प्रजाति के विकास की भी पूरी संभावना है जो इंजीनियरी पदार्थों के रूप में काम आ सके। इसे कोरी कल्पना मत समझिये क्योंकि बहुत ऊंचाई वाले बांस आज मौजूद हैं। कुछ में सिलिका की मात्रा अधिक होती है जो उन्हें अत्यधिक मजबूती प्रदान करती है। कुछ बांस खोखले और कुछ ठोस होते हैं। एक किस्म के बाँस का तना चौकोर होता है। ये सब गुण लाभदायक हैं, परन्तु एक साथ वे किसी एक विभेद या जाति में नहीं मिलते। पादप प्रजनक इन सभी गुणों को एक साथ करने का स्वप्न संजोये हैं, और शायद अब उनके स्वप्न के साकार होने का समय आ गया है।

[प्रस्तुति : चन्द्रभान शर्मा, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110 012]

(शेषांश पृष्ठ 32 का)

गल्प कथा

"चंद्रा! नहीं प्लीज।" अंतरिक्ष की कॉस्मिक किरणों तथा एक्स-किरणों का सम्मिलित प्रहार होकर बेहोश होने से पूर्व चंद्रा के सुनाई पड़ने वाले ये आखिरी शब्द थे।

अंतरिक्ष की किरणों का मानव शरीर पर होने वाले परिणाम की जांच करने के लिए चंद्रा का शरीर अंतरिक्ष से पृथ्वी पर लाया गया।

मानव के ज्ञान का विस्तार करने हेतु चंद्रा का मृत शरीर भी अब बहुमूल्य था।

उसके मृत शरीर की जांच करते समय एक चिट्ठी मिली—चंद्रा ने उसमें लिखा था, "मुझे पैसा नहीं चाहिए। मुझे सम्मान नहीं चाहिए। इनमें से मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे मरणोपरांत पृथ्वी की मिट्टी में मिला देना। यही मेरी एकमात्र इच्छा है—किंतु वह भी तुम पूर्ण नहीं कर रहे थे इसीलिए.....।"

[प्रस्तुति : योगेन्द तिवारी, ई- 326, दीवान अपार्टमेंट II, बसई (पूर्व) थाना- 401 202]

(शेषांश पृष्ठ 12 का)

वायुमण्डल...

दक्षिणी दोलन का एक दूसरे वायुमण्डलीय परिसंचरण या सर्कुलेशन से गहरा संबंध है। जिसका नाम 'वाकर सर्कुलेशन', सर गिलबर्ट वाकर के नाम पर रखा गया है। वाकर सर्कुलेशन को समझने के लिये हम मान लेते हैं कि दक्षिणी दोलन सूचकांक का मान उच्च धनात्मक अथवा सामान्य है। यह स्थिति वायुमण्डलीय दाब वाले क्षेत्रों यानि आस्ट्रेलिया तथा इण्डोनेशियाई टापुओं पर लागू होती है। इस अवस्था में बड़े संवहनी बादल तथा अत्यधिक वर्षा तथा आंधियां भी आती हैं। अंततः यह हवा पूर्व की ओर घूम जाती है तथा प्रशांत महासागर को पार परके पश्चिम की ओर 200 मिलिबार के दाब पर दक्षिणी अमेरिका के क्षेत्र में जाकर धीरे-धीरे शांत हो जाती है। वाकर सर्कुलेशन इस प्रकार आस्ट्रेलिया और इण्डोनेशिया पर उठता हुआ फलक बनाता है तथा दक्षिण अमेरिका पर धीरे-धीरे घटता जाता है या समाप्त हो जाता है।

विश्व की हवाओं के संबंध में वाकर सर्कुलेशन का क्या अर्थ है? यह भूमध्यरेखा से कुछ उत्तर की ओर एक ऐसी अभिसारी पट्टी को दर्शाता है जहां दोनों गोलार्धों से आने वाली व्यापारिक हवाएं समाहित होती हैं। शक्तिशाली व्यापारिक हवायें समुद्री धाराओं को पश्चिम की ओर, इक्वाडोर तथा पेरु के तटों से दूर प्रशांत महासागर के पश्चिम भाग की ओर ले जाती हैं। प्रशांत महासागर के पूर्वी तथा पश्चिमी भागों के समुद्र तल में लगभग 40 सें.मी. का अंतर है। पश्चिमी प्रशांत महासागर में एकत्रित पानी का संतुलन बनाये रखने के लिये एक भूमध्यरेखीय विपरीत धारा तथा एक पानी के नीचे बहने वाली 'अवधारा' है। अवधारा पूर्व की ओर लगभग 100 मीटर की गहराई पर बहती है। जब तक संतुलन कायम हो तब तक भूमध्यरेखी अवधारायें पश्चिमी अमेरिकी तट पर पहुंच जाती हैं। जैसे-जैसे हम प्रशांत महासागर की ओर पहुंचते हैं थर्मोक्लाइन की गहराई कम होती जाती है।

सर्कुलेशन का एक मुख्य लक्षण—इक्वाडोर तथा पेरु के तटीय क्षेत्रों में तीव्रता से पानी उठना है। यह उठाव, पूर्व की ओर बहने वाली तेज व्यापारिक हवा, जो समुद्र के सतही पानी को तट से दूर बहा ले जाती है, इस उठाव को प्रेरित करती है। एक ठण्डी धारा जिसे 'हम्बोल्ट धारा' कहते हैं, पेरु के समुद्र का ताप कम करके सतह को ठण्डा बनाती है। यह उठाव ही गहरे समुद्र से मछलियों के लिये पोषक तत्व लाने के लिये उत्तरदायी होता है। प्रशांत महासागर के पूर्वी गोलार्ध के ठण्डे समुद्र के सतही ताप को यह और भी अधिक ठण्डा कर देता है।

उपर्युक्त विवरण से दक्षिणी दोलन सूचकांक के सामान्य अथवा उच्च धनात्मक मानों का पता चलता है। इसके मुख्य लक्षण हैं : (1) एक ठण्डी तटीय धारा (हम्बोल्ट करंट) तथा दक्षिणी अमेरिका के तटीय क्षेत्र में पानी का उठाव (2) तेज व्यापारिक हवायें, (3) प्रशांत महासागर के पश्चिमी अर्ध भाग पर पानी का एकत्रण जो भूमध्यरेखीय प्रतिधारा तथा एक अवधारा से संतुलित रहता है (4) जैसे-जैसे हम पूर्व से प्रशांत महासागर के अर्ध भाग की ओर जाते हैं थर्मोक्लाइन की गहराई में कमी आना तथा (5) वाकर सर्कुलेशन की आस्ट्रेलिया और इण्डोनेशिया के ऊपर जाने वाली आरोही शाखा, जिसकी नीचे की ओर जाने वाली अवरोही शाखा दक्षिणी अमेरिका की ओर जाती है।

कई वर्षों में एक बार नाटकीय परिवर्तन की श्रृंखला आरंभ होती है जिससे वाकर सर्कुलेशन बहुत अधिक गड़बड़ा जाता है। जब इक्वाडोर तथा पेरु के तटीय क्षेत्र के ठण्डे पानी का स्थान क्रिसमस के दौरान दक्षिणी अमेरिका के तट के साथ-साथ दक्षिण की ओर बहने वाली एक गर्म समुद्री धारा ले लेती है, इसी का नाम एलनीनो है। स्पेनी भाषा में एलनीनो का प्रयोग एक लड़के के लिये किया जाता है। चूंकि यह प्रायः क्रिसमस के दिनों में दिखाई देता है इसलिये कुछ लोग इसे ईसामसीह का पुत्र मानते हैं। यह ठण्डी हम्बोल्ट धारा के सामान्य प्रवाह को गड़बड़ा देता है। एलनीनो के आगमन पर आस्ट्रेलिया और इण्डोनेशिया पर दबाव बढ़ने लगता है तथा दक्षिणी दोलन सूचकांक गिरने लगता है और ऋणात्मक हो जाता है। इसे प्रशांत महासागर की ' गर्म ' प्रावस्था कहते हैं जबकि दक्षिणी दोलन सूचकांक का सामान्य अथवा उच्च मान प्रशांत महासागर की ' ठण्डी ' प्रावस्था का प्रतिनिधित्व करता है।

एलनीनो तथा दक्षिणी दोलन सूचकांक के परस्पर घनिष्ठ संबंधों को अनेक गुण दर्शाते हैं। जैसे ही दक्षिणी दोलन सूचकांक ऋणात्मक हो जाता है वैसे ही वाकर सर्कुलेशन की आरोही शाखा प्रशांत महासागर के केन्द्र की ओर स्थानान्तरित हो जाती है। अवरोही शाखा भी प्रशांत महासागर के दक्षिण-पूर्वी भागों की ओर बढ़ती है। दक्षिण अमेरिका के तटीय क्षेत्र में जल का उठान घटने से समुद्र का सतही ताप बढ़ने लगता है। इससे व्यापारिक हवायें कमजोर पड़ने लगती हैं तथा प्रशांत महासागर के पश्चिमी अर्द्ध भाग पर पानी का जमाव कम होने लगता है। परिणामस्वरूप भूमध्यरेखीय अवधारा अपेक्षाकृत कमजोर हो जाती है। यह अपनी दिशा भी बदल सकती है। दक्षिणी अमेरिका के तटीय क्षेत्रों से गर्म पानी आने से इस क्षेत्र में इस प्रदेश का सक्रिय संवहन बढ़ जाता है जिससे दक्षिण अमेरिकी तटीय क्षेत्रों में भारी वर्षा होती है और बाढ़ भी आ जाती है। स्पष्ट रूप से जैसा कि हम देख सकते हैं दक्षिणी दोलन सूचकांक की ऋणात्मक प्रावस्था का एलनीनो से संबंध असामान्य मौसम परिस्थितियों की संभावनाओं के साथ-साथ विपत्ति का सूचक भी है। दक्षिणी दोलन सूचकांक की यह निम्न अथवा ऋणात्मक प्रावस्था एलनीनो सदर्न आसीलेशन (एन्सो) घटना के नाम से जानी जाती है।

एन्सो का एक विलक्षण अध्याय 1986-87 में घटित हुआ था। इसके परिणामस्वरूप 1987 में भारत में मानसून बहुत कमजोर रहा। दक्षिणी दोलन सूचकांक का ठण्डा अथवा सामान्य रूप पुनः 1988 में लौट आया, जिससे 1988 में मानसून बहुत अच्छा रहा। परन्तु यहां इस बात का ध्यान अवश्य देना चाहिये कि एन्सो घटना और मानसूनी वर्षा के मध्य किसी प्रकार की कोई समानता नहीं रही है। कितने ही ऐसे अवसर आये हैं जब एन्सो के बावजूद भी मानसून अच्छा रहा है। इसी प्रकार एन्सो की अनुपस्थिति में भी मानसून कमजोर रहा है। लेकिन विश्व के अन्य भागों से मिली सूचनाओं से

यह सुनिश्चित हो गया है कि विश्व में एन्सो घटना तथा इसके बुरे प्रभाव घटित होते ही रहते हैं। एन्सो से कभी-कभी प्रशांत महासागर बेसिन पर सामान्य से अधिक ठण्ड हो जाती है। यही वह समय है जब आस्ट्रेलिया और इण्डोनेशिया पर भारी वर्षा के साथ-साथ दक्षिण अमेरिका में ठण्डा पानी और उसका उठाव बहुत अधिक होता है। इस एकाएक परिवर्तन की स्थिति को 'ला निना' कहते हैं। चूंकि स्पेन में नीना शब्द 'लड़की' का द्योतक है जो कि एलनीनो का स्त्रीलिंग है।

कोई भी एलनीनो अथवा ला निना वायुमण्डलीय बाधाओं का प्रतीक है जिससे समुद्र का सामान्य सतही तापमान ठण्डा अथवा गर्म हो जाता है जिसके फलस्वरूप सूखा, बाढ़ अथवा कमजोर तथा अच्छे मानसून जैसी उल्लेखनीय घटनायें अथवा दुर्घटनायें घटित होती हैं। वैज्ञानिक अब यह कोशिश कर रहे हैं कि उन्हें एल नीनो अथवा एन्सो के आगमन की पूर्व सूचना मिल सके।

एलनीनो का उद्‌गम हम शक्तिशाली विधियों की सहायता से युग्मित समुद्र-वायुमंडल माडल बनाकर ज्ञात कर सकते हैं। लेकिन मौसम और समुद्र की क्रियाओं की परस्पर भिन्नता के कारण ऐसे माडलों का निर्माण अत्यन्त कठिन है।

इस कठिनाई के कारण एलनीनो (अथवा एन्सो) के अध्ययन के लिये पहले माडलों ने भूमध्यरेखीय व्यापारिक हवाओं पर समुद्र के कम होते प्रभाव का अध्ययन किया। प्रशांत महासागर की गर्म प्रावस्था भूमध्यरेखा के दोनों ओर कमजोर पूर्वी व्यापारिक हवाओं से पहले कुछ समय होती है।

माडल ने भूमध्यरेखीय व्यापारिक हवाओं की आदर्श पट्टी के शिथिलीकरण पर समुद्री प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयत्न किया।

आशा के अनुरूप, माडल ने दर्शाया कि हवा के थोड़ी देर ठहरने के पश्चात, प्रशांत महासागर के पूर्वी अर्द्ध भाग में समुद्र तल तेजी से बढ़ कर पश्चिमी समुद्र में गिर जाता है। जिसके साथ-साथ पश्चिमी अर्द्ध भाग (आस्ट्रेलिया तथा इण्डोनेशिया) से गर्म पानी की बहुत अधिक मात्रा पूर्वी अर्द्ध भाग (दक्षिण अमेरिका) में अभिवहित हो जाती है। यह उसी प्रकार का परिवर्तन है जो एलनीनो घटना के दौरान होता है।

आधुनिकतम माडलों ने आदर्श व्यापारिक हवाओं की अपेक्षा असली हवाओं पर प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है।

[श्री पी.के. दास, डिपार्टमेन्ट आफ ओसेन डिवलपमेन्ट, महासागर भवन, ब्लाक- 12, सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली- 110003]
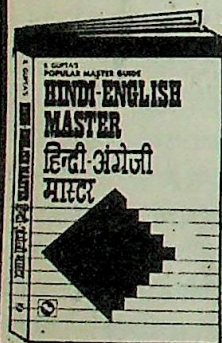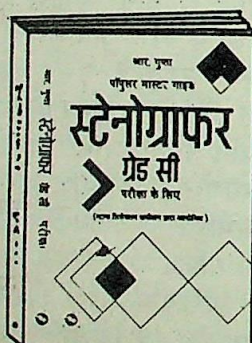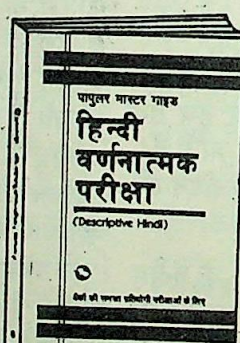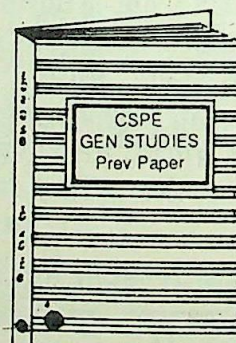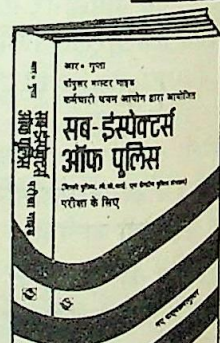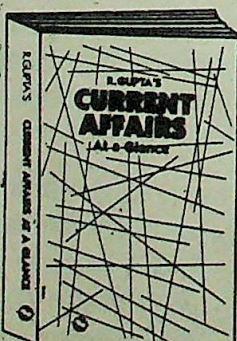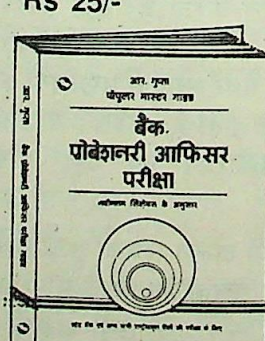
वाऊचर, सम्पत्ति आदि शब्द भरे जाते हैं। टेली भारतीय बहीखातों की प्रणाली को समझते हुए उसी क्रम में अंकित करता है।

इसमें हजारों कंपनियों के हिसाब-किताब भरे जा सकते हैं और अलग-अलग कंपनियों का ब्यौरा अलग-अलग फ्लॉपियों में स्वतः भरा भी जा सकता है। टेली कम्प्यूटर के लिए बहीखाते की मौजूदा प्रणाली को बदलने की जरूरत नहीं है, न ही प्रोग्रामिंग आदि सीखने की। टेली कम्प्यूटर में भरे गए आंकड़ों से छेड़छाड़ भी नहीं की जा सकती।
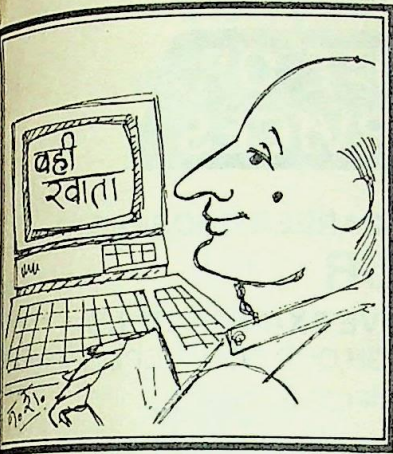
टेली-बहीखाते की एक ही खास कमजोरी है–दिवाली के दिन नये बहीखाते शुरू किये जाते हैं और पुराने बन्द कर दिये जाते हैं। नए व्यापारिक वर्ष के अवसर पर कम्प्यूटर वाले बहीखाते को बंद कर, नया शुरु करना तो आसान है मगर, कम्प्यूटर बदलना पड़े तो.....?

अब आयी वीडियो-चिट्ठी : अमेरिका में वीडियो कैसेट रिकार्डर की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए ब्रुस गोल्डस्टीन ने वीडियो-चिट्ठी की शुरुआत की है! टेलीफोन-बूथ के समान वीडियो बूथ बने हुए हैं! बस, पांच डालर खर्च करके एक कैसेट खरीद लीजिए और विशेष रूप से निर्मित रिकार्डर में डालिए! अब फटाफट कैमरे के सामने खड़े होकर एक्शन शब्द सुनते ही शुरू हो जाइये! दस मिनट तक अपने मित्र, परिवार, इत्यादि के लिए संदेश दीजिए और कैसेट को मेल-बाक्स में बन्द करके चले आइये! आपकी वीडियो-चिट्ठी आपके दिए गए पते पर पहुंचा दी जाएगी

टेलीविजन की आंखें : फ्रांस-निवासी जीन लुईस क्रोक्यूट ने टेलीविजन में मोटिवक नामक एक आंख लगायी है जो कमरे में प्रकाश रहने पर, वहां बैठे पुरुषों, महिलाओं
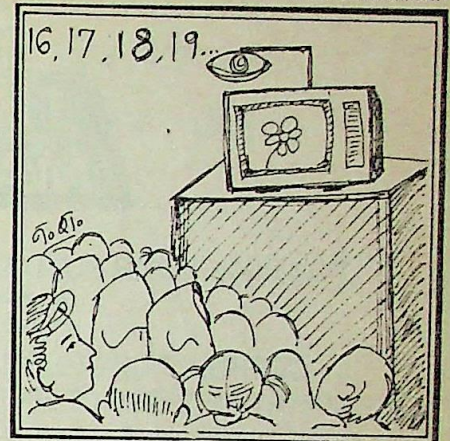
या बच्चों को प्रत्येक दो-दो सेकण्ड पर देखकर गिनती करेगी।

मोटिवक प्रकाश-संवेदी यंत्र है जो रोशनी में मानव–शरीर को गिन सकता है और आगन्तुक मेहमान की भी जानकारी रख सकता है! किसी कार्यक्रम को देखने वाले दर्शकों की संख्या पता लगाकर उसकी लोकप्रियता मालूम कर सकता है।

पेरिस के डेढ़ हजार घरों में मोटिवक लगे टेलीविजन सेट हैं जिन्हें दर्शक देखते हैं और दर्शकों को टेलीविजन की आंखें अपने ढंग से देखती हैं। लुईस रेडियो में भी ऐसी ही आंखें लगाने की सोच रहे हैं।

[श्री अनिल कुमार शर्मा, 1110तिमारपुर, दिल्ली]

इनसेट 1-डी पृथ्वी की कक्षा में स्थापित

भारत का संचार उपग्रह "इनसेट 1-डी" गत 12 जून 1990 को भारतीय समय के अनुसार प्रातः 11 बजकर 22 मिनट पर डेल्टा 4925 राकेट के द्वारा केप केनवेरल के केनेडी रिसर्च सेंटर से छोड़ा गया। 11 बजकर 46 मिनट पर उसे धरती से 210 किलोमीटर ऊपर अस्थायी कक्षा में स्थापित किया गया। 12 बज कर 3 मिनट पर हासन स्थित मास्टर कंट्रोल फैसिलिटी(एम.सी.एफ.) को इनसेट 1-डी से पहला संकेत मिला। बाद में उपग्रह का नियंत्रण एम.सी.एफ. के वैज्ञानिकों ने संभाल लिया।

डेल्टा राकेट, प्रक्षेपण के लगभग एक घंटे बाद उपग्रह से अलग हो गया।

हासन से अंतरिक्ष आयोग के अध्यक्ष यू.आर. राव की देखरेख में वैज्ञानिकों ने इनसेट1-डी को सौर अभिग्रहण दिशा में रखने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने 1 बज कर 3 मिनट पर उसकी चौथी व पांचवी सौर पट्टिकाएं खोल दीं और इसके एक मिनट बाद उसके सी बैंड एंटीना ने काम शुरू कर दिया।

सात-आठ दिन बाद इस उपग्रह को लगभग 35,890 किमी. ऊपर स्थायी कक्षा में स्थापित कर दिया जायेगा।

यह उपग्रह जुलाई के मध्य से कार्य करना प्रारंभ कर देगा। इससे दूर संचार, संपर्क, टेलीविजन के दृश्य, श्रव्य संकेत, रेडियो व आपदा चेतावनी संकेत और मौसम की अग्रिम जानकारी एकत्रित करने में सुविधा मिलेगी। भारत के इनसेट 1- श्रृंखला के उपग्रहों की यह चौथी और अंतिम कड़ी है।

विशेष सूचना

प्रकाशन और सूचना निदेशालय (वै.औ.अ.प.) की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' और 'साइंस रिपोर्टर' की जुलाई 1990 से विज्ञापन की नई दरें

विज्ञान प्रगति

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

साइंस रिपोर्टर

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

विज्ञान प्रगति तथा साइंस रिपोर्टर की संयुक्त विज्ञापन की दरें

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	8,000.00	40,000.00	80,000.00
आधा पृष्ठ	4,500.00	22,500.00	45,000.00
चौथाई पृष्ठ	2,500.00	12,500.00	25,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	9,500.00	47,500.00	95,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	11,000.00	55,000.00	110,000.00

रंगीन विज्ञापनों पर 75 प्र.श. अतिरिक्त

निबंध प्रतियोगिता

नाभिकीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी

पृष्ठभूमि :
आज –

– भारत ऐसे कुछ देशों में से एक है जो नाभिकीय तकनीक में आत्मनिर्भर है।

– इस देश के पास सबल अनुसंधान और विकास अवसंरचना है।

– अनुसंधान प्रयोगशालाएं और नाभिकीय प्रतिष्ठान समस्त देश में फैले हैं।

– भारत रेडियो आइसोटोप्स और रेडियोफार्मास्यूटिकलस का अग्रणी उत्पादक है।

– देश की वर्तमान प्रतिष्ठान नाभिकीय शक्ति की उत्पादक क्षमता 1465 MWe है। 21वीं सदी तक इसे 10,000 MWe तक बढ़ाने की योजना है।

– देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में परमाणु ऊर्जा का भी योगदान है।

नाभिकीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी को व्यावहारिक बनाने के लिए जनता में जागरूकता बढ़ाने हेतु परमाणु ऊर्जा विभाग ने एक राष्ट्रीय निबंध प्रतियोगिता आयोजित की है। प्रतियोगी नीचे दिए गए विषयों में से निबंध के लिए एक विषय चुन सकता है, जो कि अंग्रेजी अथवा किसी अन्य भारतीय भाषा में 5000 शब्दों तक सीमित, फुलस्केप कागज पर साफ शब्दों में हस्तलिखित अथवा टंकित होना चाहिए।

1. नाभिकीय शक्ति—क्या अन्य स्रोतों की तुलना में यह अधिक हितकर है?
2. कृषि चिकित्सा और उद्योगों में रेडियो आइसोटोप्स का उपयोग.

योग्यता –

किसी भी विषय में अध्ययनरत स्नातक अथवा स्नातकोत्तर विद्यार्थी इसमें भाग ले सकते हैं।

सहभागिता संबंधी विवरण –

ये निबंध श्री पी.पी.पै, प्रधान, प्रचार अनुभाग, परमाणु ऊर्जा विभाग, छत्रपति शिवाजी महाराज मार्ग बम्बई-400 039 को 31 जुलाई, 1990 तक भेजे जाने चाहिए।

निबंधों की पहली जांच और अवमूल्यन के पश्चात् अक्टूबर के अंत तक एक सीमित संख्या में प्रतियोगियों को निबंध के मौखिक प्रदर्शन के लिए बम्बई में आमंत्रित किया जाएगा। बम्बई में उनके निवास स्थान तक का प्रथम श्रेणी का रेल का किराया और विभागीय गैस्ट हाऊस में निःशुल्क आवास व्यवस्था की जाएगी।

पुरस्कार वितरण बम्बई में स्थापना दिवस, 30 अक्टूबर को किया जाएगा (30 अक्टूबर डा. होमी जे. भाभा का जन्मदिवस है)।

पुरस्कार – प्रत्येक विषय के लिए निम्न पुरस्कार दिए जाएगें –
प्रथम पुरस्कार – 5, 000 रु./=
द्वितीय पुरस्कार – 3, 000 रु./=
तृतीय पुरस्कार – 1, 000 रु./=

मौखिक प्रदर्शन करने वाले शेष प्रतियोगियों में प्रत्येक को 500 रु का सात्वंना पुरस्कार दिया जाएगा।

D.A.V.P 90/151

डा. जे.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित
Regd. No. D.(C)-89
DL Licence No. U. 119

विज्ञान प्रगति

विशेष सूचना

प्रकाशन और सूचना निदेशालय (वै.औ.अ.प.) की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' और 'साइंस रिपोर्टर' की जुलाई 1990 से विज्ञापन की नई दरें

विज्ञान प्रगति

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

साइंस रिपोर्टर

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.00	70,000.00

विज्ञान प्रगति तथा साइंस रिपोर्टर की संयुक्त विज्ञापन की दरें

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	8,000.00	40,000.00	80,000.00
आधा पृष्ठ	4,500.00	22,500.00	45,000.00
चौथाई पृष्ठ	2,500.00	12,500.00	25,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	9,500.00	47,500.00	95,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	11,000.00	55,000.00	110,000.00

रंगीन विज्ञापनों पर 75 प्र.श. अतिरिक्त

ग्राहकों के लिए सूचना

विज्ञान प्रगति की एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। एक वर्ष के लिये शुल्क 25.00 दो वर्ष के लिये 40.00 रुपये और 3 वर्ष के लिये 60.00 रुपये है। दो वर्ष के लिये ग्राहक बनकर आप 10.00 रुपये की और तीन वर्ष के लिये ग्राहक बनकर 15.00 रुपये की बचत कर सकते हैं। चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा प्रकाशक एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, निकट पूसा, नई दिल्ली-110 012 को भेजी जानी चाहिए।

विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दे की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए।

इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक.................दिनांक.......................से

"प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110 012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ____________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाइड रोड,
नई दिल्ली-110 012

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

विज्ञान प्रगति

वर्ष : 39 अगस्त : 1990 श्रावण : 1912 अंक : 8 पूर्णांक : 435
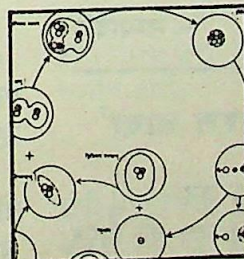
प्रशंसनीय पत्रिका

मैं विज्ञान प्रगति का नियमित पाठक हूं। इस पत्रिका की प्रशंसा जितनी भी की जाये कम है। यह ऐसी पत्रिका है, जिसे अमीर से लेकर गरीब तक सभी विद्यार्थी एवं मनुष्य पढ़ते हैं। जून 1990 अंक में प्रकाशित 'गणित पकड़े संख्या की चोरी' पढ़कर मन खुश हुआ तथा 'हाऊस वाइफ एक्जीमा' पढ़कर एक्जीमा के बारे में काफी जानकारी हुई।

[राकेश कुमार जायसवाल, सरमुज्वा, रौतहट, नेपाल]

उत्सुकता शांत करें

जून 1990 अंक पढ़ा। अंक बड़ा ही रोचक व ज्ञानवर्द्धक रहा। प्रश्न मंच ज्ञानवर्द्धक व कार्बनिक रसायन पहेलियां रोचक रहीं। 'हम सुझायें आप बनायें' के अंदर दिये गये परिपथ ने हमारी एक समस्या का समाधान कर दिया। आमुख कथा में टिहरी बांध की जानकारी लाभप्रद रही किन्तु गणितीय मनोरंजन त्रुटिपूर्ण रहा। त्रुटि यह रही कि हबीब द्वारा लिखें गये उदाहरण में संख्या '9' गायब की गयी थी, जबकि दादाजी का उत्तर था 'शून्य'। इस त्रुटि की तरफ ध्यान देने की कृपा करें।

मैं इस आशा के साथ पत्र बन्द करता हूं कि आप इसे प्रकाशित करके मेरी उत्सुकता को शांत करेंगे। (धन्यवाद)

[अनुराग राणा, मेन मार्किट, परीक्षित गढ़ (मेरठ)]

स्पष्टीकरण दें

आपकी विज्ञान प्रगति को पढ़ने से हमें बहुत लाभ हो रहा है। हमें नयी-नयी बातों का ज्ञान हो रहा है। 1990 में तो आपने महान योगदान दिया है जो आप रंगीन चित्र में देकर बात को समझाने की चेष्टा करते हैं और बहुत कुछ समझ में भी आ जाता है लेकिन आपकी जून 1990 की विज्ञान प्रगति में गणित मनोरंजन में गणित पकड़े संख्या की चोरी में पृष्ठ 30 में आपका उत्तर सही नहीं है लेकिन मैंने दूसरा अंक चुरा कर लिखा जिसमें उत्तर ठीक आया। कृपया इसका स्पष्टीकरण दें।

[विजय कुमार चन्दा, गोरखपुर]

स्पष्टीकरण

दादाजी ने 'गणित मनोरजन' के दूसरे ही दौर (विज्ञान प्रगति: जून, 1990) में तुम लोगों की एक परीक्षा ले डाली, यह जानने के लिये कि कहीं ऐसा न हो कि वे तो मेहनत के साथ तुम्हें बढ़िया-बढ़िया गणित के जादू सिखाते रहें, तुम 'हां', 'हूं' भी करते रहो और आखिर में पता चले कि सब के सब जीरो के जीरो।

दादाजी का परीक्षा लेने का तरीका भी निहायत अलग किस्म का निकला। उन्होंने समस्या को हल करते समय 9 और 0 अंकों में ऐसा गड़बड़ कर डाला ताकि सिर्फ ध्यान देने वाले बच्चों को ही इस गड़बड़ी का पता चल सके।

तुम लोग तो भई वास्तव में बड़े सतर्क निकले। फौरन तुमने इस गड़बड़ी को पकड़ लिया और दादाजी के पास पत्रों का ढेर लग गया।

गड़बड़ी यह की गई थी कि दादाजी के कहने पर हबीब ने चार अंकों की जो संख्या सोचकर लिखी, वह थी 3590 जिसमें से उसने '9' गायब कर लिया था जबकि दादाजी ने चोरी हुई इस संख्या को '9' की जगह '0' बता दिया जबकि यह संख्या (18— 9 = 9 होनी चाहिये थी।

तुम अपनी परीक्षा में सफल रहे इसके लिये बधाई।

— सम्पादक

'गूढ़ विषय की सरल भाषा'

'विज्ञान प्रगति' का जून 1990 का अंक आज ही 1 जून को प्राप्त हुआ। पत्रिका की सामग्री पठनीय एवं उच्चकोटि की है और 'बड़े बांधों पर लेख' और 'पृथ्वी की कहानी' के अन्तर्गत 'कैसे बने महाद्वीप' गूढ़ विषय को सरल भाषा में समझाने का प्रशंसनीय प्रयास है।

अब तक मिले वैज्ञानिक प्रमाणों से यह धारणा पुष्ट हो गयी है कि 25 करोड़ वर्ष पहले उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया और अन्टार्कटिका आपस में एक दूसरे से जुड़े हुये थे। भारत के साथ अन्टार्कटिका का जुड़ा होना एक रोचक तथ्य है नहीं, विज्ञान के लिये एक पहेली है जो विज्ञान प्रगति के पाठकों के लिये वैज्ञानिक चिंतन का मार्ग प्रशस्त करती है। विद्वान लेखक ने यदि अपने लेख में आधुनिकतम जानकारी एवं भारतीय वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को रखने का प्रयास किया होता तो और अच्छा होता।

[डा. श्रीनिवास मिश्र एवं अरविन्द पाण्डे, अनन्तपुर, रीवा, म.प्र.]

पूर्ण पत्रिका

मैं विज्ञान प्रगति का नियमित पाठक हूं। मैंने इसके कई उतार-चढ़ावों को देखा है। पर सन् 1990 में तो इस पत्रिका ने कमाल ही कर दिया है। चाहे वह भौतिक दृष्टि से हो या फिर सामग्री की दृष्टि से, हर दृष्टि से यह एक पूर्ण पत्रिका है।

इस समय मैंने विज्ञान प्रगति जून अंक पढ़ा है। टिहरी बांध परियोजना पर दी गई आपकी जानकारी उत्कृष्ट थी। इसका मतलब यह नहीं कि अन्य लेख उत्कृष्ट नहीं थे। सभी लेख ज्ञानपरक है। विज्ञान कथा भी रोचक थी। समाचार और कणिका भी उत्कृष्ट कोटि की थी। जुलाई अंक से आपने प्रश्न-मंच के अंतर्गत पूछे गये सर्वोत्कृष्ट प्रश्न पर पुरस्कार की व्यवस्था की है। यह एक सराहनीय कार्य है।

[रूपेश कुमार 'रूपम' जगत सिह पुर (बड़ा) समस्तीपुर, बिहार]

शुद्धिकरण

जुलाई, 1990 अंक में पृष्ठ 24 पर प्रकाशित विद्युत भट्टी से संबंधित प्रश्न के उत्तर को इस प्रकार पढ़ें:—

दो इलेक्ट्रोडों के बीच की वायु उच्च वोल्टता पर वैद्युतस्थितिक बल के कारण आयनीकृत हो जाती है। यह आयनीकृत वायु, आर्क अथवा स्पार्क के रूप में निरन्तर प्रवाहित होने वाली धारा के लिये, सुचालक माध्यम बन जाती है। किसी आर्क भट्टी में दो इलेक्ट्राडों के बीच उच्च एम्पीयर की विद्युत धारा प्रवाहित होने पर ऊष्मा उत्पन्न होती है। इस भट्टी में प्रयुक्त इलेक्ट्रोड ग्रेफाइट अथवा कार्बन के बने होते हैं, और इनके बीच विभवान्तर 50-150 वोल्ट होता है।

— सम्पादक

पानी की धार काटेगी : रोहड़े आईलैण्ड विश्वविद्यालय (यू.एस.ए.) ने एक ऐसी अनोखी मशीन का विकास किया है जिससे एक सुई की नोक के बराबर निकलने वाली पतली पानी की धार कार्बन स्टील की मोटी चादर को कुछ क्षणों में दो भागों में काट देती है।

'यह 'हाइ-टैक चाकू' कठोर सिरेमिक्स को भी काटने में समर्थ है जिसमें हीरे की धार वाला आरा खरोंच तक नहीं मार पाता। यह मशीन जिसे 'वाटर जेट' कहते हैं, एक मिनट में एक इंच मोटे जिंक-निकेल स्टील के मिश्र धातु के टुकड़े को 1.4 इंच काट सकती है जबकि बहुप्रचलित इलेक्ट्रोडिस्चार्ज मशीन, इतने समय में इस टुकड़े को केवल इंच का दसवां हिस्सा ही काट सकती है। एक इंच मोटे एलुमीनियम के टुकड़े को वाटर जेट चार इंच प्रति मिनट के रफ्तार से काट सकता है। 'लैसर' किरणों से पारदर्शक पदार्थों की कटाई संभव नहीं है लेकिन यह वाटर जेट 1 इंच मोटे व 1 फुट 6 इंच लंबे कांच को एक मिनट में काट सकता है।

यह वाटर जेट किसी भी पदार्थ को बिना गर्म किये तथा बिना पदार्थ के गुणों में परिवर्तन लाये काट सकता है। न तो इससे कोई विषैली गैस आदि निकलती है न ही इसकी धार को तेज करने की जरूरत है।

वाटर जेट में उपयोग होने वाले नल के पानी में से 0.45 माइक्रोन से बड़े आकार वाले सभी कड़ों को छान लिया जाता है। 60,000 पौंड प्रति वर्ग इंच दाब पर इस पानी को 'रिइंफोर्स होसेज' से गुज़ारा जाता है। जब पानी 'कटिंग हेड' पर आता है तो उस समय उसमें अब्रैसिब मिलाया जाता है। इसके बाद जेट इस पानी को 2,000 फीट प्रति सेकण्ड की गति से बाहर फेंकता है।

हाथियों के संरक्षण में सिरेमिक्स : वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड के आंकड़ों के अनुसार इस समय अफ्रीका में हाथियों की संख्या केवल 700,000 है। यह संख्या 10 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से घट रही है। पिछले अक्टूबर में स्विटजरलैंड में हुये "कनवैन्सन आन इन्टरनेशनल ट्रेड इन एनडेन्जर्ड स्पीशीज" का इसी वजह से मुख्य मुद्दा 'हाथी' था।

हाथियों की प्रजातियों की संख्या का कम होने का कारण है उनके बहुमूल्य दांत। इस समय बाजार में हाथी दांत की कीमत इतनी अधिक है कि शिकारी अपनी जान की बाजी लगा कर भी इनको प्राप्त करना चाहते हैं।

इस समस्या का समाधान तब तक संभव नहीं, जब तक कृत्रिम हाथी दांत का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन शुरू न हो जाये। प्राकृतिक हाथी दांत उन्हीं पदार्थों का बना होता है जो हमारे दांतों में है। हाथी दांत के बहुमूल्य होने के कारण हैं, इसके बहुमूल्य गुण—इसका शीतल स्पर्श तथा इसकी कोमलता। इसके ऊपर नक्काशी व पालिश करके इसकी सतह को बहुत चिकना किया जा सकता है। हाथी दांत को जिस किसी रूप में उपयोग करने वाले के हाथों का पसीना, हाथी दांत सोख लेता है।

अभी तक जो भी कृत्रिम हाथी दांत बने वे सब प्लास्टिक पर आधारित हैं। इन दांतों में पसीना सोखने की क्षमता नहीं है। ये गर्म भी हो जाते हैं।

आजकल नॉटिंघम विश्वविद्यालय के जैन बीनर ऐसे सिरेमिक पदार्थ बनाने में लगे हैं जो गर्म न होने पाये तथा जिनमें पसीना सोखने के लिये पर्याप्त सूक्ष्म छिद्र हों। इस पदार्थ की बनावट प्राकृतिक हाथी दांत की तरह होगी। उन्होंने ऐसे कई पदार्थों का चूर्ण बना लिया है जिन्हें ठोस पदार्थ में बदला जा सकेगा। इन पदार्थों से प्राप्त हाथी दांतों का स्पर्श तथा सूक्ष्म छिद्र प्राकृतिक हाथी दांत के समान होंगे।

धातु काटने की नई देशी विधि : बंबई स्थित गिराइड हाइ-टैक सिस्टस कंपनी ने अपने अनुसंधान व विकास प्रयत्नों से 6 से 60 से.मी. मोट धातु के टुकड़ों को काटने की विधि का विकास किया है। इस विधि का नाम 'प्लाज्मा मेटल कटिंग सिस्टम' है। विधि के पूर्णतया स्वदेशी होने की वजह से कंपनी को "इंडियन मशीन टूल प्रदर्शनी-90" का सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

गिराइड हाइ-टैक सिस्टम्स ने अपनी विधि में एक टॉर्च का निर्माण किया है जिसमें एक इलेक्ट्रोड तथा एक नोजल होता है। टॉर्च में विद्युत आर्क के चारों ओर शुष्क हवा भेजी जाती है। अत्यधिक ताप पर गैस की स्थिति में परिवर्तन होता है, इसके प्लाज्मा बनने पर वह एक चमकीली गर्म पतली धार (जेट) के रूप में नोजल से बाहर आना शुरू हो जाता है। नोजल की विशेष बनावट, गैस की मात्रा तथा बिजली की मात्रा के नियंत्रण से नोजल से निकले प्लाज्मा के जेट को पतला किया जा सकता है, इससे टॉर्च के अंदर ताप और बढ़ जाता है। इस प्रकार गैस और गर्म होकर प्लाज्मा के रूप में ध्वनि की गति की अपेक्षा दुगुनी गति से नोजल से बाहर आती है। प्लाज्मा की यह गर्म धार किसी भी धातु को इस तरह काटती है जैसे चाकू मक्खन की टिकिया काटता है। इस कटाव की गति आक्सी-एसीटिलीन के कटाव से 12 गुना अधिक है तथा ऑर्गन-हाइड्रोजन के कटाव से 4 गुना। इससे स्टील, लोहा, तांबा, पीतल आदि कोई भी धातु आसानी से काटी जा सकती है।

[श्री एम.एम.एस. कार्की, वैज्ञानिक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली- 110012]

प्रश्न पूछिये पुरस्कार जीतिये

जुलाई 1990 से "प्रश्न मंच" स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित सर्वोत्तम प्रश्न पर पुरस्कार देने की योजना आरम्भ की गई है। प्रश्न शीघ्र भेजें। पते के स्थान पर निम्न कूपन लगाना न भूलें। बिना कूपन वाले प्रश्न को "प्रश्न मंच" में शामिल नहीं किया जायेगा। प्रश्न एवं अपना नाम और पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। कृपया एक बार में एक ही प्रश्न भेजें।

सम्पादक "प्रश्न मंच"
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड
नई दिल्ली-110 012

अगस्त 1990

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके

सम्पादक
श्रीमती दीक्षा बिष्ट

सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल

कला अधिकारी
दलबीर सिंह वर्मा

प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी

बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर

सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा

आवरण
पी.बनजी

फोटो
विमान बसु

टैलीफोन : 585359 और 586301
लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है

एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

यूं तो आधुनिक युग में चहुँदिश प्रगति के साथ-साथ अनेक नई चिकित्सा पद्धतियों का विकास हुआ है, लेकिन इन सबके बावजूद नये-नये गंभीर रोगों की भी उत्पत्ति द्रुतगति से हुई है। कैंसर, एड्स, सिड्स (बच्चों की शैय्या मृत्यु) जैसे रोगों से छुटकारा पाना किसी रोगी के लिये स्वप्न समान है। एड्स और सिड्स तो फिलहाल लाइलाज ही हैं। लेकिन हमारा विश्वास कहिये या फैशन, हम हर रोग के इलाज के लिये सीधे एलोपैथिक औषधियों के सेवन को अधिक उपयुक्त समझते हैं और इसके दुष्प्रभावों को नकार देते हैं। लेकिन ये ही दुष्प्रभाव बाद में शरीर को तरह-तरह से हानि पहुंचाते हैं।

प्रकृति ने सदैव मानव जाति का साथ दिया है। मनुष्य की आवश्यकताओं को प्रकृति ने हर संभव तरह पूर्ण किया है। वनस्पति सम्पदा की अधिकांश वनस्पतियां उसने हमें औषधियों के लिये दी हैं जिनसे चमत्कारिक ढंग से रोगोपचार हुआ है। आज भी हमारी आदिवासी जातियां इनका भरपूर उपयोग कर रही हैं।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत भारतीय पौराणिक युग में अवतरित भगवान धन्वन्तरि को 'आरोग्य देवता' माना गया है। अनेक किवंदन्तियों के अनुसार समुद्र मंथन से ही भगवान धन्वन्तरि की भी उत्पत्ति हुई अथवा द्वितीय द्वापर में काशी के राजा धन्व ने पुत्रप्राप्ति हेतु विष्णु भगवान की आराधना की और इससे प्रसन्न होकर भगवान ने धन्वन्तरि के रूप में उनके यहां जन्म लिया। आयुर्वेद के प्रमुख अंग तथा एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली का मेरुदण्ड "सर्जरी" जिसे आयुर्वेद में "शल्य शास्त्र" कहते हैं, में वैद्यराज धन्वन्तरि निपुण थे।

भगवान धन्वन्तरि के अतिरिक्त पुरातन काल में आयुर्वेद के अनेक ऐसे मनीषी हुये हैं जिनके योगदान के परिणामस्वरूप वर्तमान में विदेशी चिकित्सकों को भी आयुर्वेद के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं।

आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति की दो पंक्तियों में व्याख्या करना बिल्कुल असंभव है। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति उस अथाह सागर के समान है जिसका कोई अन्त नहीं है। इसका अन्त जानने के लिये अनुसंधान कार्य की आवश्यकता है जिसमें रत हैं वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का लखनऊ स्थित 'केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान'। इस संस्थान के वैज्ञानिकों के अनुसंधान एवं अथक प्रयासों के फलस्वरूप आधुनिक आयुर्वेद जगत में नई-नई औषधियां प्रविष्ट हुई हैं जो चिकित्सोपचार में उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

पेड़-पौधों से दवाइयां

दीवान एस. भाकुनी

आदि काल से पौधों ने मानवीय रोगों के उपचार के लिये अनेक प्रभावशाली औषधियां प्रदान की। हाल के वर्षों में संश्लेषित औषधियों में हुई प्रगति के बावजूद भी पौधों से प्राप्य औषधियों की उपयोगित्ता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

भारत में पौधों से प्राप्त रोगहारी और रोग निवारक दोनों औषधियों के ज्ञान का प्रचुर भण्डार उपलब्ध है। प्राचीन काल के चरक, सुश्रुत, भगवत जैसे अनेक विद्वानों ने अथर्ववेद में भारतीय मूल के औषधीय पौधों का अद्भुत वर्णन किया है। चिकित्सा व्यवसाय में इन पौधों से प्राप्त होने वाली औषधियों को आज भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

औषधियों की हमारी प्राचीन आयुर्वेदिक पद्धति मूल पौधों के उपयोग हेतु मुख्यतः पौधों पर आधारित मैटीरिया-मेडिका पर ही आश्रित है। जड़ी-बूटियों से प्राप्त होने वाली बहुत सी दवाइयां विदेशों में भी प्रचलित हैं और अनेक देशों के औषधिकोशों (फार्माकोपिया) में स्थान पा चुकी हैं। इससे यह स्पष्ट है कि परम्परागत रूप से उपयोग की जाने वाली अनेक औषधियां, जो कि समय के मापदण्ड पर खरी उतरी हैं, प्रभावशाली होती हैं। इनमें से बहुत सी औषधियां आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की तकनीकियों पर भी प्रामाणिक सिद्ध हुई हैं और विभिन्न रोगों के निदान में आज भी इनका उपयोग होता है।

आजकल ऐसी धारणा बन गई है कि आमतौर पर प्रयोग की जाने वाली अधिकांश औषधियां संश्लेषित होती है, यद्यपि, यह सच नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1968 में किये गये। उसके राष्ट्रीय सर्वेक्षण अनुसार विभिन्न रोगों के उपचार में दी जाने वाली लगभग 50% औषधियों में एक या एक से अधिक पदार्थ प्राकृतिक मूल के होते हैं और लगभग 25% औषधियों में या तो पौधों के भाग का अथवा पौधे से निकाले गये तत्व अथवा शोधित किये गये सक्रिय मूल तत्व का समावेश होता है। पौधों से प्राप्त कुछ महत्वपूर्ण प्राकृतिक औषधियों और उनके स्रोत इस प्रकार हैं: अफीम (**पैपवर सोम्नीफेरम**) सर्पगन्धा (**राव्रल्फिया सर्पेण्टीना**), डिजिटेलिस (**डिजिटेलिस परप्यूरिया**), बेलाडोना (**एट्रोपा बेलाडोना**), कसकाला (**रैहमनस पर्शियाना**) आदि। ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में उपयोग किये जाने वाले परम्परागत औषधीय पौधों से बिलगिन कुछ सक्रिय तत्व और उनके स्रोत हैं: एट्रोपीन (**हायोसायमस म्यूटिकस**), रेसरपिन (**राव्रल्फिया सर्पेण्टीना**), कोडीन (**पैपवर सोम्नीफेरा**), स्यूडोइफेड्रीन एवं इफेड्रीन (**इफेड्रा जाति**), स्कोपोलेमीन (**धतूरा**), हायोसाइमीन (**हायोसायमस म्यूटिकस**) डिजिटोक्सीन (**डिजिटेलिस परप्यूरिया**), पाइलोकार्पीन (**पाइलोकार्पस जैबोरेण्डी**), कुनैन (**सिनकोना जाति**), इमेटीन (**सिफेलिस जाति**), पैपेवरीन (**पैपेवर जाति**) एवं कोल्चीसीन (**कोल्चीसीन आटोम्नेल**)। आर्थिक कारणों को ध्यान में रखते हुये कुछ औषधियां अधिकांशत संश्लेषित ही बनाई जाती हैं। **कैथेरेन्थस रोजियस** नामक पौधे से प्राप्त औषधियां बिनब्लास्टिन और विक्रिस्टीन आधुनिक समय में उपयोग की जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण औषधियां हैं। इस पौधे को मधुमेह के उपचार के लिये प्रभावी माना जाता था और यह एक संयोग ही था कि विभिन्न पौधों की छंटाई करते समय इसमें कैंसर रोधी सक्रिय तत्व पाये गये। हालांकि रासायनिक रूप से बिनब्लास्टिन और विनक्रिस्टीन में बहुत कम अंतर है, दोनों ही औषधियों को रोग लक्षणों के आधार पर रोगों के निदान में उपयोग में लाया जाता है। औषधि निदान के कारण बिनब्लास्टिन को होउगिन रोग और बच्चों के ल्यूकीमिया रोग के निदान के लिये प्रयुक्त किया जाता है। बिनक्रिस्टिन लिम्फो सारकोमा के निदान में बिनब्लास्टिन से श्रेष्ठ होने के साथ ही अधिक विषैली है। इन दोनों ही औषधियों की इस्तेमाल की जाने वाली मात्रा भी अलग-अलग है। बिनब्लास्टिन मनुष्य में 0.1-0.2 मिग्रा. प्रति किग्रा. की दर से दी जाती है। जबकि बिनक्रिस्टिन का दसवें भाग की मात्रा ही पर्याप्त होती है। बिनक्रिस्टिन का विषैला प्रभाव तंत्रिका तंत्र पर होता है, जबकि बिनब्लास्टिन अस्थिमज्जा को कम करती है। दोनों ही औषधियों के दुष्प्रभाव लक्षण उल्टी होना और ज्वर आना हैं।

पौधों से प्राप्त चिकित्सोपयोगी अन्य महत्वपूर्ण औषधियां हैं

पेरुवोसाइड : यह थिवेटिया नेरिफोलिया पौधे से प्राप्त होने वाला ग्लाइकोसाइड है और हृदय रोग में दिया जाता है। वैलेरियन, वैलेरियाना जाति के पौधों से प्राप्त किया जाता है जिससे केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की अवसादी सक्रियत होती है। **जैण्शियेनेसी** कुल के औषधीय पौधे **पिकोराइजा कुरोआ** से प्राप्त होने वाले तिक्त मोनोटरपीन इरिडोइड नामक ग्लाइकोसाइड का प्रयोग टॉनिकों, क्षुधावर्धक, ज्वरशामक और मलेरिया रोधी औषधियों में होता है। यह पीलिया और यकृत शोथ के उपचार में भी काम आता है। पित्तवर्धक प्रभाव होने के कारण यह ग्लाइकोसाइड संक्रामक एवं अमीबीय शोथ में भी उपयोगी है।

वैलेरियाना पौधे से हाल ही में एक नये इरिडोइड वलट्रेट को बिलगित किया गया है। भारतीय मूल का **वैलेरियाना वालिशाई**

अधाटोडा वसीका : पुष्पित एवं फलित

डिजिटेलिस परप्यूरिया

पौधा 2% वलट्रेट होने के कारण, इस औषधि का सबसे अच्छा स्रोत है। वलट्रेट का प्रयोग शामक और प्रशान्तक औषधि के रूप में किया जाता है। 'वैलेरियन' जाति में वैलेरिनिक अम्ल भी पाया जाता है जिसकी स्पैसमोलिटिक क्रिया होती है। जटामान्सी (**नार्डोस्टेकिस जटामान्सी**) से प्राप्त होने वाले जटामैनसोन में शांतिकारक गुण होते हैं।

व्यावसायिक रूप में उपलब्ध शतावरी, वास्तव में **एस्पैरागस रेसीमोसा** की सूखी जड़ें होती हैं। आयुर्वेद पद्धति में शतावरी का उपयोग गर्भाशय संबंधित रोगों तथा टॉनिक और प्रत्यम्ल के रूप में किया जाता है। शतावरी से चार स्टीरायड सैपोनिन (शतावरिन I-IV) बिलगाये गये हैं। इनमें से शतावरिन I ही मुख्य सक्रिय तत्व है और इसमें गर्भाशय संकुचक गुण होते हैं। शतावरी के एल्कोहलीय निष्कर्ष से प्राप्त विभिन्न सैपोनिन मिश्रण में गर्भाशयरोधी गुण पाये जाते हैं। अतः आयुर्वेद पद्धति में इसका उपयोग गर्भावस्था में गर्भपात रोकने तथा सुरक्षित प्रसव के लिये किया जाता है।

हालांकि वनस्पति शास्त्र में **एस्पैरागस रेसीमोसा** (लिलियेसी कुल) को शतावरी के मुख्य स्रोत के रूप में वर्णित किया गया है लेकिन व्यावसायिक रूप में मिलने वाली औषधि की वानस्पतिक पहचान अभी नहीं हो पाई है।

आयु बढ़ाने के गुणों के लिये विख्यात पूर्वी एशियाई देशों में प्रचलित जिनसेंग नामक औषधि 'अरेलियेसी' कुल के पौधे **पैनेक्स जिनसेंग** से प्राप्त की जाती है. अमेरिकी जिनसेंग का स्रोत **पैनेक्स क्विनक्वैफोलियम** है। यह उत्तरी अमेरिका एवं कनाडा में कृष्य एवं जंगली पौधों से प्राप्त की जाती है तथा पूर्वी एशियाई देशों को यहां से निर्यात की जाती है। इसकी इन दो जातियों से प्राप्त होने वाली जिनसेंग के रासायनिक घटकों में अधिक अंतर नहीं होता। यह जिन्सीनोसाइड नामक सैपोनिन 'पै. जिनसेंग' से निकाले जाते हैं। यह प्रशान्तक शामक के रूप में प्रयुक्त होने के साथ-साथ सक्रिय कारक और उद्दीपक के रूप में भी प्रयोग में लाई जाती है। जिनसेंग टानिक खून में शर्करा को घटाता है तथा मेटाबोलिक, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र एवं आन्तः स्त्रावी तन्त्र पर सक्रिय रूप से प्रभाव डालता है। ... रासायनिक परीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह प्रोटीन (राइबोन्यूक्लिक अम्ल) एवं कोलेस्टेरोल के ... संश्लेषण को बढ़ाता है।

चीनियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली अपरिष्कृत औषधियों को हाल.के वर्षों में आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर जांचने के उपरान्त अनेक प्राचीन मान्यताओं को सही पाया गया है और अन्तर्राष्ट्रीय ... से इनकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। उदाहरण के रूप में ... **एनुआ** पौधे के वायवीय भागों से आर्टीमिसीन औषधि प्राप्त की ...

है। यह मलेरिया परजीवी—**प्लाज्मोडियम** की "वाइवैक्स" और "फैल्सीपेरम" दोनों ही जातियों के ऊपर प्रभावशाली होती है। चीनी भाषा में **आ. एनुआ** जिन्घाओं और आर्टीमिसीन जिंघाओसू के नाम से जाने जाते हैं। आर्टीमिसीन से प्राप्त व्युत्पन्न आर्टीथर, आर्टीमिसीन से अधिक प्रभावशाली है। केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान में मस्तिष्क पर असर करने वाले मलेरिया परजीवी के निदान के लिये इसको औषधि के रूप में तैयार करने पर शोध जारी है।

सन् 1978 में चीनी वैज्ञानिकों ने कपास (**गासिपियम**) के बीजों से प्राप्त होने वाले वर्णक-गौसीपौल को एक प्रभावशाली पुरुष प्रजनन रोधी कारक के रूप में विश्व समुदाय के सम्मुख रखा। परन्तु बाद में की गई खोजों से गौसीपौल एक विषैला एवं हानिकारक पदार्थ सिद्ध हुआ। चीन में पौधों से प्राप्त होने वाली अन्य प्रमुख एवं प्रचलित औषधियों में मुख्य हैं :

कैथेरेन्थस रोजियस — सदाबहार

इन्डरुयूबिन—इसे **बैफिकैकन्थस क्यूसिया** की पत्तियों से प्राप्त किया जाता है और यह एक औषधि है।

एग्रीमोरफौल—**एग्रीमोनिया पाइलोसा** पौधे की कलियों से प्राप्त होने वाली यह औषधि कृमिरोधी है।

'लिग्विस्टीकम' जाति से मिलने वाली औषधि टेट्रामियाइल पायराज़ीन अन्तरोधी रुधिर वाहिका रोगों जैसे प्रमस्तिष्क अंत शल्यता के उपचार में प्रयुक्त होती है।

शिजान्ड्रिन—सी, जो कि **शिजैण्ड्रा चाइनेन्सिस** के फल से प्राप्त की जाती है। यकृत रक्षक औषधि है।

ट्राइकोसैन्थिन—**कुकरन्टिेसी** कुल के पौधे **ट्राइकोसैन्थीस किरिलोवाई** की जड़ों से मिलने वाली यह औषधि एक प्रोटीन है जिसका उपयोग गर्भपात के लिये किया जाता है।

लखनऊ स्थित, केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान (सी.डी.आर.आई.) में पिछले चार दशकों से पौधों से प्राप्त होने वाली औषधियों के विकास पर कार्य हो रहा है। अब तक 3700 पौधों पर की गई जांच के बाद लगभग 450 पौधों के निचोड़ में जैविक सक्रियता पाई गई। सन् 1974 में संस्थान द्वारा **कोलियस फास्कोलाई** से प्राप्त किया गया यौगिक कोलियोनाल चर्चा का विषय रहा। उसके बाद सन् 1977 में हैक्सट इंडिया लिमिटेड ने इसी पौधे से फौरस्कोलिन को पृथक करने का दावा किया। अनुसंधानों से पता चला कि कोलियोनोल और फौरस्कोलिन वास्तव में एक ही पदार्थ को दिये गये दो नाम थे। कोलियोनोल हार्मोन संवेदनशील एडिनाइलेट साइक्लेज को क्रियाशील करता है। यह तनाव को कम करने वाला एक शक्तिशाली पदार्थ है। ग्लॉकोमा के उपचार के लिये भी इसे प्रयुक्त किया जाता है।

पि. कुरोआ से मिलने वाले पिक्रोसाइड I और कुटकोसाइड के मिश्रण, पिक्रोलिव का यकृत रक्षी कारक के रूप में अनुसंधान अभी विकास के प्रथम चरण में है। यह यकृत को कार्बन टेट्राक्लोराइड, गैलैक्टोसैमीन, पैरासिटामोल, मलेरिया परजीवी और हिपैटिक-बी-विषाणु द्वारा होने वाली क्षति से बचाती है। **एण्ड्रोग्रैफिस पैनिकुलेटा** से प्राप्त की जाने वाली औषधि एन्डोग्राफोलाइड भी यकृत रक्षी औषधि है और **प्ला. बर्घी** से सीरम तथा यकृत में होने वाली क्षति से बचाती है। आरबेर्ट्रिस्टोसाइड (स्त्रोत **निक्टैन्थस आर्बोट्रिस्टिस**) कालाज़ार की एक औषधि है। **मैपिया फीटिडा** से प्राप्त कैम्पटोथैसिन में कैंसररोधी गुण पाये गये हैं।

मधुमेह के उपचार के लिये भारत में प्रयोग की जाने वाली औषधि "सप्तरंगी" **सैलेसिया** की दो जातियों की सूखी जड़ व छाल से बनाई जाती है। भूरी सप्तरंगी **सै. मैक्रोस्पर्मा** तथा पीली **सै. स्पीनॉयडीस** से प्राप्त की जाती है। **सै. स्पीनॉयडीस** का एलकोहलीय निष्कर्ष मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में अल्पग्लूकोज़ रक्तता की स्थिति पैदा करता है। फ्रान्स में बवासीर तथा निष्क्रिय रक्ताधिक्य रोगों के निदान के लिये दी जाने वाली औषधि ऐसिन **ऐस्कुलस हिप्पोकास्टेनम** के बीजों से प्राप्त की जाती है। ऐसिन को शोथरोधी और निस्रावरोधी के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

ब्राहमी (स्रोत **सेन्टेला एशियाटिका**) के नाम से प्रसिद्ध औषधि मस्तिष्क के लिये लाभदायक मानी जाती है। यह त्वचा के रोगों, कोढ़ और सिफलिस जैसे रोगों में भी लाभप्रद होती है। भेषजीय अध्ययनों

ने इसके प्रशान्तक, शामक, उद्वेष्टहर तथा अमीबारोधी गुणों को दर्शाया है। उपापचयी (एनाबोलिक) गुणों वाली यह औषधि मानसिक रूप से अविकसित बच्चों की साधारण क्षमता और आचरण संबंधी प्रतिरूप को बढ़ाती है।

β-सिटोस्टीरोल से युक्त दवाऐं जर्मनी में विभिन्न रोगों में इस्तेमाल की जाती हैं। फूलीमन एक ऐसी ही दवा है। 'हाइपोक्सीडेसी' कुल के अनेक अफ्रीकी पौधे, जिनमें β-सिटोस्टीरोल पाया जाता है आमवात के निदान में लाभदायक सिद्ध हुये हैं। जिस प्रकार फ़िनाइल व्यूटाजोन से शोथ आमवात को संदमित कर उपचारित किया जाता है, संभवतः इन पौधों का सक्रिय तत्व भी प्रोस्टाग्लेन्डिन के संदमन द्वारा अपना प्रभाव दिखाता है। सोयाबीन तेल भी β-सिटोस्टीरोल का एक अच्छा स्रोत है। इसे कोलेस्टेरोल कम करने के लिये प्रयोग किया जाता है। असंतृप्त अम्लों तथा β-सिटोस्टीरोल की उपस्थिति के कारण इसबगोल से मिलने वाला तेल भी कोलेस्टेरोल को कम करने की क्षमता रखता है।

कामीफोरा मुकुल पौधे के रेज़िन गुगुल को आयुर्वेद में आमवात शोथ, स्थूलता आदि रोगों में तथा आंतरिक पूर्तिरोधी, शोथरोधी के रूप में दिया जाता है। औषधि से, तीन स्टीरोल, दो स्टीरोन, दो डाइटरपीन, एक डाइटरपीन एलकोहल और एक हाइड्रोकार्बन बिलगाया जा चुका है। आधुनिक अनुसंधानों द्वारा गुगुल के उपरोक्त सभी गुणों की जांच की जा चुकी है और आयुर्वेद में वर्णित दावों को सत्य पाया गया है। संस्थान द्वारा विकसित रेजिन गुगुलिपिड़ को सिपला कंपनी द्वारा तैयार करके 'गुगुलिप' के नाम से बाजार में लाया गया है। पिछले दशक के अंत में बिक्री के लिये जारी की गई यह औषधि लिपिडों की मात्रा कम करने में सहायक होती है। इसकी कार्यदक्षता आजकल की बहुप्रचलित औषधि क्लोफिब्रेट से की जा सकती है। क्लोफिब्रेट की तुलना में गुगुलिप की औषधि सहयता अधिक है।

थेवेटिया नेरीफोलिया से मिलने वाला पेरुवोसाइड नामक ग्लूकोसाइड जर्मनी में एनकोर्डिन नाम से बिकता है। यह हृदय की दुर्बलता दूर करने के लिये डाइगोक्सिन की तुलना में अधिक प्रभावशाली है। हृदय की पेशियों पर कार्य करने वाले एक और ग्लाइकोसाइड टानिक एस्क्लेपिन को **एस्क्लेपियस** जाति से प्राप्त किया जाता है। कार्य प्रणाली में यह डाइगोक्सिन के समान ही है। **विथैनिया सोम्नीफेरा** पौधे की सूखी जड़ों से प्राप्त होने वाली प्रसिद्ध औषधि अश्वगन्धा, टानिक, शामक तथा अन्य रोगों में प्रयोग की जाती है। सूखी जड़ों को श्वेत प्रदर तथा रुमैटाइड सन्धिशोथ में दिया जाता है। यह शोथरोधी भी होती है। ऐसी संभावना व्यक्त की गई है कि जड़ों के निष्कर्ष से प्राप्त हुये अनेक स्टीराइड लेक्टोन एवं एल्केलाइड ही औषधि के सक्रिय कारक हैं।

विसिया फैबा के फलों एवं हार्स बीन से प्राप्त होने वाली औषधि डोपा, भारतीय मूल के पौधों **म्यूक्यूना** जाति में लगभग 5-6% तक पाई जाती है। इस पौधे के बीज टानिक के रूप में तथा तंत्रिका संबंधी विकारों के लिये उपयोग में लाये जाते हैं। कुछ दुष्प्रभावों को छोड़कर डोपा, पारकिन्सनता में काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई है। ऐसा समझा जाता है कि डोपा के साथ ही कोई एक सक्रिय कारक और है जिसके कारण डोपा का उपरोक्त प्रभाव होता है। परन्तु ऐसे किसी कारक की अभी तक खोज नहीं हो पाई है। डोपा, नोरएड्रीनेलिन, डोपेमीन और 3-मिथोक्सी ट्राप्टामीन आदि अमीनों के जैव-संश्लेषण में पूर्वगामी भूमिका निभाती है। यह अमीन केंद्रीय संचारक के रूप में तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं।

प्यूरेरिया ट्यूबरोजा के कन्द 'विदारिकन्द' को टानिक, वाजीकर, मूत्रल तथा स्तन्यवर्धक के रूप में उपयोग किया जाता है। कन्दों के निष्कर्ष में प्रजनन शक्तिरोधी तथा यक्ष्मकीय गुण भी पाये जाते हैं। पौधे से पृथक किये गये ट्यूबेरोसिन ने यक्ष्मकीय रोधी गुणों के साथ स्टैफाइलोकोकस रोधी तथा फफूंद रोधीगुणों को भी दर्शाया है। पौधे के एलकोहलीय निष्कर्ष के पेट्रोलियम ईथर वाले भाग में इस्ट्रोजनीय गुण पाये जाते हैं।

विदारिकन्द को जम्मू-कश्मीर के खानाबदोशों और असम राज्य की कुछ जनजातियों में प्रजनन शक्ति रोधी के रूप में उपयोग किया जाता है।

डार्विन द्वारा 'जीवित जीवाश्म' कहे जाने वाले जिमनोस्पर्म पौधे गिंकोबाइलोबा को अल्सर और प्रमस्तिष्किय रक्त संचरण की कमी के उपचार में उपयोगी माना गया है। पश्चिमी जर्मनी में पौधे का निष्कर्ष टैबोनिन के नाम से उपलब्ध है। इस पौधे की पत्तियों में बाइफ्लेविनोइड तथा अन्य फ्लेवोन होते हैं जो कि शरीर क्रियात्मक के रूप में कार्य करते हैं। भारतीय पौधे—**क्यूप्रेसस फोर्टुओसा** से मिलने वाला बाईफ्लेविनोइड क्यूप्रेसिफ्लेवोन भी रासायनिक रूप में **गि. बाइलोबा** से प्राप्त होने वाले फ्लेवोन जैसा ही होता है।

खांसी की दवाइयों में प्रयुक्त होने वाला वसाका (स्रोत: अधाटोडा **वसाका**) वैसिसीन, वैंसिसिनोन और 6-आक्सीवेसिसीन आदि एल्केलाइडों का मिश्रण होता है। यह कफ़ोत्सारक और श्वास नली को खोलने के लिये दिया जाता है। आक्सीटोसिन और मिथाइल एग्रोमेट्रिन की भांति वैसिसिन में गर्भाशय संकोचक और गर्भस्रावक गुण विद्यमान हैं।

दमे के रोग में **टाइलोफोरा एंस्थैमैटिका** पौधे की पत्तियों को प्रभावी माना गया है। पत्तियों से प्राप्त एल्केलाइड दमा और नासाशोथ में क्रियाशील कारक होते हैं।

पृथ्वी पर लगभग 4,00,000 जातियों के पौधे पाये जाते हैं और उनमें से लगभग 20,000 पौधों को ही जीव विज्ञानी गुणों के लिये छांटा गया है। संभव है इस प्रक्रिया में या तो पौधे का पूर्ण रूप से अध्ययन ही न किया गया हो अथवा केवल एक ही सक्रियता के लिये अध्ययन किया गया हो। एक ही पौधे की विभिन्न जातियों में क्रियाशील कारक की उपस्थिति वृद्धिकारकों एवं पारिस्थितिक कारकों पर निर्भर करती है। इन सबको ध्यान में रखते हुए आवश्यकता इस बात की है कि पारम्परिक उपचार में उपयोग की जाने वाली सभी औषधियों का पुनः परीक्षण किया जाये। इसके साथ ही नये परीक्षणों के विकास की भी आवश्यकता है।

[डा. दीवान एस. भाकुनी, केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ- 226001; प्रस्तुति : श्री राजीव माथुर, डी बी- 41 डी, हरिनगर एल.आई.जी. फ्लैट्स, नई दिल्ली- 110064]

संजीवनी से अश्वगंधा तक

स्नेह प्रभा मेहता

महाराजा परीक्षित (अभिमन्यु के पुत्र) की मृत्यु का दिन आ पहुंचा, सर्वत्र शोक का वातावरण छाया हुआ था, परन्तु वैद्यराज धन्वन्तरि के मन में एक उल्लास व उमंग थी। उन्हें राज्य की कामना नहीं थी, वे तो केवल सर्वप्रिय महाराजा को पुनर्जीवन देने वाले थे। वे जानते थे तक्षक सर्प के दंश का उपचार उनकी एक औषधि में है। अतः जैसे ही तक्षक महाराज को डसेगा, वैद्यराज उन्हें जीवित कर देंगे। तो क्या हमारी पुरातन चिकित्सा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का दावा रखती थी? यदि हां, तो वह विद्या कब और कहां लुप्त हो गई?

शायद नवीनीकरण की भूल-भुलैय्या में हमने स्वयं को ही भुला दिया है। पाश्चात्यकरण की दौड़ में हम अपनी सभ्यता व संस्कृति को कहीं बहुत पीछे छोड़ चुके हैं। परन्तु वह संस्कृति आज भी हमारे आदिवासियों के जन-जीवन में सुरक्षित है। यह संस्कृति लोक गीतों, लोक कथाओं व लोकोक्तियों द्वारा बोलकर अथवा गाकर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे पहुंचा दी जाती है। जैसे 'हर मसाले पीपला मूल', 'आंवले का खाया और बुजुर्ग का कहा पीछे जाने', 'एक अनार सौ बीमार'। समस्त भारत में बसने वाले यह आदिवासी अपने रीति-रिवाजों से टस से मस नहीं हुये हैं। हर जाति की विशेष परम्परा है जिसे वे संजो कर रखे हुये हैं। यहां की चार करोड़ आदिवासी जनसंख्या अधिकतर पूर्वी व मध्य भारत में बसी हुई है। इन 563 जन जातियों में कोल, भील, गोंड, संथाल, हल्बा, खेरिया, ओराओं, लोधा, मिकिर, नागा, मुंडारी, सिओरा, खासी, मोंपास, मुंडा, असुर, कोंधा, टोडा, ओंगे, कचरी, मीना व जाखा मुख्य हैं। प्रकृति की गोद में पली यह जातियां वनों से विशेष प्रेम रखती हैं। जीवन के हर रंग में इनका वन सम्पदा से गहरा नाता जुड़ा है।

धार्मिक कर्मों में तो वृक्षों का विशेष महत्व है ही, जैसे पीपल व तुलसी की पूजा समस्त भारत में की जाती है। पंजाब, उत्तर प्रदेश व केरल में पीपल को विष्णु का स्वरूप माना जाता है, भोजपुर में सूर्य का व राजस्थान में धन के देवता कुबेर का। वट वृक्ष को शंकर के समान मानते हैं। कई लोग ऐसा भी मानते हैं कि ब्रह्मा वट वृक्ष का मूल है, विष्णु इसका तना व शंकर इसकी शाखायें है। उत्तरी भारत में बेल, धतूरा, चंदन, पान, सुपारी, नारियल शिव पर चढ़ाये जाते हैं। आदिकाल से ही चिकित्सा पद्धति में भी जड़ी-बूटियों का विशेष स्थान रहा है। इसका उल्लेख अथर्ववेद, कौटिल्य का अर्थशास्त्र चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता व अलबरौनी के लेखों में दिया है। अथर्व वेद में दो प्रकार की चिकित्सा का वर्णन है : एक तो टोना-टोटका व धार्मिक विचारों पर आधारित है तथा दूसरी जड़ी-बूटियों पर। दूसरी पद्धति ने ही आगे चल कर आयुर्वेद (अर्थात् आयु देने वाला वेद) का स्थान लिया है।

भारत के अतिरिक्त संसार की अन्य संस्कृतियों में भी जड़ी-बूटियों का चिकित्सा पद्धति में प्रयोग होता रहा है। मेक्सिको, माया संस्कृति, यूनान, रोम, मिस्र व अरब देशों की संस्कृतियां। मिस्र की महारानी नेफरेटीटो अपने पति को दर्द निवारक दवा देते हुये

गुरु की वैदिक शिक्षा : जो वैद्य शास्त्र एवं कर्म दोनों को जानता है तथा ऊहापोह ज्ञान वाला है, वह उसी प्रकार रोगी को आरोग्य प्रदान करने में पूर्ण समर्थ है जिस प्रकार कि संग्राम में दो पहियों वाला रथ। वैद्य के लिये 'शास्त्रों का ज्ञान एवं कर्माभ्यास दोनों आवश्यक हैं।

दिखाई गई है। हेनबेन का नींद लाने के लिये सर्वप्रथम प्रयोग मिस्र में ही किया था। आदि संस्कृतियों व आदिजाति की इस विद्या की महता को आधुनिक वैज्ञानिक ने बखूबी स्वीकारा है। इन्हीं पर निर्धारित कई क्षेत्रों में पूरी खोज कर के कई असाध्य रोगों के निवारण में उन्नति की है। ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने हैं। दक्षिण अमेरिका में प्रयोग किये जाने वाले वाण-विषों से पेशी विश्रांतक दवा की प्राप्ति हुई है। इसी प्रकार मध्य अमेरिका व अफ्रीका में 'सेपोजैनिन' पौधे से कॉर्टीसोन की प्राप्ति हुई है। रक्त चाप को कम करने की दवाईयां अमेरिका के 'वेरेट्रम विरीडी' पौधे से मिली हैं, कई मानसिक रोगों की औषधियां 'हैल्यूसिनोजेनिक' पौधों से प्राप्त हुई हैं। साइबेरिया के वैज्ञानिकों ने साल्ट वर्ट नामक पौधे से जिगर के रोग का उपचार किया है व कैंसर रोग के निदान के लिये साइबेरियाई पौधे से औषधि निष्कर्षित की गई हैं। लोक दवाओं के आधार पर ही पूरी खोज करने के पश्चात कई औषधियां हमारे सामने आई हैं। उनमें से एक है रेसरपीन जिसको सर्पगंधा से और दूसरी अश्वगंधा है जिसे बिथैनिया सोम्नीफेरा से निकाला गया है। भारतीय चिकित्सा पद्धति में पहली का प्रयोग मानसिक रोग, मिर्गी, व अधिक रक्त चाप में किया जाता था व अश्वगंधा भारतीय पद्धति की पुरातन दौबल्यहरण औषधि है। जिंघाव 'आर्टीमेसिआ एनुया' सदियों से चीन में मलेरिया रोग के लिये दी जाती थी। इससे अब आर्टिमेसिन दवा प्राप्त की गई है।

उत्तरी पूर्वी ऑस्ट्रेलिया के वर्षा वनों में व नदियों के किनारे एक फलीवाला पौधा मिलता है जिसे 'कॉस्टनॉसपर्मम ऑस्ट्रेल' कहते हैं। आस्ट्रेलिया के आदिवासी इस फली के बीजों को संसाधित करके खाते हैं। वैज्ञानिकों ने इन बीजों में से कॉस्टानॉसपर्माइन नामक पदार्थ निकाला है जिसे संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं औषधि प्रशासन ने एड्स रोग के लिये मान्यता दी है। इस पदार्थ को 'एस्ट्रालैगस, आक्सीट्रापिस व स्वेनसोना' पौधों में से भी निकाला गया है। इसी प्रकार सदाबहार (कैथेरैन्थस रोज़ियस) से कैंसर की दवा, चालमूगरा (हाइड्रोकार्पस कुर्जी) से कोढ़ की दवा, ब्राह्मी (सेण्टेला एशियाटिका) से मानसिक रोग, गुगुल (कामीफोरा मुकुल) से जोड़ों के दर्द व हृदय रोग के निदान की दवा निकाली गई है।

यह आश्चर्य की बात है कि संसार भर की विभिन्न जन-जातियां भौगोलिक रूप से दूर होते हुये भी अपनी संस्कृति में कुछ तालमेल रखती हैं। जैसे की करेले का उपयोग मधुमेह रोग के लिये मध्य अमेरिका व दक्षिण पूर्व एशिया में किया जाता है। पीपल सबसे पुरातन व धार्मिक वृक्ष माना गया है। ईसा से 3000-2000 वर्ष पूर्व की मोहन जोदाड़ों व हड़प्पा संस्कृतियों में भी पीपल के प्रयोग का वर्णन मिलता है। अथर्व वेद में मनुष्य व पशुओं में शक्ति के लिये

रावल्फिया सर्पेन्टिना : पुष्पित एवं फलित

पीपल का प्रयोग किया जाता था। अफ्रीका की कुछ जातियां भी पीपल का प्रयोग प्रजनन शक्ति की वृद्धि के लिये,फसल को बढ़ाने व पशुओं में दूध की मात्रा बढ़ाने के लिये करती हैं।

आदिकाल या फोकलोर दवाइयों में प्रयोग की जाने वाली औषधियों का वर्णन संहिताओं व निघण्टुओं में भी मिलता है। भारत में संथाल जाति पीपल का प्रयोग ज्वर, पेचिश, जोड़ों का दर्द आदि में करती है। इन्हीं रोगों के निदान के लिये चरकसंहिता में पीपल का वर्णन हैं।

हड्डियों के टूटने पर बिहार के मुंडा व असुर जातियां एवं कुमाऊं की कई जातियां हर ज्वारा (वाइटिस क्वाड्रैंगुलेरिस) की टहनियों को पांच दिन तक चबाते हैं जिससे टूटी हड्डी जुड़ जाती हैं। भावप्रकाश निघण्टु में भी इसका वर्णन हैं।

तुलसी को आंखों के रोग व कफ रोग में प्रयोग किया जाता है। अनार के फल, छाल व बीज मुहांसों के लिये प्रयोग करते हैं। बस्तर की मारिया व मुटिया जातियां बहेड़ा के बीज बवासीर, प्रवाहिका, व सिर दर्द में देते हैं। कचनार की जड़ की छाल का प्रयोग मोटापा कम करने व ट्यूमर के लिये किया जाता है। इन सब औषधियों की पुष्टि भावप्रकाश निघण्टु में की गई है। ऐसी छः सौ औषधियां जो प्राचीन

काल से प्रयोग की जाती है, 250 का वर्णन भारतीय चिकित्सा पद्धति में भी हैं। परन्तु इनमें से बहुत कम पर शोध कार्य हुआ है। इस विषय में सबसे बड़ी समस्या उठती है औषधियों के पहचान की। अधिकतर औषधियों के न तो चित्र मिलते हैं और न ही कोई वर्णन। कई जगहों पर तो उनके स्थानीय नाम भी बदल गये हैं। इस समस्या का समाधान 'एथिनोबोटैनिकल अनुसंधान' द्वारा किया जा सकता है। सर्वप्रथम मानव जाति वनस्पति विज्ञान (एथनोबॉटनी) शब्द का प्रयोग सन 1896 में अमेरिकी आर्थिक वनस्पतिविज्ञ जे.डब्ल्यू. हर्शबर्गर ने किया था। एथनोबॉटनी का अर्थ है आदिम जाति का पेड़-पौधों से संबंध। किर्तीकर व बासु ने अपनी पुस्तक 'इंडियन मेडिसिनल प्लान्टस' में लिखा है कि जिस शास्त्र को आज एथनोबॉटनी कहते हैं, इस शास्त्र को मान्यता देने का श्रेय पुरातन भारतीयों को मिलता है। कई उदाहरण ऐसे हैं जहां अपनी जान को खतरे में डालकर इन लोगों ने ठीक औषधि का पता लगाया है। आधुनिक युग में इस क्षेत्र में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, मेक्सिको व भारत में काफी कार्य हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी इस विषय में बहुत रुचि दिखाई है। इस संगठन ने संसार भर में 20 अनुसंधान केंद्र खोले हैं जिनमें से 2 भारतवर्ष में हैं: वाराणसी व गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर।

इन अनुसंधानों में अनुसंधानकर्त्ता वनवासी जनजातियों की मदद लेते हैं। इन वनवासी जनजातियों के पास वनस्पति ज्ञान का एक भंडार है, लेकिन ये लोग किसी अन्य को अपनी विद्या देना पाप समझते हैं। चर्क संहिता के अनुसार "औषभिनभिख्याभ्यां जानेतहयजपोवेन, अविपाश्चै-वगोपाश्च से चान्यै वनवा सिन:", अर्थात् पेड़-पौधों की ठीक पहचान के लिये वनों में रहने वाले लोग जैसे चरवाहे व गड़रियों, आदि से मदद ली जाती थी। इनकी जानकारी प्राप्त कर जड़ी-बूटियों का साधारण नाम, वैज्ञानिक नाम, मिलने का स्थान, पहचान व उपयोग आदि लिख दिये जाते हैं।

पुरातन ग्रंथ, विशेषकर ऋग्वेद व अथर्ववेद ईसा से 2000-1000 वर्ष पूर्व तक में प्रयोग में लाये जाने वाले पौधों का वृतान्त बताते हैं। इन ग्रंथों में वर्णित सोमरस को कई वैज्ञानिकों ने 'इफेड्रा' पौधे का रस बताया है। परन्तु कुछ ने इसे 'अमेनिटा मस्केरिया' कहा है। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता व निघण्टुओं में भी इसका वर्णन मिलता है।

भारत के पुराने स्तूपों व मूर्तियों से कई औषधियों के विषय में जानकारी मिली है। बुद्ध के समय की एक मूर्ति मिली है जिसमें बुद्ध को एक जड़ी-बूटी अर्पित की जा रही है और उनके पास ही, वही बूटी काफी मात्रा में भूमि पर रखी हुई है। एस. मेंहदीहसन ने इस पौधे को सोमवृक्ष बताया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम पुरातन चिकित्सा व आधुनिक चिकित्सा का मेल करें जिससे दोनों पद्धतियों का भरपूर लाभ उठा सकें।

एक विदेशी ने कहा है कि परम्परागत औषधियों की खोज छोटे-छोटे क्षेत्रों में की जानी चाहिये व हर क्षेत्र की वनस्पति वहां के रोगों के निदान के लिये उपयोग करनी चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि हम सोचते ही रह जायें और हमारी यह संस्कृति और सभ्यता अतीत में विलीन हो जाये।

वियोनिया सोम्नीफेरा

हां! वैधराज धन्वन्तरि महाराजा परीक्षित को क्यों नहीं बचा पाये, इस विषय पर बहुत-सी किवदन्तियां हैं। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या धन्वंतरि की औषधि ही हिमालय से हनुमान द्वारा लाई गई संजीवनी थी जिसने लक्ष्मण को जीवनदान दिया था? यह तो हम नहीं बता सकते परन्तु इतना जानते हैं कि शिमला के निकट जाखू नामक स्थान में मिलने वाली एक बूटी संजीवनी के नाम से अवश्य प्रसिद्ध है। इसे वहां के लोग अपने बच्चों को सूखा रोग के लिये देते हैं।

[श्रीमती स्नेह प्रभा मेहता, वैज्ञानिक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

दवा देने का नया तरीका

एम.जी. कुलकर्णी

क्या कभी आपको यह सोच कर आश्चर्य हुआ है कि डाक्टर एक दिन में दवाइयों की दो से चार खुराक क्यों देते हैं? जिन्हें अक्सर समय से खाने की भूल आम रोगी करता है। क्या आपने कभी सोचा है कि क्यों न कोई ऐसा उपाय हो कि इन चार खुराकों के बदले दिन में सिर्फ एक ही खुराक खानी पड़े? कन्ट्रोल्ड रिलीज डिलीवरी सिस्टम ने इसी उद्देश्य से ऐसी दवाइयों की व्यवस्था करने के प्रयास किये हैं, जिन्हें बार-बार न लेना पड़े और जिनके दुष्प्रभाव भी कम से कम हों। प्रस्तुत लेख में औषध और पालीमर विज्ञान की इस दिशा में हुयी प्रगति की संभावनाओं की व्याख्या की गई है।

क्यों आवश्यक है नियंत्रित वितरण

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हमें एक दृष्टि औषधि प्रयोग के अंतर्गत होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं पर भी डालनी चाहिये। भेषज विज्ञान की इस विषय से संबंधित शाखा फार्माकोकाइनेटिक के नाम से जानी जाती है। निम्नलिखित संपूर्ण फार्मोकोकाइनेटिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त, औषधि प्रयोग को संक्षेप में चित्र 1 में दर्शाया गया है। रुधिर प्लाज्मा में औषधि की सांद्रता समय के साथ धीरे-धीरे बढ़ती है और अधिकतम बिंदु तक पहुंच जाती है। प्रत्येक औषधि के लिये एक न्यूनतम सान्द्रता स्तर होता है जिसे रोग निवारक स्तर (थिराप्यूटिक लेवल) कहते हैं, औषधि को क्रियाशील बनाने के लिये उसे बनाये रखना आवश्यक होता है। यद्यपि एक ऊपरी सीमा, विषजन्य सीमा (टाक्सिक लेवेल) भी होता है जिसके बाहर औषधि विषैली हो जाती है। इन दोनों के मूल्यांकनों के अनुपात को रोग निवारक अभिसूचक या थिराप्यूटिक इन्डेक्स (TI) कहते हैं और यही औषधि की विलक्षणता होती है। इसके बाद धीरे-धीरे औषधि का प्रभाव कम होने लगता है। वास्तविक औषधि सान्द्रता से आधी औषधि सान्द्रता तक पहुंचने में लगा समय इसका अर्ध जीवन काल ($t_{1/2}$) कहलाता है। रुधिर प्लाज्मा में जैसे ही औषधि की सान्द्रता, रोग निवारक स्तर से कम होती है, औषधि की अगली खुराक दे दी जाती है।

अनेक औषधियों के लिये रोग निवारक अभिसूचक 2 के आस-पास होता है और उसी के साथ दो खुराकों के बीच का अंतराल, औषधि के अर्ध जीवन काल से कुछ कम होना चाहिये। क्योंकि अनेक सामान्य औषधियों का अर्ध जीवन काल लगभग 8 घंटे का होता है इसलिये यह स्पष्ट है कि एक दिन में औषधि की दो से चार खुराकें तक देनी होंगी। निराकरण दर को घटा कर अथवा अवशोषण दर कम करने के लिये औषधि की अवस्था को बदल कर, दो खुराकों के बीच के अंतराल को बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान नियंत्रित वितरण व्यवस्था अथवा कंट्रोल्ड रिलीज डिलीवरी सिस्टम इसी दूसरी बात पर आधारित है। यह क्रियाविधि, उन औषधियों को देने के लिये उत्तम है जिनका जीवन काल छोटा और रोगनिवारक अभिसूचक कम होता है। प्लाज्मा में आदर्श सान्द्रता प्रोफाइल तथाकथित शून्य आर्डर औषधि वितरण व्यवस्था द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जिसमें औषधि वितरण की दर सारे समय स्थिर रहती है।

औषधि उद्योग आज घोर प्रतिस्पर्धात्मक होता जा रहा है। बाजार में अपनी साख बनाये रखने के लिये दवा बनाने वाली कंपनियां नयी-नयी औषधियां बना रही हैं। हालांकि, नयी औषधियों के विकास से जोखिम भी बढ़ता जा रहा है और इनके विकास पर आने वाली लागत को रोकना भी आवश्यक होता जा रहा है। वर्तमान में प्राप्त औषधियों की बाजार में उपब्लधता बनाये रखने के लिये नियंत्रित वितरण व्यवस्था का विकास एक प्रमुख साधन हो सकता है। केवल संयुक्त राज्य में ही, सौ से अधिक कंपनियां इस क्षेत्र में अनुसंधान में लगी हुयी हैं। इस प्रौद्योगिकी पर आधारित उत्पादों की इस वर्ष के अंत तक, बाजारों में खपत 2 अरब डालर तक बढ़ जाने की संभावना है।

संक्षिप्त इतिहास

ग्रीक और रोमन काल से भी हजारों वर्ष पहले से नियंत्रित औषध वितरण व्यवस्था का मानव को ज्ञान है। नवीं शताब्दी में गोलियों पर म्यूसिलेज की परत चढ़ाने के लिये 'साइलियम' के बीजों का निष्कर्ष प्रयोग में लाया जाता था। यूरोप में औषधियों के कड़वेपन को कम करने के लिए गोलियों पर सोने और चांदी की परत चढ़ाने का प्रचलन रहा है। टैल्क और म्यूसिलेज के लेप को मुक्ता लेप कहा जाता था और यह पद्धति उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रचलित रही।

लेप, जिसे आधुनिक प्रौद्योगिकी का अग्रदूत समझा जा सकता है, का विकास बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ था। प्राकृतिक गोंद और शैलाक जैसे पदार्थ लेप चढ़ाने के लिये प्रयोग किये जाते थे।

प्रारंभिक मान्यता प्राप्त वितरण व्यवस्थाओं में से एक, स्मिथ क्लिन और फिलाडेल्फिया की एक फ्रांसीसी कंपनी, जिसका व्यापारिक नाम 'स्पानसुले' था, द्वारा सर्वप्रथम बाजार में उपलब्ध करायी गयी। इस पद्धति में औषधि की लेप चढ़ी गोलियां बड़ी संख्या में थीं। यह गोलियां फिर एक कैप्सूल में रखी जाती थीं। गोली पर चढ़ी परत की मोटाई, औषधि देने की पूर्वनिर्धारित दर के अनुसार भिन्न-भिन्न होती थी। इस प्रौद्योगिकी पर आधारित कुछ दीर्घकालिक मोचित उत्पाद डैक्सट्रोएम्फीटैमाइन सल्फेट, नासिका विसंकुलक, हिस्टामीनरोधी आदि हैं। आज 'स्पानसुले' प्रौद्योगिकी पर आधारित लगभग 20 औषधियां बाजार में आ चुकी हैं।
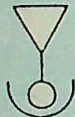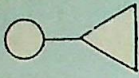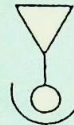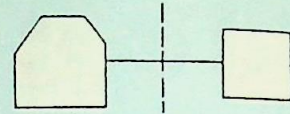
द्विप्रावस्थिक संकल्पना पर आधारित स्थल विशेष डिलीवरी सिस्टम

औषधि प्रयोग की विधियां

नियंत्रित औषधि वितरण व्यवस्था के अनेक रूप होते हैं जो औषधि के प्रयोग और उसकी प्रभावी अवधि पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिये : अधिकांश औषधियां जिन्हें 24 घंटे तक दिये जाने की आवश्यकता होती है, एक गोली प्रतिदिन खिलायी जाती है। मौखिक या मलाशय द्वारा दी जाने वाली औषधि भी इसी प्रकार दी जाती है। आंत्रेतर दी जाने वाली औषधि बहुत सूक्ष्मकणों में होनी चाहिये। सात दिन तक त्वचा द्वारा औषधि देने के लिये, पैच के रूप में परात्वचीय वितरण पद्धति (ट्रांसडर्मल डिलीवरी सिस्टम) उपलब्ध है। वे औषधियां जिन्हें बहुत लंबे समय तक एक प्रमाणिक दर पर दिये जाने की आवश्यकता होती है, देने के लिये अन्तर्रोप (इम्प्लांट्स) का उपयोग करते हैं, उदाहरण के लिये जननक्षमता नियंत्रण के लिये दी जाने वाली औषधियां ऐसी प्रारंभिक विकसित अनेक युक्तियों में से एक है—एल्जा द्वारा विकसित 'प्रोजेस्टेसर्ट' जो इथिलीन विनाइल एसीटेट आधारित अंतगर्भाशयी युक्ति द्वारा एक वर्ष के लिये प्रोजेस्टेरान निर्मुक्त करता रहता है। इसी प्रकार 5 वर्ष तक गर्भ निरोधक औषधि लीवोनोर्जेस्ट्रेल वितरित करने में सक्षम नॉरप्लान्ट से एक सिलिकान आधारित रिजर्वायर सिस्टम विकसित किया गया है।

नियंत्रित वितरण व्यवस्था को अनेक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। यह विभाजन की योजना (1) औषधि देने की विधि तथा (2) औषधि देने के माध्यम पर आधारित हो सकती है। औषधि अनेक माध्यमों द्वारा दैहिक रक्त संचार में प्रवेश कर सकती है।

अंतरात्वचीय अथवा ट्रांसडर्मल पद्धति : अंतरात्वचीय वितरण पद्धति पैच के रूप में उपलब्ध है। यात्रा अस्वस्थता अथवा मोशन सिकनेस के नियंत्रण हेतु प्रयोग की जाने वाली स्कोपोडर्म टी टी एस को कान के पीछे लगा दिया जाता है, जबकि एस्ट्रोजन चिकित्सा में काम आने वाले एस्ट्राडर्म टी टी एस को शरीर पर (कमर के नीचे) लगाया जाता है। ग्लिसरिल नाइट्रेट के पैच सीने पर लगाये जाते हैं। पैच मैम्ब्रेन रिजर्वायर अथवा गैडियेन्ट युक्ति हो सकते हैं। अंतरात्वचीय सिस्टम के अनेक लाभों में से एक यह है कि यह जठरांत्र तंत्र में एन्जाइम के अतिक्रमण और यकृत में औषधि के उपापचय को रोकता है। इस विधि से उपचार भी शीघ्र होता है और इसके दुष्प्रभाव भी नहीं होते। यह माध्यम यात्रा अस्वस्थता के उपचार के लिये स्कोपोलामाइन देने और हृदशूल के उपचार के लिये नाइट्रोग्लिसरिन देने के लिये अधिक उपयुक्त पाया गया है। शरीर में त्वचा द्वारा औषधि पहुंचाने के लिये सबसे बड़ा अवरोध, निर्जलित **किरेटिनीकृत** कोशिकाओं से निर्मित, स्ट्रेटम कारनियम है। ऐसे योज्य विकसित करने के प्रयास किये जा रहे हैं जो त्वचा द्वारा औषधियों की विसरणशीलता को बढ़ाने के लिये वेधन संवर्द्धक की भांति कार्य करेंगे।

मौखिक अथवा ओरल डिलीवरी सिस्टम : औषधि सेवन के लिये यह सबसे अधिक मान्यताप्राप्त माध्यम है। औषधि की प्राथमिक पद्धतियों में से एक, एस.के.एफ. लेबोरेट्रीज द्वारा विकसित स्पानसुल पद्धति है जिसका विवरण पहले भी आ चुका है। पेनवाट कारपोरेशन द्वारा विकसित 'पेनकाइनेटिक पद्धति' में औषधि आयन विनिमय रेजिन द्वारा संचरित होती है जिस पर पालीमर की एक पर्त चढ़ी होती है जैसे एथिल सैल्यूलोज। सोडियम या पोटैशियम आयन के विनिमय के परिणामस्वरूप औषधि पालीमर की पर्त के बाहर विसरित होने लगती है। परासरणी सिद्धांत पर आधारित मौखिक पद्धति का विकास हाल में ही हुआ है। अपनी साधारण अवस्था में औषधि, जिसे रिजर्वायर (पात्र) एक अर्धपारगम्य झिल्ली में बंद होता है,
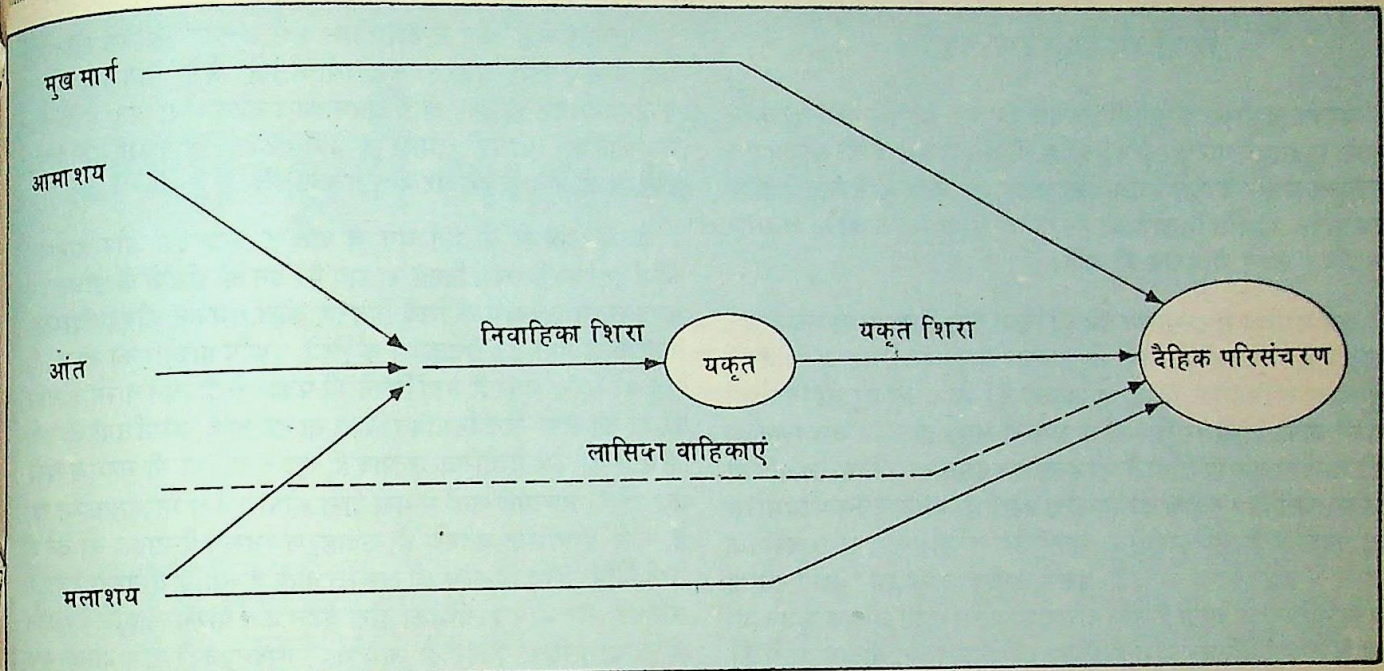
पानी तो जा सकता है किन्तु औषधि बाहर नहीं जा सकती। इस युक्ति से औषधि, डिस्क में लेसर स्रोत द्वारा किये गये छिद्र द्वारा वितरित होती है। जिन औषधियों पर जठरांत्र तंत्र और यकृत में एन्जाइम अतिक्रमण का संदेह होता है उन्हें मुख द्वारा लेने की सलाह नहीं दी जाती है।

मुख अथवा बक्कल मार्ग : मुख द्वारा औषधि देने के लिए औषधि को मुंह में जीभ के नीचे या होंठों और मसूढ़ों के बीच वाले स्थान पर रखा जाता है। मुख द्वारा औषधि देने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि औषधि यकृत में न जाकर सीधे दैहिक परिसंचरण में चली जाती है। त्वचा के विपरीत, मुख श्लेष्मिका किरेटिनीकृत नहीं होती हैं और त्वचा की अपेक्षा औषधियों के लिये अधिक पारगम्य होती है। इस माध्यम द्वारा दी जाने वाली औषधियों में आइसोसोरबाइड डाइनाइट्रेट, मेथिलटेस्टोस्टीरान एवं पेप्टाइड आदि मुख्य हैं। जठरात्र तंत्र में औषधियों का अवशोषण भोजन करने पर भी निर्भर करता है। मुख द्वारा औषधि लेने पर आमाशय खाली होने का कोई प्रभाव नहीं होता। उदाहरण के लिये बक्सटान से प्रोक्लोर पेराजीन निकलता है और तुरंत आराम पहुंचाता है।

मलाशय अथवा रेक्टलम औषधि प्रयोग : निम्न और मध्य अर्श शिराएं सीधे दैहिक परिवहन तंत्र में खुलती हैं। उपरि शिराऐं निवाहिका शिरा में खुलती हैं जो फिर यकृत में खुलती हैं। इस प्रकार औषधि का मार्ग, मलाशय जिसके द्वारा औषधि दी जाती है, के क्षेत्रफल पर निर्भर करता है। इसलिये यह संभव है कि औषधि यकृत तक पहुंचने के पहले ही मलाशय के निचले भाग में निर्मुक्त हो जाये। इस माध्यम द्वारा वह औषधियां दी जा सकती हैं जो गैस्ट्रिक ph पर अस्थायी होती हैं या जठरांत्र तंत्र में जिसका ह्रास होने की संभावना होती है। इसके लिये कम पृष्ठ क्षेत्रफल और रोगी की स्वीकृति आवश्यक होती है।

औषधि लक्ष्यांक

अनेक बीमारियों का उपचार इसलिये कठिन होता है क्योंकि वे सीमित औषधियों को ही प्रतिग्रहण करती है। ऐसी बीमारियों के अंतर्गत केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र संबंधी अधिकांश रोग, मूत्र रोग, कैंसर और गठिया आदि आते हैं। जिन भागों में यह रोग होते हैं वहां उस औषधि की पहुंच संभव बनाने और औषधि की प्राप्यता बढ़ाने के लिये, औषधि की उच्च मात्रा की आवश्यकता होती है जिससे अवांछित दुष्प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

औषधि लक्ष्यांक को प्रमुखता तब दी जाती है जब औषधि पारम्परिक अवस्था में अस्थायी हो, इसका अर्ध जीवन काल छोटा हो, रोगी कोशिकाओं के प्रति विशिष्टता कम हो और वह विषैली भी हो। औषधि लक्ष्यांक के मुख्य लाभ इस प्रकार हैं : (अ) जिस भाग में औषधि की आवश्यकता हो वहां पूर्वनिश्चित दर और आवृति पर उसकी प्राप्यता, और (ब) कम औषधि खुराक और निम्नतम दुष्प्रभाव।

अधिकांश कैंसररोधी औषधियों में चयनात्मकता भी सीमित है और वे बहुत विषैली भी है। इसलिये कोशिका विशिष्टता बढ़ाने के लिये एक एंटीबाडी को एक एन्जाइम से संबंधित कर दिया जाता है। इस प्रकार एन्जाइम ट्यूमर का स्थान निर्धारित करता है। तब एन्जाइम द्वारा विशेष रूप से विदलित मान्य (प्रो) औषधि प्रयोग की जाती है जिससे कि ट्यूमर कोशिकाओं पर औषधि का अनुमानित वितरण हो जाता है। ये प्रो-औषधियां, सक्रिय किन्तु कम अर्ध जीवन काल और अधिक विषैली औषधियों के विपरीत कम सक्रिय होती हैं और इनका अर्ध जीवन काल भी लंबा होता है। इस स्थिति में औषधियों का छोटा अर्ध जीवनकाल अधिक लाभदायक सिद्ध होता है।

नियंत्रित वितरण पद्धति

यद्यपि अभीष्ट और पूर्वनिश्चित दर पर औषधि निर्मुक्त करने वाली युक्तियां, पारंपरिक तरीकों से औषधि दिये जाने की अपेक्षा एक उत्कृष्ट सुधार है, इसमें एक ऐसा सुधार भी किया जा सकता है ताकि यह युक्ति औषधि निकास को शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार नियंत्रित करने में सक्षम हो सके।

इसे मधुमेह में इन्सुलिन देने की क्रिया द्वारा दिखाया जा सकता है। शरीर में ग्लूकोज की मात्रा के अनुसार इन्सुलिन देकर, मधुमेह को सुगमता से नियंत्रित किया जा सकता है। क्रिया की दर को नियंत्रित करने वाली पालीमर झिल्ली में अमीनो समूह होते हैं। जब ग्लूकोज की सान्द्रता कम हो जाती है, तो इन्सुलिन इसके द्वारा विसरित नहीं हो पाता। जैसे ही ग्लूकोज की सान्द्रता बढ़ती है, यह मैट्रिक्स में विसरित हो जाता है जिसमें ग्लूकोज आक्सीडेस एन्जाइम द्वारा ग्लूकोनिक अम्ल में बदल दिया जाता है। इससे अमीनो समूह छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाता है और परिणामस्वरूप बहुत अधिक सूजन आ जाती है और मैट्रिक्स द्वारा इन्सुलिन की पारगम्यता भी बढ़ जाती है।

भविष्य
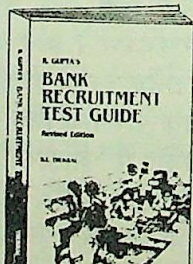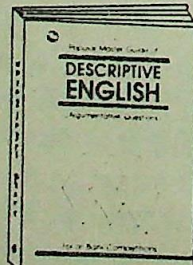
संक्षेप में, पिछले दो दशकों में हुये अनुसंधानों के आधार पर नियंत्रित वितरण व्यवस्था को औषधि प्रयोग के विकल्प के रूप में अपना लिया गया है। फिर भी, यह प्रौद्योगिकी कोई रामबाण नहीं है। वास्तव में, प्लाज्मा में सदैव औषधि का साम्य स्थिर बनाये रखना न तो आवश्यक है और न वांछनीय। ऐसे उत्पाद भी जैसे लौह और विटामिन, उसी प्रकार कुछ औषधियों जैसे डायजेपाम और क्लोरमेराजीन जिनका अर्ध जीवन काल बहुत लंबा होता है और जो दीर्घकालिक मोचन प्रभावित नहीं करते, दीर्घकालिक मोचन उपक्रम के रूप में बाजार में उपलब्ध हैं।

जैवप्रौद्योगिकी के इस युग में प्रोटीन, एन्जाइम और हारमोन औषधियों का विकास किया जा रहा है। इन औषधियों के उचित एवं अनुकूलतम उपयोग के लिये वितरण काल संमजन और विशिष्टता संकटापन्न होते हैं। उदाहरण के लिये, यद्यपि प्रौद्योगिकी आज ऐसे बिंदु पर पहुंच चुकी है जहां किसी भी प्रकार से दी जाने वाली औषधि की दर को ठीक-ठीक नियंत्रित किया जा सकता है, औषधियों की नयी खोज ने जो जैवप्रौद्योगिक उत्पाद हैं, नई चुनौतियां भी सम्मुख खड़ी कर दी हैं। हालांकि वर्षों से मुख द्वारा औषधि देना मान्यताप्राप्त रहा है, नयी औषधियां वृहदणु हैं, उदाहरण स्वरूप पेप्टाइड को देने के लिये किसी अन्य विकल्प की जरूरत होती है क्योंकि वे जठरांत्र तंत्र में अस्थिर और आंत्र श्लेष्मिका द्वारा बहुत कम पारगम्य होते हैं। कौन सी औषधि किस प्रकार दी जाये यह उसके प्रकार रासायनिक गुण और निर्दिष्ट स्थान पर निर्भर करेगा। इस क्षेत्र के अनुसंधानकर्ताओं को इन चुनौतियों का सामना करना ही होगा।

[डा. एम.जी. कुलकर्णी, राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे- 411008]
[प्रस्तुति : श्रीमती विनीता सिंघल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

क्या सूर्य भी ठंडा हो सकता है ?

हरीश चन्द जैन

क्या हम पृथ्वी पर एक ऐसा सूर्य बना सकते हैं जिसमें सूर्य में होने वाली अभिक्रियाएं होती रहें और ऊर्जा का एक अक्षय स्रोत तैयार हो जाये। वैज्ञानिकों ने गत तीन दशकों में इस प्रकार का सूर्य रूपी पिंड बनाने की कल्पना की है। फलस्वरूप लैसर चालित संलयन संयंत्र व कई ताप नाभिकीय संलयन भट्टियां जैसे टोकेमक, स्टैलरेटर इत्यादि का निर्माण किया गया है। इनमें सूर्य में होने वाली अभिक्रियाओं के समान क्रियाएं दस करोड़ (10^8) डिग्री सेल्सि. ताप पर संभव हो सकी है। लेकिन इन सब सफलताओं के प्राप्त होते हुये भी कोई ऐसी व्यवस्था सामने नहीं आ पायी है जो ऊर्जा के एक वैकल्पिक स्रोत का रूप ले सके। आजकल जहां एक ओर इन व्यवस्थाओं को एक पूर्ण रूप देकर ऊर्जा का स्रोत पिंड बनाने के प्रयास चल रहे हैं, वहीं दूसरी ओर गत कुछ वर्षों में म्यूऑन कण से उत्प्रेरित संलयन विधि की ओर वैज्ञानिकों का ध्यानाकर्षण हुआ है। इस विधि में संलयन दस करोड़ डिग्री सेल्सि. की अपेक्षा लगभग 127^0 सेल्सि. जितने निम्न ताप पर ही संभव हो जाता है। इसीलिये इसको 'शीत संलयन' का भी नाम दिया गया है।
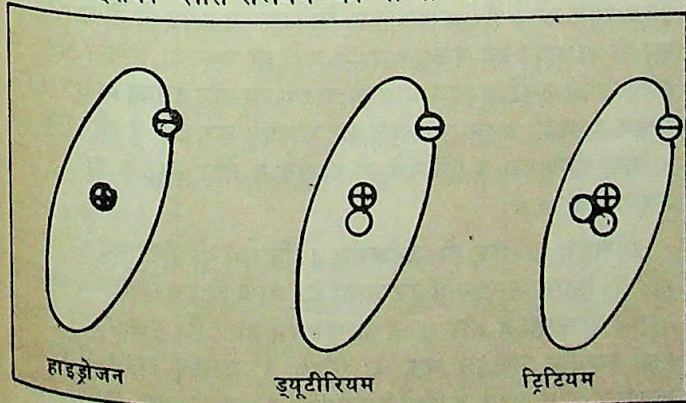
हाइड्रोजन व उसके जैसे अन्य नाभिक तथा अपनी कक्षा में घूमते इलेक्ट्रोन। परमाणुओं को पर्याप्त ऊर्जा देने पर इलेक्ट्रोन ऊर्जा ग्रहण कर बाहर निकल जाते हैं।

संलयन को समझने के लिये, परमाणु की संरचना जानना आवश्यक है। प्रत्येक परमाणु के केन्द्र में एक नाभिक होता है। यह धन आवेशित प्रोटोन व उदासीन न्यूट्रान कणों का आवास होता है। इस नाभिक के चारों ओर ऋण आवेशित इलेक्ट्रोन एक निश्चित कक्षा में घूमते रहते हैं। परमाणु को बाहर से ऊर्जा प्रदान करने पर इलेक्ट्रोन ऊर्जा ग्रहण करके अपनी कक्षा से बाहर आ जाते हैं तथा और अधिक ऊर्जा देने पर परमाणु से बाहर भी निकाले जा सकते हैं। यदि इस प्रकार दो परमाणुओं से, इलेक्ट्रोन के निकाले जाने पर अवशेष नाभिकों को समीप लाया जाये, तो इनमें से प्रत्येक पर धन आवेश होने के कारण परस्पर प्रतिकर्षण होता है। लेकिन, यदि इन नाभिकों का दस करोड़ डिग्री सेल्सि. तक ताप बढ़ा दिया जाये, तो ये नाभिक ऊर्जा प्राप्त कर इतनी तीव्र गति से चलने लगते हैं कि संलयित होकर अपेक्षाकृत एक भारी नाभिक को जन्म देते हैं और साथ ही प्रचुर मात्रा में ऊर्जा भी उत्पन्न करते हैं।

सूर्य में यह अभिक्रिया अत्यधिक ताप के कारण उपस्थित हाइड्रोजन नाभिकों के मध्य करोड़ों वर्षों से होती रहती है और सूर्य हमारे लिये ऊर्जा का स्रोत बना रहा है। पृथ्वी पर यह कल्पना हाइड्रोजन जैसे परमाणु ड्यूटीरियम व ड्यूटीरियम, अथवा ड्यूटीरियम व ट्रिटियम के नाभिकों को (चित्र 1 व 2) संलयित करने से की गई है और कुछ संयंत्र प्रायोगिक तौर पर बनाये गये हैं। कल्पना कीजिये कि ड्यूटीरियम की एक किग्रा. मात्रा के संलयन करने पर प्राप्त ऊर्जा लगभग दस हजार टन कोयले के जलाने से प्राप्त ऊर्जा के बराबर होती है।

ड्यूटीरियम व ट्रिटियम, हाइड्रोजन के समस्थानिक कहलाते हैं। ड्यूटीरियम, समुद्री जल में बहुतायत में (10^{18} किग्रा.) उपस्थित है और वैज्ञानिक इसे जल से अलग करने की विधि को भली-भांति जानते हैं। यही कारण है कि वैज्ञानिकों ने संलयन संबंधी प्रयोगों में इसे प्रयुक्त भी किया है। हाइड्रोजन के नाभिक में जिस प्रकार एक प्रोटोन व उसके चारों ओर एक इलेक्ट्रोन चक्कर लगाता है, उसी प्रकार ड्यूटीरियम के नाभिक में एक प्रोटोन व एक न्यूट्रान होता है और एक इलेक्ट्रोन इस नाभिक के चारों ओर अपनी कक्षा में चक्कर
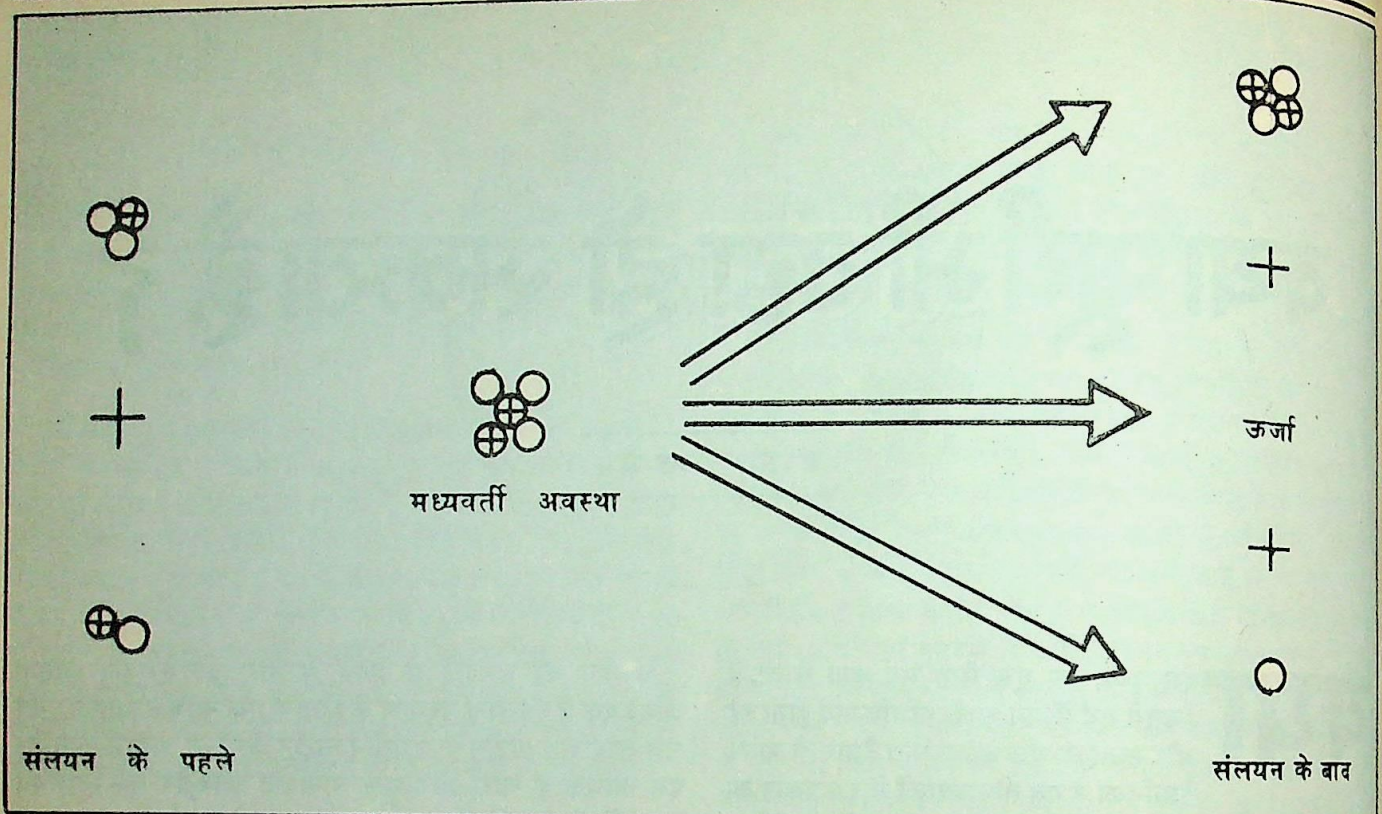
सूर्य के समान अधिक ताप (10^8 डिग्री सेंटीग्रेड) पर होने वाली ड्यूटीरियम व ट्रिटियम नाभिक के मध्य संलयन।

लगाता रहता है। ट्रिटियम के नाभिक में एक प्रोटोन व दो न्यूट्रान होते हैं और एक इलेक्ट्रोन इस नाभिक के चारों ओर कक्षा में चक्कर लगाता है।

म्यूऑन उत्प्रेरित संलयन अभिक्रिया में ड्यूटीरियम व ट्रिटियम के मध्य संलयन ऋणात्मक म्यूऑन नामक सहायक परमाणवीय कण द्वारा संभव हो जाता है। म्यूऑन इलेक्ट्रोन जैसा ऋणावेशित कण है। इस पर इलेक्ट्रोन के बराबर ऋणात्मक आवेश होता है तथा यह इलेक्ट्रोन से लगभग 207 गुना भारी होता है। इसका जीवन काल लगभग 2 माइक्रो सेकण्ड (0.000002 सेकण्ड) होता है। तत्पश्चात इसका एक इलेक्ट्रोन व दो उदासीन कण 'न्यूट्रिनो' में अपक्षय हो जाता है।

म्यूऑन द्वारा संलयन अभिक्रियाओं को उत्प्रेरित करने के लिये इसे ड्यूटीरियम व ट्रिटियम गैस मिश्रण में भेजते हैं। (चित्र 3) इसका टकराव सर्वप्रथम इन परमाणुओं से संलग्न इलेक्ट्रोन से होता है। इलेक्ट्रोन ऊर्जा प्राप्त कर अपनी कक्षा से बाहर आ जाते हैं और इनका स्थान म्यूऑन ले लेता है। फलस्वरूप दो प्रकार के परमाणु बन जाते हैं। एक–म्यूऑन के ड्यूटीरियम से संलग्न होने पर ड्यूटीरियम म्यूओपरमाणु, दूसरा–म्यूऑन के ट्रिटियम से संलग्न होने पर ट्रिटियम म्यूओपरमाणु। दोनों ही परिस्थितियों में, म्यूऑन, ड्यूटीरियम अथवा ट्रिटियम नाभिक के चारों ओर कक्षा में चक्कर लगाने लगता है। म्यूऑन, इलेक्ट्रोन की अपेक्षा भारी होने के कारण इसकी कक्षा का आकार इलेक्ट्रोन की कक्षा से कहीं कम होता है। ट्रिटियम, ड्यूटीरियम की अपेक्षा भारी होने के कारण, म्यूऑन को अपने साथ अधिक शक्ति से बांधने में सक्षम होता है। इसी कारण जो म्यूऑन, ड्यूटीरियम से संलग्न होते हैं, कुछ समय पश्चात वे भी उनसे हटकर गैस में शेष ट्रिटियम नाभिक से संलग्न होकर उनके चारों ओर चक्कर लगाने लगते हैं। फलस्वरूप, ट्रिटियम म्यूओपरमाणुओं की संख्या बढ़ जाती है।

ट्रिटियम म्यूओपरमाणु घूमते हुये गैस में उपस्थित ड्यूटीरियम अणु (ड्यूटीरियम के दो परमाणु मिलने से एक ड्यूटीरियम अणु की संरचना होती है) के संपर्क में आते हैं। अणु में उपस्थित दो परमाणु के किसी एक के नाभिक से संलग्न होकर इसी अणु के अंदर म्यूओआण्विक्क आयन बना लेते हैं। म्यूओआण्विक आयन में उपस्थित नाभिक (ड्यूटीरियम का नाभिक एवं ट्रिटियम म्यूओपरमाणु का नाभिक) धनात्मक होने के कारण परस्पर प्रतिकर्षित करते हैं। फलस्वरूप, चिरसम्मत यांत्रिकी के आधार पर इन दो नाभिकों का संलयन संभव नहीं हो सकता। लेकिन क्वान्टम यांत्रिकी के अनूठे सुरंग प्रभाव के कारण म्यूऑन इनको बांधे रखने में सक्षम ही नहीं, वरन् उत्प्रेरित कर संलयन कर देता है और एक नये नाभिक हीलियम 5 (जिसमें दो प्रोटोन व तीन न्यूट्रान होते हैं) का सूत्रपात होता है।

हीलियम 5 शीघ्र ही, हीलियम 4 (जिसमें दो प्रोटोन व दो न्यूट्रान होते हैं) व एक न्यूट्रान में टूट जाता है। साथ ही इससे संलग्न म्यूऑन स्वतंत्र हो जाता है और ऊर्जा का उद्गम होता है। इस प्रकार स्वतंत्र हुआ म्यूऑन संलयन चक्र को (चित्र 3) कायम रखने में फिर से उत्प्रेरक कार्य करने के लिये मिल जाता है। काश, यह अभिक्रिया इस प्रकार सदैव ही चलती रहती और ऊर्जा का उत्पादन होता रहता। लेकिन ऐसा देखा गया है कि म्यूऑन की हीलियम 4 से मुक्त होने के बजाय इससे चिपक कर रह जाने की संभावनायें ज्यादा बनी रहती हैं। फलस्वरूप म्यूऑन संलयन चक्र से अलग हो जाता है और एक
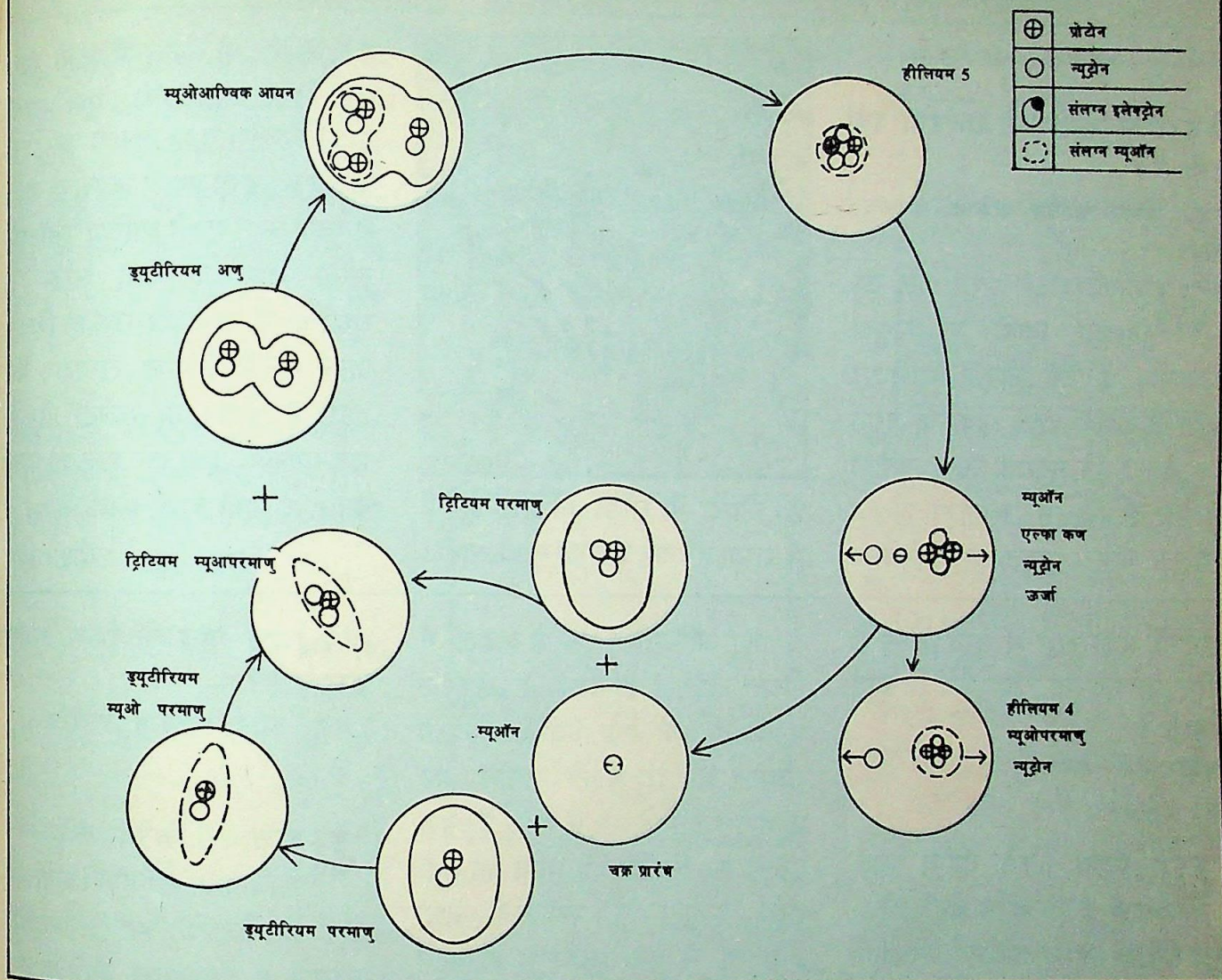
सलयन चक्र

म्यूऑन के द्वारा अधिक संलयन नहीं हो पाते। प्रयोगों से पता चलता है कि जहां हम एक म्यूऑन द्वारा उसके जीवनकाल में (2 माइक्रो सैकण्ड), म्यूओआण्विक आयन बनाने में लिये गये समय (10 सैकंड) के आधार पर, 2000 संलयनों की आशा करते हैं, लेकिन केवल 100 ही संलयन 127° सेंटीग्रेड पर संभव हो पाते हैं। साथ ही, इन संलयनों से प्राप्त ऊर्जा (2 गेगा इलेक्ट्रोन वोल्ट), एक म्यूऑन को उत्पन्न करने के लिये आवश्यक ऊर्जा (5 मेगा इलेक्ट्रोन वोल्ट) से कहीं कम होती है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुये शीत संलयन के द्वारा प्राप्त ऊर्जा की मात्रा, खर्च की गई ऊर्जा के संदर्भ में, बढ़ाने की सफलता हेतु वैज्ञानिक कुछ इस प्रकार से सोच रहे हैं, प्रथम-प्रति म्यूऑन संलयनों की संख्या किस प्रकार बढ़ाई जाये ताकि अधिकाधिक ऊर्जा उत्पन्न हो। द्वितीय-म्यूऑन उत्पन्न करने वाली मशीन में क्या सुधार लाये जायें ताकि कम ऊर्जा खर्च करके ही म्यूऑन प्राप्त किये जा सकें और तृतीय—क्या म्यूऑन के स्थान पर कोई अन्य कण भी हैं जिसके प्रयोग से उत्प्रेरक क्रिया अधिक तेजी से हो ताकि कम समय में ही संलयनों की संख्या बढ़ जाये और अधिक ऊर्जा उत्पन्न हो। एक सुझाव के आधार पर एक ऐसा संयंत्र बनाने का विचार है जिसमें एक ओर तो म्यूऑन से उत्प्रेरित सलयन हो और दूसरी ओर निकलते हुये न्यूट्रान को विखंडन क्रिया में प्रयोग में लाया जा सके ताकि खर्च की गई ऊर्जा व प्राप्त ऊर्जा में पर्याप्त संतुलन मिल सके। कुछ समय पहले आस्ट्रेलिया के एक वैज्ञानिक दल ने ऐसी नाभिकीय विखंडन अभिक्रिया के लिये दावा किया है जिसके द्वारा आसानी से अधिक संख्या में म्यूऑन प्राप्त किये जा सकते हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पिछले कुछ वर्षों में ही म्यूऑन से उत्प्रेरित संलयन विधि से एक ऐसा प्रस्ताव सामने आया है जिसने वैज्ञानिकों को इस उलझन में डाल दिया है कि निम्न ताप पर संलयन क्या ऊर्जा के एक वैकल्पिक स्रोत के रूप में संभव हो सकेगा, यदि हां तो कैसे?

[डा. एच.सी. जैन, टाइप IV/18, रीजनल कालेज आफ एजुकेशन, अजमेर- 305004]

पुरस्कृत प्रश्न

जेबरा के शरीर में धारियां क्यों होती हैं?

राजेश कुमार पाण्डेय, अकेला, धनबाद, बिहार

अफ्रीकी जेबरे अश्व कुल की जंगली जाति के प्रमुख उदाहरण हैं जो अपनी धारीदार त्वचा के कारण बहुत आकर्षक लगते हैं। जेबरा की मुख्यतः तीन जातियां मिलती हैं जिसमें 'सामान्य अथवा बर्चेलस जेबरा' बहुतायत में मिलता है। जेबरा भी घोड़ों की तरह झुण्डों में रहता है। यह शेर का मुख्य आखेट है। किसी भी जन्तु में रक्षी रंजन (प्रोटेक्टिव कलरेशन) गुण उसके प्राकृतिकवास तथा सुरक्षा को इंगित करता है। इसी प्रकार जेबरा के शरीर में पायी जाने वाली धारियां पेड़ों तथा लम्बी घास के बीच सांझ के धुंधलके में, जब शेर उसका शिकार करने के लिये घात लगाकर बैठा होता है, धूसर या सलेटी रंग का छदमावरण पहना कर शत्रु को धोखा देकर, उसकी रक्षा करती हैं।
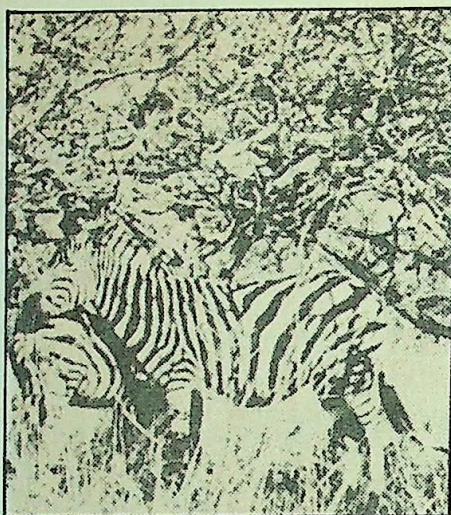
दीक्षा बिष्ट

बादलों भरी रात में चांद के चारों ओर धूमिल-सा चक्र क्यों दिखाई पड़ता है?

(नवीन सेठी, जयपुर)

यह प्रक्रम जिसे दीप्ति चक्र कहते हैं के बनने का कारण बहुत अधिक ऊंचे बादलों में क्रिस्टलीय कणों द्वारा प्रकाश परावर्तन करना है। बर्फ के क्रिस्टलीय कण प्रायः षटकोणीय होते हैं परन्तु ये सपाट प्लेट अथवा लम्बी सूईयों जैसा आकार भी ग्रहण कर सकते हैं। चूंकि
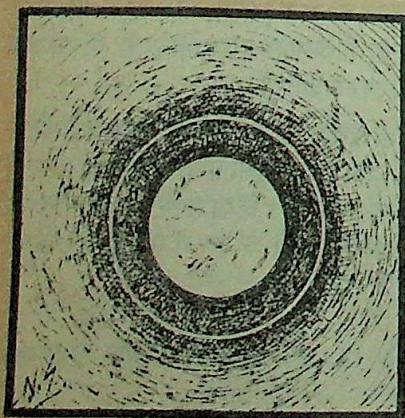
ये कण अनियमित रूप से बादलों में स्थित रहते हैं इसलिये वे आंतरिक परावर्तनों की एक मिश्रित श्रृंखला उत्पन्न कर देते हैं जो जमीन पर प्रकाश-चक्रों के रूप में पड़ते हैं। इस प्रक्रम का निर्माण भी पानी की बूंदों द्वारा प्रकाश के परावर्तनों तथा विवर्तनों से बने इन्द्रधनुष के बनने जैसा ही है। लेकिन इन्द्र धनुष सूर्य की विपरीत दिशा में दिखाई पड़ता है जबकि दीप्ति चक्र सदा उसी दिशा में में दिखाई पड़ता है तथा उसी वस्तु के चारों ओर होता है जो इसे बनाता है।

(इस स्थिति में यह वस्तु चन्द्रमा है) सबसे छोटे दीप्ति चक्र का घेरा निरूपक से देखने पर 22^0 का कोण बनाता है।

विमान वसु

सांप बिना पांव के किस प्रकार चलता है?

[मसूद हसन, गुलबर्गा, कर्नाटक]

यह सत्य है कि सांप के चलने के लिये पांव नहीं होते। वास्तव में सांप की रीढ़ की हड्डी अत्यधिक मुलायम व लचकदार होती है तथा उसके पेट की चर्म पट्टी बहुत मोटी होती है। इसी चर्म पट्टी के सहारे वह एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है। सांप जमीन के साथ-साथ अंग्रेजी के "एस" अक्षर की शक्ल में अपने मुलायम शरीर को घुमाकर चल सकता है और रास्ते में घास के ढेर, झाड़ियां, पत्थर आदि रुकावटों को वह शरीर को घुमा कर पार करता है।

सांप अपने पेट की चर्मपट्टी के स्वतंत्र सिरों को धकेल कर बिल्कुल

सीधी पंक्ति में भी चल सकता है। वह जमीन की असमताओं को पार करने के लिये अपनी शक्तिशाली पेशियों को काम में लाता है। सांप की कुछ जातियां अपने पेट की चर्मपट्टिका से तने को पकड़ कर पेड़ पर भी चढ़ सकती हैं।

पोलेराइड कैमरा किस प्रकार तुरन्त फोटो बना देता है?
(फिलिप्पा एस. भिलाई (मध्य प्रदेश)

विमान बसु

पोलेराइड कैमरे की प्रकाशीय प्रणाली दूसरे कैमरों की भांति ही होती है। परन्तु पोलेराइड कैमरे में जो फिल्म भरी जाती है वह साधारण रंगीन फिल्मों से भिन्न होती है। परम्परागत कैमरों द्वारा खींची गई रंगीन फिल्मों की धुलाई प्रयोगशाला में नियंत्रित अवस्थाओं में की जाती है। रंगीन फोटो प्राप्त तैयार करने के लिये सर्वप्रथम नेगेटिव तैयार किया जाता है जिससे फोटो तैयार किये जाते हैं। इस प्रक्रिया में काफी समय लग जाता है।

पोलेराइड कैमरे में जो फिल्म प्रयोग में लाई जाती है उसमें फोटो को रंगीन बनाने वाले रसायनों को थोड़ी मात्रा में लेप के रूप में भर दिया जाता है। फोटो खींचने के पश्चात जैसे ही फिल्म रोलर के माध्यम से चलती है वैसे ही एक सपाट कैपसूल टूट जाता है। जिससे उसमें से रसायन निकल कर फैल जाता है। पोलेराइड फिल्म की धुलाई की प्रक्रिया में पानी अथवा अतिरिक्त रसायनों तथा सुखाने की सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। साठ सेकण्ड के अंदर फिल्म धुल कर तथा सूख कर बाहर आ जाती है। जो
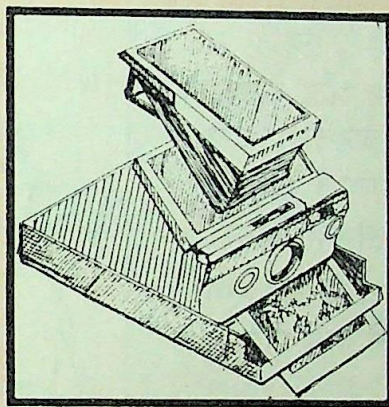
रसायन इसमें प्रयुक्त किये जाते हैं उसका व्यापारिक गोपनीयता होने के कारण पता नहीं चल पाया है।

विमान बसु

समुद्र का पानी नमकीन क्यों होता है, कारण सहित बताइये?
विनय कुमार त्रिपाठी, कानपुर

समुद्र का पानी नमकीन, उसमें अधिक मात्रा में नमक (सोडियम क्लोराइड) की उपस्थिति के कारण होता है। समुद्र जल में पाये जाने वाले रसायनों का लगभग 80 प्रतिशत भाग नमक होता है। समुद्र में सोडियम क्लोराइड का कुछ भाग
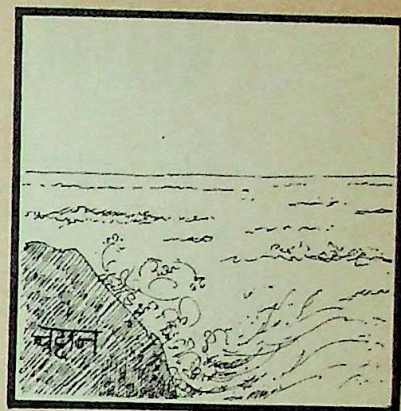
चट्टानों की बर्फ पिघलने और चट्टाना के अपरदन से आता है। बरसात के मौसम में वर्षा के पानी के साथ पर्वतों से नमक तथा अन्य रसायन, पानी में धुल कर नदियों से होते हुये अन्ततः समुद्र में मिल जाते हैं। नमक का शेष भाग समुद्र की तली में पायी जाने वाली चट्टानों से आता है।

राजीव गुप्ता

निकटतम तारे का नाम क्या है?
[अजय कुलेयवाले, जयपुर, राजस्थान]

निकटतम तारा प्रौक्सिमा सेन्टूरी समूह है जिनका नाम सेन्टूरी ए और बी तथा प्रौक्सिमा सेन्टूरी है। इनकी सूर्य से दूरी लगभग 4.3 प्रकाश वर्ष है। इनकी सूर्य से दूरी की खोज वैज्ञानिक टी. हैन्डरसन ने 1839 में की थी। चूंकि पृथ्वी निरन्तर सूर्य की परिक्रमा करती है जिससे पृथ्वी और तारे की बीच की दूरी बदलती रहती है इसलिये तारे की दूरी सूर्य को आधार मान कर नापी जाती है।

राजीव गुप्ता

सँख्या बदलें पसंद के अंकों में

आइवर यूशिएल

"दादाजी, दादाजी!" स्कूल से लौटते ही सुरुचि और सुकेत ने घर की सीढ़ियां चढ़ते हुए एक सांस में जो आवाजें लगानी शुरू कीं तो बस रुकने का तो कहीं नाम ही नहीं लिया।

"क्यों आज स्कूल से आते ही दादाजी की क्या जरूरत पड़ गई एकाएक?" मां पल्लू से हाथ पोंछती हुई रसोईघर से निकल आई।

"कहां हैं दादाजी, मां?" मां की बात अनसुनी कर दोनों बच्चे हाँफते हुए लगभग एक साथ बोल उठे।

"आखिर हुआ क्या है जो आसमान सर पर उठाये हुए हो तुम दोनों?" मां झुंझला कर बोली।

"पहले बताओ दादाजी हैं कहां? छोटे चाचा के यहां तो नहीं चले गये कहीं?" सुरुचि छोटी होने का लाभ उठाती हुई मां की टांगों से लगभग लिपट गई।

"अरे नहीं....." कहते हुए मां अपना उत्तर पूरा कर पाती कि इतने में घर के मुख्य दरवाजे से दादाजी ने प्रवेश किया।

दौड़ कर दोनों दादाजी से लिपट गये, "दादाजी, कहां चले गये थे?"

"अरे जाना कहां था बेटे, यहीं पास में बाजार तक निकल गया था।" दादाजी ने सुरुचि को गोद में उठाते हुए सुकेत की तरफ अपना प्यार भरा उत्तर उछाल दिया।

"आज आखिर आपकी इतनी खोज खबर क्यों ली जा रही है इस वक्त?" मां ने भी उत्सुकतावश दादाजी से पूछ ही लिया।

"देखती जाइये, अभी आप अपने आप समझ जायेंगी।" कहकर सुकेत ने मां को निरुत्तर कर दिया।

दादाजी को तो याद था कि आज गणित के जादूवाला दिन है पर बच्चे आज चूक गये थे। उन्हें शायद स्कूल में यह बात याद आई थी और इसलिये वे दादाजी को ढूंढ रहे थे।

"मैं तो तैयार हूं भई, तुम लोग भी मुंह हाथ धोकर खाना खाओ फिर बैठते हैं जादू दिखाने।" कहते हुए दादाजी ने सुरुचि को गोद से नीचे उतारा तो यह सुनकर दोनों बच्चे खुश हो गये।

लगभग आधे घंटे के बाद अपने आंगन में दस-बारह मित्रों के साथ सुरुचि और सुकेत एक बड़ी दरी पर जमे हुए थे और सामने की चारपाई पर दादा जी विराजमान थे। खेल की शुरूआत करते हुए दादाजी बोले, "मैं तुम्हें एक खूब लम्बी सी संख्या लिखवाऊंगा। तुम इस संख्या में से अपनी पसंद का सिर्फ एक अंक चुन कर, मुझे वह अंक बता देना। इसके बदले में मैं तुम्हें दो अंकों की एक संख्या दूंगा। इस संख्या से तुम पहले लिखवाई गई लम्बी संख्या को गुणा करना। गुणनफल के रूप में मिली संख्या को देखकर तुम हैरत में पड़ जाओगे। जानते हो क्यों? क्योंकि इस नई संख्या की इकाई, दहाई, आदि प्रत्येक स्थान पर तुम्हें वही अंक मिलेगा जो तुमने पसंद किया।"

"चलो भई, तुम सब लोग पहले तो मेरी बड़ी वाली संख्या लिख डालो। यह संख्या है:

एक करोड़, तेईस लाख पैंतालीस हजार छः सौ उन्नासी (1,23,45,679)।

'लिख ली?' तो चलो सुकेत, बेटे तुम अपनी पसंद का एक अंक मुझे बताओ। सुकेत बोला, 'सात।'

"हां तो तुम 63 से मेरी दी हुई बड़ी संख्या में गुणा कर डालो और देखो कि उसके हर स्थान पर तुम्हारी पसंद का अंक '7' है या नहीं?" दादाजी ने मुस्कराते हुए कहा तो सुकेत तुरन्त गुणा करने में जुट गया।

```
12345679 X 63
-------------
 37037037
74074074x
-------------
777777777
```

पूरा गुणा करने के बाद सुकेत इस जादू का लोहा मान गया कि संख्या में 7 के अलावा और कोई अंक ही नहीं था।

"ठीक है न सुकेत?" दादाजी ने केवल सुकेत की तसल्ली के लिए इतना पूछ लिया, पर उसका उत्तर देखे बिना वे नन्हीं-सी मेरी की तरफ मुड़ गये।

"हां बिटिया, मैंने जो संख्या लिखाई थी, तुमने लिखी है न?"

"जी दादाजी, लिखी है और मेरी पसंद का अंक है "दो" मेरी ने सिर को झुकाये हुए ही उत्तर दिया।

"तो तुम पूरी संख्या को 18 से गुणा करके देखो कि तुम्हें तुम्हारी पसंद की संख्या मिलती है न?" दादा जी ने कहा।

मेरी ने कागज पर लिखी लम्बी संख्या के आगे गुणा का निशान बनाकर 18 लिख लिया और उसे हल करने लगी।

```
12345679 X 18
-------------
  98765432
 12345679x
-------------
222222222
```

"ठीक है, दादाजी, मुझे मेरी पसंद की संख्या मिल गई। लेकिन दादाजी ऐसा हुआ कैसे?"

दादाजी बोले, "तुम लोग जो भी अंक पसंद करोगे उसी से बनी संख्या मिल जायेगी तुम्हें, पर दो बातों का ध्यान रखना। पहली यह कि बड़ी वाली संख्या हमेशा यही रहेगी और दूसरी बात यह कि पसंद किए गए अंक में 9 का गुणा करने पर दो अंकों की जो संख्या मिलती है वही तुम्हें बड़ी संख्या में गुणा करने को दी जाती है। आ गई न बात समझ में! बस यही है, रहस्य इस जादू के खेल का।"

[श्री आइवर यूशिएल, 'शाश्वत', बी– 82 बी, मयूर बिहार 11, दिल्ली– 110091]

चुम्बकीय कैरम

युवराज राहंगडाले

कैरम एक बहुत ही रोमांचक खेल है और गर्मियों की इस तपती दुपहरी में तो यह समय बिताने का बड़ा ही अच्छा साधन है। इस वैज्ञानिक युग में आप घर में ऐसा कैरम बनाइये जिससे आपका मनोरंजन तो होगा ही साथ-साथ आप थकावट भी महसूस नहीं करेंगे। क्योंकि इसमें आपको स्ट्राइकर अंगुली के बजाय चुम्बकीय प्रभाव से चलाना होगा जिस से आपके शरीर की ऊर्जा व्यर्थ में नष्ट नहीं होगी।

सिद्धांत : इसके लिये प्रयुक्त **स्ट्राइकर** चुम्बकीय पदार्थ से बनाते हैं। कैरम बोर्ड के नीचे कई विद्युत चुम्बक विभिन्न स्थितियों में लगाये जाते हैं तथा उनके स्विच बोर्ड के फ्रेम पर चारों भुजाओं पर लगा दिये जाते हैं ताकि प्रत्येक खिलाड़ी उनका उपयोग कर सके। खिलाड़ी एक साथ कितने भी चुम्बक को चालू कर सकता है तथा अपनी इच्छा से **स्ट्राइकर** को किसी भी दिशा में चला सकता है। स्टिकर के मार्ग में स्थित गोटियां गति कर सकती हैं और खिलाड़ी इस खेल को सामान्य नियम के अनुसार खेल सकता है।

सामग्री : एक कैरम बोर्ड, नर्म लोहे की छड़ें तथा वाइंडिंग वायर, बेल स्विच, स्रोत (ए.सी.मेंस) **स्ट्राइकर** (चुम्बकीय पदार्थ का), कैरम की गोटियां, डायोड बी वाई 127

एक कैरम बोर्ड लीजिये। नर्म लोहे की छड़ों पर वाइंडिंग तार (लगभग 500 बार) लपेट कर विद्युत चुम्बक बना लें। चुम्बक की शक्ति छड़ की मोटाई व लपेटों की संख्या पर निर्भर करती है। चित्रानुसार चुम्बक को कैरम बोर्ड के नीचे फिट कर दें (चित्र-1) बोर्ड के चारों ओर फ्रेम पर प्रत्येक के लिये एक-एक **बेलस्विच लगा दें, स्विच के स्थान पर हारमोनियम** जैसे बटन भी लगा सकते हैं। इस प्रकार सभी चुम्बकों के परिपथ को पूर्ण कर लें। ध्यान रखें कि प्रत्येक चुम्बक के लिये चारों ओर एक-एक स्विच अवश्य हो
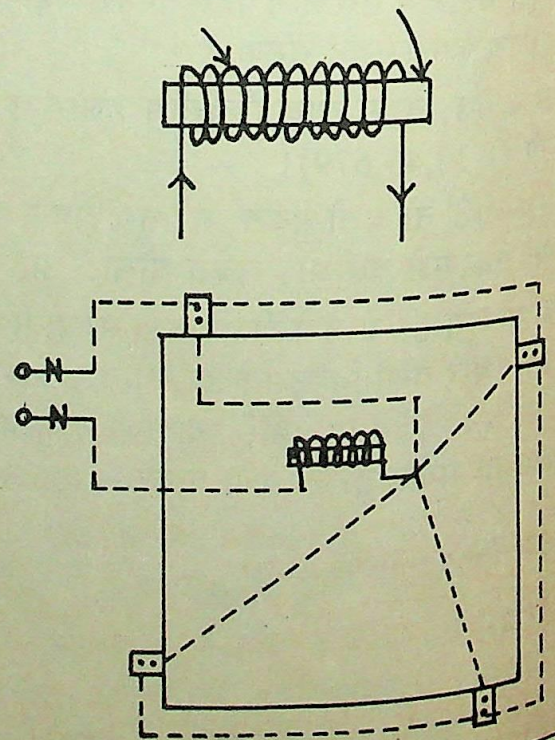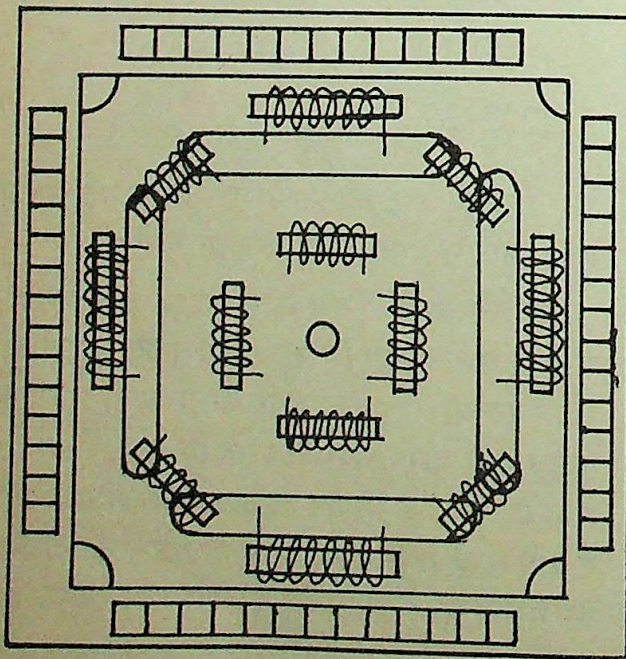
चुम्बकीय कैरम और कैरम का परिपथ

ताकि प्रत्येक खिलाड़ी उसका उपयोग कर सके। चित्र में एक चुम्बक के लिये परिपथ दर्शाया गया है।

स्ट्राइकर हल्का होना चाहिये। इसके लिये खोखली डिब्बी उपयोग में ला सकते हैं। मोटाई सामान्य **स्ट्राइकर** के समान ही होनी चाहिये। गोटियां भी हलकी होनी चाहिये और इन्हें हलका बनाने के लिये गोटियों को रिंग के आकार का बना सकते हैं। ऊपर से स्विच के अतिरिक्त कोई भी चुम्बक व परिपथ दिखाई नहीं देना चाहिये, ये सभी बोर्ड के नीचे अच्छी तरह लगे होने चाहिये। छोटे बोर्ड में चुम्बक कम लगेंगे तथा इसलिये तार के लपेटों की संख्या बढ़ाकर चुम्बक की प्रबलता बढ़ायी जा सकती है।

खेल के नियम एवं सावधानियां :

1. जब एक खिलाड़ी खेल रहा हो तो अन्य खिलाड़ी अपना स्विच बन्द रखें।
2. **स्ट्राइकर** के गतिशील होने से रुकने तक खिलाड़ी किसी भी चुम्बक को उपयोग में ला सकता है। एक बार स्टिकर के रुक जाने पर उस की बारी समाप्त मानी जायेगी।
3. एक या उससे अधिक गोटी डालने के बाद सामान्य नियम के अनुसार उसे एक मौका और दिया जायेगा। अन्य नियम कैरम के नियम ही रहेंगे।
4. विद्युत सर्किट खुले न हों तथा शार्ट सर्किट न हो।
5. चुम्बकों को उपयुक्त व उचित स्थान पर कस लेना चाहिये।
6. बेल स्विच उपयोग में लाना चाहिये ताकि छोड़ते ही परिपथ बंद हो जाये।
7. डायोड का उपयोग कर प्रत्यावर्ती धारा को दिष्ट धारा में बदल सकते हैं।

इस प्रकार आपको थोड़ी मेहनत तो करनी पड़ेगी, लेकिन चुम्बकीय कैरम का आनन्द भी तो आप ही उठायेंगे।

[श्री युवराज राहंगडाले, व्याख्याता (भौतिकी), शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बालाघाट, म.प्र.]

बच्चों का रोग पोलियो

रमेश पोत्दार

आज तीसरा दिन था जब डा. शर्मा का आज्ञाकारी ड्राईवर काम पर नहीं आया था। हालांकि ऐसा कभी होता नहीं था, लेकिन फिर भी डा. शर्मा को क्रोध आ रहा था, क्योंकि बिना उसके वे अपने आपको विकलांग समझने लगे थे। चूंकि कार डाक्टर के लिए अति आवश्यक औजार होता है, बिना उसके डाक्टर शर्मा का काम लगभग रुक-सा गया था। मई में सड़कों पर बहुत भीड़ होती है, इसलिए डा. शर्मा की पत्नी ने डाक्टर साहब को अपने आप गाड़ी चलाने के लिए मना किया हुआ था। इन तीन दिनों में डा. शर्मा ने कितने ही रोगियों को देखने से मना कर दिया था, तथा वे टैक्सियां भी मंगा-मंगा कर थक गये थे। तंग आकर उन्होंने ड्राईवर की सीट भी अब स्वयं ही संभाल ली थी और अपनी छकड़ा गाड़ी को चलाने ही वाले थे कि उन्होंने देखा कि उनका ड्राईवर शबीर दौड़ता हुआ आ रहा है।

जैसे ही डा. शर्मा ने अपने ड्राईवर को देखा उनके मन में उससे पूछने के लिए सैकड़ों प्रश्न आये। उनके प्रश्न कड़वे शब्दों से ओतप्रोत थे, लेकिन फिर भी डा. शर्मा ने अपने आपको यह जानने के लिए रोका कि, देखें शबीर अपनी अनुपस्थिति के बारे में क्या कहता है?

''क्षमा कीजिये, डाक्टर साहब, मैं मंगलवार से नहीं आ सका, मैं विवश था। मेरा नौ महीने का बच्चा सख्त बीमार है, उसे छोड़ नहीं सकता था।'' ये सब बातें शबीर ने मुंह लटका कर, डाक्टर साहब के कुछ पूछने के पूर्व ही कही थी।

ये बातें सुनकर डाक्टर साहब का हृदय पसीज गया। उन्होंने नम्रता से पूछा, ''बच्चे को क्या हुआ है?''

''लगभग 5 दिन पहले उसको बुखार हुआ था, बुखार बहुत तेज नहीं था। मेरी पत्नी ने उसको पास के डाक्टर को दिखाया और पहले की तरह वही मिक्सचर तथा गोलियां ले आयी। डाक्टर ने उसको एक इंजेक्शन भी लगाया था। हमने सोचा था कि बुखार एक दो दिन में उतर जाएगा। इसीलिये उस दिन मैंने आपको नहीं बताया था।''

''इसके बाद क्या गड़बड़ हुई,'' डाक्टर ने पूछा?

शबीर ने जैसे-तैसे अपनी सिसकियां रोककर कहा, ''उसने पिछले 3 दिनों से अपनी टांगें हिलानी बंद कर दी और आज तो वह दूध भी नहीं पी रहा है। प्रातः से वह दो बार उल्टी कर चुका है, अधिकतर दूध नाक द्वारा बाहर आता है। वैसे तो उसको घर के पास वाले छोटे अस्पताल में भरती करवा दिया है, लेकिन हमें उस समय तक तसल्ली नहीं होगी जब तक आप उसे एक बार न देख लें।''
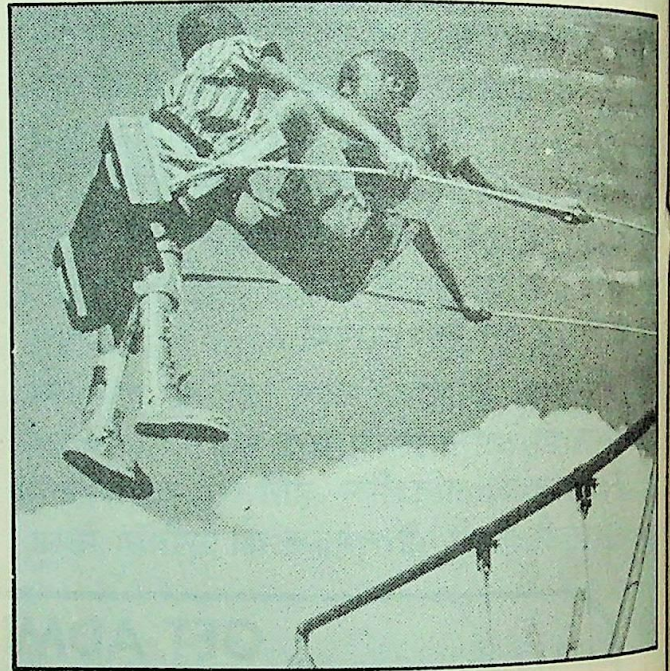
पोलिओग्रस्त बच्चे झूल रहे हैं

''हे परमात्मा!'' डाक्टर साहब के मुंह से निकला। उन्होंने विचार किया कि बच्चे को फालिज मार गया है। लेकिन डाक्टर साहब ने अपने चेहरे पर इसके भाव नहीं आने दिये क्योंकि उन्हें डर था कि शबीर पुनः रो पड़ेगा। उन्होंने कहा, ''चलो देखते हैं....''

शबीर 15 मिनट में ही डाक्टर साहब को अस्पताल ले आया।

डाक्टर साहब को लगा कि बच्चे का पालन-पोषण भली-भांति हुआ है, उसका वजन 6 किलो अवश्य होगा। उसको अभी भी बुखार था। सांस लेने में उसको कठिनाई हो रही थी और उसके गले से खरखराने जैसी आवाज निकल रही थी। डाक्टर ने बच्चे के पैरों के अंगूठों को गुदगुदाया। इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। इसके पश्चात उसके हाथ उठाने की चेष्टा की। अपनी आशा के अनुरूप उन्होंने पाया कि सिर भी अपनी सहज क्रिया नहीं कर पा रहा है। यह वह लक्षण है जिसे 'हैडलैग' अथवा 'नेक ड्राप' के नाम से जाना जाता है। इसके पश्चात डाक्टर ने बच्चे का मुंह खोला और स्पैचुला को जीभ दबाने के लिए मुंह में डाला। जैसा कि डाक्टर साहब को आशंका थी, जो सबसे बुरा होना था वह हो गया था। बच्चे का तालु मूर्ति की भांति स्थिर हो गया था। अब अपने स्वाभाविक गुण के अनुसार स्वरयंत्र का बचाव नहीं कर पायेगा। इससे बच्चे को जो कुछ

खिलाया जायेगा वह नाक से बाहर निकल आयेगा। इसे चिकित्सीय भाषा में 'पेलेटल पालसी' (तालु का पक्षाघात) के नाम से जाना जाता है।

इन चिकित्सीय लक्षणों को देखकर डाक्टर को विश्वास हो गया था कि बच्चे को सुषुम्ना प्रदाह (एक्यूट बल्बोस्पाइनल पोलिओमीलिटीज) हुआ है। यह रोग पोलियो विषाणु से होता है। इसमें न केवल पेशियों का पक्षाघात हो जाता है बल्कि अस्थियों की मज्जा (मैडुला आबलोंगाटा) में स्थित श्वास-प्रश्वास क्रिया तथा निर्णण के सजीव केन्द्र भी प्रभावित होते हैं। इसमें रोगी को जीवित रहने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ता है और वह जीवन भर के लिए विकलांग हो सकता है।

अपने स्वभाव के अनुसार डा. शर्मा ने अस्पताल के हाऊस सर्जन को जोकि रोगी की समस्त शारीरिक परीक्षा के दौरान उनके साथ था, चिकित्सीय निदानों द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को दर्शाया। डाक्टर साहब ने उसको एक विशेष बात यह बतायी कि बच्चे को कभी भी वैक्सीन नहीं दी गई है और पिछले दो दिनों में रोगी को जो दो इंजेक्शन लगाये गये हैं वे जीवाणुरोधी (एण्टीबायोटिक) हैं।

डा. शर्मा ने हाऊस सर्जन को समझाया कि आपको बच्चे की श्वास-प्रवास के पक्षाघात पर विशेष ध्यान रखना पड़ेगा क्योंकि इसकी सुषुम्ना (बल्बर) प्रभावित है। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो इससे आप तथा रोगी दोनों भारी विपत्ति में फंस जाएगें।

अस्पताल का हाऊस सर्जन बहुत चुस्त व्यक्ति था। उसने उत्तर दिया कि "मैंने न केवल श्वास लेने की मशीन तैयार रखी है बल्कि संज्ञादीन करने वाले को भी तैयार रहने के लिए सूचित कर दिया है कि किसी भी क्षण रोगी के अंदर सांस में नली लगने की आवश्यकता पड़ सकती है ताकि वह भली-भांति सांस ले सके।

हाऊस सर्जन की इन सब तैयारियों से डा. शर्मा बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि संभावित खतरों के प्रति सजगता चिकित्सीय व्यवसाय में बहुत महत्वपूर्ण होती है।

चूंकि डा. शर्मा की गिनती बहुत ही उत्तम श्रेणी के चिकित्सकों में की जाती थी इसलिये उनसे प्रशंसा के दो शब्द सुन कर हाऊस सर्जन प्रसन्नता से गदगद हो गया।

अब डाक्टर शर्मा ने बच्चे की रोती हुई मां और व्याकुल पिता को समझाया कि "हमें यह मान कर चलना चाहिए कि बच्चा अभी भी बहुत बीमार है तथा मौत का खतरा अभी भी उस पर मंडरा रहा है। लेकिन हर संभावित खतरे के प्रति हम पूरी तरह सजग हैं। हमें एक सप्ताह तक बच्चे की गहन चिकित्सीय देख-रेख करनी पड़ेगी। आशा है इस दौरान बच्चा इस घोर संक्रमण से काफी हद तक मुक्त हो जाएगा। इसके बाद ही संक्रमण द्वारा हुई हानियों की समीक्षा की जाएगी।"

डा. शर्मा ने दम्पत्ति को सलाह दी कि आज दोपहर बाद वे अपनी स्वास्थ्य-चिकित्सा कक्षा के दौरान बच्चों को होने वाले फालिज के संबंध में बतायेंगे। उन्हें इस कक्षा से बहुत लाभ मिलेगा।

प्रसिद्ध प्रतीक्षा घर अथवा कक्षा का कमरा पूरी तरह भर गया था।

पोलिओग्रस्त बच्चों की चिकित्सा

डाक्टर साहब ने व्याख्यान प्रारंभ करते हुये कहा कि "विश्व में लंगड़ापन अथवा उत्तेजक पेशी विकलांगता का सबसे बड़ा कारण पोलियो अथवा बच्चों को फालिज मार जाना है। कोई भी अन्य बीमारी आदमी को इस हद तक लंगड़ा नहीं करती जितनी की यह।"

एक किशोर विद्यार्थी ने डाक्टर से पूछा, "किस आयु वर्ग के शिशु इस बीमारी के शिकार होते हैं?"

"यद्यपि यह किसी भी आयु में हो सकती है, फिर भी यह आदमी अथवा आदमियों में विकसित असंक्राम्यता पर निर्भर करती है। यह विशेष रूप से 4 माह से लेकर 2 वर्ष तक के बच्चों में होती है। भारत में, पोलियो शैशवावस्था में होने वाली बीमारी मानी गई है। सफाई व्यवस्था में कमी तथा दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में सफाई का नितांत अभाव ही इस बीमारी को आमंत्रित करता है।"

एक बारह वर्षीय बच्चे ने डाक्टर साहब से कहा, "आपकी बात पूरी तरह हमारी समझ में नहीं आ सकी। कृपा करके इसे पुनः समझा दीजिये।"

"मेरे कहने का अभिप्राय यह था कि पोलियो वायरस एक विषाणु है जो हमारी पाचन प्रणाली, मुख्य रूप से छोटी आंत के माध्यम से कार्य करता है तथा मल के साथ बाहर निकल जाता है। इस रोग को फैलाने में दूषित जल, दूध व खाने के सामान के साथ-साथ मल का भी हाथ है। हमारे देश में सफाई तथा पीने के पानी का सम्भरण, अरक्षित कुएं तथा झीलें, खाद्य पदार्थों को बनाने तथा उसको उपभोग में सफाई का अभाव आदि ये सभी कारण पोलिओ के जनक हैं। इस तरह हमारे देश में दो वर्ष की आयु तक सभी बच्चे पोलियो विषाणु के सम्पर्क में आ जाते हैं। बच्चे इस रोग के प्रति अपनी असंक्राम्यता विकसित कर लेते हैं, परन्तु वो बच्चे ऐसा नहीं कर पाते अथवा कम कर पाते हैं वे बच्चे इस रोग की चपेट में आ जाते हैं।"

लड़के ने कृतज्ञतापूर्वक डाक्टर साहब का धन्यवाद किया और कहा, "अब मैं सफाई क पूरा ध्यान रखूंगा। अब मैं उन सभी तथ्यों

को समझ गया हूं जो हमारी पाठ्य पुस्तकों में लिखे हुए हैं। मैंने पहले कभी यह नहीं सोचा था कि सफाई का ध्यान रखना इतना अधिक अनिवार्य है।''

''पोलियो नियंत्रण का दूसरा पहलू यह है कि रोग के प्रति निरापदता पाकर इस रोग की जड़ ही समाप्त की जा सकती है। कुछ देशों ने इसको अपने यहां से पूरी तरह समाप्त कर दिया है। हमारा देश भी इससे पूरी तरह छुटकारा पा सकता है।''

एक वृद्ध सज्जन, जोकि अपने आचरण से अध्यापक लग रहे थे डाक्टर साहब से प्रार्थना की कि ''हमें विस्तार से यह बतायें कि यह रोग मनुष्य को किस प्रकार पीड़ित करता है तथा उसको विकलांग बना देता है?''

डाक्टर साहब ने बताया, ''बच्चों का फालिज जो विषाणुजन्य संक्रामक रोग है, विश्व के उन उग्रतम रोगों में से एक है जो सबसे अधिक विकलांगता लाता है। इसका यह नाम इसलिए पड़ा है कि इसका आक्रमण बहुत तीक्ष्ण होता है। यह रीढ़ की हड्डी के एन्टीरियर हार्न की कोशिकाओं को प्रभावित कर देता है। यह रोग पोलियो विषाणु के कारण होता है तथा यह रीढ़ की हड्डी को ग्रस्त कर देता है।''

एक अन्य किशोर बच्चे ने डाक्टर साहब को रोकते हुये कहा, ''कृपया धीरे-धीरे समझाइये। हम इतनी तेजी से नहीं समझ सकते।''

''ठीक है, आप यह तस्वीर देखिये, डाक्टर ने रीढ़ की हड्डी की कटे सैक्सन की स्लाइड दिखाई और एन्टीरियर हार्न कोशिकाओं की वेंट्रल स्थिति की ओर इशारा किया। रीढ़ की हड्डी में ये निचली मोटर निरोन्स है जोकि शरीर की पेशीय तंतुओं को शिरा तंतुओं की आपूर्ति करती हैं। पोलियो के विषाणु इनको प्रभावित करके विभिन्न परिमाणों में क्षतिग्रस्त कर देते हैं। उनमें से कुछ अप्रभावित रहती हैं, कुछ में सूजन आ जाती है जोकि उचित समय पा कर ठीक हो सकती है और कुछ पूर्ण रूप से क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।''

इतने में रोगी के पिता ने पूछा, ''हमारे रोगी पर इसका क्या प्रभाव रहेगा?''

''आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है,'' डाक्टर ने उत्तर दिया, चूंकि इन कोशिकाओं में से प्रत्येक पेशीय तंतुओं की आपूर्ति करती है। हम बच्चों के फालिज में पक्षाघात की असमता पाते हैं। जबकि इससे मिलता-जुलता एक दूसरा रोग बहुतंत्रिका शोथ (पोलिनीयूराइटिस) के नाम से जाना जाता है। इसमें पेशीय पक्षाघात की समता होती है। दूसरे, यह बात पूर्णतया ठीक होने के लिये भी महत्वपूर्ण है। पेशी तंतु जिनकी आपूर्ति एन्टीरियर हार्न कोशिकाओं द्वारा की जाती है, वे पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाती हैं और किसी भी तरह ठीक नहीं हो पाती। वे बेकार हो जाती हैं तथा पतली और छोटी पड़ जाती हैं और अंग बेकार से दिखाई पड़ने लगते हैं। जिन कोशिकाओं में सूजन आ जाती है वे कुछ समय के उपरान्त या तो पूरी तरह क्षतिग्रस्त अथवा ठीक हो जाती है। यदि ये कोशिकायें ठीक हो जाती हैं तो इनके द्वारा प्रदान किये गये पेशीय तंतु भी 1 से 6 माह के अंदर ठीक हो जाते हैं। ये कोशिकायें जो विषाणुओं के भयंकर हमले से बच जाती हैं उनके द्वारा
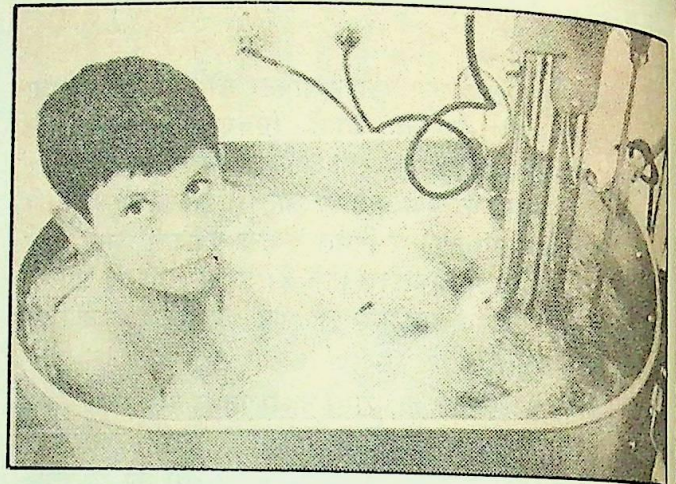
पोलिओ से पेशियां बचाने के लिये बच्चे के उस अंग की भौतिक व जल चिकित्सा की जाती है।

प्रदान किये गये पेशीय तंतुओं को संजोये रहती है, ये तंतु उन तंतुओं का भी काम करते हैं जो पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो चुके होते हैं। ये पेशियां भले ही असामान्य ढंग से जीवित रहती हैं, पोलियो के भयंकरतम आक्रमण के समय में भी संपूर्ण शरीर का संचालन बनाये रखती हैं।''

एक अधेड़ व्यक्ति ने पूछा, ''शायद इसीलिये पोलियो से ग्रस्त हर व्यक्ति की चिकित्सा अलग-अलग तरीके से की जाती है।''

डाक्टर साहब ने हां भरी, लेकिन यह याद रखने को कहा कि ''वास्तव में यह चिकित्सा नहीं है। यह तो केवल शरीर को संचालित रखने के लिये है। पोलियो बीमारी से रोगी आंशिक रूप से ही ठीक हो पाता है।''

'हे ईश्वर!' डाक्टर के ड्राइवर शबीर के मुख से निकला! ''डाक्टर साहब आपके कहने का तात्पर्य क्या यह है कि लकवे की कोई चिकित्सा नहीं हैं। लेकिन मेरे बच्चे का क्या होगा जिसे कल ही अस्पताल में दाखिल करवाया है।''

''हां!, याद आया, आपके बच्चे के मस्तिष्क का ऊपरी भाग प्रभावित हुआ है। अगले एक सप्ताह में बच्चे की श्वास पेशियों पर पक्षाघात हो सकता है। इससे उसकी सांस अवरुद्ध हो सकती है। लेकिन हमको आशा है कि हम उसको ठीक कर लेंगे। धैर्य रखो, शबीर! और अपनी पत्नी को भी इस तथ्य से अवगत करवा दो।''

शबीर की पत्नी ने पूछा, ''मेरा बेटा कितने दिनों में ठीक हो जाएगा?'' डाक्टर ने बताया, ''पक्षाघात होने के 7 दिन बाद आरोग्य लाभ प्रारंभ होता है और पहले 3 माह तक बहुत तेजी से होता है, इसके पश्चात एक वर्ष तक लाभ की गति धीमी रहती है इसका मतलब यह हुआ कि आपको उसकी देखभाल पूरे वर्ष भर करनी है। दस दिन बाद बच्चे को धीमे-धीमे व्यायाम करवाना पड़ेगा और यदि आवश्यक हुआ तो उसके बाद फुर्ती से व्यायाम करवाना होगा। उसके लिए उपकरण व

(शेषांश पृष्ठ 45 पर)

नदियों का उद्भव एवं विकास

विजय कुमार उपाध्याय

पृथ्वी में कहीं भी समानता देखने को नहीं मिलती। कहीं कोई स्थान ऊंचा है तो कोई नीचा, कहीं उबड़-खाबड़ भूमि है तो कहीं सपाट मैदान, कोई घाटी चौड़ी है तो कोई संकरी। इसका परिणाम होता यह है कि वर्षा होने पर या हिमनद के पिघलने पर या पृथ्वी के भीतर से झरनों के फूट पड़ने से पानी बाहर तथा नीचे की ओर बहना प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार छोटे-छोटे स्रोतों का निर्माण हो जाता है। ये स्रोत कुछ दूर चलकर एक दूसरे से मिल कर छोटे-छोटे झरनों का निर्माण करते हैं। ये छोटे झरने कुछ और नीचे चलकर फिर आपस में मिलते हैं और बड़े झरनों का निर्माण करते हैं। इन बड़े झरनों के आपस में मिलने से ही नदियां बनती हैं।

एक नदी के विकास की कई अवस्थायें होती हैं। सर्वप्रथम आती है प्रारम्भिक अवस्था। नदियां प्राय: किसी पर्वत श्रृंखला से निकलती हैं जहां वर्षा अथवा बर्फ के पिघलने से पर्याप्त जल उपलब्ध होता है। पहले छोटे-छोटे तथा पतले-पतले नालों-झरनों का निर्माण होता है जिनके क्रमिक संयोग से नदियों का आकार बढ़ता जाता है। यहां नदी का ढलान काफी खड़ा होता है फलस्वरूप पानी का वेग तीव्र होता है। पहाड़ों में नदियों के तीव्र वेग से अपक्षय तथा अपरदन बहुत अधिक होता है। इस क्षेत्र में नदियों की घटियां बहुत गहरी तथा संकरी होती हैं। यह अवस्था पहाड़ी भाग में ही होती है।

नदियों की दूसरी अवस्था होती है तरुणावस्था। इस अवस्था में नदी V आकार की संकीर्ण घाटी बनाती है। अपरदन द्वारा घाटी गहरी बनती है। यहां पर सहायक सरिताओं की संख्या में वृद्धि होती है। ढलान अधिक होने के कारण सरिताओं का वेग भी तीव्र होता है। अपरदन अधिक होने से तंग घटियां बनती हैं।

तीसरी अवस्था होती है प्रौढ़ावस्था। इस अवस्था में नदियां पहाड़ से उतर कर मैदानी भाग में आ जाती हैं। ढलान कम हो जाने से अपक्षय तथा अपरदन कम होता है। पार्श्व-अपरदन के कारण चौड़ाई तो बढ़ जाती है परन्तु गहराई कम हो जाती है। समतल भूमि में बहने के कारण पानी का वेग कम हो जाता है। इस कारण धारा के साथ चल रहा अवसाद पहाड़ की तलहटी में जमा हो जाता है। इससे जलोढ़ पंखों तथा शंकुओं का निर्माण होता है। धारा की गति कम होने के कारण मार्ग में छोटी-सी भी बाधा आने पर नदी की दिशा बदल जाती है, तथा नदी टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता अपनाती हैं जिसे विसर्पण कहा जाता है। इस अवस्था में नदियों द्वारा ऑक्स बो झील आदि का निर्माण होता है।

नदियों की चौथी तथा अंतिम अवस्था होती है वृद्धावस्था। इस अवस्था में नदियों की चौड़ाई बहुत अधिक हो जाती है, परन्तु गहराई बिल्कुल कम हो जाती है। धारा की गति बहुत धीमी हो जाती हैं। यहां पर नदियों में प्राय: बाढ़ आ जाती है तथा पानी अपने किनारों के ऊपर बहकर आसपास के क्षेत्र में फैल जाता है। इस तरह इस क्षेत्र में जलोढ़ मिट्टी जमा होती जाती है, जिससे ऊंची-नीची सतह ढककर सपाट मैदान में बदल जाती है। यहां पर कई जगह पर कठोर चट्टानी पहाड़ियां मैदान के ऊपर निकलती दिखाई देती हैं, इन्हें मोनाद नौक कहते हैं।

अन्त में नदी किसी समुद्र या बड़ी झील में मिल जाती है। यहां पर धारा की गति बिल्कुल ही कम हो जाने से विशाल मात्रा में जलोढ़ मिट्टी जमा होकर त्रिभुजाकार रूप ले लेती है जिसके बीच-बीच में नदी अनेक धाराओं में विभक्त होकर बहती है। इस क्षेत्र को डेल्टा कहते हैं।

नदी की उपर्युक्त अवस्थाओं को किसी विशेष नदी का उदाहरण लेकर भली भांति समझा जा सकता है। उदाहरण के लिये गंगा नदी की विकास प्रक्रिया उपर्युक्त होगी-गंगा प्रारंभ में दो नदियों—अलकनन्दा तथा भागीरथी के मिलने से बनती है। अलकनन्दा बड़ी सहायक नदी है जो नन्दादेवी पर्वत से लगभग 50 किमी. उत्तर गढ़वाल-तिब्बत सीमा से निकलती है। अलकनन्दा भी दो सहायक नदियों धौली तथा विष्णु गंगा के मिलने से बनी है। ये दोनों जोशीमठ के पास विष्णु प्रयाग में एक दूसरे से मिलती हैं। धौली का उद्गम स्थल जंस्कर श्रृंखला है, जहां नीतिपास के निकट अनगिनत पतली धारायें नन्दा देवी के उत्तरी तथा पश्चिमी ढलानों से बहकर मिलती हैं। विष्णु गंगा का उद्गम स्थल बद्रीनाथ के पीछे माउंट कामेट पर मानापास के निकट है। अलकनन्दा से मिलने वाली भागीरथी आकार में अलकनन्दा से छोटी है। भागीरथी गंगोत्री हिमनद से, एक बर्फ की गुफा, 'गौमुख' से निकलती है। इसकी ऊंचाई समुद्र तल से 12,960 फुट से भी अधिक है। गंगोत्री हिमनद टिहरी गढ़वाल क्षेत्र में पड़ता है अलकनन्दा तथा भागीरथी का संगम देवप्रयाग में होता है। भागीरथी का उद्गम-स्थल गंगोत्री होने के कारण इसे ही मूल गंगा जाना जाता है। पिंडार नदी, जो नन्दा देवी तथा पूर्वी त्रिशूल पर्वत पर बहते झरनों के मेल से बनती है, अलकनन्दा में कर्णप्रयाग के पास मिलती है। मन्दाकिनी (काली गंगा) पिंडारी नदी से रुद्रप्रयाग नामक स्थान पर मिलती है। यह

स्थान बद्रीनाथ तथा केदारनाथ के दक्षिण में है। नन्दकाना नदी, पिंडारी नदी से नन्दप्रयाग में मिलती है जो त्रिशूल पर्वत के पश्चिम में है।

पश्चिमी सहायक नदी जान्हवी का भागीरथी से संगम गंगोत्री से लगभग 11 किमी. नीचे मुख्य हिमालय से कुछ उत्तर में होता है।

गंगा-प्रणाली की सबसे पश्चिमी सहायक नदी यमुना का उद्गम यमुनोत्री हिमनद से है जो कि भंडारपुंच की पश्चिमी ढलान पर स्थित है। मंसूरी की पहाड़ियों के पीछे टौंस नदी यमुना में मिलती है। भंडारपुंच तथा चौर चोटियों के बीच गिरी तथा आसन नदियां यमुना में मिलती हैं। उसके बाद यमुना नदी दिल्ली, मथुरा, आगरा आदि मैदानी स्थानों को पार करते हुए इलाहाबाद आकर गंगा में मिल जाती है।

कर्नाली नदी, जिसे पहाड़ी क्षेत्र में औरियाला तथा मैदानी क्षेत्र में घाघरा कहा जाता है, का उद्गम स्थल मापचाचुंगो हिमनद है, जो ताकलाकोट के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। मैदानी क्षेत्र में आते ही इसमें सरयू नदी का मिलन ब्रह्मघाट में हो जाता है और यहां से इसका नाम घाघरा पड़ जाता है। घाघरा छपरा आकर गंगा में मिल जाती है।

गंडक, जिसे सदानीरा, शालीग्रामी तथा नारायणी नाम से जाना जाता है, धौला गिरी तथा गोसाईथान के बीच दो मुख्य सहायक नदियों के मिलने से उत्पन्न होती है। ये दो सहायक नदियां हैं—कालीगंडक तथा त्रिशूलगंगा। कालीगंडक का उद्गम स्थल मुक्ति नाथ के निकट फोटू पास में है। त्रिशूलगंगा का उद्गम स्थल गोसाईथान के उत्तर में है। उसके बाद इसमें बूढ़ी गंडक का मिलन होता है। यह संयुक्त नदी गंडक के नाम से आगे बढ़ती है, तथा महाभारत श्रृंखला एवं शिवालिक श्रृंखला को पार करते हुए त्रिवेणी के पास निकलती है। गंडक का गंगा में मिलन पटना के निकट सोनपुर (हरिहर क्षेत्र) में होता है।

गंगा का उद्गम स्थल : गौमुख

कोसी, जो गंगा की सहायक नदियों में सबसे बड़ी है, हिमालय में गोसाईथान तथा कंचनजंगा पर्वतों के बीच उत्पन्न होती है। इसकी मुख्य सहायक नदी अरुण गोसाईथान के उत्तर से निकलती हैं। इसमें यूरू नदी पूरब से आकर मिलती है। मुख्य हिमालय पार करने के बाद इसमें सन कोसी पश्चिम से आकर मिलती है तथा तामूर कोसी पूरब की ओर से। कोसी नदी, महाभारत या शिवालिक श्रृंखलाओं को पार करने के बाद चतरा के पास मैदान में गिरती है। मनिहारी से 32 किमी. पश्चिम में कोसी का गंगा में मिलन होता है।
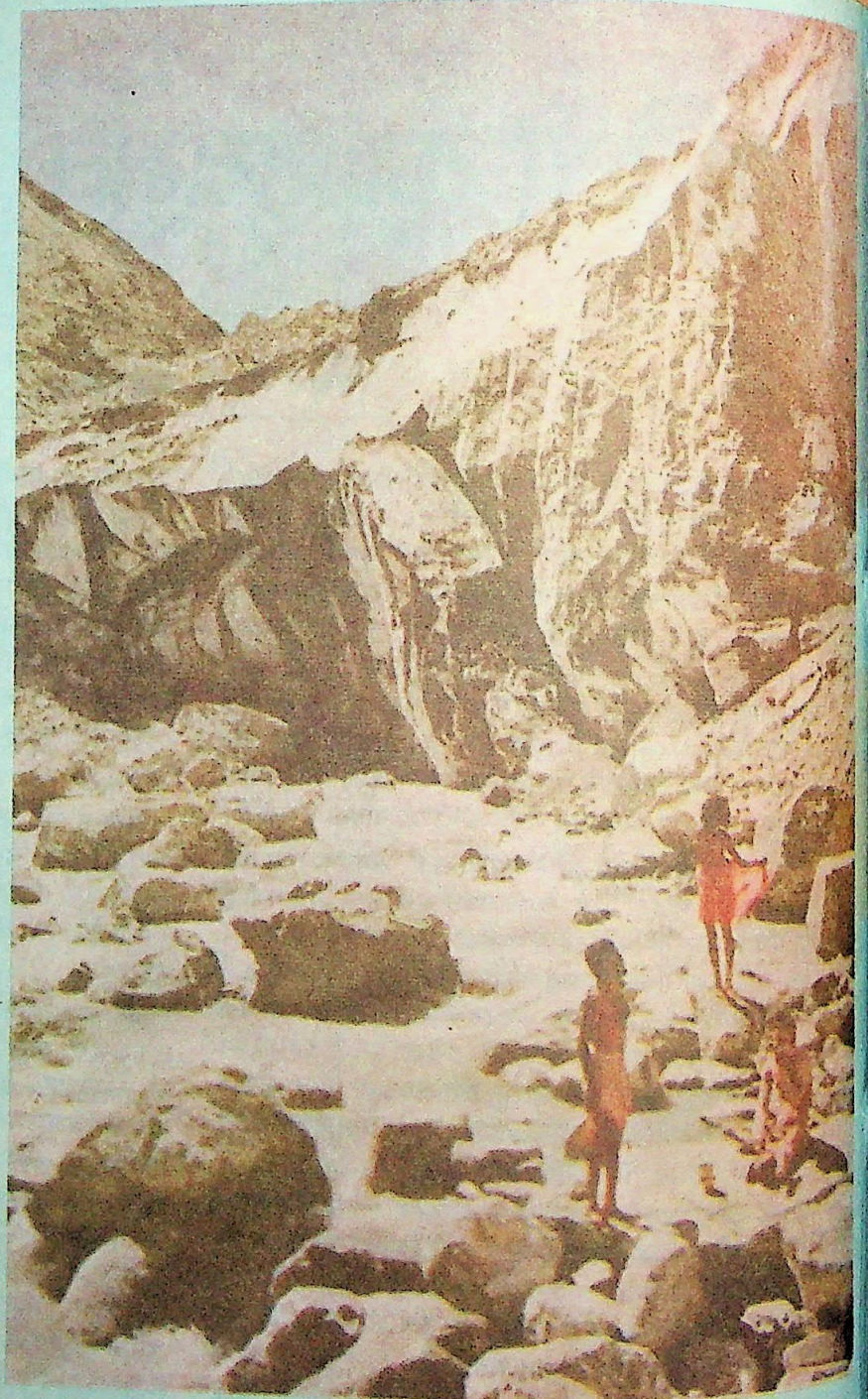
महानन्दा का उद्गम दार्जिलिंग-हिमालय में है। यह सिलीगुड़ी के पास मैदान में गिरती है तथा पूर्णिया एवं मालदा होते हुए गोदागिरी के पास गंगा में मिल जाती है।

गंगा और उसकी सहायक नदियां

तीनो नदियों का उद्भव यद्यपि हिमालय से ही है लेकिन इनके रास्ते एकदम अलग-अलग हैं। सिन्ध पश्चिम की ओर बहकर अरब की खाड़ी में मिलती है जबकि ब्रह्मपुत्र और गंगा अलग मार्ग से बहते हुये बंगाल की खाड़ी में मिलती हैं।

बंगाल में गौड़ के पास गंगा द्वारा निर्मित डेल्टा का आरंभ हो जाता है। इस क्षेत्र में गंगा कई शाखाओं में विभक्त हो जाती है। पहली मुख्य शाखा पद्मा कहलाती है जो बंगलादेश होकर बंगाल की खाड़ी में मिलती है। दूसरी मुख्य शाखा हुगली है जो पश्चिमी बंगाल से विभिन्न क्षेत्रों से होते हुए बंगाल की खाडी में मिल जाती है।

नदियों की धारा की दिशा में समय-समय पर परिवर्तन आते रहते हैं। सिन्धु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र आदि नदियों की धारा की दिशाओं में ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल में काफी परिवर्तन आये हैं। ऐतिहासिक काल में सिन्धु नदी के किनारे बहुत से नगर एवं गांव इस कारण वीरान हो गये, क्योंकि नदी की धारा की दिशा में परिवर्तन आने से या तो वे बाढ़ ग्रस्त हो गये तथा जलोढ़ मिट्टी से दब गये या फिर नदी के दूर हट जाने से भीषण जल-समस्या उत्पन्न हो गयी। मोहंजोदड़ों तथा अन्य कई सभ्यताओं के अवशेष आज भी जलोढ़ मिट्टी के नीचे दबे हुए मिलते हैं।

सरस्वती नदी का इतिहास तो काफी रोचक है। सरस्वती जो किसी काल में बीकानेर, बहावलपुर तथा सिन्ध होकर बहने वाली सबसे प्रमुख नदी थी, शायद इस कारण बिल्कुल सूख गयी क्योंकि इसकी सहायक नदियों-सतलज एवं यमुना ने अपना रास्ता बदल दिया जिससे सरस्वती में पानी की आपूर्ति बन्द हो गयी। वैदिक युग के साहित्य में सरस्वती की प्रधानता गंगा तथा सिन्धु से अधिक बतायी गयी है। इस सूखी नदी के किनारे ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक सभ्यताओं के अनेक अवशेष मिट्टी के टीलों में दबे मिले हैं। ऐसा अनुमान है कि यह नदी 13 वीं शताब्दी के मध्य में बिल्कुल सूख गयी।

सिन्धु नदी की मुख्य धारा सन् 1800 ई. तक थाल के मध्य से गुजरती थी। उस वर्ष यह दो धाराओं में विभक्त हो गयी। इसमें से मुख्य धारा खेदेवाड़ी सन् 1819 में भूकम्प के कारण अवरुद्ध हो गयी। दूसरी धारा थी ककईवाड़ी जो सन् 1837 तक मुख्य धारा बनी रही, परन्तु यह भी सन् 1867 में भूकम्प के कारण अवरुद्ध हो गयी। सन् 1900 तक मुख्य धारा थी हजामरो। बार-बार धारा की दिशा में परिवर्तन के कारण इनके किनारों पर बसे अनेक नगर जैसे घोड़ाबाड़ी, केती तथा भीमांजोपुरा आदि या तो बाढ़ द्वारा लायी मिट्टी के नीचे दब गये या पानी की कमी के कारण वीरान हो गये।

आज से लगभग दो शताब्दी पूर्व बंगाल में गंगा की मुख्य धारायें थीं—भागीरथी एवं हुगली। परन्तु आज पद्मा, जो बंगलादेश होकर बहती है, मुख्य धारा है। भागीरथी पहले इस घाटी से गुजरती थी जिसे आज सरस्वती कहा जाता है, तथा जिसका रास्ता आज हुगली से पश्चिम है।

आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले तिस्ता, गंगा की एक सहायक नदी थी। सन् 1987 में एक बहुत भयानक बाढ़ के बाद इसने अपना रास्ता बदल लिया, और आज वह ब्रहमपुत्र की एक सहायक नदी है। ब्रहमपुत्र पहले मधुपुर जंगल के पूर्व होकर बहती थी, परन्तु आज काफी पश्चिम से होकर पद्मा में मिलती है।

पाटलीपुत्र, जो किसी समय विशाल मौर्य साम्राज्य एवं गुप्त साम्राज्य की राजधानी थी, आज वर्तमान पटना के नीचे दबा पड़ा है। अनेक बार आयी बाढ़ से पुराने पाटलीपुत्र का विनाश हो गया। कहा जाता है कि पाटलीपुत्र पांच नदियों के संगम पर बसा था। ये पांच नदियां थीं—गंगा, घाघरा, गंडक, सोन तथा पुनपुन। आज उपर्युक्त नदियां एक दूसरे से काफी दूरी पर और अलग-अलग स्थानों पर गंगा से मिलती हैं।

[डा. विजय कुमार उपाध्याय, सह प्राध्यापक, भूगर्भ इंजीनियरी कालेज, भागलपुर, बिहार]

धर्मपुत्र

(प्रथम भाग)

अरविन्द मिश्र

आपरेशन थियेटर में कोई नाजुक आपरेशन चल रहा था। लेकिन आपरेशन थियेटर के बाहर घबराहट और उत्तेजना भरी मिली-जुली आवाजों के कारण अस्पताल का माहौल तनाव पूर्ण हो चला था।

"ओफ ! बड़ी भयानक दुर्घटना हुई है! बेचारा राघव! पता नहीं बचेगा भी या नहीं।"

"बेचारे को आपरेशन थियेटर में पूरे छः घंटे हो चुके हैं।"

"राघव के पिता तो आपरेशन थियेटर की लाल बत्ती ही देखे जा रहे हैं। बेचारे करें भी तो क्या, उनका इकलौता पुत्र था।"

"पी.एम.टी. परीक्षा की तैयारी के लिये ही तो उन्होंने उसे प्रतिस्पर्धा कोचिंग होस्टल में रहने भेजा था।"

"परसों ही तो पी.एम.टी. की परीक्षा है, उसकी।"

"बड़ी अच्छी तैयारी है, उसकी।"

"चयन तो होना ही है।"

"उसका पार्टनर गौरव भी तो इधर मन लगाकर पढ़ने लगा था।"

"अरे, उस फिसड्डी की बातें मत करो। पी.एम.टी. उसके बस की बात नहीं।"

"धीरे बोलो यार! उसके पिता ही तो राघव का आपरेशन कर रहे हैं।"

"अमेरिका से सर्जरी में उच्च अध्ययन करके लौटे हैं। बहुत बड़े न्यूरो सर्जन हैं।"

"राघव का सिर तो इस दुर्घटना में बुरी तरह कुचला गया है।"

"देखो भाई, क्या होता है?"

बेचैनी भरे वार्तालाप का यह माहौल दिल्ली के एक अस्पताल के प्रतीक्षालय का था, जहां अपने एक मित्र की सड़क दुर्घटना के बाद छात्रों की भीड़ जमा थी। दुर्घटना ग्रस्त उनके इस हतभाग्य मित्र का नाम था, राघव, बेचारा राघव इस समय जीवन और मौत की लड़ाई से जूझ रहा था।

* * *

अचानक आपरेशन कक्ष का दरवाजा खुला और डाक्टर विशाल बुझा हुआ चेहरा लेकर बाहर निकले। रुंधे स्वर में उन्होंने पूछा "राघव के माता-पिता कहां हैं?"

राघव के पिता तेजी से आगे बढ़े, "मेरा बेटा तो ठीक है डाक्टर साहब। उसे बचा लीजिये....." उनका गला अवरुद्ध हो चला था।

"आई एम सारी! मैं उसे बचा नहीं सका...... आई एम रियली वैरी सारी।" डा. विशाल ने पेशेवर लहजे में जवाब दिया और आगे बढ़ चले।

बड़ा ही कारुणिक दृश्य था वहां का। राघव के पिता बदहवास से हो चले थे। राघव के सभी मित्र भी स्तब्ध थे।

* * *

शाम का धुंधलका घिर आया था। डा. विशाल अभी भी अपने घर नहीं लौट पाये थे। उनकी पत्नी चिंतित और बेचैन सी इधर-उधर टहल रही थी। तभी कालबेल बज उठी। गौरव की मां ने तेजी से बढ़कर द्वार खोल दिया और उनके मुंह से सहज ही निकल पड़ा, "आपने आज बड़ी देर कर दी।"

"ओह, कुछ सुना तुमने। गौरव के पार्टनर का आज एक्सीडेंट हो गया। लाख कोशिशों के बाद भी मैं उसे बचा नहीं सका।" डा.

विशाल ने भर्राये स्वर में कहा।

"क्या? राघव नहीं रहा। आखिर यह सब कैसे हुआ? कितना प्यारा और बुद्धिमान लड़का था। यह तो बहुत बुरा हुआ....." गौरव की मां सहसा घबरा सी गयी।

"सुनो, गौरव कहां है? अभी तक नहीं आया क्या? राघव की मृत्यु से तो वह भी विचलित हो गया होगा," डा. विशाल ने एक निःश्वास छोड़ते हुये कहा। तभी फिर से कालबेल गूंज उठी। "लगता है, गौरव आ गया," गौरव की मां की घबराहट कुछ कम हुई।

"ओह पिताजी, राघव मेरा मित्र मुझे छोड़कर चला गया। मैं उसके बिना नहीं रह सकता।" गौरव आते ही अपने पिता से लिपट गया।

"धीरज रखो बेटा, अब तो जो होना था हो गया, तुम्हारी परसों से परीक्षा है। उधर ध्यान दो।" डा. विशाल ने संयत स्वर में कहा।

"लेकिन पिताजी।"

"लेकिन वेकिन कुछ नहीं, इतना संवेदनशील मत बनो, तुम्हें अपने लक्ष्य की चिंता रहनी चाहिये। मैंने तुम्हें होस्टल में इसलिये रखा था कि तुममें आत्मविश्वास उत्पन्न होगा। किन्तु....."

"छोड़िये भी सुबह से भूखा प्यासा आया है, और आप तो बस बरस पड़े उस पर। जाओ बेटे फ्रिज से कुछ खाने का सामान निकाल लो और अपने पिताजी के लिये भी ले आओ।" गौरव की मां ने हस्तक्षेप किया।

"मैं केवल काफी लूंगा। कुछ खाने की इच्छा नहीं है, गौरव तुम खा लो," डा. विशाल ने कहा। गौरव के जाने के बाद धीमे स्वर में डा. विशाल ने पुनः कहना शुरू किया....

"देखो दीपिका। केवल इसी गौरव को छोड़कर हमारे लड़के कितने टेलेन्टेड हैं। आज दोनों कितनी अच्छी जगहों पर हैं। हमारी बेटी भी उच्च शिक्षा के लिये अमेरिका चली गयी। मुझे बस इसी गौरव की चिंता है। मैं इसे डाक्टर बनाना चाहता था किन्तु इसके पास तो लगता है 'ब्रेन' नाम की चीज ही नहीं है। मेरा मतलब है उसमें 'ग्रे मैटर' की कमी है।"

"अब आप तो भला ले मैन लैंग्वेज मत बोला करिये। व्हाट डू यू मीन बाई ग्रे मैटर? इज दैट द थिंग ओनली रिसपान्सिबिल फार इन्टेलिजेन्स?" दीपिका ने टोका। डा. विशाल झेंपते हुए बोले, "ओह, मैं भूल गया था कि तुमने भी 'न्यूरो साइंस' में स्पेशिलाइजेशन किया है। मानता हूं तुम्हारे सामने मुझे ग्रे मैटर की बजाय 'निओपेलिअम' कहना चाहिये था। लेकिन आज वाले आपरेशन का नाम मैंने 'आपरेशन ग्रेमैटर' ही रखा था।"

"जिसमें आप असफल हो गये।" दीपिका का कटाक्ष चुभने वाला था।

"शायद पूरी तरह असफल नहीं हुआ हूं। एक आशा की किरण दिखाई दे रही है अभी मुझे, "डा. विशाल की आवाज में रहस्य की झलक थी।

"क्या मतलब? क्या राघव अभी बच सकता है?"

"डोन्ट बी सिली। मृत आदमी कभी जीवित नहीं हो सकता।"

"तो फिर आपके लिये आशा की कौन सी किरण बची है?"

"कोई किरण नहीं। राघव की क्लीनिकल ही नहीं बायोलाजिकल डैथ भी हो चुकी थी। बायोलाजिकल डैथ का मतलब तो तुम अच्छी तरह समझती हो...... सब कुछ खत्म, ब्रेन के सभी सेल्स डैड।"

"तो फिर आप पहेलियां क्यों बुझा रहे हैं? सब कुछ खत्म तो फिर आशा की किरण कैसी?"

"छोड़ो मैं वैसे ही कह रहा था। इट वाज जस्ट ए स्लिप आफ टंग"

"जस्ट ए स्लिप आफ टंग? आर यू सीरियस? आप ठीक तो हैं?" सहसा गौरव के आगमन ने इस अनवरत संवाद को भंग कर दिया।

"मैं होस्टल जा रहा हूं, मां।"

"आज होस्टल मत जाओ, यहीं पढ़ो" दीपिका ने तुरन्त टोका।

"लेकिन मेरे नोट्स, किताबें तो वहीं हैं।"

"ठीक है वहीं जाओ। इस बार तो परसों ही सभी पेपर एक साथ होने हैं और दूसरे दिन ही रिजल्ट भी आउट हो जायेंगे? क्यों?"

"तो जाओ जुट जाओ तुम्हारे पास समय बहुत कम है।"

"हां, कल सुबह मुझसे मिल लेना, वहीं हास्पिटल के प्रयोगशाला वाली मेरी केबिन में, ठीक आठ बजे।"

"अच्छा पिताजी। मम्मी, गुडनाइट।"

"गुडनाइट" डा. विशाल और दीपिका समवेत स्वरों में बोल उठे।

* * * *

प्रवेश द्वार पर हाकर की तेज आवाज गूंजी 'पेपर'। दीपिका ने दैनिक कौतूहल के साथ पेपर उठाया और उनके मुंह से निकल पड़ा—"अरे, यह तो अपने गौरव की फोटो छपी है.... ओह..... मुझे विश्वास नहीं हो रहा है, गौरव ने तो पी.एम.टी. में टाप किया है...."

"विशाल, विशाल। देखो आज की ताजा खबर है, अपने बेटे गौरव ने पी.एम.टी. में टाप किया है। पहले पेज पर उसकी फोटो छपी है।" उत्तेजना से दीपिका की आवाज कांप सी रही थी।

"सच! मैं जानता था कि मेरा लड़का इस कम्पीटीशन में टाप करेगा।" डा. विशाल के स्वर में कृत्रिमता अधिक थी।

"अरे छोड़िये, मुझे तो डर लग रहा है कहीं कुछ गड़बड़ न हो। यानी..... कहीं गलत न छप गया हो।"

"क्या बात करती हो? गौरव ने सचमुच टाप किया है। मुझे पूरा भरोसा है उस पर। यह खबर शत प्रतिशत सही है।"

"लेकिन यह सब हुआ कैसे? मुझे तो अब भी विश्वास नहीं हो रहा है....."।

यह विवाद आगे बढ़ पाता कि तभी टेलीफोन घनघना उठा—"हलो। डा. विशाल हियर।"

"कांग्रैचुलेशन्स, डा. विशाल, मैं प्रतिस्पर्धा कोचिंग का वार्डन मधुकर बोल रहा हूं। गौरव ने तो पी.एम.टी. में टाप किया है, उसे फोन पर बुलाइये, मैं उसे खुद बधाई देना चाहता हूं। हैलो..."

(शेषांश पृष्ठ 45 पर)

"अरे इस चित्र को देखकर आज आप लोग फिर सोच में पड़ गये।"

"क्या कहा? ये मछलियां 'आइस पाइस' (आई-स्पाई-यू), अर्थात लुका छुपी का खेल-खेल रही हैं। जी नहीं, यह खेल तो अब आप ही खेलिये।"

"हमें तो लग रहा है कि झाड़ी में फंसी मछली 'बचाओ बचाओ, मैं कंटीली झाड़ी में फंस गई हूं, मुझे बाहर निकालो' चिल्ला रही है और उसकी पुकार सुन कर लाल मछली उसे झाड़ी से बाहर निकालने आई है।"

"चलिये। आपकी उत्सुकता को हम ही शांत कर देते हैं और आपको वास्तविकता बताते हैं। जो आप सोच रहे हैं वैसा कुछ भी नहीं है। परन्तु यह क्या है, इसे समझाने के लिये हमें कुछ प्रारम्भिक जानकारी आपको देनी होगी।"

"किसी भी जाति के नर एवं मादा प्राणियों में भेद करने के लिये प्रायः लैंगिक लक्षणों का सहारा लेना पड़ता है। यह लक्षण दो प्रकार के होते हैं।

"प्राथमिक लैंगिक लक्षण – ये लक्षण प्रजनन से सीधा सम्बन्ध रखते हैं, जैसे नर में वृषण कोश और मादा में अंडाशय की उपस्थिति।

"द्वितीयक लैंगिक लक्षण – ये लक्षण प्राणियों के प्रजनन के योग्य हो जाने पर प्रकट होते हैं, जैसे प्रजनन काल में नर मेंढक में स्वर कोष्ठों का विकसित होना, पक्षियों में नर एवं मादा के शरीर के रंग में अंतर होना आदि।

"पक्षियों की भांति मछलियों में भी प्रजनन काल के समय द्वितीयक लैंगिक लक्षण नर एवं मादा के शरीर के रंग में अंतर के रूप में प्रकट होते हैं और प्रायः नर मछली का रंग मादा कि तुलना में अधिक आकर्षक एवं चमकीला होता है।

उदाहरण के रूप में हम मध्य उत्तरी अमेरिका में पाई जाने वाली 'ऑरेंज स्पॉटेड सनफिश' को ले सकते हैं। इन मछलियों में नर में नारंगी रंग के धब्बों की संख्या और चटकीलापन मादा की तुलना में अधिक होता है।

इसी प्रकार 'एमिया कल्वा' नामक मछली में जनन काल के समय नर एवं मादा दोनों की पूंछ पर एक काला धब्बा प्रकट हो जाता है। यह धब्बा जनन काल की चरम सीमा पर नर में और अधिक उभर जाता है जबकि मादा में फीका पड़ जाता है।

तीन काटों वाली नर स्टिकिलबैक मछली का शरीर

प्रजनन काल के शुरू होते ही कैरोटिनॉयड वर्णक की उपस्थिति के कारण चटकीला लाल रंग का हो जाता है।

जनन काल में अपने को मादा मछली की ओर आकर्षित करने के लिये प्रायः नर मछली मादा की अपेक्षा अधिक चटकीली एवं आकर्षक हो जाती है।"

"लेकिन ऐसा क्यों होता है?"
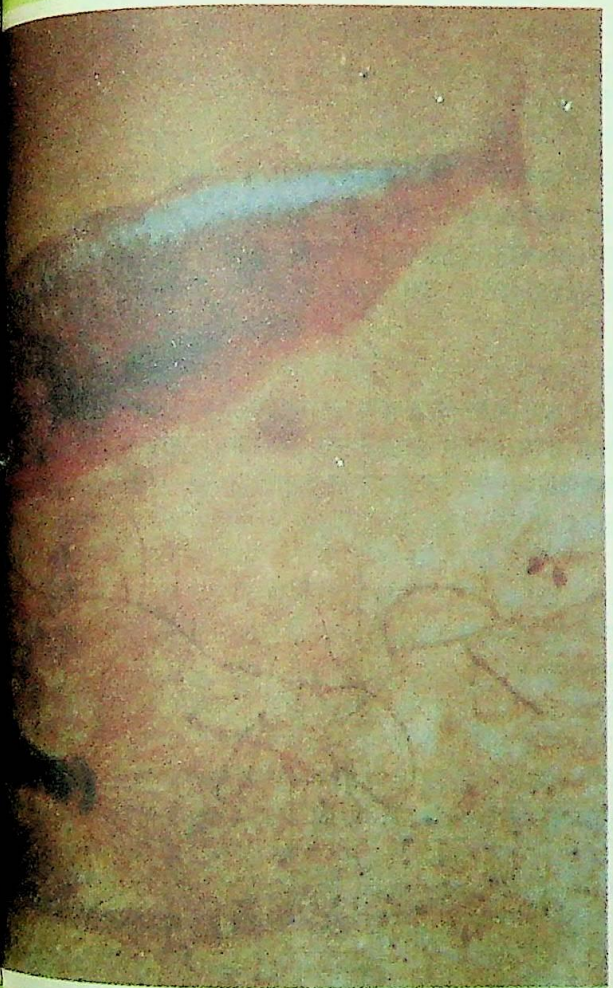
"चार्ल्स डार्विन के समय से वैज्ञानिकों की धारणा थी कि मादा मछलियां उन नर मछलियों के साथ जोड़े बनाती हैं जिनमें द्वितीयक लैंगिक लक्षण या तो नहीं होते अथवा पूर्ण रूप से विकसित ही नहीं होते। लेकिन कुछ वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अवलोकनों के आधार पर यह मत प्रकट किया गया कि सम्भवतः द्वितीय लैंगिक लक्षण रखने वाली नर मछली स्वस्थ एवं सक्षम नहीं होती और उसके चटकीले और आकर्षक रंग का कारण बीमारियों, जैसे परजीवियों, की उपस्थिति इंगित करता है । इस कारण मादा मछली ऐसे नर के साथ जोड़े नहीं बनाती।

लेकिन हाल ही में मैलफ्रेड मिलिन्सकी और बैकर दो स्विस वैज्ञानिकों ने दर्शाया कि उपरोक्त परिकल्पना सदैव ही खरी नहीं उतरती। उन्होंने तीन कांटों वाली स्टिकिलबैक मछली -'गैस्टेरोस्टियस एक्यूलियेटस' में यह दर्शाया कि नर के शरीर के लाल रंग की तीव्रता उसके शारीरिक रूप से स्वस्थ होने की द्योतक है तथा प्रजनन के लिये पूर्ण रूप से सक्षम है। मादा मछली जोड़ा बनाने के लिये चटकीले व लाल रंग की नर मछली को चुनाव में प्राथमिकता देती है।"

"परन्तु क्यों?"

"सम्भवतः इसका कारण इस प्रजाति में नर मछली, मादा द्वारा दिये अण्डों और उनसे निकलने वाले बच्चों के संरक्षण का दायित्व निभाती है। अतः मादा मछली ऐसे नर का चुनाव करती है जो शारीरिक रूप से स्वस्थ हो तथा इन 10-12 महत्वपूर्ण दिनों तक सुचारु रूप से अपना उत्तरदायित्व निभा सके। और इसके नियें नर का चटक लाल रंग उसका उत्तम स्वास्थ्य दर्शाता है। अतः स्पष्ट है कि न तो यह चित्र मछलियों की लुका-छुपी और न ही उन पर आयी विपत्ति को दर्शा रहा है बल्कि यह चित्र उपरोक्त वैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोगों में कि मादा स्टिकिलबैक चटकीले लाल रंग वाले नर के साथ जोड़ा बनाना पसंद करती है की एक महत्वपूर्ण अवस्था का है, जिसमें लाल नर मछली स्वतः बनाये गये घोंसले में मादा को अण्डे देने के लिये प्रेरित कर रही है।

[श्री राजीव माथुर, डी बी/ 41 डी, हरि नगर, एल.आई.जी. फ्लैटस, नई दिल्ली- 110 064]

लुई पाश्चर की महान धरोहर

मैक्सिम श्वार्ट्ज

लुई पाश्चर का नाम सारे संसार में विख्यात है। फ्रांस में अपने इस वैज्ञानिक की लोकप्रियता इतनी अधिक है कि वहां के प्रत्येक शहर में 'पाश्चर पुरी', 'पाश्चर गंज', 'पाश्चर नगर', 'पाश्चर चौक' जैसे नाम हैं। संसार के कई अन्य देशों में भी इस महान् वैज्ञानिक के नाम पर अनेक स्थानों के नाम रखे गये हैं। मानव कल्याण हेतु अनेक शोध करने वाले पाश्चर वास्तव में ही इस सम्मान के अधिकारी हैं। उनके शोध कार्य ने रसायन, कृषि, औषध-विज्ञान तथा स्वास्थ्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में एक क्रांति ला दी थी।

पाश्चर ने अनेक अलग-अलग क्षेत्रों में शोध कार्य किया और प्रत्येक में ही नाम कमाया, यह बड़ा ही विस्मयकारक है, लेकिन उनकी इस विविधता में भी एक अविछिन्नता है। टार्टरिक अम्ल के क्रिस्टलों के अध्ययन से लेकर रैबीज वैक्सीन बनाने तक जितनी भी उपलब्धियां उन्होंने प्राप्त की हैं वे सभी मानो एक लम्बी श्रृंखला की एक-एक कड़ी थीं जो उनके शोध कार्यों की निरन्तर प्रगति को दर्शाती हैं। आण्विक असममिति, किण्वन, स्वतः जनन, शराब तथा बीयर पर अध्ययन, सिल्क के कीड़ों के रोग, संक्रामक रोगों का अध्ययन तथा उपचार और वैक्सीनेशन के महान् क्षेत्र आदि सभी विषयों पर उन्होंने बड़े ही सुनियोजित ढंग से कार्य किया।

पाश्चर अपनी प्रयोगशाला में

क्रिस्टल विज्ञान में किए अपने शोध के माध्यम से पाश्चर ने विज्ञान में पदार्पण किया और शीघ्र ही वे प्रयोगीकरण में दक्ष माने जाने लगे। कार्बनिक क्रिस्टलों के अध्ययन से उन्होंने यह जाना कि जीवित कोशिकाओं के अणु असममित हैं तथा आण्विक असममिति जीवन का एक लक्षण है।

पाश्चर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने किण्वन माध्यम में ध्रुवण घूर्णक पदार्थों की उपस्थिति सिद्ध कर यह बताया कि किण्वन की प्रक्रिया सूक्ष्मजीवों द्वारा घटित होती है न कि स्वतः जनित रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा, जैसा कि बहुत से वैज्ञानिक उस समय मानते थे। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि प्रत्येक किण्वन प्रक्रिया एक विशेष सूक्ष्मजीव द्वारा घटित होती हैं। परन्तु कहां से आते हैं ये सूक्ष्मजीव? इस प्रश्न पर वे स्वयं भी विस्मित थे। क्या ये जीव स्वतः ही किण्वन माध्यम में प्रकट हो जाते हैं अथवा वे वातावरण से आते हैं? पाश्चर ने अपनी भव्य प्रयोगात्मक दक्षता द्वारा उन सभी प्रयोगों को गलत सिद्ध कर दिखाया जिन के द्वारा किण्वन माध्यम में स्वतः जनन की उपस्थिति दर्शाने का प्रयत्न किया गया था। किण्वन विज्ञान में अभिरुचि रखने वाले वैज्ञानिक के लिए शराब और बीयर में पाए जाने वाले कीड़ों के रोगों का अध्ययन करना स्वभाविक ही था। पाश्चर ने यह दिखाया कि इन रोगों का कारण किण्वन प्रक्रम में अथवा उसके बाद गलत प्रकार के सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति था।

शीघ्र ही पाश्चर किण्वन और संक्रामक रोगों की दृष्टिगत समानता में उलझ गए। वे सोचने लगे कि संक्रामक रोग किण्वन की तरह से कहीं सूक्ष्मजीवों द्वारा ही तो प्रतिपादित नहीं किए जाते, जिसमें प्रत्येक बीमारी का कारण एक विशेष सूक्ष्मजीव होता है। उस समय फ्रांस का सिल्क उद्योग रेशम के कीड़ों की बीमारियों से बहुत अधिक परेशान था। पाश्चर को अपना सिद्धांत सिद्ध करने के लिए यह पहला माडल मिल गया। इसके उपरांत उन्होंने ऐन्थ्रैक्स, चिकन-कालरा (मुर्गियों की एक संक्रामक बीमारी) और रैबीज आदि के अध्ययन की ओर अपने चरण बढ़ाए।

अपने शोधकार्य की अविछिन्नता के अतिरिक्त पाश्चर ने प्रकृति को चलाने वाले मूल-भूत नियमों, कृषि तथा चिकित्सा विज्ञान अथवा उद्योग द्वारा जनित व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करने की ओर भी ध्यान दिया। पाश्चर बेसिक और अप्लाईड साइंस में कोई अंतर नहीं मानते थे।

विज्ञान और वैज्ञानिक उपयोगों को भी पाश्चर अलग-अलग नहीं मानते थे। उनकी मान्यता थी कि ये दोनों परस्पर उसी प्रकार जुड़े हैं जिस प्रकार पेड़ और उस पर लगे फल जुड़े होते हैं। यही नहीं, उन्होंने यह भी निश्चत नहीं किया कि इन दोनों में पेड़ कौन है और फल कौन है। वास्तव में पाश्चर का पूरा कार्यकाल यह दर्शाता है कि जहां एक

ओर व्यावहारिक उपयोग विज्ञान के उत्पाद हैं वहीं दूसरी ओर कई महत्वपूर्ण मूल धारणाओं का जन्म व्यावहारिक समस्याओं का हल ढूंढने से हुआ।

जब युवा पाश्चर ने टार्टरिक अम्ल के दो प्रकार के क्रिस्टलों का पृथक्करण किया तब वे इसके उपयोग के विषय में लगभग अनभिज्ञ थे। 'लिले' के स्थानीय उद्योग, जहां कि वे नए-नए प्रोफेसर नियुक्त हुए थे, की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उनकी रुचि किण्वन-प्रकरण के अध्ययन में हो गई थी। यह एक प्रकार से उनके क्रिस्टलीय शोध का सांतत्य था।

किण्वन प्रक्रम पर जो शोध उन्होंने किया उससे जहां एक ओर' सिरके, शराब और बीयर उद्योगों ने · अत्यधिक उन्नति की, वहीं दूसरी ओर वे स्वतः जनन के सिद्धांत, जो उस समय एक महत्वपूर्ण धारणा थी, को भी गलत सिद्ध करने में सफल हुए।

उनका एक और अद्वितीय कार्य सिल्क के कीड़ों से संबंधित है। इन कीड़ों के रोगों का अध्ययन कर उन्होंने न केवल सिल्क उद्योग की एक बहुत बड़ी समस्या हल कर दी बल्कि उसके साथ ही संक्रामक रोगों के उद्गम के संबंध में कुछ मूल-भूत नियमों का भी प्रतिपादन कर दिया। अब यह बता पाना कठिन है कि इस शोध को बेसिक कहा जाए अथवा अप्लाईड।

अनेक प्रकार की खोजों में भी एक अनवरतता होना तथा विज्ञान और उसके उपयोगों का एक दूसरे में समाहित होना पाश्चर के शोध कार्य के दो प्रमुख गुण थे और ये ही दो विशेषताएं उस संस्थान के इतिहास को अभिलक्षित करती हैं जिसकी स्थापना उन्होंने एक सौ वर्ष पूर्व की थी।

जिन घटनाओं के फलस्वरूप इस महान् संस्थान की नींव रखी गई थी, वे इस प्रकार हैं—किण्वन पर शोध करने के बाद पाश्चर का झुकाव पशु रोगों की समस्याओं के अध्ययन की ओर चला गया था। शीघ्र ही उनके मन में यह विश्वास जम गया कि किण्वन की तरह ही संचरणशील रोगों का कारण विशेष सूक्ष्मजीव थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के अंत में जब वे चिकन-कालरा पर काम कर रहे थे तो यह मात्र एक संयोग ही था कि उन्होंने एक ऐसी महत्वपूर्ण खोज कर डाली जिसने वैक्सीन बनाने का मार्ग खोल दिया। हुआ यह कि उन्होंने उस बैक्टीरिया को बिलगा लिया था जो इस संक्रामक रोग का कारण था (इस बैक्टीरिया को उनके सम्मानार्थ **पास्चुरैला** कहा जाता है)। द्रव माध्यम में इसे संवर्धित करने में भी उन्होंने सफलता पा ली थी। अब उन्होंने देखा कि जब भी संवर्ध के कुछ भाग को किसी चिकन में संरोपित किया गया तो वह बीमार हो गया तथा शीघ्र ही मर गया। 1879 के ग्रीष्मकाल में एक बार पाश्चर के एक सहयोगी चार्ल्स चैम्बरलैन्ड को संवर्ध को नये माध्यम में स्थानांतरित करने के लिए आवश्यक रूप से प्रयोगशाला जाना था परन्तु उसे वहां जाने के स्थान पर सियेन नदी में मछलियां पकड़ने जाना ज्यादा अच्छा लगा। अगले सप्ताह वही संवर्ध एक चिकन में संरोपित कर दिया गया। वह चिकन बीमार तो हुआ परन्तु मरा नहीं। जब इस आश्चर्यजनक गवेषण को देखकर लुई पाश्चर को पूरी बात बताई गई तो उन्होंने उसी चिकन का सुचारु रूप से संवृद्ध दूसरे संवर्ध से पुनः संरोपित करने का आदेश
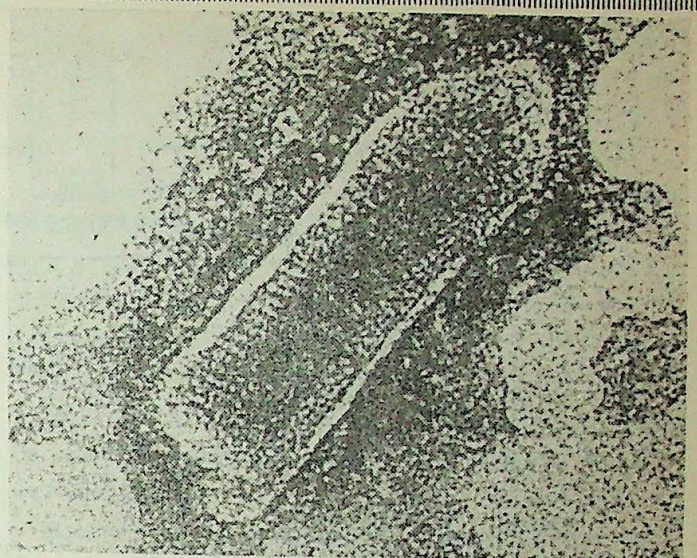
गोली की शक्ल के रैबीज वायरस

दिया। पाश्चर को फिर इस बार एक नया ही चमत्कार देखने को मिला। वह चिकन अब भी नहीं मरा। इसी प्रयोग ने बाद में एक विलक्षण खोज बल्कि दोहरी खोज का रूप लिया। पहली बार चिकन के न मरने का कारण संवर्ध माध्यम की प्रतिकूल परिस्थितियों में सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता में ह्रास होना था। उस माध्यम में बैक्टीरिया तो जीवित था परन्तु उसकी सक्रियता में कमी आ गई थी। दूसरी बार चिकन के नहीं मरने का कारण उसमें क्षीण सूक्ष्मजीव का संरोपण था। इससे क्षीण सूक्ष्मजीव के विरुद्ध चिकन के शरीर में रोधक्षमता उत्पन्न हो गई थी।

इसके तुरन्त बाद ही लुई पाश्चर ने उस समय के आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एक पशु के गिल्टी रोग, 'ऐन्थ्रैक्स' पर भी इसी प्रकार के प्रयोग किए। वे न केवल **ऐन्थ्रैक्स बेसिलस** को क्षीण करने में सफल हुए बल्कि इस क्षीण हुए सूक्ष्मजीवों का टीका पशुओं को लगाकर सक्रिय सूक्ष्मजीवों के विरुद्ध प्रयोग करने में भी उन्होंने सफलता प्राप्त की। 1881 में पाली-फोर्ट में उन्होंने इस महान प्रयोग का बहुत ही सुंदर प्रदर्शन किया। उन्होंने दिखाया कि सक्रिय ऐन्थ्रैक्स के टीकों को सहन कर टीका लगी 25 भेड़ें जीवित रहीं जबकि टीका-न-लगी 25 भेड़ें मर गईं।

पशु रोगों की इन सफलताओं से प्रेरित होकर पाश्चर ने रैबीज पर काम करने की ठान ली, इससे पशु और मानव दोनों ही प्रभावित थे। यह अभी तक हल की गई सभी समस्याओं से अधिक कठिन थी। सिल्क के कीड़ों, चिकन-कालरा अथवा ऐन्थ्रैक्स रोगों के लिए उत्तरदायी सूक्ष्मजीवों के विपरीत रैबीज के लिए उत्तरदायी सूक्ष्मजीव को अभी तक किसी ने 'देखा' ही नहीं था और न ही उसे किसी प्रकार के माध्यम में संवर्धित किया गया था। इसका कारण यह था कि इससे संबंधित सूक्ष्मजीव बैक्टीरियम नहीं था बल्कि वाइरस था। इसे केवल इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप द्वारा ही देखा जा सकता था (इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप का आविष्कार 1930 में हुआ था) और इनका संवर्धन केवल जीवित कोशिकाओं में ही संभव था। इन सभी कठिनाइयों के बावजूद भी पाश्चर और उनके सहयोगी इस सूक्ष्मजीव को विकसित करने में सफल हुए। इसके लिए उन्होंने इसे
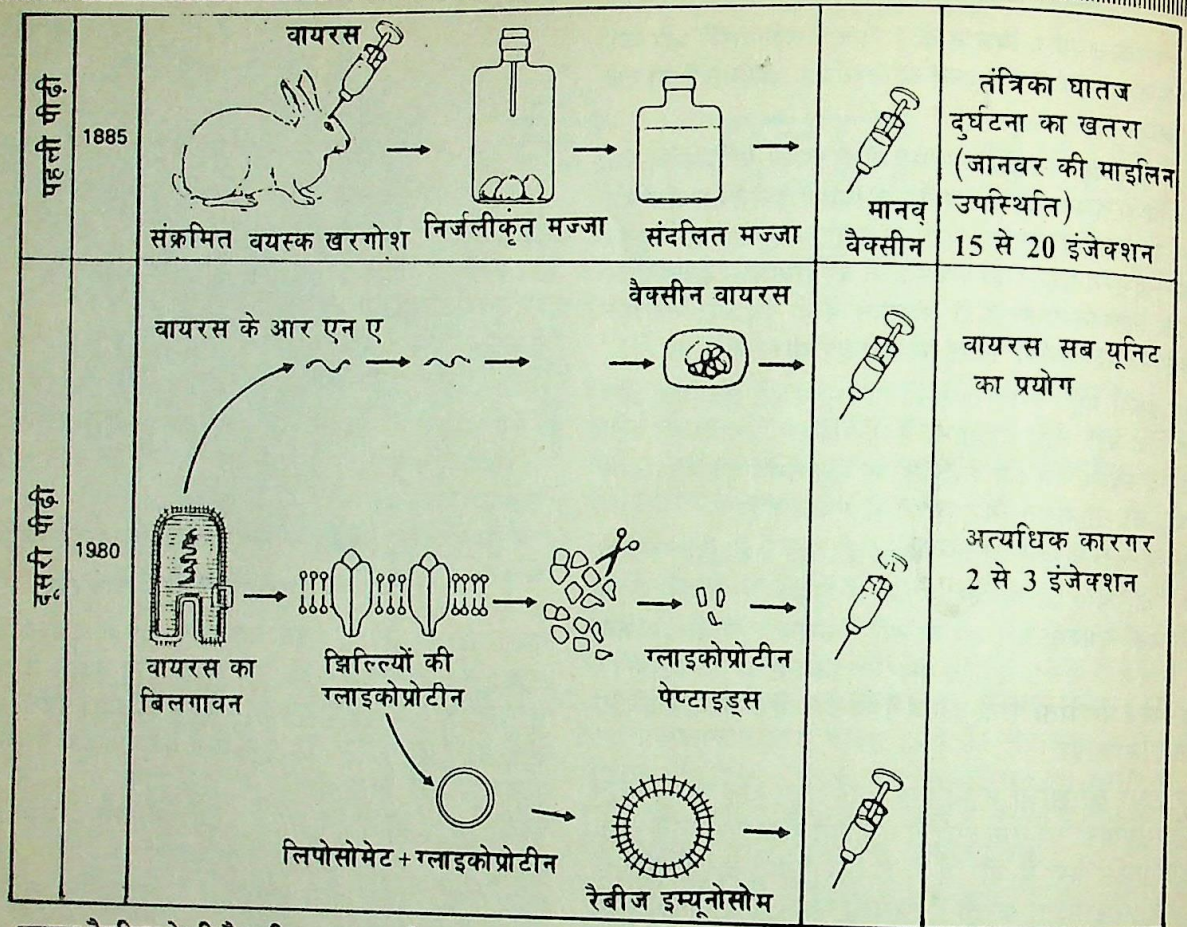
मानव रैबीजरोधी वैक्सीन पाश्चर ने 1885 में एक संक्रमित खरगोश के मस्तिष्क से तैयार की थी। अणु जीव विज्ञान तथा जैव प्रौद्योगिकी की नई तकनीक के विकास से 1980 के दशक में सुरक्षित वैक्सीन बनाना संभव हुआ। इस रोग से बचाव के लिए केवल प्रतिजन का एक अंश ही उत्तरदायी है।

खरगोश के मस्तिष्क में संरोपित किया। तंत्रिका तंत्र में वाइरस जन्तु बहुगुणित हो जाते हैं और अन्ततः उसे उसकी रीढ़-रज्जु से प्राप्त किया जा सकता है। वाइरस को क्षीण करने के लिए इन रीढ़-रज्जुओं को 23° से. पर एक शुष्क तथा जीवाणु रहित वातावरण में कई दिनों तक सुखाया गया। जब कुत्तों को इसका टीका लगाया गया तो रीढ़-रज्जओं के टुकड़ों ने उन्हें रैबीज वाइरस के संक्रमण से बचाया; यद्यपि इनमें कुछ संरोपण से पहले से ही संक्रमित हो चुके थे।

एक वर्ष से अधिक समय तक कुत्तों पर प्रयोग करने के उपरांत लुई पाश्चर ने मानव पर इस चिकित्सा का प्रभाव देखने का फैसला किया। 6 जुलाई, 1885 को रीढ़-रज्जुओं से तैयार किए टीके नौ वर्ष के एक लड़के जोसफ मैस्टर को लगाए गए। उस लड़के को एक रैबीज-ग्रस्त कुत्ते ने दो दिन पहले बुरी तरह काट लिया था, यदि उसकी चिकित्सा तुरन्त न की जाती तो वह मर जाता। यह टीके लगा कर उसे जीवित बचा लिया गया। उसी वर्ष अक्टूबर में एक और लड़के जीन बैपटिस्टे जुपिल्ले को भी इसी उपचार द्वारा बचा लिया गया।

इन दो आश्चर्यजनक सफलताओं के कारण लुई पाश्चर की चिकित्सा-पद्धित बहुत लोकप्रिय हो गई और रैबीज ग्रस्त अथवा रैबीज ग्रस्त माने गए पशुओं द्वारा काट खाए गए असंख्य लोग पाश्चर के पास आने लगे। उनकी प्रयोगशाला रोगियों से भरी रहने लगी। जुपिल्ले को टीका लगाने के चार महीने बाद, 1 मार्च, 1886 को लुई पाश्चर ने फ्रांस की विज्ञान अकादमी में एक व्याख्यान दिया। उन्होंने बताया कि पशुओं द्वारा काटे गए 350 व्यक्तियों को टीका लगाकर ठीक करने में वे सफल हो चुके थे। उनकी इस महत्त्वपूर्ण घोषणा की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए फ्रेंच अकादमी ने एक अंतर्राष्ट्रीय धन एकत्रण अभियान आरंभ करने का फैसला किया ताकि रैबीज के टीके तैयार करने वाली एक संस्था की स्थापना की जा सके। अकादमी ने यह भी निर्णय लिया कि उसका नाम '**पाश्चर संस्थान**' रखा जाए। इस अभियान को आशातीत सफलता मिली। हजारों-लाखों लोगों ने इस में योगदान दिया। इनमें गरीब मजदूर से लेकर ब्राजील के सम्राट, रूस के ज़ार और टर्की के सुलतान..... आदि सभी सम्मिलित थे। फ्रांस सरकार ने तो यथाशक्ति धन दिया। 1887 के अंत तक 5 करोड़ 60 लाख फ्रैंक के बराबर धन एकत्रित हो गया था जिसका आज मूल्य लगभग 80 लाख अमेरिकी डालर है। इसी बीच पेरिस के बाहरी भाग में इस संस्थान के लिए भूमि अधिग्रहण कर ली गयी थी। जून 1887 में इस संस्थान के निर्माण का कार्य

आरंभ हो गया। फ्रांस गणराज्य के तत्कालीन राष्ट्रपति जूल्स ग्रेवी ने एक आदेश जारी कर पाश्चर संस्थान को एक 'सार्वजनिक तथा राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त' संस्थान की संज्ञा दी।

14 नवम्बर, 1888 को पाश्चर संस्थान का फ्रांस के तत्कालीन राष्ट्रपति सैदी कार्नोट द्वारा विधिवत् उद्घाटन किया गया। पाश्चर इस समय तक 66 वर्ष के हो चुके थे। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। 46 वर्ष की आयु में पड़े दिल के दौरे से उन्हें लकवा पड़ गया था। उन्होंने एक बार स्वयं कहा था कि मैं 'समय का मारा हुआ एक व्यक्ति' हूं। संस्थान के उद्घाटन के सात वर्ष बाद उनका देहांत हो गया।

पाश्चर ने अपने जीवनकाल में जो मार्ग दिखाया था उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्य भी उसी मार्ग पर अग्रसर होते रहे और इसके संस्थापक की मनोकामना के अनुरूप इस संस्थान को रैबीज की चिकित्सा के लिए एक चिकित्सालय, संक्रामक रोगों के लिए एक अनुसंधान केन्द्र, तथा एक शिक्षा केन्द्र के रूप में ढालने का प्रयत्न करते रहे।

उनके अनेक शिष्यों में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण नाम आता है एमिल रॉक्स का। रैबीज पर कार्य करते समय रॉक्स ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और संस्थान के उद्घाटन के अवसर पर भी एक महान् खोज की घोषणा की थी। यह खोज थी डिफ्थीरिया टॉक्सिन की। रॉक्स और उसके साथी एलेक्जेण्डर येर्सिन ने इस वास्तविकता को जान लिया था कि **डिफ्थीरिया बेसिलस** दूर के भागों में भी अपना प्रभाव डाल सकते हैं। गले में पनपते हुए भी ये श्वसन पेशियों को अपंग बना सकते हैं, इसलिए वे एक विसरणशील विष की खोज करना चाहते थे और अन्त में उन्होंने संवर्धन के छनित में उपस्थित डिफ्थीरिया विष को पकड़ ही लिया। जर्मनी में राबर्ट कॉख के शिष्य वान बहरिंग ने यह खोज की थी कि यदि पशुओं को इस विष की कम मात्रा का टीका लगा दिया जाए तो वे इसके विरुद्ध प्रतिरक्षित हो जाते हैं और उनके सीरम में ऐन्टिटॉक्सिन पदार्थ पाया जाता है। रॉक्स का मत था कि ये ऐन्टिटॉक्सिन रोग-रोधक उपचार के लिए प्रयोग किए जा सकते थे और उसने वास्तव में यह पाया कि डिफ्थीरिया से पीड़ित बच्चों को रोधक्षम घोड़ों के सीरम का टीका लगा कर बचाया जा सकता था। इस प्रकार एक नई पद्धति 'सीरोथिरेपी' का जन्म हुआ।

तीस वर्ष के पश्चात् बीसवीं सदी के दूसरे दशक के आरंभ में एक अन्य पाश्चुरियन (पाश्चर संस्थान से संबंधित) गैस्टॉन रमन ने यह दिखाया कि डिफ्थीरिया टॉक्सिन तथा टिटेनस टॉक्सिन का उपचार इस ढंग से किया जाना संभव था कि वह अपनी आविषालुता खो दे तथा साथ ही प्रतिरक्षी क्षमता भी उत्पन्न कर दे। इस प्रकार से उपचारित टॉक्सिन (उच्च तापक्रम पर फार्मेल्डीहाइड द्वारा) को 'ऐनाटॉक्सिन' अथवा 'टॉक्सॉइड' की संज्ञा दी गई तथा ये मानव में प्रतिरक्षा उत्पन्न करने में सक्षम थे। इस प्रकार ऐन्टीडिफ्थीरिया तथा ऐन्टीटिटेनस के टीके लगाने की आधारशीला रखी गई जिसे आज संसार में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है।

पाश्चर संस्थान के प्रवर्त्तकों में एमिल रॉक्स के साथ ही एक और नाम आता है एली मैटनीकोफ का जिन्हें उनके रोधक्षमता के कार्य के लिए 1908 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उन्होंने फैगोसाइट के 'रोल' की खोज की थी। फैगोसाइट वे श्वेत रक्त कोशिकाएं हैं जो शरीर में बाह्य पदार्थों, यथा बैक्टीरिया, को न केवल पहचान लेती हैं वरन् उनका भक्षण भी कर डालती हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक नाम और भी हैं जिनके कारण पाश्चर संस्थान का गौरव बढ़ा। इनमें जुल्स बोर्ड हैं जिन्हें काम्प्लीमेंट की खोज के लिए 1919 में नोबेल पुरस्कार मिला; कैमेट तथा गुइरिन तपेदिक के उपचार के लिए बी.सी.जी. टीके की खोज कर 1921 में उसे मानव पर प्रयुक्त किया; जेक्स तथा थैरसे ट्रिफाल और निटि तथा बोरेट ने सल्फाड्रगस की खोज की।

पेरिस में ही नहीं, पाश्चुरियनों ने पाश्चर संस्थान से बाहर रह कर भी अनेकों ऐसी उपलब्धियां प्राप्त कीं जिनसे इस संस्थान के नाम में चार चांद लग गए।

पेरिस में पाश्चर संस्थान के उद्घाटन के केवल दो वर्ष बाद ही सन् 1890 में लुई पाश्चर तथा एमिल रॉक्स ने अपने सहयोगियों में से एक सहयोगी अल्बर्ट कामेट जोकि सेना में डाक्टर था, से सैगॉन (वियतनाम) में प्रयोगशाला खोलने को कहा ताकि संसार के उस भाग में फैली रैबीज, चेचक जैसी बीमारियों से लड़ा जा सके। कामेट ने अपने इस मिशन में आशातीत सफलता प्राप्त की और सैगॉन (अब हो-चीन्हमिन विला) में पाश्चर संस्थान की स्थापना की।

इसके अतिरिक्त स्थानीय लोगों की कोबरा आदि जैसे सांपों के काटने से सर्प-विष के घातक प्रभाव से बचाने हेतु वे सीरोथिरैपी पद्धति का प्रयोग करना जानते थे। अलबर्ट कामेट, जो बी.सी.जी. के अनुसंधान कर्त्ताओं में से एक थे, बाद में पाश्चर संस्थान, लिले के प्रथम निदेशक बने। विदेशों में रहकर पाश्चर संस्थान के वैज्ञानिकों को प्राप्त उपलब्धियों में से प्रमुख उपलब्धि प्लेग से संबंधित हैं।

प्लेग उत्पन्न करने वाले बैक्टीरिया की पहचान एलेक्जेण्डर येर्सिन ने की थी। उन्होंने 1894 में हॉग-कॉग में इसे विलगित किया था। उन्हीं के नाम पर इसे अब **येर्सिनिया पेस्टिस** कहते हैं। इस बैक्टीरिया की विलक्षणता जानने के बाद येर्सिन प्लेगरोधी सीरम तैयार करने में जुट गये; उन्होंने जो परिणाम प्राप्त किये उन्हें चमत्कार की संज्ञा दी गई।

1896 में प्लेग एक महामारी के रूप में बंबई में फैल गया। दो वर्ष में 32000 लोगों की इस संक्रामक रोग से मृत्यु हो गई। ऐसे समय में येर्सिन और बाद में उनके सहयोगी पाल लुईस साइमंड रक्षा के लिए आये। येर्सिन ने यद्यपि प्लेग उत्पन्न करने वाले बैक्टीरिया की पहचान कर ली थी और यह भी जान लिया था कि यह रोग चूहों द्वारा फैलता है लेकिन वे यह नहीं जान सके कि कैसे यह बैक्टीरिया चूहे से मनुष्य तक पहुंच जाता है।

बंबई में अपने वास के दौरान साइमंड ने इस रोग के संचरण के प्रमाण एकत्र कर लिये जो इंगित करते थे कि यह मक्खियों के माध्यम से होता है। जून 1897 में इसके लिए उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण परीक्षण किया। शीशे के एक बड़े बर्तन में उन्होंने प्लेग से पीड़ित एक मरणासन्न चूहे को रखा। उसके पास ही पिंजरे में बन्द एक स्वस्थ चूहे को इस प्रकार रखा कि दोनों एक दूसरे के सम्पर्क में आ सकें। जैसे ही बीमार चूहे की मृत्यु हुई, मक्खियां उसे छोड़कर पिंजरे की जाली

पार कर स्वस्थ चूहे पर आ गईं और उसमें रोग के कीटाणु संचरित कर दिये। वह स्वस्थ चूहा बीमार हो गया और छः दिन बाद मर गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विज्ञान की एक नई शाखा 'आण्विक जीवावज्ञान' की स्थापना हुई और उसके बाद आधुनिक प्रतिरक्षा विज्ञान की। आण्विक जीवविज्ञान के जन्म ने पूरे जीवविज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी। लुई पाश्चर, जो एक रसायन शास्त्री थे और बाद में जीव विज्ञान में पदार्पण कर गये थे, का मानना था कि अंततः रसायन शास्त्र ही गुत्थी को सुलझाएगा। उनकी यह भविष्यवाणी सच निकली। आज रसायन शास्त्र ही जीवशास्त्र के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने का आधार बन गया है। आज जीव शास्त्री, चाहे वह संक्रामक रोगों के क्षेत्र में शोध कर रहे हों अथवा तंत्रिका तंत्र के क्षेत्र में, का मुख्य ध्येय जैविकी प्रक्रमों को आण्विक प्रक्रियाओं के आधार पर समझना है। आज कोई भी रैबीज के टीके बनाने के लिए रीढ़ की हड्डी के बड़े-बड़े टुकड़े इस्तेमाल नहीं करता। नई पद्धति के अनुसार यह टीके या तो अणुओं से अथवा अणु-खण्डों से तैयार किये जाते हैं।

पाश्चर संस्थान में आज शोध कार्य जिस चरम सीमा पर पहुंच गया है उसकी कल्पना संभवतः पाश्चर ने स्वयं भी नहीं की होगी। औद्योगिकी के क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तनों तथा ज्ञान की असीमित वृद्धि के उपरान्त भी पाश्चर संस्थान के शोध में अविछिन्नता की वह जंजीर कहीं टूटी दिखाई नहीं देती जो कि लुई पाश्चर ने अपने कार्यकाल में अपने अथक परिश्रम से कड़ी-कड़ी घड़ कर बनाई थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हाल के कुछ वर्षों में विज्ञान के कई नवीन क्षेत्र जैसे विकास विज्ञान, तंत्रिका जीव विज्ञान आदि उभरे हैं परन्तु पाश्चर तथा उनके अन्तरंग सहयोगियों द्वारा प्रतिपादित मूल-भूत क्षेत्रों में आज भी इस संस्थान में शोध अविरल रूप से चल रहा है।

1989 में **ऐन्थ्रैक्स बैसिलस** की क्रियाशीलता के लिए उत्तरदायी जीन को क्लोन कर उसका अनुक्रम भी बना लिया गया। उसके एक वर्ष पूर्व रैबीज वाइरस के पूरे के पूरे जीनोम को ही अनुक्रमित कर लिया गया था जिससे न केवल रोग को अधिक गहराई से समझने में सहायता मिली थी वरन् नए टीके बनाने का मार्ग भी प्रशस्त हुआ था। डिफ्थीरिया तथा टिटेनस के टॉक्सिन के कार्य करने की विधियों को समझने के लिए आज भी इस संस्थान में कोशिकीय तथा आण्विक स्तर पर शोध कार्य हो रहा है। वॉन बेहरिंग तथा रॉक्स की एन्टीटॉक्सिनों की खोज ने प्रतिरक्षा विज्ञान के नये क्षेत्र की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वास्तव में एन्टीटॉक्सिन पहली एन्टीबॉडी थी जिनकी पहचान हुई थी। इस संस्थान में एक पूरा विभाग प्रतिरक्षा विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत है।

पाश्चर संस्थान निसंदेह अपने बीते हुए कल पर गर्व कर सकता है परन्तु उसे अपना आने वाला कल भी उतना ही गरिमामय बनाना है। और यह तभी संभव है जब मानव कल्याण के लिए शोध करने की अपनी प्राचीन परम्परा को वह न केवल बनाये रखे वरन् दिन-प्रतिदिन उसे सफलता की ओर अग्रसित करता रहे।

[श्री मैक्सिम श्वार्ट्ज, निदेशक, पाश्चर संस्थान, पेरिस,
प्रस्तुति: डा. बी.एस. अग्रवाल, डी.डी.ए. फ्लैटस, गुलाबी बाग, दिल्ली- 110007]

आरोग्य सलाह

(शेषांश पृष्ठ 32 का)

...ते आदि बनवाने होंगे ताकि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके।"

शबीर की पत्नी ने कृतज्ञता से डाक्टर का धन्यवाद किया।

शबीर के भाई ने पूछा, "बच्चा पूरी तरह ठीक हो जाएगा न, डाक्टर साहब?"

"बिल्कुल ठीक भी हो सकता है और नहीं भी। ठीक उस दशा में हो सकता है जब बच्चे की लगातार श्रमपूर्वक भौतिक चिकित्सा की जाये। उपकरणों का उपयोग किया जाये तथा आवश्यकता पड़ने पर ...शी को हड्डी से जोड़ने वाली शिरा को आपरेशन करके बदला जाये। इस प्रकार उसका अंग संचालन लगभग सामान्य अंगों की तरह हो जाएगा। और यदि बच्चे के पोलियो से प्रभावित अंग छोटे अथवा पतले पड़ जायेंगे तो उस अवस्था में बच्चा पूरी तरह ठीक नहीं हो पाएगा।"

एक चुस्त लड़के ने पूछा, "क्या यह अच्छा नहीं रहेगा कि चिकित्सा की बजाय इस रोग की रोकथाम की ओर अधिक ध्यान दिया जाये।"

"आपने बिल्कुल ठीक कहा है, यह केवल अच्छा ही नहीं बल्कि आवश्यक भी है।" डाक्टर साहब ने यह भी बताया कि अब पोलियो पर पूरी तरह नियंत्रण पाया जा सकता है।

डा. शर्मा ने आगे बताते हुये कहा, "जैसा कि आप जानते हैं कि पोलियो नियंत्रण हेतु दो प्रकार की वैक्सीन उपलब्ध हैं—एक तो मुख ...दी जाने वाली मुखीय वैक्सीन तथा दूसरी इंजेक्शन द्वारा दी जाने वाली निष्क्रिय वैक्सीन। पहली सबीन के नाम से तथा दूसरी ...साल्क के नाम से जानी जाती है। इनका नाम उन वैज्ञानिकों के नाम पर रखा गया है जिन्होंने इनका आविष्कार किया है। दोनों वैक्सीनों में पोलियो विषाणुओं के 1, 2 और 3 तीनों प्रकार के प्रतिजन होते हैं इसलिए इन्हें ट्राइवेलेंट (त्रियुक्त) कहा जाता है।"

एक व्यक्ति ने पूछा कि दोनों वैक्सीनों में से कौन-सी अधिक अच्छी है?

"दोनों ही अच्छी हैं। वर्तमान में हमारे देश में इतना ही पर्याप्त ...गा कि हम अपने बच्चों को जब वे 6 माह के हो जायें तब पोलियो वैक्सीन की एक, मुखीय खुराक चार सप्ताह के अंतर से, 3 बार दें और स्कूल जाने से पूर्व 1.5 वर्ष की अवस्था में दवा की इतनी ही मात्रा बूस्टर के रूप में दें।

एक अध्यापक ने यह जानना चाहा कि हमें मुखीय वैक्सीन की तुलना में इंजेक्शन से दी जाने वाली वैक्सीन को कब प्राथमिकता देनी चाहिए?

इस पर डाक्टर साहब ने समझाया कि–

इंजेक्शन से दी जाने वाली पोलियो वैक्सीन उन अवस्थाओं में प्रयुक्त का जाती है जब

1. किसी व्यक्ति में विशेष रोगों के कारण तथा औषध चिकित्सा के कारण निरापदता उत्पन्न करने की क्षमता कम हो गई हो।
2. परिवार के सदस्यों का ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आना जो प्रतिरक्षित न हों, तथा
3. प्रतिरक्षित न हुये वयस्क जिन्हें पक्षाघात से ग्रस्त होने का भय हो।

ऐसा इसलिये है क्योंकि मुखीय पोलियो वैक्सीन में जीवित विषाणु होते हैं तथा इंजेक्शन से दी जाने वाली वैक्सीन निष्क्रिय विषाणुओं से बनायी जाती है। जो वैक्सीन जीवित विषाणुओं से बनी होती है वह उन व्यक्तियों को नहीं दी जानी चाहिए जिनकी निरापदता किसी रोग-विशेष तथा औषध चिकित्सा के कारण क्षतिग्रस्त हो चुकी हो।

डाक्टर को बताकर यह निर्धारित करवा लें कि किस व्यक्ति के लिए कौन-सी वैक्सीन हितकर होगी।

एक व्यक्ति ने पूछा, "इन वैक्सीनों के कोई हानिकारक प्रभाव भी है?"

"यदि वैक्सीन ठीक ढंग से दी जाये तो इसके कोई कुप्रभाव नहीं होते। यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि पोलिओ वैक्सीन गर्मी में बहुत जल्दी खराब हो जाती है। अतः जब तक यह बच्चे के मुंह में न चली जाए तब तक इसे 2° से 8° से. तक के ठण्डे ताप पर ही रखा जाना चाहिए।

अब व्याख्यान समाप्त करने का समय आ गया था क्योंकि बीमार रोगियों तथा बच्चों ने डा. शर्मा से अपने दुःखों तथा बीमारी का रोना-धोना प्रारम्भ कर दिया था।

[डा. रमेश पोत्दार, 69,डी.वी. प्रधान रोड, बंबई- 14]

(शेषांश पृष्ठ 37 का)

धर्मपुत्र

"लेकिन वार्डन साहब, वह तो यहां है नहीं। मैं तो उसे होस्टल से बुलाना चाहता था। क्या वह होस्टल में नहीं है?"

"नहीं, डा. विशाल। वह तो कल शाम को ही यहां से चला गया ...उसके दोस्तों ने तो मुझे यही बताया है। उसे बधाई देने के लिये ...के सारे दोस्त बेचैन हो रहे हैं। मुझे ताज्जुब है कि वह घर पर नहीं ...: आखिर वह गया कहां?" ।"

"यही सवाल तो मुझे भी परेशान कर रहा है मिस्टर मधुकर। यदि ...रात से ही वह गायब है तो फिर चिंता की बात है। मुझे फौरन पुलिस को सूचित करना होगा।"

"ओ.के., डा. साहब, मैं भी उसे तलाश करवाता हूं। बेहतर होगा यदि आप रेडियो और टेलीविजन को भी सूचित कर दें। वैसे एक दो घंटे और देख लें, हो सकता है वह आ ही जाये। कहीं किसी दोस्त के यहां न चला गया हो। ओ.के. फिर फोन करेंगे।" टेलीफोन का क्रैडिल रखते समय डा. विशाल के हाथ कांप रहे थे।"

[श्री अरविन्द मिश्र, द्वारा श्री एम.डी. गौतम, 25 एफ, टैगोर टाउन, इलाहाबाद]

क्रमशः

धूम्रपान हानिकारक

लगे दम मिटे गम– झूठा भ्रम

विजय मिश्रा 'अमित'

दादा जी, एक दम से आग बबूला हो उठे लेकिन तुरंत सम्भल कर उन्होंने कुछ निर्णय लिया और तीनों बच्चों को आवाज देकर बुलाया। वे तीनों सहमकर उनके सामने आ गये और सिर झुकये खड़े रहे।

"देखो बेटे, अभी जिस उम्र से तुम गुजर रहे हो, उसे कहते हैं, किशोरावस्था, इस उम्र में शारीरिक विकास के साथ-साथ स्वभाव में भी तेजी से परिवर्तन होता है। चूंकि जीवन की नींव को यहीं से मजबूत करना होता है, अतः बच्चों को सही दिशा में लाने तथा भटकने से बचाने के लिए उनके माता-पिता कठोर रुख भी अपनाते हैं। अनेक बच्चे इसे समझ नहीं पाते और क्रोध में आकर अपराध प्रवृत्ति की ओर झुक जाते हैं। जैसे कि आज तुम लोगों ने गलती की है।" दादाजी नीरज, सज्जन और पिरोहित को गंभीरता से समझा रहे थे। ये तीनों गैरेज के पीछे सिगरेट पी रहे थे और दादाजी ने उन्हें देख लिया था।

"बेटा मुझे मालूम है तुम्हारी उम्र के बच्चे बिना तर्क-वितर्क के किसी भी बात को ग्रहण करने के मूड में नहीं होते, क्योंकि किशोरावस्था में जिज्ञासा जबरदस्त होती है। इसलिए हम अभी तुम लोगों की आज की गलती पर ही चर्चा करेंगे।"

"ज....जी!" नीरज ने झिझकते-झिझकते स्वाकृति दी।

"तो सबसे पहले यह बताओ कि क्रिकेट खेलते-खेले अनायास तुम्हारे मन में सिगरेट पीने वाली बात आयी कैसे?"

"जी। हमें थकान महसूस हो रही थी। हमारा माली जब काम करते-करते थक जाता है तो बीड़ी पीता है। एक दिन उसी ने बताया था कि इससे शरीर में चुस्ती-फुर्ती आती है।"

"नहीं बेटे। यह धूम्रपान करने वालों की गलतफहमी है। जिसे वे चुस्ती-फुर्ती समझते हैं, वह हकीकत में तम्बाकू में रहने वाला 'निकोटिन' नामक विष के विषैले असर से पैदा होने वाला तनाव होता है। मस्तिष्क से निकोटिन का नशा उतरते ही शरीर फिर से शिथिल हो जाता है। सोचो, किसी चीज पर बार-बार तनाव पड़ेगा, तो वह ढीली तो पड़ने लगेगी ही, तब ढीलेपन को खत्म करने के लिये नशे की मात्रा क्रमशः बढ़ानी पड़ेगी। इसी क्रम में एक दिन निकोटिन के विषाक्त प्रभाव से सारा शरीर ही कमजोर व खोखला होकर रह जायेगा।"

"पिरोहित, लगे दम, तो मिटे गम–यह सोचना तो महज एक भ्रम है। भ्रम तब टूटता है, जब वे कैंसर, तपेदिक, दमा और ब्रांकाइटिस जैसे खतरनाक रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। तम्बाकू का विषैला निकोटिन और धुंए का कार्बन, मुंह की त्वचा, जीभ गले व आहार नाल से होता हुआ फेफड़े में जा पहुंचता है। फेफड़े स्वच्छ प्राणवायु लेकर रक्त को शुद्ध करने का कार्य करते हैं। ऐसे में फेफड़े में एकत्रित कार्बन व निकोटिन रक्त में मिल जाते हैं और रक्त संचरण के साथ-साथ सारे शरीर में फैलकर शरीर को बीमारियों का घर बना देते हैं।"

"सिगरेट पीकर हम सारा धुंआ तो शरीर के बाहर फूंक देते हैं। ऐसे में विष का प्रभाव शरीर के अंदर कैसे होता होगा?" प्रश्न नीरज का था।

"अच्छा प्रश्न किया है तुमने," दादाजी नीरज को थपकी देकर बताने लगे, "माना कि सिगरेट पीने वाले धुंआ बाहर निकाल देते हैं। पर कभी गौर करना बेटे, सिगरेट से निकलने वाला धुंआ पहले हल्के नीले रंग का दिखाई देता है किन्तु जब वही धुंआ शरीर के अंदर से बाहर निकलता है तो उसका रंग नीले की बजाय मटमैला भूरा हो चुका होता है। यहां प्रश्न उठता है कि धुंये का नीलापन जाता कहां है?"

"देखो हम बताते हैं," कहते हुए दादाजी ने एक सिगरेट सुलगाई। फिर एक लंबी कश खींचकर एक सफेद रूमाल होंठों से लगाकर धुंआ मुंह के बाहर फूंक दिया। इस क्रिया के पश्चात् जब रूमाल उन्होंने दिखाया तो रूमाल के इस भाग पर जहां धुंआ छोड़ा गया था, काला दाग पड़ गया था। उन्हें समझते देर न लगी कि कार्बनयुक्त नीला धुंआ शरीर के अंदर इसी तरह जम जाता है।

दादाजी ने और स्पष्ट करते हुए कहा–"बेटे रसोई घर की दीवारों पर धुंए की कालिख जैसे जमती जाती है, ठीक उसी तरह शरीर के अंदर कालिख जमती जाती है जिससे श्वास नलिका में रुकावट आती है और श्वास रोग हो जाता है।"

"अच्छा दादाजी हमारे पड़ोसी चौबे अंकल पढ़ते-लिखते समय सिगरेट पीते रहते हैं। वे कहते हैं–इससे मन में एकाग्रता आती है और ध्यान पढ़ाई से हटता नहीं है।"

"बेटे, सिगरेट पीते-पीते लिखने-पढ़ने में ध्यान लगता नहीं, बल्कि टूटता है क्योंकि जलती सिगरेट की ओर भी ध्यान लगा रहता है। उसे पीने के लिए बार-बार हाथ उठाकर मुंह तक ले जाने, धुंआ खींचने और धुंआ छोड़ने में ध्यान बंट जाता है। इससे स्मरण शक्ति भी कमजोर होती जाती है।" इतना बताने के बाद दादाजी ने कहा कि "सिगरेट पीना है या नहीं यह फैसला अब तुम्हारे हाथ में है।"

"इसीलिए तो हमने फैसला कर लिया है कि अब कभी भी सिगरेट को नहीं छुयेंगे और आज की गलती के लिए माफी भी चाहते हैं।" तीनों ने संकल्प लिया।

[श्री विजय मिश्रा, 'अमित', प्रकाशन अधिकारी म.प्र.वि.मं., जबलपुर (म.प्र.)- 482008]

पर्यावरण और हम

लेखक : शुकदेव प्रसाद:
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली- 6;
वर्ष : 1989;
पृष्ठ 224:
मूल्य : 90 रुपये.

साढ़े पांच अक्षरों से बने शब्द पर्यावरण से आज बच्चा-बच्चा न केवल परिचित है वरन् उसके प्रति सजग भी होता जा रहा है। लेकिन आज से दस वर्ष पूर्व इसकी महत्ता को आंक लेना और उस पर एक संगोष्ठी आयोजित कर लेना वास्तव में एक सराहनीय कदम था। और संगोष्ठी भी ऐसी जिसमें अपने-अपने क्षेत्र के लगभग 50 महारथियों, जिनमें वैज्ञानिक भी थे, पर्यावरणविद् भी थे, विचारक तथा विज्ञान लेखक भी थे, ने भाग लिया, अपने-अपने लेख प्रस्तुत किये और वे भी हिन्दी में। प्रस्तुत पुस्तक ''पर्यावरण और हम'' उसी संगोष्ठी में प्रस्तुत लेखों का संकलन है।

पर्यावरण के विभिन्न पक्षों को दर्शाने के लिए संगोष्ठी में प्रस्तुत लेखों को अलग-अलग उपखण्डों में बांटा गया है। प्रथम लेख मानव पर्यावरण संगोष्ठी के अध्यक्ष प्रो. रामदेव मिश्र का है जोकि पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को दर्शाता है। इसमें पर्यावरण के विकास का बहुत ही सजीव वर्णन है। अति उपयोगी सभ्यता को आज की इस विषम स्थिति का कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है, ''आज का मानव पर्यावरणीय संसाधनों के अतिशय दोहन में लिप्त है।'' चेतावनी के रूप में वे लिखते हैं, ''विज्ञान ने हमें दो विकल्पों के चौराहे पर खड़ा कर दिया है, एक है विवेक, मितव्ययता और नैतिकता का लम्बा रास्ता तथा दूसरा है विलासिता का सरल मार्ग जिस पर चल कर पर्यावरण तथा मानव जाति का शीघ्र ही सर्वनाश निश्चित है।'' लेख का उपसंहार भी पठनीय है। लोग पारिस्थितिकीविदों से पूछते हैं कि क्या स्वच्छ और अच्छे जीवन के लिए हम पाषाण युग में वापस चले जायें? क्या विज्ञान प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक विकास को हम तिलांजलि दे दें? इन प्रश्नों के उत्तर में उनका कहना है, ''समाधान पीछे जाने में नहीं है। हमें पर्यावरण की रक्षा करनी है। स्वस्थ पर्यावरण जैसे भी बन सके, वही विकास है।''

पुस्तक के प्रथम खण्ड 'पर्यावरण और संस्कृति' में चार लेख हैं जो पर्यावरण के ऐतिहासिक पहलू को उजागर करते हैं।

पुस्तक के दूसरे खण्ड के ग्यारह लेख ''हम और हमारा पर्यावरण'' शीर्षक के अंतर्गत मानव और पर्यावरण की विभिन्न कड़ियों पर प्रकाश डालते हैं। लेखों के शीर्षक इतने रोचक हैं कि उनको पढ़ने से ही मालूम हो जाता है कि अमुक लेख किस विषय में है।

तीसरे खण्ड में प्रदूषण की समस्याएं प्रस्तुत करते हुए तेरह लेख समाहित किये हैं। केवल एक लेख 'पर्यावरण-प्रदूषण', जिसमें सामान्य रूप से प्रदूषण का उल्लेख किया गया है, को छोड़कर शेष सभी लेख विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों को लेकर लिखे गये हैं।

पर्यावरण की विभिन्न समस्याओं, कारणों आदि से तो मानव भली भांति अवगत हो गया है, परन्तु उसका समाधान क्या है? इसी पहलू को उजागर करने के कारण पुस्तक का चौथा खण्ड बहुत महत्वपूर्ण है। इस खण्ड में वायु प्रदूषण की रोकथाम के लिए विभिन्न उपायों की चर्चा है। नगरीय जल-मल का प्रदूषण में बहुत बड़ा हाथ है। उसके शुद्धिकरण में शैवाल का उपयोग कैसे हो? ताजमहल की धूमिल होती आकृति की सुरक्षा के विभिन्न पहलू क्या हैं? इस खण्ड के प्रमुख आकर्षण हैं।

वनों का महत्व सर्वविदित है। पर्यावरण के लिए इनका योग अद्वितीय है। वनों के विभिन्न पहलुओं पर ही लिखे गए हैं पुस्तक के पांचवें खंड 'वानिकी' के पांचों लेख।

अंतिम लेख 'प्रदूषण वस्तुतः मानसिक संकट है' में लेखक ने आज हमारे सम्मुख चार प्रमुख संकटों–ऊर्जा की कमी, खनिज सम्पदा का क्षय, पर्यावरण प्रदूषण और खाद्य समस्या से संबंधित स्थिति का विश्लेषण किया है।

पुस्तक में प्रस्तुत सभी लेख पठनीय एवम् ज्ञानवर्धक हैं। भाषा सुन्दर एवम् सरल है और आवरण पृष्ठ भी मनोहारी है।

संगोष्ठी के आयोजन और पुस्तक के छपने में काफी अन्तराल रहा है लेकिन संयोजक ने लेखों का पुनरावलोकन कर उन्हें अद्यतन बनाने की पूर्ण चेष्टा की है।

पुस्तक के परिशिष्ट में दिया लेखकों का संक्षिप्त परिचय पाठक की उनके प्रति जिज्ञासा-क्षुधा को शांत करता है। इनमें फेलिकस आर. पैट्री का परिचय छूट गया है।

मैं समझता हूं कि विद्यार्थियों व पुस्तकालयों के साथ-साथ यह पुस्तक उन सभी के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी जो पर्यावरण पर ज्ञानवर्धन के इच्छुक हैं।

[डा. बी.एस. अग्रवाल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

डा. जी.पी. फोंडके द्वारा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित
Regd. No. D.(C)-89
Licence No. U. 119

नवम्बर 1990 कार्तिक 1912

मूल्य : 2.50 रुपये

विज्ञान प्रगति

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

जनरुचि की 50 पुस्तकों की एक अनूठी संग्रहणीय शृंखला

मूल्य : 18/-प्रत्येक
डाकखर्च : 5/-प्रत्येक
छः पुस्तकों पर डाकखर्च माफ

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- कलात्मक प्रस्तुतिकरण
- सैकड़ों दुर्लभ चित्र
- वाजिब दाम

विश्व-प्रसिद्ध......

* प्रेरक-प्रसंग
* दुर्घटनाएं
* खोजें
* जनसंहार
* जासूस
* युद्ध
* वैज्ञानिक
* क्रूर हत्यारे
* सभ्यताएं
* ड्रग-माफिया
* भविष्यवाणियां एवं भविष्यवेत्ता
* बैंक डकैतियां व जालसाजियां
* धर्म, मत एवं संप्रदाय
* खोज-यात्राएं
* हस्तियों के प्रेम-प्रसंग
* तख्तापलट की घटनाएं
* रोमांस-कथाएं
* 101 व्यक्तित्व
* भ्रष्ट राजनीतिज्ञ
* अलौकिक रहस्य
* गुप्तचर-संस्थाएं
* राजनैतिक हत्याएं
* आतंकवादी संगठन
* चिकित्सा-पद्धतियां
* सनकी तानाशाह
* खेल और खिलाड़ी
* कुख्यात महिलाएं
* मिथक एवं पुराण-कथाएं
* मांसाहारी व विचित्र पेड़-पौधे
* भयानक रोगों पर विजय
* आध्यात्मिक एवं शैतान-कल्ट्स

शेष 9 पुस्तकें प्रेस में

30 Titles available in English & 5 in Bangla

An abridged edition of GUINNESS BOOK OF WORLD RECORDS

विश्व-प्रसिद्ध
रिकार्ड्स

1. नास्त्रेदमस के अनुसार सन् 1999 में दुनिया खत्म—*भविष्यवाणियां और भविष्यवेत्ता*
2. एक जनसंहार, जिसमें छः करोड़ से भी अधिक लोगों की निर्मम हत्याएं हुईं—*जनसंहार*
3. सोफिया लॉरेन, जैकलीन कैनेडी, मर्लिन मनरो जैसी यौन-देवियाँ—*विलासी सुंदरियां*
4. सरकंडे की नाव से 13,000 मील लंबी तूफानी समुद्र की यात्रा—*रोमांचक कारनामे*
5. जवाहरलाल नेहरु और एडविना माउंटबेटेन की प्रेम-कहानी—*हस्तियों के प्रेम-प्रसंग*
6. हत्यारा हेग, जिसकी प्यास मानव-रक्त पीकर ही बुझती थी—*क्रूर हत्यारे*
7. वीनस फ्लाइट्रैप पौधा, जो करता है जीवित प्राणियों का शिकार—*मांसाहारी पेड़-पौधे*
8. क्लियोपैट्रा, जो 10,000 से भी अधिक लोगों के साथ हमबिस्तर हुई—*कुख्यात महिलाएं*

—यह दुनिया आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय, सनसनीखेज एवं रोमांचक चीजों एवं घटनाओं से भरी पड़ी है—इन सभी के विषय में दुर्लभ सचित्र जानकारी जुटाती है—**विश्व-प्रसिद्ध शृंखला**

—इसकी प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक ऐसा मिनि एनसाइक्लोपीडिया है, जो परम ज्ञानी से लेकर एक औसत पाठक तक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम से जोड़कर उसके ज्ञान-भंडार को बढ़ाता है।

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस-अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांगें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते :-

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006 शोरूम : 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

VAN/PM/8/90

विषय सूची

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का हिन्दी विज्ञान मासिक

विज्ञान प्रगति

वर्ष : 39 नवम्बर : 1990 कार्तिक : 1912 अंक : 11 पूर्णांक : 438

पृष्ठ 10

पृष्ठ 15

पृष्ठ 18
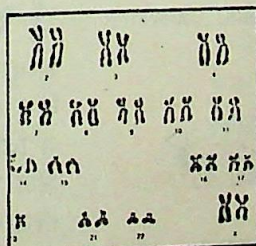
पृष्ठ 21

पृष्ठ 27

पृष्ठ 29

पृष्ठ 32

पृष्ठ 34

कमी पूर्ण हुई

विज्ञान प्रगति का पुराना पाठक और इस परिवार का एक सदस्य होने के नाते मैं ये पत्र लिख रहा हूं। इस पत्रिका की प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं कि यह कैसी है। इसमें प्रकाशित 'हम सुझायें आप बनायें' न पाकर काफी बेचैनी महसूस हुई लेकिन 'कुछ घर की' में 'कैसे छुड़ायें दाग-धब्बे' पाकर उसकी कमी नहीं खली। मैं एक सुझाव प्रस्तुत कर रहा हूं, इस पत्रिका में कोई प्रतियोगिता शुरू करें। इससे पाठकों में जागरुकता बढ़ेगी और ज्ञान भी।

[इकरार अहमद मंसूरी, उसरहवां, रामपुर-जौनपुर (यू.पी.)]

नया परिवर्तन

विज्ञान प्रगति का नियमित पाठक होने के कारण, मुझे यह कहते हुये बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि वर्ष 1990 की प्रत्येक माह की पत्रिकाओं में जो आपने नये स्तम्भों का चयन किया है वे वास्तव में बहुत ही विचारणीय तथा प्रेरणाप्रद हैं। विशेष रूप से इसका मुख्य पृष्ठ ही एक अनदेखे पाठक को अपनी ओर उसे खरीदने हेतु मजबूर करता है।

मैं पुनः विज्ञान प्रगति के सम्पादक मण्डल को साभार बधाई देना चाहूंगा जिन्होंने पत्रिका को इस वर्ष एक नये मोड़ पर लाकर खड़ा किया।

[भूपेन्द्र मोहन रौतेला, डंगवाल भवन, स्टोन लेह कम्पाउण्ड, तल्लीताल, नैनीताल-यू.पी.]

बधाई स्वीकार करें

विज्ञान प्रगति का सितम्बर 1990 का अंक प्राप्त हुआ। इस पत्रिका की प्रशंसा के लिये हमारे शब्द भंडार में कोई शब्द ही नहीं है। आप यूं ही समझ लें कि इस पत्रिका की प्रशंसा करना ही सूर्य की किरण को दिया दिखाने मात्र है।

इस अंक को मैं आद्योपान्त पढ़ गया। इसमें प्रकाशित सभी लेख रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक तो होते ही हैं परन्तु डा. राजनारायण पांडेय एवं डा. चितरंजन भाटिया द्वारा लिखित लेख "विकिरण से भी उन्नत किस्में" काफी सनसनीखेज, रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक लगा। इस लेख में लेखक ने जिस सशक्तता से विकिरण को समझाकर उन्नत किस्म की फसलें, फलवाले पौधे तथा आर्नामेन्टल पौधे की बातें समझायी हैं, वह लेखक के ज्ञान की गहरी पैठ की परिचायक हैं। इस सनसनी खेज, रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक जानकारी देने हेतु डा. राजनारायण पांडेय तथा डा. चितरंजन भाटिया को हार्दिक बधाई।

[ख्वाजा असलमुज्जमां व ख्वाजा असद आलम, जी.टी. रोड, हमज़ापुर, शेरघाटी, गया (बिहार)]

बेजोड़ पत्रिका

सितम्बर 1990 का अंक मिला। यह अंक काफी रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक लगा। विज्ञान प्रगति की जितनी भी प्रशंसा की जाये उतनी ही कम होगी। अब रंगीन फोटो से तो चार चांद लग गये हैं। विशेषकर आमुख कथा—कांटों में भी है सौन्दर्य, पृथ्वी की कहानी, मिट्टी कैसे बनी?, कैसे छुड़ायें दाग-धब्बे, गणित मनोरंजन, प्रश्न मंच और खतरनाक रोग है मिर्गी काफी रोचक लगे। इस अंक को देखकर एवं सम्पूर्ण सामग्री पढ़कर मैं यह सोच पाने में मजबूर हूं कि इसकी प्रशंसा किस प्रकार प्रकट करूं। वास्तव में यह काफी बेजोड़ पत्रिका है। इससे हमें तथा हमारे कई मित्रों को बहुत लाभ हो रहा है। यह इसके सफल सम्पादकीयता का सूचक है।

[मणि शंकर प्रसाद, बारिडीह, जमशेदपुर (बिहार)]

श्रृंखला प्रकाशित करें

विज्ञान प्रगति का सितम्बर 1990 अंक प्राप्त हुआ। मैं इसका नियमित पाठक हूं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह अपने आप में एक संपूर्ण पत्रिका है जो भारत जैसे देश के लिये ज्ञानवर्द्धक जानकारी देने में अपने कसौटी पर खरी उतरी है।

विज्ञान गल्प 'धर्मपुत्र' में विज्ञान का संबंध भावनात्मक विचारों से जोड़ा है। आमुख कथा 'कांटों में भी है सौन्दर्य' काफी रोचक था। लेख कैसे छुड़ाएं दाग धब्बे कपड़ों से दाग धब्बों को छुड़ाने के लि खोजपूर्ण प्रस्तुति ज्ञानवर्द्धन रही।

मेरा यह सुझाव है कि इसमें भौतिकी वैज्ञानिकों के जीवन और उसके आविष्कार के बारे में एक विस्तृत लेखों की श्रृंखला प्रकाशित करें ताकि हम वैज्ञानिकों के जीवन और कार्यकलापों के बारे में जान सकें।

[जितेन्द्र प्रसाद सिंह, V/550, विद्यापुरी कंकड़बाग, पटना- 800020]

सबसे सुन्दर अंक

विज्ञान प्रगति का सितम्बर अं जल्दी ही प्राप्त हुआ जिसका आवरण पृष्ठ मंत्रमुग्ध कर देने वाला था आशा के अनुरूप अंक ने भी मंत्रमुग्ध कर दिया। 'कांटों में भी है सौन्दर्य' लेख विशे पसन्द आया एवं कैक्टस की कुछ न जातियों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई मिट्टी कैसे बनी लेख ने काफी ज्ञानवर्द्ध किया। मिर्गी के बारे में अप्राप्य जानकारी के लिये नाडकर्णी जी को असीम बधाइयां अंक में हम सुझायें आप बनायें की कमी ने निराश किया। यह अंक अब तक पढ़े गये अंकों में सर्वश्रेष्ठ प्रतीत हुआ।

[जितेन्द्र राय, सुपुत्र श्री हरीराम भारती, ग्रा धनौरा, मुरादाबाद, यू.पी.]

विज्ञान गल्प देते रहें

सितम्बर 1990 का अंक पढ़ क बहुत खुशी हुई कि इस अंक में आमुख कथा, चित्र कथा, पृथ्वी की कहानी कुछ घर की और पिछले अंक और इस अंक में विज्ञान गल्प 'धर्मपुत्र' जैसे ज्ञानवर्द्धक लेख पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि धीरे-धीरे विज्ञान के साथ यह पत्रिका भी और अधिक आकर्षक होती जा रही है। मेरा आग्रह है कि 'विज्ञान गल्प' में धर्मपुत्र की तरह ज्ञानवर्द्धक कहानी देते रहें। इस पत्रिका में प्रतियोगिता संबंधी प्रश्न भी दिया करें। आपकी इस पत्रिका की जितनी भी प्रशंसा करूं वह कम है। इस पत्रिका को मैं हाथ में लेता हूं तो एक ही सांस में पढ़ डालता हूं।

[राज कुमार सिंह, बांध रसालपुर, इस्लामपुर नालन्दा- 801303 (बिहार)]

विज्ञान प्रगति

नवंबर 1990

प्रमुख सम्पादक
डा. जी.पी. फोंडके
सम्पादक
श्रीमती दीक्षा बिष्ट
सम्पादन सहायक
ओम प्रकाश मित्तल
कला अधिकारी
दलबीर सिंह वर्मा
प्रोडक्शन अधिकारी
रत्नाम्बर दत्त जोशी
बिक्री और वितरण अधिकारी
आर.पी. गुलाटी
टी. गोपाल कृष्ण
एल.के. चोपड़ा
मो. आसीफ अख्तर
सहायक
फूल चन्द
बी.एस. शर्मा
आवरण
नीरू शर्मा

टेलीफोन : 585359 और 586301
लेखकों के कथनों और मतों के लिये प्रकाशन और सूचना निदेशालय उत्तरदायी नहीं है।
एक अंक का मूल्य : 2.50 रुपये
वार्षिक मूल्य : 25.00 रुपये

आज के प्रगति के पथ पर दौड़ते वैज्ञानिक युग में विज्ञान ने मानव जीवन के रहन-सहन को उच्चस्तरीय और बहुत आसान बना दिया है। रसोई में लकड़ी के चूल्हे का स्थान गैस ने लिया है तो सिलबट्टे का मिक्सर ग्राइंडर ने, ठंडी हवा के लिये हस्त चालित पंखों का स्थान बिजली चालित पंखों, कूलरों यहां तक कि एयरकंडीशनरों ने ले लिया है। साथ-साथ घर बैठे आपका मनोरंजन कर रहा है टेलीविजन और यदि आपके पास वीडियो भी है तो चल चित्रों का आनन्द आप घर पर लेटे-लेटे भी खूब उठा सकते हैं, या यों कहिये उठाते हैं।

लेकिन एक चीज ऐसी है जिसे हम इक्कीसवीं सदी में जाने के बाद भी नहीं छोड़ पायेगें। जानते हैं क्या? नहीं! वह चीज है 'आतिशबाजी' जिसका इतिहास काफी पुराना है। प्राचीन काल में भी आतिशबाजी का प्रयोग विभिन्न रूपों में होता रहा है। दीपावली तो हिन्दुओं का प्रमुख त्यौहार है जिसमें घर-घर में पारम्परिक रिवाज के तौर पर तरह-तरह की आतिशबाजी छोड़ी जाती है। लेकिन आपको जानकर आश्चर्य होग कि यूरोप जैसे देश में चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में पटाखे छोड़े जाने का उल्लेख मिलता है। द्वितीय विश्व युद्ध में भी अग्निबम के उपयोग का उल्लेख है जिसके प्रयोग से लगी आग से जानमाल की बहुत अधिक क्षति हुई थी। वैसे भी प्राचीन काल से इनका सिग्नल के रूप में उपयोग होता रहा है। इन्हीं अतिशबाजियों के रसायन की जानकारी आप तक पहुंचाने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे कृषि प्रेमी पाठकों को पत्रिका में कृषि से संबंधित लेखों के प्रकाशन न होने की शिकायत है। उनके लिये प्रस्तुत है धान पर एक लेख, जो पढ़े लिखे बेरोजगार किसानों को संभवतः रोजगार दिलाने में सहायक हो सकता है।

पत्रिका की प्रशंशा, सुझाव व समालोचना से संबंधित सैकड़ों पत्र हमें प्राप्त हो रहे हैं। 48 पृष्ठों वाली इस पत्रिका के माध्यम से जहां तक हो सके अधिक से अधिक जानकारी आप तक पहुंचाने का प्रयास हम करते हैं और आशा करते हैं कि आपके सुझावों के अनुरूप पत्रिका के आगामी अंकों में हम नये-नये स्तम्भों का समावेश कर पाने में समर्थ होंगे।

दीपावली के पावन परम अवसर पर शुभकामनाएं।

ग्राहकों के लिए सूचना

विज्ञान प्रगति की एक प्रति का मूल्य 2.50 रुपये है। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य 25.00 रुपये, द्विवार्षिक मूल्य 40.00 रुपये, त्रिवार्षिक मूल्य 60.00 रुपये हैं। अर्थात् आप **एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष का ग्राहक बनकर क्रमशः 5.00 रुपये 20.00 रुपये एवं 30.00 रुपये की बचत कर सकते हैं।** चन्दे की राशि अग्रिम रूप से मनी आर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा **प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय**, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-110012 को भेजी जानी चाहिये,

विज्ञान प्रगति की पहली प्रति वार्षिक/द्विवार्षिक/त्रिवार्षिक ग्राहकों को, अगर वे चाहते हैं तब वी.पी.पी. से भेजी जा सकती है। वी.पी.पी. छुड़ाते समय एक/दो/तीन वर्ष के चन्दें की पूरी राशि तथा वी.पी.पी. शुल्क देना होगा।

चैक भेजते समय दिल्ली के बाहर के चैक पर, कृपया बैंक कमीशन 3.50 रु. भी जोड़ लें।

ग्राहक फार्म

मेरा नाम विज्ञान प्रगति के ग्राहकों/नए ग्राहकों की सूची में वर्ष के लिए (मास.... 199 से... 199 तक दर्ज कर लीजिए। इसके लिए मनी आर्डर/बैंक ड्राफ्ट

क्रमांक................दिनांक.....................से

"प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी.एस.आई.आर.," नई दिल्ली-110 012 के नाम भेजे जा रहे हैं।

-हस्ताक्षर

पूरा पता ______________________

____

____

____

वरिष्ठ बिक्री और वितरण अधिकारी,
'विज्ञान प्रगति'
पी.आई.डी. हिलसाईड रोड,
नई दिल्ली-110012

दीक्षा बिष्ट

दीपावली जैसा चमक दमक वाला त्यौहार और उस पर पटाखों या आतिशबाजी की बहार, बस! रौनक तो देखते ही बनती है। हर किसी के लिये हर तरह की आतिशबाजियां हैं, छोटे-छोटे बच्चे, जो पटाखों की आवाज से डरते हैं, उनके लिये फुलझड़ियां हैं, हैंगर हैं, सांप हैं। थोड़े बड़े बच्चे अनार, चर्खड़ी छोड़ने के साथ-साथ आकाश बाण (राकेट) बम, पटाखे छोड़ने में माहिर हो जाते हैं। उनके लिये तो आतिशबाजियों की भरमार है। कई वयस्क भी पटाखे छोड़ने के बड़े शौकीन होते हैं और शौकीन लोग तो हर तरह के पटाखे छोड़ते हैं।

आतिशबाजियां सब लोग छुड़ाते हैं लेकिन क्या कभी आपने सोचा है कि इनमें होता क्या है, ये कैसे बनती हैं, कोई पटाखे जोर की आवाज से बजते हैं तो अनार सनसनाती हुई चमकीली रंगीन चिंगारियां कई मीटर की ऊंचाई तक पहुंचाते हैं।

चर्खड़ी रंगीन चिंगारियों के साथ जमीन पर इधर से उधर नाचती रहती है तो राकेट दनदनाते हुये आकाश में जाकर रंग-बिरंगे गोले छोड़ता है। बाद में धमाके की आवाज करते हुए फटते हैं, ये गोले। ऐसे ही कई तरह के पटाखे बाजार में मिलते हैं। जिन्हें विभिन्न प्रान्तों में संभवतः अलग-अलग नाम से भी पुकारा जाता है।

ये सारी आतिशबाजियां प्रायः मनोरंजन के लिये प्रयोग में लाई जाती हैं लेकिन कभी-कभी इनका उपयोग सिग्नल आदि के लिये भी किया जाता है। इन आतिशबाजियों में कुछ केवल रोशनी या धुआं छोड़ती हैं तो कुछ केवल रोशनी के साथ आवाज करती हैं और कुछ तो रोशनी, धुंआ और आवाज तीनों ही उत्पन्न करती हैं। आतिशबाजियों के निर्माण तथा उपयोग की तकनीक को "पायरोटैक्नीक या आतिशबाजी या अग्निक्रीड़ा" कहते हैं।

आतिशबाजियों के आविष्कार का श्रेय प्रायः चीनियों को दिया जाता है लेकिन इसके, आज तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिले हैं। आग्नेय अस्त्रों जैसे राइफल, बन्दूक, पिस्तौल, तोप आदि के प्रयोग से भी लगभग 50 वर्ष पहले, यूरोप में चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पटाखे प्रयोग में लाये जाते थे।

क्या है आतिशबाजी का रसायन?

एक आतिशबाजी के कवच या खोल (जिसके अन्दर विस्फोटक सामग्री भरी जाती है) का भार लगभग 5 से 6 पौंड के बीच होता है लेकिन कभी-कभी 40 पौंड तक की आतिशबाजियां भी बनाई जाती हैं। जिनका प्रयोग संभवतः सरकारी या राष्ट्रीय समारोहों में होता है। दिल्ली में गणतंत्र दिवस के समापन समारोह में सांझ के धुंधलके में छोड़ी जाने वाली रंगबिरंगी आतिशबाजियां संभवतः इसी श्रेणी की होती होंगी। अपने भार और आकार दोनों के अनुसार इनके कवचों का व्यास भी 3 से 12 इंच तक होता है, उनके छोड़े जाने पर उनके दृष्टिगोचर होने वाले प्रभावों के अनुसार ही इनके कवचों का नामकरण भी किया गया है। कुछ जो छूटने के बाद फूलों की सी आकृति बनाते हैं, उन्हें विभिन्न फूलों का नाम दिया गया है जैसे क्राइसैन्थेमम, पियोनी आदि। ऐसे ही अन्य नाम हैं चीते की पूंछ, सांप, फुलझड़ी, चर्खड़ी, आकाशबाण आदि।

सभी आतिशबाजियों में कवच के अन्दर ईंधन और एक आक्सीकारक होता है। जैसे ही इस पर आग लगाई जाती है तो ईंधन और आक्सीकारक लगभग 2200^0 से 3600^0 ताप के बीच आपस में क्रिया करते हैं जिसके फलस्वरूप आतिशबाजी छूटती है।

आतिशबाजियों में साधारण रूप से प्रयोग किये जाने वाले विस्फोटक पदार्थों में डेक्सट्रिन [एक कार्बोहाइड्रेट (कार्नस्टार्च) व्युत्पन्न], चारकोल, रेडगम तथा एलुमीनियम, टाइटैनियम और मैग्नीशियम जैसे धात्विक ईंधन सम्मिलित हैं। चारकोल तथा डेक्सट्रिन तो धीरे-धीरे जलते हैं लेकिन धात्विक ईंधन, क्षणिक, चमकीले विस्फोट उत्पन्न करते हैं। बहुतायत में प्रयोग किये जाने वाले आक्सीकारकों में पोटैशियम परक्लोरेट तथा अमोनियम परक्लोरेट प्रमुख हैं।

विभिन्न यौगिकों को मिलाकर आतिशबाजियों के लिये छः बेसिक या मूल रंग बनाये जा सकते हैं: लाल, सफेद, पीला, हरा, नीला और नारंगी। उदाहरण के तौर पर स्ट्रान्शियम कार्बोनेट से लाल; एलुमीनियम से सफेद या चमकदार सफेद; बेरियम नाइट्रेट अथवा बेरियम क्लोरेट से हरा, ताम्र लवणों तथा क्लोरीन से नीला, सोडियम से पीला तथा लौह से नारंगी रंग मिलता है।

आतिशबाजी के कवच में प्रयुक्त होने वाला दूसरा मुख्य रचक गन पाऊडर या आग्नेय चूर्ण है जो कवच को आकाश की ओर धकेलने और ऊपर हवा में विस्फोट करवाने के लिये प्रयोग किया जाता है। यह गन पाऊडर या ब्लैक पाऊडर, खोजा गया पहला विस्फोटक पदार्थ है जो साल्टपीटर (पोटैशियम नाइट्रेट), गंधक तथा चारकोल (कार्बन) का मिश्रण है।

आतिशबाजी के प्रकार

आतिशबाजियां घरेलू समारोहों में प्रायः मनोरंजन के लिये प्रयोग की जाती हैं और मनोरंजन के लिये प्रयोग लाई जाने वाली आतिशबाजियां कागज के सिलिंडरों में विस्फोटक या ज्वलनशील पदार्थ भर कर बनाई जाती हैं। आतिशबाजी में लगाया जाने वाला कागज, जिसे 'टच पेपर' कहते हैं, पोटैशियम नाइट्रेट में अच्छी तरह भिगो दिया जाता है, जो आतिशबाजी को ज्वलनशील बना देता है, आतिशबाजी में बहुतायत में प्रयोग किया जाने वाला हल्का विस्फोटक पदार्थ 'काला चूर्ण' प्रमुख है। विस्फोट के प्रकार बदलने, चमकदार रोशनी उत्पन्न करने के अन्य प्रभावों हेतु एवं पटाखों को दागने अथवा धकेलने के लिये इस चूर्ण में सामान्य रूप से विभिन्न प्रकार के अनेक पदार्थ भी मिलाये जाते हैं। रंगीन रोशनी के लिये विभिन्न धात्विक चूर्ण तथा पदार्थ इनमें प्रयुक्त होते हैं। 'कालिख पाउडर या लैम्प ब्लैक' यूं तो चमकदार लाल रोशनी पैदा करता है लेकिन साल्टपीटर की अधिक मात्रा मिलाकर इससे गुलाबी रंग भी पैदा किया जा सकता है। इसी प्रकार आर्सेनिक तथा एन्टीमनी के यौगिक चमकदार सफेद रोशनी देते हैं तो कपूर सफेद रोशनी के साथ जलता है।
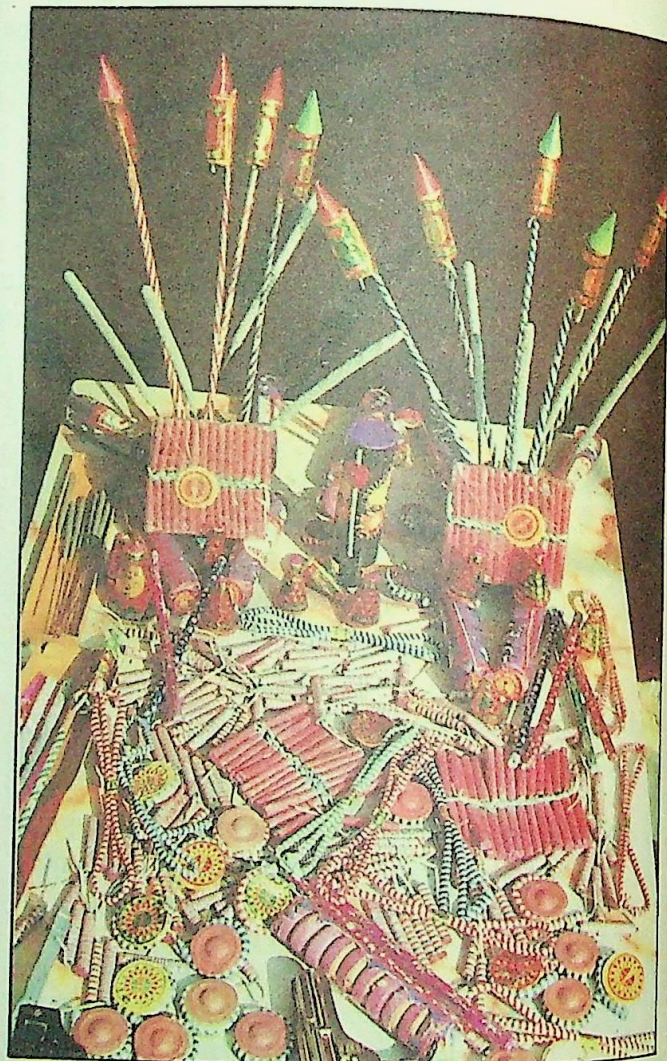
दुकानों में सजी तरह-तरह की आतिशबाजियां

कुछ विशेष प्रकार

लोहे का बुरादा और एलुमीनियम का चूर्ण अत्यधिक चमक के साथ चिंगारियां और रोशनी का फव्वारा सा छोड़ते हैं। चमकीले अनार के लिये पीली रेत प्रयोग में लाई जाती है। सीटी की कर्णवेधी ध्वनि और पटाखे की कानफोड़ी आवाज के लिये पोटैशियम पिक्रेट को जलाया जाता है।

छोटे और बड़े बम, जिनमें राकेट व जमीन पर फूटने वाले बम शामिल हैं, तेज आवाज के साथ फूटते हैं। ये कागज में कालिख चूर्ण अथवा अन्य विस्फोटक पदार्थों को लपेटकर बनाये जाते हैं।

ऐसा ही आकर्षक है 'आकाशबाण या स्काई रॉकेट'। इसमें कागज की एक नली के एक (ऊपरी) सिरे को प्लास्टर से बंद करके उसमें
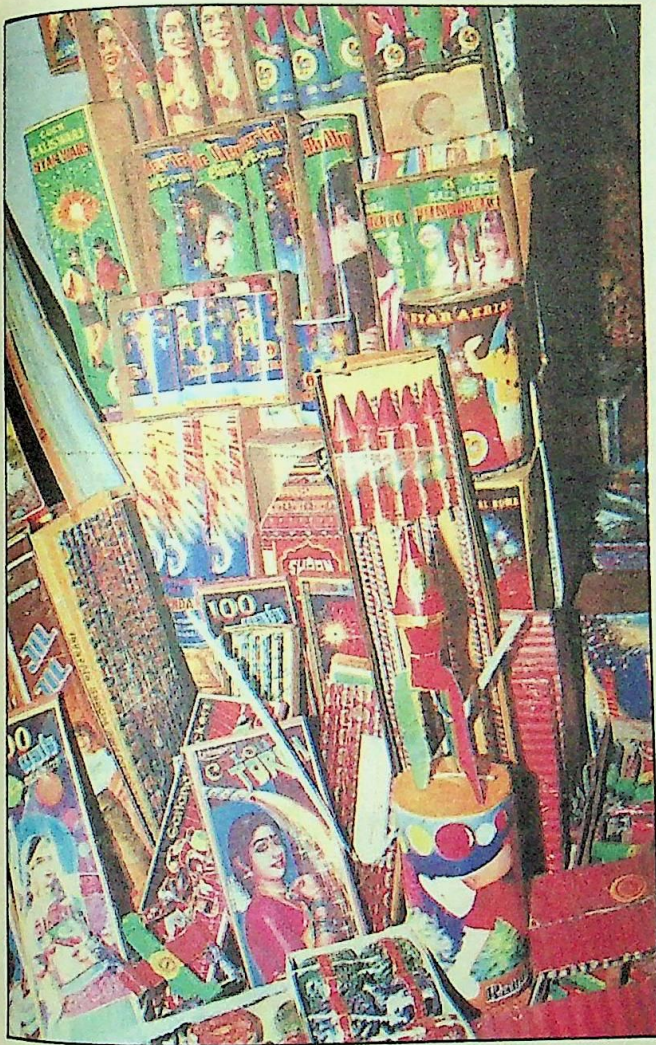
कालिख चूर्ण और अन्य विस्फोटक पदार्थ भर देते हैं। जैसे ही नली में भरा विस्फोटक चूर्ण जलने लगता है तो नली के खुले सिरे से निकलने वाली गर्म गैसें राकेट को जेट की तरह ऊपर की ओर धकेलती हैं और आकाशबाण तेजी से आकाश की ओर चला जाता है। नली को सीधा खड़ा रखने के लिये इसे एक लकड़ी की छोटी छड़ के ऊपरी सिरे पर चिपका दिया जाता है।

इसी आकाशबाण की विस्फोटक नली के ऊपरी सिरे पर जब थोड़ा सा विस्फोटक पदार्थ अथवा ज्वलनशील पदार्थों का मिश्रण भी रख दिया जाता है तो ये पदार्थ वायुमंडल में विस्फोटित होकर तीव्र ध्वनि के साथ-साथ सतरंगी प्रकाश भी उत्पन्न करते हैं। ये रंग-बिरंगे चमकीले गोलों के रूप में इधर-उधर छितर कर तीव्र ध्वनि के साथ फूटते हैं।

ऐसे ही जमीन पर तेजी से गोलाई में घूमने वाली 'चर्खड़ी या जलेबी या पिनव्हील' में छोटे-छोटे राकेटों को श्रेणीबद्ध करके एक लकड़ी के छोटे टुकड़े के चारों तरफ लपेट दिया जाता है और इसके केन्द्र में एक पिन या कील लगाकर इसका आधार बना दिया जाता है इस कील को अक्ष बनाकर यह चारों ओर घूम सकती है।

जैसे ही इस पर आग लगाई जाती है प्रत्येक राकेट के खुले सिरे से निकल रही तीव्र चमकदार ज्वाला चर्खड़ी को जेट नोदन या प्रोपल्शन के कारण तेजी से घुमाने लगती है।

आकर्षक रोमन कैण्डल : इसमें प्रयुक्त होने वाले विस्फोटक पदार्थों को गत्ते की एक नली में रखकर, नली के एक सिरे को प्लास्टर से बंद कर देते हैं। इसमें भरे जाने वाले विस्फोटक पदार्थ में धात्विक चूर्ण मिले कालिख पाऊडर अथवा रंग उत्पन्न करने वाले पदार्थों की गोलियां बनाकर इन्हें आपस में गोंद या चपड़े से चिपका देते हैं। प्रत्येक गोली में एक फ्यूज लगाकर, गोलियों को धीरे-धीरे जलने वाले पदार्थ के साथ मिलाकर नली में भर दिया जाता है। नली में भरने से पहले प्रत्येक गोली के नीचे काले चूर्ण या गन पाऊडर की एक परत चढ़ा दी जाती है।

जैसे ही इस रोमन कैण्डल में आग लगाई जाती है तो धीरे-धीरे जलने वाला पदार्थ आग पकड़ लेता है और सबसे ऊपर स्थित गोली के फ्यूज और गोली के नीचे लगे गन पाऊडर के आग पकड़ते ही गोली नली में से बंदूक की गोली कीतरह निकलकर आकाश की ओर चली जाती है, जो वायु के संपर्क में आकर विस्फोटित होकर रंगबिरंगी रोशनी तथा चिंगारियां उत्पन्न करती है। यह क्रिया तब तक निरन्तर चलती रहती है जब तक कि नली से सारी गोलियां छूट न जायें।

ऐसे ही तरह-तरह के नये-नये पटाखे आज बाजार में उपलब्ध हैं।

उपयोग

आतिशबाजी का उपयोग वैसे तो प्रायः मनोरंजन के लिये ही किया जाता है। लेकिन इनके कुछ व्यावहारिक प्रयोग भी हैं।

ये सेनाओं के लिये बहुत उपयोगी हैं। सैनिक इन्हें सिग्नल, रोशनी, धुंआ और आग लगाने के लिये प्रयोग में लाते हैं। सिग्नल सूचक के रूप में वायु में छोड़ने के लियें इन्हें 'वेरी पिस्तौल' से छोड़ा जाता है। इनसे निकलने वाला रंगीन धुंआ भी सिग्नल सूचक का कार्य करता है।

रात में जहाज से पैराशूट द्वारा उतरने वाले सैनिकों के लिये भी इनकी रोशनी सिग्नल का काम करती है। रात्रि सैनिक आक्रमण में इनका उपयोग सिग्नल के रूप में होता है।

अग्नि या इंसेन्डियरी बम, जिसे आतिश बाजी के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है, से द्वितीय विश्व युद्ध में आग लगने से भारी तबाही मची थी।

आकाशबाणों का प्रयोग करके समुद्र में रास्ता भटक गये जहाजों को जीवन रेखा दिखायी जा सकती है।

यातायात अवरुद्ध होने की स्थिति में स्वचालित वाहनों तथा रेलगाड़ियों को विमान द्वारा आतिशबाजी छोड़ कर खतरे की चेतावनी दी जाती है। इसी प्रकार नावों तथा पानी के जहाजों द्वारा खतरे की सूचना देने में भी इन आतिशबाजियों का प्रयोग किया जाता है।

वैसे तो सभी इन आतिशबाजियों से होने वाली रौनक का भरपूर आनंद लेते हैं लेकिन खेल-खेल में छोड़ी जाने वाली ये आतिशबाजियां और पटाखे कभी जानलेवा भी हो सकते हैं। इसलिये इनको छुड़ाते समय आवश्यक है कुछ सावधानियां बरतना।

सावधानियां

बच्चों को केवल हल्की-फुल्की आतिशबाजियों का प्रयोग करने दें। पटाखे आदि छुड़ाते समय ढीले-ढाले और ज्वलनशील कपड़े बिल्कुल न पहनें। इससे आग लगने का खतरा बना रहता है। सबसे महत्वपूर्ण सावधानी है आतिशबाजी छुड़ाने से पहले एक बाल्टी पानी अवश्य भर कर रख लें ताकि आग भड़कने पर पानी से बुझाई जा सके क्योंकि ऐसे में हुई थोड़ी सी असावधानी रंग में भंग डाल सकती है।

[श्रीमती दीक्षा बिष्ट, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]
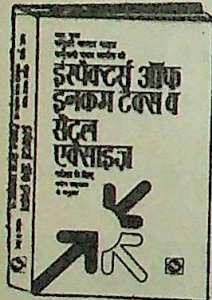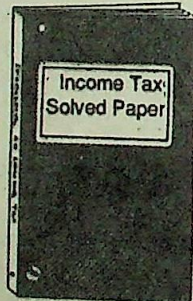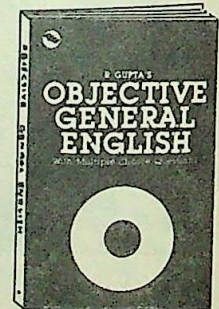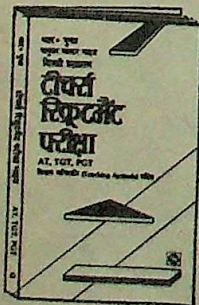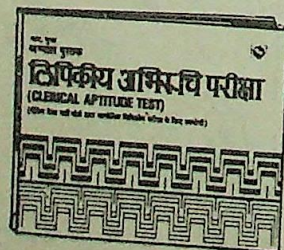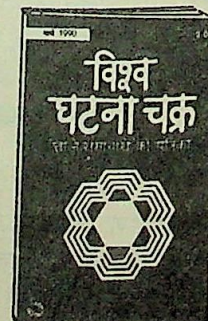
गुणों की खान-धान

रमेश दत्त शर्मा

दक्षिण ताइवान में ताइनान नगर के पास एनपिंग में एक पुराने किले के खण्डहर हैं। यह किला कोई 300 साल पहले डच लोगों ने बनाया था। इसकी ऊपर की दीवारें काफी ढह चुकी हैं, पर बुनियाद अब भी मजबूत है। लगता है इसकी ईंटें जरूर सीमेंट से जमाई गई होंगी। नहीं, नहीं, यही तो खूबी है इस किले की। यह किला चावल के मांड से बनाया गया है। चीनी, प्राचीन काल से ही चावल की मैदा से लेई बनाते रहे हैं। ताइवान में इसका चिनाई का मसाला बनाने में भी प्रयोग होता रहा है। बड़े-बड़े भगौनों में चावल उबालकर उसमें उतनी ही खंडसारी मिलाई जाती है। फिर शंख और सीपियों का चूरा मिलाते हैं। इस तरह बने मसाले को फिर सीमेंट की तरह प्रयोग करते हैं। सूखने पर यह बिलकुल पत्थर की तरह हो जाता है, अर्थात धान से केवल खाने के लिये चावल ही नहीं मिलते, बल्कि इस पौधे के लगभग सभी हिस्से काम में आते हैं।

चावल में 90 प्रतिशत स्टार्च होता है। चावल के स्टार्च में दो रसायन होते हैं—एमाइलोज और एमाइलोपेक्टिन। चावल का दाना तोड़कर, टूटे हिस्से पर आयोडीन लगाने पर यदि लाल या बादामी रंग आ जाय तो समझिये किस्म चिपचिपी, मोमिया (वैक्सी) या ग्लूटिनस चावल वाली है। यदि बैंगनी रंग आये तो किस्म गैर-मोमी, गैर-चिपचिपी और नॉन-ग्लूटिनस है।

इसी तरह चावल के दाने से जहां अनेक प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं, वहीं उससे स्टार्च भी बना सकते हैं। पौधे के दूसरे हिस्से के भी बीसियों उपयोग हैं। दुनियाभर में प्रतिवर्ष लगभग 40 करोड़ टन धान पैदा होता है। अगर इस धान को मालगाड़ी में भरना चाहें, तो उसमें इतने डिब्बे लगेंगे कि धरती के चारों ओर दो चक्कर लग जायें। इतने धान में पौधों से 40 करोड़ टन पुआल और 8 करोड़ टन भूसी प्रतिवर्ष मिल सकती है।

पुआल का कमाल

धान के पुआल में मुख्य तना, पत्ती और उसका डंठल और दाने झाड़ने के बाद बची मंजरी (पेनीकिल) शामिल है। इस तरह जड़ के पास से लेकर बाली की चोटी तक 1-2 मीटर से लेकर, गहरे पानी के तैरते धानों में पुआल 7 मीटर तक लंबा हो सकता है।

धान के पुआल और भूसी में प्रोटीन कम होता है, फिर भी इसे पानी में भिगोकर चूना और अमोनिया आदि से उपचारित करके गाय-भैंस को खिला सकते हैं। पुआल और भूसी दोनों में सिलिका और ऑक्सलेट की उपस्थिति के कारण जानवर वैसे ही इसे मुंह नहीं लगाते। कॉस्टिक सोडे का, पानी में सवा प्रतिशत घोल बनाकर पुआल पर छिड़क कर छोड़ देने से आक्सेलिक अम्ल और सिलिका दोनों ही कम हो जाते हैं। अमोनिया से उपचारित करके इसे प्लास्टिक के थैलों से ढक देने से तो पुआल में प्रोटीन की मात्रा भी बढ़ जाती है। 4 से 5 प्रतिशत यूरिया का घोल भी पुआल पर छिड़क सकते हैं। भारत में शीरा (8 से 10 प्रतिशत), खनिज मिश्रण (1 से 2 प्रतिशत) और नमक (1 प्रतिशत) के साथ यूरिया और फिर पुआल की कुट्टी करके खिलाने से इसे जानवर पचा भी लेते हैं और उन्हें पोषण भी अच्छा मिल जाता है। इस मिश्रण को जमीन में गड्ढा करके या पॉलीथीन के थैलों में भरने से साइलेज या अचार बन जाता है, लेकिन खिलाने से पहले 2 घंटे तक इसे खुली हवा में रखना जरूरी है। बंगला देश और श्रीलंका में किये गये प्रयोगों से पता चला कि यूरिया से उपचारित धान का पुआल खिलाने पर जानवरों में दूध ज्यादा उतरा।

जहां हर साल बाढ़ आती रहती है प्रायः उन इलाकों में चारे की समस्या बड़ी विकट होती है। इस स्थिति में तैरते धानों से बढ़वार के समय ही हरी पत्तियां काट-काट कर जानवरों को खिला सकते हैं। काटने के एक दिन बाद ही नई पत्ती निकल आती हैं। सात दिन में यह पत्ती बड़ी होकर लहराने लगती है। पत्ती काटते रहने से दानों की मात्रा या वजन में कोई अंतर नहीं आता। हां, धान में फूल आने के समय से कोई चार हफ्ते पहले आखिरी बार पत्ती उतारें। उसके बाद कतई नहीं।

पुआल और भूसी से मिट्टी-सुधार

अगली फसल की उपज बढ़ाने के लिए धान के पुआल और भूसी को खेत की मिट्टी में भी मिला सकते हैं। इनमें 40 प्रतिशत कार्बन होता है, जो मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्म जीवों की बढ़वार में मदद करता है। एक चम्मच मिट्टी में अरबों बैक्टीरिया और फंफूदी वगैरह होते हैं जो मिट्टी की जान हैं। पुआल जलाने के बाद बची राख भी अच्छी खाद का काम करती है।

चीन और ताइवान, में यही काम धान की भूसी से लेते हैं। दो टन भूसी प्रति हैक्टर में मिलाते हैं। धान की भूसी जलाकर बनाया गया कोयला, धान की पौद की क्यारी और तंबाकू की नर्सरी की मिट्टी में मिलाते हैं। चीन, जापान और कोरिया में जानवरों का मलमूत्र, पुआल और भूसी में मिलाकर कम्पोस्ट खाद बनाने के लिये 12 हफ्ते तक गड्ढे में दबा देते हैं।

धान की लहलहाती फसल

धान की बाली

पेड़ों की पौद, झाड़ी व सब्जी आदि उगाने की क्यारियों और पौदशालाओं में बीज बोकर ऊपर धान का पुआल बिछा देते हैं। इस पलवार से मिट्टी की नमी बची रहती है।

खुंभी की खेती

खुंभी उगाने के लिए धान का पुआल बेमिसाल है। धान की खुंभी **(वोल्वारीला वोल्वासिआ)** और सीपिया खुंभी **(प्लूरोटस ओस्ट्रिऑटस)** धान के पुआल पर बढ़िया उगती है। अगर पुआल में 20 प्रतिशत धान की कोराई (ब्रान) भी मिला दें तो **प्लूरोटस** और भी तेजी से बढ़ती है। खुंभी उगाने के बाद बचे पुआल को दाने में मिलाकर जानवरों को खिलाने या खाद के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

धान का पुआल और भूसी की बिछावन फिलिपीन्स और भारत में मुर्गियों और बत्तख पालने के लिये तथा आस्ट्रेलिया में घुड़सालों में काम आती है। इस बिछावन को भी बाद में जानवरों के दाने या खाद के लिये प्रयोग कर सकते हैं।

धान के मकान

बालू की जगह सीमेंट में धान की भूसी और मिट्टी मिला कर चिनाई के बड़े-बड़े ब्लाक बना सकते हैं। इसके लिये मिट्टी चौथाई इंच की जाली में से छान लें। इस मिट्टी के एक हिस्से में उससे दुगनी भूसी मिलायें। इस मिश्रण के पांच हिस्से, एक भाग सीमेंट में मिलाकर गारा घोल लें। 10 सेंमी. लंबे और 40 सेंमी. चौड़े खाचें में गारा भर दें और सुखा लें। बीच-बीच में पानी छिड़कर दरार पड़ने से रोकें। बस, चिनाई के लिये पक्के ब्लाक तैयार हैं।

ऐसे ही ब्लाक बनाने के लिये 500° से 700° डिग्री सें. ताप पर भूसी जलाकर बनायी गयी राख आधे सीमेंट की जगह ले सकती है। इसके बाद सीमेंट और राख को आधा-आधा मिलाकर बॉल-मिल में एक साथ पीस लेते हैं। पीसने के लिये पत्थर भी काम में ला सकते हैं।

ईंटें बनाने के लिये 10 भाग मिट्टी में एक भाग धान की भूसी की राख मिलाते हैं। मिट्टी आधी चिकनी और आधी बालू या बजरी वाली हो तो अच्छा रहता है। इस मिट्टी-राख के मिश्रण को सांचों में ढालकर ईंटें बनाकर चार से पांच दिन तक खुली हवा में सुखाते हैं। इसके बाद धान की भूसी जलाकर उसमें दो-तीन दिन तक इन ईंटों को पकाते हैं। इससे बनी राख में भी मिट्टी मिलाकर और ईंटें बनायी जा सकती हैं। इन सभी कार्यों की इंटरनेशनल राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट (इर्री) के वैज्ञानिकों ने पुष्टि की है।

पुआल से कागज भी

फिलिपीन्स के वन विकास संस्थान ने इर्री के साथ मिलकर महिलाओं को धान की पुआल से कागज बनाने का प्रशिक्षण दिया है। एक महिला 8 इंच और 12 इंच लंबे 50 कागज प्रतिदिन बना सकती है। इर्री क्रिसमस और नए साल के कार्ड इसी कागज पर छापता है। अब धान के पुआल की लुगदी में कपास की छीजन आदि मिलाकर

धान की कटाई

लिखने लायक कागज बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। धान के पुआल से कागज बनाने का एक कारखाना भारत (पंजाब) में लगाया गया है।

धान से धन

डा. स्वामिनाथन् ने इर्री में महानिदेशक के कार्यकाल में 'धान से धन' (पैडी फार प्रॉस्पेरिटी) कार्यक्रम शुरू किया था। इसी में धान के पौधे के हर हिस्से से कमाई करना सिखाया जाता है। इसमें धान की खेती के वे तरीके भी शामिल हैं, जिनमें खाद और दवा आदि कम से कम खरीदनी पड़े और प्राकृतिक वस्तुओं के प्रयोग से ही पैदावार बढ़ाकर आमदनी बढ़ायी जाय। जैसे कि किस्म अच्छी चुनें, खाद के लिये **अजोला** या नीली-हरी काई अपनायें, निबोरियों के 'बिटर' (कड़ुआ कीटनाशी यौगिक) का घोल छिड़ककर और प्राकृतिक शत्रुओं से ही फसल के दुश्मन कीड़ों का सफाया करें। सही समय, दूरी, गहराई, मात्रा और सही तरीके से बीज, खाद और पानी का उपयोग करके खर्च में बचत करें। कटाई के बाद भी धान को नुकसान से बचायें। लगातार धान ही उगाने की बजाय बीच में दाल वाली या तिलहनी फसलें उगायें, ताकि मिट्टी भी उपजाऊ बनी रहे और कुछ नगदी भी घर आये। पूरा परिवार रोजगार में लगा रहे, इसके लिए खेती से जुड़े अनेक धंधे अपनाये जा सकते हैं—गाय, भैंस, मुर्गी, बत्तख, खरगोश, मधुमक्खी, मछली, सूअर भी पालिये और खुंभी आदि उगाइये। इससे पेट तो भरेगा ही, भरपूर पोषण भी मिलेगा। नित नई खोजों के कारण धान के पौधे से भी ऊंची आमदनी के आसार बढ़ते ही जा रहे हैं।

भूसी से चलेंगे कंप्यूटर और मोटर

धान की भूसी में सिलिका होता है। उससे बिलगित सिलिकन को शोधित करके 'चिप' और सोलर सैल बनाये जाते हैं। ये कंप्यूटर और अनेक प्रकार की इलेक्ट्रानिक मशीनों में काम आते हैं।

सिलिका बिलगाने के लिए धान की भूसी को उबलते तेजाब में डालकर साफ करके एक ऐसी गैस में रखकर तपाते हैं जो भूसी से कोई क्रिया न करे। गर्म करने से सिलिका खनिज की ऑक्सीजन, कार्बन डाइ आक्साइड गैस बनकर निकल जाती है और 'सिलिकन' बच रहता है। इसकी गोलियां बनाकर फिर मिट्टी में तपाते हैं। धान की भूसी में एलुमीनियम और लोहा पहले ही नहीं होता। अधिकतर सिलिकन पथरीले क्वार्ट्ज से बनाये जाते हैं, जिसमें ये अशुद्धियां होती हैं।

केवल भारत में ही प्रतिवर्ष 130 लाख टन धान की भूसी निकलती है। इससे 26 लाख टन सिलिका मिल सकता है। अमेरिका में धान की भूसी से हर साल एक लाख टन सिलिकन बनाया जा सकता है।

धान के पुआल की राख की अपेक्षा भूसी की राख में ज्यादा सिलिका होता है। इसका कांच और ताम्र चीनी उद्योग में भी फायदा

उठा सकते हैं। धान की भूसी से इटली में 'साइलेक्स' और कनाडा में 'पोरासिल' नाम से सिरेमिक ईंटें बनाई गई हैं।

धान के पुआल और भूसी में खमीर उठाकर इथेनोल या पॉवर एल्कोहल बना सकते हैं, जो मोटर चलाने में पैट्रोल का विकल्प होगा।

धान की भूसी के चूरे से फाइबर-बोर्ड बनाये जा रहे हैं। उच्च ताप और दाब पर बनाया गया 'स्ट्रामिट' हार्डबोर्ड जापान में गर्मी को रोके रखने में काम आ रहा है। इमारती बोर्ड बनाने में लकड़ी के बुरादे या चिप की जगह धान की भूसी मिलाई जा सकती है।

पीने के लिये पानी को शोधित करने के लिये झील या ताल के पानी को पहले नारियल के रेशे से और फिर धान की जली भूसी में से गुजारा जाता है। पानी की ठोस, कीचड़ आदि को रेशा रोक लेता है और बैक्टीरिया भूसी की राख में रह जाते हैं। राख में मौजूद सिलिका और कार्बन यह जौहर दिखाते हैं। इस तरह स्वाद, गंध और रंग में उत्तम, पीने योग्य शुद्ध जल मिल जाता है।

और कुछ नहीं तो बायोगैस बनाइए। धान के पुआल, भूसी, नारियल की पत्तियां, मक्का के खाली भुट्टे, पशुओं का मल-मूत्र, ये सब टंकी में भरकर बायोगैस बनाने के कोरियाई तरीके में ईरी के वैज्ञानिकों ने सुधार किया है। गोबर-पुआल से ज्यादा गैस बनाते हैं, **अजोला**-पुआल।

जापान में धान के पुआल की रस्सियां, थैले और ततामी चटाइयां पुराने जमाने से बनती रही हैं। दवाओं और बीज के डिब्बों में भराई सामग्री के तौर पर और बर्फ की सिल्लियों को गलने से बचाने के लिये लकड़ी के बुरादे की जगह धान की भूसी ले रही है।

ब्रान या गुणों की खान

ब्रान को देशी बोली में 'कोराई' भी कहते हैं। ब्रान और कनी, तेल में धनी हैं। इनमें प्रोटीन और शर्करा तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट और विटामिन-बी के भंडार हैं। मिल में सफेद चावल तैयार करने में ब्रान और कनी दोनों अलग हो जाते हैं। उपयोग से पहले ब्रान का उपचार जरूरी है, नहीं तो खराब हो जाती है। सूखी या गीली तपाई से ब्रान में पाया जाने वालाएंजाइम लाइपेज़ समाप्त हो जाता है। यही है वह, जो ब्रान के तेल को वसा-अम्ल (फैटीएसिड) में बदलकर बदबू पैदा करता है और तेल निकालने लायक नहीं छोड़ता। गरमाने के बाद भी महीने भर में ही ब्रान का तेल निकाल लेना चाहिए।

धान की ब्रान में 15 व 20 प्रतिशत तेल होता है। भारत, जापान और चीन ब्रान के सबसे बड़े तेली हैं। दुनिया भर में हर साल कोई ढाई लाख टन ब्रान का तेल निकाला जाता है। लेकिन विश्व के वनस्पति तेल का यह एक प्रतिशत से भी कम है। भारत ने 1983-84 में धान की ब्रान से दो लाख टन तेल निकाला। इनमें से 40 प्रतिशत ही तलने लायक था। तेल शोधन के बाद ही खाने लायक होता है। तेल में तली चीजें खाई जाती हैं पर तेल कोई नहीं खाता। कच्चे तेल का साबुन, कीटनाशी, फफूंदनाशी दवाएं और जंगनाशी रसायनों के घोलक के रूप में भी इस्तेमाल होता है। भारत में 7-8 प्रतिशत वसा-अम्ल वाले ब्रान के तेल में हाइड्रोजन गैस प्रवाहितकर वनस्पति घी भी बनाते हैं।

अमेरिका में विकसित तकनीक 'क्रो कुकर' द्वारा मिलों में धान से चावल बनाते समय ही इतना घर्षण ताप पैदा करते हैं कि ब्रान का एंजाइम नष्ट हो जाय। इस तरह चावल बनाने की मिलों से 24 घंटे के अंदर ही ब्रान का तेल निकालने की किल्लत खत्म हो गई। विकासशील देशों में पैदा होने वाली ब्रान से 7 लाख टन तलने का तेल बनाया जा सकता है।

कई देशों में चावल मिलें 'राइस मिलफीड' बेचती हैं। इसमें धान की ब्रान पालिश और भूसी का मिश्रण होता है। यह अधिक पोषक है और पक्षी तथा जानवर इसे चाव से खाते हैं। जापान में गायों के हरे चारे में 35 प्रतिशत तक ब्रान की खली मिलायी जाती है।

जब से रेशे वाले आहार पाचन क्रिया के लिए लाभकारी बताये गये हैं, धनी देशों के अमीरों की मेज पर प्रोटीन, खनिज और रेशों के लिए धान की ब्रान और पालिश मिले व्यंजन आने लगे हैं। ब्रान की खली को तपाकर उससे भी पश्चिम में किस्म-किस्म की डबल रोटियां, बिस्कुट और कुकी बनायी जा रही हैं। तेल निकली या साबुत ब्रान से खाने योग्य प्रोटीन निकालने का तरीका भी खोज लिया गया है।

सदियों से जापान के लोग 'ताइकुंजके' के शौकीन रहे हैं। यह ब्रान और नमक में डाला गया सुखाई हुई मूलियों का अचार है। स्वाद बढ़ाने और बैक्टीरिया नष्ट करने के लिये इसमें काली मिर्च भी मिलाते हैं। मूली का यह अचार 2 से 6 महीने तक चलता है।

ब्रान से बी-समूह के विटामिन तथा ब्रान के तेल से जापान में 'ओरिजानॉल' बनाया गया है। यह विटामिन 'ई' जैसा प्रभावकारी है।

तीन भाग ब्रान को एक भाग लकड़ी के बुरादे में मिलाकर 'ईनोकडाके' नामक जापानी खुभियां उगाई जाती हैं।

जापान में ब्रान का तेल निकालने के बाद बची खली को खाद के रूप में (19 प्रतिशत) इस्तेमाल करते हैं। इसमें नाइट्रोजन,फास्फोरस और पोटैशियम तीनों का स्तर अच्छा है।

ब्रान का मोम कड़ा और पालिश बनाने में कार्नूबा वेक्स की जगह काम आ सकता है। चाकलेट और टाफियों पर इसकी परत चढ़ाई जाती है और चुइंगम में भी काम आता है। चमड़ा-उद्योग और मोमबत्ती के अलावा जूतों की क्रीम पालिश, फोटो-फिल्म, चाक वाले रंग, माचिस और कई किस्म की दूसरी पालिशों में भी धान का मोम उपयोग में लाया जाता है।

धान के इतने उपयोग होने के बावजूद इनका फायदा एशिया के किसान नहीं उठा पा रहे हैं, इसके कई कारण हैं। पहला तो यही है कि अधिकांश लोगों को उपयोग का पता ही नहीं है। पता चल भी जाय तो आर्थिक सहायता के अभाव में फैक्ट्रियां खोलना किसान के वश में नहीं है। इसके लिये आवश्यकता है तो सहकारी मिलें खोलने की, जो किसान से कच्चा माल खरीदें और अपनी कमाई में उसे भी भागीदार बनायें।

[डा. रमेश दत्त शर्मा, प्रकाशन एवं सूचना विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली- 110 012]

अंकों के जादूगर दत्तात्रेय रामचंद्र कापरेकर

शुकदेव प्रसाद

दत्तात्रेय रामचन्द्र कापरेकर को हम रामानुजन तो नहीं कह सकते, पर वे भी हैं अंकों के जादूगर। इन्हीं अंकों के खेल में उनको विश्व विश्रुत बना दिया है। कापरेकर बचपन से ही अंकों पर मुग्ध हो गये थे। उन्हें अंकों के खेल में बड़ा मजा आता था। उनके इस शौक ने उन्हें साधारण अध्यापक से गणितज्ञों की दुनिया में पहुंचा दिया। आज कापरेकर का नाम गणितज्ञों के लिये अनजाना नहीं है।

17 जनवरी, 1905 को बम्बई के निकट दहानू में जन्मे कापरेकर जब आठ वर्ष के थे तो उनकी माता का देहावसान हो गया था। उनके पिता, जो पेशे से किसी दफ्तर में लिपिक थे, ने उनकी देखभाल की। उनके पिता की अभिरुचि ज्योतिष में थी, सो उन्होंने बच्चे को भी ज्योतिष सिखाने की कोशिश की और इसी चेष्टा में कापरेकर का परिचय अंकों से हुआ। गणित की पहेलियां उन्हें उत्तेजित कर देती थीं और उन पहेलियों को हल करते-करते वे गणित के अद्भुत, जादुई लोक में पहुंच जाते। अपना अधिकांश समय वे इन्हीं गणितीय गुत्थियों के सुलझाने में व्यतीत कर देते।

विद्यार्थी जीवन में ही, 1927 में, उन्हें गणित में मौलिक शोध के लिये "रैंगलैर पुरुषोत्तम परांजपे गणित पुरस्कार" से सम्मानित किया गया था। कालेज में गणित संबंधी एक मौलिक निबंध लेखन के लिये इन्हें यह पुरस्कार प्रदान किया गया था। फर्ग्युसन कालेज, पुणे से 1929 में उन्होंने बी.एस-सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की और एक स्कूल में अध्यापक हो गये जहां से 1962 में उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। 160 रुपये मासिक वेतन पाने वाले कापरेकर जीवन भर गणित के खेल में दिलचस्पी लेते रहे और उन्होंने कई मौलिक गवेषणाएं की।

उनकी सुप्रसिद्ध खोज "कापरेकर नियतांक" है। उन्होंने 1946 में इसकी खोज की थी। वास्तव में यह नियतांक 6,174 संख्या है। यह एक अचल संख्या है, जो कि किसी गणना क्रम में बार-बार प्रकट होती है। इसे पाने के लिये हमें कोई भी 4 अंकों वाली ऐसी संख्या लेनी पड़ती है, जिसके चारों अंक असम हों यानी एक जैसे न हों, अब इन अंकों को घटते हुये क्रम में रख दें और फिर उन्हें उलट दें ताकि हमें नई संख्या प्राप्त हो जाये। अब पहली संख्या में से नई संख्या को घटा दें। घटाने के पश्चात् जो संख्या प्राप्त हो, उसके साथ भी उपर्युक्त प्रक्रिया की जाये तो हम देखते हैं कि 4 या इससे अधिक चरणों में अचल संख्या 6,174 प्राप्त हो जाती है।

इसे समझने के लिये हम उदाहरण के तौर पर संख्या 7823 को लेते हैं।

मूल संख्या	7823	
पुनर्व्यवस्था	8732	
उलटना	2378	
घटाना (शेष)	6354	प्रथम चरण
पुनर्व्यवस्था	6543	
उलटना	3456	
शेष	3087	द्वितीय चरण
पुनर्व्यवस्था	8730	
उलटना	0378	
शेष	8352	तृतीय चरण
पुनर्व्यवस्था	8532	
उलटना	2358	
शेष	6174	चतुर्थ चरण

इस तरह चतुर्थ चरण में अचल संख्या 6,174 प्राप्त हो गई जो कि **'कापरेकर नियतांक'** है।

आवश्यक नहीं है कि यह नियतांक 4 चरणों या इससे अधिक चरणों में ही प्राप्त हो, इससे कम चरणों में भी इसकी प्राप्ति हो सकती है।

इतना ही नहीं, यदि हम यही प्रक्रिया 'कापरेकर नियतांक' के साथ

करें तो यह हमें प्रथम चरण में ही 'कापरेकर नियतांक' देता है। यथा :

मूल संख्या	6174	
पुनर्व्यवस्था	7641	
उलटना	1467	
शेष	6174	**कापरेकर नियतांक**

वास्तव में यह एक अद्भुत संख्या है, जिसने गणितीय विश्व में कापरेकर को अमर बना दिया है। वस्तुतः कापरेकर के तीन वर्षों के निरन्तर श्रम और अभ्यास का परिणाम है यह नियतांक।

कापरेकर ने सैकड़ों संख्याओं के साथ इस समस्या पर कार्य किया है और उस सिद्धांत की भी खोज की है, जिस पर यह प्रक्रिया आधारित है। कापरेकर ने "मद्रास गणित सम्मेलन" में 1949 में पहली बार इस समस्या पर अपना शोध निबंध प्रस्तुत किया था। **स्क्रिप्टा मैथमेटिका** नामक अमेरिकी शोध पत्रिका ने उसी वर्ष कापरेकर का इस विषय पर निबंध भी छापा था। सैद्धांतिक गणित के क्षेत्र में कापरेकर की यह खोज अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की है।

कापरेकर की एक और महत्वपूर्ण खोज है, जिसे वह 'स्वयंभू संख्या' या 'सेल्फ नंबर' की संज्ञा देते हैं क्योंकि यह संख्या समूह स्वयं उद्भूत है। कापरेकर ने इस संख्या को 'सेल्फ नंबर' नाम दिया है, जो कि किसी अन्य संख्या से जनित नहीं हो सकती है।

उदाहरण के लिये हम कोई भी धनात्मक पूर्ण संख्या लें जैसे कि 7, अब इसके अंकों का योग जोड़ें जो कि इस उदाहरण में 7 ही है। अब योग 14 हुआ, अब इसमें इसके अंकों का योग (1 + 4 = 5) जोड़ें और अब संख्या 19 प्राप्त हुई। यही प्रक्रिया दुहराते चले जायें तो क्रम कुछ इस प्रकार का होगा :–

7-14-19-29-40-44-52-59-73-83-94-107... आदि।

इस क्रम में 14 से लेकर 107 तक की संख्याएं 'जनित संख्या' या 'जेनरेटेड नंबर' कहलाती हैं, क्योंकि ये एक विशेष ढंग से क्रमशः 7 से उपजी हैं और इस ढंग से 7 किसी भी संख्या से जनित नहीं हो सकता, अतः 7 को **सैल्फ नम्बर** कहते हैं।

107 को एक अन्य संख्या 86 से भी निम्न क्रम में उपरोक्त पद्धति से प्राप्त किया जा सकता है। यथा–

86-100-101-103-107... आदि।

107 को 'संधि संख्या' या जंक्शन नंबर कहते हैं क्योंकि 7 और 86 से क्रमशः जनित सारी संख्याएं इसी बिन्दु (107) पर ही मिलती हैं। 7 की ही भांति 86 भी 'स्वयं भू' संख्या है, क्योंकि यह भी किसी अन्य संख्या से जनित नहीं हो सकती। कापरेकर ने स्वयं भू संख्याओं की गणित पर वृहद कार्य किया है। 100 तक के नीचे 13 संख्याएं ऐसी हैं जिन्हें स्वयं भू संख्याओं की संज्ञा दी जाती है। ये संख्याएं क्रमशः 1, 3, 5, 7, 9, 20, 31, 42, 53, 64, 75, 86 और 97 हैं। अपनी कई पुस्तकों में इन संख्याओं की विशेषताओं पर कापरेकर ने प्रकाश डाला है।

'डेमलो संख्यायें' कापरेकर की एक और मनोरंजक खोज है। इसे हम निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं। यथा–

$9^5 = 59049$; और

$999^5 = 995009990004999$

पूछा जा सकता है कि इन उत्पाद संख्याओं में क्या संबंध है? कापरेकर इनके बीच संबंधों का रहस्योद्घाटन करते हैं कि बड़ी संख्या को छोटी संख्या से प्राप्त किया जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिये छोटी संख्या के अंकों को फैलाना होगा और क्रमशः 99 तथा 00 के बीच में उन्हें लिखना होगा। यथा–

99 **5** 00 **9** 99 **0** 00 **4** 99 **9**

इस संख्या में छोटी संख्या के अंक काले टाइप में प्रदर्शित हैं।

ऐसी और भी बहुत सी मनोरंजक गणितीय खोजें कापरेकर के अनुसंधान और अभ्यास का विषय हैं। हाल के वर्षों में उन्होंने "**गांधी शताब्दी जादुई वर्ग**" की खोज की है। इन वर्गों की विशेषता यह है कि पहले वर्गों को उर्ध्व और क्षैतिज स्तंभों में बांट लीजिये और उन खानों में ऐसी संख्यायें भरिये कि किसी भी स्तंभ के अंकों का जोड़ आड़े, तिरछे और ऊपर-नीचे समान आये।

कापरेकर की खोजों ने पिछले 4 दशकों से सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींच रखा है। अपने जादुई अंकों और मनोरंजक गणितीय पहेलियों से बच्चों, बूढ़ों और सभी का वे मनोरंजन करते हैं।

महाराष्ट्र के देवलाली कैम्प नामक छोटे से कस्बे में रह रहे कापरेकर अपनी गणितीय दुनिया में खुशहाल हैं। अपना भोजन वे स्वयं बनाते हैं और अपने वस्त्र भी स्वयं धोते हैं। अपनी जीवन की संचित अल्प बचत और विद्यार्थियों को पढ़ाकर वे अपनी आजीविका का प्रबंध करते हैं। जीवन के 9 वें दशक में प्रवेश कर चुकने पर भी प्रतिदिन 15 घंटों से अधिक समय तक वे गणितीय पहेलियों के सुलझाने में संलग्न रहते हैं।

[श्री शुकदेव प्रसाद, 34, एलनगंज, इलाहाबाद- 2]

छुटकारा मिलेगा इंजेक्शनों से

मधुमेह रोग के उपचार के क्षेत्र में हो रही उपलब्धियों से प्रतीत होता है कि मधुमेह के रोगी अन्य जान लेवा बीमारियों के रोगियों से भाग्यशाली हैं। पहले इन्सुलिन की खोज हुई, जिसके इंजेक्शनों से इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सका। फिर इस हारमोन के निर्माण में महत्वपूर्ण विकास हुआ। पहले यह दवा पशुओं के अग्न्याशय ग्रन्थि से तैयार की जाती थी। अब यह जीन संबंधन से बड़ी मात्रा में तैयार की जा सकती है।

हाल ही के वर्षों में वैज्ञानिकों को मधुमेह रोग से पीड़ित रोगियों में अग्न्याशय ग्रन्थि के प्रत्यारोपण में सफलता मिली है।

कनाडा के वैज्ञानिकों ने दो मधुमेह रोगियों में इन्सुलिन बनाने वाली कोशिकाओं को सफलतापूर्वक प्रत्यारोपित किया है। यह कार्य एडमोन्टन में अल्बर्टा विश्वविद्यालय में नोरमान, नेतीमान के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। प्रत्यारोपण के छः महीने बाद भी इन रोगियों की अग्न्याशय ग्रन्थि ने उनके शरीर की आवश्यकता के अनुरूप इन्सुलिन स्रवित कर, जीने के लिये इंजेक्शनों पर निर्भरता बहुत कम कर दी।

ये कोशिकायें अग्न्याशय में समूह में पायी जाती हैं जिन्हें लांगरहेन्स द्वीप समूह की कोशिकायें कहते हैं। चिकित्सकों ने पहले भी इन्हें प्रत्यारोपित करने का प्रयत्न किया था लेकिन इतने लंबे समय तक इन्हें सुचारु रूप से कार्यरत पहली बार पाया गया। नेतीमान का विश्वास है कि इस तकनीक से मधुमेह के रोगियों को इन्सुलिन के इंजेक्शनों से पूरी तरह छुटकारा मिल जायेगा।

यह मधुमेह रोग है क्या? मधुमेह चयापचयशील (मेटबोलिक) अव्यवस्थाओं का नाम है, जिस में रोगी के रुधिर व मूत्र में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। मनुष्य के अग्न्याशय में इन्सुलिन नामक हारमोन बनता है। इस हारमोन से शर्करा चयापचय नियंत्रित होता है जिससे शरीर में शर्करा का संतुलन बना रहता है तथा यह शर्करा को रक्त वाहिनियों में एकत्रित नहीं होने देता। लेकिन मधुमेह रोगियों में इन्सुलिन पर्याप्त मात्रा में नहीं बनता या शरीर में शर्करा स्तर बनाये रखने के लिये पूरे शरीर में नहीं पहुंचता। ऐसे रोगियों को समय-समय पर इन्सुलिन के इंजेक्शन लगाने पड़ते हैं। इस रोग को नियंत्रित न करने पर अत्यधिक भूख या प्यास लगती है। चपापचय की असफलता से रोगी 'मृत्युशैय्या' की स्थिति में आ जाता है और शीघ्र ही काल का ग्रास बन जाता है।

1921 में टोरोन्टो विश्वविद्यालय के फ्रेडरिख वेन्टिग तथा चार्ल्स बेस्ट द्वारा इन्सुलिन की खोज के बाद मधुमेह रोगियों की संभावित आयु में असाधारण वृद्धि हुई है। यद्यपि नियमित रूप से इन्सुलिन के इंजेक्शन लेने पर भी पूर्णतया उस ढंग से खून में शर्करा की मात्रा नियंत्रित नहीं हो पाती जिस ढंग से यह प्राकृतिक रूप से स्वस्थ मनुष्यों मनुष्यों में होती है। इस कारण मधुमेह रोगी में कभी-कभी हृदय रोग, अंधापन, गुर्दे के कार्य में अव्यवस्था या फिर मानसिक रोग आदि होने की शंका बनी रहती है।

यद्यपि वैज्ञानिकों को अग्न्याशय ग्रन्थि के प्रत्यारोपण में सफलता मिल चुकी है पर इस प्रकार की शल्य चिकित्सा में कुछ खामियां हैं। इस प्रत्यारोपण में मधुमेह के कमजोर रोगियों की मृत्यु हो सकती है, लेकिन नेतीमान के अनुसार कोशिका प्रत्यारोपण साधारणतया सुरक्षित है क्योंकि दोनों तरह के प्रत्यारोपण, अंग तथा कोशिका, के परिणाम लगभग एक से हैं। यद्यपि अंग प्रत्यारोपण की अपेक्षा कोशिका प्रत्यारोपण के विकसित होने में समय अवश्य लगा है लेकिन लाभ अत्यधिक हैं।

[श्री एम.एम.एस. कार्की, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली.]
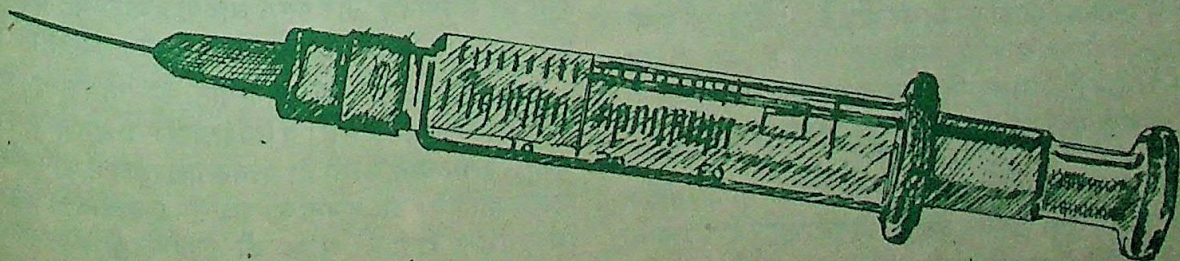
तीस अरब कदम के बाद

बाल फोंडके

प्रकृति में एक ही वर्ग के जीवों में समानता होते हुये भी रंग-रूप व आकार में बहुत भिन्नता पाई जाती है। मनुष्य को ही लीजिये, मूलतः समान होते हुये भी रंग-रूप, आकार आयु तथा बुद्धिमत्ता आदि जैसे अनेक गुणों की दृष्टि से भिन्न होते हैं। लेकिन मनुष्य इच्छाओं तथा आकांक्षाओं के वशीभूत होकर इस चेष्टा में लगा रहता है कि वह सर्वगुण सम्पन्न हो जाये। यहां तक कि अपने भविष्य तक की कल्पना करने लगता है कि उसकी आने वाली पीढ़ी भी अति सुन्दर व सम्पन्न हो। भविष्य को सुनिश्चित करने के लिये मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना करता है, जन्मपत्रियों तथा नक्षत्रों का सहारा लेता है। लेकिन यह सब व्यर्थ है। वैज्ञानिक युग में आज मनुष्य यह ज्ञात करने की कोशिश में लगा हुआ है कि आखिर ऐसे कौन से तत्व हमारे अंदर विद्यमान हैं जो हमारे गुणों व अवगुणों का निर्धारण करते हैं।

पिछली एक-डेढ़ शताब्दियों से हो रहे जैविक अनुसंधानों ने स्पष्टतः यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक मनुष्य के भौतिक गुण, आन्तरिक अंगों के गुण तथा समस्त शारीरिक गुण वास्तव में उसके जन्म से पहले ही यानि गर्भधारण के समय सुनिश्चित हो जाते हैं। ये आनुवंशिक गुण जाइगोट में उसके जनकों की अंडकोशिका तथा शुक्राणु के निषेचन के समय स्थानान्तरित हो जाते हैं और इसी समय जन्म लेने वालीप्रत्येक संतति के आकार व व्यक्तित्व की रूपरेखा बन जाती है। जैसा कि हम जानते हैं कि जीवों के प्रत्येक गुण उनकी कोशिकाओं में उपस्थित जीनों पर निर्भर होते हैं। ये जीनें एक प्राणी विशेष में एक विशेष श्रृंखला में अनुबंधित होती हैं जिसे जीनोम कहते हैं। ये जीनोम ही निषेचन के समय संतति भ्रूण में स्थापित हो जाते हैं जो प्राणियों के गुणों व अवगुणों का निर्धारण करते हैं।

पिछले वर्ष, शरीरक्रियात्मक विज्ञान तथा चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार प्रो. बिशप तथा वारमस को उनकी इसी खोज पर मिला था कि मनुष्य के जीनोम में कुछ ऐसे तत्व पाये जाते हैं जो कैंसर उत्पन्न होने की संभावना को व्यक्त करते हैं। वास्तव में ऐसी बहुत सी बीमारियां हैं, जो कि जैविक क्रिया में विघ्न उत्पन्न हो जाने से हो जाती हैं, इनका निर्धारण भी जीनोम ही करता है। इन्हें जीन संबं[illegible] बीमारियां भी कहते हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपना प्रकोप दिखा[illegible] रहती हैं। यहां तक कि हमारे शरीर की प्रतिरक्षा क्षमता भी इ[illegible] जीनोमों पर ही निर्भर करती है क्योंकि सूक्ष्म जीवियों से उत्पन्न हो[illegible] वाली बीमारियों के विरुद्ध प्रतिरक्षा करने का गुण भी कोशिकाओं [illegible] उपस्थित जीनोम के आदेशों पर ही निर्भर करता है।

मनुष्य के भविष्य का जीन द्वारा नियंत्रित करने के ज्ञान [illegible] वैज्ञानिकों में व्यक्ति विशेष की जन्म से पहले ही प्रकृति में संरच[illegible] जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। हालांकि जीनोम की जटिल संरच[illegible] विस्मयकारक है। एक ओर तो यह आनुवंशिक संदेश गोपनीय है [illegible] जीनों में विशिष्ट आण्विक भाषा में कोडित है, तथा दूसरी ओर य[illegible] सूचना वृहत है और विशेष क्रम में कुल 3 खरब शब्दों के रूप [illegible] अंकित है। यह ठीक उसी प्रकार अंकित है जैसे कि किसी किताब में [illegible] शब्द एक विशेष क्रम में होते हैं तथा यह शब्द अर्धविराम [illegible] पूर्णविराम द्वारा एक समूह में बांध दिये जाते हैं, जो कि एक पूर्ण संदेश का बोध कराते हैं।

उपरोक्त प्रारम्भिक खोजों के आधार पर मनुष्य के जीनोम की जटिल संरचना जानने के लिये जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत ह्यूमेन जीनोम कार्यक्रम नामक एक परियोजना शुरू [illegible] जा रही है। जिसकी सम्पूर्ण रूपरेखा बना ली गई है। इसमें लगभग [illegible] बिलियन अमेरिकी डालर या 60 अरब रुपये की संभावित लाग[illegible] आने का अनुमान है और इसमें आदमी हजारों घंटे काम करेंगे त[illegible] कहीं जाकर इसके सन 2005 तक पूर्ण होने की आशा है।

सभी जीव-जन्तु चाहे वनस्पति हों या जन्तु छोटी-छोटी [illegible] कोशिकाओं के बने होते हैं। ये कोशिकायें एक अंग के रूप में मिलकर अलग-अलग कार्य करती हैं। प्रत्येक कोशिका में आनुवंशिक सूचना निहित होती है। इस सूचना का परिमाप एक जीव से दूसरे जीव त[illegible] भिन्न-भिन्न होता है। मनुष्य की कोशिकाओं में उपस्थित जैविक [illegible] तत्व लगभग 1,00,000 जीनों से मिलकर बनता है। प्रत्येक कोशिका में ये जीन विद्यमान होते हैं लेकिन सभी जीन कोशिका द्वारा उपयोग नहीं किये जाते हैं।
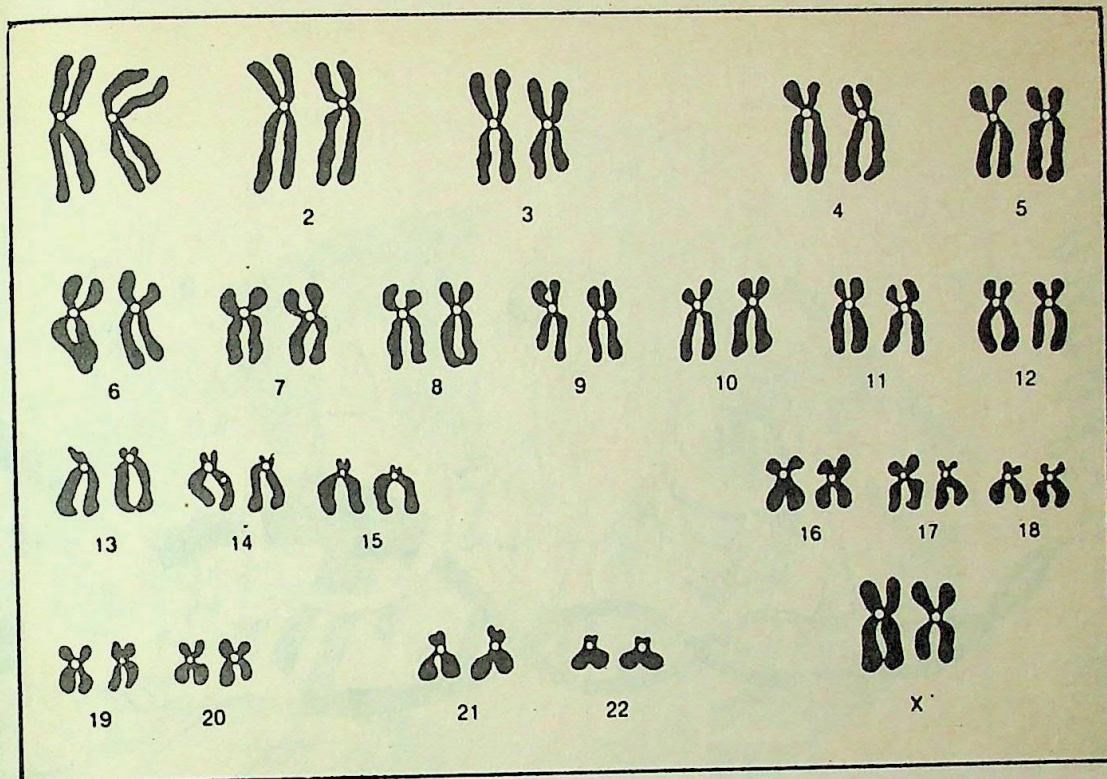
स्त्रियों में क्रोमोसोमों के 23 जोड़ों की समुचित व्यवस्था

ये जीन कोशिका में इधर-उधर बिखरे न होकर एक विशेष क्रम में अनुबंधित होते हैं। जो मोतियों की माला के अनुरूप कोशिका के नाभिक में उपस्थित क्रोमोसोम रूपी धागे में जड़े हुये होते हैं। मनुष्य की कोशिका में क्रोमोसोमों के 23 जोड़े होते हैं। उनमें से 22 जोड़े ऑटोसोम या अलिंगसूत्र कहलाते हैं जिनमें हर जोड़े का प्रतिरूप समान होता है। 23 वां जोड़ा यौन क्रोमोसोम होता है। स्त्री में इस यौन क्रोमोसोम के जोड़े में दोनों 'एक्स' क्रोमोसोम होते हैं और पुरुष में एक 'एक्स' और एक 'वाई'। निषेचन के पश्चात जब युग्मनज में दोनों अलग-अलग यानि एक्स और वाई क्रोमोसोम का समावेश होता है। तो उत्पन्न संतान नर होती है। प्रत्येक जीन, विभिन्न प्रतिरूपों में पाई जाती हैं जिन्हें ऐलीलि रूप कहते हैं। इस एलील रूप की जीन एक क्रोमोसोम पर एक विशेष स्थान पर स्थित होती है तो उस का दूसरा एलील रूप, जोड़े के दूसरे क्रोमोसोम पर ठीक उसी स्थान पर स्थित होता है।

ह्यमेन जीनोम कार्यक्रम का मुख्य तथा प्रथम कार्य, सर्वप्रथम 22 ऑटोसोमों तथा दो यौन क्रोमोसोम पर स्थित जीनों की पहचान तथा उनकी क्रोमोसोम पर स्थिति ज्ञात करना है। यह कार्य वास्तव मे काफी जटिल हैं क्योंकि अभी तक 1,00,000 जीनों में से केवल 2 प्रतिशत जीनों की ही क्रोमोसोम पर विशिष्ट स्थिति ज्ञात की जा सकी है।

इस वृहत परियोजना के शुरू के पांच वर्ष तो जीनों की आनुवंशिक भौगोलिक स्थिति ज्ञात करने में ही निकल जायेंगें। जीनों की क्रोमोसोम पर स्थिति ज्ञात करने को आनुवंशिक मानचित्रण या जेनेटिक मैपिंग कहते हैं और वैज्ञानिकों के सामने मनुष्य की जीनों का आनुवंशिक मानचित्रण एक बहुत बड़ी चुनौती है।

आनुवंशिक मानचित्रण की तकनीक जानने में **एशेरिकिया कोली** बैक्टीरिया जीव वैज्ञानिकों तथा जैवप्रौद्योगिकीविदों के लिये सार्थक सिद्ध हुआ है। इस के अंतर्गत दो उत्परिवर्त बैक्टीरिया, जो परिवर्तित आनुवंशिक गुण दर्शाते हैं, को लेते हैं। इन विभेदों के संगम से प्राप्त संततियों में कुछ में एक जनक के तथा कुछ में दूसरे जनक गुण होते हैं। इस संगम से प्राप्त संततियों में भिन्नता दोनों जनक कोशिकाओं के जीनोमों में एक प्रकार के आदान-प्रदान के कारण होती है। इन आनुवंशिकी पदार्थों का विश्लेषण करने पर आनुवंशिकविद यह पता लगा सकते हैं कि प्रायः कौन-कौन सी जीनें एक साथ वंशागत होती हैं। इन परीक्षणों से पता चला कि जो दो जीनें एक दूसरे के बहुत पास-पास स्थित होती हैं, आनुवंशिकीविदों की भाषा में 'सहलग्न या लिंक्ड' जीन कहलाती हैं और इन जीनों द्वारा किये गये नियंत्रित गुण एक ही संतति में प्रकट होते हैं। इस सहलग्नता का यह अनुमान लगाया गया कि यदि ये जीनें एक दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होंगी तो उनके आदान-प्रदान की संभावना भी कम होगी। उदाहरण के लिए अलग-अलग रंगों के अनेक मोतियों से जड़े दो रिबन लें तथा उनको विभिन्न लंबाई के दो टुकड़ों में बांट कर पुनः दुबारा जोड़ने की कोशिश करें तो वही मोती एक साथ आयेगें जो कि एक दूसरे से जुड़े हैं। इस प्रकार अगर हम उसको अलग -अलग तरह से जोड़ें तो केवल आपस में जुड़े मोतियों की ही बार-बार एक साथ आने की संभावना
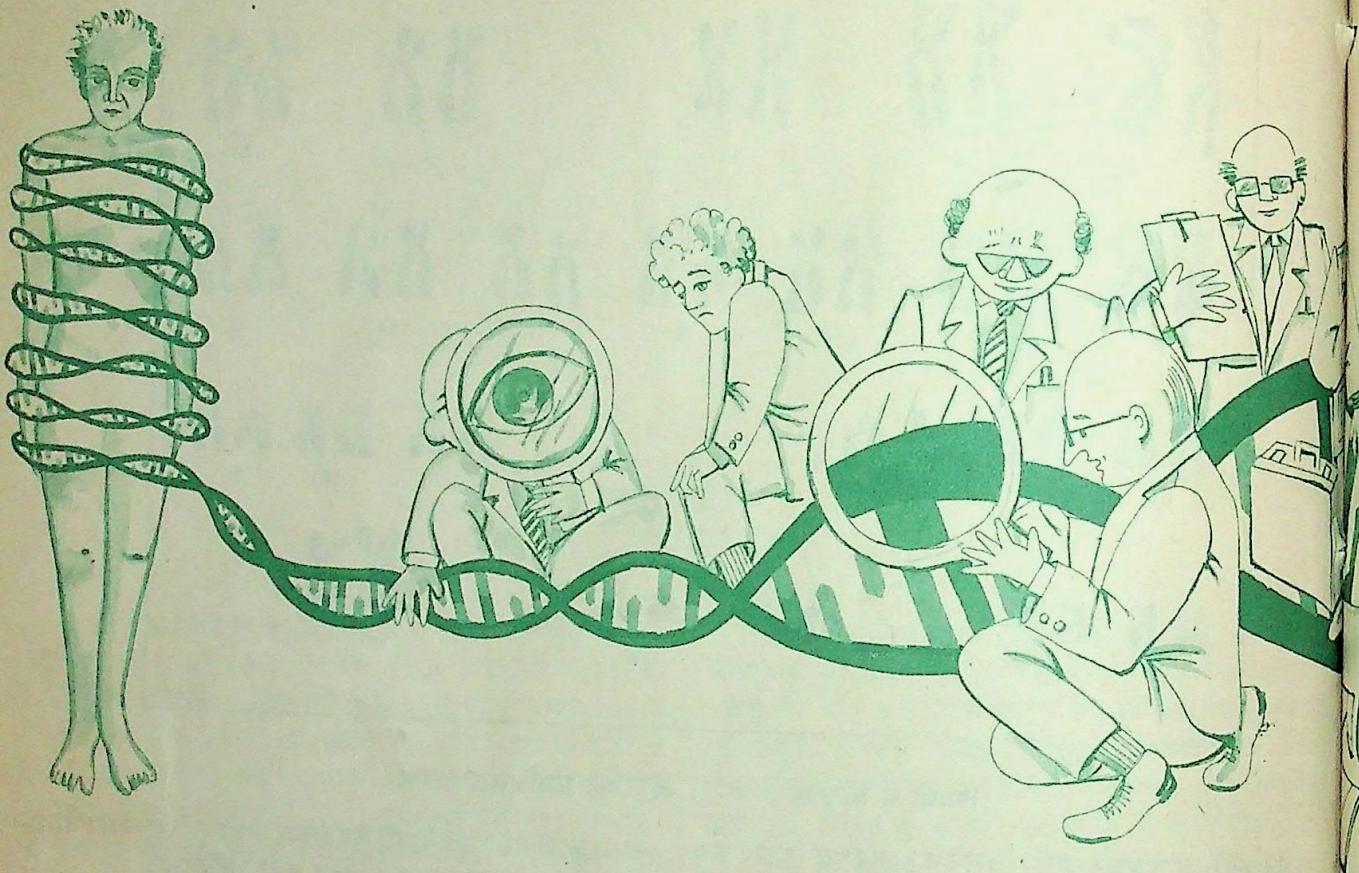
ज्यादा होती है। इस प्रकार जुड़े हुए जीन ही 'सहलग्न जीन' कहलाते हैं।

इस तरह से वंशागत जीन का विश्लेषण करके वैज्ञानिकों ने **ए.कोंली** बैक्टीरिया के आनुवंशिक पदार्थ का संपूर्ण आनुवंशिक मानचित्रण कर लिया है। इसी सिद्धान्त पर ह्यूमेन जीनोम कार्यक्रम के अंतर्गत मनुष्य के आनुवंशिक पदार्थ के आनुवंशिक मानचित्रण ज्ञात करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं लेकिन यह कार्य अत्यधिक जटिल है क्योंकि मनुष्य बैक्टीरिया नहीं है और आसानी से इसके उत्परिवर्त मनुष्य भी इच्छानुसार उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी हमें निराश नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस कार्य को, कोई भी वैज्ञानिक, मनुष्यों में आनुवंशिक पद्धतियों का सामूहिक रूप से अध्ययन करके तथा कुछ वंशागत रोगों और कुछ विशिष्ट आनुवंशिक लक्षणों के अध्ययन से कर सकता है।

कुछ लाक्षणिक गुण, जो हमेशा वंशागत होते हैं, उनकी जीनें एक दूसरे के बहुत पास-पास और संभवत एक ही क्रोमोसोम में स्थित होती हैं। उदाहरण के लिए हीमोफिलिया रोग, जिसमें खून के थक्के नहीं बनते, प्रायः पुरुषों को होता है। इस रोग की वाहक मादा होती है लेकिन मादा में यह बीमारी बहुत कम अथवा यदाकदा ही होती है और मादा, इस रोग की जीन को अपने बच्चों में स्थानान्तरित कर देती हैं। इससे यह माना जा सकता है कि हीमोफिलिया से संबंधित जीन भी उस क्रोमोसोम पर स्थित होती है जिस पर यौन निर्धारित करने वाली जीन स्थित होती हैं। इसी गणना के आधार पर यदि कुछ निश्चित लक्षण प्रायः एक साथ वंशागत होते हैं लेकिन हमेशा नहीं होते तो संगत जीन संभवतः उसी क्रोमोसोम में अपेक्षाकृत उसी के साथ स्थित हो सकती है। लेकिन कुछ लक्षण जो यदा कदा ही एक साथ वंशागत होते हैं तो इस का अर्थ है कि उन गुणों के लिये उत्तरदायी जीनें उसी क्रोमोसोम में लेकिन काफी दूरी पर स्थित होती हैं। इस तरह के परीक्षण विशाल जनसंख्या पर विस्तृत विश्लेषण करके किये जा सकते हैं और वैज्ञानिकों को इस तरह से आनुवंशिक मानचित्रण करने में सफलता मिली है।

इस तरह से किया गया आनुवंशिक मानचित्रण, भौतिक मानचित्रण से भिन्न है। इससे क्रोमोसोम पर जीन की ठीक-ठीक स्थिति तथा उनके बीच की दूरी ज्ञात की जा सकती है। भौतिक मानचित्रण आसान काम नहीं है क्योंकि अभी तो इससे संबंधित तकनीकियों को पूर्ण रूप से दोष रहित विकसित करना है। इस तकनीक के अंतर्गत जीनोमों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटा जाता है। फिर उन पर स्थित विभिन्न जीनों को पहचाना जाता है तथा उनके
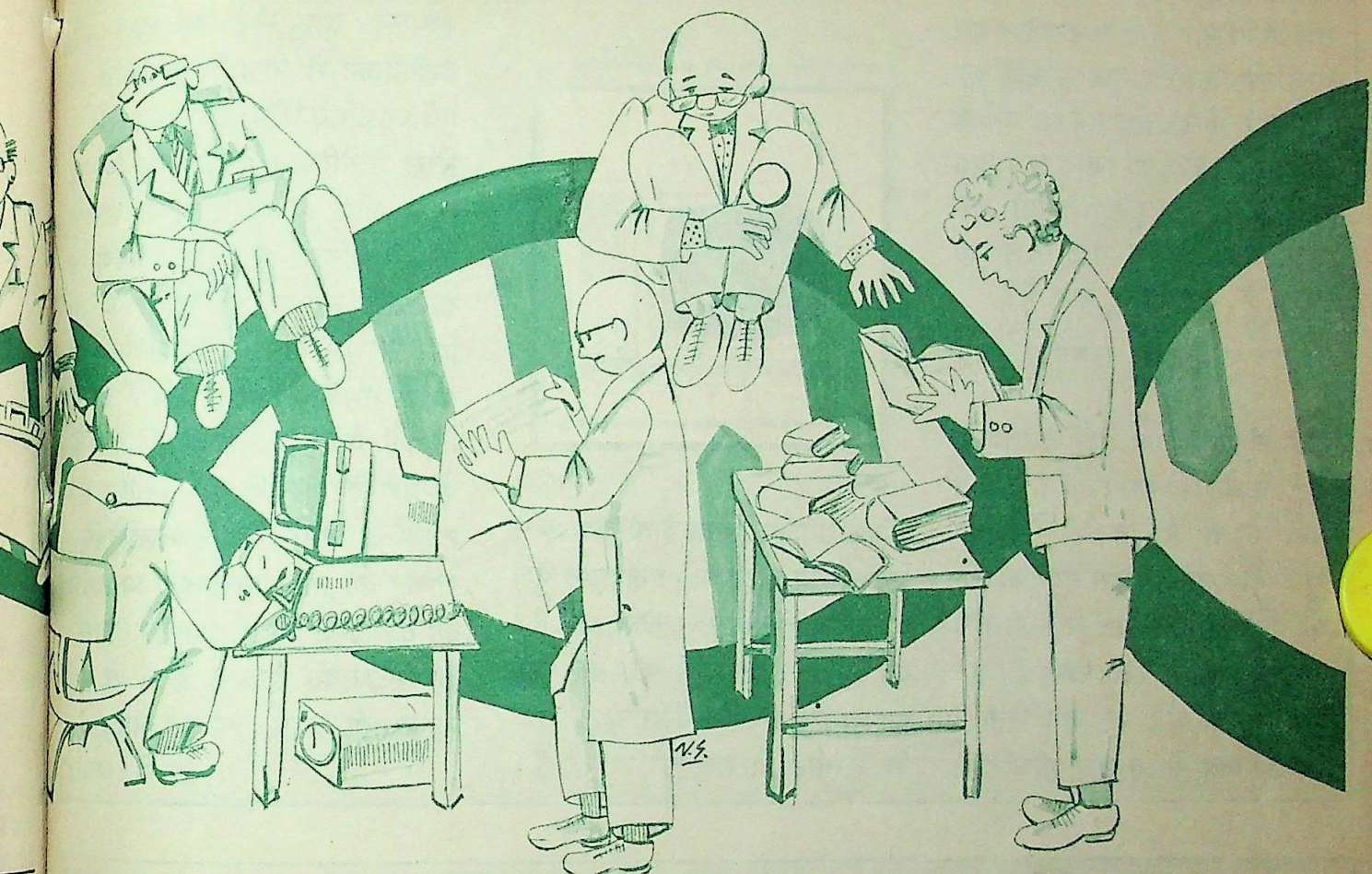
आपसी संबंध ज्ञात किये जाते हैं। यह ठीक उसी प्रकार से किया जाता है जैसे कि एक चित्र को विभिन्न भागों में काट लिया जाता है तथा उन भागों को फिर से ठीक उसी प्रकार जोड़ने पर चित्र को दोबारा बनाया जा सकता है।

भौतिक मानचित्रण में जीनों की सही स्थिति ज्ञात करने के लिये अणु स्तर तक का ज्ञान अर्जित करना जरूरी है क्योंकि क्रोमोसोम दो प्रकार के जटिल अणुओं, प्रोटीन तथा डी एन ए (डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड), से मिलकर बनता है।

डी एन ए अणु में, न्यूक्लिओटाइडों से बनी दो लड़ियां आपस में सर्पिलाकर सीढ़ियों के आकार में गुंथीं हुई होती हैं। इसे डबल हेलिकल संरचना कहते हैं। हर लड़ी में न्यूक्लिओटाइड एक विशेष क्रम में व्यवस्थित होते हैं। न्यूक्लिओटाइड रासायनिक बेसों—एडीनिन, गुआनिन, थाईमिनतथा साइटोसिन से बने होते हैं। इन चार बेसों में से कोई तीन का समूह-त्रिक (ट्रिप्लेट) होता है। एक त्रिक एक संदेश वाहक का कार्य करता है।

भौतिक मानचित्रण के लिए केवल जीन की स्थिति का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उपस्थित जीनों की संरचना का भी ज्ञान जरूरी है जिसके लिए डी एन ए को पहचानना तथा उससे संबंधित डी एन ए का भी ठीक-ठीक क्रम ज्ञात करना आवश्यक है। यह सब ज्ञात करने के बाद यह भी पता लगाना जरूरी है कि प्रत्येक डी एन ए समूह क्या संदेश देता है जिससे कि आवश्यक डी एन ए समूह का समावेश करके अर्थपूर्ण उद्देश्य हासिल किया जा सके। यह सब पढ़कर तो बहुत आसान सा लगता है। इसलिए मनुष्य के 22+2 क्रोमोसोम के प्रत्येक जीन के डी एन ए में न्यूक्लिओटाइड बेसों के समूहों की संरचना के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में सन् 2005 तक का समय लग जायेगा। इस पूरे कार्यक्रम में मुख्य कठिनाई यह है कि अभी तक मनुष्य के शरीर की क्रियाविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कुल जीनोमों में से केवल 10 प्रतिशत की ही पहचान हो सकी है जो कि अनेक जैवक्रियाओं से संबंधित है जबकि उनसे संबंधित जीनोमों में, जो कि अनेक संचालन क्रिया से जुड़े हैं, यह मान लिया गया है कि शेष 90 प्रतिशत भाग की संरचना जानने में, पहचान लिये जायेंगे। इस कठिन कार्य को देखते हुए वैज्ञानिक फिर भी आशा रखते हैं कि निकट भविष्य में इस उलझे हुए जैविक तत्व के बोझ की गुत्थी को वे सुलझा लेगें। आज मनुष्य अपने आपको जानने वाली मंजिल के प्रथम द्वार पर करीब 15 साल व 3 बिलियन सीढ़ियों की दूरी पर खड़ा है।

[डा. बाल फोंडके, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 12]

[प्रस्तुतिः एम. के सिंघल, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय]

रात में टेलिविजन के चलते समय अचानक बिजली गुल हो जाने पर अंधकार में टेलीविजन के पर्दे के मध्य एक छोटा सा बिन्दु चमकता हुआ दिखाई पड़ता है जो उस समय कई मिनट तक चमकता रहता है, यह बिन्दु क्या है?

[ओमप्रकाश कुशवाहा, बर्दवान, प. बंगाल
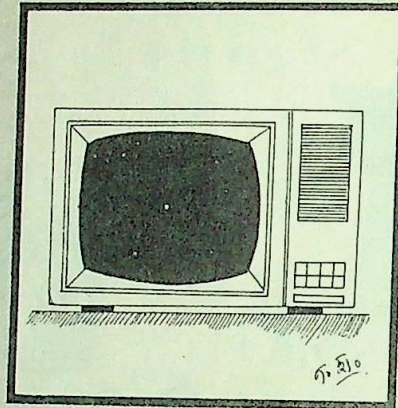
टेलीविजन का पर्दा वास्तव में कैथोड किरण ट्यूब के नाम से जाना जाता है। इसको 'पिक्चर ट्यूब' भी कहते हैं। इस ट्यूब के एक सिरे पर पर्दा और दूसरे सिरे पर कुछ इलेक्ट्रानिक यंत्र लगे रहते हैं। इन यंत्रों में एक यंत्र का नाम होता है कैथोड। जब विद्युत धारा कैथोड से होकर प्रवाहित होती है तो कैथोड से एक विशेष प्रकार की इलेक्ट्रान पुंज या इलेक्ट्रान बीम उत्सर्जित होती है। यह पुंज टेलीविजन के पर्दे को प्रकाशमान करती है जिससे हमें पर्दे पर तस्वीरें दिखाई देने लगती हैं।

सामान्य रूप से कार्य कर रहे टेलीविजन में बिजली गुल होते ही पर्दे पर अंधकार छा जाता है। लेकिन जिस टेलीविजन की कैथोड किरण ट्यूब क्षीण हो जाती है या उसके अर्थिंग परिपथ में किसी कारण से व्यवधान उत्पन्न हो जाता है तो बिजली गुल होने पर टेलीविजन के मध्य चमकता हुआ छोटा बिन्दु दिखाई पड़ता है जो टेलीविजन के परिपथ की खराबी को दर्शाता है। ट्यूब के पीछे स्थित मल्टी पिन साकेट को साफ करके इस व्यवधान को दूर किया जा सकता है। खराबी को यथासमय ठीक न करने से पर्दे पर स्थायी काला धब्बा बन जाता है।

जे.बी. धवन

आवृत्ति माडुलन क्या है?

[मनोज कुमार बोस, सहरसा, बिहार]

रेडिया तथा दूरदर्शन के प्रसारण में उच्च आवृत्ति वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों का निम्न आवृत्ति वाले श्रव्य व दृश्य संकेतों के वाहक के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रसारण में वाहक तरंग श्रव्य व दृश्य संकेतों के अनुसार परिवर्धित या माडुलित कर दी जाती हैं। संकेत प्राप्त करने वाले स्थान पर इन संकेतों को वाहक तरंगों से अलग कर लिया जाता है।

वाहक संकेतों को माडुलित करने की दो प्रक्रिया हैं। पहली इन तरंगों के आयाम (एम्पलीट्यूड) और दूसरा इनकी आवृत्ति (फ्रीक्वेन्सी) को भेजे जाने वाले संकेतों के अनुसार परिवर्तित करना। जब दूसरी विधि का उपयोग करते हैं तो उसे आवृत्ति माडुलन कहते हैं। इस विधि से किये गये प्रसारण आयाम माडुलन के ग्रहण में अन्य विद्युत उपकरणों द्वारा उत्पन्न व्यवधान, रुकावट पैदा करता है लेकिन आवृत्ति माडुलन पर इनका कोई प्रभाव नहीं होता। दूरदर्शन प्रसारण में ध्वनि, आवृत्ति माडुलन तथा तस्वीर, आयाम माडलुन द्वारा भेजी जाती है।

बिमान बासु

प्रश्न मंच के पाठकों से निवेदन

"प्रश्न मंच" में भाग लेने वाले पाठकों से निवेदन है कि वे प्रश्न केवल पोस्टकार्ड पर ही लिख कर भेजें। कूपन लगे लिफाफे व अन्तर्देशीय पत्रों पर भी विचार नहीं किया जायेगा। एक बार में सिर्फ एक ही प्रश्न भेजें। बिना कूपन वाले पोस्टकार्ड को प्रतियोगिता में शामिल नहीं किया जायेगा।

सम्पादक "प्रश्न मंच"
विज्ञान प्रगति
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी.एस.आई.आर., हिलसाइड रोड
नई दिल्ली-110012

अंडा उबलने पर ठोस क्यों हो जाता है?

(राकेश कुमार, गया, बिहार)

अंडे में मुख्य पदार्थ जन्तु प्रोटीन और वसा होते हैं। मुर्गी के अंडे का तीन चौथाई हिस्सा पानी होता है, जिसमें एल्बुमिन प्रोटीन और वसा निलम्बित होते हैं। अंड के सफेद अंश यानि जर्दी में मुख्यतः प्रोटीन होती है जबकि अन्दर के पीले अंश यानि योक में मुख्यतः वसा होती है। अधिक ताप पर या रासायनिक पदार्थों से सभी प्रोटीन जम जाते हैं। जमना एक ऐसी क्रिया होती है जिसमें अणु एक दूसरे के निकट
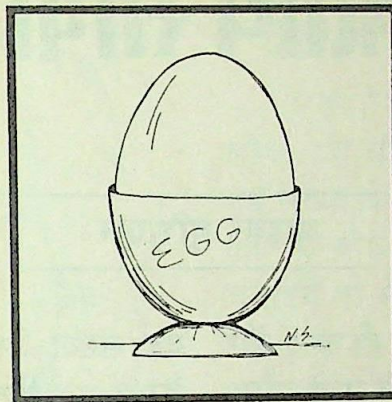
आकर एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप या तो प्रोटीन तरल पदार्थ से अलग हो जाते हैं या फिर पूरा तरल पदार्थ एक जैली के रूप में या फिर ठोस बन जाता है। जब अंडे को उबाला जाता है तो अधिक ताप से प्रोटीन जमने लगते हैं जिसके फलस्वरूप अंडा ठोस हो जाता है। अंडे के ठोस होने की मात्रा, जिस ताप पर अंडे को उबाला जा रहा है, उस पर निर्भर करती है। यदि अंडे को धीमी आंच (60-65°) पर पकाया जाये तो एक नरम पदार्थ बन जाता है। यदि इसको अधिक तापमान (100°) पर उबाला जाये तो सफेद एल्बुमिन सख्त और लचीली हो जाती है लेकिन पीले अंश की वसा उसमें उपस्थित प्रोटीन को इतना सख्त नहीं होने देती और यह एक भुरेभुरे ठोस पदार्थ का रूप ले लेती है।

मीनाक्षी

नदी से सागर में प्रवेश करते समय जहाज उछाल क्यों खाता है?

[विवेक श्रीवास्तव, बरमी कालोनी, शहपुरा (मिटौनी)-483 119]
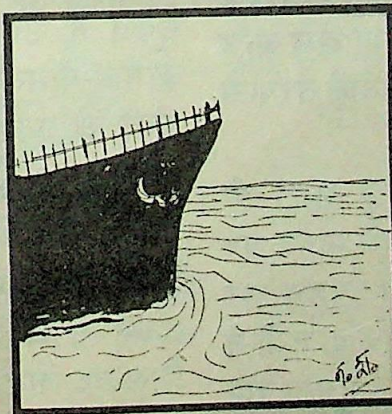
आर्कीमिदीज़ के सिद्धांत के अनुसार पानी में तैरते जहाज के नीचे एक उर्ध्वाधर बल कार्य करता है। यह बल जहाज द्वारा हटाये गये पानी के भार के बराबर होता है। जहाज का भार, हटाये गये पानी के भार से कम होने के कारण ही जहाज तैरता है। इस बल को उत्प्लावन बल कहते हैं। यदि V हटाये गये पानी का आयतन और Y

पानी का आपेक्षिक घनत्व (एक इकाई आयतन में पानी का भार) है तथा F_B उत्प्लावन बल है तो इन तीनों के संबंध को निम्नलिखित उत्प्लावक समीकरण से दर्शाया जाता है।

$$F_B = YV$$

इस समीकरण के अनुसार यदि उत्प्लावन बल बढ़ जाता है तो जहाज ऊपर उठ जाता है और कम होने पर नीचे डूब जाता है। समुद्र के लवणीय पानी का विशिष्ट घनत्व, नदी के पानी के विशिष्ट घनत्व से अधिक होने से जहाज के नीचे उत्प्लावन बल बढ़ जाता है इसलिये जहाज जब नदी से सागर में प्रवेश करता है तो उछाल खाता है और हटाये गये पानी का आयतन कम हो जाता है।

सत्यदेव पवार

गणित बताये सोची हुई संख्या

आइवर यूशिएल

आज तो दादा जी के ठाठ ही कुछ और हैं। कालोनी के बच्चों ने उन्हें अपना मुख्य अतिथि बनाया हुआ है। वास्तव में गणित के जादू जैसे रोचक लगने वाले उनके खेलों ने एक पंथ कई काज किये। इनसे बच्चों की न केवल गणित में रुचि बढ़ी वरन् साथ बैठ-बैठकर वे आपस में एक दूसरे के काफी करीब भी आये जिससे उनमें प्यार बढ़ा।

इस प्यार और अपनत्व से उपजी सहयोग की भावना ने बच्चों को रचनात्मक कार्य करने के लिये प्रेरित किया और उसी का नतीजा है जो आज कालोनी में चाचा नेहरू का जन्म दिन ''बाल दिवस'' के रूप में पहली बार मनाया जा रहा है। दादाजी मुख्य अतिथि हैं और उनका गणित के जादू वाला एक नया खेल आज के कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण है, जिसे उनकी तरफ से सुकेत प्रस्तुत करेगा।

कविता पाठ, लोक नृत्य तथा एक छोटी-सी नाटिका की प्रस्तुति के बाद सुकेत का नाम माइक पर पुकारा गया। आवाज सुनते ही स्टेज पर पहुंच कर उसने बोलना शुरू किया, ''साथियो, आज दादाजी ने कोई एक सूचना आप सब को देनी है। वह सूचना क्या है। यह तो वही बतायेंगे पर यहां प्रस्तुत करने के लिए गणित का जो मनोरंजक खेल उन्होंने मुझे सिखाया है, उसे आप लोगों को शीघ्र बताने जा रहा हूं। हां तो शुरू करते हैं।

''आप मन ही मन चार अंकों की कोई संख्या सोचेंगे और मैं आपसे थोड़ा-सा जोड़ गुणा करा कर वह संख्या आपको बिल्कुल सही-सही बता दूंगा। हैरान मत होइये और तैयार हो जाइये इस खेल के लिये।''

''हां तो दोस्तो! आप में से कोई एक, जो भी इस खेल में शामिल होना चाहे मेहरबानी करके स्टेज पर आ जाये। कोई अंकल या आंटी चाहें तो वे भी आ सकते हैं, कोई भी आ सकता है पर जरा जल्दी।''

वहां उपस्थित लोगों ने कालोनी में रहने वाले इंजीनियर विजय शर्मा से स्टेज पर जाने का अनुरोध किया ताकि गणित में किसी तरह की हेराफेरी या गड़बड़ी की गुंजाइश न रह जाये।

इंजीनियर विजय शर्मा के स्टेज पर पहुंचते ही सुकेत ने उनका अभिवादन किया और उन्हें एक कागज-पेंसिल दी और उनसे निवेदन किया कि वे 4 अंकों की एक संख्या उस कागज पर लिख लें।

शर्मा जी जब लिख चुके तो सुकेत ने फिर कहा, ''इनमें से बायें तरफ वाले पहले दो अंकों को अलग लिख लीजिये और फिर इन दो अंकों से मिलकर बनी संख्या से अगली बड़ी संख्या को इसके ठीक नीचे लिखकर जोड़ लीजिये।''

स्थिति को और स्पष्ट करने के लिये सुकेत ने समझाया, मान लीजिये पहले दो अंकों से आपकी संख्या बनती है 17 तो इसमें अगली बड़ी संख्या 18 जोड़ने से योग होगा 35।

''हो गया'' कह कर मानो इंजीनियर साहब ने जब अपनी हरी झण्डी दिखाई तो सुकेत आगे बढ़ा ''अब
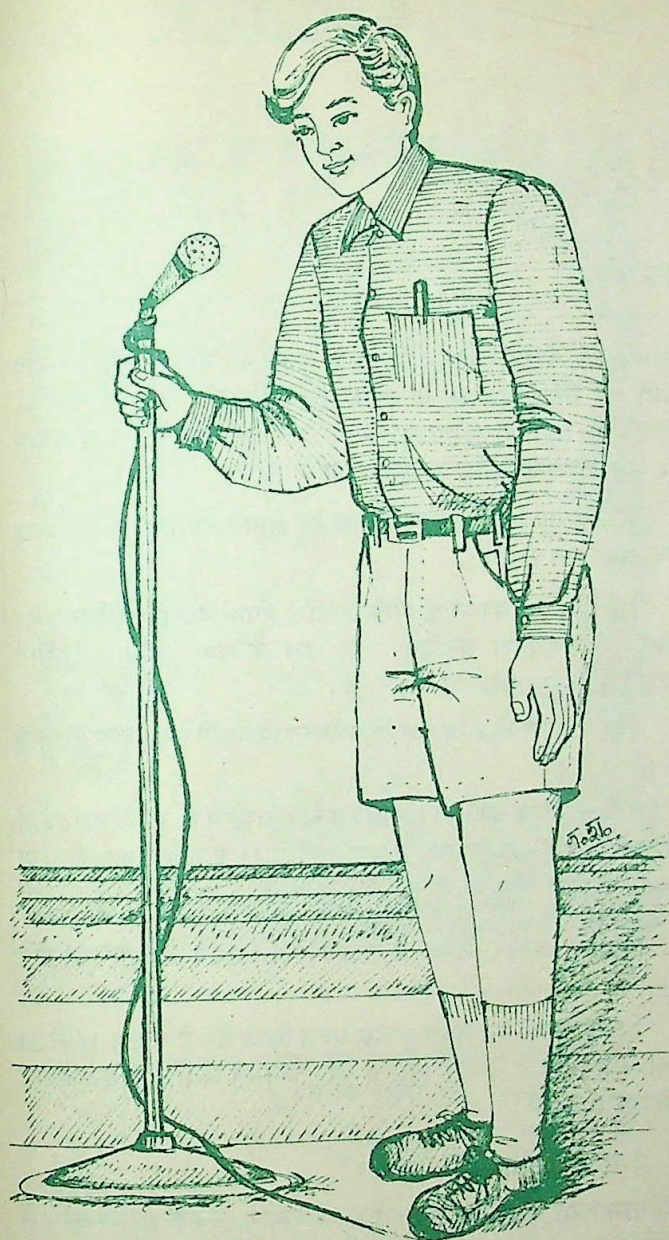
इस योग में 5 का गुणा कर दीजिये।''

''ठीक है, कर दिया'' कह कर विजय साहब ने सुकेत की तरफ देखा मानो पूछ रहे हों कि इससे क्या होगा?

''इस संख्या को चार अंकों की बनाने के लिये इसके दाहिनी ओर 0 लगा दीजिये। ठीक?'' सुकेत के ठीक के जवाब में इंजीनियर साहब ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

सुकेत आगे बोला ''इस संख्या में अपनी मर्जी से कोई भी दो अंकों वाली एक संख्या जोड़ दीजिये। जाहिर है यह संख्या 10 से 99 के बीच ही होगी और यह संख्या आपको मुझे भी बतानी है।''

इंजीनियर साहब बोले ''75''।

''ठीक है।'' सुकेत ने कहा, 'बस एक तकलीफ और। इस अंतिम योगफल में आप सबसे पहले लिखी गई संख्या के दांयी तरफ वाले दो अंकों से बनी संख्या को भी जोड़ दीजिये और योगफल क्या आया मुझे बताइये तो मैं आप द्वारा सबसे पहले सोचकर लिखी गई संख्या बता दूंगा। और वह भी बिल्कुल सही-सही।''

''योगफल है 3415'' इंजीनियर साहब बोले।

सुकेत कुछ क्षण सोचकर इंजीनियर साहब से बोला, ''पहली संख्या है 3290''।

''शाबाश बेटे'' इंजीनियर विजय शर्मा गदगद हो गये और सुकेत की पीठ थपथपाने लगे। दर्शकों ने जोरदार तालियां बजाई। तालियों की आवाज थोड़ी कम हुई तो इंजीनियर साहब बोले, तुमने इसे हल कैसे किया?''

''आपने जो मुझे अंतिम संख्या दी थी यानि—3415 उसमें से मैंने पहले 50 घटाया और फिर घटायी दो अंकों वाली वह संख्या (75), जो आपने 10 से 99 के बीच से सोचकर छांटी थी। इस तरह जवाब आ गया।

3415-50-75 = 3290''

तालियां एक बार फिर बज उठी।

सुकेत के निवेदन पर दादाजी अपनी महत्वपूर्ण सूचना देने मंच पर आ गये और रुंधे स्वर से बोले, ''गणित के खेल में पिछले कई महीनों से शामिल होने वाले बच्चों को मैं इतना ही सूचित करना चाहता हूं कि सिर्फ दिसंबर में ही बस उनके साथ मेरी एक और भेंट होनी है और फिलहाल यही अंतिम होगी। इसलिये दिसंबर के कार्यक्रम में सब लोग इकट्ठे जरूर हो जायें।'' इतना कहते ही दादाजी तेजी से वहां से घर की ओर चल पड़े, शायद वे बहुत उदास हो गये थे।

[श्री आइवर यूशिएल 'शाश्वत', बी- 82, मयूर विहार II, दिल्ली- 110091]

गालों में सूजन: कहीं मम्प्स तो नहीं

सुरेश नाडकर्णी

"नमस्ते, डाक्टर साहब, मैं आपको अपने भाई राजू को दिखाना चाहती हूं। क्या मैं उसको अंदर ले आऊं?"

"हां, हां, ले आओ—अरे, अल्का तुम्हारे भाई को तो मम्प्स हो गये है।"

"मम्प्स! ये मम्-स क्या होता है, डाक्टर?"

"मैं तुम्हें बताऊंगा, पहले तुम इसके गालों को देखो, कितने सूजे हुये हैं।"

"हां, डाक्टर! सूजन के साथ-साथ उसको दर्द भी बहुत है।"

"उसके गाल कोमल भी होने चाहिए, क्या वह अपना मुंह खोल पा रहा है?"

"नहीं डाक्टर, मुंह खोलने में उसे परेशानी होती है। वह कुछ चबा भी नहीं सकता। उसे ठंडे पेय पीने में भी परेशानी होती है।"

"अल्का! ऐसा लग रहा है जैसे तुम अपनी पाठ्य पुस्तक में लिखे हुये लक्षणों का वर्णन कर रही हो। खट्टे पदार्थ और पेय तो उसके दर्द को और भी बढ़ा देते होंगे। ऐसा पैरोटिड ग्रंथियों अथवा कर्णपूर्व ग्रंथियों में क्षोभ के कारण होता है।"

"पैरोटिड ग्रंथियां, ये क्या होती हैं डाक्टर?"

"ये ग्रंथियां,लार ग्रंथियों की तीन जोड़ी ग्रंथियों में सबसे बड़ी और गालों के नीचे स्थित होती हैं। ये मुंह को लार की आपूर्ति करती हैं। और लार पाचन क्रिया में सहायक होती है।"

"मम्प्स की अवस्था में इन ग्रंथियों को क्या हो जाता है?"

"मम्प्स एक संक्रामक रोग है जो एक वाइरस के कारण होता है।"

"वाइरस क्या होता है डाक्टर?"

"वाइरस एक संक्रामक कारक रोग है। जुकाम, छोटी माता, पीलिया तथा अन्य कितने ही रोग वाइरस द्वारा होते हैं।"

"मम्प्स किस वाइरस से होते हैं। क्या इसे मम्प्स वाइरस कहते हैं?"

"तुम इसे मम्प्स वाइरस भी कह सकती हो किन्तु पाठ्य पुस्तकों में इसे **मिक्सोवाइरस पैरोटिडाइटिस** नाम दिया गया है।"

"किन्तु डाक्टर साहब, यह हमारे शरीर में कैसे प्रवेश करता है?"

"यह सबसे पहले हमारे ऊपरी श्वसन तंत्र पर आक्रमण करता है। यदि यह रक्त वाहिकाओं के माध्यम से फैलता है तो इसकी ग्रंथिल संरचनाओं, जैसे पैरोटिड ग्रंथियों, में बढ़ने की प्रवृति होती है। यदि कभी यह सबमैंडिबुलर ग्रंथि, जो निचले जबड़े के कोण के ठीक नीचे स्थित होती है, में प्रवेश कर जाता है, तो पैरोटिड ग्रंथि के स्थान पर सबमैंडिबुलर ग्रंथि में सूजन आ जाती है।"

"लेकिन यह वाइरस कैसे फैलता है। आपने तो बताया था कि यह एक संक्रामक रोग है।"

"यह वाइरस, मम्प्स के रोगी के सीधे संपर्क में आने से फैलता है। संक्रमित लार द्वारा संदूषित सूक्ष्म धूल के कणों अथवा संक्रमित पदार्थों से वायुवाहित हो सकता है।"

"क्या वाइरस के आक्रमण के पश्चात ही किसी को मम्प्स हो जाते हैं।"

"नहीं! हर एक को नहीं। संक्रमित व्यक्तियों में से 30-40 प्रतिशत व्यक्तियों में इसके लक्षण दिखाई नहीं देते। इनको लक्षणहीन या सबक्लीनिकल केस कहते हैं।"

"फिर भी डाक्टर, मम्प्स के लक्षण कितने समय बाद उत्पन्न होते हैं?"

"अल्का, तुमने यह बहुत अच्छा प्रश्न किया है। ये लक्षण 16 से 21 दिनों में प्रगट होते हैं। इस अवधि को उष्मायन अवधि या 'इंकूबेशन पीरियड' कहते हैं।"

"ये लक्षण कौन-से हैं, डाक्टर?"

"सामान्यत: मम्प्स के लक्षण हल्के बुखार, जबड़े के एक कोने में खिंचाव अथवा संकुचन शुरू होते हैं। लेकिन मुंह पर आई सूजन इस ओर ध्यानाकर्षित करती है जैसे तुम्हारे भाई के साथ हुआ है। मम्प्स की शुरुआत पेशियों की ऐंठन से शुरू हो सकती है। जिसे देख कर परिवार के लोग भयभीत हो जाते हैं। कभी-कभी इसकी प्रक्रिया मस्तिष्कावरण या मेनिनजेस पर भी होती है। इसे 'प्रमस्तिष्कीय मम्प्स' कहते हैं। ये मेनिनजाइटिस रोग से सर्वथा भिन्न है।"

"मम्प्स की अवस्था में बुखार कितने डिग्री हो जाता है, डाक्टर?"

"लगभग 100 डिग्री फारेनहाईट (लगभग 38 डिग्री सेल्सियस) लेकिन बहुत ही कम केसों में यह 104 डिग्री फारेनहाईट अथवा 40 डिग्री सेल्सियस तक जा सकता है। इसमें भूख भी लगनी बंद हो जाती है। सिर तथा कमर में दर्द भी शुरू हो जाता है। यह मैं पहले बताना भूल गया था।"
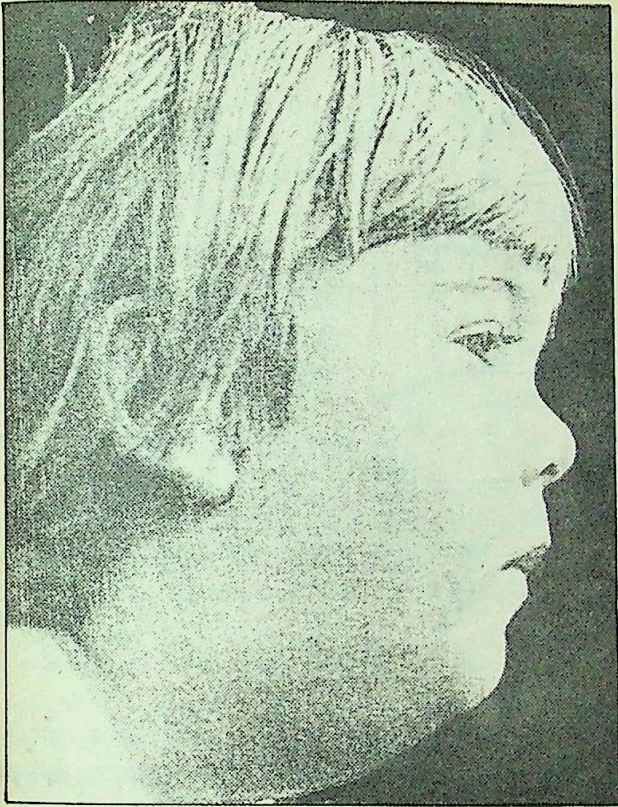
लार ग्रंथि में मम्प्स वाइरस के संक्रमण से गालों में सूजन आ जाती है।

''गालों में सूजन से क्या होता है? इसके बारे में भी कुछ बताइये।''

''पहले दो-तीन दिन तक तो सूजन बढ़ती जाती है, उसके पश्चात कम होने लगती है और छठे अथवा सातवें दिन तक तो पूरी तरह गायब हो जाती है। सूजन प्रायः पहले एक तरफ और फिर दूसरी तरफ आती है। सूजन अधिक से अधिक 12 दिन तक रहती है। कभी-कभी तुरन्त दोनों ओर सूजन आ जाती है। लेकिन कभी-कभी तो ऐसा होता है कि दूसरी ओर जरा-सी भी सूजन नहीं आती।''

''डाक्टर साहब! इसका अर्थ यह हुआ कि आप तो रोगी की शक्ल देख कर ही रोग की पहचान कर लेते होंगे और इसके लिए किसी परीक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती होगी।''

''हां! तुम जो कुछ कह रही हो उसमें थोड़ी बहुत सच्चाई अवश्य है किन्तु हम अपने निदान की पुष्टि करने के लिए रोगी के गालों के भीतरी भाग का परीक्षण अवश्य करते हैं।''

''वहां आप क्या देखते हैं, डाक्टर!''

''स्टेन्सन्स वाहिनी की पैपिला लाल हो जाती है। यह पैपिला ही पैरोटिड ग्रंथि का मुंह में खुलने वाला छिद्र है।''

''मम्प्स जितनी आसानी से हो जाते हैं उतनी ही आसानी से ठीक भी हो जाते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह बहुत ही साधारण संक्रामक रोग है।''

''हां! जो लोग भाग्यशाली हैं उनके लिए मम्प्स रोग साधारण है, अन्यथा मम्प्स लार ग्रंथियों के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों को भी प्रभावित कर सकता है। कभी-कभी तो इससे जनन ग्रंथि भी प्रभावित हो जाती है। पुरुषों में वृषण कोश भी प्रभावित होते हैं। इस संक्रमण को 'आर्काइटिस' कहते हैं।

यह रोग उन एक तिहाई युवाओं को होता है जिन्हें वयस्कता की दहलीज पर पांव रखते समय मम्प्स होते हैं। आर्काइटिस पैरोटिड ग्रंथि में सूजन आने से पूर्व भी हो सकता है, किन्तु सूजन आने के लगभग 7 से 10 दिन बाद प्रायः यह रोग नहीं होता है। इस रोग में एक अथवा दोनों वृषण कोशों में पीड़ादायक सूजन आती है। यह दर्द, उदर के निचले भाग तथा पैर से लेकर जांघ तक फैल जाता है। कुछ दिनों पश्चात दर्द तथा सूजन गायब हो जाती है। सौ में एक-आध मामले में दोनों वृषणकोशों में सूजन आती है। इस परेशानी के शुरू होने के साथ-साथ पुनः बुखार हो जाता है और यह 105° फारेनहाईट अथवा 40.5° सेल्सियस तक बढ़ सकता है। रोगी को यह परेशानी 10 दिन तक झेलनी पड़ती है। इसके पश्चात सूजन उतर जाती है, लेकिन कुछ दुर्भाग्यपूर्ण मामलों में पुरुष बंध्यता के शिकार हो जाते हैं। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। लेकिन जब कभी दोनों वृषणकोश प्रभावित होते हैं अथवा जब इन अंगों में कुछ दुर्बलता आ जाती है, तो यह दुर्बलता अथवा संक्रमण, शुक्राणु निर्माण में यदा-कदा ही बाधक होता है।

सौभाग्य से इस रोग से औरतों की जनन ग्रंथियां बहुत कम प्रभावित होती हैं और इनका निदान भी बहुत कठिन है। मस्तिष्क में भी मम्प्स से विकार आ जाता है जिससे मस्तिष्क की झिल्ली में क्षोभ से मस्तिष्क भी प्रभावित हो जाता है। कुछ मामलों में इससे मेनिनजाइटिस होने की भी सूचना है। उदर के ऊपरी भाग में अचानक पीड़ा, उल्टियां, तेज बुखार तथा अवसन्नता आदि मम्प्स के प्रारंभिक लक्षण हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में डाक्टर पेट के ऊपरी भाग में स्थित अग्न्याशय ग्रंथियों में आई सूजन से उसे 'अग्न्याशय शोथ या 'पैंक्रियेटाइटिस' भी मान सकते हैं। यह स्थिति बड़ी गंभीर होती है। इसके बाद रोगी को मधुमेह हो सकता है और केंद्रीय तंत्रिका तंत्र भी प्रभावित हो सकता है। तीव्र मस्तिष्कावरण-मस्तिष्क शोथ से चक्कर आने लगते हैं। उल्टियां तथा सिर दर्द शुरू हो जाता है। यह सब मम्प्स वाइरस के कारण ही होता है लेकिन इसके अन्य लक्षण यानि पैरोटिड ग्रंथि में सूजन अनुपस्थित भी हो सकती है। इसमें किसी विशिष्ट चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती तथा स्थायी क्षति पहुंचाये बिना ही ये लक्षण गायब हो जाते हैं। संधि शोथ व वृक्कशोथ भी मम्प्स के कारण उत्पन्न विकार माने जाते हैं।''

''धन्यवाद डाक्टर! मम्प्स के बारे में आपसे मुझे काफी जानकारी मिल गई है और अब मुझे पता लग गया है कि मम्प्स की बीमारी की अवस्था में लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए, जैसा कि अब तक होता आया है। अब कुछ चिकित्सा के बारे में भी बताइये।''

''मम्प्स होने पर 10 दिन तक पूर्ण विश्राम करना आवश्यक है। मम्प्स से पीड़ित अधिकतर बच्चे अपने आप को इतना बीमार नहीं

मम्प्स से ग्रस्त वयस्कों को वृषण कोशों में आयी सूजन और दर्द से छुटकारा पाने के लिये पूर्ण आराम करना चाहिये।

समझते कि वे चारपाई पर पूर्ण विश्राम करें। जब तक उन्हें तेज बुखार नहीं हो जाता तब तक वे घर में भी शांति से नहीं बैठते। पैरोटिड ग्रंथि की सूजन समाप्त होने पर ही बच्चे को स्कूल भेजना चाहिये। यदि इसमें दोनों ग्रांथियां प्रभावित हो जाती हैं तो इनको ठीक होने में लगभग 7 दिन लगते हैं। मम्प्स होने पर तरल भोजन लेना उपयुक्त होता है। रोगी की चबाने की क्षमता देखकर उसे अर्ध-ठोस पदार्थ खिलाये जा सकते हैं। खट्टे अथवा गर्म व मसालेदार सुगंधित पदार्थ नहीं देने चाहिए। मुंह की सफाई करना अनिवार्य है। इसके लिये अजवाइन का अर्क, कोबाल्ट अथवा पोटैशियम परमैंगनेट का घोल प्रयोग में लाया जा सकता है। दर्द तथा बुखार होने पर एस्पिरीन अथवा पैरासिटामॉल की गोलियां दी जा सकती हैं। जो भी हो, मम्प्स के अतिरिक्त किसी अन्य बीमारी से, यदि लार ग्रंथि प्रभावित होती हैं तो इसके लिये अलग प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता होती है। अतः प्रथम लक्षण प्रकट होते ही डाक्टर से सलाह ले लेनी चाहिए। बीमारी के दौरान भी जब बच्चे की चिकित्सा जारी हो, उस समय भी यदि आपको यह लगे कि रोगी की हालत बिगड़ रही है तो भी डाक्टर से पुनः परामर्श कर लेना चाहिए जैसा कि मैंने आपको बताया था कि राजू को दिखाने के लिये अवश्य यहां ले आना।''

''ठीक है, डाक्टर! हमें संक्रमण को रोकने के लिए कौन-कौन सी सावधानियां बरतनी चाहिए।''

''तुमने यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा है। चूंकि मम्प्स एक बहुत अधिक संक्रामक रोग नहीं है, इसलिए बच्चे को एक दम अलग रखना जरूरी नहीं है। जनन ग्रंथि को प्रभावित होने से बचाये रखने के लिये वयस्क लड़कों को रोगी के संपर्क में नहीं आना चाहिए। मम्प्स के वाइरस लंबे समय तक खुली हवा में जीवित नहीं रह सकते। अतः रोगी के कपड़े बिस्तर, खाने-पीने के पदार्थों अथवा बर्तनों के रख-रखाव में किसी विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं होती है।''

''क्या वैक्सीन इस रोग में कुछ सुरक्षा प्रदान कर सकती है?''

''हां! निस्संदेह! एक वैक्सीन विकसित की गई है जो मम्प्स में आंशिक असंक्राम्यता प्रदान करती है। मम्प्स की रोक-थाम के लिए अत्यन्त क्षीण वैक्सीन आजकल बाजार में उपलब्ध है। वैक्सीन की एक खुराक से 95 प्रतिशत उत्पन्न एंटीबॉडी की पहचान हो जाती है। इस रोग से लंबी अवधि तक रोधक्षमता दिलाने वाली वैक्सीन अभी तक ज्ञात नहीं है। यह एमएमआर (मीजिल्स-मम्प्स रूबैला) वैक्सीन में भी शामिल की गई है। अभी यह पूरी तरह तय नहीं हो पाया है कि मम्प्स की वैक्सीन किस प्रकार प्रयोग में लायी जानी चाहिए, लेकिन फिर भी यह सलाह दी जाती है कि 9 से 12 माह के शिशु को यह वैक्सीन दे दी जानी चाहिए। कुछ का तर्क है कि बच्चे को प्राकृतिक रूप से फलने-फूलने दिया जाना चाहिए। इसमें किसी प्रकार का व्यवधान नहीं डालना चाहिए। इससे बच्चों को जीवन पर्यन्त रोधक्षमता प्राप्त हो जाती है। अतः इसका प्रयोग उन वयस्कों, विशेषकर उन आदमियों में किया जाना चाहिए जिन्हें मम्प्स की बीमारी न हुई हो और जो इस रोग के सुग्राही हों। गर्भवती महिलाओं तथा गुर्दे और हृदय प्रत्यारोपित रोगियों को मम्प्स की वैक्सीन नहीं दी जानी चाहिए। इनके लिये एम विशिष्ट इम्यूनोग्लोब्यूलिन (MIg) उपलब्ध है किन्तु अभी तक इसके सुरक्षात्मक प्रभाव ज्ञात नहीं है।''

''धन्यवाद, डाक्टर साहब।''

[डा. सुरेश नाडकर्णी, फ्लैट नं.38-39, 5वीं मंजिल,म्यूनिसिपिल बिल्डिंग, जोबनपुत्रा कम्पाऊंड, नाना चौक, मुंबई-400 007]

द मान्सटर

ग.कृ. जोशी

बैठते हुये मेरी बोली, "ऐसा क्या हुआ है जरा सुनूं तो?"

"बताता हूं," मैकफर्न ने बड़े करुण स्वर में बात शुरू की। लगभग तीन-चार हफ्ते पहले की बात होगी। शरीर के अंगों का विकास करने के लिए हम 'ग्रोथ हार्मोन्स' बना रहे थे, हमें उसकी एक बैच बनानी थी। मैं ड्यूटी पर था। संशोधित नमूना बनाने के लिये अर्ध परिष्कृत कच्चे पदार्थ का कुछ हिस्सा मैंने स्टोर टैंक में से रिफाइनरी में डाल दिया और मेरे से न होने वाली गलती हो गयी। सर्वप्रथम बफर डालकर रिफाईनिंग एजेन्ट रिफाइनरी में लेना होता है। लेकिन बफर डालने से पूर्व ही मैं रिफाईनिंग एजेन्ट डाल गया और हजारों पौंड लागत की पूरी बैच खराब हो गई। इससे मेरी नौकरी खतरे में पड़ने के आसार नजर आने लगे। किस्मत से उस समय वहां कोई नहीं था। मैंने तुरंत सारी बैच रिफाइनरी में से निकाल कर फ्लैश में बहा दी और फिर से नया कच्चा पदार्थ लेकर काम शुरू किया। लेकिन इससे कच्चे पदार्थ के स्टाक में जो कमी आयेगी उसका क्या होगा? क्या उस ओर किसी का ध्यान नहीं जायेगा?"

"हो सकता है, चला भी जाये लेकिन तुरंत नहीं जायेगा। साल के अंत में जब स्टाक की सूची बनायी जाएगी उस समय भी इस की संभावना बहुत कम है, क्योंकि हम अपरिष्कृत माल का हिसाब बहुत सावधानी से नहीं रखते हैं।"

"हां, तो क्या बता रहा था मैं..... बैच बह कर नेस नदी में चला गया।"

"तुमने ऐसा क्यों किया, तुम वेस्ट ट्रीटमेंट भी तो कर सकते थे, ऐसे व्यर्थ पदार्थों को उपचारित करने का कोई तरीका नहीं है क्या?"

"है तो सही, किन्तु वह संयंत्र रिफाइनरी के बाद लगा है।"

"जो भी हो अपने इस कृत्य से मुझे आत्मग्लानि होने लगी है, जिससे दिन प्रतिदिन मेरी अस्वस्थता बढ़ रही है। मेरे अस्वस्थ होने का कोई और कारण नहीं है। वैसे तो मैं सही सलामत छूट गया हूं लेकिन मेरा मन मुझे कचोट रहा है और अब मान्सटर के समाचार ने मुझे और बेचैन कर दिया है।"

"ओह—इसका अर्थ यह हुआ कि आप आत्मग्लानि से परेशान हैं। कोई बात नहीं। इसका इलाज मैं करूंगी, लेकिन एक बात बताओ,ये ग्रोथ हार्मोन थी किसकी?"

"हम वनस्पति तथा प्राणियों के लिये भिन्न-भिन्न हार्मोन बनाते हैं। यह बैच प्राणियों के हार्मोन की थी।"

"इसीलिये हमारे मैकफर्न को आजकल नेस नदी में बड़े आकार की मछलियां मिलने लगी हैं।" जेन ने मैकफर्न का मूड सुधारने की कोशिश की। अच्छा, अब सोचना बंद करो और अपने दिमाग से निकाल दो कि आपसे कोई गलती हुई है। क्या ऐसी घटना इसके पहले कभी नहीं घटी?"

"ऐसा नहीं है। हमारे विभाग में इस प्रकार की गलतियां पहले भी एक-दो बार हुई हैं। लेकिन उस समय की बात और थी। उस समय के हार्मोन की अपेक्षा ये हार्मोन बहुत अधिक प्रभावी और मंहगे थे।"

"मैं सारी बात मानती हूं। लेकिन तुमने कंपनी का यह नुक्सान कोई जानबूझ कर तो किया नहीं है और मान्सटर वाली बात दिमाग से निकाल दो।"

"हां, मेरी! तुम्हें सारा कुछ बताने के बाद मुझे कुछ राहत महसूस हो रही है और सच पूछो तो मेरा तो यह विश्वास ही नहीं था कि यह सचमुच मान्सटर ही होगा। लेकिन मान्सटर अब मिल गया है और सारे लोग उसके बारे में बात कर रहे हैं, इसलिये मेरा मन कुछ ज्यादा ही बेचैन हो गया है।"

"मान्सटर मिल गया यह तुम कह रहे हो, लेकिन उसे किसी ने अभी तक ठीक से देखा भी नहीं। उसका डर मन में रखने की आवश्यकता नहीं है। शांति से घर जाईये और सोते समय नींद की एक गोली खा लेना ताकि सबेरे उठते ही आप अपने को एकदम स्वस्थ महसूस कर सको।"

"ओ.के...... एण्ड गुड नाइट," जेन को हमेशा की भांति विदा करके वह चला गया। अब वह अपने आपको बड़ा स्वस्थ महसूस कर रहा था। लेकिन उसके मस्तिष्क का वह कीड़ा अब जेन के मस्तिष्क में घर कर गया। वह पास ही के प्राणिशास्त्र अनुसंधान संस्थान में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी के पद पर काम करती थी। मान्सटर की समस्या उसे पहले ही सता रही थी। मैकफर्न द्वारा बताई हुई बातों के कारण समस्या और जटिल हो गई थी। वह बहुत देर तक इस समस्या से जूझती रही और देर रात घर लौटी।

सबेरे उसने फोन किया "गुड मार्निंग मैकफर्न! अब कैसा लग रहा है?"

"बहुत अच्छा! तुमने मेरा मनोबल बढ़ाया, उसके लिये धन्यवाद!"

"इसमें धन्यवाद की कोई बात नहीं। आज हम मान्सटर का पता लगायेंगे, देखें तो वह कैसा दिखता है?"

"लेकिन यह कैसे संभव है? पानी में उतरने पर पाबंदी है और नाव भी नहीं चलाई जा सकती और अभी तक तो पुलिस विभाग को भी मान्सटर दिखाई नहीं दिया है, हमें कैसे दिखाई देगा?"

"इस प्रकार निराश होने की आवश्यकता नहीं है। नेस नदी के पानी के भीतर हमारे संस्थान का जो निरीक्षण कक्ष है, वह मेरे अधिकार में है। उसमें तीन तरफ साफ शीशे की दीवारें हैं और पानी में रोशनी डालने का भी प्रबंध है। पानी में उतरने की आवश्यकता नहीं है। मान्सटर के लिये कोई लालच का प्रबंध भी कर लेंगे। शाम को मेरे संस्थान में आ सकोगे?"

"मान्सटर से मिलने के लिये यदि तुम भी इतनी उत्सुक हो गई हो तो मैं भी पीछे नहीं हटूंगा। मैं शाम को अवश्य आऊंगा।"

"यह हुई न बहादुरों वाली बात। लेकिन देखना यह बात किसी से कहना नहीं, नहीं तो कोई और झंझट खड़ा हो जाएगा।"

"आप बिल्कुल निश्चिंत रहें।"

शाम को उसके जाने के बाद जेन ने अपने मत्स्यपालन से दो मछलियां निकालकर अपने निरीक्षण कक्ष में रख ली थीं।

"इनका क्या करेंगे?" मैकफर्न ने पूछा था।

"जालीदार थैली में मछली रख कर नेस नदी में छोड़ देंगे फिर देखेंगे कि क्या होता है?"

उन्होंने एक मछली जालीदार थैली में बंद की और थैली को रस्सी की सहायता से पानी में उतार दिया। मछली जिन्दा थी, वह तड़प रही थी लेकिन भाग नहीं सकती थी। धीमी रोशनी में नेस नदी का पानी धुंधला नीला दिखाई दे रहा था। रोशनी हमेशा जैसी होने के कारण पुलिस को संदेह होने का कारण नहीं था। कक्ष में बिलकुल कम प्रकाश था। अंधेरे में बैठे वे दोनों सामने वाली मछली की ओर एकाग्रता से देख रहे थे। दोनों ने न जाने कब सारी सेंडविच खत्म कर डाली।

मैकफर्न ने छेड़ा, "तुम्हारे लाडले मान्सटर ने कब की ऐपॉइन्टमेंट दी है, अब तो बहुत देर हो गई है।"

जेन को मजाक कुछ अच्छा नहीं लगा इसलिए वह चुप ही रही। सौभाग्यवश उन्हें और अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। खिड़की के कोने से कोई वस्तु हिलती हुई दिखाई दी। जेन सतर्क हो गई, उसने मैकफर्न को अपने समीप खींचा।

कक्ष की एक ओर से एक पर्दा धीरे-धीरे आगे खिसक रहा था, मानो हवा के साथ झोंके खा रहा हो। उसकी एक निश्चित गति थी। किसी विशाल गुब्बारे के समान वह फूला हुआ दिखाई दे रहा था। वह किसी स्थान से सिकुड़ रहा था तथा किसी स्थान पर फैल रहा था। कुछ हिस्सा आगे आकर फिर पीछे जा रहा था। इस प्रक्रिया में एक प्रकार का अनुशासन था। आगे क्या होता है इसे देखने के लिये दोनों सतर्क हो गये थे। हिलता हुआ वह पर्दा मछली के समीप आकर उसके साथ सट गया। मछली कुछ दबोची गई। देखते-देखते उस स्थान पर मछली के आकार का एक खड्डा-सा बन गया। खड्डे का मुंह बंद हुआ। मछली पर्दे के अंदर गई और फिर धीरे-धीरे पर्दे की हलचल पूर्ववत आरंभ हो गई। मछली की हलचल बंद हो गई थी। वह मर गई थी। दोनों ही आश्चर्य से देखते रहे थे। धीरे-धीरे मछली की चमड़ी अदृश्य हो गई। उसके बाद मछली का मांस भी समाप्त हो गया और जालीदार थैली में मछली की हड्डियों का केवल ढांचा रह गया। जेन ने अब दूसरी मछली जाली की थैली में रखी। थोड़ी देर बाद फिर वही हुआ। दोनों ही अचम्भे में पड़ गये। इस मनःस्थिति से बाहर आने में उन्हें कुछ समय लगा।

"माइ गॉड! व्हाट ए एक्सपेरिमेंट!"

मैकफर्न हैरान था जबकि जेन गंभीर तथा शांत थी।

"चलो अपना प्रयोग सफल हुआ। मान्सटर से मुलाकात हो गई," जेन ने मैकफर्न से कहा। यह प्रयोग दो-तीन दिन तक चलता रहा, किन्तु संपूर्ण मान्सटर कभी नहीं दिखाई दिया, जो कुछ उन्होंने देखा उसमें केवल उसकी त्वचा, जो पूर्ण रूप से पारदर्शक थी और उसका आकार जो एक पर्दे जैसा था।

मैकफर्न ने जेन से पूछा, "यह किस जाति तथा किस वंश का प्राणी है?" जेन के पास भी इसका उत्तर नहीं था, क्योंकि बड़े-बड़े विश्वकोशों में भी ऐसे किसी प्राणी का उल्लेख नहीं था।

फ्रिट्ज की टोली भी मान्सटर को पकड़ने में असमर्थ रही। समाचार पत्रों का उत्साह भी कम हो गया था। साधारण जनता ने मान्सटर के अस्तित्व को मान लिया था किन्तु सरकार ने अपनी कार्यवाही जारी रखते हुये डेप्थ-चार्ज डालकर मान्सटर को समाप्त करने का एक गुप्त आदेश निकाला। लेकिन इस आदेश का पता समाचार पत्रों को मिल गया। इससे जनमत फिर आंदोलित हो उठा। वन्य जीव रक्षकों को भी स्फूर्ति आई। "मान्सटर का बचाव" इस मुहिम के अंतर्गत, पहले ही दिन पांच लाख हस्ताक्षर प्राप्त किये गये।

हमेशा की तरह आज भी मैकफर्न और जेन दोनों मछली लेकर कक्ष में गये। जेन कुछ अधिक बेचैन नजर आ रही थी, जबकि मैकफर्न कुछ ऊबा सा लग रहा था। हमेशा की तरह मान्सटर आया उसने दो मछलियां खाई।

"रोज-रोज खूब खिला-पिलाकर तुमने मान्सटर को बड़ा हृष्ट-पुष्ट कर दिया है। मैं वन्य जीव संरक्षण संस्था को सुझाव दूंगा कि वह आपको 'मान्सटर मित्र' की उपाधि से सम्मानित करे।"

"जरा चुप रहो और सामने देखो।" सामने पर्दे पर चमत्कार हो रहा था। वे एकाग्रचित्त होकर देखने लगे। मान्सटर हमेशा की तरह थोड़ी देर रुका। अचानक पर्दे के हिलने की गति बढ़ी। पर्दा थोड़ा तन गया, उसमें कुछ फैलाव आया, इससे उसकी लंबाई कुछ बढ़ी। और मध्य भाग से कुछ सिकुड़कर वह दो हिस्सों में विभाजित हो गया। अब दो पर्दे दिखाई देने लगे। फिर गति बढ़ी और दो पर्दो के चार पर्दे हो गए। चार से आठ और आठ से सोलह। इस प्रकार असंख्य गोलाकार पर्दे बन गये। इनकी गिनती करना असंभव था। सामने क्या हो रहा है इसके बारे में सोचने की चेतना भी उनमें नहीं रही थी। थोड़ी देर बाद जेन ने अपने आपको संयत किया और वह चिल्लाई "मान्सटर समाप्त हुआ, हमारी जीत हुई।"

मैकफर्न ने होश में आकर कहा "क्या चमत्कार है! आज हमारी आंखों के सामने चमत्कार हुआ। मान्सटर समाप्त हुआ।" जेन ने उसको अधिक बोलने से रोका और उसको घर ले आयी।

वास्तव में मान्सटर समाप्त हो गया था। फ्रिट्ज तो कुछ दीवाना-सा हो गया था। प्रतिध्वनि का आना अचानक बंद हो गया था। भ्रम और अधिक बढ़ गया। गृह विभाग ने नेस नदी के तल की फिर से छानबीन करने का निर्णय लिया। यह छानबीन टॉलर्स से की गई। अब विभाग को पूरा विश्वास हो गया था कि मान्सटर चला गया है। समाचार पत्रों में भी यह समाचार "मान्सटर चला गया" मुख्य समाचार के रूप में छप गया था।

जानकार सूत्रों ने तर्क दिया कि नेस नदी की तलहटी में जो बड़े बिल होते हैं उसमें चला गया होगा। शायद शीत निद्रा के लिये, संभवतः हजारों वर्षों के बाद वह फिर आयेगा। इस प्रकार मान्सटर के अस्तित्व की पहेली कायम रही।

लेकिन मैकफर्न की जिज्ञासा शांत नहीं हुई थी। जेन को मिलने के लिये वह शाम होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

जेन के मन में तनाव नहीं था। वह गपशप करने के मूड में थी। उसने शुरूआत की।

"यह सारा तुम्हारी उस बैच का ही प्रभाव था जिससे उस मान्सटर का सामना हुआ। यह ठीक भी हुआ वरना बड़ी भयानक परेशानी खड़ी हो सकती थी।"

"तुम क्या कह रही हो, मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"स्कूल में पढ़ते समय तुमने अमीबा का नाम तो सुना होगा।"

"अमीबा एक, एककोशिकीय प्राणी होता है।"

"हां! वह मान्सटर एक विशाल अमीबा ही तो था।"

"लेकिन यह बात तुम्हारे ध्यान में कैसी आई?"

"अपनी करतूत सुनिये! ग्रोथ हार्मोन नेस नदी में पहुंचने से मछली इत्यादि प्राणियों का आकार बढ़ने लगा। इसीलिये पानी में रहने वाले सूक्ष्म प्राणी अमीबा के बढ़ने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। ये अमीबा इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है। अमीबा एक कोशिका से बनता है। उसके बाहर एक आवरण होता है और उसके भीतर कोशिका द्रव्य। उसके मध्य भाग में न्यूक्लियस होता है। इस न्यूक्लियस के आवरण के अंदर अमीबा का मस्तिष्क होता है। यह डी.एन.ए. की एक विशेष श्रृंखला होती है। यह मस्तिष्क, सूक्ष्मदर्शी से भी दिखाई नहीं देता। ये श्रृंखलाएं जीवित प्राणी की संपूर्ण प्रक्रियायें संचालित करने में सक्षम होती हैं। पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ खाने से जब इसका शरीर आवश्यकता से अधिक बड़ा हो जाता है तब इस केन्द्रक में प्रक्रिया आरंभ होती है। एक, डी.एन.ए. से एक जैसे दो, डी.एन.ए. तैयार हो जाते हैं। इन दोनों के गुणधर्म पैतृक गुणधर्म के समान होते हैं। दो में इनका विभाजन होने के बाद ये दोनों कोशिका के आवरण के अंदर, ही एक दूसरे से दूर-दूर जाने लगते हैं। इसके कारण कोशिका का आकार द्विगुणित जैसा हो जाता है। अन्त में उनका दो कोशिकाओं के रूप में विभाजन हो जाता है और वे स्वतंत्र रूप से दो कोशिका बनकर कार्य करते हैं।

"अपनी बैच में विद्यमान कुछ अपद्रव्यों के कारण कदाचित इन असंख्य अमीबाओं में से एक-आध अमीबा की डी.एन.ए. की विशिष्ट जीन में रुकावट आने के कारण वह कार्यहीन हो गई। इसलिये ग्रोथ हार्मोन के कारण इसका शरीर तो बढ़ता गया लेकिन कोशिका केन्द्र विभाजन नहीं हो पाया। सर्वप्रथम इस विशाल प्राणी ने एक कोशिकीय प्राणी तथा वनस्पति को अपना लक्ष्य बनाया होगा। इसके बाद इसे बहुकोशिकीय जीव खाद्य के रूप में मिले होंगे। आकार बढ़ने के कारण इसका आवरण भी कठोर हो गया होगा। कुछ दिनों के बाद इसने कठोर कवच वाले प्राणियों को भी अपना भोजन

(शेषांश पृष्ठ 48 पर)

"आज तो आपने हमें बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखाया है। दूर-दूर तक पेड़ों के झुंड और बीच में लम्बी सी सड़क लेकिन इसमें ऐसी कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं हो रही। क्या आप इस चित्र के बारे में हमें कुछ बतायेंगे ?"

"भई वाह ? आपने तो बिल्कुल ठीक पहचाना। बात वाकई आज सड़क की ही है। जहां तक रही विशेषता की बात तो हम बताते हैं' आपको।

सड़कें, किसी मानव समाज की प्रगति की प्रतीक हैं। इन सड़कों के निर्माण में आज विभिन्न प्रकार की सामग्री उपयोग में लाई जाती है। लेकिन यदि हम कहें कि सड़क लकड़ी की भी बनाई जाती है तो आप हैरान न हों, वो बात दूसरी है कि हमारे आपके समय में सड़क पक्की सामग्री की बनती है लेकिन आपको हम कहें कि लकड़ी की ऐसी सड़क का निर्माण पाषाण-युग में हुआ तो आप अवश्य हैरत में पड़ गये होंगे। लेकिन फिर भी यह बात सत्य है कि ऐसी ही लकड़ी की एक सड़क थी।

जून 1990 माह की "एन्टीक्विटी" नामक एक खोज पत्रिका में एक रोचक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें हिलैम तथा उसके सहयोगियों ने नव पाषाण युगीन एक लकड़ी के विशाल रास्ते का काल-निर्धारण किया है। यह रास्ता 'स्वीट ट्रैक' नाम से प्रसिद्ध है। यह रास्ता यूरोप में मिले मानव निर्मित सबसे पुराने अवशेषों में से एक हैं। जो ईसा से 3807-3806 वर्ष पूर्व की शीत तथा बसंत ऋतु में गिरे हुये पेड़ों से बनाया गया है। इस रास्ते को बनाने का समय निर्धारण पहले विघटनाभिक-कार्बन (रेडियोकार्बन) से हो चुका है। लेकिन हिलैम तथा साथियों ने लकड़ी के इस रास्ते की निर्माण अवधि एक नये ढंग से निकाली है। वृक्षों की आयु, तने की अनुप्रस्थ काट से, तने में बने घेरों को गिनकर ज्ञात की जाती है। इसी बात को ध्यान में रखकर इन वैज्ञानिकों ने स्वीट ट्रैक में

प्रयोग में लाये गये वृक्षों के तनों में इन घेरों की गणना की तथा इनकी तुलना आइरिश तथा जर्मन के दलदलों में मिले 7000 साल पुराने बांज (ओक) के वृक्षों के तनों में मिले घेरों से की जिससे इन वृक्षों की आयु का बिल्कुल सही निर्धारण किया जा सका।

इस काम को आगे बढ़ाया कोल्स तथा कोल्स ने। उन्होंने इस रास्ते का पुरातात्विक दृष्टिकोण से अध्ययन किया। 1800 मीटर लंबा यह रास्ता लकड़ी के तख्तों की एक पंक्ति का बना हुआ और एक दलदल के ऊपर फैला हुआ था। इस स्थान को आज 'ब्रिटिश कन्ट्री आफ समरसेट' के नाम से जाना जाता है। इस सड़क में प्रयुक्त लकड़ी की जांच से पता चला है कि लकड़ी के कुछ हिस्से बाद के समय के हैं जो यह बताते हैं कि इस रास्ते की मरम्मत भी हुई है। मरम्मत के काल निर्धारण से पता चला है कि यह रास्ता लगभग 10 वर्ष तक ही चालू रहा तथा इसके बाद यह दलदल की चपेट में आ गया।

लकड़ी के इस रास्ते के आसपास के दलदल से मिले अवशेषों से भी इसकी ठीक आयु आंकी जा सकी है। यहां से मिले बीटल के अवशेषों के विश्लेषण से पता चला है कि तत्कालीन ब्रिटिश सर्दियां आज की अपेक्षा 2-4° अधिक ठंडी तथा गर्मियां आज से 2-3° अधिक गर्म हुआ करती थीं।

यहां से मिले अवशेषों में ठीकर, टोमहाक (रेड इंडियनों का एह अस्त्र), कंघे, अटकें (गिल्लियां तथा कीलनुमा चीजें), चम्मचें तथा घास से बनी रस्सी के टुकड़े भी शामिल हैं। पत्थर से बने दो कुल्हाड़ी के सिरे बहुत ही सुरक्षित अवस्था में मिले हैं। इनमें एक जेडाइट तथा दूसरा चकमक पत्थर से बना हुआ है। यह चकमक पत्थर ससेक्स की खानों की यूरोपीय व्यापार पद्धति की पुष्टि करता है। यह अद्‌भुत रास्ता हमें मानव इतिहास की रोचक मंजिलों की ओर ले जा रहा प्रतीत होता है।

[डा. ज्ञान सिंह, डी बी/ 73 डी, डीडीए फ्लैटस, हरी नगर, नई दिल्ली- 64]

कितना उचित है यह आकर्षण

स्नेह प्रभा मेहता

रंगबिरंगी मिठाईयां, आईसक्रीम और पेय पदार्थों ने आज हमारे सामाजिक जीवन में अच्छी धाक जमा ली है। इनके बिना तो हमारा गुजारा ही नहीं है और जहां तक इन मंहगी चीजों की पहुंच नहीं है वहां रंग बिरंगी चित्रकारी वाली गोला बर्फ है या फिर लम्बे तिनके पर सवार गट्टे चीनी के सतरंगी तोता, मोर हैं। इन चीजों को देखते ही बच्चे तो मचल उठते हैं, हम बड़े भी उन्हें खाने से नहीं चूकते और बड़ा ही स्वाद लेकर खाते पीते हैं। शादी ब्याह के सुर्सज्जत शामियानों के अन्दर सजा रंगीन आकर्षक, जायकेदार खाना खाने से तो कोई नहीं चूकता।

अब आ रहे हैं त्यौहार–जिनमें दीपावली एक ऐसा त्यौहार है जिसमें लोग घर में भी मिठाई बनाते हैं और आकर्षक दिखने के लिये उनमें रंग भी डालते हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों की दृष्टि में ऐसा करना जानबूझकर मक्खी निगलने के समान है। लेकिन समस्या यह भी है यदि गोला बर्फ या गट्टा चीनी के तोता, मोर रंगों से वंचित होते तो क्या फेरी वाले के पास बच्चों का जमघट होता? या फिर मिष्ठान भंडार में बरफी, इमरती, गुलाबजामुन, चमचम आदि एक ही रंग के होते या शर्बत और पानी में कोई अन्तर न होता और शामियाने में लगी प्लेटों में सजे सब पकवान भी नीरस से लगते तो बताइये क्या आप इनकी ओर आकर्षित होते? शायद नहीं।

भोजन को आकर्षक बनाने का दायित्व लेते हैं भांति-भांति के रंग। भोजन आकर्षक हो तो अनायास ही मुंह में पानी भर आता है, अन्यथा लगता है भूख ही मर गयी है।

बिक्सा ओरलेना से मिलता है प्राकृतिक लाल रंग

लाभकारी प्राकृतिक रंग

भोजन को आकर्षक बनाने की आज की तो बात ही कुछ और है लेकिन भोजन को आकर्षक व स्वादिष्ट बनाने का इतिहास अति प्राचीन है। मिस्र में खाद्य पदार्थों में रंगों का प्रयोग ईसा से 3500 वर्ष पूर्व भी किया जाता था, कहा जाता है, सिकन्दर जब भारत से यूनान वापस लौटा तो वह अपने साथ 'खांड या कैंडी' भी लेता गया। इस प्रकार यूरोप में कैंडी का प्रयोग आरम्भ हुआ। आज सारे विश्व में कैंडी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में केसर, हल्दी के प्रयोग का वर्णन तो रामायण व महाभारत काल से भी प्राचीन है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक खाद्य पदार्थों में केवल प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग होता था, जैसे केसर, एनेटो, आदि आदि। परन्तु सन 1856 में ब्रिटेन के विलियम पर्किन ने एनिलीन पर्पल को प्रयोगशाला में संश्लेषित कर रंगों की दुनिया में एक क्रांति ही ला दी। इन्द्रधनुष का कोई रंग ऐसा न था जो पर्किन संश्लेषण से न बनाया जा सकता हो। चूंकि इन रंगों को कोलतार से बनाया जाता था, अतः इन्हें कोलतार रंजक या डाइज के नाम से भी पुकारा जाने लगा। आधुनिकता तो कृत्रिमता की जननी है फिर भला इस आधुनिक युग में भोज्य पदार्थ कृत्रिमता से कैसे वंचित रह जाते। इसलिये आज रंगबिरंगे पेय एवं खाद्य पदार्थों का हम धड़ल्ले से प्रयोग कर रहे हैं।

उनमें प्रयुक्त 80 प्रतिशत रंग सस्ते व आसानी से मिलने वाले संश्लेषित खाद्य रंजक ही हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार अमेरिका में एक व्यक्ति वर्ष भर में 4 ग्राम कृत्रिम रंगों का सेवन करता है। इन रंगों का अधिकतर प्रयोग पेय पदार्थों, कंफेक्शनरी, जेली, जैम, शर्बत, केक, पेस्ट्री, मक्खन, पनीर, मांस आदि, डिब्बे बन्द खाद्य पदार्थों और मिठाईयों में बहुतायत में किया जाता हे। परन्तु इन कोलतार रंजकों के प्रयोग से फेफड़ों व त्वचा के कैंसर जैसे असाध्य रोगों का नाम भी जोड़ा जाने लगा है। इस कारण कृत्रिम रंगों के प्रयोग में अधिक सावधानी की आवश्यकता आन पड़ी है। परिणामस्वरुप हमारा झुकाव पुनः पिछले दस वर्षों से प्राकृतिक रंगों की ओर शुरू हो गया है। इन तिरस्कृत प्राकृतिक रंगों में हल्दी, केसर, एनेटो, रतनजोत व कैंडी प्रमुख रंजक हैं।

हल्दी, प्रत्येक दाल तथा सब्जी को गहरा पीला रंग देने के लिये डाली जाती है। इसे **कुर्कुमा लौंगा** के कन्दों (राइजोम) को सुखा कर व पीस कर तैयार किया जाता है। रंग देने के अतिरिक्त इसमें कई औषधीय गुण भी विद्यमान हैं।

केसर, **क्रोकस सैटाइवस** के ताजे फूलों के 'त्रिभाजी वर्तिकाग्र या ट्राइपार्टाइट स्टिग्मा' से बनाया जाता है। इसे सुगन्ध के अतिरिक्त कई प्रकार के मिष्ठानों में हल्का केसरिया रंग देने के लिये डाला जाता है। लतकन, **बिक्सा ओरलेना** के बीजों से एनेटो नामक लाल रंग तैयार करते हैं।

रतनजोत, **आर्नीबा नोबिलिस** की जड़ की छाल है जिसे अचार आदि का रंग लाल करने के लिये डाला जाता है।

लाल मिर्च **केप्सिकम एनम** तीखे स्वाद के अतिरिक्त, लाल रंग के लिये भी सब्जियों में डाली जाती है।

कार्मीन, लाल रंग को कोचीनिअल कीड़े से तैयार किया जाता है।

कैरेमल अर्थात् जली हुई खांड एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इसे केक, पेस्ट्री, बिस्कुट आदि व कई पेय पदार्थों में डाला जाता है। गहरे भूरे रंग के इस तरल पदार्थ का निर्माण आज कई कंपनियां कर रही हैं। चुकंदर **(बीटा वल्गेरिस)** के सूखे चूर्ण से लाल रंग व अंगूर के छिलके से हल्का हरा रंग तैयार किया जाता है। इनके अतिरिक्त प्राकृतिक पदार्थों के पृथक्करण तथा संश्लेषण से भी कई रंग तैयार कियें जाते हैं जैसे कैरोटीन के रंग बीटा कैरोटीन, एपीकैरोटीनल व कैन्थाज़ैन्थीन गाजरी रंग के लिये, क्लोरोफिल एवं राइबोफ्लेविन, (लेक्टोफ्लेविन) हल्के रंग के लिये बनाये जाते हैं।

पर्किन संश्लेषण से प्रयोगशाला में कई प्रकार के रंग कोलतार से बनाये जाते हैं। परन्तु खाद्य पदार्थों में कुछ गिने चुने रंगों का ही प्रयोग होता है। इनमें से प्रमुख हैं : पोंको 4 आर, कार्मोइसीन, फास्ट रेड ई व

हानिकारक हो सकते हैं रंग बिरंगे पेय और खाद्य प्रदार्थ

एमेरेन्थ लाल रंग के लिये, टार्टेराज़ीन, मेटानिल येलो, सन्सेट येलो पीले रंग के लिये, इंडिगो कार्मीन व ब्रिलिएन्ट ब्लू नीले रंग के लिये और ग्रीन एस व फास्ट ग्रीन हरे रंग के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं।

बहुत से रंग, जो कुछ वर्ष पूर्व तक मान्यताप्राप्त थे, विषाक्त प्रभाव के कारण, उनका प्रयोग निषिद्ध कर दिया गया है। एमेरेन्थ व मेटानिल येलो के प्रयोग पर 1974 से प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। लेकिन प्रतिबन्धों के बावजूद भी प्राकृतिक रंगों की कमी के कारण इनमें कई प्रकार की मिलावट कर इन्हें बेचा जाता है। हल्दी को अधिक चमकदार व गहरा पीला बनाने के लिये उसमें विषाक्त लेड क्रोमेट ($PbCrO_4$) अथवा मेटानिल येलो डाला जाता है। लाल मिर्च में पिसी हुई ईंट व रंगा हुआ बुरादा डालते हैं। केसर में कोलतार रंजकों से रंगी रस्सी या बान के टुकड़े व कई अन्य फूलों के वतिकाग्रों की मिलावट की जाती है।

खाद्य पदार्थों में मिलावट, विशेषकर तेल, घी व चिकनाई वाले पदार्थों में डाले गये रंगों की पहचान करने के कई तरीके हैं। इसके लिये सबसे आसान तरीका है रेशम अथवा ऊन के धागों पर रंग चढ़ाना। इसके लिये खाद्य पदार्थ को एल्कोहल अथवा ईथर में घोल लिया जाता है जिससे रंग एल्कोहल अथवा ईथर में आ जाता है। धागों को इस घोल में डुबोने से खाद्य पदार्थ का रंग धागों पर चढ़ जाता है। इन रंगों की बाद में पहचान कर ली जाती है। अब क्रोमेटोग्राफी तकनीक से रंगों की पहचान व मात्रा का ज्ञान हो सकता है।

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि खाद्य रंगों का चयन कैसे हो व इनमें मिलावट कैसे रोकी जाये। भारत में ईसा से 300 वर्ष पूर्व भी खाद्य पदार्थों में मिलावट के विरुद्ध वैधानिक चेतावनियां थीं। इसी प्रकार यूरोप व अमेरिका के कई देशों में भोजन सामग्री को विषैले पदार्थों से बचाने के कई नियम समय-समय पर लागू होते रहे हैं। कृत्रिम रंगों को सर्वप्रथम मान्यता अमेरिकी कांग्रेस ने अगस्त 1886 को दी जिसके अनुसार मक्खन को रंगा जा सकता था। 6 जून, 1896 के दूसरे विधान के अनुसार पनीर में भी रंग डालने की अनुमति दी गई। इस प्रकार रंगी हुई मारग्रीन की बिक्री पहले से चार गुना बढ़ गई। आरंभ में मिठाइयों में कई प्रकार के रंग डाले जाते थे जैसे लेड क्रोमेट ($PbCrO_4$) व रेड लेड (Pb_3O_4), परन्तु बाद में इनके विषाक्त घोषित होने से इनका प्रयोग वर्जित हो गया।

उपभोक्ता की रक्षा के लिये खाद्य रंगों की भी गुणता नियंत्रण माप

ली जाती रहती है। इस दिशा में सर्वप्रथम सन् 1950 में खाद्य एवं कृषि संगठन, विश्व स्थास्थ्य संगठन ने मार्गदर्शन किया। इसके लिये विशेष समिति तथा आयोग की नियुक्ति की गई जिसके 50 से अधिक देश सदस्य थे। इस समिति व आयोग के नियमों के अनुसार खाद्य पदार्थों में डाली जाने वाली प्रत्येक वस्तु की परीक्षा अनिवार्य हो गई। अतः कृत्रिम रंगों की भी पूरी-पूरी परीक्षा करने के पश्चात ही उनके प्रयोग की आज्ञा दी जाने लगी। यूरोपियन इकोनॉमिक समिति व अमेरिका की समिति ने भी खाद्य रंगों की परीक्षा में अग्रगण्यता दिखाई। सन् 1962 में यूरोपीय इकोनॉमिक समिति ने बहुत से रंगों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जैसे एमेरेन्थ व टारटेराजीन। भारत में खाद्य रंगों का प्रयोग खाद्य एवं अपमिश्रण निवारण अधिनियम (प्रिवेन्शन आफ फूड अडल्टरेशन एक्ट) 1954 के अंतर्गत बने नियमों (1955) के अनुसार हैं।

सन 1975 से कोलतार रंजक का प्रयोग भारतीय मानक संस्थान के बने नियमों के अंतर्गत आ गया जिसके अनुसार प्रत्येक खाद्य पदार्थ में डाले जाने वाले रंग के लिये विशिष्ट मान निर्धारित किये गये। इन सब नियमों के बावजूद खाद्य पदार्थों में मेटानिल येलो, ब्लू वी आर एस व अन्य कपड़े रंगने वाले सस्ते रंगों का प्रयोग होता रहता है। लखनऊ स्थित औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केंद्र द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार खाद्य पदार्थों में डाला जाने वाला 70 प्रतिशत पीला रंग मेटानिल येलो था, जो जिगर व गुर्दों के लिये हानिकारक है व कैंसर रोग का भी कारण हो सकता है।

यह सब देखते हुये, उपभोक्ता को अपने हितों के लिये स्वयं ही सावधान होने की आवश्यकता है। छोटे-छोटे व्यापारिक क्षेत्र बनाकर खाद्य पदार्थों की यदाकदा परीक्षा की जानी चाहिये। संविधान में भी मिलावट के विरुद्ध कड़ी सजा की व्यवस्था होनी चाहिये। ब्रिटेन में सन 1872 में खाद्य पदार्थों में मिलावट करने पर पचास पौंड का जुर्माना अथवा छः माह के कड़े कारावास का विधान था। रंगों की सुन्दरता लुभावनी अवश्य है परन्तु ऐसा न हो कि इस चमक दमक से प्रभावित हो हम स्वयं मिलावट को प्रोत्साहन दें व भयानक रोगों के शिकार हो जायें।

[श्रीमती स्नेह प्रभा मेहता, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली- 110012]

कैसे बने खनिज और जीवाश्म ?

विजय कुमार उपाध्याय

खनिज-निर्माण की जटिल प्रक्रिया में भाग लेने वाले कारकों में जल प्रमुख भूमिका निभाता है। ताप की भूमिका भी अहम होती है। खनिज निर्माण में भाग लेने वाले कारकों में मैग्मा, विभिन्न गैसें, वायुमंडल, वनस्पति, जन्तु तथा उस क्षेत्र के शैल सम्मिलित हैं।

खनिज निर्माण की विभिन्न प्रक्रियायें हैं: मैग्मीय सान्द्रण, ऊर्ध्वपातन, सम्पर्क तत्वांतरण, उष्ण जलीय विधि, अवक्षेपण, वाष्पीभवन, अवशिष्ट तथा यांत्रिक सान्द्रण, आक्सीकरण एवं सतही संवर्धन तथा कायान्तरण।

कभी-कभी उपर्युक्त विधियों में से कोई दो या अधिक विधियां मिलकर खनिजों की उत्पत्ति में भाग लेती हैं। दो विधियां एक साथ एक ही समय में मिलकर काम कर सकती हैं या वे अलग-अलग समय में अपनी भूमिका निभाते हुए एक ही प्रकार के किसी खनिज को उत्पन्न करती हैं। जैसे अवक्षेपण निम्न श्रेणी के लौह अयस्क की उत्पत्ति करता है, अपक्षय उसे संवर्धित करता है तथा कायान्तरण उसे परिवर्तित करता है।

मैग्मा निर्मित खनिज क्रिस्टलीकरण या अन्तर्भेदी आग्नेय चट्टानों के पृथक्कीकरण द्वारा सान्द्रण से बनते हैं। मैगमीय विधियां दो प्रकार की हैं—प्रारम्भिक एवं विलम्बित। प्रारम्भिक मैगमीय खनिज के उद्भव की तीन विधियां हैं—विकिर्णन, पृथक्करण तथा अन्तःक्षेप।
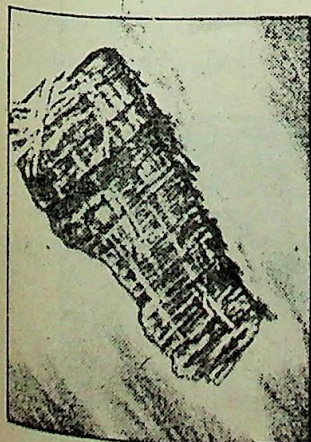
एस्बेस्टस

ताम्र

बहुत गहराई पर जब मैगमा का सामान्य क्रिस्टलीकरण होता है तो क्रिस्टलीय आग्नेय शैल बनते हैं जिसमें खनिज पूरे शैल में फैला रहता है। दक्षिणी अफ्रीका की 'हीरक-नलियां' इसकी उदाहरण हैं। इस क्षेत्र में किम्बरलाइट नामक शैल में हीरे बिखरे हुए हैं। इसमें हीरे के बड़े-बड़े क्रिस्टल पाये जाते हैं।

मैग्मीय पृथक्करण शब्द उन मूल्यवान खनिजों के सान्द्रण के लिये प्रयुक्त होता है जहां खनिज का गुरुत्वीय क्रिस्टलीय पृथक्कीकरण होता है। प्रायः क्रोमाइट इसी विधि द्वारा क्रिस्टलीकृत होता है एवं विस्तृत आकार में एकत्र होकर आर्थिक खनिज भंडार का निर्माण करता है। इस तरह निर्मित भंडार में अधिक घनत्व वाले खनिज निचले भाग में एकत्र रहते हैं। आरंभिक पृथक्करण द्वारा निर्मित खनिज भंडार प्रायः छोटे आकार के एवं मसूराकार होते हैं। वे अधिकतर एक दूसरे से अलग-अलग पाये जाते हैं।

अन्तःक्षेप विधि में क्रिस्टलीकरण के बाद ये खनिज अपने मूल स्थान से हट कर मेजबान शैल में अन्तःक्षेपित हो जाते हैं। अतः ये खनिज प्रायः डाइक तथा दूसरे अन्तर्भेदी शैलों के साथ पाये जाते हैं। कुम्बरलैंड के टिटैनी फेरस मैगनेटाइट भित्ति एवं किरुना (स्वीडन) का मैगनेटाइट ऐसे खनिजों के उदाहरण हैं।

विलम्बित मैगमीय खनिज मैगमीय काल के अंतिम भाग में क्रिस्टलीकृत होते हैं। ये आग्नेय पदार्थ के जमे हुए वे भाग हैं जो प्रारंभिक खनिजों के क्रिस्टलीकरण के बाद शेष बच गये। विलम्बित मैगमीय खनिज प्रायः भस्मीय शैलों के साथ पाये जाते हैं। ऐसे खनिजों का निर्माण क्रिस्टलीकरण-पृथक्कीकरण, भारी अवशिष्ट द्रवों के गुरुत्वीय एकत्रीकरण तथा द्रवों की अमिश्रणशीलता के कारण हुआ है।

खनिज-निर्माण में ऊर्ध्वपातन वहीं कारगर होता है जहां कुछ यौगिक वाष्पशील होते हैं। इस विधि में ठोस बिना द्रव अवस्था में आये सीधे गैस में परिवर्तित होता है तथा गैस सीधे ठोस में। यह प्रक्रिया बहुत कम तापक्रम एवं दाब पर भी प्रभावी होती है। इस विधि द्वारा निर्मित खनिजों के उदाहरण—लोहे, तांबे तथा जस्ते के क्लोराइड तथा आक्साइड, बोरिक एसिड तथा अमोनिया के विभिन्न लवण हैं।

फेल्सपार

ग्रेनाइट
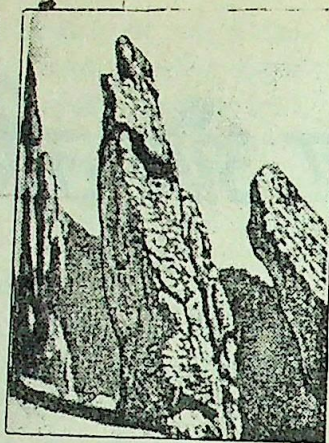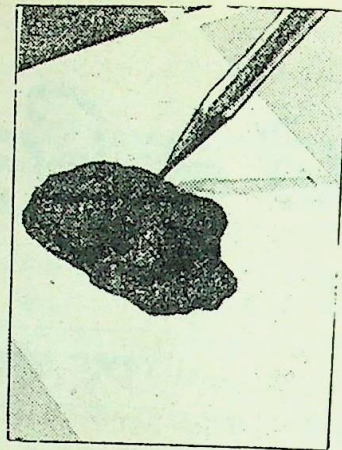
ग्रेफाइट
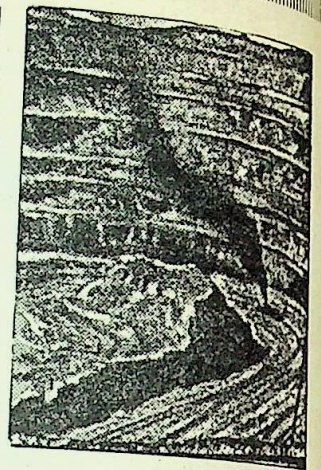
हेमाटाइट

अन्तर्भेदी मैगमा के जमकर ठोस बनने के बाद उसमें उपस्थित गैसें ऊपर की ओर बढ़ते हुए विभिन्न शैलों पर आक्रमण कर उनमें परिवर्तन लाती हैं। इस क्रम में गैसों में उपस्थित कुछ तत्व शैल में मिल जाते हैं। गैस से निकलकर शैल में मिलने वाले तत्वों एवं मूलकों की मात्रा, शैल से निकल कर गैस में मिलने वाले तत्वों की मात्रा से बहुत अधिक है। इस विधि द्वारा निर्मित खनिजों के उदाहरण मैगनेटाइट, हेमाटाइट, कोरंडम, ग्रेफाइट, सोना, प्लैटिनम आदि हैं।

मैगमीय पृथक्कीकरण के फलस्वरूप अन्त उत्पाद के रूप में बचे तरल पदार्थ में कुछ धातु एवं खनिज उपस्थित रहते हैं। यह उष्णजलीय घोल अवसर पाकर शैलों की दरारों में इन खनिजों को निक्षेपित कर देता है। इस उष्णजलीय घोल का ताप 50° से.. से 500° से. तक होता है। इस घोल में उपस्थित तत्व या यौगिक रासायनिक घोल या कोलोइडी घोल के रूप में रह सकते हैं। उष्णजलीय घोलों का अपने मूल स्थान से निक्षेपण-स्थान तक विचरण, शैलों में उपस्थित दरारों पर निर्भर करता है। इस विधि से निर्मित खनिजों में स्फटिक, लौह सल्फाइड, स्फैलेराइट, चालको-पाइराइट, गैलेना, सोना तथा चांदी के कुछ खनिज सम्मिलित हैं।

अवसादन के कारण भी कई खनिजों का निर्माण होता है। अवसादन चार घटकों अवसाद का स्रोत, विलयन या निलम्बन द्वारा अवसाद का एकत्रीकरण, अवसाद के जमा होने के स्थान तक कणों का वहन, तथा किसी अवसादी गर्त्त में अवसाद का जमा होना आदि पर निर्भर करता है। इसके उपरान्त अवसाद का चापन तथा रासायनिक परिवर्तन होता है। जो पदार्थ अवसादी खनिजों के रूप में जमा होते हैं वे मुख्यत: शैलों के अपक्षय से प्राप्त होते हैं। अपक्षय से प्राप्त कण उस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाले जल, कार्बोनिक अम्ल, तथा सल्फेट घोल में घुल जाते हैं। ये घुले हुए खनिज नदी जल या भूगर्भ जल द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रवाहित होते हैं। अब ये घुले पदार्थ भौतिक, रासायनिक या जैव रासायनिक विधियों द्वारा कहीं पर जमा कर दिये जाते हैं। इस विधि द्वारा निर्मित खनिज हैं–लौह अयस्क, मैंगनीज अयस्क, तांबा, फॉस्फेट, कोयला कार्बोनेट आदि।

वाष्पीभवन द्वारा भी अनेक मूल्यवान अधात्विक खनिज बनते हैं। वाष्पीभवन गर्म तथा शुष्क वातावरण में अधिक द्रुत गति से और प्रत्येक प्रकार के जल में होता है। भूगर्भीय जल केशिका क्रिया द्वारा धरती की सतह पर आता है और उसके वाष्पीभवन द्वारा सूखने से

क्वार्ट्ज

स्लेट
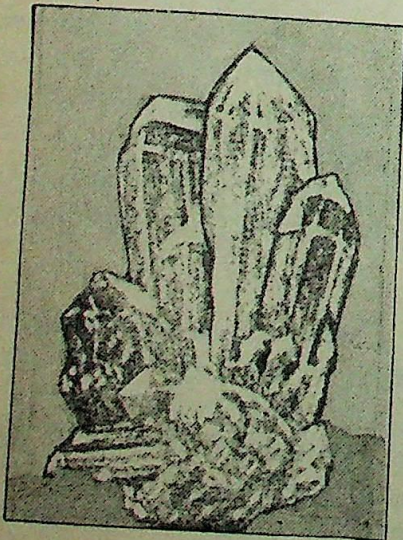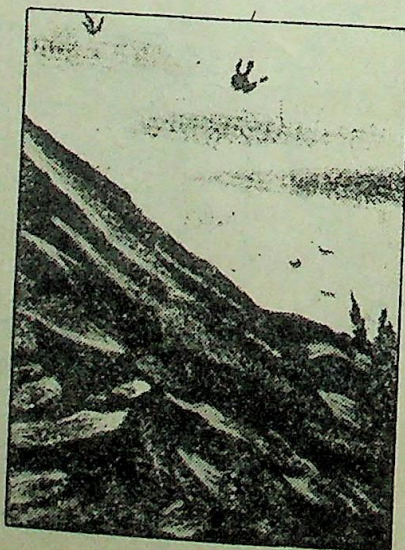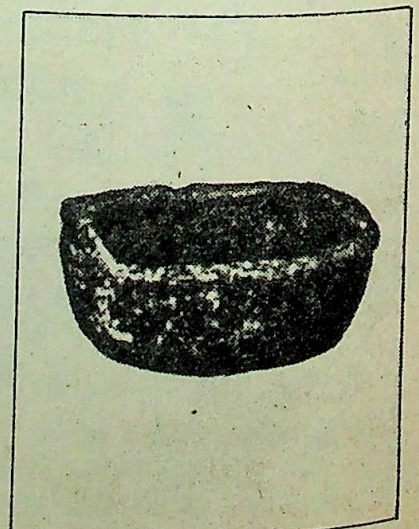
सोपस्टोन

उसमें घुलित लवण सतह पर जमा होते रहते हैं। इस तरह से बने खनिजों के उदाहरण सोडियम कार्बोनेट तथा कैल्सियम कार्बोनेट हैं। मरुस्थल में झीलों के सूखने से भी कई तरह के खनिज बनते हैं। भारत में राजस्थान क्षेत्र की सांभर झील में वाष्पीभवन द्वारा काले नमक का निर्माण इसका अच्छा उदारहण है। समुद्री क्षेत्रों में समुद्री पानी को पम्प द्वारा खींच कर बड़े क्षेत्र में फैला दिया जाता है, जिससे धूप के कारण द्रुत वाष्पीभवन द्वारा साधारण नमक का निर्माण होता है। वाष्पीभवन द्वारा निर्मित अन्य खनिजों में जिप्सम ऐनहाइड्राइट प्रमुख है।

शैलों के अपक्षय से भी अनेक खनिजों का निर्माण होता है। गहरे तथा लंबे समय तक होने वाले अपक्षय से अवशिष्ट-उत्पाद खनिजों का निर्माण होता है। अपक्षय का प्रभाव प्रायः सतह से 200 फीट गहराई तक मृत्तिका खनिजों या लैटेराइटी खनिजों में अधिक स्पष्ट देखा जाता है। अपक्षय द्वारा निर्मित खनिजों के उदाहरण-बॉक्साइट, केओलीन (चीनी-मिट्टी), बेंटोनाइट, लिमोनाइट आदि हैं।

आक्सीकरण तथा सतही संवर्धन द्वारा भी अनेक खनिज बनते हैं। जब कोई अयस्क अपरदन द्वारा पृथ्वी की सतह पर उभर आता है तो उसके अपक्षय के साथ-साथ उसके चारों ओर के शैलों का भी अपक्षय होता है। पृथ्वी सतह का जल बहुत से अयस्कों का आक्सीकरण करता है तथा एक ऐसा घोलक तैयार करता है जो दूसरे खनिजों को घुला लेता है। इस प्रकार अयस्क का कुछ भाग आक्सीकृत हो जाता है, साथ ही इसके अनेक मूल्यवान पदार्थ घुलाकर नीचे अन्तर्भौम जल स्तर की ओर ले जाये जाते हैं। खनिज के आक्सीकृत भाग को आक्सीकरण प्रदेश कहा जाता है। जैसे-जैसे अपक्षालन विलयन नीचे की ओर जाता है, उसमें उपस्थित तत्व आक्सीकरण पट्टी में समाते जाते हैं। यदि अपक्षालन विलयन आन्तर्भौम जल स्तर के नीचे चला जाता है तो उसमें उपस्थित तत्व द्वितीयक सल्फाइड के रूप में अवक्षेपित हो जाते हैं। इसे द्वितीयक सल्फाइड संवर्धन पट्टी कहते हैं। इस प्रकार बने खनिजों के उदाहरण मैलाकाइट, ऐजूराइट, क्यूप्राइट, पाइरोलुसाइट आदि हैं।

कुछ खनिजों का निर्माण पूर्वतर्त्ती खनिजों के कायान्तरण से होता है। इस प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाने वाले प्राकृतिक कारक—ताप, दाब एवं जल हैं। इस प्रक्रिया से प्रभावित होने वाले पदार्थ पूर्व निर्मित खनिज तथा शैल हैं। जब कोई शैल पूर्ववर्तित होता है, तो उसमें उपस्थित खनिज भी साथ ही साथ प्रभावित होते हैं तथा उनसे नये खनिजों का निर्माण होता है। कायान्तरण से बनने वाले खनिजों के उदाहरण-ऐस्बेस्टस, ग्रेफाइट, सोपस्टोन, सिलिमेनाइट, गार्नेट इत्यादि हैं।

जीवाश्म कैसे बने?

जीवाश्म शब्द प्रारंभ में उन सभी पदार्थों के लिये प्रयुक्त होता था जो पृथ्वी की सतह खोद कर निकाले जाते थे। इनमें शामिल थे खनिज, मानव निर्मित पुरातन औजार, पुराने पत्थर तथा पुराने पौधों एवं जन्तुओं के अवशेष। परन्तु धीरे-धीरे जीवाश्म शब्द सिर्फ पौधों एवं जन्तुओं के पुराने अवशेषों के लिये सीमित रह गया जो चट्टानों

बर्फ में दबा हुआ प्राप्त हाथी के बच्चे का पूर्ण जीवाश्म
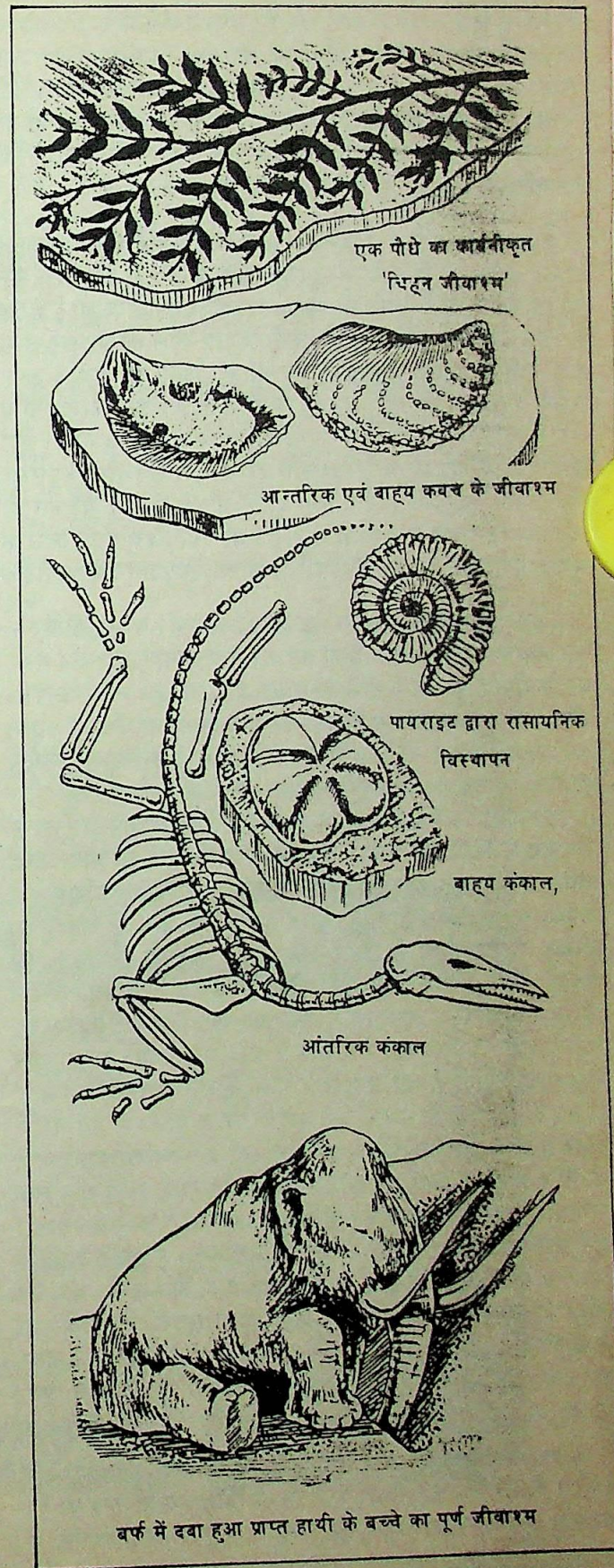
में पाये जाते हैं। जीवाश्म प्रायः ठोस शैल में ही परिरक्षित पाये जाते हैं। परन्तु कभी-कभी वे बालू, दलदल तथा बर्फ में भी उपलब्ध होते हैं। धरती के भीतर छिपे जीवाश्मों की संख्या अनगिनत है। कुछ शैल जैसे चूना पत्थर तथा खड़िया प्रायः असंख्य छोटे-छोटे जीवाश्मों से निर्मित रहते हैं। खनिज कोयला जीवाश्मित पौधों का संगठित रूप है जबकि खनिज तेल पुराने मृत जीवधारियों का परिवर्तित रूप है।
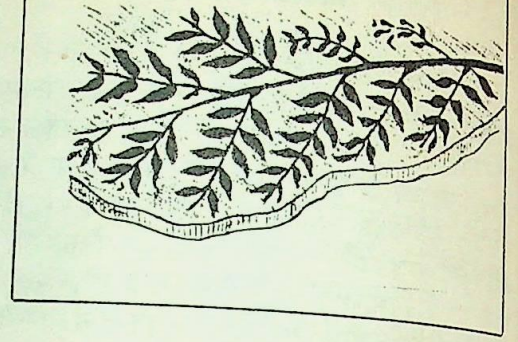
जीवाश्म विज्ञानियों के अनुसार प्रत्येक मुख्य भूवैज्ञानिक कल्प में विशेष प्रकार के पौधे या जन्तु पाये जाते हैं और ये जीवाश्म एक भूविज्ञान स्तम्भ में किसी भी शैल का स्तरिक स्थान का ज्ञान कराते हैं। इस प्रकार के जीवाश्म जो किसी विशेष काल की चट्टान में ही पाये जाते हैं, 'सूचक जीवाश्म' कहलाते हैं। किसी भी जीव के ऊपर उसके पर्यावरण की छाप अवश्य पायी जाती है। अतः जीवाश्मों से उस काल के पर्यावरण का अनुमान आसानी से लगाया जाता है। कुछ जीवाश्मों के वितरण के अध्ययन से पुराने काल के स्थल तथा समुद्र के वितरण, धारा की दिशा तथा पुराने जीवधारियों के प्रवजन की दिशा का अनुमान भी लगाया जाता है। अतः जीवाश्म पुराने काल के भूगोल के संबंध में बहुत ही उपयोगी जानकारी प्रदान कर सकते हैं।

प्रायः मृत जीव सड़ कर लापता हो जाते हैं। परन्तु जीवाश्म, मृत जीव का ऐसा अवशेष है जो सड़ कर समाप्त नहीं हो सका। सड़ने की क्रिया कई कारणों से धीमी हो सकती है या बिल्कुल रुक सकती है। जीवाश्म के परिरक्षण या निर्माण की विधि जन्तु या पौधे की प्रकृति पर, उसकी जीवन-शैली तथा उसके मरने या गड़ने की परिस्थिति पर निर्भर करती है। जीवाश्म निर्माण के लिये दो बातें आवश्यक हैं-- (1) उसके शरीर में कड़े अंश की उपस्थिति तथा मरणोपरान्त तुरन्त अवसाद के अंदर दब जाना। कड़े कवच वाले जीवों की जीवाश्मित होने की संभावना कवच विहीन या कंकालविहीन प्राणियों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। उसी प्रकार एक जीव जो दलदल या कीचड़ में दब जाता है उसके जीवाश्मित होने की संभावना खुले मैदानों में मरने वाले प्राणी की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि खुले मैदान में बैक्टीरिया द्वारा उसके शरीर का नष्ट हो जाना निश्चित है। परन्तु कभी-कभी मुलायम व कोमल जीव भी जीवाश्मित हो जाते हैं। अनेक पक्षियों के पंख, कुछ फल, फूल, कीट तथा बैक्टीरिया आदि के नमूने जीवाश्म के रूप में पाये गये हैं। चूंकि जीवाश्म अवसाद के अंदर बनते हैं इसलिए अधिकतर जीवाश्मों का निर्माण छिछले पानी के नीचे होता है जहां अवसाद शीघ्रतापूर्वक तथा लंबे काल तक लगातार जमा होता रहता है। जीवाश्म प्रायः समुद्र के नीचे स्थल से सटे हुए स्थानों या नदियों के मुहानों पर बनते हैं जहां जीवों के अवशेष या तो पानी के साथ बहकर आते हैं या फिर उसी स्थान पर जीवों के मरने से प्राप्त होते हैं। कभी-कभी समुद्री जीवों की पूरी आबादी नदी या समुद्र की धारा एकाएक बदलने से अवसाद के अंदर दब कर जीवाश्मित हो जाती है। स्थलीय जीवों के अवशेष प्रायः नदियों या झीलों द्वारा अवसादित चट्टानों में पाये जाते हैं।

अकशेरुक जीवों के कवच ज्ञात जीवाश्मों में सबसे अच्छी स्थिति में मिले हैं और उन के जीवाश्मित होने की विधि एक ही तरह की है। अवसाद में दबा हुआ कवच उस समय कई तरह के परिवर्तनों से

प्रभावित होता है जिस समय उसके चारों ओर का सांचा पत्थर के रूप में जमता रहता है। धीरे-धीरे बहता हुआ आन्तर्भौम जल जीव के कवच को पूरी तरह से घुला सकता है तथा उसके स्थान पर सिर्फ एक रिक्त स्थान या सांचा बना रह सकता है। यह सांचा मूल कवच के आकार तथा सतह के चिह्नों को पूरी तरह सुरक्षित रूप से दर्शाता है, परन्तु कवच की आन्तरिक संरचना के बारे में कोई सूचना नहीं देता। सांचा कभी तो भीतरी आकार को दिखाता है तो कभी बाहरी आकार को। यदि कुछ समय के उपरान्त सांचों के ये रिक्त स्थान खनिजों से भर जाते हैं तो मूल कवच का ढांचा बन जाता है परन्तु इससे उसकी भीतरी बनावट के बारे में कोई सूचना नहीं मिलती। ढांचा निर्माण करने वाला पदार्थ उसके चारों ओर उपस्थित शैल से बिल्कुल भिन्न हो सकता है।

अनुकूल परिस्थितियों में कार्बनिक पदार्थ खनिज पदार्थों द्वारा स्थानांतरित कर दिये जाते हैं तथा जीवधारी का आकार एवं संरचना परिरक्षित हो जाती है। इस प्रक्रिया को 'प्रस्तरीकरण या पेट्रीफिकेशन' कहते हैं। यह प्रक्रिया जीवों के कड़े भागों (जैसे हड्डी, कवच, दांत आदि) के लिये अधिक प्रभावी है। नाजुक भाग जैसे मांस, चमड़ा आदि शायद ही इस विधि द्वारा परिरक्षित होते हों।

परिरक्षण की एक विशिष्ट विधि और भी है। सिलिका का जल जीवों के ऊतकों के भीतर तथा उसके चारों ओर शीघ्रता से जमा होकर उसे पूरी तरह ढक लेता है। बन्द होने के कारण कार्बनिक पदार्थ का संपर्क बाहरी वातावरण से बिल्कुल टूट जाता है। इस परिस्थिति में बैक्टीरिया उसे नष्ट नहीं कर पाते तथा वह पूरी तरह सुरक्षित रहता है। इस प्रकार शीघ्रता से अवसादित सिलिका से चर्ट नामक खनिज बनता है। चर्ट के भीतर बीस करोड़ वर्ष पुराने शैवालों के जीवकोश सुरक्षित पाये गये हैं।

प्रस्तरीकरण के लिये खनिज का जलीय घोल उपलब्ध होना आवश्यक है। सिलिका के अतिरिक्त भूमिगत जल में विलेय अवस्था में कैल्साइट खनिज उपलब्ध होता है। इन खनिजों से परिरक्षित जीवाश्मों को क्रमशः सिलिकाकृत तथा चूनाकृत कहा जाता है। परन्तु जीवधारियों के कवच या कंकाल भी इन्हीं दो खनिजों के बने होते हैं। अतः यह बताना बहुत कठिन है कि जीवाश्म का कितना भाग मौलिक है तथा कितना बाद में शामिल हुआ है। लेकिन वैज्ञानिकों के अनुसार कुछ जटिल अमीनो अम्ल सिर्फ जन्तुओं में ही बनते हैं जो लाखों वर्षों तक जीवाश्मों में सुरक्षित रहते हैं। अतः इनकी प्रतिशत मात्रा निर्धारित कर यह बताया जा सकता है कि जीवाश्म का कितना भाग मौलिक है तथा कितना बाद में शामिल हुआ है।

सिलिका तथा कैल्साइट के अतिरिक्त पाइराइट, डोलोमाइट, बेराइट, फलोराइट, जिप्सम, हेमाटाइट, गैलेना, गंधक जैसे बहुत से अन्य खनिज भी प्रस्तरीकरण में अपनी भूमिका निभाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ क्षेत्रों में बलुआ पत्थर में उपस्थित कुछ वनस्पति यूरेनियम खनिजों द्वारा स्थानांतरित किये गये हैं तथा कहीं-कहीं शुद्ध चांदी के द्वारा भी।

जीवाश्म-निर्माण की एक और प्रक्रिया है कार्बनीकरण या स्रवण जिसके द्वारा वनस्पतियों तथा जन्तुओं के कोमल भाग परिरक्षित होते हैं। कार्बनीकरण की प्रक्रिया में जीवधारियों में उपस्थित द्रव एवं गैस उच्च दबाब के कारण निचुड़ कर बाहर निकल जाता है तथा चारों ओर उपस्थित सांचे में मिल जाता है। ऐसी परिस्थिति में जीवधारियों के शरीर का कोमल भाग, एक पतली झिल्ली के रूप में बच जाता है जिसके अधिकांश भाग में कार्बन होता है। जीव श्मीकरण की इस प्रक्रिया में पत्तियों की पतली शिरायें तथा कोशिकाभित्ति तक परिरक्षित हो जाती है। यदि इस प्रक्रिया में कार्बन सुरक्षित रह पाता तो इस जीवाश्म को सिर्फ छाप या 'इम्प्रेशन' कहते हैं।

संसार के बर्फीले क्षेत्रों में पाये गये जीवाश्म तो ज्यों के त्यों मिले हैं। भारत के हिमालय क्षेत्र में स्थित रूप कुंड में बर्फ की काफी मोटी तह के नीचे मनुष्यों के पूर्ण परिरक्षित मृत शरीर और साथ में उनके बाल, कपड़े, चूड़ियां तथा कड़े आदि भी पाये गये हैं। इसी प्रकार पूर्वोत्तर साइबेरिया के पहाड़ी क्षेत्र में सन् 1976 में खुदाई के समय बर्फ से ढके हाथी के बच्चे का शरीर मिला जिसका मृत्यु काल वैज्ञानिकों के अनुसार 17000 वर्ष पूर्व था। इसी प्रकार पोलैंड के तेल क्षेत्रों में बर्फ से ढके ऊनी गैंडों के मृत शरीर मिले हैं। डेनमार्क तथा हालैंड में भी मृत मनुष्यों के शरीर बहुत ही अच्छी परिरक्षित अवस्था में मिले हैं। ये सब शरीर ईसा पूर्व काल के बताये जाते हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों में बर्फ से ढक जाने के कारण शरीर का बैक्टीरिया द्वारा विघटन नहीं हो पाता और वे पूर्ण रूपेण परिरक्षित रह जाते हैं।

कुछ परिस्थितियों में जीवों के शरीर तो परिरक्षित नहीं रह पाते परन्तु उनके द्वारा बनाये गये रास्ते, पद-चिह्न आदि चट्टानों में सुरक्षित देखे जा सकते हैं। कभी-कभी उनके द्वारा बनाये गये बिल आदि भी चट्टानों में सुरक्षित पाये जाते हैं। ऐसे जीवाश्मों को 'चिह्न या ट्रेस जीवाश्म' कहते हैं।

[डा. विजय कुमार उपाध्याय, सह प्राध्यापक, इंजीनियरिंग कालेज, भागलपुर, बिहार]

बाल विज्ञान सीरीज (9 पुस्तकें), प्रकाशक : पुस्तकायन, 2/4240 अंसारी रोड, नई दिल्ली-110 002, संस्करण : 1990 ; मुद्रक : गायत्री आफ्सेट प्रैस, नोएडा

बाल-विज्ञान सीरीज के अन्तर्गत "पुस्तकायन" एवं "विज्ञान परिषद्, प्रयाग" के द्वारा हाल में ही जो बालोपयोगी विज्ञान संबंधी पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं, उनमें से नौ पुस्तकों की यहां चर्चा की गई है। इन पुस्तकों का उद्देश्य देश के भावी दीपकों तक सरल शब्दों में हिन्दी के माध्यम से विज्ञान पहुंचाना है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य पच्चीस रुपये है जो भारतीय बालकों के जेब खर्च को देखते हुये कुछ अधिक प्रतीत होता है।

इन सभी पुस्तकों की भूमिका पुस्तकों के सम्पादक मण्डल के अध्यक्ष स्वामी (डा.) सत्यप्रकाश सरस्वती ने लिखी है।

1. मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया-विजय

48 पृष्ठों की इस पुस्तक में लेखक ने बालकों के लिये उपयोगी एव शिक्षाप्रद जानकारी दी है। मधुमक्खियां आपस में कैसे मेलजोल से अपना कार्य करती हैं? बहुत ही सरल शब्दों में समझाया गया है।

इस पुस्तक में जहां लेखक ने एक ओर मधुमक्खी पालन का इतिहास दिया है वहां शहद के उपयोग को लेकर फैली कई गलत धारणाओं का भी खंडन किया है। इस तरह की पुस्तकों से बच्चों को अपने आसपास की दुनिया को समझने में मदद मिलती है और उनमें पढ़ने की रुचि जागृत होती है। मधुमक्खी पालन में रुचि रखने वालों के लिये भी यह एक उपयोगी भेंट साबित होगी।

2. अंटार्कटिका-प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

गोवा से लगभग 12 हजार किलोमीटर दूर 155 लाख वर्ग किमी. क्षेत्रफल वाले अंटार्कटिका महाद्वीप के विषय में हमारे बाल पाठक यदि अभी से कुछ जान लें तो बेहतर होगा। हो सकता है भविष्य में उन्हें भी इस महाद्वीप की यात्रा पर जाना पड़े।

56 पृष्ठों की इस पुस्तक में यथासंभव सरल शब्दों में अंटार्कटिका के भौगोलिक स्वरुप, मौसम, जलवायु, जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों और खनिज सम्पदा के विषय में बताया गया है।

पुस्तक में "अंटार्कटिका के खोजी अभियान" शीर्षक से उस पर पहुंचने वाले विदेशी एवं भारतीय अभियान दलों से जुड़ी महत्वपूर्ण जानकारी भी है। प्रदूषण के कारण अंटार्कटिका के आकाश में ओजोन की परतों को जो क्षति पहुची है, उसके कारणों पर प्रकाश डालते हुये लेखक ने अंटार्कटिका को मानव सभ्यता (?) से बचाने के लिये कुछ सुझाव भी दिये हैं। ऐसी चिन्ता से बच्चों को यदि हम फिलहाल मुक्त रखें तो कोइ हर्ज नहीं होगा। पुस्तक बच्चों को बहुत अच्छी लगेगी—इस बात को विश्वास के साथ कहा जा सकता है।

3. संतुलित आहार-डा. विजय हिन्द पाण्डेय एवं शुभा पाण्डेय

बच्चों के लिये पुस्तक लिखते समय अत्याधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। उन्हें ज्ञान देना सबसे अधिक कठिन है। यदि उन्हें पुस्तक की प्रत्येक बात को समझने के लिये माता-पिता अथवा अध्यापक की सहायता लेनी पड़े तो फिर पुस्तक से उन्हें अधिक लाभ नहीं हो पाता है।

"संतुलित आहार" पुस्तक (पृष्ठ 64) में बच्चों के लिये जो जानकारी दी गई है, वह कहीं-कहीं क्लिष्ट है। पुस्तक के प्रथम पाठ "पोषण एवं स्वास्थ्य" को समझाने में अभिभावकों को अपने बच्चों की कुछ मदद करनी पड़ सकती है। तत्पश्चात "हमारा आहार और पोषक तत्व", "संतुलित आहार", "भोजन का पाचन" एवं "अस्वस्थता का कारण—अपर्याप्त पोषण" नामक पाठों में सरल शब्दों में बहुत ही लाभदायक एवं उपयोगी जानकारी दी गई है। पुस्तक में विटामिन बी काम्प्लैक्स की

कमी से होने वाली बीमारियों के विषय में बताते समय लेखक फिर एक बार संभवतया यह भूल गये कि यह पुस्तक "बाल-विज्ञान सीरीज" में छपने जा रही है। पुस्तक के अन्त में "सामान्य रोगों में विशिष्ट आहार" पाठ में दी गई जानकारी बच्चों के बजाय उनके अभिभावकों के लिये हैं।

4. हमारा पर्यावरण-अनिल कुमार शुक्ल

पर्यावरण जैसे जटिल विषय पर बच्चों के लिये पुस्तक लिखना कोई बच्चों का खेल नहीं है। लेकिन श्री अनिल कुमार शुक्ल ने "हमारा पर्यावरण". पुस्तक लिखकर निःसंदेह यह सिद्ध कर दिया है कि उन्हें यह खेल खूब खेलना आता है। पांच पाठों में विभाजित 56 पृष्ठों की इस पुस्तक में लेखक ने बहुत ही सुंदर ढंग से इस जटिल विषय को समझाया है। हमारे पर्यावरण के खतरों को बहुत ही सरल एवं सहज शब्दों में बताया गया है। अम्ल वर्षा, को बताते हुये पर्यावरण के अन्तर्राष्ट्रीय पक्षों को भी समझाया गया है।

बच्चों में पर्यावरण के प्रति अभी से जागरुकता पैदा करने के लिये लेखक ने "पर्यावरण-हमारा दायित्व" नामक पाठ में बड़ी कुशलता से इस कार्य को पूरा करने का प्रयत्न किया है। पुस्तक बच्चों, किशोरों और यहां तक कि बड़ों के लिये भी पठनीय है।

5. भारतीय पुरातत्व विज्ञान-डा. ए.एल. श्रीवास्तव

संभवतया बच्चों के लिये सरल भाषा में 'पुरातत्व विज्ञान" पर बहुत कम लिखा गया है। यदि किसी ने कभी कोई पुस्तक लिखी भी होगी तो उसका अपना ढंग होगा। इस पुस्तक द्वारा बड़े ही रोचक एवं सरल ढंग से इस जटिल विषय से बच्चों का परिचय कराने का लेखक ने प्रयत्न किया है। हड़प्पा, मोहेंजोदड़ों एवं मिस्त्र देश की प्राचीन "ममी" एवं पिरामिडों की बात को सूत्र बनाकर बच्चों को पुरातत्व, इसके उपयोग एवं इसके व्यापक क्षेत्र के विषय में सहज रूप से समझाया है।
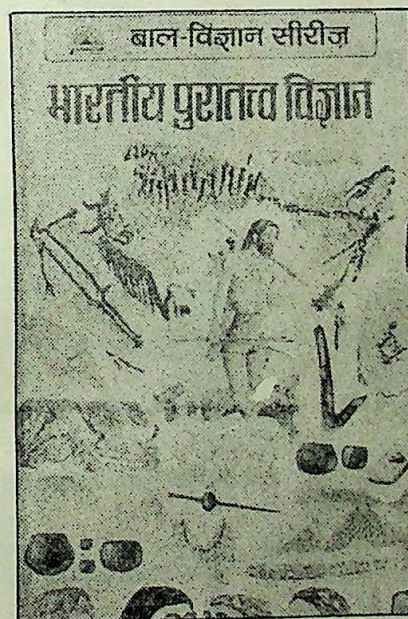
56 पृष्ठों वाली यह पुस्तक किशोर वय के छात्र-छात्राओं के लिये ही नहीं, अपितु सामान्य ज्ञान की बातों में रुचि रखने वाले सभी पुस्तक प्रेमियों एवं जिज्ञासु पाठकों के लिये उपयोगी है। पुस्तक में आवश्यकतानुसार तकनीकी शब्द हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिये हुये हैं।
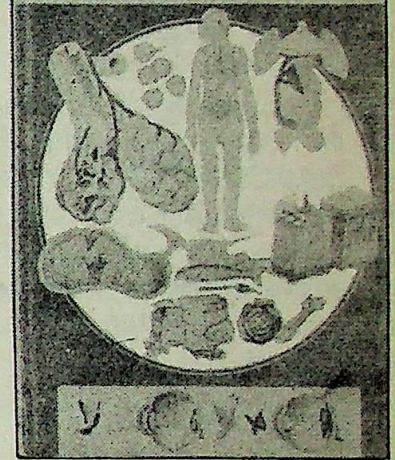
6. हमारा शरीर और स्वास्थ्य-डा. भानुशंकर मेहता

इस पुस्तक के लेखक ने वास्तव में यह प्रयत्न किया है कि उनके द्वारा लिखी गई बातें बच्चों के पल्ले पड़ सकें। "मस्तिष्क बड़ा जटिल मौहल्ला है..... दोनों फेफडों के बीच एक बड़ा मजेदार पम्प है जिसे दिल कहते हैं...... चलो, अब आंत से बाहर आयें..... तो भाई आसान जवाब तो यह है कि भूख लगती है तो खाना पड़ता है।" इस तरह की बातचीत की शैली में लिखी गई यह पुस्तक बालकों के लिये बहुत ही ज्ञानवर्धक है।

लेखक ने मात्र 56 पृष्ठों में बच्चों को शरीर तथा भोजन के विषय में काफी लाभदायक जानकारी दी है। दांतों को लेखक ने काफी महत्व दिया है (और दिया भी जाना चाहिये)। एक नाटक के माध्यम से दांतों की सफाई से जुड़े हानि-लाभों से परिचित कराने की कोशिश की है। स्वच्छ हवा एवं सूरज की रोशनी हमारे लिये कितनी आवश्यक है? इस विषय को भी सरल एवं रोचक ढंग से समझाया गया है। बच्चों को गन्दी आदतों से अपने को बचाये रखने के लाभ भी बताये गये हैं। **क्रमश:**

[श्री सुभाष लखेड़ा, एक्स- 360, सरोजनी नगर, नई दिल्ली- 110 023]

(शेषांश पृष्ठ 33 पर)

बनाया होगा। इसीलिये यह विशाल प्राणी बना लेकिन यह रहा, एक-कोशिकीय ही। यह केन्द्र मानो किसी बंदी के समान इस विशाल शरीर के मध्य भाग में बंदी का जीवन बिता रहा होगा। मुझे इस पर दया आई और मैंने उसके मुक्त करने का निर्णय किया। इसके लिये मैंने प्राणि शास्त्र तथा रसायनशास्त्र का सहारा लिया। मैंने एक औषधि भी मछली को खिला दी थी। उस औषधि ने अपना काम ठीक ढंग से किया। डी.एन.ए. की अवरोधित जीन को उसने मुक्त किया, इससे प्राकृतिक प्रक्रियाएं तेजी से आरंभ हो गई। लगातार विभाजन होकर करोड़ों सूक्ष्म जीव अर्थात अमीबाओं का निर्माण हुआ। वे अपने प्राकृतिक सूक्ष्म रूप से जीने लगे। आंखों से न दिखाई पड़ सकने के कारण इनका पता नहीं चल सका। अब तक इनके समूचे वंशज नेस नदी में छितरा गये होंगे और उनमें से बहुत सारे अन्य प्राणियों के भक्ष्य भी बन गये होंगे।''

''इसका अर्थ यह हुआ कि अब मान्सटर समाप्त हो गया है,'' मैकफर्न ने पूछा।

''नहीं, मान्सटर समाप्त नहीं हुआ है। समाप्त हुआ है केवल उसका विशाल स्वरूप। लेकिन वही मान्सटर अब भी अतिसूक्ष्म रूप में समूची नेस नदी में विद्यमान है। नेस के पानी की एक बूंद लो और सूक्ष्मदर्शी से उसकी परीक्षा करो, आपको असंख्य मान्सटर दिखाई देंगे। ये एक कोशिकीय प्राणी, वास्तव में मान्सटर होते हैं। ये टी.बी. एवम् मेनेन्जाइटिस इत्यादि रोगों के कीटाणुओं के रूप में मानव को लगातार हानि पहुंचाते रहते हैं। अभी तो ये मानव शरीर के अंदर जाकर ही अपना काम करते हैं। यदि ये विशाल रूप में परिवर्तित हो गये तो ये बाहर से भी आक्रमण करने में सक्षम हो जाएंगे।''

''लेकिन आपने यह कैसे जान लिया कि ये सब एक कोशिकीय प्राणी हैं।''

''उनका निरीक्षण करके। सभी बहु कोशिकीय प्राणियों में एक विशेष प्रकार की पाचन प्रणाली होती है। मान्सटर के अन्न का पाचन वहीं के वहीं हो रहा था। इसके अलावा उनके अंग प्रत्यंग भी नहीं थे। भक्ष्य को पकड़ने के लिये वे अपने शरीर का ही प्रयोग कर रहे थे। ये बातें एक कोशिकीय प्राणी के बारे में ही संभव हो सकती है। उनका कोई भी अंग कठोर नहीं था। शरीर के अंदर का द्रव्य अतिसूक्ष्म कोलोइडी कणों के कारण पारदर्शी था।''

''कितना बड़ा अवसर गवां दिया तुमने! यदि इसे जीवित रखकर प्रयोग करते तो, ऐसी औषधियों की खोज की जा सकती थी, जिससे विशाल झींगा मछलियां व मुर्गियां आदि का उत्पादन किया जा सकता था। और इस प्रकार समूचे विश्व की खाद्यान्न समस्या हल हो सकती थी।''

''मैं इन विचारों से सहमत नहीं हूं। इस प्रकार के प्रयोगों से लाखों वर्षों से चला आ रहा प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाने का भी खतरा है और यदि यह साधन राजनीतिज्ञों के हाथ पड़ जाये तो जनता यह कहने को विवश हो जाती कि इससे तो अच्छा अणु बम ही है। अणु बम या तो मानव, अथवा संगठन के नियंत्रण में होते हैं। वे स्वयं नहीं फट सकते। लेकिन सोचो..... ऐसे प्रयोगों से पांच सौ, या हजार फुट लंबाई के विशालकाय खरगोशों का निर्माण हो जाय तो उनमें अपनी स्वतंत्र बुद्धि अवश्य रहेगी और यदि ऐसे दस-बीस खरगोश लंदन पर धावा बोल दें तो मशीन गनें, तोपें, राकेट आदि सब प्रभावहीन हो जायेंगे। इसलिए, मैं ऐसे प्रयोगों के खिलाफ हूं। इसलिये मैंने अपने प्रयोग के लिये 'प्राणियों का केवल सांस्कृतिक जीवन' अपने विषय के रूप में चयन किया है।''

''अपनी इस खोज का एक और भी तो उपयोग हो सकता था। यदि हम पिछले प्रांगण में इस प्रकार का एक अमीबा तैयार करके उसके पेट में से एक नली बाहर निकाल के रख लें तो जरूरत होने पर कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा इत्यादि पोषक पदार्थ बिलकुल तैयार मिल सकते हैं। यह प्रयोग भी सफल हो सकता है। किंतु इसके लिये आवश्यक जीनों को खोजना पड़ेगा। असली दिक्कत डी.एन.ए. से मस्तिष्क का संपर्क बनाने में आएगी। अच्छा अब यह विषय यहीं समाप्त करते हैं।'' ऐसा कहकर जेन उठ खड़ी हुई।

अब नेस सरोवर सब के लिये खुला है। लेकिन अब भी कुछ दर्शक वहां इस आशा में जाते हैं कि शायद कभी न कभी उन्हें मान्सटर के दर्शन हो जायें। उनका विश्वास है कि मान्सटर अमर है।

[. श्री ग.कृ. जोशी, अझोफेन लि., 63, मुंबई समाचार मार्ग, मुंबई- 400 023]
[प्रस्तुति : श्री गजानन साल्पेकर, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली]

विशेष सूचना

प्रकाशन और सूचना निदेशालय (वै.औ.अ.प.) की लोक मासिक पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' और 'साइंस रिपो' की जुलाई 1990 से विज्ञापन की नई दरें

विज्ञान प्रगति

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,000.00	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,000.00	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,000.00	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,000.0	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,000.0	70,000.00

साइंस रिपोर्टर

	एक बार रु.	छः	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	5,000.00	25,0	50,000.00
आधा पृष्ठ	3,000.00	15,0	30,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,600.00	8,0	16,000.00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	6,000.00	30,00	60,000.00
चौथा आवरण पृष्ठ	7,000.00	35,00	70,000.00

विज्ञान प्रगति तथा साइंस रिपोर्टर की संयुक्त विज्ञापन की दरें

	एक बार रु.	छः बार रु.	बारह बार रु.
पूरा पृष्ठ	8,000.00	40,000.00	000.00
आधा पृष्ठ	4,500.00	22,500.00	45,00
चौथाई पृष्ठ	2,500.00	12,500.00	25,00
दूसरा तथा तीसरा आवरण पृष्ठ	9,500.00	47,500.00	95,000.
चौथा आवरण पृष्ठ	11,000.00	55,000.00	110,000.00

रंगीन विज्ञापनों पर 75 प्र.श. अतिरिक्त

R. No. 713/57

NOW AVAILABLE

Proceedings of Regional Symposium Brisbane 1989

Chemistry & the Environment

Edited by
B.N. Noller
M.S. Chadha
Published by
Commonwealth Science Council

The eighteen articles included in this book, contributed by distinguished scientists from Australia, Canada, New Zealand, U.K., Malaysia and India, provide up-to-date information on various aspects of the fossil fuels utili n, ozone hole, green house gases and effects, environmental effects of several chemicals, spheric and urban air modelling, major chemical accidents and environmental monitoring ats. Examples of the topics covered are: Interactive processes in the atmospheric environ; The international geochemical mapping project - A contribution to environmental studie otosynthesis and the green house effect; Ozone puzzles - Will a hole occur outside po egions?; Urban air pollution modelling etc.

The essential idea in publishing e proceedings is to catalyse activities in the Asia - Pacific Region which not only faces same problems as the rest of the globe but also has to contend with high population and u trolled generation of pollutants. The proceedings could help in the formulation of ef ve strategies for containing environmental problems.

The volume should be recom ded reading for scientists, meteorologists, technology managers, policy planners, indus sts and futurologists.

pp 324 + xii; Price Rs.125/-; $ £ 30

ORDERS MAY B LACED WITH

Senior Sales an istribution Officer,
Publications nformation Directorate, Hillside Road, New Delhi-110012.

डा. जी.पी. फों रा प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली, के लिए तेज प्रेस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में प्रकाशित और मुद्रित
Regd. No. D (C)-89